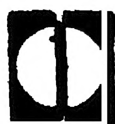
एक सदी बाँझ

एक मात्र वितरक:

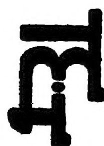


किताबघर
24/4866 शीलतारा हाऊस, अंसारी रोड़,
दरियागंज. नई दिल्ली 110002.

एक सदी बाँझ



मस्तराम कपूर



लेखक मंच
दिल्ली—110091

प्रकाशक
लेखक मंच,
79बी, पाकेट 3, मयूर विहार,
दिल्ली-110091

एकमात्र वितरक
किताबघर
24/4866 शीलतारा हाऊस, अंसारी रोड़,
दरियागंज, नई दिल्ली 110002.

प्रथम संस्करण

मूल्य
एक सौ साठ रुपये

आवरण
इमरोज़ तथा गौरांग घोष

मुद्रक
शाकुन प्रिन्टर्स नवीन शाहदरा, दिल्ली-32.

EK SADI BANJH (NOVEL IN HINDI):
MASTRAM KAPOOR

Price Rs. 160.00

दो शब्द

'एक अटूट सिलसिला', 'तीसरी आँख का दर्द' और 'स्वप्न-भंग'—इन तीन खंडों में विभाजित प्रस्तुत उपन्यास का प्रारंभ मेरे लेखकीय जीवन के लगभग प्रारंभ में हुआ था और इसका अंत भी मेरे लेखकीय जीवन के लगभग अंत में हो रहा है। पहले दो भाग अलग से प्रकाशित हुए थे। मैंने इनमें परिवर्तन करना उचित नहीं समझा है क्योंकि ये मेरी लेखकीय यात्रा के पड़ाव हैं।

हिमाचल प्रदेश की ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखे गए इस उपन्यास में तीन पीढ़ियों के पात्रों के अनुभवों तथा स्मृतियों के माध्यम से लगभग पूरी सदी के और विशेषकर स्वाधीन भारत के 43 वर्षों के पारिवारिक, सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक द्वंद्व को प्रतिबिंबित करने का प्रयास किया गया है। इसके पात्र और उनसे संबंधित घटनाएं काल्पनिक हैं किन्तु देश-काल यथार्थ है।

79 बी, पाकेट 3, मयूर विहार, दिल्ली 110091

मस्तराम कपूर

एक अटट सिलसिला

देवला आठ-दस घरों की छोटी-सी बस्ती है। यहाँ की लूण-तम्बाकू की एकमात्र छोटी-सी दुकान, साल में सात महीने उजड़ी-उजड़ी-सी रहती है किन्तु कुछ महीने उसके भाग खुल जाते हैं। सर्दियों के शुरू होते ही गधेरने की 'गद्दी' पलम की ओर आने लगते हैं या गर्मियों के शुरू में वे गधेरने वापस जाते हैं तो उन दिनों देवला में रौनक आ जाती है। गधेरने के रास्ते का एक बड़ा पड़ाव होने के कारण यहाँ उन दिनों यात्रियों के झुण्ड टिके दिखाई पड़ते हैं। निर्जला एकादशी की पिछली रात को भी देवला में खूब चहल-पहल होती है क्योंकि ततवानी के स्नान के लिए जाने वाले जातरू रात यहीं पर बिताते हैं।

देवला से ततवानी चार कोस दूर है किन्तु पहाड़ी रास्ता इतना ऊबड़-खाबड़ है कि रात के समय चलने का किसी को साहस नहीं होता। बड़ी-बड़ी चट्टानों को काटकर रास्ते बने हैं जिन पर थोड़ी-सी भी असावधानी हुई तो कई सौ फुट नीचे तक लुढ़कने की नौबत आ जाती है। रास्ता लूणी खड्ड के साथ लिपटा हुआ है। देवला से ततवानी तक लूणी खड्ड को आठ-दस बार पार करना पड़ता है। पानी का बहाव इतना जोरदार है कि पाँव फिसलते ही दस-बारह कदम दूर तक बह जाना मामूली बात है। इसी डर से ततवानी के जातरू रात को देवला ठहर जाते हैं और दूसरे दिन सुबह तड़के उठकर ततवानी के लिए चल पड़ते हैं। देवला में रात काटना अच्छा ही रहता है क्योंकि यह बस्ती है। जातरुओं को डेरा वृक्ष तले ही लगाना पड़ता है, लेकिन जंगली जानवरों का भय नहीं होता।

पंडित नित्यानन्द की पार्टी जब वहाँ पहुँची तो दस बज चुके थे। सोने लायक अच्छे-अच्छे स्थान पहले आए जातरुओं ने घेर लिए थे। कई सोने की तैयारी कर रहे थे, कइयों के अलाव बुझे नहीं थे और रातभर बुझने वाले भी नहीं थे। जेठ महीने में भी यहाँ रात को इतनी सर्दी पड़ती है कि आग और कम्बल के बिना रात नहीं कटती। स्त्रियाँ इस पुण्य अवसर का लाभ उठाकर रात-जागरण करने पर तुली हुई थीं। ऐसे अवसरों पर बारामाही और छमाही गामों का स्वर अक्सर गूँजता है। स्त्रियों की टोलियों में होड़ होती है। एक टोली गाना गाती है जिसका उत्तर दूसरी टोली को देना पड़ता है। यह सिलसिला रात भर चलता रहता है।

पंडित नित्यानन्द की पार्टी में पाँच व्यक्ति हैं। एक तो वे स्वयं, खैरा गाँव के वंश-परम्परा से प्रसिद्ध पंडित। आयु पचास से ऊपर हो चुकी है किन्तु काफी स्वस्थ दीखते हैं। उनकी पत्नी पार्वती देवी उनसे दस-बारह वर्ष छोटी होंगी। लेकिन वेश-भूषा से लगता है कि अभी नई नवेली दुल्हिन हैं। सूफ की काली घघरी, रेशमी कुर्ता और गोटेदार ओढ़नी के अलावा शादी-ब्याह के मौकों पर पहने जाने वाले सभी गहने उसके अंगों पर थे। नाक में पड़ी सोने की नथ आधे चेहरे को ढके हुए थी। नथ ने नाक के छेद को काफी बड़ा कर दिया था। इस समय वह सोने की डोर से कसी हुई थी। चाँदी के चाक पर ओढ़ी हुई गोटे की किनारी वाली ओढ़नी में वह ऐसी लग रही थी जैसे किसी गिरजे को सिर पर उठाए जा रही हो। उनका लड़का दिवाकर छरहरे बदन का युवक है। रंग गोरा, बाल सिनेमा के अभिनेताओं के स्टाइल में अस्त-व्यस्त हैं। वह कालेज की पढ़ाई समाप्त करके अब नौकरी की तलाश में है। चौथा व्यक्ति अमर नाम का एक युवक है जिसका इस परिवार के साथ अभी तो इतना ही सम्बन्ध है कि वह दिवाकर का मित्र और सहपाठी है किन्तु इसके अतिरिक्त एक और सम्बन्ध का सूत्रपात भी होने वाला है। पंडित नित्यानन्द की लड़की रमा के साथ उसकी कुड़माई हो रही है। वास्तव में उसे इसी सिलसिले में पंडित जी ने बुलाया था। दिवाकर ने ततवानी जाने की बात कही थी लेकिन असली उद्देश्य यही था कि पंडिताइन की बहन लड़के को देखना चाहती थीं।

जातरुओं की इस टोली में इन चार व्यक्तियों के अतिरिक्त एक मजदूर लड़की थी। लगभग अट्ठारह वर्ष की अवस्था, साफ-सुथरे कपड़े उसके सुन्दर, सुडौल शरीर को ढँके हुए थे। गले में चाँदी की अठन्नियों-चवन्नियों को जोड़कर बना हुआ हार पड़ा था। लड़की का नाम रूपा था और बैजनाथ के मोटरों के अड्डे से बोझ उठाने के लिए इस टोली को उसे अपने साथ लेना पड़ा था। लेना पड़ा इसलिए कि वहाँ और कोई मजदूर नहीं मिला। कम से कम अमर ने तो टोली के मुखिया पंडित नित्यानन्द को यही बताया कि और कोई मजदूर नहीं मिल सकता। ततवानी के यात्रियों के पास बोझ के नाम पर रोटियों की टोकरी ही मुख्य होती थी और उसे उठाने के लिए ऐसे मजदूर की तलाश होती थी, जो "बाहरकी" जाति का न हो। इधर रूपा का हार उसकी जात का विज्ञापन कर रहा था। अमर ने जब रूपा को अपने साथ चलने के लिए कहा तो पास खड़े दूसरे मजदूरों ने उसकी जात की स्पष्ट घोषणा कर दी थी किन्तु अमर उनकी बात अनसुनी करके रूपा को अपने साथ ले आया था।

रूपा को देखते ही पंडिताइन जल-भुन कर रह गई थी। दिवाकर ने रूपा को साथ ले चलने का इतना जोर डाला कि पंडिताइन को हार मान कर चुप होना पड़ा। पंडित जी इस विवाद में योगी की तरह निर्लिप्त बने रहे। आखिर रूपा के पास बिस्तर दिया गया था और रोटियों का टोकरा अमर और दिवाकर को बारी-बारी उठाना पड़ा था।

मजदूर की तलाश में ही उन्हें बैजनाथ में चार बज गए थे इसलिए देवला पहुँचते-पहुँचते दस बज गए। अमर ने दौड़-धूप करके बैठने का स्थान ढूँढ निकाला। दूसरे जातरुओं के डेरे से पन्द्रह-बीस कदम दूर तो था लेकिन आरामदेह था। पंडिताइन ने स्थान देखकर नाक सिकोड़ी किन्तु कोई चारा न देखकर उसी पर सन्तोष करना पड़ा। रूपा के सिर से बिस्तर उतारने के लिए दिवाकर आगे बढ़ा। अँधेरे में कुछ दिखाई भी नहीं पड़ रहा था। बिस्तर उतारते-उतारते

उसका हाथ रूपा के गाल से छू गया।

रूपा चौंक पड़ी किन्तु दिवाकर ने धीरे से कह दिया, "अरी डरती क्यों हो ? यह साँप नहीं है।"

पंडिताइन ने कुछ कड़े स्वर से पूछ लिया, "क्या बात है ?"

इससे पहले कि रूपा कुछ कहे दिवाकर ने हँसकर कह दिया, "बिस्तर की रस्सी को साँप समझकर डर गई।"

बात खतम हो गई किन्तु रूपा का उस समय शरीर सिहर रहा था। बिस्तर उतार कर जब वह कुछ दूर बैठ गई तो उसका मन इसी बात में डूब गया कि दिवाकर ने जानबूझ कर ऐसा क्यों किया ?

कम्बल बिछ चुके थे। अमर ने छोटा-सा अलाव भी तैयार कर दिया था। पंडित जी चुपचाप सिगरेट पी रहे थे। पंडित जी की यह आदत थी कि बोलते थे तो बेलगाम और चुप रहते थे तो बेजबान। दिवाकर ने रोटियों का टोकरा एक पत्थर पर रख दिया था। अब वह उसे लाने के लिए उठा। टोकरा पत्थर पर न देखकर उसे पहले तो थोड़ा आश्चर्य हुआ। शायद कोई उठा लाया होगा। सारा सामान देख लेने पर भी वह नहीं मिला तो उसका कुतूहल बेचैनी में बदल गया। पंडित नित्यानन्द उसकी परेशानी को ताड़ गए।

"क्या हुआ ?" उन्होंने पूछा।

दिवाकर ने दोनों हाथ सिर पर रखकर कहा, "कोई उठा ले गया।" अमर चौंक पड़ा। डेरे की व्यवस्था करते-करते अभी-अभी वह रूपा के विषय में सोचने लगा था। उसकी भोली सूरत, मासूम हँसी और दूसरे स्पष्ट-अस्पष्ट गुणों का विश्लेषण कर रहा था। दिवाकर की बात का सम्बन्ध इसीलिए उसने तुरन्त रूपा के साथ जोड़ दिया। किसीके कुछ कहने से पहले ही उसने पूछ लिया, 'किसे...... ?' न जाने कैसे उसके होठों में आकर 'रूपा' शब्द अटक गया।

दिवाकर ने कहा, "अभी तो मैंने इधर, इस पत्थर पर रखा था, पाँच मिनट भी नहीं हुए।"

उसकी बात सुनकर सब का दिल बैठ गया। बात दरअसल यह थी कि ततवानी की यात्रा रोटियों के टोकरे के सहारे ही होती थी। उस पहाड़ के पानी में ऐसा गुण था कि पेट में पहुँचते ही तेज भूख लगने लगती थी। इसलिए जातरू दो दिन के लिए चार-पाँच दिनों का भोजन साथ लिये निकलते थे। देवला में सिर्फ एक दुकान थी जहाँ कुछ आटा-चावल मिल सकता था। यह दुकान भी बन्द हो गई थी। और कोई चारा न देखकर उन्होंने वह रात भूखे ही बिताने का निश्चय किया।

रात का तीसरा पहर। देवला के जातरू बुझते हुए अलावों के पास कम्बलों में लिपटे पड़े थे। कम्बल में सिमटे हुए भी हवा का झोंका लगने पर सिहर उठते थे और नींद में ही घुटनों को और सिकोड़ लेते थे। हवा साँय-साँय चल रही थी। एक अलाव को घेरे हुए चार व्यक्ति सोए हुए थे। तीन पुरुष और एक स्त्री। सभी जैसे नींद में बेहोश थे। उन्हीं के पास अलाव से कुछ दूर एक युवती घुटनों में सिर छिपा कर सिसक-सिसक कर रो रही थी। न जाने कितनी देर से यह क्रम चल रहा था ? रह-रह कर वह युवती पास ही आराम से सोए हुए व्यक्तियों को देख लेती थी। फिर दुगुने विषाद से बच्चे की तरह रो उठती थी।

अलाव के गिर्द सोए हुए व्यक्तियों में ज़रा-सी हरकत हुई। एक ने कम्बल को चारों ओर से दबाकर ठंडी हवा के आने के सब रास्ते बन्द कर लिए। दूसरे ने करवट बदलने की कोशिश की। सर्द हवा के स्पर्श से शायद उसने हिलना-डुलना उचित नहीं समझा। एक युवक ने जैसे आँखें ही खोल दीं। शायद नींद में ही ऐसा किया हो। लेकिन, नहीं। वह जाग गया था और आश्चर्य में डूबा-डूबा कुछ सोच रहा था। पास ही हिचकी की आवाज़ फिर आई। वह उठ बैठा। उसने इधर-उधर देखा तो अँधेरे में भी एक काँपती हुई, गठरी-सी उसे दिखाई पड़ी। वह धीरे-धीरे उठा, कम्बल को हाथों में लेकर वह दबे पाँव उस गठरी की ओर बढ़ा।

बिजली की-सी फुर्ती से रूपा मुड़ी। उसके होंठ क्रोध में भिंचे हुए थे। किन्तु सामने अमर को देखकर सकपका गई। उसके मुँह पर आए हुए शब्द हिचकियों में विलीन होने लगे और फिर वह फफक कर रो उठी। अमर ने कम्बल उसके शरीर से लपेट दिया और पूछा—

"तुम्हें किसी ने कम्बल नहीं दिया?"

रूपा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"बोलती क्यों नहीं? किसी ने तुम्हें कम्बल नहीं दिया?"

"कहाँ से देते? उनके पास फालतू कम्बल था ही कहाँ?"

"क्यों पाँच कम्बल लाए थे?"

"एक माँ जी ने तकिए के लिए......"

कहते-कहते वह रुक गई। अमर गम्भीर हो गया।

"तुम अलाव के पास क्यों नहीं सो गई?"

रूपा ने अलाव की ओर नज़र डाली और फिर कुछ उदास-सी हो गई।

"किसी ने तुम्हें अलाव के पास भी नहीं सोने दिया?"

"उन्होंने कहा था कि सो जाओ।"

"किसने? दिवाकर ने?"

"हाँ।"

"तो फिर......? फिर क्यों नहीं सोई?"

"मुझे अच्छा नहीं लगा......।" कहते-कहते रूपा सिमट-सी गई। अमर कुछ समझ नहीं सका। कुछ देर चुप रहने के बाद अमर बोला—

"अच्छा, तुम घड़ी भर सो लो।"

"और आप?"

"मैं काफी सो चुका हूँ। ......अब ज़रा घूम आता हूँ।"

अमर उठकर चला गया तो रूपा बड़ी देर तक उसकी ओर देखती रही फिर एक पत्थर को तकिया बना कर वहीं लेट गई।

जातरुओं का शोरगुल सुनकर जब उसकी नींद टूटी तो उसने देखा कि चलने की सब तैयारियाँ हो चुकी हैं। शायद वे लोग उसीके उठने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अपने पास ही पंडिताइन, पंडित जी आदि को देखकर वह ग्लानि से सिमट गई। उसे आशा थी कि उस पर गालियों की बौछार शुरू हो जाएगी। पंडिताइन ने अब तक कैसे सब्र किया, यह उसके लिए

सचमुच आश्चर्य की बात थी। दिवाकर उसकी ओर घूर रहा था। रूपा अँगड़ाई लेना चाहती थी। लेकिन किसी कारण उसका साहस नहीं हुआ। हक्का-बक्का होकर वह वहीं खड़ी रही। इस समय उसे क्या करना चाहिए। यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। पंडित जी हमेशा की तरह अपने में ही डूबे थे। किन्तु पंडिताइन में रूपा ने जो परिवर्तन देखा, उससे वह काँप उठी। निकट जाकर डरते-डरते बोली, "मालकिन, गलती हो गई।"

पंडिताइन ने न जाने इसका क्या अर्थ लगाया, "वह तो मैं पहले ही जानती थी। छोटी जात को जब रूप मिल जाता है तो ऐसा ही होता है।"

रूपा का रोम-रोम सिहर उठा। उसे कहने के लिए कोई शब्द नहीं मिला। स्त्री की आँखों में इतना घिनौनापन उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसने चारों ओर देखा। उसकी आँखें जिसे ढूँढ़ रही थीं वह कहीं दिखाई नहीं पड़ा।

पंडिताइन की ओर देखते ही उसे लगा कि वह उसे कच्चा चबा डालने के लिए व्याकुल हो रही है। पंडितजी दस-बारह कदम दूर दातुन कर रहे थे। रूपा उनके पास पहुँची। उसे देखते ही पंडितजी बोल उठे, "अरे, अभी तक तेरी नींद नहीं गई! हाथ-मुँह धोकर तैयार हो। देर भी तो हो रही है।"

रूपा ने उनके शब्दों में निश्छलता देखी तो पशोपेश में पड़ गई।

"मुझे बड़ी देर हो गई बझिया[१]!"

"कोई बात नहीं, लेकिन अब और देरी मत करो।" कहते-कहते पंडितजी मुड़ गए।

ततवानी पहुँचते-पहुँचते बारह बज गए। घड़ी में भी और उन लोगों के चेहरों पर भी। भूखे पेट इतनी चढ़ाई चढ़ना और ऐसी धूप में किसी को आशा नहीं थी कि वे सही-सलामत वहाँ पहुँच जाएँगे। रास्ते में एक-दो बार पार्वती देवी को गश आ गया। दिवाकर की हालत भी बिगड़ गई थी किन्तु पंडितजी और रूपा न जाने किस शक्ति से भूख की यातना को सह सके। अमर उनके साथ नहीं था। वह दाल-चावल का प्रबन्ध करने के लिए देवला में पिछड़ गया था। सभी की आस उस पर लगी हुई थी। किन्तु उसका कहीं नामोनिशान नहीं था। ततवानी पहुँचकर एक पेड़ के नीचे सब लोग बैठ गए। दिवाकर एक ऊँचे से पत्थर पर खड़ा होकर, अमर की राह देखने लगा। पंडिताइन गुमसुम मुरझाई हुई लेटी रहीं। पंडितजी सिगरेट फूँकने में व्यस्त रहे। रास्ते में किसी में कोई खास बातचीत नहीं हुई थी। पाँच-छः घंटों की चुप्पी ने उनकी वाक्शक्ति का जैसे हरण ही कर लिया था।

पंडितजी ने पार्वती की ओर देखकर कहा, "तब तक नहा लो, तो अच्छा है।"

पंडिताइन ने कोई उत्तर नहीं दिया। आसपास पेड़ों के नीचे जातरुओं के झुंड थे। स्त्रियाँ भजन गा रही थीं। सामने ही ततवानी के पोखर थे। हर साल हजारों लोगों के काम में आने पर भी इनका रूप वही रहा। किसी ने न तो इन्हें घाट-तालाब की शक्ल में बँधवाया, न स्त्री-पुरुषों के बीच पर्दे की उचित व्यवस्था ही की। लूणी खड्ड के किनारे बड़े-बड़े पत्थरों से दोनों पोखर घिरे हुए थे। प्रकृति ने दोनों के बीच एक छोटी-सी चट्टान खड़ी कर दी थी जो पर्दे का काम देती थी। पाँच-सात बराह के पेड़ों के अतिरिक्त कोई पेड़ भी नहीं था, जिसकी छाया में जातरू विश्राम कर सकते। इस उजाड़ और भयानक जगह में साल में एक बार 'निर्जला एकादशी' के

१. बाहर की जातों द्वारा बड़ी जातों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला सम्बोधन, जिसका अर्थ है मालिक।

दिन मोक्ष के लिए उतावले आतक इन्हीं पत्थरों में ज्यों-त्यों दिन काटकर चले जाते थे। पंडिताइन ने लोगों की भीड़ को पोखरों के आसपास देखा तो उसे विरक्ति हो गई—क्या इसी तीर्थस्थान के लिए लोग पागलों से दौड़े आते हैं? जहाँ बैठने की व्यवस्था भी नहीं है, न खाने-पीने की! दूसरी व्यवस्था पर शायद उसका अधिक जोर था। और शायद वह उस व्यवस्था की चिंता में इतनी अधिक डूब गई थी कि पति के प्रश्न को उसने सुना ही नहीं। पंडितजी थोड़ी देर के बाद फिर बोले, "अमर आता ही होगा। कुछ सामान तो जरूर लायेगा। लेकिन तब तक नहा-धोकर तैयार हो जाना चाहिए। अरी तुम चुप क्यों हो? दिवाकर कहाँ गया है?"

अब की बार भी उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला तो उन्होंने रूपा की ओर देखा। रूपा की नजर सामने दो स्त्रियों पर टिकी हुई थी, जो पोखर में नहाकर आ रही थीं।

पंडितजी चुपचाप सिगरेट के कश लेने लगे। बीच-बीच में वे कभी रूपा की ओर और कभी पंडिताइन की ओर देख लेते। थोड़ी देर में वे अपनी अतीत की कुछ स्मृतियों में खो गए। उन्होंने देखा—एक युवक माथे पर तिलक लगाए, मलमल की धोती पहने सत्यनारायण की कथा कर रहा है। उसके सामने एक सुन्दर लड़की बैठी हुई है। युवक का ध्यान पुस्तक से हटकर बार-बार उस लड़की की ओर जा रहा है। लड़की आँखों में आँसू भरकर उसे एकटक देख रही है। युवक उस लड़की के सम्बन्ध में कुछ जानने को उत्सुक हो रहा है। कथा समाप्त होने पर युवक एक कमरे में पूजा का सामान एक गठरी में बाँध रहा है और साथ ही उस लड़की के बारे में भी सोच रहा है। अचानक किसी के आने से वह चौंक पड़ता है—

"कौन?"

"मैं····हूँ।"

युवक विस्मय और खुशी से उसी लड़की को सामने देखता है।

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"पारो।"

"क्या काम है?"

लड़की सकुचाई, फिर कुछ साहस करके बोली—

"एक बात पूछने आई हूँ।"

"बोलो।"

"सत्यनारायण की कथा करने से मन की मुराद पूरी हो जाती है क्या?"

"किताब में तो ऐसा ही लिखा है?"

"लेकिन, आप क्या मानते हैं?"

"कुछ नहीं।"

"क्या?"

"यही कि बिना परिश्रम के कोई मुराद पूरी नहीं होती।"

"क्या कथा झूठी है?"

"कथा सच्ची है या झूठी यह तो नहीं जानता। लेकिन इसका फल बकवास है। ····मैं तो

रोज ही इसे पढ़ता हूँ। अगर यह ठीक होता तो मुझे संसार में कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए। ....लेकिन तुम क्यों पूछती हो?"

लड़की ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह जाने लगी।

"जरा सुनो।"

लड़की रुक गई।

"यह तो बताओ कि तुम्हारे मन की मुराद क्या है?"

"कहने से अब क्या होगा?"

"मैं कोई तरीका निकाल दूँगा।"

"निकालोगे?"

"क्यों नहीं?"

"जादू-मंत्र जानते हैं?"

"कुछ न कुछ जरूर करूँगा, तुम्हारे लिए।"

लड़की वापस आकर दीवार के सहारे खड़ी हो गई।

"तो फिर सुनिए। ....किसी से कहिएगा मत। मैं इसी घर के मालिक की लड़की हूँ।....."

"क्या, पंडित श्यामसुन्दर की?"

"हाँ!...." लेकिन आप तो सब कुछ जानते ही होंगे....?"

"नहीं, मैं कुछ नहीं जानता।"

"क्यों नहीं, मेरी बात तो आसपास के सब गाँवों में फैल चुकी है। आप कैसे नहीं जानते?"

"मैं सात-आठ दिन पहले ही तो घर आया हूँ। बारह साल की उमर में बाहर चला गया था।"

"अच्छा, तो सुनिए! मैं विधवा हूँ। मेरे पिता ने दो साल पहले चार हजार रुपया लेकर मुझे एक बूढ़े से ब्याह दिया था। एक साल का सुहाग काटकर मैं विधवा हो गई।....." कुछ देर चुप रहकर वह फिर बोली, "क्या मेरा फिर ब्याह हो सकता है?"

प्रश्न सुनकर युवक चौंक पड़ा, लेकिन उसने अपने हृदय के परिवर्तन को प्रकट नहीं होने दिया। लड़की बोली—"इसके लिए व्रत-पूजा कुछ सहायता नहीं देगी।"

युवक के मुँह से निकला, "नहीं।"

लड़की के चेहरे पर काली छाया घिर आई। वह बाहर की ओर चली तो युवक ने पूछा, "मेरे साथ ब्याह करोगी?"

लड़की बिजली की-सी फुर्ती से मुड़ी। कुछ देर युवक के चेहरे की ओर देखकर बोली, "नहीं।"

"डरो नहीं।" युवक कहने लगा, "हम दोनों यहाँ से भाग चलेंगे और अमृतसर में आर्यसमाजी मन्दिर में ब्याह कर लेंगे।"

लड़की बिना कुछ उत्तर दिए बाहर निकल गई।

तीस साल के वैवाहिक जीवन में पार्वती के उस रूप को नहीं भूले थे। पार्वती तो भूल ही

गई थी।

पंडितजी ने न तो इस पर कभी विस्मय प्रकट किया और न दुःख। पंडिताइन अपनी पूर्व स्थिति को भूल गई थी, पंडितजी को इससे बड़ा सुख मिलता था। समाज का विरोध हुआ। लेकिन पंडितजी गाँव से भागे नहीं। यजमानों की संख्या में कुछ दिन कमी हुई, फिर अपने-आप सब उन्हीं के पास आने लगे। आखिर गाँव के माने हुए पंडित और ज्योतिषी थे।

अमर अपने साथ चावल-दाल तो लाया ही था। कुछ पूरियाँ और तरकारी भी ले आया था। सब लोगों ने पहले नाश्ता किया, फिर अमर और पंडित जी भोजन बनाने की तैयारी करने लगे। पंडिताइन और दिवाकर नहाने के लिए जाने लगे।

दिवाकर और पार्वती के चले जाने के बाद रूपा बड़ी देर तक वहाँ बैठी रही और पंडित जी के विषय में कुछ सोचती रही। उसे आशा थी कि अमर उससे कोई बात करेगा। लेकिन अमर काम में इतना व्यस्त था कि रूपा की ओर उसने ध्यान ही नहीं दिया। इस बात से रूपा के स्वाभिमान को कुछ ठेस लगी और वह उठकर जाने लगी। तभी अमर ने पूछा—

"रूपा, भूख तो लग रही होगी?"

रूपा ने इस प्रश्न को इतना साधारण समझा कि उसका उत्तर देना भी ठीक नहीं समझा। अमर ने फिर पुकारा, "जा कहाँ रही हो ?"

अमर ने कुछ अनुमान लगा लिया कि वह नाराज है। तभी पंडित जी बोल उठे, "अरे भाई, इसे मैंने गुस्से में कुछ कह दिया था।"

"क्या?"

"कहा तो वैसे कुछ नहीं, लेकिन मेरी आवाज में क्रोध जरूर था।"

"कोई बचपना किया होगा।"

"नहीं उसका कसूर नहीं था। पंडिताइन मेरी बड़ी ईर्ष्यालू है और कभी-कभी वह इतना कड़वा बोल देती है कि संयम टूट जाता है। मुझे उस पर कभी-कभी बड़ा क्रोध आता है, लेकिन पता नहीं उस क्रोध को मैं कैसे पी जाता हूँ? या तो पी जाता हूँ या किसी पर उतार देता हूँ। उस पर क्रोध करने की हिम्मत मेरी नहीं होती। बस ऐसे समय जो सामने होता है, उसी पर बरसकर हल्का हो जाता हूँ। तुम तो जानते नहीं लेकिन मेरी पंडिताइन बड़ी कमजोर है। बाहर से लगती है यह पत्थर-दिल होगी। पत्थर-दिल है भी, लेकिन पत्थर की दीवार के अन्दर जो इसका असली दिल है बहुत ही छोटा है। यह उस कमजोरी को प्रकट नहीं होने देती। उस बचपन की कमजोरी को ढकने के लिए ही इसने कई दुर्गुण अपने साथ लपेट लिए हैं। ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, निर्दयता जो कुछ इसमें है, वह इसका असली रूप नहीं है। असली रूप को इस औरत ने किसी के सामने प्रकट नहीं किया। मेरे सामने भी नहीं। लेकिन मैं जानता हूँ कि वह वास्तव में क्या है!"

अमर बड़े ध्यान से सुन रहा था। उसने पार्वती में कोई विशेषता नहीं देखी थी। साधारण स्त्रियों की-सी उसकी सब बातें थीं किन्तु पंडित जी की बातों पर भी वह अविश्वास नहीं कर सका। इसके बाद पंडित जी विषयान्तर बोलने लगे, "भैया, यह सारा संसार ही पाखण्ड है। जिधर देखो उधर नकली रूप दिखाई देता है। असली बात दिल में छिपी रहती है। यही

आजकल की सभ्यता है जो अपनी बात जितने अच्छे ढंग से छिपा लेता है वह उतना ही सभ्य माना जाता है। मेरा लोगों ने बड़ा विरोध किया था। सब कहते थे मैंने धर्म का सत्यानाश कर डाला, विधवा के साथ शादी और वह भी उसे भगाकर आर्यसमाज में। आज की बात मैं नहीं कहता। उन दिनों तो यह बड़ा भारी पाप समझा जाता था। लेकिन मैं जानता था कि लोगों की उछल-कूद दो दिन में अपने-आप शांत हो जाएगी। हुआ भी वैसे ही। जिन्होंने मुझे जाति से बाहर कर दिया, वही कुछ दिनों बाद आकर कहने लगे, "पंडित जी, आपने सब को उबार लिया। एक बाल-विधवा गाँव भर का कलंक होती है।"

अमर के लिए पंडिताइन का यह परिचय बिल्कुल नया था लेकिन उसने कोई ऐसा प्रश्न नहीं पूछा। जिससे पंडितजी के यह शक हो जाए कि वह इस घटना को आवश्यकता से बढ़कर महत्त्व दे रहा है। पंडितजी की बात यह थी कि बोलते समय प्रासंगिक बातों के साथ अप्रासंगिक बातें अनायास ही उनके मुँह से निकल आती थीं। और अक्सर ऐसा हो जाता था कि वे अपनी बात को पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर पाते थे। अपने विषय की लपेट में वे सारे जीवन को समेट लेना चाहते थे। किन्तु इस प्रयत्न में प्रायः असफल रहते थे।

दिवाकर नहाकर बहुत जल्दी लौट आया। पंडितजी का लेक्चर बन्द हो गया। अमर ने पूछा—

"वहाँ बहुत भीड़ है?"

"नहीं, बड़ी नहीं है।"

"मैं नहा आऊँ?"

"आपकी इच्छा।" दिवाकर इधर-उधर देखकर अनमने भाव से बोला—"आप दोनों नहा आइए, तब तक मैं यहाँ रहूँगा।" किन्तु उसकी आँखें जब रूपा को वहाँ न देख सकीं तो उसे अपने ही प्रस्ताव पर आपत्ति खड़ी करनी पड़ी, "लेकिन मुझे तो खाना बनाना नहीं आता। आप खाना बनाकर जाएँ, तो ठीक रहेगा, तब तक मैं घूम-फिर आऊँ।"

पंडित जी बोले—

"वही करना ठीक रहेगा। तब तक भीड़ भी छँट जाएगी। हम मजे से नहा सकेंगे।"

दिवाकर तेजी से एक ओर चल दिया!

रूपा तीन बहनों में सब से छोटी थी। उसकी दो बहनों को बहुत छोटी उम्र में ही, जात-बिरादरी के लड़कों को ब्याह दिया गया था। एक ही दिन दोनों का ब्याह हुआ था। रूपा को याद है, बहुत मेहमान आए थे। बरातियों और मेहमानों को जी भर कर सुर[१] पिलाई गई थी और रात को भगत[२] भी हुई थी। सुर पीकर मतवाले हुए बरातियों ने बड़ा ऊधम मचाया था और सारे गाँव वाले उनका तमाशा देखने आ गए थे। उस दिन रूपा को अपनी जात-बिरादरी के लोगों से चिढ़-सी हो गई थी। दोनों बहनों की शादी के दस-बारह दिन बाद ही उसकी माँ को अचानक दस्त और उलटियों की बीमारी लगी थी और वह दो दिन के अन्दर चल बसी थी। घर में वह और उसका पिता शुकरू रह गए थे।

शुकरू उन दिनों दूसरों की जमीन काश्त करता था। उसने जमीन छोड़ दी और बोझ ढोने

१. चावल का पेय जिसका स्वाद बियर की तरह होता है।

२. कृष्णलीला से मिलता-जुलता एक लोक नाटक।

और दिहाड़ी पर दूसरों के खेत में काम करने लगा। रूपा को वह बहुत प्यार करता था। उसने गाँव के स्कूल में उसे चौथी तक पढ़ाया था। रूपा को स्कूल में दूसरे लड़के-लड़कियों से अलग बिठाया जाता था। बाहरकी जातों से सिर्फ वही एक लड़की स्कूल में पढ़ती थी। उसे यह बात बहुत खलती थी कि उसे अलग बिठाया जाता है और कोई उसे छूता तक नहीं है। पढ़ने में वह काफी तेज थी फिर भी उसे मास्टर जी से जो प्यार मिलना चाहिए था, वह नहीं मिलता था।

चौथी पास करने के बाद रूपा घर पर ही रहने लगी। वह इस बात की कोशिश करती कि आँगन-द्वार साफ-सुथरा रहे। अपने छोटे से घर को उसने बहुत अच्छी तरह से रखा था। अपने बापू शुकरू से वह कहती थी कि वह सुर-शराब न पिये क्योंकि इससे सारे घर में बदबू फैलती है।

उसे अच्छे बढ़िया कपड़े पहनने की बड़ी इच्छा होती थी लेकिन वह जानती थी कि यह उनकी हैसियत से बाहर की चीज है। उसका पिता शुकरू मेहनत-मजदूरी करके गुजारा करता था इसलिए वह उससे किसी चीज की माँग नहीं करती थी। खुद मेहनत-मजदूरी करने लगी। गाँव वालों के घर की लिपाई-पुताई या खेत के काम से वह दो रुपये रोज तो कमा ही लेती थी। छोटा-मोटा बोझ ढोने में भी उसे कोई आपत्ति नहीं होती थी बशर्ते मजदूरी अच्छी मिले।

पंडित नित्यानन्द की पार्टी के साथ बोझ उठाकर ततवानी चलने के लिए वह इसलिए तैयार हुई थी कि अमर दस रुपये की मजदूरी देने के लिए तैयार था।

जहाँ रूपा इस बात को समझती थी कि अपनी छोटी जात की वजह से उसे ऊँचे ख्वाब नहीं देखने चाहिए वहाँ वह यह भी जानती थी कि जन्म से आदमी को ऊँच-नीच मानना गलत है, सरासर बेइंसाफी है। वह समझदार थी, भावुक थी और अपमान वाली जरा-सी बात भी उसके दिल में चुभ जाती थी।

पिछली-रात को देवला में पंडित नित्यानन्द की घरवाली के व्यवहार से उसे बहुत दुख हुआ था, रातभर सर्दी से वह काँपती रही और पंडिताइन फालतू कंबल को तकिया बना कर रखे रही। उधर अमर ने उस पर जब अपना कम्बल डाल दिया तो उस मामूली-सी बात को पंडिताइन ने बतंगड़ बना दिया।

रूपा जब स्नान करने वाले तीर्थ यात्रियों की भीड़ से दूर एकांत में ये बातें सोच रही थी तो अमर की याद से उसकी आँखें भर-भर आ रही थीं। अमर का चेहरा बार-बार उसके सामने आता था। पता नहीं क्यों उसे लगता था कि अमर उसके बहुत निकट है और वह उससे अपने मन की तमाम बातें कह सकती है।

रूपा अपने ध्यान में डूबी हुई थी। उसे पता ही नहीं चला कि दिवाकर चुपके से उसके पीछे आकर खड़ा हो गया है। चट्टान की आड़ में खड़ी रूपा की कमर में उसने जब बाँह डाल दी तो रूपा ने चौंककर पीछे देखा। उसे लगा कि अमर ही वहाँ आ गया है लेकिन फिर दूसरे ही क्षण दिवाकर को अपने सामने देखकर छिटककर दूर हो गई। दिवाकर मुस्कराया लेकिन रूपा चेहरे पर क्रोध देखकर वह गम्भीर हो गया। वह बोला—

"रूपा, तुम नाराज हो तो मैं तुम्हारे पाँव पकड़कर माफी माँगता हूँ।"

दिवाकर की काँपती आवाज में रूपा ने निष्कपटता देखी।

वह बोली, "आप मेरे पाँव पकड़ेंगे ?" छिः-छिः ! ऐसा पाप ?"

दिवाकर बोला, "पाप कैसा ?" भगवान् ने जिसे इतना रूप दिया है क्या उसे छूने से पाप लग सकता है ? तुम तो सारे पापों को धो सकती हो । मैं सच कहता हूँ रूपा, तुम्हारे जैसा रूप तो लाखों में किसी एक को मिलता है ।"

रूपा को उसकी बातों पर हँसी आ गई । फिर बोली—

"पंडित जी, हम छोटी जात के लोगों के साथ आप मजाक करें यह अच्छा नहीं लगता ।"

"मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ रूपा ! मैंने सच्चे दिल से यह बात कही है ।" कहते-कहते दिवाकर रुक गया फिर बोला—

"जिसके साथ तुम्हारी शादी होगी वह बहुत खुशकिस्मत होगा ।"

रूपा अब की बार खिलखिला कर हँस पड़ी, बोली—

"जरूर वह बहुत खुशकिस्मत है । मेरे बापू ने आपके गाँव में मेरी कुड़माई उस वक्त कर दी थी जब मैं सिर्फ पाँच साल की थी । सुना है उस खुशकिस्मत आदमी को बचपन में लोमड़ी उठाकर ले गई थी और बड़ी मुश्किल से उसे छुड़ाया गया था । उसके चेहरे पर लोमड़ी के काटे के अब भी निशान हैं ।"

"कौन ? गुजरू का लड़का घिचर ?"

रूपा ने हाँ में सिर झुका लिया ।

"तुम घिचर से शादी करने को तैयार हो ?"

"तैयार हूँ या नहीं, शादी तो करनी ही पड़ेगी ।"

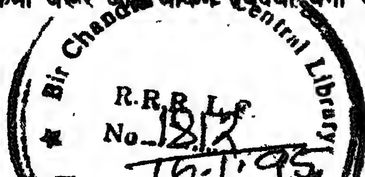
"नहीं तुम्हें वहाँ शादी नहीं करनी चाहिए । तुम्हारी जिन्दगी बरबाद हो जायेगी ।"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया । अचानक वह बैठ गई और मुँह ढक कर रोने लगी । दिवाकर हतप्रभ खड़ा रहा । वह बच्चों की तरह हिचकियाँ ले-ले कर रो रही थी । दिवाकर ने आसपास नज़र दौड़ाई । किसी ने देख लिया तो न जाने क्या समझेगा । लेकिन तीन तरफ से चट्टान की आड़ और एक तरफ सुनसान खड्ड था । वह धीरे से आगे बढ़ा । रूपा के पास बैठकर उसने उसके चेहरे को हाथ से उठाया । दोनों गालों पर आँसू बहे जा रहे थे । उसने हाथ से उसके आँसू पोंछ दिए । उसके होंठ बच्चों की तरह काँप रहे थे । रूपा ने अपना सिर दिवाकर के वक्ष पर टिका दिया और फिर हिचकियाँ भरकर रोने लगी दिवाकर ने उसे अपनी बाँहों में कस लिया । रूपा निढाल होकर उसके वक्ष से सटी पड़ी रही । दिवाकर ने उसके गोरे हाथ को धीरे से उठाया और अपने होठों से लगा लिया । रूपा को लगा दिवाकर के होंठ गरम हो गए हैं । उसे बहुत अच्छा लगा और उसने अपना हाथ नहीं हटाया । धीरे से सिर उठाकर दिवाकर की आँखों में देखने लगी । दिवाकर ने अपने होंठ रूपा के होंठों से लगा दिए । रूपा को लगा उसका सारा शरीर तप रहा है । उसने दोनों बाँहें दिवाकर के गले में डाल दीं । दिवाकर को किसी आग ने चारों तरफ से लपेट लिया । उसके हाथ रूपा के जिस्म को ऊपर से नीचे तक बेसब्री से टटोलने लगे । रूपा की बाँहों की जकड़ और मजबूत हो गई । एक मादक गंध का दिवाकर पर नशा छाने लगा । रूपा की शरीर की गंध, औरत के शरीर की गंध । दिवाकर आसपास की दुनिया को भूल गया । रूपा एक अपूर्व आनन्द की स्थिति में थी । उसने आँखें मूँद लीं और अपने को पूरी

तरह दिवाकर के हवाले कर दिया। दोनों नई दुनिया में पहुँच गए थे। यह दुनिया जात-पाँत की दीवारों से अछूती थी। यहाँ ऊँच-नीच, गोरे-काले का भेद नहीं था। यह एक पवित्र, नितांत पवित्र दुनिया थी जिसमें स्त्री और पुरुष के अतिरिक्त इन्सानियत के और कोई भेद नहीं थे।

गदियारी गाँव किसी समय एक छोटे से रजवाड़े की राजधानी थी। राजा के महलों की सीढ़ियाँ और नहाने के तलाब के खंड्हर अब भी एक उजाड़ इलाके में दिखाई देते हैं। इस उजाड़ को आज बी 'बंगला' कहकर पुकारा जाता है। कहते हैं उस बंगले वाले राजा ने वह जागीर किसी और राजा को बेच दी और वह स्वयं दूसरी जगह रहने लगा था। दूसरा राजा लंबेगाँव के राजा के खानदान का था। उसने अपने महल गाँव की सब से ऊँची जगह पर बनाए थे और आज भी कच्ची ईंटों और पत्थरों के बने वे महल मौजूद हैं। हालांकि उन्हें अब महल नहीं कहा जा सकता लेकिन सारे कटरे को, जहाँ उस राजा के खानदान के लोग फैले हैं, आज भी 'बेहड़ा' कहा जाता है। उस राजा की जागीर भी उत्तराधिकारियों के बीच बटकर बिखर गई है। राजा के खानदान के लोग भी अब नाम के राजा रह गए हैं। जहांगीर के वक्त से मिला 'मियाँ' का विशेषण उनके लिए अब भी इस्तेमाल किया जाता है। यद्यपि उनमें से अधिकांश की हालत काफी खस्ता हो चुकी है और वे गाँव के और घरों की तरह आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं।

राजा के खानदान का सीधा उत्तराधिकारी होने के कारण मियाँ यशवंतचन्द काफी बड़ी जागीर के मालिक रहे हैं। किसी वक्त उनकी धानी जमीन से इतना अनाज आता था कि तीन मील के रास्ते पर अनाज ढोने वाले घोड़ों, खच्चरों और मजदूरों की एक लाइन बन जाती थी। जब तक अंग्रेजों का राज रहा, मियाँ यशवन्तचन्द के खानदान की हैसियत राजाओं की ही रही। उन्हें आसपास के अनेक गाँवों की लम्बरदारी मिली हुई थी। चाय के बागानों से अच्छी खासी आमदनी होती थी। गाँव वालों से वे बेगार ले सकते थे। अपनी जमीन पर बसने वालों या उसकी काशत करने वालों को तो वे ग़ुलाम की तरह इस्तेमाल कर सकते थे। अंग्रेज बहादुर को हर तरह से खुश रखकर उन्होंने वे सारी सहूलियतें हासिल कर ली थीं जो किसी राजा या बड़े जागीरदार को हासिल होती थीं। अंग्रेजों के जाने के बाद उनकी हालत में कोई खास फरक नहीं आया। लम्बरदारी बनी रही। देश के नये नेताओं, विधायकों, मंत्रियों को वोटों की जरूरत थी और अपने काशतकारों तथा हरिजनों के वोटों के बल पर उन्होंने सब को अपने वश में कर रखा था। जिला अधिकारियों और सरकार के दूसरे अफसरों को भी उन्होंने शीघ्र ही मुट्ठी में कर लिया क्योंकि सरकारी दौरों में उनकी खातिर करने की वही पहल करते थे। गाँव में पंचायत भी थी लेकिन लम्बरदार को पूछे बिना कोई फैसला नहीं करती थी। किसी मामले की तहकीकात के लिए पुलिस आती थी तो उसे लम्बरदार की सलाह से अपनी रिपोर्ट लिखनी पड़ती थी। गाँव के विकास के लिए जब विकासखंड बने और बी०डी०ओ० साहबों की नियुक्तियाँ हुईं तो उनके अधिकारों में थोड़ी कमी जरूर आई लेकिन दबदबा बना रहा।



जमीन के मालिकों और काश्तकारों के बीच के झगड़े होने लगे और काश्तकार फसल का तीन-चौथाई लेने के लिए छुटपुट आन्दोलन करने लगे तो उनको चिन्ता होने लगी लेकिन उन्हें विश्वास था कि उनके पाहू (उनकी जमीन पर बसने वाले) और साझी (काश्तकार) सिर उठाने की हिम्मत नहीं करेंगे।

जब भूमि सुधारों के आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा और अखबारों में ऐसी खबरें छपने लगीं कि सरकार काश्तकारों को ही जमीन का मालिक बना देगी, तो उन्हें घबराहट हुई और उन्होंने अपनी जमीनें बेचनी शुरू कीं। इस तरह उनकी जागीर आधी रह गई फिर भी गाँव में उनकी हैसियत सब से ऊँची थी।

मियाँ यशवंतचंद के खानदान या रिश्ते के और लोगों के पास अब इतनी जमीन बची थी कि एक या दो काश्तकार ही उसके लिए काफी होते थे। काश्तकारों की ओर से तीन चौथाई अनाज की माँग से उनका चिंतित होना स्वाभाविक था। क्योंकि अधिकांश की आमदनी का जरिया यही जमीनें थीं। वे सब अब इस कोशिश में थे कि किसी तरह काश्तकारों से जमीन छुड़ाकर खुद खेती का काम करें। इस विषय में निक्कू मियाँ अब उनका आदर्श बना हुआ था जिसने आजादी से पहले ही अपनी छोटी जमीन को खुद काश्त करना शुरू कर दिया था। राजाओं के खानदान का होकर अपने हाथ से खेती करने के सामाजिक अपराध के कारण निक्कू मियाँ को रिश्तेदारों की उपेक्षा सहनी पड़ी। सभी रिश्तेदार और गाँव के कई दूसरे लोग भी उन्हें हेठी नजर से देखने लगे लेकिन निक्कू मियाँ ने किसी की परवाह नहीं की। अब उसके सभी रिश्तेदार उसके पदचिह्नों पर चलकर अपनी जमीन अपने हाथों से जोतने-बोने के लिए तैयार बैठे थे।

गाँव के दूसरे बड़े आदमी थे पंडित दयाराम। उनकी जागीर, हो सकता है, मियाँ यशवंतचंद की जागीर से कुछ कम रही हो लेकिन जहाँ तक नकद पैसे का सवाल है, उनकी धाक चारों ओर फैली थी। दयाराम के पिता विद्यासागर वैसे पुरोहित थे लेकिन शादी-ब्याह पढ़ने या यजमानी का काम उनके खानदान में किसी ने नहीं किया। उनका धंधा था साहूकारी। उनके बारे में अनेक किस्से गाँव वालों में प्रचलित हैं। कहते हैं उन्होंने चार पथ[1] धान के बदले आठ करनाल जमीन कुर्क कर ली थी। पाँच रुपये का कर्जा चुकाने के लिए एक परिवार तीन पीढ़ियों से उनकी मुफ्त नौकरी करता रहा तो भी कर्ज अदा नहीं हुआ। पं० विद्यासागर का कारोबार इतना फैला था कि इनके ठाट-बाट किसी राजा से कम नहीं थे। पं० दयाराम को पिता से बहुत बड़ी जागीर और धन-सम्पत्ति मिली थी। लेकिन पं० दयाराम कुछ धार्मिक प्रवृत्ति के थे। थोड़ी सी अंग्रेजी पढ़ने और अंग्रेज अफसरों के साथ उठने-बैठने के कारण खून-चूस साहूकारी से उन्हें नफरत होने लगी थी। अपने धंधे को उन्होंने काफी सिकोड़ लिया था। लेकिन जमीनों के हाथ से निकल जाने का डर उन्हें भी सताने लगा था और वे उसे धीरे-धीरे बेच डालने की बात सोचने लगे थे। वैसे नकद पैसे और जर-जेवर की दृष्टि से भी स्थिति अब वैसी नहीं रही थी। कारण यह था कि नई पीढ़ी में सूदखोरी के धंधे में कतई रुचि नहीं थी और लड़कों ने या तो छोटी-मोटी नौकरियाँ करने या निठल्ला जीवन बिताने का निश्चय कर रखा था। पं० दयाराम के चार भाइयों के संयुक्त परिवार में कुल मिलाकर पैंतीस सदस्य हो गए थे जिनके ठाट-बाट में

१. लकड़ी या लोहे का एक माप जिसमें लगभग डेढ़ किलो धान आता है।

धन-निकास बड़ी तेजी से हो रहा था। परिवार के दो लड़के सेना में भरती हो गए थे और दो ने स्कूल अध्यापक की नौकरी कर ली थी। शेष लड़के या तो पढ़ रहे थे या निठल्ले बैठे थे। लड़कियों की तादाद काफी ज्यादा थी और हर साल एक लड़की की शादी में काफी बड़ी रकम उठ जाती थी। पं० दयाराम पुराने तौर-तरीकों को बनाए रखने की भरपूर कोशिश कर रहे थे लेकिन पुश्तैनी घर की दीवारों के दिन-प्रतिदिन खोखला होते जाने का उन्हें एहसास था।

मियाँ यशवंतचन्द और पं० दयाराम में पुश्तों से प्रतिस्पर्धा चली आ रही थी। जब यशवंतचन्द के पिता घुमनचन्द बढ़िया पालकी पर बैठकर जाने लगे तो पं० दयाराम के पिता पं० विद्यासागर ने अपने लिए चाँदी से मढ़ी पालकी बनवाई थी। लम्बरदार ने बाबा धोटसिद्ध के थान पर जातरुओं के ठहरने के लिए एक धर्मशाला बनवाकर थान का संरक्षण अपने हाथ में ले लिया था। इसके जवाब में पं० विद्यासागर ने गाँव के बीचोंबीच पत्थर-सीमेंट का एक मन्दिर बना दिया था। घुमनचन्द को मात देने के लिए उन्होंने गाँव के बीचोंबीच एक आलीशान कोठी बनवाई जो अंग्रेज अफसरों और जिले के दूसरे बड़े अफसरों की खातिरदारी के काम में लाई जाती थी। इस कोठी की वजह से और खुले दिल से अफसरों की खातिर करने के कारण पं० दयाराम के भी आला अफसरों के साथ ताल्लुकात हो गए। अगर गाँव की लम्बरदारी मियाँ यशवन्तचन्द के खानदान में रही तो ग्राम पंचायत की सरपंची पंडित दयाराम के खानदान के पास रही। विकास खंडों के बन जाने के बाद बी०डी०ओ० साहब का गाँव के मामलो में हस्तक्षेप होने लगा था। इससे वे कुछ दुखी भी थे लेकिन जिस तरह मियाँ यशवन्तचन्द की लम्बरदारी का दबदबा धीरे-धीरे घटता-घटता अब जमीन का ठेका वसूल करने तक रह गया था, उस तरह सरपंची का रौब नहीं घटा था, बल्कि बढ़ा ही था। पंचायत के हाथ में गाँव की सारी शामलात जमीन, जंगल और दूसरी जायदाद थी और पंचायत के फैसले की ऊपर तक कद्र की जाती थी। हदबन्दी के झगड़ों में मियाँ यशवन्तचन्द को एक-दो बार पंचायत के आगे हाजिर होना पड़ा था, इससे पं० दयाराम की स्थिति गाँव वालों की नजर में यशवन्त से ऊपर हो गई थी। सरपंची को पं० दयाराम अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे। आजादी के बाद जब नई पीढ़ी के कुछ युवकों ने गाँव में पानी के नल, बिजली, डिस्पेंसरी, हाईस्कूल जैसी सुविधाओं की माँग पर जोर डालना शुरू किया और काम में ढिलाई के लिए पंचायत की आलोचना करने लगे तो पं० दयाराम ने अनेक बार सरपंची से बरतरफ होने की अपनी इच्छा का इजहार किया। लेकिन वे न तो कभी बरतरफ हुए और न पंचायत के किसी नये चुनाव से दूर रहने का साहस कर सके। सरपंच बन जाने के बाद वे हमेशा यही कहा करते थे कि गाँव के लोगों ने जबरदस्ती उनके गले में यह जुआ डाल दिया है। और वे उसे छोड़ने के लिए हर वक्त तैयार हैं।

पं० दयाराम और मियाँ यशवन्तचन्द इन दो विभूतियों की वजह से गदियारी गाँव को बड़ा गौरव मिला हुआ था। आसपास के बीसियों छोटे-छोटे गाँवों के लोग या तो उनके पाहू-साझी थे या कर्जदार। पुराने रजवाड़े की राजधानी होने के कारण गाँव की बनावट भी ऐसी थी जो आम गाँवों की नहीं होती। किले की तरह एक ऊँचे टीले पर गाँव बसा हुआ था जो दो तरफ से सीधी पथरीली चट्टानों से सुरक्षित था। एक तरफ घना जंगल था और एक तरफ आने-जाने का रास्ता खड़ी चढ़ाई की शक्ल में था। गाँव के रास्ते अनगढ़ पत्थरों की चिनाई करके बड़ी सफाई

से बने थे। बीचों-बीच गाँव का चौक था जहाँ चारों तरफ से रास्ते आकर मिलते थे। यहाँ पर हर शाम को बच्चे इकट्ठे होते थे और बड़ी रात तक खेलते थे। कोई वक्त था जब इस चौक में शाम के समय सौ-डेढ़ सौ लड़कों का झुण्ड इकट्ठा होता था और उनके शोर से सारा गाँव गूँजता था। लेकिन अब मुश्किल से पन्द्रह-बीस लड़के इकट्ठे होते हैं। अधिकांश घरों के नौजवान अब शहरों में नौकरियाँ करके वहीं रहने लगे हैं। गाँव में सिर्फ वही रहते हैं जिनकी कहीं नौकरी नहीं लगी है या जो खेती-बाड़ी या घर की दूसरी मजबूरियों के कारण गाँव से बँधे हुए हैं। शहरों में नौकरियाँ करने वाले जब छुट्टी काटने के लिए आते हैं तो उन्हें गाँव सूना-सूना लगता है और वे सात-आठ दिन में बोरियत महसूस करने लगते हैं। ऐसे समय में वे गाँव में नई चेतना, नई जागृति लाने के लिए चौक में सभाएँ करते हैं, भाषण देते हैं, योजनाएं बनाते हैं। गाँव के बूढ़े-सयाने लोगों को कोसते भी हैं कि वे गाँव की उन्नति के लिए कुछ नहीं करते। बड़े जोश के साथ वे स्कूल, अस्पताल, पक्की सड़क और पानी की नाली के लिए चन्दा जमा करने की स्कीम बनाते हैं। शहरों में नौकरियाँ करने वालों को चिट्ठियाँ डाली जाती हैं और सब के लिए वेतन के अनुसार चन्दा निश्चित किया जाता है। कई बार वे जिले के अफसरों व विकासखंड अधिकारियों से बातचीत करने के लिए भी दल बाँधकर जाते हैं। लेकिन यह सारा जोश शहर पहुँचते ही ठंडा हो जाता है।

गदियारी गाँव के भग्नावशेष बताते हैं कि किसी समय वह छोटा-सा शहर रहा होगा। आसपास के गाँवों वाले अब भी उसे शहर ही कहते हैं। गाँव के बीचों-बीच रास्ते के दोनों तरफ बाहर दुकानों के खँडहर अब भी मौजूद हैं लेकिन अब सिर्फ दो दुकानें बची हैं जिनमें लूण-तम्बाकू और किरयाना मिल जाता है। गाँव के बीच तीन पुराने कुएँ हैं जिनमें से एक तो बिल्कुल सूख गया है और दो गरमियों में सूख जाते हैं। गाँव के बाहर दो बावलियाँ हैं जो 'बाहरकी' जातों के लिए हैं। गर्मियों में कुएं सूख जाते हैं तो सवर्ण भी इन बावलियों से पानी भरने लगते हैं। इस तरह गाँव को पीने के पानी का काफी कष्ट था और इसके लिए वे कई सालों से कोशिश भी कर रहे हैं लेकिन अभी तक उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। कई बार जिला अधिकारियों और बी०डी०ओ० साहबों को गाँव वालों ने मौके पर मुआइना करने के लिए बुलाया और उनका ढोल-बाजों से स्वागत किया लेकिन पानी की नाली की स्कीम सरकारी फाइलों तक ही सीमित रही। चुनाव के दिनों में नेताओं की चुनाव-सभाओं में बड़ी जोश-गरमी से भाषण दिए गए, नेताओं की ओर से वायदे भी किए गए लेकिन स्थिति अभी ज्यों की त्यों है।

गाँव में कुल मिलाकर अस्सी के करीब घर हैं जिनमें से पचास के लगभग सवर्ण जातियों के और बाकी बाहरकी जातों के हैं। बाहरकी जातों के मकान गाँव की बाहरी सीमा पर बने हुए हैं। बाहरकी जातों के लोग सवर्ण लोगों की जमीनों के काश्तकार हैं। अधिकतर लोग मियाँ यशवन्तचन्द और पं० दयाराम के साझी-पाहू हैं। इन दो के अलावा गाँव में आठ-दस घर ही ऐसे हैं जिनके पास धानी जमीनें हैं और जिन्हें बुवाई के लिए काश्तकारों या मजदूरों की जरूरत पड़ती है। कुछ घर ब्राह्मणों के हैं जिनके बीच मंदिर की जमीन बँटी हुई है। चूँकि ब्राह्मण जाति के लिए हल की मूठ पकड़ना शास्त्रों में वर्जित बताया जाता है इसलिए इनकी जमीनें बाहरकी जातों द्वारा ही जोती-बोई जाती रही हैं यद्यपि अब भूमि सम्बन्धी नये कानूनों की

अफवाहें सुन-सुनकर वे जमीनें काश्तकारों से छुड़ाने या उन्हें बेच डालने के लिए उत्सुक हैं। अब तक तो खेत का आधा अनाज उन्हें मिलता रहा जिसमें उनका गुजारा आसानी से हो जाता था लेकिन अब एक चौथाई की बात सुनी जा रही है और इससे सभी की चिन्ता बढ़ गई है। ब्राह्मणों में सिर्फ वैद्य जी का घर ही है जिसकी जमीन को वैद्य जी का बी०ए० पास लड़का अमर अपने हाथ से जोतता-बोता है।

गदियारी गाँव के वर्तमान ढाँचे में अमर कहीं फिट नहीं बैठता था फिर भी उसे नौकरी की तलाश में किसी बड़े शहर में न जाकर गाँव में ही बसने का निश्चय करना पड़ा। इसके कई कारण थे। एक तो था गाँव के प्रति ममत्व जो उसे स्वर्गीय पिता वैद्य जी से विरासत में मिला था। वैद्य जी जब तक जीवित रहे गाँव के गरीब-गुरबों की सेवा करते रहे। घर पर ही दवाइयाँ बनाते थे और जरूरतमंदों को बिना फीस बिना कीमत के बाँटते थे। उनकी नज़रों में धनी-निर्धन, बड़े-छोटे सब बराबर थे। गाँव भर में जहाँ कोई बीमार पड़ता वे देखने जाते और दवा-दारू करते। बदले में किसी से कुछ माँगते नहीं। फसल के वक्त जितनी जिसकी श्रद्धा-सामर्थ्य होती उतना अनाज, दालें वगैरह उनके घर पहुँच जातीं। उनकी सात-आठ बीघे जमीन को गाँव के लोग मिलकर जोत-बो देते। पेड़-पौधों का उन्हें बहुत शौक था। अपने घर के आसपास की जमीन पर उन्होंने तरह-तरह के फलों-फूलों के पेड़ उगा रखे थे। फलों के मौसम में गाँव भर के लोगों को फल बाँट दिये जाते थे। परिवार छोटा-सा था। लड़की विद्या की शादी हो चुकी थी और वह अपने पति के साथ कलकत्ता रहने लगी थी। अमर स्कूल में पढ़ता था। पढ़ाई में काफी तेज होने से उसे छात्रवृत्ति भी मिलती थी। जब तक वैद्य जी जीवित रहे उन्होंने गाँव छोड़ कर कहीं और जाने की बात भी नहीं सोची और गाँव वालों ने उन्हें भरपूर स्नेह दिया।

लेकिन एक दिन वे संक्षिप्त सी बीमारी के बाद परलोक सिधार गए। उनके जाने से गाँव जैसे अनाथ हो गया। अमर उन दिनों मैट्रिक में पढ़ता था। अमर की माँ लक्ष्मी ने उस सदमे को बड़े धैर्य से सहा। दो-तीन साल तक गाँव वालों की मदद से जमीन का काम भी होता रहा और घर का खर्च भी किसी तरह चलता रहा। अमर ने मैट्रिक पास करने के बाद पढ़ाई छोड़ने का निश्चय किया लेकिन माँ के जिद करने पर उसे धर्मशाला कालेज में भर्ती होना पड़ा। माँ अकेले ही घर को चलाती रही। छोटी-मोटी बीमारियों में दवा-दारू वह भी कर लेती थी और इस तरह वैद्य जी के स्वर्गवास से गाँव में जो एक खाली जगह बन गई थी उसे कुछ हद तक भरने में वह लगी रही।

बी०ए० पास करने के बाद अमर घर पर ही रहने लगा। दूसरे पढ़े-लिखे नौजवानों की तरह वह नौकरी की तलाश में गाँव छोड़कर किसी बड़े शहर में नहीं जा सकता था क्योंकि माँ को अब अकेले घर पर छोड़ना उसे अच्छा नहीं लगता था। पिछले तीन-चार सालों में माँ को काफी कष्ट सहने पड़े थे। वह काफी कमजोर लगने लगी थी। कुछ बीमार भी रहने लगी थी। इन सब बातों पर खूब सोच-विचार करने के बाद अमर ने निश्चय किया कि घर के आसपास कहीं कोई नौकरी मिल जाए तो कर लेगा नहीं तो अपनी जमीन काश्त करके घर का गुजारा चलाएगा।

अपनी जमीन को खुद जोतने के उसके फैसले की गाँव में कुछ दिन बड़ी चर्चा हुई। उसके रिश्तेदारों ने उसे समझाया कि यह रीति के खिलाफ है लेकिन अमर अड़ा रहा। उसके कई रिश्तेदार नाराज भी हो गए। कुछ ने तो यह फतवा भी दे दिया कि अब ब्राह्मण कुल में उसकी शादी नहीं होगी।

लेकिन गाँव की नई पीढ़ी के कुछ युवकों ने अमर के इस फैसले का स्वागत किया। ये ऐसे नवयुवक थे जिनकी या तो अभी पढ़ाई चल रही थी या जो पढ़ाई समाप्त करने के बाद नौकरी की इन्तजार में बैठे थे। स्कूलों, कालेजों से इन नवयुवकों को नया प्रकाश और नया उत्साह मिला था। देश की आजादी के वातावरण में पले इन युवकों के मन में देश के लिए, गाँवों के लिए कुछ करने का उत्साह था। गाँव की गिरती हुई आर्थिक स्थिति से परिचित हो चुके थे और उसकी उन्नति के लिए किसी भी तरह का काम करने को वे तैयार थे। वे गाँव में समाज-सुधार के काम भी करना चाहते थे और उसकी खुशहाली के लिए नई-नई योजनाएँ भी चलाना चाहते थे। गाँव में पानी की कमी, अस्पताल-डिस्पेंसरी की कमी, बिजली की कमी, सड़क की कमी उन्हें अखरती थी और वे अपनी मीटिंगों में पुरानी पीढ़ी के लोगों को इन सब के लिए कोसते थे। ग्राम-सुधार का कोई भी आन्दोलन शुरू करने के लिए वे तैयार थे। उन्हें एक ऐसे आदमी की जरूरत थी जो उन्हें रस्ता दिखाए। अमर के रूप में उन्हें नेता मिल गया और इसलिए वे अमर के निश्चय से खुश थे।

गाँव के इन नवयुवकों में सब से उत्साही था कृष्ण जो अमर से दो साल छोटा था। मैट्रिक पास करने के बाद उसे भी अकेली बूढ़ी माँ की देखभाल के लिए घर पर ही रहना पड़ा था। जूनियर अध्यापक का एकसाला कोर्स करने के बाद वह नौकरी की प्रतीक्षा में बैठा था। अमर का वह सब से घनिष्ठ मित्र था। कृष्ण का चचेरा भाई देव भी मैट्रिक कर चुका था। नौकरी के लिए काफी दौड़-धूप करने के बाद अब वह कुछ निराश होकर घर बैठा था। परमानन्द ने आठवीं से स्कूल छोड़ दिया था और उसने गाँव में लूण-तम्बाकू और किरयाने की दुकान खोल ली थी जो काफी अच्छी चलने लगी थी। ज्ञानचन्द, महेश और प्रीतम सेना में भर्ती होने के लिए उतावले थे लेकिन कई बार भर्ती के दफ्तर के चक्कर लगाने पर भी उन्हें कामयाबी नहीं मिली थी। दीनानाथ, दुर्गादास और परसराम अभी कुछ निश्चय नहीं कर पाये थे कि उन्हें क्या करना है लेकिन गाँव की उन्नति के किसी काम में सहयोग देने के लिए वे तैयार थे।

पीढ़ियों के अन्तर ने इन नवयुवकों को अमर के आसपास इकट्ठा होने के लिए प्रेरित किया। हर शाम को गाँव के बाहर मैदान में इनकी बैठकें होतीं। बड़ी रात तक बहस चलती, स्कीमें बनतीं, सपनों के महल बनाए जाते और फिर जड़ता को तोड़ने के इरादे को लेकर सब अपने-अपने घरों को चल देते।

खैरा के पंडित नित्यानन्द की लड़की रमा के साथ अमर के रिश्ते की बातचीत कई सालों से चल रही थी। उन दिनों अमर के पिता वैद्य जी जीवित थे। पंडित नित्यानन्द के साथ उनकी घनिष्ठता थी। दो परिवारों के मित्रता-सम्बन्ध को मजबूत करने के लिए पं० नित्यानन्द ने ही वैद्य जी के आगे प्रस्ताव रखा था। वैद्य जी को उनका प्रस्ताव सुनकर खुशी हुई थी लेकिन लड़के-लड़की की अवस्था अभी छोटी थी इसलिए सगाई की रस्म अदा करने की जरूरत नहीं

समझी गई। अमर कई बार पं० नित्यानन्द के घर गया था। दिवाकर का सहपाठी होने के कारण वह उस घर से अपरिचित नहीं था। रमा से भी वह कई बार बात कर चुका था। रिश्ते की बात पक्की नहीं हुई थी लेकिन दोनों एक-दूसरे को अभिन्न मानने लगे थे। रमा की सहेलियाँ अमर का नाम लेकर उसे चिढ़ाने लगी थीं और अमर की कनपटियाँ भी रमा का नाम सुनकर लाल हो जाती थीं।

वैद्य जी के स्वर्गवास के बाद भी सब कुछ ठीक चलता रहा। पंडित नित्यानन्द महीने में दो-तीन बार अमर के घर जाते और उनकी कुशल-मंगल की पूछताछ करते रहते। अमर और दिवाकर धर्मशाला कालेज के होस्टल में एक ही कमरे में रहते थे। अमर को खर्चे-बर्चे की कोई दिक्कत न हो इसके लिए वे दिवाकर के पास कुछ अतिरिक्त रुपये भी दे देते थे। अमर इन सब बातों को जानता था और पंडित नित्यानन्द के प्रति उसकी बड़ी श्रद्धा थी।

लेकिन पढ़ाई पूरी करने के बाद जब अमर ने अपनी जमीन को खुद बोने का फैसला किया तो ऊंचे ब्राह्मण परिवारों ने इसे पसन्द नहीं किया। पं० नित्यानन्द की पत्नी पार्वती देवी को भी अमर का गाँव में रहकर खेती करना अच्छा नहीं लगा। आठवीं पास बेटी रमा गाय-बैलों का गोबर उठाएगी या खेतों में काम करेगी, यह बात उसे मन ही मन साले जा रही थी। यद्यपि उसने अपने पति से कभी रिश्ते के विरुद्ध खुलकर बात नहीं की लेकिन मन ही मन वह उम्मीद लगाए बैठी थी कि अमर को शहर में कोई अच्छी नौकरी मिल जाएगी, तब रमा की शादी वहां करने में कोई हर्ज नहीं होग.। पंडित नित्यानन्द सगाई की रस्म पूरी करने के लिए जोर डाल रहे थे। अमर की माँ लक्ष्मी भी चाहती थी कि सगाई हो जाए तो वह उस तरफ से निश्चित हो जाए। किन्तु पार्वती देवी सगाई को फिलहाल टालना ही चाहती थी।

ततवानी की यात्रा के बहाने अमर को अपने घर बुलाकर पार्वती अमर को समझाना चाहती थी कि वह किसी शहर में जाकर नौकरी की तलाश करे लेकिन ततवानी की यात्रा के दौरान रूपा को लेकर उसके मन में जो संदेह पैदा हुआ उसने पार्वती का विचार ही बदल दिया। अमर को इसका आभास यात्रा के दौरान ही हो गया था और उसने अपनी माँ को बता दिया था। अमर की माँ लक्ष्मी को इस बात पर अब भी विश्वास नहीं हो रहा था। क्योंकि वह जानती थी कि पंडित नित्यानन्द अपने मित्र से विश्वासघात नहीं करेंगे।

लेकिन एक दिन बड़ी रात तक दोस्तों में गप-शप करने के बाद जब अमर अपने आँगन में पहुँचा तो देहरी के भीतर पाँव रखते ही वह ठिठक कर खड़ा हो गया।

कमरे में दीवार से पीठ लगाये पंडित नित्यानन्द बैठे हुए थे, उनकी आँखें सामने की दीवार पर गड़ी हुई थीं। अमर के आने से उनका ध्यान नहीं टूटा। किसी शंका से अमर ने भी पंडित जी की तन्द्रा भंग नहीं की। वह उसी तरह दबे पाँव दूसरे कमरे में गया। सोचा था माँ सो गई होगी लेकिन वह कमरा भी खाली था। वह रसोईघर में पहुँचा। एक निश्चेष्ट प्रतिमा चूल्हे की ओर मुँह किए हुए बैठी थी। चूल्हे में दस-पाँच अंगार थे, उन पर भी राख पपड़ी बैठ गई थी। अमर चुपके से माँ के पास बैठ गया और लकड़ी से हिला कर अंगारों की राख झाड़ दी। अंगारों के चमकने से माँ को किसी की उपस्थिति का ज्ञान हुआ। अमर को सामने देखकर वह कुछ गुस्से से बोली, "आधी-आधी रात तक घर से बाहर रहते हो। इतना भी नहीं सोचते कि घर कोई

मेहमान आए तो वह किससे बात करेगा?" अमर ने माँ से क्षमा माँगी और फिर बाहर आ गया।

पंडित जी वैसे ही बैठे हुए थे। अमर ने जब पास आकर उनके पाँव छू लिये तो उनकी तन्द्रा टूटी—"अरे अमर, कब आए?"

"यह सवाल तो मुझे आप से पूछना चाहिए था।"

"पंडित जी हँस पड़े, "ओह!" पंडित जी को अब पता लगा कि अमर उनके घर नहीं आया है, वही अमर के घर मेहमान हैं। उन्होंने कहा— "मुझे आए हुए तो यही आधा घंटा मुश्किल से हुआ होगा।"

अमर हँस पड़ा, "जान पड़ता है आप कोई शुभ समाचार देने आए हैं; प्रसन्नता में समय का पता ही नहीं चलता।"

इस बात ने पंडित जी के चेहरे पर जो परिवर्तन किया वह अमर से छिपा नहीं रहा। उनका चेहरा स्याह पड़ने लगा था। अमर ने बात बदलकर कहा, "अच्छा, चलिए भोजन कर लीजिए। आप भी कमाल के आदमी हैं। बारह बजे तक भोजन ही नहीं किया।"

पंडित जी बोले, "अच्छा भाई, गलती हो गई तो दण्ड दे देना, क्षमा माँगना तो बेकार है।" कहकर उन्होंने ठहाका मारने की कोशिश की। दोनों रसोईघर की ओर चल पड़े थे। अमर ने पूछा, "बेकार क्यों?"

पंडित जी बोले, "मैं बताता हूँ, बताता हूँ इतनी जल्दी क्या है पहले प्रणाम तो कर लूँ।" कहकर वे रसोईघर में पहुँचकर लक्ष्मी के चरणों की ओर लपके। लक्ष्मी को उनके इरादे का पता लगा तो वह लज्जा से गड़ गई। सिर का पल्ला नीचे खिसकाकर वह अपने में ही सिकुड़ गई। फिर रुकती हुई आवाज में बोली, "यह आप आज क्या तमाशा कर रहे हैं?" पंडित जी का हाथ लक्ष्मी ने रोक दिया था। वे बोले, "तमाशा तो नहीं पुण्य लाभ कर रहा हूँ।" लक्ष्मी ने घूँघट के भीतर से ही कहा, "आप मुझे शर्मिन्दा क्यों कर रहे हैं! आप बड़े हैं फिर"

पंडित जी पीछे हट गए, "बड़ा किस अर्थ में? उमर में तो मैं छोटा ही हूँ।"

लक्ष्मी ने याद दिलाई, "आपने पहले तो ऐसा कभी नहीं किया। आज यह नई बात किसलिए?"

पंडित जी को अपनी गल्ती का अहसास हुआ तो चुप रह कर भोजन के लिए बैठ गए।

भोजन करते समय पंडित जी ने ही पहले बात की, "अच्छा तुम इतनी देर तक खेत में काम करते हो?"

"नहीं," अमर ने कहा, "मैं तो दोस्तों के साथ गप-शप कर रहा था।"

कुछ देर तक तीनों चुप रहे। फिर अमर बोला—

"आपने यह तो बताया ही नहीं कि क्षमा माँगना क्यों बेकार है?"

इस प्रश्न से पंडित जी की मुखमुद्रा फिर बदल गई। वास्तव में वे इधर-उधर की बातों में असली प्रसंग को भुला देने का प्रयत्न कर रहे थे। एकान्त में मौन साध कर भी जिस गुत्थी को वे सुलझा नहीं सके थे, उसी को प्रकट करने में उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। वे घर से यह फैसला करके निकले थे कि पंडिताइन की इच्छा को बिना हिचकिचाहट अमर के आगे रख देंगे और उसे केवल पंडिताइन की इच्छा कह कर स्वयं बरी हो जाएंगे। लेकिन उन्होंने इस काम को जितना

आसान समझा था, उतना ही यह कठिन निकला। रास्ते में वे यही प्रश्नोत्तर करते रहे कि अमर के साथ क्या कहना चाहिए? यह ठीक है कि पंडिताइन रमा की शादी अमर से नहीं करना चाहती। देवला की रात की घटना का उसके दिल पर इतना असर पड़ा था कि वह किसी की बात सुनने के लिए तैयार नहीं थी। वे स्वयं उसे समझाकर हार चुके थे। लेकिन अब उनके सामने विकट समस्या यह थी कि अमर की माँ से यह बात कही कैसे जाए?

लेकिन उन्होंने एकान्त मौन-साधना में काफी तर्क-वितर्क के बाद यह निर्णय कर लिया था कि मैं ऐसा नहीं करूँगा। पंडिताइन की इच्छा पर ही दो हृदयों की बलि नहीं चढ़ाऊँगा। वे जानते थे कि पंडिताइन की इच्छा कितनी ही उग्र क्यों न हो उनके सामने उसे झुकना ही पड़ेगा। यही सोचकर वे अमर के साथ रिश्ता पक्का करने के लिए उतावले हो उठे थे और उन्होंने लक्ष्मी से पूछ लिया था, "अमर कहाँ गया है?"

यदि उस समय अमर घर पर होता तो बात पक्की हो जाती। लेकिन एकान्त चिन्तन को भूखी आग की तरह कुछ न कुछ ईंधन चाहिए ही। सोचने का सिलसिला जारी रहा तो कुछ तर्क सामने आए और हावी हो गए। मन की उलझन सुलझने के बजाय और उलझ गई।

अमर के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा, "मैंने यह बात इसलिए कही कि क्षमा माँगनी है तो मामूली बात के लिए क्यों माँगी जाए। उस अधिकार को बड़े कसूर के लिए बचाकर रखना चाहता हूँ।"

लक्ष्मी बोली, "आप ये क्या बातें कर रहे हैं? कैसा कसूर?"

लक्ष्मी के पूछने के लहजे में तो कोई विशेष कम्पन नहीं था लेकिन उसकी छाती धक्धक् कर रही थी। पंडित जी ने कहा, "पंडिताइन को यह रिश्ता मंजूर नहीं है।"

इस स्पष्ट बात से लक्ष्मी की आँखों के आगे अंधेरा छा गया। अमर की हालत अन्दर ही अन्दर दयनीय हो रही थी। यद्यपि बाहर से उसमें कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ा। पंडित जी का सिर थाली पर झुक गया तो फिर उठ नहीं सका। रसोईघर की खिड़की से हवा का एक झोंका आया और उसका थपेड़ा न सह सकने के कारण टिमटिमाता हुआ दीपक बुझने ही वाला था कि लक्ष्मी ने तुरन्त हाथ की ओट में लेकर उसे बचा लिया। अमर ने पूछा—

"उनकी इच्छा तो जान ली, आपकी भी यही इच्छा है?"

इस प्रश्न का उत्तर पंडित जी नहीं दे सके। उन्हें लगा कि अमर उनके हृदय के कोने की छान-बीन कर रहा है। लेकिन चुप्पी का अर्थ अमर के आगे अस्पष्ट नहीं रहा। उसने मुस्कराते हुए कहा, "क्या देवला वाली घटना?"

पंडित जी ने 'नहीं, नहीं' कहकर बीच में ही बात काट दी और ख्याल से कि कहीं लक्ष्मी के आगे उस प्रसंग को न दुहराना पड़े, उन्होंने बात ही बदल दी।

"आपने क्या हमेशा गाँव में रहने का ही इरादा किया है?"

"अमर 'आप' सम्बोधन से समझ गया कि पंडित जी की निकटता में काफी अन्तर आ गया है।

वह बोला, "हाँ।"

"लेकिन क्यों? पढ़-लिखकर क्या इस नरक में रहेंगे?"

"मैं तो इसको नरक नहीं समझता हूँ।"

"मेरी उमर गाँव में बीती है। मैं अपने अनुभव से जानता हूँ कि गाँव नरक है, यहाँ के अपढ़ और मूर्ख लोग कीड़ों की तरह जिन्दगी बिताते हैं, तुम भी वैसा ही मत करो अमर! मेरा तुम से अनुरोध है। अपनी माताजी को साथ लेकर किसी शहर में चले जाओ।" वे आवेश में आ गये थे। उनके मुँह से फिर तुम सुनकर अमर ने यह अनुमान भी लगा लिया कि अब की बार वे दिल की बात कह रहे हैं। लेकिन वह अपनी बात कहने में हिचकिचाया नहीं—

"आप शहरों को नहीं जानते हैं। गाँव से भी बुरी हालत शहरों में है। एक छोटे से कमरे में दिन-रात बंद रहकर वहाँ कोई भी ऊब सकता है। माता जी तो वहाँ दो-तीन दिन नहीं टिक सकेंगी।"

रात बहुत बीच चुकी थी। अमर पंडित जी के सोने का प्रबंध कर स्वयं भी जाने लगा। पंडित जी ने उसे रोकते हुए कहा, "हुक्का तो भर दो अमर!"

अमर मुड़ा, अपनी भूल पर उसे खेद हुआ। जब उसने चिलम भर कर हुक्के पर रख दी तो पंडित जी ने प्रश्न किया, "यह तुम्हारा आखिरी फैसला है?"

"क्या?" अमर ने पूछा।

"गाँव में रहने का?"

"हाँ।"

"किसी भी सूरत में अपना इरादा नहीं बदल सकते।"

"अभी तो नहीं और यदि बदलना पड़ा तो तब की बात तब देखी जाएगी। लेकिन आप मेरे लिए इतने परेशान क्यों हो रहे हैं? घबराइए नहीं, यदि देवला वाली बात फैली तो आपको साथ नहीं लपेटूँगा।"

पंडित जी को उस पर बड़ा क्रोध आ रहा था। अगर उनका वश चलता तो अधिक कुछ न बोल कर उसे वहाँ से विदा कर देते। लेकिन उनके हृदय में अभी तक एक और बात छटपटा रही थी। उसे कहे बिना शायद उन्हें नींद भी नहीं आती। इसीलिए उन्होंने सारा गुस्सा पीकर पूछा, "अगर रमा की शादी तुम्हारे साथ हो जाए तब भी नहीं।"

अमर ने व्यंग्य से मुस्करा कर कहा, "तो आप निंदा से बचने के लिए लड़की को देश निकाला देना चाहते हैं। किन्तु पंडित जी मैं तो उससे इतना बड़ा अन्याय नहीं कर सकूंगा।"

"तुम मुझे गलत समझ रहे हो। आज तुम्हें क्या हो गया है?"

पंडित जी के स्वर में व्यथा थी। अमर समझ गया कि उसने कुछ बातें तो अनावश्यक ही कह दी हैं। न जाने कैसे उसका ध्यान अब रमा की उस सकुचाहट की ओर गया जो उस दिन साक्षात्कार के समय उसने देखी थी। यह जानने की प्रबल इच्छा उसके हृदय में जागी कि रमा का इस बारे में किस ओर झुकाव है। उसने पूछ ही लिया—

"रमा की इच्छा क्या है?"

पंडित जी ने चौंककर उसको देखा फिर बोले—"यह शहर नहीं है, लड़की से पूछने का यहाँ प्रचलन नहीं है।"

अमर ने मुस्करा कर कहा, "आप तो बहुत बड़े रूढ़िवादी हैं...... । जिस चीज का प्रचलन न हो, क्या वह बात हमेशा बुरी ही होती है?"

पंडित जी चुप रहे। अमर बोला, "लेकिन मैंने रमा से पूछने के लिए तो नहीं कहा। बिन पूछे भी तो किसी की इच्छा जानी जा सकती है। मैं यह कैसे मान लूँ कि शादी के मामले में आप अपनी लड़की की इच्छा-अनिच्छा को नहीं जानते हैं या नहीं जानना चाहते हैं।"

पंडित जी इसका भी कोई उत्तर नहीं दे सके। उन्होंने सोने के लिए बिस्तर पर पाँव फैला दिए और आँखें मूँद लीं। अमर कुछ देर तक प्रतीक्षा करके दूसरे कमरे में चला गया। चलती बार उसने दिये को फूँक मारकर बुझा दिया। पंडित जी ने आँखें खोलीं तो कमरे में अन्धकार ही अन्धकार था।

अमर अपने कमरे में आया। एक घोर निराशा के कारण उसका हृदय घुटा था। माँ अन्दर आई और बोली, "मान जाओ, शहर में कहीं नौकरी मिल ही जाएगी। इसमें हर्ज क्या है?"

अमर ने कहा, "माँ, शहरों की चकाचौंध दूर से ही अच्छी लगती है। वहाँ जाकर हम दोनों सुखी नहीं रह सकते।"

माँ ने आगे कुछ नहीं कहा। वह वापस अपने कमरे में चली आई। अमर भी टूटी माला के मनके चुनते-चुनते सो गया।

दूसरे दिन बड़े तड़के बिना किसी से मिले, पंडित जी चले गए। रास्ते भर उनके दिमाग में एक ही बात चक्कर काट रही थी, 'रमा की इच्छा... उसका झुकाव किस ओर है? अमर का नाम लेते ही उसका मुँह लज्जा से लाल हो उठता था, क्या इसे उसकी इच्छा समझ लूँ? गाँव की लड़कियाँ तो शादी की चर्चा से या अपने भावी साथी के नाम से ऐसा ही करती हैं चाहे उनका उस ओर झुकाव हो या नहीं। यह तो एक रीति है, रूढ़ि है, जिसका पालन हर लड़की करती है। इससे तो इच्छा-अनिच्छा का पता नहीं चलता। अमर की बात भी ठीक ही थी। यदि हमारे यहाँ शादी के मामले में लड़की की इच्छा-अनिच्छा को पूछने की प्रथा नहीं है किन्तु उसे जाना तो जा सकता है। मैं गंभीरता से इसका प्रयत्न करता तो क्यों नहीं जान सकता था? शादी की चर्चा चलने पर वह भाग जाती थी। सामने बिठाकर भी उससे नहीं पूछा जा सकता है किन्तु क्या और कोई मार्ग उसकी इच्छा जानने को शेष नहीं है?... उस दिन जब पंडिताइन ने कहा था, 'यह रिश्ता नहीं हो सकता, तो वह झटपट वहाँ से उठकर चली गई थी? शायद... कहा था पेट में दर्द है, खाना नहीं खाऊंगी।'... कहीं मैंने उसकी इच्छाओं का गला तो नहीं घोंट डाला?

जब वे घर पहुँचे तो सब काम पहले की ही तरह चल रहे थे। पंडिताइन इसी तरह प्रसन्नचित्त थी। रमा अपनी सहेलियों के साथ बैठी कसीदा काढ़ रही थी। दिवाकर के मन पर तो कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। देवला से आने के बाद उसके मन का धुँधलापन साफ हो गया था। अब वह नौकरी के लिए दौड़-धूप कर रहा था। इसी सिलसिले में वह धर्मशाला के दफ्तरों में ठोकरें खाकर अभी कल ही लौटा था। माता जी से सम्बन्ध तोड़ने की बात सुनकर उसे विशेष आनन्द तो नहीं हुआ किन्तु उसने ज्यादा छानबीन नहीं की।

पंडित जी ने घर में प्रवेश किया तो उनकी समस्त शक्तियाँ जैसे थकी हुई थीं। बिना नहाए अथवा भोजन किए वे बिस्तर पर लेट गए। पंडिताइन हुक्का भरकर लाई और उन्हें देते हुए बोली, "दिवाकर की सास आई थीं ।"

पंडित जी चौंक पड़े, बोले, "कौन?"

पंडिताइन ने हँसकर कहा, "मेरा मतलब है उसकी होने वाली सास बाबा छोट सिद्ध की यात्रा के लिए गई थी। हमारे घर घड़ी दो घड़ी रुकी। अच्छा हुआ तब दिवाकर भी आ गया था। देख लिया उसने अपनी आँखों से कह रही थीं, मेरी बिटिया के बड़े भाग हैं।"

पंडित जी बड़े शान्त चित्त से सुन रहे थे। पंडिताइन कहती गई—"कहती थी कि इसी साल ब्याह हो जाए तो अच्छा है। मैंने कोई जवाब नहीं दिया, लेकिन सोचती हूँ इसमें हर्ज ही क्या है?"

पंडित जी बोले, "क्यों, हर्ज क्यों नहीं है? रमा की उमर भी तो बड़ी हो गई है, पहले उसी का ब्याह करना पड़ेगा।"

"रमा की आपको इतनी चिन्ता क्यों हो रही है?" पंडिताइन ने गर्दन मटकाकर कहा, "वह लूली-लंगड़ी नहीं है, अंधी-कानी-बहरी नहीं है। यहाँ तो उनकी भी शादियाँ हो जाती हैं। हमारी बिटिया तो ऐसी वैसी नहीं है।"

पंडित जी कुछ और ही सोच रहे थे। उनके मुँह से निकला, "अमर भी तो ऐसा-वैसा नहीं है।"

पंडिताइन को आग लग गई, "फिर वही अमर - आपने कुछ नहीं कहा उनसे?'

पंडित जी सुस्थिर होकर बोले, "कह तो मैं सब कुछ आया हूँ।"

"क्या सब कुछ?"

"यही कि तुम्हें रिश्ता मंजूर नहीं है?"

"मेरा ही नाम लिया!"

"तो क्या करता?"

"तो इसका मतलब यह है कि आपको मंजूर था।"

"नहीं, मुझे भी नामंजूर था इसलिए तो वहाँ चला गया था, लेकिन शायद मेरी गलती थी। तुमने देवला वाली बात में नमक-मिर्च लगाकर मुझ में जहर भर दिया, लेकिन मेरे दिल में कोई डंके की चोट से कह रहा था कि मैं अन्याय कर रहा हूँ।"

पंडिताइन दाँत पीसती हुई उठने लगी तो पंडितजी ने उसे हाथ से पकड़कर बिठा लिया।

"अच्छा, रमा की क्या इच्छा है?"

पंडिताइन हैरान हो गई, बोली, "आपको आज हो क्या गया है? लड़की से ऐसी बातें भी पूछी जाती हैं?"

वे बोले, "पंडिताइन, पूछी भी जाती हैं किन्तु यहाँ उसकी रस्म नहीं है इसलिए मैंने तुमसे पूछने के लिए नहीं कहा। लेकिन तुम जान तो सकती हो। तुम माँ हो माँ का दिल बेटी के दिल से दूर नहीं होता।"

पंडिताइन आश्चर्य से पति की ओर देखती रही, फिर बोली, "इसका मतलब तो यह हुआ

कि आपने उनसे कोई बात अभी तक नहीं की है।"

"वह तो हो गई है··· बात अब टूट ही गई है।"

"तो फिर अब रमा की इच्छा जानने का फायदा?"

पंडित जी चुप हो गए। मन ही मन उन्होंने कहा—सचमुच कोई फायदा नहीं, यह काम तो हमें पहले करना चाहिए था। अब तो बात बिगड़ चुकी है। वे शांत चित्त से कुछ देर विचार करते रहे। फिर बोले, "अच्छा अभी तुम जाओ, मैं थोड़ी देर आराम करना चाहता हूँ।"

पंडिताइन बोली, "दिवाकर के बारे में क्या सोचा? मैं पंचांग उठा लाऊँ?"

पंडित जी करवट बदलकर बोले, "नहीं, अभी नहीं। फिर देख लूँगा।"

दूसरे कमरे में रमा और उसकी दो सहेलियाँ, सावित्री और विद्या, यह वार्तालाप ध्यान से सुन रही थीं। बीच में रमा को एक बार हिचकी सी आई लेकिन उसने बड़ी मुश्किल से अपने को संयत कर लिया था। फिर भी उसकी आँखों से दो-चार बूँदें निकल ही पड़ीं। सहेलियाँ स्तब्ध होकर बैठी रहीं। उन्होंने रमा से प्रश्न ही नहीं किया। जब दूसरे कमरे की बातचीत समाप्त हो गई तो सावित्री बोली, "चाचा जी 'ना' कर आए हैं।"

विद्या बोली, "ऐसा ही तो लगता है लेकिन उन्होंने रमा की इच्छा की बात क्यों की?"

सावित्री ने रमा की ठोढ़ी पकड़ कर कहा, "अब भी समय है। तुम कह दो तो चाचा जी फिर वहाँ जा सकते हैं।"

रमा ने कहा, "यह कैसे होगा बहन! यदि मुझे उन्हें नापसंद करना होता तो शायद मैं कह भी देती लेकिन यह बात मैं कैसे कहूँ कि मुझे वे पसंद हैं··· उन्हीं के साथ मेरी शादी होनी चाहिए। क्या यह शर्म की बात नहीं है?"

विद्या बोली, "अच्छा, तुम्हारे बदले में मैं कह देती हूँ।"

रमा बोली, "नहीं रहने दो, अब उसकी कोई जरूरत नहीं। जो होना था वह तो हो ही गया है।···अब एक तो पिताजी नहीं मानेंगे। मान भी गए तो उनका राजी होना मुश्किल है।

सावित्री बोली, "देखो रमा, अपनी इन लम्बी-चौड़ी बातों में असली बात छिपाने की कोशिश मत करो।"

"मैंने तो कोई बात नहीं छिपाई।" रमा ने भोलेपन से कहा।

सावित्री बोली, "नहीं, तुम जरूर छिपा रही हो। तुम्हें असल में उनके चाल-चलन पर शक है।"

रमा ने बीच में ही कहा, "सावित्री, बार बार वही बातें मत करो। क्या तुम मेरे दिल की बात मुझ से भी ज्यादा जानती हो।"

सावित्री ने रूखेपन से कहा, "लेकिन अपने दिल की जिस बात को आदमी खुद नहीं कह सकता, दूसरा आदमी उसे आसानी से कह सकता है। बहन अब भी समय है, फिर पछताओगी।"

रमा ने चिढ़कर कहा, "मुझे तुम्हारे उपदेशों की जरूरत नहीं···। फिर पछताना पड़ेगा तो तुम तसल्ली देने मत आना।"

"तो मेरी बात सच्ची हुई?" सावित्री ने कहा।

"हाँ सच्ची है।"

"तुम्हें उन पर शक है"

"शक ही नहीं, नफरत भी है।" और यह कहकर वह उठकर चली गई। सावित्री और विद्या आश्चर्य से उसे देखती रहीं।

जब पार्वती ने कमरे में प्रवेश किया तो दोनों उठकर बाहर जा रही थीं। उसने कहा, "कहाँ जा रही हो इतनी जल्दी।...सावित्री, अरी ओ विद्या।"

दोनों रुक गईं। विद्या बोली, "अभी जाती हूँ, चाची, फिर आऊँगी।"

लेकिन पार्वती ने उनके हाथ पकड़ लिए, "ज़रा बैठो तो सही। जलपान करके जाना होगा। अरे रमा कहाँ चली गई?"

रमा ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा, "माँ इन्हें जाने दो।...बड़ी देर से बैठी थीं। इनके घर पर भी तो काम होगा।"

पार्वती अपनी बेटी के इस परिवर्तन को देखकर दंग रह गई। उसने सावित्री और विद्या के हाथ छोड़ दिए और मुस्कराती हुई बोली, "अच्छा, बेटी, जरा ठहर कर आना। तुम दोनों से एक खास काम है विद्या तुम भी आना।"

और फिर दोनों को विदा करके वह रमा की ओर देखती रही। रमा ने कुछ नहीं कहा। केवल एक तीखी नज़र से देखकर वह बिजली की तरह दूसरे कमरे में चली गई।

रमा ने घर के काम-काज में अपना मन सुस्थिर करना चाहा किन्तु सावित्री की बात उसे बिच्छू की तरह डंक मार रही थी, "तुम उनके चाल-चलन पर शक करती हो।" ये शब्द उसके आस-पास मंडरा रहे थे। उसने कसीदे का काम छोड़कर झाड़-बुहार में अपना मन लगाना चाहा किन्तु चित्त अधिक-अधिक बेचैन होता गया। वह खरिक में गई, जहाँ नन्हीं सी बछिया उसके स्नेह की प्रतीक्षा कर रही थी। उसे देखते ही बछिया रस्सी तुड़ाने के लिए उतावली हो उठी। रमा ने उसके गले में हाथ डाल दिए और बड़ी देर तक उसको गले से लगाकर सिसकती रही। घर का कोई भी व्यक्ति इस नन्ही बछिया के पास नहीं जा सकता, रमा ही उसे बांधती, छोड़ती थी। अन्य सभी को देखकर वह डर के मारे काँपने लगती थी। किन्तु उस दिन जब अमर ने बछिया के सिर पर स्नेह से हाथ फेरा था तो वह डरी नहीं थी। उसी तरह वह अमर के हाथों को चाटने लगी थी जिस तरह वह रमा के हाथों को चाटा करती थी।

आषाढ़ आधा बीत गया। लेकिन अब तक हल्की सी एक-दो बौछारों को छोड़कर, कोई ऐसी बारिश नहीं हुई थी जिससे किसानों के रुके हुए कामों को गति मिल जाती। आज अचानक कहीं से घटा घिर आई। घटा भी इतनी भयावनी कि लगने लगा, दस-पन्द्रह दिनों तक लगातार बारिश होती रहेगी। अधिकांश किसानों के धान जमीन से छः इंच ऊपर उठ गए थे। कुछ लोगों ने बारिश की आशा छोड़कर नहर का पानी ही बाँध लिया था। जिन्हें किसी नहर के पानी की आशा नहीं थी, वे इन्द्र भगवान् को खुश करने के लिए तंत्र-मंत्रों का आश्रय ले रहे थे।

पचास-साठ गाँवों ने मिलकर एक महायज्ञ करने की योजना भी बना रखी थी। ऐसे समय में आकाश को घनघोर बादलों से भयानक बना देखकर भी किसी के मन में भय पैदा नहीं हुआ।

उस रात इतने जोर का पानी बरसा कि खेतों से पानी बाहर निकलने लगा। भोर होते ही गाँव का रंग-रूप ही बदल गया। कल तक घास, भूसा, ईंधन, दाना आदि अनेक चीज घरों के बाहर ही रखी जाती थीं। आज एक भी चीज बाहर नहीं है। साल के पुराने छतरौड़ों[1] पर नये हरे पत्ते चढ़ गये हैं। घर-घर से किसान औरतें खेतों के लिए निकल पड़ी हैं। मर्द बड़े तड़के ही उठकर वहाँ पहुँच गए हैं। बैल बड़ी शान से छपछप करते पानी से भरे हुए खेतों में हल खींच रहे हैं। किसान कीचड़ में लथपथ होकर भी अजीब प्रसन्नता से खिल रहा है। वातावरण किसान और उसके प्यारे बैलों के मधुर संभाषण से भर गया है। "आहा… बच्चा… चल आगे हो… जीता रह बेटा… ओ कबरे… जी ओ… प्यारे…" आदि विचित्र और आह्लादमय सम्बोधन खेतों से आ रहे हैं।

अमर ने अपने बैलों की जोड़ी को जोता तो पड़ोसी किसान थोड़ी देर के लिए अपना हल खड़ा करके उन्हें देखने के लिए चले आए। अमर ने दोनों बैलों के नाम रखे थे, गूँगा और गामा। भुक्खन चमार का खेत उससे सटा हुआ था। बैलों को खड़ा करके वह तम्बाकू पीता हुआ उधर आ पहुँचा और बोला, "अमर भैया, बैलों का जैसा नाम है वैसा ही काम है। हाथी के बच्चे हैं।"

अमर की प्रसन्नता का भी ठिकाना नहीं था, वह बोला, "भाई, काम करने का मजा भी तो इसी में है। अब अगर मैं जरायती हल भी खरीद लूँ तो भी बड़ी आसानी से ये उसे चला सकते हैं।"

जेठा इस नये हल का नाम सुनकर चौंक पड़ा, बोला, "भाई, यह जरायती हल क्या बला है?"

अमर मुस्करा कर बोला, "बला नहीं है, हल ही है।… फर्क इतना है कि वह लोहे का होता है। छोटे बैलों से खींचा नहीं जाता। इस हल से दुगुना-तिगुना काम कर सकता है।

भुक्खन बोला, "लेकिन उसका यहाँ काम नहीं है। भला हमारे पास ज़मीनें ही कितनी-कितनी हैं। जो हैं वे इसी हल और इन्हीं बैलों के लायक हैं। आखिर हमें भी तो साल भर के लिए काम चाहिए।"

अमर ने बैल खड़े कर दिए और भुक्खन, जेठा, हाडू आदि के पास चला गया, "भैया, जमीनें बहुत हैं, देखते नहीं हो, यह इतना बड़ा मैदान सामने बंजर पड़ा है। इसमें क्या नहीं हो सकता?"

मटरू ने आगे बढ़कर कहा, "वाह! यह मैदान तो लंबरदार का है, वह इसे जोतने देगा?"

जेठा ने उसकी बात बीच में ही काट दी, "अरे मटरू, तुम क्या जानते हो, इस मैदान की बात? मेरे चाचा अभी भी जीते हैं। जा उनसे पूछ उन्होंने इसी मैदान में अपने बैल चराए हैं। यह जगह तो शामलात थी। लंबरदार ने पटवारी-कानूनगो से मिलकर इसे अपने नाम चढ़वा लिया था। यही क्यों, पशु चराने के लिए जो जंगल है न, वह बहुत बड़ा था। लेकिन बेईमान लोगों ने इसे भी घेर-घेरकर अपनी जमीन में मिला लिया है। यह जो जंगल के साथ कटोचों की जमीन है वह पहले नहीं थी। यहाँ तो एक बीघा भर जमीन थी जिसमें उनका कोई बुजुर्ग रहा

[1] पत्तों बिना डंडी के छाते।

करता था। लेकिन धीरे-धीरे वे आधे जंगल के मालिक बन बैठे हैं। पापियों ने गऊ का कौर तक छीन लिया।"

जेठा ने घृणा से अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। अमर के लिए ये बातें बिल्कुल नई थीं। वह आश्चर्य से उनकी ओर देखता रहा। अमर बोला, "बाबा, यह सब अब ज्यादा दिन नहीं चलेगा।"

थोड़ी देर तक बातें करने के बाद सब अपने-अपने खेतों की ओर चले गए और अपने काम में जुट गए।

अमर हल चलाते-चलाते सोचने लगा—इन लोगों को ठिकाने लगाना ही होगा। यह धाँधली बंद नहीं हुई तो गरीबों का यहाँ रहना नहीं हो सकता। पटवारी, कानूनगो, लंबरदार, पुलिस के सिपाही, हवलदार सभी तो यहाँ शोषण करने वाले हैं। एक मामूली सिपाही आकर गाँव भर को नचा जाता है। थानेदार दौरे पर कभी निकलता है तो लोग डर के मारे काँपने लगते हैं। जिस किसी पर लंबरदार उँगली उठा देता है, उसको पीटने में पुलिस आनाकानी नहीं करती है। ओह ! यहाँ तो बहुत से काम करने के लिए हैं।··· सोचते-सोचते उसका मन क्षोभ से भर उठा। पल भर विश्राम लेने के लिए उसने बैलों को खड़ा किया, फिर स्वयं चारों ओर नजर घुमाकर देखने लगा। भुक्खन चमार की पत्नी नाश्ता लेकर आई थी और दोनों एक छतरौड़े के नीचे बैठकर खा रहे थे। फिर दूसरी ओर देखा चौधरी बुधीसिंह की चौधराइन भी एक हाथ में लोटा और दूसरे में रोटियों की छोटी-सी गठरी लिये, मेड़ों पर धीरे-धीरे पांव रखती हुई चली आ रही थी। चौधराइन का नाम नीलू था। उनकी शादी हुए अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था। रूप और यौवन में जहाँ नीलू गाँव भर की सब औरतों को मात देती थी, वहाँ काम-काज में भी वह किसी से कम नहीं थी। पति के साथ दिन भर खेत में काम करने के अतिरिक्त वह घर का भी सारा काम-काज सँभालती थी। अमर बड़े ध्यान से नीलू को मंथर गति से मेंड़ों पर चलता हुआ देख रहा था। अमर का ध्यान किसी और विषय की ओर चला गया—"यदि वह होती तो वह भी इसी प्रकार चलती··· शायद चौधराइन भी उससे ईर्ष्या करने लगती। जब वह नाश्ता लेकर इसी तरह मेंड़ों पर धीरे-धीरे चलकर आती तो मेरा हल चलाना अवश्य बन्द हो जाता। मैं कहता, 'रमा इन पिंडलियों को जरा ढक लो।' वह मुस्करा देती, मैं धन्य हो जाता। कितना सुखमय जीवन होता वह··· ।"

चौधराइन चलते-चलते उसके पास आ गई और बोली, "देवर जी नाश्ता कर लीजिए।"

अमर ने चकित होकर उसकी ओर देखा।

वह बोली, "चलिए न, वे भी आपका इन्तजार कर रहे हैं?"

अमर कुछ भी न कह सका किन्तु चौधराइन ने उसके मन की बात जान ली, बोली, "इतना क्यों शर्माते हैं आप?··· मैं अपने घर का नहीं खिला रही हूँ देवर जी ! ऐसे हमारे भाग कहाँ ? आपकी माता जी ने भेजा है नाश्ता।"

अमर बोला, "अच्छा, आपने अपने घर वाली बात क्यों कही?"

चौधराइन बोली, "आप बाह्मण हैं न इसलिए।"

अमर ने मुस्कराकर कहा, "देखिए, मैंने हल की मूठ पकड़कर अपना बाह्मणत्व खो दिया

है। अब तो आप को एतराज नहीं होना चाहिए।"

चौधराइन बोली, "एतराज तो नहीं होगा। जो हुआ है उसके लिए माफ कर देना। लेकिन देवर जी, मुझे तो 'आप-आप' कहकर मत पुकारा करें।"

अमर हँस कर बोला, "वाह! जो आता है यही शिकायत करता है मैं किसी को आप कहकर न पुकारा करूँ और आप सभी मुझे आप कहा करें। जैसे कि मैं गाँव भर का बूढ़ा बुजुर्ग हूँ।"

चौधराइन मुस्करा भर दी। अमर उसके आगे-आगे बुधीसिंह की ओर चला। बुधीसिंह और अमर का मकान पास-पास ही था और खेत भी सटे हुए थे। इन दोनों में खूब जमती थी, हाँ, चौधराइन को देखने और उससे बातें करने का अवसर अमर को पहले नहीं मिला था।

बुधीसिंह बड़ा हँसमुख और दिलेर युवक था। अल्पशिक्षित होने पर भी उसे शिक्षा से अनुराग था। अमर पर उसे श्रद्धा थी, विश्वास था। परसों शाम को जब ग्रामीण युवकों की बैठक हुई थी तो उसमें बुधीसिंह ने बड़ी उत्सुकता दिखाई थी। उसी की कोशिशों के कारण पांच युवक और उपस्थित हो गए थे। उसी ने यह प्रस्ताव रखा था कि बरसात में सभी स्कीमों पर अच्छी तरह विचार हो जाना चाहिए और बरसात खत्म होते ही उन पर काम शुरू कर देना चाहिए। डाकखाने और अस्पताल के लिए अर्जियां बना ली गई थीं। उन पर गाँव के लोगों के हस्ताक्षर लेने का काम उसी पर सौंपा गया था।

नाश्ता करते हुए बुधीसिंह ने बात शुरू की, "अमर भैया, जंगल और शामलात की हदबन्दी के लिए भी अर्जी कर ही देनी चाहिए। पचास साल पहले के कागजात निकलवाए जाएँ तो सब की कलई खुल जाएगी।"

अमर बोला, "मैं भी यही सोच रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि यह काम बड़ी आसानी से हो जाएगा। मेरा एक दोस्त आजकल यहाँ तहसीलदार बनकर आया है। आज ही एक चिट्ठी लिखकर उससे पुराने कागजों की पड़ताल के लिए लिख दूँगा।"

चौधराइन नीलू पता नहीं क्या सोच रही थी। उसने पूछा, "देवर जी, आप बहू कब लाएँगे।"

अप्रत्याशित प्रश्न को सुनकर अमर और बुधीसिंह दोनों चकित हो गए। चौधराइन स्वयं प्रश्न पूछकर लज्जा से गड़ गई। बात बदल कर उसने पूछा, "पंडित नित्यानन्द के यहाँ बातचीत चल रही थी, उसका क्या हुआ?"

अमर इसका भी कोई उत्तर नहीं दे सका। चौधराइन का संकोच और भी बढ़ गया किन्तु उसने बात आगे बढ़ा ही दी, "रमा मेरी सहेली है देवर जी!... अगर आप कहें तो मैं ही उनसे बातचीत चलाऊँ?"

अमर ने मुस्करा कर पूछा, "क्या आप भी उसी गाँव की हैं?"

बुधीसिंह बोला, "हाँ, हाँ। तभी तो अपनी सहेली को अपने पड़ोस में खींच रही हैं।

अमर ने कुछ उदास होकर कहा, "भाभी, उस ओर कोशिश करना तो बेकार है। उन्हें मैं पसन्द नहीं हूँ।"

"पसन्द नहीं हैं?" चौधराइन ने विस्मय से पूछा, "किसे पसन्द नहीं हैं?... पंडित जी तो खुद पसन्द कर गए हैं। रमा की बात मैं जानती हूँ। वह मन ही मन आपकी पूजा करती है।..."

अमर बीच में उठ गया। चलते-चलते बोला, "भाभी, अब उन बातों से कोई फायदा नहीं, बात टूट चुकी है।"

वह चला गया और चौधराइन दम्पती उसको जाता देखते रहे।

बारिश तेज हो गई थी। अमर के बैल दुगुने साहस से चल रहे थे। ऐसा लगता था कि अमर एक ही दिन में यहाँ का काम समाप्त कर देगा। किन्तु अमर का मस्तिष्क अनजाने में ही रूपा की ओर चला गया था। रमा की ओर से निराश होकर जैसे मन रूपा की शरण में जाना चाहता था।—वह कहाँ होगी? कौन से गाँव की होगी? कैसी होगी? आदि अनेक बातें वह सोचने लगा। प्रयत्न तो वह करता कि उन बातों की ओर न भटके किन्तु मन पर काबू पाना तो आसान नहीं है। जब-जब उसने रमा को भुलाने का प्रयत्न किया तब-तब वह अधिक आकर्षक बनकर उसके हृदय में समाती गई। जब-जब उसने रूपा से सम्बन्धित ततवानी यात्रा के प्रसंगों को अपने मस्तिष्क से हटाना चाहा, तब-तब उसे ऐसा अनुभव हुआ कि वह बात कल ही हुई है।

उस दिन शाम को लक्ष्मी दरवाजे के पास खड़ी अमर की राह देख रही थी। वह अभी खेत से नहीं आया था। अंधेरा घिरने लगा था और उसकी चिंता भी बढ़ती जा रही थी। इसी समय लक्ष्मी के भाई सुन्दर ने घर में प्रवेश किया। पहले तो लक्ष्मी उसके इतनी बारिश में अचानक आ जाने से विस्मित हुई। फिर उसके प्रसन्न मुख को देखकर अपनी सारी चिन्ता भूल गई। यहाँ तक कि अमर की ओर से भी उसका मन हट आया। भाई के लिए चाय तैयार करने में उसने इतनी फुर्ती की कि सुन्दर भी दंग रह गया। जब वह चाय पीने लगा तो लक्ष्मी उसके पास बैठ गई।

सुन्दर ने बात शुरू की, "बहन, भगवान् के राज में देर है अन्धेर नहीं।"

लक्ष्मी बोली, "यह तो मैं जानती हूँ। अच्छा यह बताओ कि वे कितने में माने?"

सुन्दर ने मुस्कराते हुए कहा, "तुमने सौदा करने के लिए जिसको भेजा था वह सोच-समझकर सौदा करना जानता है। दो हजार में ही काम बन गया।"

लक्ष्मी प्रसन्नता से उछल पड़ी, "क्या सच?"

सुन्दर किंचित् गम्भीर हो गया, "नहीं तो क्या? हमारा लड़का ऐरा-गैरा तो नहीं है। इस जिले में ऐसा लड़का ढूँढने पर नहीं मिलेगा। मैंने उन्हें समझाया, "पुरोहित जी, मौका हाथ से न जाने दीजिए। लड़का बी०ए० पढ़ा है। तुम्हारी लड़की रानी बनकर रहेगी, रानी।" वह तो शायद नहीं मानता लेकिन लड़की की माँ को मेरी बात जँच गई। उसने बड़ा जोर लगाया और आखिर उसने अपनी बात मनवा ही ली।"

लक्ष्मी ने किंचित् रौब से कहा, "तो फिर हम लोग इसी साल शादी कर लेंगे। तुमने कहा था उनसे?"

सुन्दर बोला, "भला यह बात मैं चूकने वाला था। लड़की की माँ पहले तो कुछ घबरा गई, फिर आँखों में आँसू भरकर बोली, "मेरी लड़की नादान है। अभी उसे घर का काम-काज भी अच्छी तरह नहीं आता है।" मैंने उसे समझा-बुझाकर कहा, "इसकी चिन्ता मत करो, उसे भगवती जैसी सास मिलेगी। वह इसे अपनी बेटी से ज्यादा प्यार करेगी।"

लक्ष्मी झटपट गुड़-घी ले आई। कुल-देवता के नाम घी में मिलाकर गुड़ की एक डली

अलग रख ली फिर दोनों ने मुँह मीठा कर लिया। लक्ष्मी ने गुड़ की डली को चूसते हुए कहा—

"देखो भैया, इन्हीं व्रतों में लड़की को गहना डाल देना चाहिए। अभी हैं ही कितने दिन? एक महीना तो बरसात का बाकी है। हाँ, गहने कौन-कौन से देंगे?"

सुन्दर बोला, "जो हम से बन पड़ेगा देंगे। उनका दबदबा नहीं सहेंगे। जब दो हजार नकद उसके हवाले करना है तो हम बिना कुछ दिए भी लड़की को ब्याह ला सकते हैं।"

लक्ष्मी ने इसका विरोध किया, "नहीं भैया, यह नहीं होगा। दो हजार दिया तो क्या हुआ। बिरादरी के पाँच भले मानुषों में तो नाक नहीं कटवानी है। उनका पाप उनके पास रहा, हम थोड़ी-सी बात के लिए बिरादरी के सामने ओछे बनें? यह देख, मेरी नथ अभी तक बची हुई है। इसे तुड़वाकर नये फैशन का कोई गहना बना लेंगे। कुछ तो चाहिए ही न।··· चाँदी की रस्म अब छोटे लोगों में ही है। बड़े लोग चाँदी के गहने आज कल नहीं देते। सोने का एक गहना भी काफी है।"

सुन्दर बोला, "बहन, तुम जो ठीक समझो करना। मैं तो इतना ही कहना चाहता था कि उनकी ज्यादा खुशामद अब हम नहीं करेंगे। बिरादरी क्या कर लेगी? एक-दो दिन चर्चा करेगी। करती रहे। आजकल सोने के गहने कौन देता है। हमारे ही गाँव में पिछले साल दस शादियाँ हुईं, लेकिन सोने के तो हमने दर्शन नहीं किए।"

सुन्दर का तर्क ठीक ही था किन्तु लक्ष्मी के दिमाग में वह असर नहीं कर सका। काफी देर तक दोनों में बहस होती रही। आखिर लक्ष्मी ही की जीत हुई। यह निर्णय हो गया कि माघ या फागुन में ब्याह हो जाए। इतना ही नहीं उन्होंने दूर-दूर के रिश्तेदारों को निमंत्रण देने के लिए उनकी एक सूची भी तैयार कर ली। आखिर लक्ष्मी के इकलौते बेटे का ब्याह जो था। जिनके साथ कई सालों से वर्तन ब्योहार बन्द था उन्हें भी निमंत्रण देने की सलाह पक्की हो गई।

अमर जब घर आया तो मामा को देखकर अचरज में पड़ गया। सोचने लगा— कौन सा काम इस व्यक्ति को इतनी बारिश में खींच लाया है?—किन्तु जब हाथ-मुँह धोने के बाद माँ ने उसके आगे गुड़ घी की कटोरी बढ़ा दी तो वह कुछ-कुछ समझ गया। पल में ही उसके चेहरे की प्रसन्नता लुप्त हो गई। गम्भीर भाव से उसने पूछा, "मामाजी, यह गुड़-घी किसलिए दिया जा रहा है? क्या किसी के घर लड़का हुआ है?"

मामा ने हँसकर कहा, "उसी की एक भूमिका समझ लो।"

अमर की मुखमुद्रा और भी गम्भीर हो गई। वह बोला, "ऐसी भूमिका रेत से नहीं बननी चाहिए मामाजी!"

मामा एकदम चुप हो गए। लेकिन, लक्ष्मी ने कहा, "बेटा, हमने जो कुछ किया होगा वह सोच-समझ कर ही किया होगा। लड़की साक्षात् देवी है। तुम्हारे मामा खुद उसे देख आए हैं। बात पक्की हो चुकी है। वे लोग भी बड़े प्रसन्न हैं इस रिश्ते में। लड़की की माँ तो तुम्हारी बातें सुनकर खुशी से पागल हो उठी है।"

अमर ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल इतना ही कहा, "भूख लगी है, पहले खाना परोस माँ,··· बाद में देख लेंगे।"

लक्ष्मी रसोईघर की ओर जाती जाती बोली, "बाद में देखने की अब गुंजाइश नहीं रही है।

जो होना था सो हो गया है।"

लक्ष्मी ने खाना परोसा। मामा-भांजे बड़ी देर तक चुपचाप खाते रहे। लक्ष्मी भी किसी आशंका से कुछ नहीं बोल सकी किन्तु उसे यह चुप्पी अच्छी नहीं लग रही थी। आखिर उसने पूछ ही लिया, "बेटा इसमें तुम्हें क्या एतराज है?"

अमर ने कुछ खीझकर कहा, "अव्वल तो आप को मुझसे पहले ही पूछ लेना चाहिए था। खैर, यह न भी हुआ तो आपको मेरे बारे में बढ़ा-चढ़ाकर बातें नहीं करनी चाहिए।"

मामा ने कहा, "बढ़ा-चढ़ाकर किसने कीं?"

अमर ने कहा, "कमियों को छिपाने का अर्थ भी यही होता है।"

सुन्दर ने कहा, "लेकिन मैंने तुम्हारी कौन-सी कमी छिपाई? तुम जुआरी हो, शराबी हो? लम्पट हो? क्या हो?"

अमर बोला, "अच्छा, आपने उन्हें यह बात बताई कि मैं अपने हाथ से हल चलाता हूँ?"

सुन्दर बोला, "यह बात बताने या छिपाने लायक है ही नहीं। आजकल तो बड़े-बड़े भी हल चलाते हैं। यह कोई दोष नहीं है।"

अमर बोला, "दोष नहीं है आपकी नजरों में। वे असली नगरकोट के ब्राह्मण हैं मामा जी, अपनी लड़की वे हलवाहे को नहीं देंगे।"

सुन्दर ने कहा, "लेकिन अब तो उन्हें बात रखनी ही पड़ेगी।"

अमर बोला, "यह उनसे छल होगा और मैं यह नहीं चाहता। मैं कल ही इस बात को खोलकर पत्र में लिख दूंगा ताकि बाद में किसी को किसी तरह का पश्चात्ताप न करना पड़े।"

लक्ष्मी ने अत्यन्त दीन स्वर में कहा, "बेटा, कुछ मेरा भी तो ख्याल करो। यह साँस किस दिन बन्द हो जाएगी इसका पता किसे है? मरने से पहले क्या मैं बहू का मुख भी नहीं देख सकूंगी?"

अमर ने चिढ़कर पूछा, "माँ, क्या तू मुझे बेचकर बहू खरीदना चाहती है?"

प्रश्न इतना कठोर था कि माँ का हृदय थर्रा उठा। उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए और बड़ी दीनता से वह अपने भाई की ओर देखने लगी। सुन्दर को भी यह प्रश्न बुरा लगा। उसने पूछा, "अमर, यह बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिए थी।"

अमर बोला, "जब आप मेरी इच्छा का गला घोंटकर बहू लाना चाहते हैं तो इसका और क्या अर्थ हो सकता है?"

"तुम्हारी इच्छा क्या है, यह भी तो पता चले?"

अमर चुप रहा। सुन्दर ने फिर पूछा—

"तुम्हारी इच्छा है कि उस पंडित नित्यानंद के पाँव धोकर पियें जो हमारा अपमान कर गया है?"

"मैंने तो यह बात नहीं कही।"

"तो फिर अपनी इच्छा बताओ तो सही?"

"मैं किसी भी काम के लिए किसी की खुशामद नहीं करना चाहता।"

"लेकिन शादी के मामले में तो लड़के वालों को खुशामद करनी ही पड़ती है।"

"मुझे ऐसी शादी पसन्द ही नहीं।"

"तो फिर किसी छोटी जाति की लड़की ब्याह लो। वहाँ तुम्हें खुशामद नहीं करनी पड़ेगी।"

"जरूरत पड़ी तो मैं ऐसा ही करूंगा। अच्छे शील-स्वभाव की लड़की होगी तो वह मुझे पसन्द होगी।"

सुन्दर क्रोध भरी नजर भानजे की ओर फेंककर उठ गया। लक्ष्मी हतप्रभ-सी बेटे की ओर देखती रह गई।

ततबानी की यात्रा से रूपा को जो खुशी मिली थी उसमें उसके दो तीन महीने, दो-तीन दिनों के समान कट गए। अपने बापू शुकरू से वहाँ की बातें करते-करते वह विभोर हो जाती थी। हाँ, उसके जीवन में उस दिन जो महान् परिवर्तन आया था उसका आभास उसने अपने बूढ़े पिता को भी नहीं दिया था। वास्तव में उसने न तो कुछ कहने की आवश्यकता अनुभव की थी और न उसके लिए कोई अच्छा अवसर ही मिला था। किन्तु एक दिन उनकी छोटी-सी-झोंपड़ी में अचानक बहुत से मेहमान आ धमके तो उनमें से एक को देखकर उसके शरीर में आग-सी लग गई।

शाम को झुटपुटा घिर रहा था। रूपा ने कचालू के पत्तों का साग हांडी में चढ़ा दिया था और आप आटा गूँध रही थी। बापू कहीं बाहर गए थे, अभी तक लौटे नहीं थे। उनका काम ही ऐसा था कि कभी-कभी रात के बारह बज जाते थे। मजदूरी ही एकमात्र जीविका थी। कभी किसी के खेत में काम करने चले गए तो कभी किसी का बोझ उठाकर दस-बारह कोस पहुँचा आए। अवस्था काफी हो चुकी थी अतः अब अधिक कठोर परिश्रम करना उनकी शक्ति के बाहर था। रूपा बार-बार उन्हें समझाती थी, "बापू, अब घर में बैठकर आराम करो। हम दोनों का खर्च ही कितना है? मैं मेहनत-मजदूरी कर लिया करूंगी, दोनों की गुजर उसी से हो जाया करेगी।" शुकरू ऐसे समय उसके सिर पर हाथ फेरता हुआ कहता, "बिटिया, अभी तो मेरे बाल भी अच्छी तरह नहीं पके हैं। तुम्हारा दादा तो अस्सी वर्ष तक जिया था और र तक वह दो मन बोझ आराम से उठाता रहा। बिटिया, हम लोगों की जिंदगी आराम के लिए नहीं बनी है। जिस दिन हम आराम करने की सोचेंगे, उस दिन हमारी उम्र भी खत्म हो जाएगी।" पा बीच में ही कहती, "बापू, तुम्हें बातों में तो जीत नहीं सकती, लेकिन यह बात सरासर गलत है कि हम लोगों के लिए आराम है ही नहीं। क्या हम आदमी नहीं हैं? जब दुनिया में पशु-पक्षी भी आराम के हकदार होते हैं तो हम क्यों नहीं होंगे?"

शुकरू कहता, "मैं यह कब कहता हूँ कि हमें आराम करने का हक नहीं है। हक है लेकिन तब हमें अपनी रोटी छोड़नी पड़ती है।"

रूपा कहती, "मैं कमा सकती हूँ बापू, तो तुम्हें रोटी की चिन्ता क्यों होती है? क्या मैं इतनी

कमजोर हूँ?"

शुकरू का गला भर आता, कहता, "मेरी बिटिया, तेरे ही भरोसे तो जी रहा हूँ।… सोचता हूँ, मेरी बिटिया को अच्छा-सा घर मिल जाए। तुम्हारे हाथ पीले हो जाएं, फिर जैसे पड़ेगा भोग लूँगा।"

रूपा सुनकर तुनक उठती, "नहीं बापू, शादी-वादी का नाम न लेना। मैं कहे देती हूँ।… मेरी इच्छा के बगैर तुम कुछ नहीं कर सकोगे।"

शुकरू समझता बेटी शादी के नाम से शरमा जाती है। वह मुस्करा कर चुप हो जाता।

आटा गूँधते-गूँधते रूपा सोच रही थी—बापू आएँगे तो उनसे एक बात कह दूँगी। लेकिन कैसे कहूँगी?—क्या-क्या कहूँगी और क्या-क्या छोड़ दूँगी? आदि बातों में वह उलझ रही थी। कभी उसे इस ख्याल का डर-सा लगता कि बापू सुनकर दु:खी तो नहीं होंगे… लेकिन दूसरे ही क्षण वह कहती दु:खी क्यों होने लगे! मैंने कोई पाप तो नहीं किया है।…

इसी उधेड़बुन में थी कि बाहर आँगन में किसी के खाँसने की आवाज आई। वह चौंक पड़ी। खिड़की से झाँक कर देखा, तीन-चार आदमी थे। उनमें एक उसका होने वाला ससुर था। घिचर का बाप। उसे देखते ही रूपा जलभुन गई। पलभर के लिए उसे लगा कि उसे दरी आँगन में फेंककर किसी कोने में छिप जाना चाहिए। लेकिन दूसरे ही क्षण उसका वह इरादा कहीं विलीन हो गया और वह स्वयम् एक हाथ में मैली-सी दरी और दूसरे में मिट्टी का हुक्का लिये, आँगन में चली आई। उसे देखते ही मेहमान कुछ चौंक से पड़े। फिर एक-दूसरे की ओर आश्चर्य भरी नजरों से देखते रहे। रूपा ने दरी बिछा दी, बीचों बीच हुक्का रख दिया और फिर घिचर के बाप गुजरू की ओर देखकर बोली, "आप तो खड़े ही हैं, बैठिए न।… कहिए घर पर तो सब राजी खुशी हैं?"

गुजरू की जबान अन्दर खिसक गई। उससे कोई उत्तर नहीं बन पड़ा तो उसने अपने साथी कुहनू की ओर देखा। कुहनू ने स्थिति समझकर रूपा से प्रश्न किया—

"तुम्हारे बापू कहाँ गए हैं?"

"कहीं… सुबह से गए हैं।"—रूपा ने बिना उस ओर देखे ही कहा।

"कब तक आएँगे?"

"अब आना ही चाहिए।"

"घर में तुम अकेली ही हो?"

अन्तिम प्रश्न गुजरू ने किया तो सही, लेकिन करके वह पछताने भी लगा—भला यह भी कोई पूछने की बात है? दो ही जने तो हैं इस घर में—वह और उसका बापू।

रूपा ने साधारण ढंग से 'हाँ' कहकर उसकी परेशानी को दूर किया।

रूपा तो अन्दर चली गई और चारों मेहमान आँगन में बैठकर तंबाकू पीने लगे।

काफी देर तक चारों में से कोई नहीं बोला। फिर गुजरू ने शांति भंग की, "हमें देखकर छिपना तो दूर रहा, उसने तो खुलेआम हमसे बातें करने में भी हिचकिचाहट नहीं की। अरे कुहनू, देखे लड़की के तौर-तरीके?"

कुहनू ने अपने सफेद सिर पर हाथ रखकर कहा, "लेकिन गुजरू यह लड़की तुम्हारी बहू

बन गई तो तुम तर जाओगे। देखा कैसा तेज है उसके चेहरे पर । नजर भरकर देखा नहीं आता। लगता है दुर्गा माता का अवतार है।"

बुद्धू और जग्गू अभी तक चुप बैठे थे। उन्होंने भी कुहनू की बात का समर्थन किया। लेकिन गुजरू के दिल में तो यही बात बैठ गई कि वह सामने निकली ही क्यों और निकली भी तो उसने बात क्यों की? वह बोला–

"लेकिन भाई, शर्म-हया भी तो कोई चीज होती है। और तुम जो उसके चेहरे-मोहरे की बात कहते हो तो क्या मेरा लड़का उससे किसी बात में कम है?"

समर्थन की आशा से उसने तीनों की ओर देखा लेकिन उत्तर किसी ओर से भी नहीं मिला। कारण यह था जिस लड़के की तुलना रूपा से की जा रही थी, उसकी हकीकत वे सभी जानते थे। बचपन में जब वह मांस के लोथड़े की तरह आँगन में पड़ा रहता था तो एक दिन उसे लोमड़ी उठा ले गई थी। बड़ी मुश्किल से लोगों ने उसे छुड़ाया था। इस दुर्घटना से उसके चेहरे पर जो खरोंचें लगी हुई थीं। वे अब भी मौजूद थीं। उसके काले रंग का चेहरा सिलवटों से भरा हुआ लगता था। फिर भी लड़का कमाऊ था। पाँच साल की उम्र से ही वह लंबरदार का ग्वाला बन गया था। अभी पिछले साल उसने वह नौकरी छोड़ दी है और अब वह नहर की खुदाई के काम में तीन रुपया दिन मजदूरी पर लग गया है। तीन रुपया दिन याने नब्बे रुपया महीना।... इतनी अच्छी कमाई करने वाला घिचर सभी रिश्तेदारों की नजरों में आदर का पात्र था किन्तु रूपा के साथ तुलना करते समय तो उसके निकट के रिश्तेदार भी चुप हो गए।

गुजरू को उनकी चुप्पी बुरी लगी। उसने बात बदलते हुए कहा, "आज सारा काम निबटा कर ही जाएँगे। और तीन महीने बाद ही शादी की बात पक्की हो जाएगी।"

इस बात के समर्थन में कुहनू ने अपनी गर्दन हिला दी। बुद्धू ने कहा, "गहना तो आज ही पहनाना होगा। ले आए हो क्या?"

गुजरू ने अपनी जेब टटोलते हुए कहा, "हाँ, वह तो ले आया हूँ। अरे भाई, इतना ही नहीं, घर पर दो मटके सुर के भी तैयार कर रख आया हूँ। यहाँ से जाते ही वह महफल जमेगी कि याद करते रहोगे।"

सुर के नाम से सब के मुँह में पानी भर आया। कुहनू बोला, "शुकरू ने भी कुछ न कुछ बन्दोबस्त तो किया ही होगा।"

गुजरू ने अधिकार के स्वर में कहा, "उसे करना ही चाहिए। पता नहीं नाते-गोते आने वाले हैं।"

इतने में रूपा फिर बाहर आई। उसे देखते ही फिर सब के मुँह पर ताले लग गए। रूपा बोली, "चलिए, अन्दर चलकर बैठिए, बारिश आने वाली है।"

मशीन की तरह चारों उठ खड़े हुए और रूपा के पीछे-पीछे चलने लगे। रूपा ने बाहर की दरी उठाकर झटपट अन्दर बिछा दी। फिर हुक्का भर दिया और दूसरे कमरे में खाना बनाने लग गई। मेहमानों पर रूपा का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ गया था कि वे अपने आपको बँधा हुआ-सा अनुभव कर रहे थे। कुशल यह हुआ कि यह स्थिति अधिक देर तक नहीं रही। बाहर किसी की पाँव के आहट सुनकर उन्हें कुछ उत्साह मिला। तभी भीगे हुए कपड़ों में शुकरू ने प्रवेश किया।

मेहमानों को देखकर शुकरू प्रसन्नता से खिल उठा और जैसे वह उन्हीं की आशा कर रहा था। किन्तु उसकी प्रसन्नता का सब से बड़ा कारण आज यह था कि रास्ते में आते-आते उसके पाँव ठेकेदार की भट्ठी के पास रुक गए थे और किसी अज्ञात प्रेरणा ने ही उसे एक बोतल खरीद लेने के लिए बाध्य कर दिया था। उसने सोचा शायद इन्हीं मेहमानों की खातिर उसके दिल में वह इच्छा जागी थी। दस-बारह मिनट में ही उसने भीगे हुए कपड़े बदल डाले और फिर मेहमानों के पास आ उपस्थित हुआ। चरण-वन्दना के बाद कुशल-समाचार हुए, इधर-उधर की दो-चार बातें हुई और बातों ही बातों में उसने यह भी जान लिया कि वे गहना पहनाने के लिए आए हैं। उसे अपनी ओर से कोई एतराज नहीं था। बेटी की ओर से विरोध की आशा भी नहीं थी। फिर यह सब कार्यक्रम उससे पूछकर ही बना था। अतः उसने कोई कुतूहल प्रकट नहीं होने दिया। खाना खाने के बाद सब बातें होंगी। इस विचार से वे इधर-उधर की बातों में समय बिता रहे थे।

रूपा खाना बना चुकी तो मेहमानों के निकट आकर बोली, "बापू, खाना तैयार है।"

शुकरू ने देखा, वह निःसंकोच सब के सामने खड़ी है और मेहमान भौंचक्के से उसकी ओर देख रहे हैं। और समय होता तो वह उसे झिड़क देता किन्तु मेहमानों के सामने उसने ऐसा करना उचित नहीं समझा। वह जानता था कि लड़की बड़ी अभिमानी है और वह गुस्से में कुछ कर बैठेगी। उसने कहा, "अच्छा, हम आते हैं तुम थालियाँ परोस दो।" फिर मेहमानों के आगे हाथ बाँधकर खड़ा हो गया, "समधी चलो।" उसने ताड़ लिया कि समधी को लड़की के बेझिझकपन पर आश्चर्य हो रहा है। वह बोला, "लड़की की गलतियों का ख्याल न करना, समधी। वह नादान है, बच्ची है।"

गुजरू ने शर्मिन्दा होकर कहा, "भाई, यह तुम क्या कह रहे हो, क्या मैं नहीं जानता कि इस अभागी लड़की की माँ बचपन में ही मर गई थी। बिना माँ के लड़कियों को ये सब बातें कौन सिखा सकता है?"

सब उठे और रसोईघर में जा पहुँचे। थालियाँ लग गई थीं और रूपा ने एक पुराने कम्बल का बिन्ना भी उन लोगों के लिए बिछा दिया था, स्वयं भी परोसने के लिए वहीं बैठी हुई थी।

शुकरू बोला, "बिटिया, तुम बाहर जाओ, हमें किसी चीज की जरूरत पड़ेगी तो खुद ही ले लेंगे।"

रूपा दूसरे कमरे में आ गई।

जब शुकरू ने शराब की बोतल मेहमानों के बीच रख दी तो सब की मनोकामना जैसे पूरी हो गई। गुजरू बोला, "बहुत दिनों बाद बोतल देखने को मिली समधी।... गाँव में त्रिलोकसिंह हवलदार की शादी हुई थी, तब चखी थी। मैं और बुद्धू दोनों कहार थे उनके। उस बखिया जैसे दरियाव दिल आदमी फिर नहीं मिले समधी।... हम चार कहारों को अलग से एक बोतल दे दी उन्होंने और साथ ही चार बड़े बड़े दोने शिकार (मांस) के।"

बुद्धू की याद ताजा हो उठी। वह बोला, "भाई, उस दिन तो खाने-पीने में मजा आ गया था। पेट भर शिकार मिला और जी भर शराब।... सुर अपनी चीज है तो सही लेकिन शराब-शराब ही है। वह शाही अमल है शाही।

कूहनू को इस बोतल से तृप्ति की आशा नहीं थी। वह बोला, "समधी, छोटी-मोटी हांडी तो होगी ही?"

शुकरू ने उत्तर दिया, "नहीं भाई, सुर के नाम से यह छोकरी नाराज हो जाती है। खाना-पीना छोड़ देती है। कहती है मुझे इसकी बदबू से नफरत है।"

"लेकिन समधी, हमारी जात में यह सब नहीं चलेगा।" गुजरू ने बाहर की ओर एक नजर देकर कहा, "यह तो हम लोगों का प्राण है– शराब रईसों का अमल है, हम गरीबों के लिए यह धान की बेटी ही सब कुछ है।"

शुकरू इशारा समझ गया। वह बोला, "समधी, उसकी चिन्ता मत करो। मेरी बेटी समझदार है, तुम्हें किसी बात की शिकायत नहीं करनी पड़ेगी।"

बात समाप्त हो गई, गुजरू ने आगे कोई बात नहीं उठाई। हाँ, बुद्धू और जग्गू का ध्यान बोतल खाली करने की ओर था। कुहनू ने गिलास में थोड़ी-सी उड़ेलकर समधी को देते हुए कहा, "तो समधी हम जिस काम से आए हैं वह अभी होगा या सुबह?..." उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही जग्गू बोल उठा, "अभी हो जाए तो बहुत अच्छा, हम काम-धंधे वाले आदमी ठहरे। कल सुबह ही कहीं निकल जाएँगे तो दिन सफल हो जाएगा। क्या कहते हो बुद्धू?"

बुद्धू ने सिर हिला दिया। शुकरू बोला, "वैसें तो मुझे कोई एतराज नहीं, लेकिन अगर कल सुबह थोड़ा आराम करके जाते तो मुझे तसल्ली हो जाती कि मेहमानों को मेरी वजह से भाग दौड़ की तकलीफ नहीं उठानी पड़ी।"

गुजरू को जरा-जरा सा नशा चढ़ने लग गया था। उसने अपने सिर की पगड़ी समधी के पाँव में रखते हुए कहा–

तुम्हारे प्रेम से दिल को बड़ा ही संतोष मिला समधी। असली काम अभी हो जाए तो मैं भी सुबह काम पर जा सकूंगा। मेरे धान तो अभी नियारने को बाकी हैं।"

"जैसे आपकी मरजी।" कहकर शुकरू हाथ धोने लगा।

बुद्धू बोला, "समधी, तुम तो बहुत जल्दी ही उठ गए?"

उसने अँगोछे से हाथ पोंछते हुए कहा, "मैं अपने रामसुरे को भी बुला लाता हूँ। फिर ऐसे काम में दो-तीन औरतें भी होनी चाहिए। गीतों के बिना यह काम अधूरा लगता है।"

सभी ने इस बात का समर्थन किया। वह बाहर जाने ही वाला था कि दरवाजे में रूपा आकर खड़ी हो गई।

वह बोली, "बापू, उनकी कोई जरूरत् नहीं। वहाँ मत जाओ।"

शुकरू ने उसे दूसरे कमरे की ओर खींचते हुए कहा, "हट पगली।"

लेकिन रूपा अपनी जगह से नहीं हिली, वह दृढ़ता से बोली, "बापू, सारे गाँव के सामने तमाशा करने से क्या फायदा? मैं वहाँ शादी नहीं करूंगी।"

शुकरू को काठ मार गया। वह कई दिनों से बेटी में जो परिवर्तन देख रहा था, उसका कारण आज साफ हो गया। मेहमानों के सामने अपनी ही बेटी से इतना अपमानित होना पड़ेगा, इसकी उसे आशा नहीं थी। तीन वर्ष की उसे छोड़कर रधिया चल बसी थी, उस दिन से उसने बेटी को स्नेह से पाला था। उसके कण-कण में वह समा चुकी थी किन्तु न जाने आज उसी बेटी

के इन दो शब्दों ने उसके स्नेह को कैसे सुखा डाला। कोमल हरा पत्ता अँगारों पर गिर कर जिस तरह विकृत और भयानक रूप ले लेता है उसी तरह शुकरू की हालत हो गई। उसने क्रोध से उसे जोर का धक्का दिया। वह दीवार से जा टकराई। शायद उसके माथे पर बड़ी चोट लगी। रक्त बहने लगा किन्तु रूपा ने उसकी परवाह न कर फिर बापू का रास्ता रोक लिया।

"बापू, तुम मुझे अपने हाथ से मार डालो। लो मेरा गला घोंट दो। लेकिन वहाँ मैं शादी नहीं करूंगी।"

शुकरू ने दाँत पीसते हुए एक जोर की चपत उसे लगा दी, "वहाँ नहीं करेगी तो कहाँ करेगी, बोल?... क्या तेरे लिए किसी राजकुमार की तलाश करूं! बेशर्म... तूने इतने मेहमानों के सामने मेरी नाक कटवा दी।"

रूपा बोली, "बापू, तुम जो कुछ कहना चाहते हो कह लो। लेकिन मेरी यही बात आखिरी बात होगी, यह मैं कहे देती हूँ।"

शुकरू का क्रोध ठण्डा नहीं पड़ा। उधर मेहमान भी खाना छोड़कर वहाँ आ खड़े हुए थे। गुजरू बोला, "भाई, न हो तो रहने दो।..."

लेकिन उसकी बात बीच में काटकर शुकरू गरज उठा—

"रहने कैसे दूँ? क्या जबान देकर मैं झूठा बनूँ? थूक कर चाटूँ? और वह भी इस हरामजादी के लिए...?"

'हरामजादी' शब्द सुनकर रूपा ने अपने दोनों कान बन्द कर लिये। शुकरू के दिमाग में शराब भी पहुँच चुकी थी। वह कहता गया, "मैं इसे अभी तुम्हारे साथ भेज दूँगा... तुम ले जाओ इसे, मैं इसकी शक्ल नहीं देखना चाहता।"

और साथ ही उसने पास कोने में पड़ी लाठी उठाकर उसके सिर पर दे मारी। इस चोट को रूपा नहीं सह सकी, वह चीख मारकर गिर पड़ी।

कुहनू ने आगे बढ़कर शुकरू को पकड़ लिया और उसे दूसरे कमरे में ले गया। इतने में ही चीख सुनकर रामसुरा, उसकी पत्नी और चाची भी वहाँ आ गए। रामसुरा की चाची ने रूपा को उठा लिया। पानी छिड़क कर उसे जगाने का प्रयत्न करने लगी। सब ने कुछ ही देर में सारी स्थिति को समझ लिया। असली कारण को जानकर रामसुरा की चाची आग बबूला हो उठी। उसने क्रोध से कांपते हुए शुकरू से कहा, "क्यों बे, क्या तू इस बच्ची को मारकर अपनी बहादुरी दिखा रहा है? याद रख जो इसको हाथ लगाया तो गाँव से मार-मारकर निकलवा दूँगी। यह नहीं चाहती है तो तुम कौन होते हो उसकी जबर्दस्ती शादी करने वाले? क्या यह अभी बच्ची है जो अपना भला-बुरा नहीं सोच सकती? नहीं होगी वहाँ शादी,... मैं कहती हूँ नहीं होगी। कौन माई का लाल है जो इसे जबर्दस्ती ब्याह कर ले जाए? चल बेटी रूपा, तू मेरे साथ रहना आज से चल।"

उसकी क्रोधित वाणी से मेहमानों के दिल काँप उठे थे। उन्होंने परमेसरी की कई बातें सुनी थीं। सारा गाँव उससे डरता है। उसकी साग-भाजी की क्यारियों में किसी के बैल भूल कर भी नहीं घुसने पाते थे। लड़ाकू और गर्म मिजाज इतनी थी कि लोग काम होते हुए भी उससे बातचीत करने से डरते थे। बड़े घरों की औरतें उसके सामने घूँघट निकाल कर ही निकलती

थीं। वह घूँघट वाली बहू को ही 'चरण-वन्दना' करती थी। उघड़े मुँह वाली को देखते ही वह दो चार करारी-करारी सुना देती थी। इन सब बातों को उन लोगों ने सुन रखा था किन्तु उसकी प्रत्यक्ष मूर्ति को देखने का सौभाग्य अभी तक उन्हें नहीं मिला था। इस समय उस क्रोध की मूर्ति को देखकर एक भी शब्द किसी के मुँह से नहीं निकला। शुकरू के दिमाग का आधा नशा उतर चुका था और वह अब सिर पर हाथ रखकर बच्चों की तरह रो रहा था। परमेसरी रूपा को लेकर बाहर निकल गई।

गुजरू बोला, "समधी, न हो तो आज सब कुछ रहने दो।"

शुकरू ने उसके पाँव छूते हुए कहा, "समधी, मैं वचन दे चुका हूँ, अपनी जबान से नहीं फिरूँगा, चाहे जान चली जाए।"

रामसुरे ने बीच में ही बात बदलते हुए कहा, "इस वक्त इन सब बातों को जाने दो। चाची के क्रोध को भड़काना ठीक नहीं है। अब सो जाओ। सुबह उठते ही आप लोग अपने-अपने घरों को चले जाना। फिर कभी आप लोगों को बुला लेंगे। तब तक मैं उन दोनों को समझाने-बुझाने की कोशिश करूंगा।

उसकी बात मानकर सब लोग उठ खड़े हुए। थोड़ी ही देर में सब के सोने का प्रबन्ध करके रामसुरा और उसकी पत्नी घर लौट गए।

यह तो एक साधारण-सा उफान था जो उठते ही शांत हो गया। परमेसरी के साथ रूपा के चले जाने के बाद शुकरू का हृदय तिलमिलाने लग गया। ज्यों-ज्यों नशा उतरता गया, उसका पश्चात्ताप बढ़ता गया। अपनी बेटी को वह प्राणों से भी बढ़कर चाहता था। उसी बेटी को धक्का देकर बाहर निकाल देने की याद कर वह सौ-सौ बार अपने को धिक्कारने लगा। उस रात उसे नींद नहीं आई। चौथे पहर जरा-सी आँख लगने लगी तो मेहमानों ने घर जाने की तैयारियाँ करनी शुरू कर दीं। उसने उठकर उनके लिए चाय बना दी। शाम की रोटियाँ, साग और आलू बच गए थे उनका नाश्ता भी करा दिया। चलती बार गुजरू ने बड़ी नम्रता से कहा, "समधी, अब जब तुम बुलाओगे हम तब आ जाएँगे।"

शुकरू ने उसके पाँव छूते हुए कहा, "भाई, अगर न बुला सका तो मुझ पर नाराज न होना।"

गुजरू ने आश्चर्य से पूछा, "यह क्या कह रहे हो समधी ? न बुला सकने की वजह ?"

शुकरू बोला, "सो तुम देख ही चुके हो, बेटी चली गई है। पता नहीं वापस इस घर में आएगी या नहीं। अगर आई भी तो उसकी इच्छा के खिलाफ शायद मैं कुछ नहीं कर सकूंगा।"

गुजरू ने कहा, "नहीं समधी, तुम्हें अपना वचन रखना ही होगा। ईमान-धर्म के लिए तुम्हें यह काम करना ही पड़ेगा। नहीं तो हमें ही कुछ दूसरा तरीका सोचना पड़ेगा।"

शुकरू ने पूछना चाहा, यह दूसरा तरीका क्या है, लेकिन उस समय वह रूपा के लिए दुखी था। उसने बात नहीं बढ़ाई। मेहमान विदा हुए।

उनके जाने के बाद उसने गाय को दूहा। गाय रूपा के हाथ पड़ी थी। आज कोमल अंगुलियों की जगह कठोर अंगुलियों का स्पर्श पाकर उसने दूध भी सिकोड़ लिया। आधा सा गिलास दूध लेकर शुकरू ने चाय बनाई। कल वह थोड़ी-सी सूजी ले आया था, उसका हलुआ

बनाया। दोनों चीजें तैयार कर उसने अच्छी तरह उन्हें ढक दिया और आंगन में खड़ा होकर रूपा की राह देखने लगा। वह जरूर आएगी, इस बात का उसे विश्वास था। वह बड़ी देर तक आँगन से रामसुरा के घर की ओर देखता रहा कि कब वह वहाँ से निकलेगी। पता नहीं वह कितनी देर वहाँ खड़ा रहा। सूर्य निकल आया, उसका ज्ञान उसे तब हुआ जब धूप आँगन में उसके पैरों के पास पड़ने लगी। अब वह निराशा में डूबने लगा। रूपा को वह जानता था। वह बाप को इस तरह छोड़कर नहीं जा सकती थी किन्तु परमेसरी से वह डरता था। पता नहीं, उसने उस पर क्या जादू कर दिया है? फिर उसे स्मरण हो आया कि रात को उसने उसे धक्का देकर गिरा दिया था। कहीं उसे ज्यादा चोट तो नहीं लगी है? उसे बुखार तो नहीं हो गया? इन शंकाओं के कारण उसके पाँव रामसुरे के घर की ओर अपने आप उठ गए। किन्तु कुछ दूर जाकर वह फिर रुक गया। परमेसरी के क्रोध का अनुमान कर उसे आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। फिर कुछ सोचकर आगे बढ़ा। अब वह रामसुरे के आँगन में पहुँचा तो घर के आदमी सब भीतर थे। एक खाट को घेर सब खड़े थे। वह डरता-डरता आगे बढ़ा। रूपा को खाट में पड़ा देखकर उससे लिपट गया और फफककर रो पडा। रूपा भय के मारे खाट से उठ बैठी। सब लोग चुपचाप खड़े रहे।

शुकरू बोला, "बिटिया, चलो अपने घर चलो। मैंने गुस्से में तुम्हें धक्का दे दिया। भगवान्, मेरा हाथ जल जाए, मैं कोढ़ी हो जाऊँ।"

रूपा ने परमेसरी की ओर करुणा भरी नजरों से देखा। परमेसरी की आँखों में क्रोध की चिनगारियाँ थीं। वह कड़ककर बोली, "अरी चुड़ैल, कह क्यों नहीं देती है, फिर भी तो कहना पड़ेगा। नहीं कहेगी तो भी क्या यूँ ही छिपा रहेगा?"

शुकरू ने झटके से अपना सिर रूपा की गोद से उठाकर परमेसरी की ओर देखा, "क्या बात चाची?"

रूपा ने दोनों हाथों से मुँह छिपा लिया और रोने लगी। परमेसरी एक दृष्टि रूपा की ओर फैंकती हुई बोली, "पूछ न इसी से जो किसी दाढ़ीजले का पाप पेट में छिपाकर बैठी है। जन्मुंही, बोलती क्यों नहीं? क्या देखा था उसमें तूने?"

शुकरू तड़ाक से उठ गया। उसके माथे पर बल पड़ गये और दृष्टि पशु की तरह हिंसक हो गई। रूपा की तरफ देखकर दाँत पीसते हुए बोला, "तभी ब्याह के लिए ना कर रही थी। बोल कौन है वह?"

रूपा डर के मारे काँप रही थी, वह किसी की ओर नहीं देख सकी। रामसुरे ने कहा, "शुकरू अभी जाने दो, बीमार है, इन बातों से उसकी बीमारी बढ़ जाएगी।"

शुकरू बोला, "बीमारी बढ़ जाएगी? यह मर जाए तो अच्छा है?"

परमेसरी बीच में ही बोल उठी, "यह मर जाएगी तो तुम्हें क्या फायदा होगा शुकरू? तेरी बदनामी क्या धुल जाएगी? सुन, इस छोकरी ने जो गलती की है, वह कइयों से हो जाती है। छोटे लोगों में तो यह गलती गलती ही नहीं मानी जाती और बड़े लोग भी पर्दे की आड़ में कैसी-कैसी बदनामी को सहते रहते हैं इसका तुम्हें ख्याल नहीं है। लेकिन मुझे इस छोकरी पर इसी बात का गुस्सा है कि इसने अपने से बड़ी जात के सपने क्यों देखे? ततबानी गई थी न, वहाँ

दिवाकर नाम के किसी बाम्हन के छोकरे पर रीझ गई। रीझ गई सो तो बड़ी बात नहीं है।"

शुकरू बीच ही में गुस्से से पागल हो उठा, "बड़ी बात नहीं है? मैं इसको उसी हरामज़ादे के दरवाजे पर पटक आऊँगा, कौन है वह? कहाँ का रहने वाला है? बोल ....." कहकर वह रूपा को बालों से पकड़कर खींचने लगा। रूपा ने एक चीख मारी फिर सिर घुटनों में छिपा कर रोने लगी। परेमसरी ने शुकरू को पीछे हटाते हुए कहा, "देख शुकरू, मेरे घर में बिटिया को हाथ लगाया तो जीता जाने नहीं दूँगी, समझे? अगर तुम्हें अपनी बदनामी की इतनी ही बड़ी चिन्ता है तो जा कहीं डूब मर ..... । इस बच्ची पर बहादुरी मत दिखा। अरे दाढ़िजले, रंडवे, इसने तेरी कितनी सेवा की। तू पिछले साल बीमार हुआ तो इसने हथेली पर थुकाया, तेरा मल-मूत्र अपने हाथ से उठाया और आज तू सब कुछ भूल गया? सिर्फ इसकी एक गलती को देखकर? कौन गलती नहीं करता? क्या तूने कभी नहीं की? और फिर इसकी गलती तो बड़ी गलती नहीं है। इसने जिसको एक बार दिल में जगह दी, उसी को अब तक वहाँ बिठाए हुए है। क्या यह गलती है? हाँ, गलती है तो यही कि उसने ऐसे आदमी को क्यों अपना आप दिया जो इसका कभी नहीं हो सकता। कहाँ खैरा का पंडित दिवाकर और कहाँ दत्तल के चमार की छोकरी रूपा! क्या यह भी कभी हो सकता है?"

खैरा का नाम सुनकर शुकरू एकदम सुन्न पड़ गया। तब तो यह बात बहुत जल्दी गुजरू के कानों तक पहुँच जाएगी। फिर क्या वह अपने लड़के का ब्याह करेगा? उसका क्रोध भीतर ही भीतर छिपकर नहीं रह सकता था। किन्तु परमेसरी के सामने उसकी हिम्मत नहीं हुई कि रूपा को कुछ कहे। वह वापस मुड़ने लगा तो परमेसरी ने कहा, "इसको भी लेता जा न, दूसरों के घर में यह कितने दिन पड़ी रहेगी?"

शुकरू बोला, "नहीं, इसे मैं घर में नहीं घुसने दूँगा।"

परमेसरी कड़क उठी, "क्यों नहीं? क्या उस घर में इसका हक नहीं है? दाढ़ीजले तू समझता है कि बाप बनकर तूने इस पर एहसान किया है? अगर ऐसे नहीं रखेगा तो मैं थाने में रिपोर्ट करूँगी कि इसने छोकरी को मारपीट कर घर के बाहर निकाल दिया है। जा री अपने घर। देखती हूँ वह कैसे नहीं तुझे घुसने देता है?"

शुकरू के पांव थाने का नाम सुनते ही रुक गए। किन्तु रूपा नहीं उठी, बोली, "नहीं चाची, मुझे वहाँ मत भेजो। मैं वहाँ नहीं जाऊंगी।"

परमेसरी ने गुस्से की आवाज में ही कहा, "नहीं जाएगी तो इधर क्या दूसरों का बोझ बनेगी। अपने घर जाने से डरती है तू। दूसरों के घर रहने में शर्म नहीं लगेगी? यहाँ कौन बैठा है तेरा?

इस जवाब से रूपा विह्वल हो उठी। उसने डरते-डरते खाट छोड़ दी और बाप के पीछे जा खड़ी हुई। शुकरू ने पीछे हटकर नहीं देखा। उसी तरह वह आगे चलने लगा और रूपा परमेसरी की दया पाने के लिए बार-बार मुड़कर देखने लगी। परमेसरी की आँखों में उस समय कठोरता थी, दया का रंचमात्र भी आभास नहीं था। निराश होकर रूपा अपने घर की ओर चली गई। परमेसरी उन्हें जाते देख मन ही मन मुस्करा पड़ी।

दिवाकर को आजकल एक ही काम था, गाँव में इधर-उधर गप्प लड़ाना। धर्मशाला के किसी दफ्तर में उसे नौकरी मिलनें की उम्मीद है। तीन-चार जगह इंटरव्यू दे आया था। उसे उम्मीद थी कि कहीं न कहीं काम बन ही जाएगा। दफ्तर कोई भी हो, लेकिन धर्मशाला जैसी जगह में नौकरी मिलना कम गौरव की बात नहीं थी। पुलिस के बड़े अफसर, डिप्टी कमिश्नर, स्कूल इन्स्पेक्टर वहीं थे। वहाँ नौकरी मिल जाने पर इनसे सलाम, राम-राम होती रहेगी तो कई काम बन सकते हैं। डिप्टी कमिश्नर के दफ्तर का चपरासी भी गाँव के लम्बरदार के लिए भूत होता है, तो फिर दिवाकर की यहाँ क्यों कद्र नहीं होती। सभी जगह उसे लोग आदर से बिठाते। लम्बरदार ने तो उनसे दोस्ती गाँठ ली है। पंचायत के सरपंच चरणदास भी उनकी काफी इज्जत करने लगे हैं। श्री चरणदास दिवाकर के होने वाले ससुर के दामाद थे इसलिए दिवाकर को साढ़ू ही कहने लगे हैं। दिवाकर को भी इस सम्बोधन से आनन्द ही हुआ है। चरणदास ने एक दिन कहा, "अरे भाई, पंडित जी ने सोचा क्या है? कल भी तो तुम्हारी सास कह गई ब्याह इसी साल हो जाना चाहिए। घर पर बातचीत नहीं चली? दिवाकर ने मनीषी की तरह कहा, "मेरी इच्छा तो इतनी जल्दी ब्याह करने की नहीं है। अभी तो कहीं पैर ही नहीं जमे। नौकरी मिल जाए, दो-चार बड़े-बड़े लोग मुट्ठी में आ जाएं, तब तो शादी करने का मजा है। आप देखना दो-तीन महीने में ही डिप्टी कमिश्नर साहब को या पुलिस के बड़े सुप्रिटेंडेंट साहब को इधर न ले आऊँ तो मेरा नाम दिवाकर नहीं। फिर देखना गाँव का क्या रूप बदलता है। बिजली आ जाएगी, नल लग जाएँगे। हो सका तो यहाँ तक पक्की सड़क बनवाने की कोशिश भी करूंगा। ये चीजें नहीं होंगी तो आजादी का मजा ही क्या? सच पूछो तो इन वर्षों में हम ने कुछ भी नहीं पाया है।" सरपंच उत्साह के साथ बोला, "पाया खाक है, उल्टा खो बैठे हैं। एक की खुशी दूसरे को नहीं सुहाती। भैया वे दिन कितने अच्छे थे जब गाँव में ब्याह-शादियाँ होती थीं तो गाँव के छोटे-बड़े सभी के घरों में पाँच-छः दिन तक चूल्हे नहीं जलते थे। आजकल तो पता भी नहीं चलता है कि कब शादी हो गई, कोई किसी को बुलाना भी नहीं चाहता है।"

पता नहीं कब गुजरू चमार बाहर देहरी के पास आ बैठा था। उसने सरपच की बात आगे बढ़ाई, "बझिया, अबके जमाने का तो हाल ही मत पूछो। लोग जबान देकर मुकर जाते हैं, हथेली में थूककर निगल जाते हैं। कुड़माई होने के बाद लड़की देने से इन्कार कर देते हैं। लड़कियां भी मुँह पर शादी करने से इनकार करने लग पड़ी हैं।"

दोनों उसकी बात नहीं समझ सके। दिवाकर ने पूछा—"किसकी बात करते हो?"

गुजरू जरा आगे खिसक कर बोला, "बझिया, क्या बताऊँ? दत्तल के उस शकरू के घर मैंने अपने लड़के की कुड़माई की थी। सच कहता हूँ बझिया, उस दिन मन भर आटा लगा और पाँच मटके सुर के खतम हुए। सारी बिरादरी वाह-वाह करने लगी। लेकिन उस हरामजादे ने कल कह दिया, 'हमारी लड़की तुम्हारे लड़के से शादी नहीं करना चाहती है।' पचास रुपये दिये थे सो उसने वापस कर दिए। भला पणत जी ऐसा भी कहीं होता है?"

दिवाकर ने पूछा "लड़की क्या बड़ी खूबसूरत है जो उसे तुम्हारा लड़का पसन्द नहीं आया?"

गुजरू बोला, "खूबसूरत हुई तो क्या हुआ ? बात तो बिरादरी के सामने पक्की हो गई थी। बाप ने रूपा नाम रखा है तो उसे रूप का ही घमंड हो गया। इस बार वह लुक-छिपकर ततवानी नहा आई है, उसी दिन से वह अपने को रानी समझ बैठी है।"

दिवाकर उठता हुआ बोला, "अच्छा सरपंच जी, देरी हो गई। फिर आऊँगा।" और वह लड़खड़ाते कदमों से बाहर निकल गया।

गुजरू चमार की बात ने दिवाकर को बड़ी परेशानी में डाल दिया। तीन-चार दिन वह इसी तर्क-वितर्क में लगा रहा कि उसे अब क्या करना चाहिए। जिस समय उसने रूपा को वचन दिया था उस समय उसके हृदय में किसी प्रकार का छल रहा होगा, ऐसी कुकल्पना करके भी वह अपने मन को शांत नहीं रख सका। निश्चय ही उसने हृदय से बात कही थी। भविष्य की ओर देखकर ही उसने वचन दिया था। किन्तु मन की उसी स्थिति को वह पुनः प्राप्त नहीं कर सका। कितने ही तर्क-वितर्क किए। कितनी ही माथापच्ची की, किन्तु उसे भविष्य का वह सुरम्य स्थल दिखाई न पड़ा जिसे देखकर उस ने रूपा को अपनी सहधर्मिणी माना था। हृदय की वह सात्त्विक अवस्था कब कहाँ कैसे लुप्त हो गई, कैसे उसका स्थान एक और ही प्रलोभन ने ले लिया इसकी सही-सही मीमांसा वह चार-पाँच दिनों में भी नहीं कर पाया। आखिर उसने यह सोचकर कि 'जो होना है वह होकर रहेगा' उस विषय में सोचना ही बन्द कर दिया। अब उसका सारा ध्यान अच्छी नौकरी की ओर मुड़ गया।

लेकिन एक दिन उसकी माँ पार्वती देवी ने अचानक उसके सामने यह प्रस्ताव रख दिया।

"बेटा, तुम्हें संस्कृत थोड़ी-बहुत सीखनी चाहिए।"

दिवाकर को शुरू से ही संस्कृत से चिढ़ थी। उसने आश्चर्य से पूछा, "क्यों माँ, ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी ?"

माँ ने चरखे की ओर ही देखते हुए कहा, "पंडित गजानन की लड़की से ब्याह करना है तो संस्कृत सीखे बिना काम नहीं चलेगा। उसके खानदान में सब कर्मकाण्डी हैं। बुजुर्ग बड़े-बड़े पंडित थे। खुद वे अपने इलाके के माने हुए पुरोहित हैं। तुमने श्राद्ध पढ़ना नहीं सीखा, शादी-ब्याह की तो बात कौन पूछे ? भला यह शर्मिन्दगी की बात नहीं होगी ? फिर हम ब्रास्मण हैं, अंग्रेजी-वंग्रेजी पढ़ने से हमें क्या मिलेगा। हमारी विद्या सब विद्याओं में ऊँची है। अगर तुमने वही नहीं सीखी, तो तुम्हें ब्रास्मण कौन मानेगा ? क्या गले में जनेऊ लटकाने से कोई ब्रास्मण हो जाता है ? हाँ तो...मेरी बात सुन ली न ?"

दिवाकर इस उपदेश से अभिभूत होकर माँ की ओर देखता रह गया। माँ ने पूछा—

"क्या सोच रहे हो ?"

दिवाकर ने गला साफ करते हुए कहा, "माँ, इतनी जल्दी क्या है ? नौकरी की तलाश में हूँ वह मिल जाए फिर थोड़ा-बहुत सीख लूँगा।"

माँ बोली, "ना... नौकरी मिलने से पहले ही यह काम करना होगा। इसी माघ महीने में शादी करने का इरादा है। अभी से शुरू नहीं करोगे, तब क्या पालकी में चढ़कर सीखोगे।"

"माघ में शादी की बात दिवाकर ने अभी तक सोची भी नहीं थी उसने शायद यह अनुमान लगाया था कि अगले वर्ष तक वह दिन आएगा और उससे पहले सोचने-विचारने के लिए काफी

समय मिल जाएगा। किन्तु माघ···यानें छः मास बाद, एक ही छलाँग में ये छः मास बीत जाएँगे। उसने कहा, ''नहीं माँ, इतनी जल्दी यह शादी नहीं हो सकेगी।''

माँ का स्वर कठोर हो गया, ''नहीं हो सकेगी? याने···तुम्हारा जोर चलेगा?''

दिवाकर बोला, ''मैं अपने जोर की बात नहीं कहता माँ। ···लेकिन फिर भी मुझे सोचने-विचारने का समय मिलना चाहिए।''

''क्या सोचो-विचारोगे? जरा बताओ तो।''

''कई बातें हैं···मैं·····''

''एक तो बताओ।''

दिवाकर कुछ नहीं कह सका। माँ बोली—

''आजकल यह फैशन हो गया है। शादी की बातचीत में झूठ-मूठ में ना-ना करने की बीमारी हो गई है आजकल के लड़कों को। भला बताओ तुम्हारे लिए सोचने-विचारने की क्या बात है। तुम्हारे पिता की हैसियत क्या कुछ कम है? शादी में दो-तीन हजार खर्च करना क्या उनके लिए कुछ कठिन है। फिर तुम्हारी शादी होगी दान-पुन्न से। एक कौड़ी भी किसी को देनी नहीं पड़ेगी। ···।क्या ऐसा मौका कहीं बार-बार मिलता है?''

पता नहीं क्यों, दिवाकर को माँ की एक भी बात अच्छी नहीं लग रही थी। उसकी इच्छा हो रही थी कि कहीं एकांत में बैठकर सोचूँ। जिस प्रश्न को उसने भुलाने का प्रयत्न किया था वह फिर उसके सामने उपस्थित हो गया। रूपा का भोला मुख, उसकी निश्छल प्रेम से भरी हुई बातें···उसका शंका से कातर मन···एक-एक करके उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष होने लगा। पल भर के लिए उसे ऐसा लगा कि वह ततवानी के उसी रम्यस्थल में पहुँच गया है जहाँ बैठकर उसने रूपा को सच्चे हृदय से आश्वासन दिया था। उसी सत्य रूप का पुनः साक्षात्कार हो गया जिसके अधीन होकर उसने प्रतिज्ञा की थी।

वह उठ गया। माँ ने आश्चर्य से उसका भाव-परिवर्तन देखा। कुछ कहने को तैयार भी हुई किन्तु यह सोचकर कि सुबह तक वह सोच ले, वह चुप रह गई। दिवाकर तेजी से बाहर निकला। उसका इरादा था कि बाहर जंगल की ओर जाऊँगा और किसी एकांत स्थान में बैठकर इस समस्या का हल खोजूँगा। आँगन पार करके वह जा रहा था कि सहसा रमा की आवाज सुनकर वह रुक गया। खरिक में रमा गाय को पानी पिला रही थी। दिवाकर को बाहर जाते देखकर उसके मन में कई दिनों से घुटता प्रश्न बाहर निकलने के लिए मचल उठा। जब दिवाकर रमा के पास आया तो उसने पूछा—

''भैया, जल्दी में तो नहीं हो?''

''जल्दी में तो हूँ, लेकिन तुम कहो क्या काम है?''

''ना मैं, यूँ नहीं कहूँगी। धीरज से मेरी बात नहीं सुन सकोगे तो कहने से कोई फायदा नहीं होगा।''

दिवाकर समझ नहीं सका कि धीरज से सुनने वाली बात क्या हो सकती है? किन्तु रमा ने जिस गम्भीरता से बात करनी चाही थी, वह नई ही थी। अतः दिवाकर को अपना इरादा बदल करके रुकना पड़ा।

"अच्छा, कहो....."

"पहले यह बताओ कि तुम कहाँ जा रहे थे, किसी काम से ?"

"नहीं काम कोई नहीं था, यूँ ही जंगल की तरफ जा रहा था।"

"जंगल की तरफ, इस समय ?"

"यही तो ठंडी हवा खाने का समय है।"

"लेकिन अँधेरा घिरने में देर भी तो नहीं है।"

"तो क्या हुआ ? अच्छा, तुम अपनी बात पूछो।"

"पहले थोड़ा सा गाय के लिए घास उतार दो।"

दिवाकर ने झुँझला कर कहा, "इसीलिए बुला लिया होगा मुझे ?"

रमा ने हँसी बिखेरते हुए कहा, "एक काम यह भी था, तलड़ी[1] पर चढ़ना मेरे लिए तो मुश्किल था इसलिए तुम्हें बुला लिया। लेकिन एक दूसरी बात भी है।"

दिवाकर ने ऊपर चढ़कर घास उतारा। रमा लकड़ी के तख्त पर पूला रखकर गँड़ासे से उसे काटने लगी। कुछ देर तक दिवाकर उसकी दूसरी बात की प्रतीक्षा करता रहा किन्तु रमा बार-बार कहने के लिए तैयार हुई और कुछ कह नहीं सकी। दिवाकर खीझकर उठने लगा कि रमा ने कहा, "भैया, तुम भी नहीं सुनोगे ?"

बात इतने करुण स्वर में कही गई थी कि दिवाकर का अंत:करण काँप उठा। उसके हृदय में सचमुच कोई पीड़ा छटपटा रही है इसका अनुमान लगाकर वह पुन: बैठ गया। रमा ने किसी तरह हृदय की समग्र शक्ति को एकाग्र कर पूछा—

"भैया, क्या वह बात सच है ?"

दिवाकर ने आश्चर्य से पूछा, "कौन सी बात ?"

रमा सिर झुकाकर बोली, "देवला वाली।"

दिवाकर को लगा कि उसके हृदय के कोने में यह बात चुभ गई है। उस दिन उसने माँ की हाँ में हाँ मिलाकर इस बात का समर्थन किया था। पिताजी उसकी साक्षी सुनकर चुप रह गए थे। रमा उस दिन चुपचाप उठकर चली गई थी और उसने स्वयं यह बताने की आवश्यकता अनुभव नहीं की थी कि इस सत्य में असत्य का आवरण कितना है। उस दिन तो उसका मन ततबानी की स्मृति में मग्न था। अमर के चरित्र पर विश्वास होते हुए भी वह इस आरोप का समर्थन कैसे कर सका था। यह बताना उसके लिए कठिन था और कठिन है। रमा को जब अपनी बात का उत्तर नहीं मिला तो उसकी उतावली बढ़ गई। बोली, "भैया, मेरी बात का जवाब नहीं दिया।"

दिवाकर चौंक पड़ा और कोई उत्तर न देखकर वह पूछ बैठा, "लेकिन तुम यह सब क्यों पूछती हो ?"

रमा ने दृढ़ स्वर से कहा, "इसलिए कि मुझे विश्वास है कि वे ऐसा नहीं कर सकते।"

दिवाकर आश्चर्य विमूढ़-सा उसकी ओर देखता रहा। शादी के नाम से ही किसी कोने में जा छिपने वाली लड़की अपने चुनाव की घोषणा इतनी निर्भीकता से अपने भाई के आगे कर सकती है यह उसने सोचा तक नहीं था। यद्यपि रमा बिल्कुल अपढ़ नहीं थी किन्तु संस्कारों से वह

१. पशुओं को बांधने की जगह, घास-फूस के लिए बनाई गई दुछत्ती।

अन्य लड़कियों के समान ही तो थी। वह बोला—

"रमा, तुममें इतनी हिम्मत कहाँ से आ गई?"

रमा शान्त स्वर में बोली, "क्या अधिकारों के लिए लड़की इतना-सा भी प्रयत्न नहीं कर सकती भैया?"

इस उत्तर ने दिवाकर को और भी आश्चर्य में डाल दिया। वह बोला, "यह अधिकार की बात क्या तुम्हारी अपनी है?"

"नहीं तो क्या मैं किसी और के लिए वकालत कर रही हूँ?"

"नहीं, मेरा यह मतलब नहीं। किन्तु यह भावना तो यहाँ की लड़कियों के लिए नई है।"

रमा ने गंडासे को एक ओर रखकर कटा हुआ चारा गाय के आगे फैंका। फिर बोली, "भैया, क्या तुम नई बातों से इतना डरते हो?"

"नहीं लेकिन आश्चर्य होता है कि तुम में इतना साहस कैसे आ गया।"

रमा ने फिर अपनी बात दुहरा दी, "भैया, मैं कह जो चुकी हूँ कि अपनी चीज की रक्षा के लिए सभी प्रयत्न करते हैं।"

दिवाकर को इसमें रत्तीभर भी संशय नहीं रहा कि रमा जो कुछ कह रही है, वह खूब सोच-विचार कर निश्चय करने के बाद ही कह रही है। आगे उसने कोई प्रश्न नहीं किया। रमा ने फिर पूछा, "मेरी बात का जवाब नहीं दोगे?"

दिवाकर कुछ निर्णय नहीं कर सका कि क्या उत्तर दे। वास्तव में वह किसी तरह उस चर्चा को टाल देना चाहता था किन्तु जब उसने देखा कि रमा अपनी बात पर तुली हुई है तो उसने कह डालना ही उचित समझा।

"देखो बहन, पहले तुम्हें मेरी बात का जवाब देना होगा।"

"अच्छा पूछो।"

"तुम्हें क्यों ऐसा विश्वास होता है कि अमर ऐसा नहीं कर सकता।"

रमा ने सिर उठाए बिना ही कहा, "विश्वास प्रेम के पीछे-पीछे चलता है और..."

दिवाकर बीच में ही बोल उठा, "बस, आगे मैं समझ गया। हाँ तुम्हारे प्रश्न का उत्तर अब मैं ठीक-ठीक से दे सकूँगा। उस रात को मैं जाग रहा था, मैंने खुद अपनी आँखो से वह दृश्य देखा है। इसलिए मेरे इन शब्दों में असत्य का लेश भी नहीं होगा।" वह आगे कहता-कहता फिर रुक गया। उसकी इतनी-सी अधूरी बात सुनकर रमा का चेहरा पीला पड़ गया। दिवाकर बोला, "रूपा बेहद खूबसूरत है। न जाने भगवान् ने किस अपराध के दण्ड में उसे छोटी जात में पैदा किया। सच कहता हूँ, तुम्हारे इस भाई का दिल उसे देखकर ललचा गया था। उस रात मुझे नींद नहीं आई थी। बार-बार मुझे ऐसा लग रहा था कि कोई मेरे दिल में घुसने का प्रयत्न कर रहा है। मैं जितना ही उस मूर्ति को अपनी आँखों से दूर करने की कोशिश करता उतनी ही वह भीतर धँसने लगी। फिर अचानक मैंने सुना कि वह रो रही है। मेरी इच्छा हुई कि उसके पास जाकर तसल्ली के दो शब्द कहूँ, किन्तु किसी बोझ से दबकर मैं वैसे ही लेटा रहा। सनसनाती हुई बर्फीली हवा चल रही थी। वह ठिठुर रही थी और हम मजे से अलाव के पास कंबलों में लिपटे हुए थे। आखिर अमर की नींद खुली। उन्होंने उठकर अपना कंबल उसे दे

दिया। वह उनके चरणों से लिपटकर फफक पड़ी। अमर ने उसकी पीठ थपथपाई और फिर वहाँ से घूमने के लिए चले गए। बस इतनी-सी घटना है, इसमें रत्तीभर भी मिलावट नहीं। सुबह होते ही रूपा के पास अमर भैया का कंबल देखकर ही माँ ने बात का बतंगड़ बना दिया।"

दिवाकर की बात समाप्त हुई तो उसने रमा की ओर गौर से देखा। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा निकलकर, कपोलों से होती हुई, गोद पर गिर रही थी। उसने उठते हुए कहा, "आज तुम्हारी बात का जवाब देकर मेरा मन भी कुछ हल्का हो गया है। अब मैं चलता हूँ।"

रमा ने चौंककर अपनी आँखें पोंछ डालीं और फिर बोली, "कहाँ जाओगे?"

दिवाकर बोला, "कहीं नहीं। अब कोई जरूरत नहीं। जिस काम के लिए जाना था, वह यहीं पर हो गया। मुझे अँधेरे में रास्ता मिल गया।"

वह चला गया और रमा चकित होकर उसे देखती रही। उसके बाद उसका ध्यान अमर की ओर चला गया। वह गाय के गले से लिपट कर बड़ी देर तक रोती रही। फिर खरिक का दरवाजा बन्द कर घर आ गई।

रमा जब बैठक से होकर गुजरी तो किसी अपरिचित व्यक्ति को वहाँ देखकर ठिठक गई। पिताजी उस मेहमान से बात कर रहे थे, माताजी भी छोटा-सा घूँघट निकालकर कुछ दूर खड़ी हुई थीं। रमा ने अनुमान लगा लिया कि कोई खास सलाह-मशिवरा चल रहा है। वह वहीं दरवाजे से बाहर अँधेरे में खड़ी होकर सुनने लगी।

मेहमान कह रहा था, "लड़का मैट्रिक पास है, संस्कृत की विशारद परीक्षा भी उसने पास की है और कुल-गोत्र की बात तो आप जानते ही होंगे।"

पिताजी चुप रहे। किन्तु माँ ने कहा, "कृष्ण को तो मैंने भी एक-दो बार देखा है। लड़के में किसी तरह की कमी नहीं है लेकिन......"

"लेकिन क्या?" मेहमान ने पूछा।

माँ बोली, "लड़की के पिता की हाँ ही हाँ होगी।"

पंडित नित्यानन्द ने जैसे नींद में चौंककर कहा, "मेरी हाँ और ना से क्या होता है। लड़की पर पिता की अपेक्षा माँ का अधिकार ज्यादा होता है। जब तुम्हें मंजूर है तो मुझे उसमें क्या एतराज हो सकता है?"

रमा धम्म से वहीं अँधेरे में गिर पड़ी। मेहमान ने अपनी पगड़ी पंडित जी के चरणों में रखते हुए कहा, "तो बात तय हुई।"

रमा के गिरने से जो धमाका हुआ था उससे चौंककर माँ बाहर आ गई। बाहर रमा की हालत देखकर उसके मुँह से चीख निकल गई। पंडित जी और मेहमान भी दौड़ कर बाहर आए। रमा तब तक बेहोश थी।

रमा की मँगनी कृष्ण से हो गई और इसकी सूचना कृष्ण ने स्वयं ही अमर को दी। दोनों अभिन्न मित्र थे। दोनों में विचारों का भी बहुत कुछ साम्य था। हाँ, अमर ने अपने हृदय के गुप्त कोने का परिचय अभी तक किसी को नहीं दिया था। रमा को वह कितना चाहता है इसका अनुमान कृष्ण को बिल्कुल नहीं था।

वह तो इतना जानता था कि रमा के साथ अमर की मँगनी की बातचीत भी चल रही थी किन्तु वह टूट गई। क्यों टूटी, इस विषय में वह अधिक नहीं जानता था और न ही उसने जानने की आवश्यकता ही समझी थी। लड़कियों की तलाश में कई जगह दौड़-धूप करनी पड़ती है और दस-बारह घरों में नाक रगड़ने के बाद किसी एक लड़की से सम्बन्ध स्थिर होता है।

ऐसी हालत में बातचीत का टूट जाना कोई चिन्तनीय विषय नहीं और ऐसी बातचीतों में हृदय के सौदे की कल्पना करना भी गलत है। इन्हीं कुछ कारणों से कृष्ण ने इस प्रसंग को साधारण समझ लिया था और रमा तथा अमर के प्रेम की गंध उसने नहीं पाई थी। फिर अमर ने बातचीत में भी कभी रमा का या उस गाँव का जिक्र नहीं किया था।

दोनों उस दिन बड़ी रात तक गाँव के बाहर मैदान में बैठे थे। दिन भर वे दोनों काफी व्यस्त रहे थे। जिन अधिकारियों के पास उन्होंने जंगल पर नाजायज अधिकार करने वालों के विरुद्ध शिकायतें की थीं, उनकी ओर से आज जाँच-पड़ताल के लिए अफसर आए थे। लंबरदार, सरपंच आदि के साथ उन्हें भी अफसर के साथ दिनभर घूमना पड़ा था। इस समय वे यही मशिवरा करने के लिए यहाँ बैठे थे कि लोगों के विरोध का मुकाबला कैसे किया जाएगा। उन्होंने सुना था कि जिन लोगों को इस तफतीश की वजह से नुकसान होने वाला है, वे मारपीट करने वाले हैं। उन लोगों में लंबरदार और उनके रिश्तेदार भी शामिल हैं। काश्तकारों ने एक-तिहाई अनाज देने का जो फैसला कर रखा है, उससे भी जमीन के निठल्ले मालिक भड़क उठे हैं। हरिजनों के रहने की जमीन पर से जमींदार का कब्जा उठ गया है, यह बात भी कुछ लोगों को खाए जा रही है। इनके अतिरिक्त और भी कई विरोधी तत्त्व खड़े हो गए थे। कई तो ईर्ष्या के कारण ही अमर और उसके साथियों से मन ही मन कुढ़ रहे थे।

बड़ी देर तक उनकी बातें होती रहीं। जब वे प्रसंग समाप्त हो गए तो कृष्ण ने चलते-चलते कहा, "अच्छा, अब मैं एक व्यक्तिगत खबर सुनाता हूँ। मेरी मँगनी हो गई है।"

अमर प्रसन्नता से उछल पड़ा, "हैं कब ? कहाँ ?"

कृष्ण बोला, "बात तो कल ही पक्की हुई है, और हुई भी वहाँ जहाँ तुम हार आए थे।"

कहकर उसने मुस्कराते हुए अमर की ओर देखा। अमर ने पूछा, "क्या खैरा में ? किसके यहाँ ?

कृष्ण उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, "कहा न, जहाँ तुम हार गए थे, वहाँ मैं जीत आया हूँ। पंडित नित्यानंद की लड़की से सम्बन्ध ठहरा है। तुम्हारी बातचीत भी चल रही थी न वहाँ ?"

अमर ने धीमे से कहा, "हाँ चल तो रही थी।"

"तो फिर टूटी क्यों ?"

"ऐसी बात टूटने के लिए क्या कोई बड़ा कारण चाहिए?"

"बड़ा नहीं, छोटा ही जानना चाहता हूँ।"

"तो समझ लो उन्हें मैं पसन्द नहीं आया।"

"तुम्हारी क्या बात पसन्द नहीं आयी?"

"यह तो तुम-उसीसे पूछ लेना.....'' कहकर अमर ने प्रसंग बंद करना चाहा, किन्तु कृष्ण में कुछ कुतूहल जाग पड़ा। 'उन्हीं से पूछ लेना' की जगह 'उसीसे पूछ लेना' अमर की यह भूल थी या स्वाभाविक अभिव्यक्ति। उसने पूछा—

"अमर भैया, एक बात पूछें?"

अमर बोला, "कहो।"

"तुमने रमा को देखा है?"

"हाँ.....।"

"कैसी है?"

"उस जैसी लड़की बहुत कम मिलती हैं।"

कृष्ण थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा। फिर बोला—

"क्या वह प्रेम करने योग्य है?"

अमर मुस्करा दिया, "इससे भी ज्यादा।"

"क्या मतलब?"

"उसकी पूजा भी की जा सकती है।"

कृष्ण ने अँधेरे में भी अमर के चेहरे की ओर देखने का प्रयास किया कि वहाँ किस तरह का परिवर्तन हुआ है किन्तु वहाँ पहले जैसी सामान्य मुस्कराहट के अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं मिला। कुछ देर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। कृष्ण के हृदय में एक बात बाहर निकलने के लिए मचल रही थी किन्तु उपयुक्त शब्द उसे नहीं मिल रहे थे। आखिर उसने पूछा—

"क्या यह सच है कि उस खानदान में कोई दोष है?"

अमर को इस प्रश्न से आश्चर्य हुआ। उसने उत्तर दिया—

"दोष कहाँ नहीं होते? और फिर रमा में तो कोई दोष नहीं।" कृष्ण तय नहीं कर सका कि कैसे बात की जाए। बोला—

"तुममें भी तो कोई दोष नहीं था?"

"यह तुम कैसे कह सकते हो?"

"मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ, इसलिए।"

"अच्छी तरह तो मैं भी अपने आप को नहीं जानता हूँ।"

"तब तो शायद यह भी हो सकता है कि तुम्हारा हृदय रमा को प्यार करता हो और तुम स्वयं यह बात नहीं जानते हो।"

अमर की मुस्कान लुप्त हो गई किन्तु अँधेरे के कारण कृष्ण उसे लक्ष्य नहीं कर पाया। चुप रहकर उसे शंका का अवसर न मिल जाए, अतः अमर खिलखिला कर हँस पड़ा, "तुमने यह बात पहले ही प्रश्न में क्यों नहीं पूछ ली?" क्या तुम समझते हो कि मेरा प्रेम इतना सस्ता है जो बिना

आधार के जिस-किसी को प्रेम करने लग जाऊँ''.....।लेकिन,अब तो आधार हाथ लगने वाला है। भाभी बन जाएगी, तब देवर की हैसियत से प्यार करने का मुझे हक होगा। कहीं तब मुझसे ईर्ष्या मत करने लगना।''

कृष्ण के हृदय का धुंधलापन स्पष्ट हो गया। उसने हँसते-हँसते कहा, ''ईर्ष्या करना भी तो मनुष्य का ही काम है। यदि रमा ऐसी निकले कि मुझे ईर्ष्या करने का मौका मिल जाए तो मैं समझूँगा कि मैं धन्य हो गया।''

उसकी बात से अमर के शरीर में हल्का-सा कम्पन हुआ किन्तु दूसरे ही क्षण वह सँभलकर बोला–

''ये सिर्फ कहने भर की बातें हैं। अगर ऐसी स्थिति आ गई तो तुम मुझ से मिलना-जुलना बंद कर दोगे। अपने घर भी मुझे नहीं आने दोगे। और तो नहीं लेकिन तब हमारी मंडली को काफी क्षति पहुँचेगी।'' कृष्ण हँस पड़ा।

कृष्ण के घर के पास दोनों मित्रों ने विदा ली। कृष्ण एक ओर प्रसन्न चित्त जाने लगा और अमर अँधेरे में ठोकरें खाता बढ़ने लगा। उसके सामने एक नई समस्या खड़ी हो गई। एक महान् परीक्षा, जिसमें उसके असफल होने के अधिक अवसर होंगे। वह सिर झुकाकर बढ़ता गया। कहाँ उसे ठोकर लगी, कहाँ वह गड्ढे में गिरते-गिरते बचा, इन बातों की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया।

विचार-तरंगों में डूबते-उतरते रास्ता तो न जाने कब कट गया, किंतु घर के पास आकर उसे माँ की याद आई। उसने सुबह भी कुछ नहीं खाया था। इतनी रात तक वह मेरी प्रतीक्षा करती रही होगी। कुछ दिनों से अमर का ध्यान माँ की ओर विशेष रूप से जाने लगा था। जब से खैरा की बातचीत टूटी है, वह अधिक बातचीत नहीं करती थी। अमर के साथ वैसे भी वह बात करते डरती थी। कभी उसने अपने माँ के अधिकार का प्रयोग नहीं किया। इसके लिए अमर भी जिम्मेदार था। वह जो चाहती थी, अमर अक्सर उसका विरोध करता था। इसलिए नहीं कि अमर को माँ की जरा भी परवाह नहीं थी या वह उसका अनादर करता था किन्तु इसलिए कि वह प्रगतिशील विचारों का पढ़ा-लिखा युवक था। उसकी दृष्टि का विस्तार काफी बड़ा था। उधर माँ पुरानी रूढ़ियों अन्ध-विश्वासों और छोटी-छोटी आकांक्षाओं में बूढ़ी हुई थी। वह जानती थी कि उसका पुत्र लायक है, लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, उसके विचार नये किन्तु जमाने के मुताबिक हैं। वह इसका गर्व भी अनुभव करती थी। शायद इसलिए उसने अपनी बात को सुझाव के रूप में बेटे के आगे रखने की आदत बना लीं थी।

अमर की शादी के लिए वह हमेशा चिंतित रहती थी किन्तु अमर शादी के नाम से कुछ चिढ़ने लगा था। उसका मिजाज भी चिड़चिड़ा होने लगा था।

अमर आँगन में पहुँचा तो वह तीन औरतों को खड़ा देखकर विस्मय में पड़ गया। एक को तो उसने अँधेरे में भी पहचान लिया, वह माँ थी। दूसरी और तीसरी के सम्बन्ध में वह सोचने लगा। तभी उनमें से एक ने कहा–

''पता नहीं, अमर कब आएगा। मैं चलती हूँ।''

''माँ बोली, ''लेकिन अँधेरे में जाओगी कैसे? जरा और देख लो। उसकी भी ऐसी आदत

हो गई है कि आधी-आधी रात तक गप्पें लड़ाता है।"

अब तीसरी की आवाज आई जो मधुरता लिये हुए थी, "लेकिन वे दोनों गाँव भर से निराले ही हैं, उनकी बातें भी वही समझ सकते हैं, पता नहीं किस नई तरकीब के लिए जंगल में बैठे बातें कर रहे हैं।"

तीसरी स्त्री को अमर ने तुरन्त पहचान लिया और दूसरी का भी कुछ अनुमान लगा लिया किन्तु ये तीनों इतनी रात तक क्या बातचीत कर रही थीं यह उसकी समझ में नहीं आया। उसने खाँसने का अभिनय करते हुए अपने आने की सूचना दी। स्त्रियाँ चौंक पड़ीं। नीलू ने सिर का पल्ला जरा नीचे सिखका लिया। माँ बोली, "बेटा, तुम इतनी रात तक कहाँ बैठे रहते हो?"

अमर ने मुस्कराते हुए कहा, "कृष्ण के साथ था।" फिर उन दोनों की ओर मुड़कर बोला, "आज का दिन बड़ा शुभ लगता है जो आप......"

नीलू ने घूँघट की आड़ में कहा, "लला जी, रात को दिन मानने का आज कौनसा कारण है?"

अमर किंचित् मुस्कराकर बोला, "भाभी, यह तो जीभ की गलती है, मेरी नहीं। लेकिन आज कौन सी समस्या पर विचार हो रहा था जो तीन बड़ों की बैठक हो रही है?"

नीलू बोली, "तीन बड़ों की बात तीन बड़े ही जान सकते हैं। आप हमें हमारे घर छोड़ आइए।"

माँ बोली, "बेटा! बड़ी देर से तुम्हारी इन्तजार कर रही हैं। अँधेरे में अकेली कैसे जाएंगी?"

वह बोला, "हाँ, हाँ। घर ही जाना है न! कौन-सी देर हुई जा रही है? अभी रात बड़ी है। लेकिन एक खबर तो चाची के मुँह से सुननी है। क्यों चाची, मीठा मुँह नहीं करोओगी?"

कृष्ण की माँ बोली, "उसी के लिए आई थी। तुम्हारे हिस्से के लड्डू अन्दर रखे हैं। और रही खबर की बात सो कृष्ण ने तुम्हें बता ही दी होगी।"

नीलू बड़े ध्यान से अमर की ओर देख रही थी। लक्ष्मी लालटेन लाने के लिए अन्दर चली गई थी। जब वह लालटेन हाथ में लेकर बाहर आई तो अमर का चेहरा प्रकाश पड़ने से स्पष्ट हो गया। नीलू ने देखा उसमें निश्छल मुस्कान खेल रही है। अमर बोला, "चाची, कृष्ण उसके खानदान की बात पूछता था। मैं तो नहीं जानता कि उनके खानदान में क्या दोष है किन्तु होगा भी तो तुम पुराने चीथड़ों को देखकर रत्न को मत खो देना।"

चाची बोलीं, "बेटा, हमें लड़की ब्याहनी है। खानदान नहीं। वह कैसा ही हो? और लड़की के बारे में तो नीलू ने मुझे बेफिक्र कर दिया है।"

अमर ने नीलू की ओर देखा और बोला, "भाभी की सहेली आँख मूँदकर ब्याहने लायक है चाची!"

नीलू कुछ शरमा गई, तभी माँ ने कहा, "बेटा, इन्हें जल्दी घर छोड़ आ, देर हो रही है।"

अमर चलने को तैयार हुआ। नीलू भी चल पड़ी। तभी पास आती हुई रोशनी दिखाई दी। अमर ने देखा कृष्ण माँ को ले जाने के लिए आ गया है।"

अमर नीलू के साथ छोटी पगडंडी से ही चला। कृष्ण के पहुँचने से पहले ही वह अदृश्य हो

गया था। आते ही कृष्ण ने पूछा, "अमर कहाँ है ?"

लक्ष्मी बोली, "अभी-अभी नीलू को घर पहुँचाने गया है।"

"ओह !" कहकर कृष्ण हारा हुआ सा वहीं बैठ गया। उसकी माँ ने पूछा, "क्या बात है बेटा ?"

उसने माँ की ओर देखा, "क्रोध की चिनगारियाँ उसकी आँखों में दिखाई दे रही थीं। उसने पूछा—

"माँ, क्या यह सच है ?"

माँ ने पूछा, "क्या है ?"

"फूफा जी जो कुछ कहते हैं वह।"

"हाँ, सच ही लगता है।"

"अमर भैया जानते हैं ?"

"नहीं, लेकिन अभी जान लेगा। हम तीनों की यही बातचीत चल रही थी। नीलू भी अपने मायके से कल ही आई है। उसने भी वही बात कही।"

कृष्ण ने दृढ़ता से कहा, "तो फिर मैं वहाँ ब्याह नहीं करूँगा।"

लक्ष्मी चुपचाप खड़ी थी, अब बोली, "बेटा तुम लोगों का दिमाग बहुत जल्दी गर्म हो जाता है। किसी भी बात का ठीक-ठीक अर्थ गर्म दिमाग से नहीं लगाया जाता। जाओ, घर जाओ और आराम करो। हमने खूब सोच-विचार कर जो बात पक्की की है वही तुम्हारे लिए ठीक रहेगी।"

कृष्ण बोला, "नहीं चाची, इस मामले में मैं किसी की नहीं सुनूँगा।"

उसकी बात सुनकर कृष्ण की माँ डर गई। थोड़ी देर बाद अमर नीलू भाभी को घर पहुँचा कर लौट आया। माँ ने उसे कृष्ण को समझाने के लिए कहा। अमर ने अधिकार जताते हुए कहा, "देखो कृष्ण, तुम्हें सब की बात माननी ही होगी।"

कृष्ण बोला, "भैया, अच्छी तरह सोच-विचार कर, न्याय की बात कहोगे तो जरूर मानूँगा। लेकिन उससे पहले तुम्हें सारी हकीकत जान लेनी होगी।"

अमर ने मुस्कराते हुए उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा, "मैं जान चुका हूँ। नीलू भाभी ने सब कुछ बता दिया है। अब तो ना कहने की धृष्टता नहीं करोगे।"

कृष्ण ने लालटेन के पीले प्रकाश में मित्र की नजरों से नजरें मिलाईं, फिर लक्ष्मी की ओर एक बार देखा। उस समय वह असहाय बालक के समान लग रहा था जो किसी बड़े से सहायता पाने की आशा किए हो। फिर माँ की ओर देखकर बोला, "अच्छा माँ ! सच-सच बताना। क्या तुम्हारी इच्छा रमा को बहू बनाने की है ?"

माँ ने उत्तर दिया, "बेटा, कैसी बातें कर रहे हो ? रमा का इसमें दोष ही क्या है और फिर कितनी दौड़धूप के बाद रिश्ता बना है, क्या इसे यूँ ही छोड़ दूँ ?"

"लेकिन माँ....." उसने दुखी स्वर में कहा, "उन्होंने किसलिए अमर भैया को नापसंद किया था यह भी जानती हो ?"

"हाँ, जानती क्यों नहीं ?" वह बोली, "उन्होंने झूठा शक किया था। जब वह बात सामने आ गई तब वे लोग पछताए। लेकिन इसमें हमारे रिश्ता न मानने का तो कोई कारण नहीं है ?"

कृष्ण बोला, "क्यों नहीं है ? जब उन्हें अपनी गलती का पता चल गया है तो बिगड़ा सम्बन्ध फिर बन सकता है। अमर भैया के लिए ही बातचीत पक्की की जाए, इसके लिए मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा।"

लक्ष्मी बोल उठी, "ये सब बातें हम ने पहले ही सोच ली हैं बेटा ! मँगनी की रस्म हो गई है तो उसे तोड़ना अच्छा नहीं। फिर इसका भी क्या भरोसा कि वे सम्बन्ध फिर से जोड़ने के लिए तैयार हो ही जाएँगे ? नीलू कहती थी, उन सब का रवैया यही है कि तुम्हारे साथ ही रमा का ब्याह हो।"

कृष्ण तपाक से बोला, "नीलू भाभी वहाँ गई तो थी ? तो उसने सब तमाशा अपनी आँखों से देखा होगा। क्या कहती थी वह ?..."

प्रसंग किसी और जगह जा पहुँचा। इससे कृष्ण की माँ की बड़ी चिन्ता कम हो गई। वह बोली, कहती थी, "वह छोकरी अपनी किसी चाची को साथ लेकर खुद आई थी। उसने आते ही सब बातें कह दीं। दिवाकर भी उस दिन घर ही था। उस छोकरी की चाची ने चिल्लाकर सारे गाँव को इकट्ठा कर दिया। पहले तो दिवाकर अन्दर छिप गया, लेकिन जब परमेसरी गाँव के लोगों को पकड़कर ले आई तो उसे बाहर निकलना ही पड़ा। मुआ वह भी मूर्ख निकला। साफ मुकर जाता तो कोई क्या कर सकता था ! लेकिन उसने भी सब लोगों के सामने मान ही लिया कि उसने गलती की है। सारा गाँव तमाशे के लिए इकट्ठा हो गया। पंडिताइन ने पहले तो उस छोकरी और उसकी चाची को बहुत-सी गालियाँ दीं, फिर शरम से मुँह छिपाकर घर में घुस बैठी। सब लोग मुँह चिढ़ाकर चले गए।"

अमर ने भी यह कहानी पूरी नहीं सुनी थी। नीलू के मुँह से सूचना भर पाई थी। वह दत्तचित्त होकर सुन रहा था। कृष्ण की माँ की बात समाप्त होते ही उसने पूछा, "नीलू ने यह नहीं कहा कि रूपा को उन लोगों ने क्या जवाब दिया ?"

वह बोली, "जवाब क्यों देते ? उन्होंने दो-अढ़ाई सौ रुपये देकर मामला रफा-दफा करना चाहा, लेकिन उस छोकरी ने रुपये छुए तक नहीं।"

"और दिवाकर ने क्या कहा ?" उसने फिर पूछा।

"वह क्या कहता ?" "क्या यह कहता कि मैं उसके साथ ब्याह करूँगा ?"

"अगर वह आदमी होता तो यही कहता।"

उसने कृष्ण की ओर समर्थन के लिए देखा। कृष्ण बोला—

"उसका यह फर्ज है। उसे रूपा से ब्याह करना ही चाहिए।"

लक्ष्मी और सुभद्रा (कृष्ण की माँ) ने समझा दोनों मजाक कर रहे हैं। वे एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्करा पड़ीं।

अमर ने कहा, "मैं कल ही खैरा जाऊँगा और दिवाकर को समझाने की कोशिश करूँगा।"

उसकी बात सुनकर लक्ष्मी चौंक पड़ी, बोली—

"बेटा, तुम्हें क्या हो गया है ? ब्राह्मण को चमार की लड़की से ब्याह करने के लिए कहोगे ?"

अमर बोला, "माँ, तुमने वह लड़की देखी नहीं है, देखती तो कहतीं..... ।" वह कहते-कहते रुक गया फिर बात बदल कर बोला, "यह कोई पाप नहीं है माँ...पाप तो है एक लड़की की जिन्दगी हमेशा के लिए बरबाद करना। भला सोचो उस बेचारी का क्या होगा ?"

लक्ष्मी ने नाक सिकोड़ कर कहा, "बेचारी कैसे हुई वह ? यह तो जात ही ऐसी है...बड़े लोगों का धर्म भ्रष्ट हो जाता है और इनका क्या बिगड़ता है ? फिर किसी के घर जा बैठती हैं। दो-चार घर करना तो इनके लिए मामूली बात है।"

अमर के चेहरे पर एक म्लान मुस्कान प्रकट हुई। उसमें कितनी करुणा थी इसका अनुमान कृष्ण ही लगा सका। अमर ने आगे कुछ नहीं कहा। कृष्ण की ओर देखकर बोला, "कृष्ण, तुम्हें देर हो रही है—चाची भी खड़े-खड़े थक गई होंगी।"

कृष्ण बोला, "लेकिन मेरी बात का क्या जवाब दिया ?"

"किस बात का ?"

"वे मान गए तो तुम्हें वहाँ शादी करनी होगी।"

अमर सोच म पड़ गया। क्षणभर चुप रहकर वह बोला, "अच्छा, तुम्हारा हठ मैं मान लूँगा लेकिन अगर उनमें से किसी की भी अनिच्छा होगी तो तुम्हें मेरी बात रखनी पड़ेगी।"

"अच्छा, मुझे शर्त मंजूर है।" कहकर कृष्ण चलने लगा। अमर ने चाची से विदा लेते-लेते कहा—

"चाची, अब चिन्ता की बात नहीं। कृष्ण मुझ से शर्त बदकर कभी नहीं जीता।"

चाची बोली, "उसकी हार भी अच्छी और जीत भी..... ।"

उन दोनों के चले जाने के बाद अमर और उसकी माँ भीतर आ गए।....

दूसरे दिन अमर बिना माँ को बताए खैरा चल दिया। जब वह वहाँ पहुँचा तो करीब दस बज रहे थे। पंडित जी बैठक में अकेले बैठे हुक्का पी रहे थे। वे किन्हीं विचारों में खोए हुए थे। अमर को अचानक अपने सामने देखकर अचम्भित हो गए। कुछ निर्णय नहीं कर सके कि क्या कहा जाए ? बैठने के लिए आसन देना भी भूल गए, एकटक उसकी ओर देखते रहे फिर उठ कर दूसरे कमरे में चले गए। अमर उन्हें जाता देखता रहा। वह चुपके से एक आसन खींचकर बैठ गया। पता नहीं वह क्या-क्या सोचता रहा ? वह किसलिए यहाँ आया था, यह बात उलझी हुई थी। वह अपने प्रतिशोध की आग बुझाने आया है या उन्हें सान्त्वना देने, इसका निर्णय वह स्वयं भी नहीं कर सका था। सहसा पिछले दरवाजे से रमा ने प्रवेश किया। अपने सामने अमर को देखकर पलभर तो विचलित-सी हो गई किन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपने आप को सँभाल लिया, बोली, "आप कब से यहाँ बैठे हैं ?"

अमर ने उसकी नजरों में कुछ ढूँढ़ने का प्रयास करते हुए कहा, "अभी आया हूँ, क्या दिवाकर घर पर है ?"

रमा का दिल धड़क उठा। कहीं वे निन्दा करने के विचार से ही तो नहीं आए ? बोली, "यहीं है।"

"उसकी छुट्टी कब तक है ?"

"छुट्टी तो कल खतम हो गई। लेकिन अभी भैया सात-आठ दिन और नहीं जा सकेंगे।"

"क्यों ?" अमर ने यूँ ही पूछ लिया।

रमा समझी, जानबूझ कर खोंचा देना चाहते हैं, बोली, "आप उनके बारे में इतने उत्सुक क्यों हैं ?'

अमर को इस प्रश्न की आशा नहीं थी। पलभर के लिए तो वह हतबुद्धि-सा हो गया। फिर बोला, "जिस घर के साथ कभी किसी तरह का सम्बन्ध रहा हो क्या उसके बारे में उत्सुकता होना गुनाह है ?"

"कभी रहा हो, लेकिन वर्तमान में न हो तो उत्सुकता अनुचित ही है।"

"वर्तमान में भी हो तब तो कोई हर्ज नहीं ?"

"वर्तमान में होने के लिए, जान सकती हूँ, कौन-सा आधार है ?"

रमा का हृदय इस प्रश्न को पूछते-पूछते जोर-जोर से धड़कने लगा। अमर उत्तर देते-देते रुक गया, फिर बोला—

"जो आधार पहले था, वही आज है।"

रमा मुस्करा पड़ी, "जब मेरे बूढ़े बाप का अपने घर में अपमान किया था, तब भी क्या वही आधार था ?"

अमर बोला, "मैंने उनका अपमान नहीं किया था उन्हें अपमान से बचा लिया था। 'ना' करके मैंने आपके कुल को ही अपवित्र होने से बचाया था। शायद आप भी इस बात से सहमत होंगी।"

रमा की जबान रुक गई। वह जाना चाहती थी कि अमर ने पूछ लिया, "मेरा अनुमान गलत तो नहीं हो सकता। सावित्री ने नीलू भाभी से गलत कहा हो या नीलू भाभी ने ही नमक-मिर्च लगाकर बात की हो तो और बात है।"

रमा तुनक कर बोली, "चुप रहिए। ......आपको यहाँ ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए।" और वह झपटकर दूसरे कमरे में चली गई।

अमर सोचता रहा कि दिवाकर के बारे में किस से बात करूँ। पंडित जी जो एक बार किसी कोने में जा छिपे तो उन्होंने बाहर निकलने का नाम नहीं लिया। पार्वती देवी भी सामने नहीं आईं और शायद आएँगी भी नहीं। रमा थी सो उसे भी उसने नाराज करके भेज दिया। काफी देर तक वह उस कमरे में अकेला ही बैठा रहा।

रमा चाय का गिलास दुपट्टे के छोर में पकड़े हुए आई तो वह कुछ कहने के लिए उतावला हो उठा। रमा ने गिलास उसके आगे रख दिया और बोली, "आपने अपने यहाँ का सुखसांत तो सुनाया ही नहीं। माँ जी कैसी हैं ?"

"अच्छी हैं।"

"और पास-पड़ौस में?"

"वहाँ भी····कृष्ण भी यहाँ आ रहा था। पर·····"

रमा के दोनों गाल सुर्ख हो गए। वह उठने लगी किन्तु अमर ने रोक लिया, "नहीं यूँ भागने से काम नहीं चलेगा। जरूरत से ज्यादा संकोच और लज्जा बड़ा अनर्थ कर डालती है। मैं आपसे कुछ बातें पूछना चाहता हूँ।"

रमा रुक गई, "अच्छा, पूछिए।"

"आपको वह घर पसन्द है?"

"यह कहने की प्रथा नहीं है।"

" 'हाँ' 'ना' कुछ भी नहीं?"

"कुछ भी नहीं।"

उसके स्वर में एक अजीब मधुरता थी। होंठों पर हल्की-सी मुस्कान, कपोलों पर पुलक का कम्पन और लाज के बोझ से पलकों का नीचे झुकना····आदि लक्षण ऐसे थे जिनसे अमर सब कुछ समझ गया। उसका चेहरा मुरझा गया। अभी तक जो दीप अँधेरे हृदय के एक कोने में टिमटिमा रहा था वह बुझ गया। यदि वह इसी स्थिति में रहता तो उसकी कमजोरी शायद अवश्य प्रकट हो जाती। उसने और ही प्रसंग छेड़ दिया। उसने पूछा—

"रूपा को देखा, कैसी है?"

रमा इस प्रश्न से जल गई। बोली "अच्छी है।"

"तुम्हारी भाभी बनने लायक है?"

"क्या आप इसी खयाल से पधारे हैं?"

"शायद यही मुख्य उद्देश्य था मेरे आने का। मैं दिवाकर को बधाई देना चाहता था।"

रमा के होंठ क्रोध से काँप उठे, बोली, "मैं नहीं जानती थी कि आप इतने ओछे आदमी हैं।"

अमर मुस्करा कर बोला, "अच्छा हुआ, अब जान गई। यह ज्ञान भी समय पर काम आएगा। किन्तु मुझे इस बात को जानने की बड़ी इच्छा है कि आपके विचार में रूपा का क्या होना चाहिए?"

रमा चुपचाप उठकर चली गई। अमर की ओर ऐसी दृष्टि फेंकी, जिसे देखकर वह तिलमिला उठा।

रमा जब वहाँ से उठकर गई तो दूसरे कमरे में सावित्री को खड़ा देखा। वह अनेक प्रश्न पूछने लगी किन्तु रमा ने एक का भी उत्तर नहीं दिया। सावित्री ने खीझकर कहा, "अरी बोलती क्यों नहीं। उन्होंने क्या कहा?"

रमा बोली, "ओछे आदमी की बात मैं न सुनना चाहती हूँ न कुछ उसके बारे में कहना ही चाहती हूँ।"

सावित्री अचम्भे में पड़ गई। अभी कल ही तो वह तड़प रही थी। पिताजी से एक बार फिर अमर के यहाँ आने की बात उसने कितने साहस से की थी। क्या किसी लड़की ने आज तक

अपने पिता से अपनी ही शादी के सम्बन्ध में बात की है ? इतनी बड़ी हिम्मत जिसको पाने के लिए उसने कल ही दिखाई थी उसी को आज ओछा कहते झिझकी तक नहीं, यह कैसा मान है ? कैसा प्रेम है ?

आधे घंटे के बाद रमा फिर बैठक में आई। भोजन तैयार था और अमर को भोजन के लिए बुलाने आई थी। किन्तु उसने देखा, अमर नहीं है। उसके जूते भी लापता थे और छतरी भी। दरवाजे के पास जाकर इधर-उधर देखा, वहाँ कोई नहीं था। वह बैठक में आ गई, दीवार के सहारे खड़ी होकर सोचने लगी, 'वे क्यों चले गए ? क्या उन्होंने भी गाँव के और लोगों की तरह हमें जाति से बाहर कर दिया ? लेकिन फिर उन्होंने चाय क्यों पी ? क्या उन्होंने केवल मुझे तंग करने के लिए, मुझे रुलाने के लिए ही ऐसा किया ?' यह सोचते-सोचते उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बड़े वेग से बह निकली। कोई वहाँ देखने वाला नहीं था इसलिए उसके हृदय का रुद्ध आवेग फूटकर बहने लगा। न जाने वह कितनी देर वहाँ खड़ी-खड़ी रोती रही। अचानक पिताजी को कमरे में आता देखकर वह सँभल गई। झट से आँसू पोंछ लिए और अमर का जूठा गिलास उठाकर जाने लगी। पिता ने उसके आँसू भी देखे और उन आँसुओं को छिपानें का असफल प्रयत्न भी, किन्तु वे कुछ बोले नहीं।

अमर वहाँ से निकलकर रास्ते पर आया तो उसकी भेंट सरजू से हो गई। उसे पहचानकर वह खड़ी हो गई। "कब आए, जमाई जी ? यह कहकर उसने अपनी जीभ दाँतों तले दबा ली और लज्जित-सी हो गई। फिर तुरन्त बात बदलते हुए बोली, अमर बेटा, इधर तुम्हारे दोस्त ने जो काम किया है वह सुना ?"

और अमर के उत्तर देने से पहले ही बोल उठी, "उसने सारी ब्राह्मण जाति की नाक कटवा दी। मरा भी तो चमार की छोकरी पर। छोकरी भी क्या है, यच्छनी है, यच्छनी। ऐसी चाल-ढाल, ऐसा रूप तो बाबा मैंने कहीं नहीं देखा। छोकरी जिधर देखे उधर बिजली गिरे। उस दिन आई, सिर झुकाकर आँगन में बैठी रही। पंडित जी ने तीन सौ रुपये देने चाहे, उसने नहीं लिये। इस पर दो-चार ने फबतियाँ कस दीं कि तुम्हारी जाति में तो इतने से दस पति मिल जाएँगे। वह मदन है न ?... बड़ा लबाड़ है... ! ऐसा मुँहफट तो मैंने कोई नहीं देखा। भला इतने आदमियों के सामने यह बात कहने की थी ? लेकिन बेटा, उस छोकरी में भी कम तेज नहीं है। उसकी नजर में ऐसी शक्ति है कि कोई बेअदबी से बात नहीं कह सकता। बेटा, यह बात सुनी, तो उसने ऐसी नजर से मदन की ओर देखा कि उसकी घिग्घी बंध गई। बच्चे की सब कारस्तानी भूल गई। भागते ही बना। फिर उसके बाद किसी की हिम्मत नहीं हुई कि आगे बढ़कर बोले। उसने कहा, 'चल चाची, इनको देखने से भी पाप लगेगा, इनके यहाँ इज्जत-आबरू पैसे पर बिकती है।' बस, सब के सिर पर जैसे जूता पड़ गया। किसी ने चूँ तक नहीं की। पंडित जी ने खिसियाकर तीनं सौ रुपये उठा लिये।"

एक ही साँस में सब बातें कहकर वह जाने लगी कि कुछ याद करके फिर रुक गई, "और अमर बेटा, वह जो परमेसरी थी न... उस छोकरी की चाची। वह तो बड़ी भयंकर औरत है, निरी सर्पिणी। ऐसा तूफान खड़ा किया उसने कि गाँव काँप उठा। दिवाकर को हाथ से पकड़ कर बोली, 'चल अब अपनी जात को छोड़ और हमारे घर भात खा, सुर पी और हमारे हुक्के से

तम्बाकू पी।' उसने सब की ऐसी दुर्गत बनाई कि वे सात पीढ़ियों तक याद करेंगे। दिवाकर घर के अन्दर घुस बैठा। शर्म के मारे बाहर ही नहीं निकला। उसे पता लगा तो बोली, 'असली बाप के हो तो मर्द बनकर बाहर निकलो। हिजड़ों की तरह छिपकर काम नहीं बनेगा। हाँ जो कुछ कहना है सामने कहो।' फिर यहाँ रास्ते पर खड़ी होकर जोर-जोर से बकने लगी। ऐसी-ऐसी गालियाँ दीं उसने कि याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बात की बात में उसने सारा गाँव जमा कर दिया।"

उसके भाषण में किंचित् विराम लगा तो अंमर ने पूछा—

"काकी, वह लड़की कहाँ की रहने वाली है?"

उसने गर्दन को एक ओर झटककर कहा, "जाने मेरी बला, कोई कह रहा था दत्तल की है। हाँ, उसी छोकरी की मँगनी हमारे गाँव में गुजरू चमार के घर हुई थी। अब तो वह भी टूट गई। लेकिन अच्छा ही हुआ। वह लड़का तो निरा बन्दर है। भला उनकी भी निभनी थी? कहाँ वह परी और कहाँ यह बन्दर? अमर बेटा! उनके घर तो अब कोई आ-जा नहीं रहा है। गाँव के लोगों ने उन्हें जात से बाहर कर दिया है। अपने जमाई बाबू का क्या ख्याल है? मुझे इस छोकरी की चिन्ता है। भाई की करतूत से इसके ऊपर भी दोष न आ जाए उनका क्या ख्याल है?"

अमर बोला, "काकी, रमा का इसमें क्या दोष है? और फिर कृष्ण मेरा मित्र है। मैं कहूँगा तो वह जरूर यहाँ शादी करेगा। जात-बिरादरी का विरोध वह नहीं मानेगा।"

वह जरा धीरे से बोली, "नहीं बेटा, बिरादरी की ताकत बड़ी होती है। मैंने सुना है कि कुछ लोग यह शादी नहीं होने देंगे। उन्हीं के रिश्तेदारों से मैंने यह बात सुनी है। कहते थे, हम में से एक भी उनके घर नहीं जाएगा।"

अमर को सचमुच यह चिन्ता सताने लगी। कहीं बिरादरी के लोग धरना मारकर कृष्ण के दरवाजे पर न बैठ जाएँ। ऐसा हुआ तो वह अकेला कर ही क्या सकता है। फिर उसकी भी तो इच्छा नहीं है। उसने रमा को देखा भी नहीं है। यदि देखा होता तो शायद इतना बड़ा विरोध सहने के लिए तैयार भी हो जाता। अमर की आँखों के आगे रमा का मुस्कराता हुआ चेहरा क्षणभर के लिए प्रकट हुआ, फिर लुप्त हो गया। सरजू अपना भाषण समाप्त कर आगे बढ़ गई। अमर थोड़ी देर तक वहीं खड़ा-खड़ा सोचता रहा कि क्या किया जाए। फिर उसके पाँव किसी अज्ञात प्रेरणा से दत्तल गाँव की ओर मुड़ गए।

दत्तल तक का रास्ता तीन मील तक का होगा। रास्ते में दो छोटी नदियाँ पड़ती थीं और आधे मील का एक जंगल। धानों के खेतों से होती हुई पतली सी कीचड़ से भरी पगडण्डी थी जिस पर अमर चलने लगा। पगडंडी के दोनों ओर खेत लहरा रहे थे, धानों के सिट्टे निकल आए थे और वे हवा के झोंकों से बार-बार किसी को प्रणाम करते हुए दिखाई पड़ते थे।

कहीं-कहीं किसान औरतें सम्मिलित स्वर में गाकर काम कर रही थीं। उनकी स्वर-लहरी अमर के कानों में अनुपम रस घोल रही थी। उसे एक अपूर्व सुख की अनुभूति हुई। वह उसी में डूबा आगे बढ़ता गया। जब जंगल का सुनसान रास्ता दिखाई पड़ा तो उसकी तन्द्रा टूटी।

जंगल का रास्ता पार करके वह एक नदी के किनारे आ गया। प्यास लगी थी, उसने

हाथ-मुँह धोकर दो घूँट पानी पी लिया, फिर खड्ड पार करने लगा। दूसरी ओर से एक व्यक्ति जानुओं तक धोती समेटकर चला आ रहा था। काफी दूर आने पर दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। अमर आवाज देने वाला ही था कि वह व्यक्ति उल्टे पाँव पीछे की ओर भाग खड़ा हुआ। अमर ने जल्दी-जल्दी खड्ड पार की किन्तु तब तक वह आँखों से ओझल हो गया। उसके दिल में यह प्रश्न उठा कि "दिवाकर यहाँ क्यों आया? और मुझे देखते ही क्यों भाग खड़ा हुआ?" वह अब रूपा के घर की तलाश में आगे बढ़ा।

रूपा का घर ढूँढने में उसे अधिक देर नहीं लगी। जब वह आँगन में जा खड़ा हुआ तो उसे दुर्गन्ध के कारण रूमाल से नाक बंद करनी पड़ी। छोटे से दो कमरों के मकान से सुर की दुर्गन्ध आ रही थी। भीतर कोई आदमी सो रहा है यह खर्राटों की आवाज से जाना जा सकता था। काफी देर तक वह वहाँ खड़ा रहा, इस आशा से कि रूपा बाहर निकलेगी तो उससे दो बातें कर लूँगा। किन्तु वहाँ कोई नहीं आया। भीतर जाकर पुकारने की हिम्मत नहीं पड़ी। निराश होकर वह वापस जाने लगा। आँगन से निकलकर पगडंडी पर कदम रखा ही था कि किसी की रूखी सी आवाज सुनकर चौंक पड़ा। एक अधेड़ उमर की महिला सामने चली आ रही थी। मैला सिलवार-कुर्ता और उस पर मोटी चद्दर जैसी ओढ़नी, कानों में चाँदी की बालियाँ और गले में चाँदी का हार पड़ा हुआ था। उस स्त्री की शक्ल से जाना जा सकता था कि वह पत्थर दिल की है। एक हाथ में दराँती और दूसरे में रस्सी लिये हुए थी। आते ही उसने पूछा, "किससे मिलना है?"

अमर ने झिझकते हुए पूछा, "यहाँ कोई रूपा नाम की लड़की रहती है।"

"क्या लेना है उससे?" उधर से कर्कश आवाज आई।

अमर बोला, "लेना-देना तो कुछ नहीं, सिर्फ उससे मिलना है।"

"कहाँ से आए हो? नाम क्या है?"

"गदियारी से आया हूँ, अमर नाम है।"

महिला के चेहरे पर कुछ परिवर्तन हुआ, "ब्राह्मण है?"

"जी!" कहकर अमर चुप हो गया। महिला बोली, "अच्छा, आओ।"

अमर उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। कोई दस-बारह कदम चलने के बाद एक झोंपड़ी के निकट दोनों आ गए। स्त्री ने आँगन में खड़े होकर आवाज दी, "अरी ओ रूपा! जरा बाहर आ, कोई तुझ से मिलने आए हैं।"

थोड़ी देर के बाद एक लड़की बाहर निकली। उसका चहरा पीला पड़ गया था, आँखें अन्दर की ओर धँसती जा रही थीं। देखने में वह कई दिनों की बीमार दीख पड़ती थी। अमर को देखकर रूपा दौड़कर पास आ गई और बिना कुछ कहे पैरों पर गिरकर रोने लगी। स्त्री ने यह तमाशा देखा तो विस्मय से पत्थर की तरह खड़ी रही। यह कौन है? इसका तो कभी छोकरी ने जिक्र नहीं किया। फिर इसके पैरों से लिपट कर क्यों रो रही है? —आदि प्रश्न उसे व्याकुल करने लगे। उसने दराँती और रस्सी रख दी और अन्दर से जाकर खाट उठा लाई। खाट आँगन में डालते हुए बोली, "पणत जी, बैठो।" फिर रूपा को खींचती हुई बोली, "अरी, यह क्या तमाशा कर रही है? ये पणत हैं, पणत""पक्के ब्राह्मण।""अब इन्हें घर जाकर नहाना

पड़ेगा।"

अमर बोला, "मैं वैसा ब्राह्मण नहीं हूँ। रूपा…उठो, मुझे एक गिलास पानी पिला दो। तीन घंटों का प्यासा हूँ।"

रूपा ने झटके से अपना सिर ऊपर उठाया। उसने देखना चाहा कि अमर की बात में बनावटीपन तो नहीं है। लेकिन वहाँ वही ततवानी वाली निर्मल मुस्कान देखकर वह खिल उठी। थोड़ी देर के लिए वह यह भूल गई किसी ने उसका दो दिन पहले ही अपमान किया था। वह अन्दर गई, पीतल के लोटे को अच्छी तरह माँज कर पानी ले आई। अमर एक ही साँस में लोटे का सारा पानी पी गया। अब रूपा पास ही बैठ गई।

"बाबूजी, आपने मुझे इतनी जल्दी भुला दिया?"

अमर ने कहा, "भुला दिया होता तो क्या इस तरह तुम्हारे घर आता?"

रूपा बोली, "यहाँ तो अपनी ससुराल की वकालत के लिए आए होंगे?"

अमर मुस्करा पड़ा, "मेरी ससुराल…।अरी मेरी न तो अभी शादी हुई और मँगनी।"

रूपा बोली, "वाह, मुझे क्यों बनाते हैं बाबूजी? उनकी लड़की से मँगनी नहीं हुई है? मैं उसे देख आई हूँ।"

"लेकिन, वह तो बातचीत हो रही थी, अब टूट गई है।"

"टूट गई है? क्या मेरी वजह से? क्या आप भी इतने ना-समझ हैं जो किसी के कसूर की सजा किसी और को दी?"

"तुम्हें समझने में भूल हुई है रूपा! बातचीत तो बहुत पहले ही टूट गई थी।"

"लेकिन क्यों?"

अमर हँस पड़ा, "क्यों का जवाब बड़ा मजेदार है। सुनोगी?"

रूपा एकाग्र होकर सुनने लगी। अमर कहने लगा—

"उस दिन देवला में जो कुछ हुआ था, याद है न? पंडिताइन ने किसलिए दो दिन तक मुँह फुला रखा था। कैसी-कैसी बातें की थीं? बस वही बातें उसके दिमाग में घुस बैठीं। घर आकर सब के सामने उसने कह दिया कि मेरा रूपा से मेल-जोल है। इसी बात पर उन्होंने हमें जवाब दे दिया।" इतना कहकर अमर इतने जोर से हँसा कि रूपा डर-सी गई।

लेकिन जब उसकी हँसी का आवेग शान्त हुआ तो उसने रूपा के चेहरे की ओर देखा। वह सफेद पड़ गया था। जैसे उसमें एक बूँद भी खून नहीं बचा हो। उसने परमेसरी चाची की ओर देखा। वह अब भी शान्त भाव से बैठी हुई अमर की ओर देख रही थी। रूपा को अपने पर इतना क्रोध आया, इतनी लज्जा हुई कि नजर उठाकर अमर की ओर न देख सकी।

अमर ने कहा, "रूपा…तुम्हें क्या हो गया? मैंने ऐसी तो कोई बात नहीं की जो तुम्हें दु:ख पहुँचा सकती हो।"

रूपा की आँखों में आँसू उमड़ आए। बड़े प्रयत्न से उन्हें रोकती हुई वह बोली, "बाबूजी, मुझे दु:ख किसलिए होगा? मैं आपकी कुछ लगती नहीं। आपकी जात की नहीं। आप . काम मुझे नहीं पड़ता। भला मैं क्यों दु:ख करने लगी?"

इस स्वर में व्यथा छिपी हुई थी। अमर के आगे वह स्पष्ट हो गई। उसके हृदय में कितना

स्नेह, कितना निश्छल प्रेम छिपा हुआ है उसका अनुमान लगाना कठिन नहीं था। वह बोला—

"रूपा, तुम नाहक दु:ख करती हो। तुम जानती हो कि मैं तुम्हें अपने से बहुत दूर नहीं समझता। तुम मेरी जात की हो या नहीं, मेरे रिश्तेदारों में से हो या नहीं, लेकिन आदमी-आदमी के बीच का सम्बन्ध तो है ही। क्या मैं गलत कह रहा हूँ?"

रूपा के आँसू अब रोके न रुके। हृदय में उठते हुए तूफान को वह धैर्य से रोकने का प्रयत्न कर रही थी। वह फफक कर रो पड़ी। कुछ देर के बाद जरा शान्त होकर वह बोली, "बाबूजी, मैं बहुत बड़ी पापिन हूँ। पिछले जन्म में पता नहीं मैंने कितने पाप किए थे जो इस जन्म में भोग रही हूँ। कौन जाने इसका अंत कब होगा? बाबू जी, अपने लिए तो मैं अब अधिक चिन्ता नहीं करती। लेकिन मेरी बजह से दूसरों को दु:ख भोगना पड़े, यह मैं कैसे सह सकती हूँ? बापू ने मुझे घर से निकाल दिया। जात-बिरादरी ने मेरी बदनामी का ढोल पीटा। सगे-सम्बन्धियों ने मुझे छोड़ दिया और जिनके लिए मैंने इतना कुछ सहा उन्होंने भी मुझे ठोकर मारकर दूर कर दिया। लेकिन इन सब का मुझे उतना दु:ख नहीं है बाबू जी! लेकिन मेरी वजह से दो निर्मल आत्माएँ बिछुड़ जाएँ क्या दु:ख की बात नहीं? सच कहती हूँ बाबूजी, मेरा दिल चाह रहा है कि कहीं जाकर डूब मरूँ।"

अमर बोला, "देखो, रूपा! तुम जरा-सी बात को बड़ा करके देख रही हो। तुम्हारी वजह से किसी का भी नुकसान नहीं हुआ। मेरी मँगनी के टूट जाने का कारण चाहे तुम्हीं हो, लेकिन यह तुम क्यों मान बैठी कि मँगनी टूट जाने से मुझे या रमा को कोई नुकसान हुआ है। वास्तव में हम दोनों में से किसी को भी इसका दु:ख नहीं है। और यह भी तो हो सकता है कि इसमें हमारा कोई हित छिपा हुआ हो। रमा धनी घराने की लड़की है, रूपवती है, शील-चरित्र में बेजोड़ है। उसके लिए अच्छे से अच्छा वर मिल सकता है और...।"

रूपा बीच में ही बोल उठी, "बाबूजी, अच्छाई की तो कोई सीमा नहीं होती। ...मनुष्य का छोटा-सा दिल जहाँ अपने को खो देता है उसी को तो सब से अच्छा कहा जाता है। रमा की बात मैं जानती हूँ। उस दिन वह मुझे एकान्त में ले जाकर पूछने लगी, कि देवला में क्या हुआ था।

"मैंने उस रात की सारी घटना सुनाई। वह टप-टप आँसू बहाती रही। कुछ देर बाद वह बोली, 'बहन, अब अगर मुझे वे न भी मिलें तो भी मैं अपनी जिन्दगी बिता सकती हूँ। केवल इसी विश्वास के बल पर कि वे मेरे हैं।' ...बाबूजी, आप कहते हैं उसे कोई नुकसान नहीं हुआ? लेकिन मैं सोचती हूँ, उसकी जिन्दगी का फूल हमेशा के लिए कुम्हला गया, और कुम्हलाया वह मेरी वजह से। मैं नहीं जानती कि आपको इस बात का दु:ख है या नहीं। नहीं भी हो सकता है। मर्दों का दिल कुछ इसी तरह का होता है। उन्हें भूलते देर नहीं लगती। लेकिन बेचारी औरतें तो उमर भर घुल-घुल कर जीती हैं।"

अमर बड़े ध्यान से रूपा की बातें सुन रहा था। परमेसरी भी घास लाने का काम भूल चुकी थी। अमर ने दूसरी दिशा में बात बदल दी, "मैंने एक आदमी से तुम्हारा घर पूछा तो उसने किसी और के आँगन में पहुँचा दिया।"

परमेसरी बोली, "पणत जी, उसने ठीक ही बताया था। इसका घर तो वही है लेकिन आजकल यहाँ रहती है।"

अमर ने पूछा, "क्यों ?"

परमेसरी बोली, "आपने उस घर का हाल नहीं देखा। कैसी दुर्गन्ध आ रही थी। वह जो अन्दर सोया हुआ था वह इस छोकरी का बाप है। बाप कहूँ या दुश्मन कहूँ। दाढ़ीजला जब गुस्से में आता है तो जानवर बन जाता है। जिस दिन पता चला कि रूपा का दिवाकर से मेलजोल है। उसी दिन उसकी त्यौरियाँ चढ़ गई थीं। यूँ वह इसका बाप भी है और माँ भी। उसने माँ की तरह पाल-पोसकर इसे बड़ा किया। रोज कहीं काम पर जाता था तो रूपा के लिए कुछ न कुछ ले ही आता था। रूपा अगर कहती, दिन भर आँगन में खड़े रहो तो वह खड़ा रहता। इसके कहने पर उसने सुर-शराब मछली-माँस सब कुछ छोड़ दिया। लेकिन एक दिन जब उसे पता चला कि उसकी लाड़ली बेटी पेट में पाप छिपा लाई है तो पलभर में उसके दिल का बाप मर गया। वह भेड़िया बन गया। उस दिन उसने इस छोकरी को इतना पीटा कि मैं न जाती तो इसके प्राण निकल गए होते। बालों से पकड़कर सारे घर में घसीटा। लात-मुक्के इस पर बरस पड़े। दो दिन तक तो मैं गर्म तेल की मालिश करती रही, तब जाकर यह चलने-फिरने वाली बनी। उसी दिन से उसकी आदतें बदल गईं। अब वह दिन-रात सुर-शराब पीकर बेहोश पड़ा रहता है। बर्तन-भाँडे बेचकर इसने शराब पीना शुरू किया है। काम-धंधे का अब खयाल ही नहीं है। दिन भर पड़ा रहता है, शाम को एक-आध बर्तन लेकर शराबखाने में पहुँच जाता है।"

अमर ने रूपा की ओर देखा वह लज्जा से सिर झुकाए बैठी थी। अमर की ओर देखने का उसे साहस तक नहीं हुआ। परमेसरी के ऊपर उसे मन ही मन क्रोध आ रहा था, 'क्यों उसने ये बातें इनसे कहीं ? वे अब कितनी घृणा करेंगे मुझसे ?' आदि विचार उसके मन में आ रहे थे। जब परमेसरी कुछ रुक गई तो रूपा तुरन्त बोल उठी, "चाची, चुप क्यों हो गई ? और कुछ कह दे न ? ...तुम्हारे पेट में तो कभी बात पचती ही नहीं है। भला इनसे ये बातें कहने की क्या जरूरत थी ?"

परमेसरी से रूपा का काफी मतभेद था, पिता के बारे में तो उन दोनों की कभी-कभी लड़ाई भी हो जाती थी। रूपा वर्तमान की उपेक्षा को भूतकाल के प्यार में डूबो देना चाहती थी लेकिन परमेसरी भूतकाल को भूलकर वर्तमान की कसौटी पर सब को परखती थी। वह कहती थी, "वह बाप नहीं राक्षस है। अपनी ही लड़की पर इतना गुस्सा कि मारने पर उतारू हो गया। अव्वल तो तूने गलती ही ज़रा-सी की। ऐसी गलतियाँ तो हज़ारों से हुआ करती हैं। बड़े-बड़े लोगों से भी होती हैं। क्या उसके लिए किसी के प्राण लिये जाते हैं ? तूने जो इसकी इतनी सेवा की, उसे बीमारी में पान की तरह सँभाला, क्या उसका उसने यही बदला चुकाना था ? कोई दुश्मन होता वह भी ऐसा न करता।" रूपा कहती, "चाची, ऐसा न कहो। उन्होंने मुझे बड़े प्यार से पाला है। माँ मर गई लेकिन किसी तरह मुझे तकलीफ नहीं होने दी। कितनी तकलीफें सही हैं उन्होंने मेरे लिए ?" परमेसरी गर्दन घुमा कर कहती, "इससे क्या वह बड़ा बन गया ? हर माँ-बाप को ऐसा करना ही पड़ता है। बच्चों को पाल-पोसकर वे उन पर एहसान नहीं करते। सब अपने सुख के लिए ब्याह करते हैं, अपने सुख के लिए बच्चे जनते हैं और फिर उनके पालने--पोसने का वक्त आता है तो वह उन्हें करना ही पड़ता है। उसके बिना छुटकारा नहीं। यह काम न पुण्य है, न एहसान।"

तर्क में रूपा हमेशा परमेसरी से हार जाती। इस बार भी उसने तर्क का आश्रय न लेकर व्यंग्य का आश्रय लिया था। परमेसरी समझ गई फिर भी वह कहने लगी, "मुझे जो कुछ कहना है वह जरूर कह दूँगी। तुम्हारे डर से चुप नहीं बैठी रहूँगी। और न तेरे उस देवता बापू के डर से ही चूहे का बिल खोजूँगी। जो आदमी नीच है उसे नीच कहने में कोई हर्ज नहीं। सच कहती हूँ अगर कहीं वह मेरा मर्द होता तो मैं एक दिन भी इसके घर नहीं रहती।"

अमर ने रूपा के चेहरे की ओर देखकर जान लिया कि इस आलोचना से वह बहुत दु:खी हो रही है। उसने तुरन्त प्रसंग बदल दिया। रूपा की ओर देखते हुए पूछा, "दिवाकर ने क्या साफ-साफ इन्कार किया था?" इस अचानक प्रश्न से रूपा तिलमिला उठी। वह तो कुछ उत्तर नहीं दे सकी लेकिन परमेसरी से अपने हृदय की समस्त घृणा को उंडेलते हुए कहा, "वह तो नामर्द है। पहले तो घर के भीतर छिप गया फिर बड़ी मुश्किल से जब उसे बाहर निकाला तो आँखें भर लीं। वैसे तो उसने सब कुछ मान लिया लेकिन ब्याह के नाम पर चुप हो गया। मुझे तो उन सब में एक बड़े पणत जी ही धर्मात्मा आदमी लगे। उन्होंने जब रुपये दिए तो मैं यही समझी कि ये भी औरों की तरह ओछे हैं। लेकिन बाद में सब लोगों के जाने के बाद उन्होंने मुझसे माफी माँगी। अपनी घरवाली के जोर देने पर ही उन्होंने पैसे दिए होंगे।

अमर को स्मरण हो आया कि रास्ते में उसे दिवाकर मिला था। वह क्यों आया था? किससे मिलने आया था? रूपा से यदि वह मिला तो उसने क्या-क्या बातें कीं? आदि प्रश्न उसके मस्तिष्क में खलबली मचाने लगे। रूपा से सीधा प्रश्न न कर उसने परमेसरी की ओर देखते हुए कहा, "मुझे रास्ते में दिवाकर दिखाई दिया था। पता नहीं क्यों वह मुझे देखते ही भाग गया।"

परमेसरी बोली, "वह यहीं आया था। रूपा से मिलने।"

अमर की उत्सुकता बढ़ गई, बोला, "क्या कहता था?"

"कहता था अपना सिर।" परमेसरी तुनक कर बोली, "उसके मुँह से पहर भर तो बात ही नहीं निकली। बस आँखें भर कर रूपा को टुकुर-टुकुर देखता रहा। जाते समय मुश्किल से उसने इतना कहा, "रूपा मेरी वजह से तुम्हें बड़ा दु:ख मिला। लेकिन मैं क्या करूँ? मुझे कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा है। लेकिन तुम चिन्ता मत करो। मैं जल्दी ही कोई रास्ता ढूँढ़ निकालूँगा।"

अमर दिवाकर की योजना का तो अनुमान न लगा सका। इसके बाद दो-चार बातें इधर-उधर की हुई और फिर अमर चलने के लिए तैयार हो गया। चलती बार परमेसरी ने पूछा, "अच्छा पणत जी, अगर सचमुच पंचायत बैठी तो क्या होगा?"

अमर ने आश्चर्य से पूछा, "कैसी पंचायत?"

परमेसरी बोली, "आपको पता नहीं। गुजरू ने, सुना है, रूपा के बाप पर दावा किया है और फिर यह बात भी उड़ रही है कि इसके बाप ने भी पणतों पर दावा किया है। दोनों की सुनवाई एक ही दिन होगी, उसी पंचायत में। सारे गाँव में चर्चा होगी, और तो नहीं लेकिन मुझे बड़े पणत जी की चिन्ता है। बेचारे इतनी बड़ी भद कैसे सहेंगे। गुजरू तो अभी से डोंडी पीटकर कह रहा है कि उसका शुकरू पर एक हजार से ऊपर हो गया है। दस सालों से लेकर

तिथ-त्यौहारों में बर्तता आ रहा है। कहता है, पचास रुपये नकद दिये थे उनको भी छोड़ दूँ तो भी और चीजों का हिसाब एक हजार से कम नहीं होगा। नई फसल पर एक-दो बोरी अनाज और पाँच-सात गट्ठर घास के तो दिये ही जाते थे। होली, दिवाली और सैर-लोढ़ी कितने ही त्यौहार साल में आते हैं। सब पर रोटियों का टोकरा, दही का मटका और कई चीजें वहाँ जाती थीं।"

रूपा को यह बातें बुरी लग रही थीं। उसने बात खत्म करने के विचार से बीच में ही पूछ लिया, "अब फिर कब आएँगे?"

अमर ने मुस्कराते हुए कहा, "अगर जरूरत पड़ी तो आ जाऊँगा।"

रूपा इस 'जरूरत' शब्द का अभिप्राय नहीं समझ सकी। उसने पूछा, "क्या जरूरत के बगैर आप कहीं आते-जाते नहीं?"

अमर ने सहज भाव से कहा, "मैं ही नहीं, शायद कोई भी बिना जरूरत अपने पाँव को तकलीफ देना नहीं चाहता।"

रूपा इस पर मुस्करा पड़ी, बोली, "तो यहाँ भी आप किसी जरूरत से आए होंगे! कौन-सी जरूरत थी वह?"

अमर ने उत्तर दिया, "अभी तो नहीं बताऊँगा। लेकिन किसी दिन तुम खुद ही समझ जाओगी।"

रूपा इस उत्तर से कुछ नहीं समझ सकी। अमर चला गया, बाहर से मुस्कराकर लेकिन हृदय से दुःखी होकर। रूपा खड़ी रही, बाहर से उदास लेकिन हृदय से मुस्कराती हुई।

अमर जब वहाँ से चला तो तीन-चार घड़ी दिन बाकी होगा। घर पहुँचते-पहुँचते रात हो जाएगी और माँ चिन्तित होगी, इस विचार से उसने अपनी चाल तेज कर दी। रास्ते में कभी हरे-भरे लहराते खेत आते, कभी बंजर मैदान। बंजर और उजाड़ स्थानों में पहुँचकर उसे किंचित् शान्ति मिलती। शायद इसलिए कि उसके हृदय के वे प्रतिबिंब से लगते थे। उसके हृदय में भी शून्यता छाई हुई थी। कुछ घंटे पहले जब वह इसी रास्ते से गया था तो इन लहलहाते खेतों ने उसके हृदय में अलौकिक आनन्द भर दिया था। किन्तु इस समय वही खेत उसे बेचैन कर रहे थे। उसके कदम आगे बढ़ रहे थे किन्तु मन बार-बार पीछे दौड़ रहा था। जितना ही प्रयास उसने रूपा को भुलाने का किया उतना ही अधिक मन उस पर केन्द्रित होने लगा। उसकी हर बात हर नजर स्मृति में ताजा थी। यद्यपि वहाँ इस तरह की कोई बात नहीं निकली थी जिससे अमर को निराशा होने की आवश्यकता पड़ती लेकिन दिवाकर के सम्बन्ध में उसे यकीन था कि वह कुछ नहीं कर सकता।"

वह विन्नू के तट पर पहुँचा तो अँधेरा होने लगा था। दोनों ओर दो श्वेत रेतीले तटों के बीच विन्नू तेजी से बह रही थी। आर-पार जाने के लिए लोगों ने उसके बीच बड़े-बड़े पत्थर

रख दिए थे, जिन पर पाँव रखकर वह पार जाने लगा। किन्तु उसके विचार-प्रवाह में कोई विराम नहीं पड़ा। उलटे वह जल-प्रवाह की गति से गति मिला कर दौड़ने लगा। उसने सोचा— "इस जल-प्रवाह की तरह मैंने भी चंचलता से काम लिया, मैंने जल्दबाजी की। क्यों मैं रूपा के यहाँ चला गया ? मेरे जाने का उद्देश्य ही क्या था ? और रमा के घर ही मैं क्यों गया था ? वहाँ भी तो विशेष काम नहीं था। दिवाकर को उपदेश देने के बहाने से क्या मैं अपने-आप को संतोष दे सकता हूँ ?' ज्यों-ज्यों वह आज के दिन भर के कार्य पर विचार करता गया उसे अपने पर गुस्सा आता गया। उसे लगा कि बेकार ही सारा दिन नष्ट हुआ।

जब वह घर पहुँचा तो उसके मन पर से जैसे बड़ा बोझ उतर गया था। जब अमर भोजन करने बैठा था तो माँ ने पूछा, "बेटा, आज दिन-भर कहाँ रहे ? कुछ बताकर तो जाते ?"

अमर ने मुस्करा कर कहा, "अम्मा, गलती हो गई, लेकिन सुबह मैंने सोचा था कि तुम से बताकर जाऊँगा तो तुम उनके यहाँ जाने न दोगी।"

"तो खैरा जा पहुँचे थे ?"

"हाँ, और वहाँ से भी एक जगह और गया था ?"

"उस लड़की के घर तो नहीं ?"

"हाँ, वहीं गया था। लेकिन तुम्हें कैसे पता चला ?"

"अन्दाजे से ही कहा। उन लोगों की कैसी हालत है ?"

"अच्छी नहीं है। पंडित जी तो मारे शर्म के मुँह नहीं दिखा सके। मैं भी ज्यादा देर नहीं ठहरा। सुना है कि बिरादरी ने उनका हुक्का-पानी बन्द कर दिया है। और उस लड़की के बाप ने पंचायत में मुकदमा भी कर दिया है।"

माँ बोली, "तब तो बड़ी मुश्किल पड़ेगी। रमा की शादी भी बंद न हो जाए। आज कृष्ण की अम्मा फिर आई थी। कहती थी कि गाँव के लोगों को यह रिश्ता पसन्द नहीं है। उनके रिश्तेदार भी शादी पर नहीं आएँगे। कृष्ण तो तुम्हें आज पाँच-छः बार देखने आया था।"

अमर बोला, "शादी तो जरूर होगी, लोग आएँ या न आएँ। कृष्ण को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वह मेरी बात कभी नहीं टालेगा।" यह बात अमर ने कह तो दी लेकिन चिन्ता उसे भी होने लगी। ...कृष्ण क्यों ऐसा करने लगा ? उसे मजबूरी तो है नहीं। व्यर्थ में अपने रिश्तेदारों का विरोध लेगा ही क्यों ? फिर भी वह इस समस्या को अधिक महत्त्व नहीं दे सका।

माँ बोली, "अच्छा, लोग न आएँ तो तुम दो-तीन आदमी शादी का काम कर लोगे ?"

अमर ने मुस्कराकर कहा, "अम्मा, तब काम ही क्या होगा ? पाँच-छः जनों का खाना होगा, वह मैं ही बना दूँगा। लोग नहीं आएँगे तो काम भी नहीं होगा। हाँ शादी करने वाले दोनों हाजिर होंगे। पंडित-नाई भी तैयार हैं। फिर शादी क्यों नहीं होगी ?"

माँ ने कहा, "बाबा, तुम जानो, तुम्हारी स्कीमें मेरी समझ में तो नहीं आती हैं।"

अमर ने अब दूसरी ही बात छेड़ दी, बोला, "अच्छा, अम्मा ! मैं यहाँ पाठशाला खोलने की बात सोच रहा हूँ। वैसे तो हमारा कई दिनों से विचार था लेकिन एक तो खेत के काम से ही फुर्सत नहीं मिली और फिर यहाँ के लोग भी बड़े लापरवाह हैं। किसी बात में दिलचस्पी ही नहीं लेते।"

माँ बोली, "भला मैं इसमें क्या कहूँ। तुम लोग नये दिमाग के छोकरे मिलकर कोई उपाय सोचो। मैं ठहरी पुरानी लकीर की फकीर......"

अमर ने माँ की ओर देखा और बड़े ही दीन स्वर में बोला, "तुम मेरे दम्भ को बढ़ावा मत दिया करो। हर बात में तुम चुप्पी साध लेती हो। मैं दो-चार किताबें पढ़ गया हूँ कि इसीलिए मैं बड़ा अक्लमन्द बन गया? क्या तुम्हारे अनुभवों की कोई कीमत ही नहीं। असल में हम गर्म दिमाग के हैं। सोचते जरूर हैं, नई स्कीमें भी बनाते हैं, उन पर अमल भी करना चाहते हैं लेकिन जल्दबाजी की वजह से हम काम बिगाड़ बैठते हैं। धैर्य से किसी बात को सोचने की आदत नहीं। हमें सलाह देने वाला कोई अनुभवी व्यक्ति चाहिए। ....लेकिन वह मिले कैसे? तुम हो....सो हमेशा हमारी बातों से दूर रहती हो। अच्छा, आज मैं तुम्हारी राय लेकर ही रहूँगा।" कहते-कहते उसने हाथ का ग्रास थाली में रख दिया और बोला, "अब खाना तब खाऊँगा जब तुम सच्चे दिल से अपनी राय दोगी।"

माँ बोली, "इसमें मुश्किल क्या है?" तुम्हारे दोस्त की दुकान कई सालों से यूँ ही बन्द पड़ी है। उसी में कर दो शुरू। तीन-चार से शुरू हो जाए तो एक महीने के अन्दर-अन्दर अच्छी खासी पाठशाला बन जाएगी।"

अमर को यह बात जँच गई। वैसे तो पहले भी उसने लगभग इसी तरह की योजना सोची थी किन्तु उसमें इच्छा-शक्ति शिथिल-सी थी। आज माँ की प्रेरणा पाकर उसका दिल उतावला हो उठा। उसी समय वह चौधरी बुधीसिंह के घर की ओर चल पड़ा।

बुधीसिंह के घर पहुँचकर उसने देखा कि दरवाजा बन्द है। दरवाजे की दरार से लालटेन का प्रकाश बाहर आ रहा था किन्तु कमरे में सन्नाटा था। थोड़ी देर तक बाहर खड़ा रहकर वह सोचता रहा कि वहीं से वापस चला जाऊँ या किसी को आवाज दूँ। फिर आगे बढ़कर दस्तक दी। भीतर किसी के उठने से कपड़ों की सरसराहट हुई।

नीलू भाभी ने आकर दरवाजा खोला।

"आइए, आप ही का रास्ता हम लोग देख रहे थे।"

इस प्रतीक्षा का कारण पूछने का उसे समय नहीं मिला। भीतर कृष्ण और बुधीसिंह बैठे हुए थे। अमर समझ गया कि किसी गम्भीर विषय पर विचार-विमर्श हो रहा है। अमर कृष्ण की ओर देखता रहा कि शायद वह बात शुरू करेगा। किन्तु वह चुप रहा। नीलू भाभी ने बात छेड़ी, "ललाजी, आज आप चले कहाँ गए थे? हम लोग दिनभर आपकी राह देखते रहे।'

अमर ने पूछा, "क्या बात है?"

नीलू बोली, "भैया के ब्याह की बात। ये कहते हैं कि वहाँ शादी नहीं होगी।"

आश्चर्य से कृष्ण की ओर देखकर अमर ने पूछा, "क्यों?"

कृष्ण ने जैसे खीझ प्रकट करते हुए कहा, "नहीं तो क्या करूँ? सिर्फ शादी के लिए सारे गाँव का विरोध सहूँ? रिश्तेदारों को नाराज करूँ?"

अमर मुस्करा दिया, बोला, "सिर्फ शादी के लिए यह काम करना पड़ता तो मैं भी तुम्हारी हाँ में हाँ मिला देता, लेकिन भाई मेरे यहाँ कुछ और भी है। रमा जैसी लड़की को पाने के लिए सारी दुनिया को भी नाराज करना पड़े तो महँगा सौदा नहीं।"

कृष्ण चिढ़ गया, "तो तुम्हीं क्यों नहीं कर लेते ?"

अमर मुस्करा दिया, "इसीलिए तो आज वहाँ गया था। अगर वहाँ हाँ कर देती तो शादी मेरी ही होती। लेकिन उसने तो साफ कह दिया कि जहाँ मँगनी हो गई है वहाँ शादी होगी या क्वाँरी रहूँगी।"

"लेकिन फिर भी वह इतनी दुर्लभ चीज नहीं है कि......"

"दुर्लभ ही है।"

"कम से कम मेरे लिए तो उसका कोई महत्त्व नहीं।"

"होगा, तब तुम हम सब को भूल जाओगे।"

"अरे भाई, ज्यादा तर्क-वितर्क से क्या फायदा। खैर मान लो, मैं शादी करने के लिए तैयार हूँ। लेकिन गाँव का एक बच्चा भी मेरे यहाँ नहीं फटकेगा तो शादी करने से क्या लाभ होगा ?"

"कैसे नहीं फटकेगा। तीन तो हम यही बैठे हैं। एक माँ होगी। दस हमारे दल के युवक होंगे। ......चौदह हो गए न।"

"तुम्हें तो मजाक सूझता है।"

अमर ने गम्भीरता से कहा, "मजाक नहीं कर रहा हूँ। सच कहता हूँ। तुम हिम्मत करो, यह शादी आदर्श शादी होगी। गाँव के लोग फटी आँखों से देखते रह जाएँगे। जब हमने सुधार का काम हाथ में लिया है तो ऐसे स्वर्ण अवसर को हाथ से क्यों जाने दें। बिना विरोध सहे कभी कोई नया काम नहीं होता है। रमा आएगी तो कन्या पाठशाला का स्वप्न भी साकार हो जाएगा, और अभी तो हम तुम जवान हैं। विरोधों से टक्कर नहीं ली तो जवानी के खून का फायदा ही क्या ? कुछ हलचल तो जीवन में होनी ही चाहिए।"

अमर बड़े साधारण भाव से यह बात कह रहा था। नीलू भाभी बड़े ध्यान से सुन रही थी। चौधरी बुधीसिंह जैसे कहीं खो-सा गया था। अब वह बोला, "विरोधों से डरने की तो बात नही है लेकिन व्यर्थ ही विरोध ले लेना भी तो अच्छा नहीं है।"

अमर बोला, "यह काम व्यर्थ नहीं है। यही तो मैं कह रहा हूँ। रमा के घरवालों का लोगों ने हुक्का-पानी बन्द कर रखा है। पंचायत में मुकदमा भी पेश हो गया है। इन बातों का असर रमा की शादी पर पड़ेगा तो सही, लेकिन वह अनुचित होगा। दिवाकर की गलती के लिए रमा को सजा देना या उसके पिता का बहिष्कार करना सरासर गलत है। और दिवाकर की गलती है या नहीं, यह भी तो कोई ठीक-ठीक नहीं कह सकता। हो सकता है दिवाकर रूपा से ब्याह कर ले।"

चौधरी उछल पड़ा, "क्या ऐसा हो सकता है ?"

अमर बोला, "सभी कुछ दुनिया में सम्भव है।"

"मुझे लगता है कि विरोध के बावजूद रमा की शादी यहाँ हो जाए तो दिवाकर भी रूपा से शादी करके एक उदाहरण पेश कर सकता है।"

कृष्ण बोला, "मुझे तो कोई एतराज नहीं। लेकिन माँ नहीं मानेगी।"

नीलू बोली, "उनकी जिम्मेवारी मैं लेती हूँ।"

कृष्ण ने कहा, "वह तैयार नहीं हुई तो ?"

नीलू बोली, "क्यों नहीं होंगी ? ललाजी की माँ का कहना वह कभी नहीं टाल सकतीं।'

अमर ने पूछा, "इसका क्या भरोसा है कि मेरी माँ इस प्रस्ताव से सहमत हो जाएगी ?'

नीलू ने पूर्ण विश्वास के साथ कहा, "ललाजी, आप अपनी माँ को ही नहीं पहचानते। यह बात कड़वी जरूर है लेकिन सच्ची है।"

चौधरी बड़ी देर से किसी विचार में था अब बोला, "मेरा तो खयाल है कि ऐसी नौबत आएगी ही नहीं। पंचायत में अगर कुछ फैसला हो गया तो उसके बाद मामला ठंडा पड़ जाएगा। फिर शायद वे लोग ब्रम्हभोज देकर प्रायश्चित्त कर लेंगे।"

अमर ने कहा, "ऐसा हो जाए तो अच्छा ही है। अगर न भी हो तो हमें अपने कर्त्तव्य से नहीं डगमगाना चाहिए।"

अमर और नीलू भाभी की बातों से कृष्ण की चिन्ता कुछ कम हुई। समय बहुत हो गया था। कृष्ण ने उठते हुए कहा, "तुम लोग साथ दोगे तो मैं तैयार हूँ लेकिन अगर मुझे रस्सी से बाँधकर कुएँ में फेंककर भाग गए तो…"

अमर बीच ही में बोल उठा, "रस के कुएँ में फेंकना तो पड़ेगा ही लेकिन हम भागेंगे नहीं। अलबत्ता तुम्हीं हमें भगाना चाहोगे तो कुछ कह नहीं सकते।"

पंडित नित्यानन्द के घर मुर्दनी छाई हुई थी। जिस घर की पाँच-सात गाँवों में धाक जमी हुई थी, आज वही घर लोगों की कटु आलोचना का विषय बन गया था। लोगों ने अब पुरानी बातों को भी साथ ले लिया था। कुछ लोग कहने लगे, "पंडित जी ने खुद अनाचार का उदाहरण पेश करके विधवा को भगाया था तो उनका सपूत क्यों पीछे रहता ? ये बातें इनके खानदान में पहले से ही होती आ रही हैं।" कई उनके दादा-परदादाओं के बारे में अनसुनी बातें सुनाने लगे थे। गाँव में जिधर दो-चार आदमी इकट्ठे होते यही बात चलती थी।

पंडित नित्यानन्द का स्वभाव कुछ ऐसा था कि ऐसे मौकों पर उनकी बुद्धि कुछ काम नहीं कर पाती थी। अपमान को पीकर वे चुप रह जाते। भावुक होने के कारण कभी-कभी कोई इरादा मन में करते थे किन्तु उसको क्रियात्मक रूप देते समय फिर शिथिल पड़ जाते थे। दिवाकर की इस प्रेम-कहानी के प्रकाश में आ जाने से उनके मन को इतना धक्का नहीं पहुँचा था जितना उनके मन को पश्चात्ताप हुआ था। अमर का अपमान करने के लिए जिस शस्त्र का इस्तेमाल किया गया था दुर्भाग्य से वही शस्त्र उन पर आ गिरा। अगर अमर के साथ रमा की शादी की बातचीत नहीं चली होती या चलकर भी इस बिना पर न टूटी होती तो शायद वे इस धक्के को सह लेते। कई दिनों तक तो वे अमर की ही बात सोचते रहे। उस पर शंका करके उन्होंने रमा के जीवन को भी दुखी कर डाला। यह उनके लिए बड़े भारी मनस्ताप की बात थी। रमा को वे अब समझ गए थे। उसकी मन:स्थिति और इच्छा से भी परिचित हो चुके थे इसीलिए सर्वगुण-सम्पन्न कृष्ण के साथ रिश्ता पक्का करके भी उनके मन को शान्ति नहीं मिली। वे एक

दिन मँगनी तोड़ने को तैयार थे। कड़वा घूँट पीकर एक बार अमर और उसकी माँ से क्षमा माँगने के लिए वे एक दिन चल ही पड़े थे किन्तु रमा ने अपने दृढ़ निश्चय से उन्हें परिचित कराके, उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया था। उस दिन उन्होंने रमा के हृदय का नया परिचय पाया था।

अमर उनकी विचार-सीमा में अब भी सिमटा हुआ है यद्यपि अब उनके सामने और बड़ी-बड़ी समस्याएँ हैं। रूपा के पिता ने पंचायत में मुकदमा दायर किया है। चार दि के बाद उसकी सुनवाई होने वाली है। गाँवों के सजातीय-विजातीय लोगों ने आना-जाना बंद कर दिया है। पंडिताइन का उन्हें अलग डर हो गया है। दिवाकर की करतूत ने उसके दिल को इतना बड़ा धक्का पहुँचाया है कि वह अब किसी से बोलती-चालती ही नहीं। उसकी तबीयत भी खराब रहने लगी है। इधर रमा की शादी की तैयारियाँ भी हो रही हैं। कृष्ण की ओर से कल ही समाचार मिला है कि वह विरोध के बावजूद भी माघ महीने में शादी के लिए तैयार है। दिवाकर गाँव की आलोचना से बचने के लिए कहीं निकल जाने की सोच रहा है। जिस दिन उसे घर पर ही रहना होता है उस दिन भी वह कहीं दिखाई नहीं देता है। जंगल में या नदी के किनारे एकांत में बैठ कर वह दिन व्यतीत कर देता है। रात होने पर वह चुपके से घर आ जाता। इसी तरह दिन कट रहे थे कि एक दिन पंडित जी के मन में हलचल होने लगी। अचानक वे प्रसन्न दिखाई देने लगे। कई दिनों के बाद उन्होंने पंडिताइन को बुलाकर घरेलू बातचीत करनी शुरू की। दिवाकर की मन:स्थिति और रमा के ब्याह की सामान्य चर्चा हुई। यद्यपि पंडिताइन ने हाँ में हाँ मिलाने के सिवा और कुछ नहीं कहा तो भी पंडित जी का दिल हल्का हो गया। फिर उन्होंने पंडिताइन की सेहत के बारे में भी पूछा, "तुम्हें क्या हो गया है आजकल ? इतनी कमजोर हो गई हो। तबीयत तो खराब नहीं रहती है ?"

पंडिताइन बोली, "मुझे क्या होगा ? होता तो इस इस जंजाल से छुटकारा न मिल जाता लेकिन इतने भाग कहाँ मेरे ?"

पंडित जी ढाढ़स बँधाते हुए बोले, "पगली, ये बातें तो संसार में चलती ही रहती हैं। गलतियाँ भी इन्सान ही करता है।"

पंडिताइन लम्बी साँस लेकर बोली, "गलतियों का पछतावा भी तो करना पड़ता है।"

"तो पछतावे से इन्कार कौन करता है? लेकिन इतना पछतावा भी तो ठीक नहीं कि घुल-घुलकर मरने की नौबत आ जाए।"

पंडिताइन चुप हो गई। पंडित जी ने बात बदली—

"आजकल दिवाकर भी दु:खी रहता है, उसके दिल में भी बड़ी चोट लगी है।"

पंडिताइन की भौंहें चढ़ गईं। बोली, "उसी ने तो सत्यनाश किया। निगोड़ा उस छोकरी पर जा मरा। मैं कहती थी, लड़के की शादी कर दो लेकिन आप ही नहीं माने। लो अब भोगो अपने हठ का फल।"

पंडित जी हँस पड़े, "उसे क्यों बुरा-भला कहती हो। प्रेम किया उसने तो गुनाह नहीं किया। प्यार का भूत जब सवार होता है तो जातपाँत नहीं देखता।" पंडिताइन बोली, "यह कोई प्यार है? क्या इसको प्यार कहते हैं? जब वह अभागा जानता था कि चमार की लड़की से

ब्राह्मण के लड़के की शादी नहीं हो सकती तो उसने ऐसा काम क्यों किया?"

पंडित जी का धैर्य आज असीम था। इस बात से वे रंचमात्र विचलित नहीं हुए। बोले, "पंडिताइन, तुम जात-पाँत का रोना रो रही हो। यह भी तो देखो कि रूपा कितनी खूबसूरत है। इस तरह की लड़कियाँ तो बड़े घरों में भी नहीं मिलती हैं। दिवाकर क्या कोई भी जवान आदमी उसको देखकर ललचा जाता।"

पंडिताइन इस बात से चिढ़ गई बोली, "बड़ी तारीफ कर रहे हो, तो उसे बहू बना क्यों नहीं लेते! कह दो दिवाकर से कि उसे ले आए। अच्छी हट्टी-कट्टी है।"

पंडित जी थोड़ी देर तक चुप रहे। पंडिताइन की नजरों से नजरें मिलाकर यह जानने का प्रयास करते रहे कि इन आँखों के पीछे कितनी घृणा छिपी हुई है। फिर बोले, "मैं यही बात सोच रहा हूँ।"

पंडिताइन ने चौंककर पूछा, "क्या?"

पंडित : "कि उसे घर ले आऊँ। इसमें हर्ज ही क्या है?"

पंडिताइन को काटो तो खून नहीं। वह उनके मुँह की ओर भौचक्की-सी देखती रही। पहले तो समझी मजाक कर रहे हैं किन्तु ध्यानपूर्वक देखने के बाद भी उसे कहीं लेशमात्र मजाक नहीं दिखाई दिया। पंडित जी समझ गए कि उसे मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है। उन्होंने जोर देकर कहा, "उस छोकरी की जिन्दगी बर्बाद हो जाएगी। उसके पेट में बच्चा है। चार महीनों के बाद उसे अपनी लाज ढकनी मुश्किल हो जाएगी? तब वह कहाँ जाएगी? क्या करेगी? आत्महत्या कर ले, क्या यह अच्छा है?"

पंडिताइन इतना ही बोली, "पागल हो गए हो क्या?"

पंडित जी ने गम्भीरतापूर्वक कहा, "पंडिताइन, मैं सच कह रहा हूँ।" मुझ से उस छोकरी की दुर्गति नहीं देखी जाएगी। फूल की तरह मासूम बच्ची जात-पाँत की चक्की के नीचे कुचली जाए तो बड़ा भारी पाप होगा। उससे तो अच्छा है कि "

पंडिताइन बीच में ही कह उठी, "उससे तो कहीं यह अच्छा है कि आप मुझे संखिया देकर मार डालें, मुझे ही क्यों दिवाकर का भी गला घोंट दें। भला यह भी कोई बात हुई कि इतनी-सी बात के लिए हमेशा के लिए बिरादरी से बाहर हो जाएँ। दिवाकर का क्या हाल होगा? उसके बाल-बच्चों की शादी क्या चमारों के घर करोगे?"

पंडित जी बोले, "तब तक तो जमाना ही बदल जाएगा। हो सकता है तब तक जात-पाँत के झगड़ों से मनुष्य जाति को छुटकारा ही मिल जाए। और फिर नहीं भी बदलेगा तो भी क्या चिन्ता है? अपनी मन-पसन्द शादी करने के लिए उनके सामने कोई दीवार तो नहीं रहेगी।"

पंडिताइन का मन क्रोध और क्षोभ से भर रहा था। वह तुरन्त वहाँ से उठकर चली गई।

पंडित जी का हृदय हलका नहीं हुआ। वह दिवाकर से इस विषय में बात करने के लिए उत्कंठित हो गए। उसको आवाज दी। उत्तर में रमा ने प्रवेश किया। उन्होंने पूछा, "दिवाकर कहाँ है?"

रमा बोली, "क्या जानूँ ....आजकल वे दिनभर घर से बाहर रहते हैं। रात को खाना खाने आते हैं।"

पंडित जी सोच में पड़ गए—'किससे बात करूँ? किसकी सलाह लूँ? रमा से इस विषय में पूछना तो अच्छा नहीं रहेगा।'

रमा ने पूछा, "क्या कोई काम है?"

"नहीं, कोई खास नहीं।"

रमा थोड़ी देर तक पिता की स्थिति का अनुमान लगाने का प्रयत्न करती रही फिर उठकर चली गई।

दिवाकर की राह देखते-देखते पंडित जी की आँखें दु:खने लगीं। करीब दस बज गए, खाना भी खा लिया। दिवाकर के लिए खाना ढककर रख दिया और बाकी सब लोगों ने खा लिया। पंडितजी सोने की तैयारी करने लगे तो दरवाजे पर दिवाकर आ खड़ा हुआ। पंडितजी को ऐसा लगा जैसे कई दिनों के बाद दिवाकर को देखा हो। उसकी शकल ही बदल गई थी। दिनभर जंगल में भटकने के कारण उसके बाल अस्त-व्यस्त हो गए थे। चेहरे का तेज उतर गया था और आँखों में धुँधलापन-सा भर गया था। इन दो चार दिनों में ही उसका स्वास्थ्य काफी गिर गया लगता था। पंडित जी के बुलाने पर वह सीधा भीतर चला गया। उन्होंने पूछा—

"खाना खा लिया?"

दिवाकर ने सूखे हुए स्वर से कहा, "नहीं…"

"तो जाकर खा लो, और फिर मेरे पास आना।"

"कोई जरूरी काम है?"

"हाँ…"

"तो अभी कह दीजिए, मुझे आज भूख नहीं है।"

"भूख के बगैर भी कभी रोटी खानी पड़ती है, जाओ।"

"लेकिन क्या काम है?"

"फिर बताऊँगा पहले खाना खा लो।"

दिवाकर यह सोंचते-सोचते चला गया कि ऐसा कौन सा काम होगा। रसोईघर में जाकर उसने थाली से ढका हुआ खाना निकाला और खाने लगा। आज वह भी अपने घर में एक नया इरादा किए हुए था। खाना खाते हुए वह सोचने लगा, "शायद मेरा यहाँ आखिरी भोजन हो। कल सुबह मुँह अँधेरे ही मैं यहाँ से चल दूँगा। जिधर किस्मत ले जाएगी, उधर चला जाऊँगा।" वैसे एक रुकावट उसके रास्ते में थी। रूपा की अवस्था। वह माँ बनने वाली थी। भावी सन्तान की चिन्ता उसे सताने लगी थी। कहीं ऐसा न हो कि दु:खों से ऊबकर वह बच्चे को मार डाले या स्वयं ही आत्महत्या कर ले। इसके लिए वह एक बार अमर से मिलना चाहता था किन्तु अब उसने विचार कर लिया था कि पत्र द्वारा ही अमर तक यह प्रार्थना पहुँचा देगा।

खाना समाप्त करके वह पिता के कमरे में पहुँचा। पंडित जी उस समय बिस्तर पर चित्त लेटे आँखें मूँदकर कुछ सोच रहे थे। दिवाकर की आहट पाकर वे बिस्तर पर उठकर बैठ गए। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे फिर पंडित जी बोले, "तुमने क्या सोचा है?"

दिवाकर ने पूछा, "किस बारे में?"

"रूपा के बारे में।"

दिवाकर ने सिर झुका लिया। पंडित जी ने उसके सिर को उठाकर पूछा, "मेरी बात मानोगे?"

दिवाकर ने सिर हिलाकर 'हाँ' की।

"तो रूपा को लेकर कहीं भाग जाओ।"

दिवाकर आश्चर्य से देखता रहा। उन्होंने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा, "देखो, अगर तुम ऐसा नहीं करोगे तो उस बेचारी की जिन्दगी तबाह हो जाएगी। गलती अभी तक तो कुछ नहीं हुई है लेकिन अगर तुमने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया तो उमर भर पछताते रहोगे।"

दिवाकर ने अब भी कोई उत्तर नहीं दिया। वे कहते गए—"जात-पाँत का ख्याल छोड़ो। तुमने जब उसे वचन दिया था तब भी तुम्हारे दिल में पवित्र आत्मा ही बोल रही थी। शादी तुम्हारी उसके साथ हो चुकी है। इसमें सोचने की जरूरत नहीं तुम्हें यह काम करना ही होगा। रूपा भी शकुंतला से किसी कदर कम नहीं है। दुष्यन्त ने जो गलती की थी वही तुम मत करना।" दिवाकर के मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। थोड़ी देर के बाद पंडित जी ने पूछा, "क्या कहते हो?"

दिवाकर बोला, "लेकिन लोग आपको सताएँगे तो ?"

वे मुस्करा दिए, बोले, "उसकी चिन्ता तुम मत करो। मैं उनसे निपट लूँगा। विरोध वे करेंगे, लेकिन जब मैं उनके विरोध की ओर से उदासीन हो जाऊँगा तो वे अपने-आप चुप हो जाएँगे। एक-आध साल कहीं बाहर रहकर तुम चले आना। तब तक बात पुरानी हो जाएगी।"

दिवाकर चुपके से उठकर चला गया और पंडित जी चादर ओढ़कर सो गए।

दिवाकर के हृदय की उथल-पुथल ने पिछले दो-तीन दिनों में बड़ा उग्र रूप धारण कर लिया था। जिस तरह वायुयान का चालक घने कुहरे में आकर दिग्भ्रांत हो जाता है और वायुयान को भूमि पर उतारने के लिए रास्ता खोजते-खोजते घबरा जाता है, उसी तरह की मनोदशा दिवाकर की हो गई थी। जंगल के एकांत में, नदी की शांति में और बंजर सुनसान इलाकों के उदासीन वातावरण में उसने मार्ग ढूँढने का प्रयत्न किया था किन्तु वह असमर्थ रहा था। रूपा को पत्नी रूप में स्वीकार करने का, या उसकी कल्पना मात्र का इतना भीषण परिणाम हो सकता है इस बात का उसे अनुमान नहीं था। ततवानी के स्वर्गिक वातावरण में उसने रूपा को जो आश्वासन दिया था वह यथार्थता की चट्टान से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। किन्तु उसे ऐसा दिखाई दे रहा था कि रूपा के आँसुओं से भीगकर वे टुकड़े फिर से एक हो जाएँगे। उसे इसकी आशा भी थी लेकिन विश्वास नहीं था। मेरे बाद बूढ़े पिता को समाज की कितनी यातनाएँ सहनी पड़ेंगी यही उसके चित्त को इच्छित दिशा की ओर जाने से रोक रहा था आज उसका रास्ता खुल गया था।

फिर भी वह रात के तीन बजे तक विचार करता रहा। रूपा को लेकर कहाँ जाना चाहिए? कैसे जाना चाहिए? कब तक कहाँ रहना होगा? इत्यादि बातें वह बड़ी देर तक सोचता रहा। जब तक उसके दिल ने एक मार्ग निश्चित नहीं कर लिया—पूरा कार्यक्रम नहीं बना लिया, तब तक उसे नींद नहीं आई। जब उसके मन का द्वन्द्व शान्त हो गया तो वह सो गया।

दूसरे दिन सुबह ही वह रूपा के घर के पास पहुँचा तो धूप चारों ओर फ़ैल चुकी थी। उसका अनुमान था कि रूपा यहाँ न होकर परमेसरी के घर ही होगी किन्तु तभी उसने किसी को बाहर निकलते हुए देखा। रूपा हाथ में रोटी लेकर गाय को खिलाने के लिए निकली थी। दिवाकर को देखकर वह झटपट भीतर भाग गई। दिवाकर ने समझा कि वह नाराज है, मेरी शक्ल देखना भी उसे पसन्द नहीं है। थोड़ी देर के लिए उसे लगा कि वह चारों ओर से घिर गया है। उसके तमाम रास्ते बन्द हो गए हैं। आशा की जो बगिया पिछले दस-बारह घंटों में फूलों से सुसज्जित हुई थी वह पलभर में ही उजड़ गई। हृदय को चीरने वाली पीड़ा विकराल रूप धारण करने लगी और ऐसा लगने लगा कि वह वापस घर नहीं पहुँच सकेगा। अचानक उसके मस्तिष्क में एक नया विचार पैदा हुआ। उसे एक किरण दिखाई दी : 'क्यों न मैं उससे पूछ लूँ?' इस विचार के आते ही उसके पाँव आँगन की ओर मुड़ गए। उसे भय था कि रूपा का बाप देखते ही बरस पड़ेगा, या रूपा गुस्से से तिलमिला उठेगी। लेकिन रूपा दरवाजे का सहारा लेकर मानो उसकी राह देख रही थी। उसके होंठों पर मुस्कराहट थी। आँखों में प्रसन्नता के भाव भी स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। घर का रूप-रंग भी बदल गया था। जिस दुर्गन्धमय वातावरण को वह देख गया था वह आज नहीं था। आज तो घर के भीतर से धूप की मीठी सुगन्ध आ रही थी। कुछ देर तो वह आश्चर्य से रूपा की ओर देखता रहा फिर रूपा बोली—

"आइए, बाहर क्यों खड़े हैं?"

वह चुपचाप भीतर चला गया। भीतर कमरे में एक दरी बिछी हुई थी। कच्चा फर्श अभी-अभी जैसे गोबर से लीपा गया था। घर के वातावरण में कहीं भी गंदगी का निशान नहीं था। अपूर्व सात्त्विकता के दर्शन वहाँ पर दिवाकर ने किए। अब उसे यह समझते देर नहीं लगी कि रूपा किसलिए भीतर गई थी। दिवाकर दरी पर बैठ गया और कमरे की हर चीज को गौर से देखने लगा। हर चीज इतनी सफाई लिये हुए थी कि घर किसी ऋषि का आश्रम सा लग रहा था। रूपा ने बात छेड़ी—

"पानी पिएँगे।" फिर अपने और दिवाकर के बीच अन्तर का अनुमान लगाकर सकपका कर बोली, "मेरा मतलब है" अगर प्यास लगी हो तो पड़ोस के ब्राह्मणों के लड़के से पानी मँगवा दूँ।"

दिवाकर के दिल पर चोट लगी। उसने रूपा की ओर देखते हुए कहा, "रूपा, मैं पहले ही बहुत कुछ सह रहा हूँ" और ज्यादा दुःखी मत करो।"

रूपा बोली, "मुझे यह पता होता कि आपको मेरी बात से दुःख होगा तो कभी ऐसी बात नहीं कहती। लेकिन" पानी"

दिवाकर ने उसे वहीं रोक दिया—"पानी की अभी जरूरत नहीं है। हाँ चाय पिला सकती हो तो पिलाओ।"

रूपा बोली, "मजाक तो नहीं कर रहे हैं?"

दिवाकर ने बड़ी करुण दृष्टि से उसकी ओर देखा फिर कहा, "तुम मुझे शायद कभी माफ नहीं कर सकोगी।"

रूपा की आँखें सजल हो आईं" किन्तु इससे पहले कि अधीर आँसू बाहर निकल आएँ वह

दूसरे कमरे में चली गई। दिवाकर उसको जाते देखता रहा।

थोड़ी देर में वह चाय का गिलास ले आई। गिलास रखते हुए उस का मस्तक दिवाकर के चरणों से छू गया तो दिवाकर चौंक पड़ा। रूपा ने भी अपना मस्तक हटा लिया किन्तु उसके अधरों पर पवित्र हँसी बिखरी हुई थी। दिवाकर समझ नहीं सका कि किन शब्दों में वह अपने भावों को व्यक्त करे। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे फिर दिवाकर ने पूछा.....

"तुम्हारे बापू कहाँ हैं?"

रूपा पास बैठ गई और बोली, "आज वे काम पर गए हैं, पूरे सात दिनों के बाद आज घर से निकले हैं।"

दिवाकर: "और तुम भी आज ही यहाँ आई होगी?"

रूपा: "नहीं, कल ही वे मुझे मनाकर ले आए थे। परमेसरी चाची के यहाँ आकर वे रोने लगे और कहने लगे, रूपा को भेज दो। उसके बिना मैं जीता नहीं बचूँगा। वे मुझे बहुत प्यार करते हैं ... जब उन्होंने मुझे मार पीटकर बाहर निकाल दिया तो खूब रोए थे। मेरे यहाँ से चले जाने के बाद सात दिन तक नरक में पड़े रहे। बेहद शराब पी..... घर के बर्तन तक बेच डाले। घर में वहीं कै करते, वहीं सो जाते थे। असल में वह मेरे बिना अपनी जिन्दगी ही खत्म कर देना चाहते थे।"

दिवाकर सुनता रहा और रूपा कहती गई—

"उन्होंने मुझे अधमरा कर दिया था लेकिन प्यार की वजह से ही। मेरी गलती उनसे बर्दाश्त नहीं हो सकी लेकिन अब वे फिर पहले की तरह ही हो गए हैं। उन्होंने मेरे सारे कसूर माफ कर दिए हैं।"

दिवाकर जिस काम के लिए आया था, वह भीतर ही भीतर दब कर रह गया। बड़ी देर तक रूपा पिता के बारे में बातें करती रही। उनका प्यार, उनकी आदतें, स्वभाव, बातें..... इत्यादि विषयों पर पता नहीं, कितनी देर तक वह कहती गई। दिवाकर सोचता रहा कि कब वह अपना राग बन्द करे और कब मैं अपने आने का उद्देश्य बताऊँ। उसे तो अपनी बात कहने का मौका नहीं मिला किन्तु बाहर आँगन में किसी के घास का गट्ठर फोड़ने की आवाज आई। आवाज सुनते ही रूपा के चेहरे पर घबराहट छा गई। दिवाकर ने शुकरू के आने का अनुमान लगाकर उठने की चेष्टा की किन्तु रूपा ने उसका हाथ पकड़ लिया। धीरे से बोली, "बाहर मत जाइए, अगर बापू ने देख लिया तो बहुत बुरा होगा। वे बहुत बिगड़ेंगे।"

दिवाकर के चेहरे का तेज पल भर में फक पड़ गया। शुकरू के भारी कदम दरवाजे की ओर बढ़े किन्तु कुछ दूर ... ओट में ही, वे रुक गए। वहीं से आवाज लगाई, "रूपा!"

रूपा भय से काँपती हुई उठी और दरवाजे की ओर बढ़ी। उत्तर देने के बजाय, वह स्वयं ही बाहर आ गई। शुकरू ने अचम्भे से उसकी आँखों में भय के भाव देखे तो सन्न रह गया। कुछ देर तक यूँ ही चुप रहने के बाद वह बोला, "खाना बन गया है?"

रूपा ने बहाना किया, "नहीं बापू, अभी थोड़ी देर है।"

"अच्छा, मैं तब तक दुकान से तम्बाकू ले आता हूँ।" कह कर वह उलटे पाँव वापस लौट गया। रूपा खड़ी-खड़ी जाते देखती रही। जब तक दूर निकल गया तो वापस दिवाकर के पास

आकर बोली, "आप जल्दी यहाँ से चले जाइए। अगर उन्होंने देख लिया तो पता नहीं क्या कर देंगे? गुस्से से पागल हो जाते हैं।"

दिवाकर ने उठते हुए कहा, "लेकिन मैं तो एक खास काम के लिए आया था।"

रूपा बोली, "तो जल्दी बताइए, क्या काम है?"

दिवाकर: "नहीं, वह इतनी जल्दी बताने का नहीं है।"

रूपा: "अच्छा, तो फिर बताना कभी। अभी आप चले जाइये।"

दिवाकर: "ये काम ऐसा है कि अगर अभी नहीं बता सका तो फिर कभी नहीं बता सकूँगा।"

रूपा खीझकर बोली, "तो इतनी देर से क्या कर रहे थे।"

दिवाकर बोला, "इतनी देर तुम अपना ही राग छेड़े रहीं। मुझे बोलने का मौका ही कहाँ दिया?"

रूपा के मन में कुतूहल पैदा हुआ। यद्यपि पल-पल में उसे बापू के आने का डर सता रहा था फिर भी वह दिवाकर के दिल की बात सुनने के लोभ का संवरण नहीं कर सकी। वह बैठ गई और बोली, "अच्छा कहिए, लेकिन मेहरबानी करके जल्दी बताना।"

दिवाकर ने एक बार रूपा की नजरों से नजरें मिलाईं और फिर बोला, "तुम मेरे साथ भाग कर जा सकोगी?"

रूपा यह निर्णय नहीं कर सकी कि वह किसके मुँह से क्या सुन रही है। किन्तु जरा सँभलकर उसने पूछा, "कहाँ ले जाओगे मुझे?"

"किसी शहर में दूर....."

"इससे फायदा.....?"

"यही कि मैं तुम्हें निर्भय होकर अपना कह सकूँगा।"

उसने दोनों हाथों से दिवाकर के चरण पकड़ लिये। थोड़ी देर तक दोनों इसी स्थिति में रहे। दोनों में से किसी के मुंह से भी कोई शब्द नहीं निकल सका। अचानक रूपा उठ खड़ी हुई। दरवाजे के पास जाकर वह देखने लगी कि बापू वापस तो नहीं आ गए। बाहर, काफी दूर तक कोई दिखाई नहीं दिया, फिर भी उसकी बेचैनी कम नहीं हुई। वह दिवाकर का हाथ पकड़कर बोली, "आप जाइए, बापू आते ही होंगे।"

दिवाकर ने पूछा, "लेकिन, मेरी बात का जवाब?"

रूपा की उद्विग्नता बढ़ती जा रही थी, बोली, "अभी आप जाइए।" फिर कभी इसका जवाब दूँगी।"

दिवाकर के सामने स्थिति बड़ी पेचीदा थी। यदि आज उसे उत्तर न मिला तो पंचायत से पहले-पहले वह नहीं जा सकेगा। और उसे उस दिन से पहले ही लापता हो जाना चाहिए। वह बोला, "रूपा, तुम नहीं समझोगी। मुझे तुम्हारे उत्तर की आवश्यकता अभी है। हम आज रात ही कहीं चले जाएँगे। तुम हाँ या ना कोई एक जवाब दे दो। मैं इन्तजार नहीं कर सकता। मुझमें अब धैर्य नहीं रहा है। हो सकता है कि मेरे दिल की कमजोरी फिर उभर आए।"

रूपा सोच में पड़ गई। लपककर वह दरवाजे के पास गई। फिर से बाहर की ओर देखा।

करीब डेढ़ फलाँग दूर उसे बापू दिखाई दिए। वह भागकर वापस आ गई, बोली, "बापू आ गए अब बुरा होगा।"

दिवाकर ने कहा, "जल्दी से हाँ या ना कह दो। मैं रात को नाले के पास बरगद के पेड़ के नीचे तुम्हारी राह देखूँगा। बोलो...... आ सकती हो?"

रूपा की चंचलता ने खीझ का रूप धारण कर लिया। वह बोली, "मैं बापू को अकेला छोड़कर कैसे जा सकती हूँ?" दिवाकर का हृदय किसी बोझ के आ पड़ने से जैसे दब गया। उसने उत्तर में कुछ नहीं कहा, चुपके से दरवाजे की ओर बढ़ा। रूपा ने चाहा कि दौड़कर उसके पाँवों से लिपट जाये और क्षमा माँगकर कहे, मैं आऊँगी, जरूर आऊँगी! लेकिन न जाने किस शक्ति ने, किस मजबूरी ने उसको बाँध रखा था। वह उसी जगह पर पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी रही। मुँह से एक शब्द नहीं निकला। दिवाकर बिना पीछे की ओर देखे, दरवाजे से बाहर हो गया। एक निमेष भर के लिए रूपा की आँखों में स्वर्ग की झांकी दिखाई दी। फिर चारों ओर अंधेरा छा गया। वह वहीं फर्श पर बैठ गई और फटती हुई छाती को दोनों हाथों से दबाकर रुलाई को रोकने का प्रयत्न करने लगी। कितनी ही देर तक वह भीतर ही भीतर जलती रही। उसे यह भी याद नहीं रहा कि पलभर पहले वह बापू के आने की चिन्ता में पागल हुई जा रही थी। जब उसका हृदय कुछ हल्का हुआ तो उसके मन में यह विचार उठा कि बापू अभी तक क्यों नहीं आए? इस विचार के आते ही उसके हृदय में एक भयंकर शंका उत्पन्न हुई। कहीं उन्होंने दिवाकर को घर से निकलते तो नहीं देख लिया और फिर उसे पकड़ने के लिए वे पीछे-पीछे तो नहीं चले गए...। इस शंका के उत्पन्न होते ही उसका सारा शरीर डर के मारे काँपने लगा। वह उठ खड़ी हुई और दरवाजे के पास आकर फिर रास्ते की ओर नजर डाली। वहाँ कोई नहीं था। उसे निश्चय हो गया कि बापू दिवाकर के पीछे-पीछे ही गए हैं। दिवाकर के अनिष्ट की शंका मात्र से वह थरथराने लगी। उसके भीतर एक ज्वार उठा और वह उसके वेग में उस ओर दौड़ पड़ी जिस ओर दिवाकर गया था। उसके सिर की ओढ़नी आँगन में ही खिसककर गिर पड़ी। बाल बिखर गए और वह पागलो की तरह भागने लगी। दिवाकर काफी दूर निकल गया होगा, इस विचार से वह बिना इधर-उधर देखे भागी जा रही थी। लेकिन जिसके भय से वह अपनी सुध-बुध भूल कर भाग रही थी वह घर के पिछवाड़े दीवार से सटकर खड़ा था। रूपा पास से होकर निकल गई लेकिन उसकी दृष्टि उस ओर नहीं गई। शुकरू ने भी उसे पुकार कर रोकना उचित नहीं समझा। काफी दूर निकल जाने के बाद रूपा नाले के पास बरगद के पेड़ के नीचे आ गई। यहाँ आकर उसके कदम रुक गये। उसने देखा, बरगद के नीचे, रास्ते की ओर पीठ किए दिवाकर बैठा है। वह दौड़कर उसके निकट पहुँच गई।

"बाबूजी...।" उसने पुकारा।

दिवाकर आश्चर्य-विमूढ़ होकर उसे देखता रहा। रूपा बोली, "बापू ने कुछ कहा?"

दिवाकर कुछ नहीं समझ सका, "बापू ने...... कहाँ है?"

"तुम्हारे पीछे-पीछे तो आए थे।" कह कर रूपा भी चारों ओर देखने लगी। किन्तु जब उसे कोई दिखाई नहीं दिया तो बोली, "ओह! मैंने सोचा, बापू तुम्हारा पीछा कर रहे हैं।...... लेकिन वे गए कहाँ?"

अब दिवाकर समझा इसलिए मुस्करा कर बोला—

"तुम्हें मेरी इतनी चिन्ता है तो मेरे साथ भाग क्यों नहीं चलतीं?"

रूपा का भय कम हो चुका था इसलिए उसने सिर झुका कर प्रश्न किया, "भागना तो डरपोकों का काम है। आप मुझ से यहीं शादी क्यों नहीं कर लेते?"

दिवाकर गम्भीर होकर बोला, "कहने में आसान होकर भी यह काम कठिन है। यहाँ जाँत-पाँत की इतनी दीवारें हैं कि उनके एक साथ टूट पड़ने से हम चूर-चूर हो जायेंगे, हमारे घरवाले भी नहीं बचेंगे।"

"लेकिन मैं बापू को अकेला नहीं छोड़ सकती।" रूपा ने कहा।

दिवाकर के दिल का फूल खिलते-खिलते फिर मुरझा गया। वह चुप हो गया। कुछ देर बाद वह लम्बी साँस लेकर बोला, "अच्छा, जैसी तुम्हारी मरजी।"

रूपा को लगा कि इस लम्बी साँस में बड़ी भारी पीड़ा तड़प रही है। वह अपने धैर्य का शासन नहीं मान सकी। उठते हुए बोली—

"अच्छा, मैं आऊँगी, यहीं पर। अब जाती हूँ।"

दिवाकर ने उसकी ओर सिर उठाकर देखा। वह तेजी से घर की ओर जा रही थी। उसने पूछा, "सच कहती हो ... या मजाक कर रही हो।"

रूपा मुड़कर बोली, "क्या आप दिल की आवाज को नहीं पहचान सके?"

दिवाकर का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा।

रूपा तेजी से आगे बढ़ रही थी किन्तु एक विचार रह-रहकर उसे पीछे धकेलने की कोशिश कर रहा था। भावावेश में वह दिवाकर को जो वचन दे आई थी उसे वापस लौटाने के लिए कई बातें मन में उठीं। जितनी तेजी से वह घर की ओर जा रही थी उतनी ही तेजी से उसके इरादे में शिथिलता आती गई। यहाँ तक कि घर पहुँचते-पहुँचते उसे लगा कि वह एक अपराध कर आई है। बापू को अकेला छोड़कर जाना बड़ा भारी स्वार्थ है। उसे अपने पर ही क्रोध आया। बहुत सम्भव था कि इस क्रोध में वह एक और विरोधी निर्णय कर लेती किन्तु तभी सामने बापू को देखा। उन्हें देखते ही रूपा का क्रोध भय में बदल गया। ... न जाने वे क्या कहेंगे? उन्होंने दिवाकर को देख लिया होगा तो मेरी जान लेकर ही छोड़ेंगे। शुकरू ने जब बेटी के चेहरे पर भय की छाया देखी तो मुस्कराते हुए बोला—

"पणत जी क्या कह रहे थे?"

रूपा को यह मुस्कराहट और भी भयंकर लगी। डर से काँपती हुई वह चुपचाप खड़ी रही। शुकरू ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "बेटी, अपने बापू से इतना डरती हो! मैं उस दिन निरा जानवर बन गया था। लेकिन बेटी, क्या उस दिन के कसूर को तुम कभी माफ नहीं कर सकोगी?"

रूपा के दिल का भय भक्ति में बदल गया। उसने बापू के सीने पर अपना सिर रख दिया। आँखों से आँसू निकलकर गालों पर छितराने लगे। वह हृदय के समस्त प्रेम को उड़ेलते हुए बोली, "बापू, तुम ऐसा मत कहा करो। मुझे बड़ा दुःख होता है।"

कुछ देर बाद शुकरू बोला, "बेटी, मैं आज सोचता हूँ कि पंचायत में मुकदमा करके मैंने

गलती ही की। लेकिन अब वापस लूँ भी तो कैसे ? बड़े पणत जी की बड़ी बेइज्जती होगी। छोटे पणत क्या कहते थे, बताओगी नहीं ?"

रूपा ने एक शब्द भी नहीं कहा। शुकरू ने बेटी की इच्छा के विरुद्ध ज्यादा पूछताछ करना उचित नहीं समझा।

खाना खाने के बाद शुकरू फिर काम पर चला गया। सुन्दरसिंह के खेत में चार-पाँच दिन के लिए काम मिला था। रूपा फिर अकेली रह गई। एकांत में उसका मन फिर अपने वायदे की ओर दौड़ने लगा। मन की चंचलता, हृदय की अस्थिरता, मस्तिष्क के तर्क-वितर्क में उसका दिन यूँ ही कट गया। शाम हो गई। घरों में दिये जगे, आकाश में तारे टिमटिमाने लगे, फिर चाँद भी निकल आया। रूपा कोई निर्णय नहीं कर पाई। घर का सारा काम-काज रोज की तरह ही उसने किया। खाना तैयार करके वह बापू की राह देखने लगी। तब भी उसके मन में यही विचार था कि दिवाकर के साथ जाऊँ या न जाऊँ ?...... बापू आ गए। उनके लिए उसने गर्म पानी ला दिया। उन्होंने हाथ-पाँव धोए, कुल्ला किया फिर भोजन के लिए दोनों बैठ गए। रूपा ने अपनी थाली में रोटी तो परोस ली लेकिन सब्जी की याद ही नहीं रही। बापू की थाली में केवल साग परोसा, रोटियाँ देने की याद नहीं रही। वह चुपचाप सूखी रोटी खाने लगी। बापू आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा। जब इस तरह देखने से भी रूपा का ध्यान उस ओर न मुड़ा तो वह बोला, "बेटी, आज क्या बात है ? तुम बहुत बड़ी उधेड़बुन में दिखाई देती हो।"

इस बात से रूपा ऐसे चौंक पड़ी मानो किसी ने चाबुक मार दी हो। शुकरू यह देखकर मुस्कराने लगा। रूपा का ध्यान बापू की थाली की ओर और फिर अपनी थाली की ओर गया। वह लज्जा से गड़ गई। चुपके से उनकी थाली में रोटियां रख दीं और अपने लिए भी साग रख लिया। किन्तु वह मुँह से कुछ नहीं कह सकी।

शुकरू बोला, "मैं ज्यादा पूछताछ करके तुम्हें तंग नहीं करना चाहता बेटी ! फिर भी मुझे डर हो जाता है कि कहीं तुम मुझ से नाराज होकर कहीं चली न जाओ।"

रूपा को तीर की तरह यह बात चुभ गई, बोली, "बापू, तुमने यह बात कैसे कही ?"

शुकरू ने स्वाभाविक ढंग से कहा, "उस दिन भी तो तुम मुझे छोड़ कर चली गई थीं। कितने दिनों तक मेरी सुध ही नहीं ली थी कि बूढ़ा बाप जीता है या मर गया है। अगर मैं तुम्हें मनाकर न लाता तब तो तुम मेरा मुँह भी नहीं देखतीं।"

रूपा को इससे कुछ धैर्य मिला। वह बोली—

"लेकिन बापू, लड़कियों को एक न एक दिन तो बाप का घर छोड़ना ही पड़ता है।"

उसके मुँह से यह बात निकली और शुकरू का चेहरा पीला पड़ गया। जो शंका उसे हो रही थी वह सच होती प्रतीत हुई। रूपा ने भी अनुभव किया कि उसने बड़ी भूल की। उसने बात को घुमाकर कहने की चेष्टा की किन्तु कुछ बना नहीं। मौन रहकर वह सामने की ओर देखती रह गई। शुकरू बोला—

बेटी, मैं कुछ कहना तो नहीं चाहता, लेकिन कदम सँभाल-सँभाल कर रखना। दुनिया बहुत बुरी है।

रूपा का दिल बैठ गया। बात बिगड़ गयी थी उसे बनाना अब उसके हाथ में नहीं था।

फिर भी वह बोली, "बापू, तुम्हें यूँ ही शक हो रहा है।"

लेकिन इससे पहले ही शुकरू उठ गया। खाना आधा थाली में पड़ा रहा। रूपा ने उठकर मनाना चाहा लेकिन वह भी अपनी जगह से नहीं उठ सकी। उसके लिए भी कौर खाना अब कठिन हो गया। वह भी थाली छोड़कर उठ गई।

इसके बाद बड़ी रात गए तक दोनों मौन रहे। शुकरू बाहर आँगन में बैठकर चिलम के ऊपर चिलम पीता रहा और रूपा भीतर बैठकर विचारों की माला गूँथती रही। फिर शुकरू चुपचाप खाट बिछा कर लेट गया। रूपा भी सो गई।

चन्द्रमा दूसरी ओर ढल गया तो रूपा जाग रही थी। अब वह धीरे-धीरे बिस्तर से उठी। बापू की खाट के पास जाकर देखा, वे सो रहे थे। दरवाजा धीरे से खोलकर वह बाहर आई। चारों और चाँदनी छिटकी हुई थी। कहीं एक पंछी रह-रह कर बोल रहा था। रूपा इस पक्षी की बोली बचपन से ही जानती थी। वह कह रहा था।

"काफल पक्के, मैं नहीं चखे!"

'आह! कितना दर्द है इसकी पुकार में इसने संसार का कोई सुख नहीं देखा। उसकी हालत भी मेरी ही तरह होगी!' यह सोचकर रूपा ने एक लम्बी साँस ली। वह भीतर आ गई। फिर बापू की ओर देखा। उसके चेहरे पर चाँदनी पड़ रही थी। नींद में वह चेहरा इतना भोला लग रहा था कि रूपा का इरादा डगमगा गया। उसने द्वार बन्द कर लिया और बिस्तर पर लेट गई। आँखें बन्द करके उसने सोने का भरसक प्रयत्न किया। बाहर पंछी फिर बोला। बन्द दरवाजे को चीरती हुई उसकी पुकार रूपा के दिल को मथने लगी। 'काफल पक्के, मैं नहीं चखे।' की मजबूरी कितनी बड़ी मजबूरी होगी? जंगलों में हर जीव को बिना दाम मिलने वाला यह फल भी उस अभागे को नहीं मिला? इतनी मामूली चीज भी उसे नसीब नहीं हुई?...... सोचते-सोचते रूपा फिर चंचल हो उठी। सोने का जितना प्रयत्न किया, नींद उतनी ही उचाट होती गई। आखिर वह बिस्तर से उठ गई। धीरे से दरवाजे की कुंडी खोली। चन्द्रमा की लौ बापू की आंखों पर थी, उससे नीचे का हिस्सा अंधेरे में था। उसने देखा कि वह सो रहे हैं। वह दबे पांव कमरे से बाहर हो गई। बाहर आकर उसने बिना आहट किए दरवाजा बन्द कर दिया। पलभर के लिए वह आंगन में खड़ी रहकर कुछ सोचती रही फिर उसके कदम नाले की ओर मुड़ गए। दिल में उस समय भयंकर उथल-पुथल हो रही थी। टांगे लड़खड़ा रही थीं। ऐसा लग रहा था कि दरवाजा अभी खुला, अभी खुला। फिर भी वह आगे बढ़ती गई। बड़े रास्ते पर आकर उसके दिल की धड़कन कुछ कम हुई। वह तेजी से कदम बढ़ाने लगी। आसपास कचालू के खेत थे। उनके गहरे हरे पत्ते हवा से हिल रहे थे तो उसे ऐसा लग रहा था कि लहराते हुए सागर के बीच चली जा रही हो। उसके पीछे की ओर तूफान उठ रहा था। आगे मंजिल मुस्करा रही थी। करीब दस मिनट में ही वह नाले के पास आ पहुँची। बरगद के पेड़ के नीचे उसे कोई दिखाई नहीं दिया। शायद वे कहीं अंधेरे में बैठे होंगे...... यह सोचकर वह चारों ओर नजर घुमाकर देखने लगी। किन्तु वहाँ कोई नहीं था। बरगद के पेड़ पर दो एक उल्लुओं के फड़फड़ाने की आवाज आई। फिर अचानक पेड़ पर ऐसा भीषण शब्द हुआ मानो आंधी पेड़ के साथ आ टकराई हो। रूपा भय से कांपने लगी, उसके माथे पर पसीने की बूँदें उतर आई। इच्छा हुई कि चिल्लाकर किसी

को सहायता के लिए बुलाए, किन्तु उसकी आवाज़ नहीं निकली। पेड़ पर आंधी सा शब्द सैकड़ों कौवों के एक साथ उड़ने से हुआ था। किन्तु अब उसे दूसरा भय सताने लगा।..... दिवाकर क्यों नहीं आया? क्या उसने मुझे अब की बार भी धोखा दिया?..... धम् से वह बैठ गई और सिसक-सिसक कर रोने लगी। तभी नाले के उस पार उसे दो व्यक्ति दिखाई दिए। रूपा उन्हें देखकर पत्थर की आड़ में छिप गई। उसने देखा एक व्यक्ति तो उस पार से ही वापस लौट गया और दूसरा धीरे-धीरे उसकी ओर आने लगा। ज्यों-ज्यों वह व्यक्ति नजदीक आता गया, रूपा का चेहरा प्रसन्नता से खिलता गया। दो मिनट में ही दिवाकर उसके सामने था। वह आड़ से निकल कर सामने आ गई। दिवाकर ने प्रसन्नता से उसके हाथ पकड़ लिये।

"तुम कब से यहां हो?"।

"बड़ी देर से....."

"डरी तो नहीं?"।

"बहुत डर लगा? इतनी देर क्यों कर दी?"।

"घर से निकलने के लिए अच्छा मौका ही देखता रहा। और तो नहीं, लेकिन रमा की आँखों में नींद नहीं थी। अभी-अभी वह सोई तो हम बाहर निकलने वाले बने।"

"हम? दूसरा कौन था?"।

"पिताजी, मुझे छोड़ने आए थे।"

रूपा आश्चर्य से देखती रही। वह विश्वास नहीं कर सकी किन्तु दिवाकर के चेहरे की मुस्कराहट ने उसकी शंका दूर कर दी।

"अब कहाँ जाना होगा? रूपा ने पूछा।

दिवाकर ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, "क्या इतने लम्बे चौड़े संसार में हमारे लिए जगह नहीं होगी?"

दोनों मुस्करा दिए। फिर धीरे-धीरे वे उत्तर दिशा की ओर चल पड़े।

दिवाकर और रूपा जब मारंडा पहुँचे तो सुबह के चार बजे थे। पठानकोट के लिए पहली बस उन्हें पाँच बजे मिलनी थी। दिवाकर का बिस्तर और ट्रंक वहाँ पहले ही पहुँच गया था। पिछले दिन पंडित जी ने एक कुली के हाथ सामान भिजवा दिया था। मारंडा में कुल मिलाकर दस-बारह दुकानें हैं। पालंपुर से दो मील दूर इस छोटे से कस्बे का आजकल तो ज्यादा महत्त्व नहीं है किन्तु पहले यहां अनाज की मण्डी थी। अंग्रेजों ने जब रेल बन्द कर दी तो बेचारे मारंडे की भी बधिया बैठ गई। अब फिर रेल शुरू हो जाने से यह कुछ-कुछ चमकने लगा है। शरणार्थियों ने थोक माल की दुकानें खोल दी हैं। दो होटल भी खुल गए हैं जिनमें चाय बिस्कुट और खाना मिल सकता है। फलों की दुकानें नहीं हैं पर सड़क के आसपास दो-चार फल वाले दिखाई पड़ जाते हैं। यहाँ एक-दो फर्लांग तक की हवा हमेशा, तम्बाकू, गुड़ और अनाज की गंध

से सनी रहती है।

वे बस अड्डे पर पहुँचे। पास ही छोटी रेल का स्टेशन भी था किन्तु उन्होंने बस में ही जाना तय किया था। एक तो गाड़ी देर से आने वाली थी, दूसरे वे अँधेरे-अँधेरे में काँगड़ा की हद से बाहर हो जाना चाहते थे ताकि उनकी पहचान वाला कोई व्यक्ति न मिल जाए। वे वहीं सड़क के पास, बसों के दफ्तर के बाहर खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे। कुल्लू वेली मोटर ट्रांसपोर्ट के दफ्तर में दिवाकर का सामान था, वह अभी बन्द था। उसने भी किसी को जगाना उचित नहीं समझा। एक बारह-तेरह साल के लड़के को छोड़कर वहाँ और कोई दिखाई नहीं दिया। लड़का होटल में काम करता था और इस समय अँगीठी जला रहा था। अँगीठी में कोयले भर देने के बाद वह ढेर सारे बर्तनों को मांजने बैठ गया। दिवाकर ने रूपा की ओर देखा, वह अपने विचारों में खोयी हुई थी।

"चाय पियोगी?" दिवाकर ने पूछा।

रूपा चौंककर बोली, "जैसी आपकी मर्जी।"

दिवाकर ने ज्यादा बात नहीं की। वह उस लड़के के पास गया। उसके कुछ कहने से पहले ही लड़के ने पूछा, "क्यों साहब चाय बनाऊँ?"

दिवाकर बोला, "बनाओ... बस आने में कितनी देर है?"

लड़के ने हाथ धोते हुए कहा, "अभी आ जाएगी साब, एक घंटे भर में, तब तक मैं चाय बना दूंगा।"

"अच्छा जल्दी बनाओ।" कहकर दिवाकर वापस चला आया। लड़का चाय बनाने लगा।

दिवाकर और रूपा घर से निकलने के बाद बहुत कम ही बोले थे, यद्यपि वे सुनसान रास्ते से होकर ही आए थे जहाँ उनकी बातों को सुनने वाला कोई व्यक्ति नहीं मिल सकता था। दो-एक शब्द को छोड़कर अधिक कुछ नहीं कह सके थे। यहाँ अकेले सड़क के पास बैठकर दिवाकर ने बात करनी चाही, "घर का ख्याल आ रहा है?"

रूपा बोली, "हाँ।"

दिवाकर ने कहा, "दो-चार दिन तक पिछली याद रहेगी फिर सब भूल जाएँगे।"

रूपा ने अपनी ही बात कही, "सुबह उठते ही जब बापू मुझे नहीं देखेंगे तो उन्हें बड़ा दुःख होगा।"

दिवाकर ने धैर्य बँधाया, "रूपा, पिछली याद भुलानी ही पड़ेगी, नहीं तो आगे जाकर हमें शांति नहीं मिलेगी। मुझे क्या पिताजी का कम दुःख है? रमा के ख्याल से तो छुरी-सी चुभ जाती है। लेकिन क्या करूँ?"

रूपा की आँखें भर आईं। वह चुप हो गई।

लड़के ने आवाज लगाई, "बाबूजी, चाय तैयार है।"

दिवाकर दो गिलास चाय और कुछ बिस्कुट ले आया। दोनों ने नाश्ता किया। नाश्ता करते-करते दिवाकर बोला, "दिल्ली तो हम जाएँगे नहीं, वहाँ अपने इलाके के बहुत आदमी हैं। कभी कोई पहचान वाला मिल गया तो ठीक नहीं। कलकत्ता भी जाना ठीक नहीं, वहाँ नौकरी का

बन्दोबस्त होना मुश्किल है। बम्बई अच्छा रहेगा। शहर भी बड़ा है। कोई ज्यादा पूछताछ नहीं करता वहाँ। अपने आदमी तो वहाँ भी हैं। लेकिन किसी को ज्यादा फुर्सत नहीं होती। शहर भी खूब लम्बा चौड़ा है, कारोबार भी बहुत है। कहीं न कहीं नौकरी का ठिकाना लग ही जाएगा।"

रूपा का कहना था कि हमें इतनी दूर नहीं जाना चाहिए। वहाँ आने-जाने में ही दो-सौ रुपये खर्च हो जाएँगे। इतने रुपयों से हम किसी छोटे शहर में छः महीने काट सकते हैं। जब घर वापस जाना पड़ जाए तो भी आसानी रहेगी।

दिवाकर ने कहा, "रूपा घर वापस जाने की बात तो हमें कुछ सालों तक सोचनी भी नहीं चाहिए। दो-चार साल तो यूँ ही कट जाएँगे।"

रूपा का दिल बैठ गया।

बस आ गई। दोनों भीतर जा कर बैठ गए। पिछली सीटों पर एक दम्पती बैठे हुए थे। आगे की सीटें भरी हुई थीं। दिवाकर का बड़ा सा डर भी दूर हो गया। वह सोच रहा था कि मोटर में कोई गाँव-वाला या परिचित मिल गया तो सभी किया-कराया मिट्टी हो जाएगा। किन्तु उसका यह भय भी जाता रहा। दम्पती उच्च घराने के थे। लड़की की नाक में बड़ी सुन्दर नथ थी। उसका साज श्रृंगार दुल्हिनों जैसा था। शायद शादी करने के फौरन बाद ही वह पति के साथ शहर जा रही थी। उसकी आँखें भीगी हुई थीं और पति गम्भीर बने बैठे थे। उन्होंने दिवाकर और रूपा की ओर देखा तक नहीं।

मोटर तेजी से आगे बढ़ रही थी। मोटर में सभी चुपचाप बैठे थे। कभी-कभी ड्राइवर के साथ बैठा हुआ व्यक्ति कुछ बोलने लगता था। किंतु उसका बोलना भी एक-दो वाक्यों तक ही सीमित था। दिवाकर ने रूपा से एक-दो बार कुछ कहना चाहा किन्तु उसका ध्यान बाहर की ओर था। वह खिड़की पर झुकी हुई देख रही थी। उसके सुपरिचित गाँव, नदी, नाले, वृक्ष, झाड़ियां आदिं उससे दूर भाग रही थीं। कुछ ही घण्टों में वे पठानकोट पहुँच जाएँगे। उसके बाद बड़े-बड़े शहर आएँगे, ये वृक्ष, ये झाड़ियाँ फिर कभी दिखाई नहीं देंगी। उसने सुना था कि बड़े-बड़े शहरों में मिट्टी भी पैसे से खरीदी जाती है। वह जगह कैसी होगी, बिना मिट्टी के वे उन पत्थरों और चट्टानों पर कैसे रहेंगे? आदि-आदि कई बातें उसके मस्तिष्क में घूम रही थीं। जन्मभूमि का अनुराग तीव्र होता जा रहा था। उससे बिछुड़ने का क्लेश पल प्रति पल बढ़ता जा रहा था। उसे न तो दिवाकर की बातें सुनाई दीं न उसकी उपस्थिति का भान ही रहा। वह यह भी भूल गई कि वह बस में बैठी है और दूसरे यात्री भी वहाँ उपस्थित हैं। भीतर से कोई टीस उठी, जिसे सहन करने का धैर्य उसके पास नहीं था। वह वहीं खिड़की पर सिर रखकर सिसक पड़ी। दिवाकर का ध्यान उस ओर गया तो वह व्याकुल हो उठा। उसने उसकी पीठ पर हाथ रखकर कहा, "यह क्या हो रहा है? लोग देखेंगे तो हँसेंगे।"

सामने की सीट पर बैठे हुए दम्पती का ध्यान भी उस ओर गया। उन्होंने भी एक-दूसरे की ओर देखा। कुछ देर के बाद जब रूपा स्वस्थ हुई तो महिला ने पूछा, "तुम भी मेरी ही तरह हो। मैं भी खूब रोई हूँ आज। भला ये चीजें हमें फिर कब देखने को मिलेंगी।" फिर पति की ओर देखकर कहा, "मर्दों के दिल तो पत्थर होते हैं। उनके दिल में कोई लगाव ही नहीं होता।"

रूपा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। महिला फिर बोली—

"मुझे तो शादी के बाद दो-चार दिन भी माँ-बाप के यहाँ रहना नहीं मिला। परसों गौना हुआ और आज मुझे ये ले जा रहे हैं। सभी समझाते-समझाते हार गए, लेकिन इन्होंने किसी की न मानी। क्या तुम्हारी शादी अभी-अभी हुई है ?"

रूपा ने सिर हिलाकर 'हाँ' कर दी।

महिला कहने लगी, "और देखो इस मर्द जात को। अभी शादी हुए कुछ दिन हुए और सुहाग के गहने उतरवा दिए। मुझे भी ऐसा करने के लिए जोर लगा रहे थे लेकिन मैं तो नहीं मानी। जब तक इस मिट्टी के दर्शन होते रहेंगे, तब तक तो पहनूंगी ही। फिर जब शहर आ जाएगा तो देखा जाएगा।"

रूपा को अब पता चला कि उसकी नाक में कोई गहना न होने के कारण यह महिला इतना उपदेश दे रही है। वह मुस्करा कर बोली, "इन का हठ है, मैं तो कह रही थी।"

महिला बीच में ही बोल उठी, "न ...... ना, इनके हठ की परवाह मत करना। अच्छा बहन...... तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?"

"रूपा इतना परिचय नहीं बढ़ाना चाहती थी। उसने एक बार दिवाकर की ओर देखा फिर बोली, "कलकत्ता ......।"

"कलकत्ता ?" सुनकर महिला प्रसन्नता से खिल उठी। हम भी तो ......"

लेकिन उसकी बात दिल में ही रह गई। दिवाकर बीच में ही बोल उठा, "नहीं जी, हम बम्बई जा रहे हैं।"

महिला के पतिदेव कलकत्ते का नाम सुनकर चौंक पड़े थे किन्तु दिवाकर की बात सुनकर उनका उत्साह भी फीका पड़ गया। महिला का तो चेहरा ही मुरझा गया। दिवाकर ने रूपा की गलती की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा, "इसने बम्बई-कलकत्ते के नाम भर सुने हैं। समझती है दोनों एक ही जगह हैं।" कहकर वह मुस्करा दिया। सामने वाले महाशय भी मुस्करा दिए।

साढ़े आठ बजे वे पठानकोट पहुँच गए। बस से उतरते ही सब यात्री कुलियों पर सामान लादकर अपनी गाड़ी पकड़ने के लिए चल दिए। वह महिला और उसके पति भी चले। चलती बार महिला ने रूपा का हाथ पकड़कर पूछा, "अब कब मिलोगी ?"

रूपा कोई उत्तर न दे सकी। महिला बोली, "आपके एड्रेस का पता नहीं। मैं अपना ही बता देती लेकिन ये कह रहे हैं कि मकान का बंदोबस्त जाकर करना होगा। खैर, ईश्वर ने चाहा तो फिर कभी मिलेंगे।"

रूपा ने गले मिलकर उससे विदा ली।

मोटरों का अड्डा यात्रियों से खाली हो गया तो दिवाकर सोचने लगा कि टिकट बम्बई का ही लूं या और कहीं का। रूपा से पूछा तो उसने इतना ही कहा, "आपकी मर्जी।" बड़े तर्क-वितर्क के बाद बम्बई का ही निश्चय हुआ। बम्बई जाने के लिए फ्रंटियर मेल सब से अच्छी गाड़ी है। उन्होंने अमृतसर चलकर मेल पकड़ने की सोची। अमृतसर के लिए एक घंटे बाद गाड़ी जा रही थी। उसने झटपट जाकर दो टिकट लिये, कुली से पूछा, "कितना लोगे ?"

उसने एक रुपया माँगा। दिवाकर ने ज्यादा सौदेबाजी नहीं की। तुरन्त सामान उठाने के

लिए उसे कहकर वह रूपा के पास गया और बोला, "भूख तो नहीं लग रही है ?"

रूपा ने सूखी आवाज में कहा, "नहीं।"

"तो फिर अमृतसर चलकर ही खाना खाएँगे। ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे तो वहाँ पहुँच ही जाएँगे।" कहकर उसने अपना बैग उठाया। लेकिन रूपा तो अपनी जगह पर बैठी ही रही। दिवाकर बोला—

"चलो भी, कुली सामान लेकर दूर निकल जाएगा।"

रूपा बोली, "नहीं...... मैं नहीं जाऊँगी।"

दिवाकर सन्न रह गया। कुली काफी दूर निकल गया था। उसने उसे दो-तीन आवाजें दीं। लेकिन वह रुका नहीं। ......कहीं सामान लेकर वह भाग न जाए। उसने रूपा का हाथ पकड़ते हुए कहा, "पागल हो ? कुली सामान लेकर भाग जाएगा तो फिर रोती रहना।"

रूपा कुछ नहीं बोली। वह रोने लगी। दिवाकर ने कुली की ओर देखा, वह प्लेटफार्म में घुसकर कहीं लापता हो गया था। रूपा के रोने-धोने से उसका मन खीझ रहा था। दो-एक आदमी सामने जाते-जाते रुक गए और उन दोनों की ओर देखने लगे। दिवाकर का धैर्य बह गया। क्रोध से उसकी आँखों से चिनगारियाँ उठने लगीं। उसने दाँत पीसते हुए कहा, "नहीं चलोगी ?" रूपा धीरे-धीरे उठी और दिवाकर के पीछे-पीछे चलने लगी।

दिवाकर ने दफ्तर में जाकर पूछताछ की। पता चला गाड़ी एक नम्बर प्लेटफार्म से ही जाएगी लेकिन उसके लगने में अभी आधा घंटा देर है। दिवाकर को निश्चय हो गया कि कुली सामान लेकर भाग गया है। उसने रेलवे के दफ्तर में शिकायत लिखवा दी। बिस्तर में क्या-क्या कपड़े थे, ट्रंक में क्या सामान था, उसका संक्षेप में ब्यौरा भी लिखवा दिया। अपने घर का पता भी दे दिया किन्तु इससे भी उसकी चिन्ता में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। वह रूपा को वहीं खड़ा होने के लिए कहकर प्लेटफार्म का चक्कर लगाने लगा। यात्री अपना-अपना सामान सँभाल रहे थे, कोई बिस्तर-ट्रंक के ऊपर बैठे हाथ में रोटियाँ लेकर खा रहे थे। यात्रियों की भीड़ काफी थी। सभी गाड़ी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। रूपा अकेली वहाँ खड़ी रहकर लोगों की चहल-पहल देखती रही।

दिवाकर ने प्लेटफार्म के एक-दो चक्कर लगाए। कुली कहीं दिखाई नहीं दिया। उसका क्रोध रूपा पर ही केन्द्रित हो गया। यह सब उसी के कारण हुआ। इसको कभी मुझ से प्रेम नही होगा। हमेशा इसका ध्यान बापू की ओर ही रहेगा। फिर बेकार ही मैं इसे लेकर इतनी दूर घर-बार छोड़कर जा रहा हूँ। ऐसे ही तरह-तरह के विचार उसके मन में आए और अन्त में उसने यह निर्णय कर लिया कि उसे वापस भेज दूँगा। नहीं मानेगी तो मारंडा तक मैं खुद उसे छोड़ आऊँगा। शाम को ही वह घर पहुँच जाएगी। ...... वह रूपा के पास आया। रूपा उसी जगह खड़ी हुई थी। धूप से प्लेटफार्म तप कर तवे की तरह हो गया था। रूपा के माथे पर पसीने की बूँदें टपक रही थीं। उसका चेहरा कुम्हला गया था। पलभर तो इस रूप ने दिवाकर को विचलित कर दिया किन्तु दूसरे ही क्षण उसे पिछले आधे घंटे की सारी घटनाएँ याद आईं। वह रूपा से बोला, "चलो, वापस घर चलेंगे।"

रूपा विस्मय से उसकी ओर देखती रही, फिर बोली—"कुली नहीं मिला ?"

दिवाकर ने अपने क्रोध को पीते हुए कहा, "यह शहर है, एक दफा जो चीज हाथ से निकल गई, वह दोबारा नहीं मिलती।"

रूपा को कोई बात नहीं सूझी इसलिए वह चुप खड़ी रही। दिवाकर फिर बोला, "अब खड़ी क्यों हो? चलो न... वापस। तुम इसीलिए तो रो रही थीं! अब क्या हो गया?"

रूपा के मुँह से फिर भी कोई शब्द नहीं निकला। वह पत्थर बनी खड़ी रही।

अमृतसर की गाड़ी अभी तक प्लेटफार्म से पचास-साठ गज दूर थी, लोग बिस्तरों व ट्रंकों को उठाकर तैयार हो गए। 'कुली-कुली' की आवाजों से सारा वातावरण भर गया स्त्रियाँ चिल्ला-चिल्लाकर अपने बच्चों को पुकारने लगीं, "अरे ओ चुन्नू के बच्चे जल्दी चल।" "अरी खसमखानी तेरी नानी गाड़ी आ रही है।" गाड़ी प्लेटफार्म पर आई। लोग उस पर टूट पड़े। किसी ने चलती गाड़ी में ही ट्रंक-बिस्तर अन्दर फेंक दिया। खिड़कियों के रास्ते भी लोग अन्दर घुसने लगे। यह दृश्य करीब पाँच एक मिनट रहा होगा फिर बाहर की सारी हलचल डब्बों में भर गई। प्लेटफार्म सूना दिखाई पड़ने लगा।

दिवाकर ने भी चलती गाड़ी में कूदकर खिड़की के पास दो सीटें रोकने की कोशिश की। तभी एक छः फुट लम्बा सरदार आया। उसने अपना ट्रंक खिड़की के रास्ते अन्दर फेंककर सीट पर रख दिया। दिवाकर बोला, "भाई साहब, यह जगह मेरी है।" सरदार बिगड़कर बोला, "जगह किसी के बाप की नहीं है, सरकार की है।"

दिवाकर जरा गुस्से में आ गया, बोला, "आप जबर्दस्ती करते हैं!"

सरदार ने अन्दर घुसकर उसे एक धक्का दिया, "हाँ, करता हूँ तू क्या कर लेगा मेरा? पहाड़िया साला दाल-भात खाने वाला, चल इधर से।..."

दिवाकर के भीतर का क्रोध फूट पड़ा। उसने उछल कर उस सरदार की गर्दन पकड़ ली। सरदार की पगड़ी खुल गई और दिवाकर के हाथ में उसके बाल आ गए। एक हाथ से बालों को खींचकर दिवाकर ने उसे ऐसी लात जमाई कि वह दूसरी सीट पर जा गिरा। अब सरदार चिल्ला-चिल्लाकर अपने साथियों को पुकारने लगा, "ध्यानसिंहा... ओ... गुरमुखसिंहा...।" दो युवक उसकी पुकार सुनकर दौड़े-दौड़े आए। उन्होंने जब यह बात जान ली कि दिवाकर ने बालों से खींचकर बचनसिंह को लात मारी है तो वे अपनी कृपाणों पर हाथ रख कर बोले, "इस पहाड़िये दे चार डकरे करो हरामजादे दे..." कहकर वे डिब्बे में चढ़ गए। उन्होंने दिवाकर को खींचकर बाहर ला खड़ा किया और उसे घूँसे मारने लगे। रूपा अभी तक प्लेटफार्म पर ही खड़ी हुई थी। कई लोग दिवाकर को छुड़ाने के लिए आगे बढ़े। दिवाकर भी उनके घूसों का जवाब बराबर दे रहा था। तीन सरदारों में से एक का दाँत तो दिवाकर के घूँसे से टूट गया। बाकी के दोनों दिवाकर पर वार कर रहे थे। इतने में रूपा बिजली की तरह आगे बढ़ी। उसने एक युवक सरदार का हाथ पकड़ लिया, और इससे पहले कि वह कुछ कहे रूपा ने उसे ऐसा धक्का मारा कि वह गाड़ी से जा टकराया। उसके सिर से खून बहने लगा। लोगों ने बीच में पड़कर दिवाकर और ध्यानसिंह को अलग कर दिया। रूपा की ओर देखकर सभी हैरान थे। इतने में एक हवलदार, गार्ड और दो-तीन रेल-कर्मचारी आ गए। जब उन्होंने पूरी वारदात सुनी तो ध्यानसिंह, गुरमुखसिंह और उनके साथी को फटकारने लगे। खैर, मामला रफा-दफा हो गया।

दिवाकर को जब झगड़े से मुक्ति मिली तो उसकी नजर सामने दौड़कर जाते हुए कुली पर पड़ी। 'यह तो वही कुली है' कहकर दिवाकर उसकी ओर गुस्से से बढ़ा लेकिन कुली ने आते ही कहना शुरू किया, "वाह, आप तो कहाँ चले गये थे? आपके लिए 'शेड' में जाकर जगह रोकी फिर जब गाड़ी प्लेटफार्म पर आई तो मैं खिड़की से सिर निकाल कर आपको देखता रहा, लेकिन आप तो कहीं दिखाई नहीं दिए।"

दिवाकर ने पूछा, "सामान कहाँ है?"

कुली ने रूपा की ओर मुस्कराते हुए देखा फिर कहा, "दफ्तर में रखा है, ले आऊँ?"

दिवाकर बोला, "जल्दी से लाओ, लेकिन जगह मिलेगी?"

कुली जाते-जाते बोला, "बाबूजी, आप किसी बात की चिन्ता न करें, मैंने बन्दोबस्त कर लिया है।"

कुली दौड़कर सामान ले आया। जगह उसने पहले ही देख रखी थी।

जब दिवाकर कुली को पैसे दे रहा था तो कुली ने धीरे से कहा, "बाबूजी, पैसे मैं नहीं लूँगा। रूपा मेरी बहन है।"

दिवाकर को जैसे बिच्छू डंक मार गया। कुली बोला, "हाँ बाबूजी, बैजनाथ के मोटरों के अड्डे में वह कभी-कभी मजदूरी करने आती थी, तब से इसे जानता हूँ। मेरी कोई बहन नहीं है इसलिए मैं इसे ही अपनी बहन मानता हूँ लेकिन आप यह बात इससे मत कहना।"

दिवाकर ने पूछा, "रूपा ने तुम्हें क्यों नहीं पहचाना?"

कुली बोला, "पहचाना क्यों नहीं? मुझे देखकर वह पीली पड़ गई, लेकिन आप इसे समझाना कि डरना मत, मैं किसी से कोई बात नहीं कहूँगा।"

गाड़ी ने सीटी दी। दिवाकर ने रुपया आगे बढ़ाकर कहा, "यह ले लो।"

"नहीं बाबूजी! यह नहीं लूँगा। मेरी बहन ससुराल जा रही है, सोचता हूँ अगर पाँच-दस रुपये होते तो इसके हाथ पर रख देता लेकिन आज तो सिर्फ चार आने कमाए हैं। आप यह रुपया मेरी तरफ से दे देना।" कहकर कुली चला गया। दिवाकर आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा।

गाड़ी चल पड़ी। दिवाकर ने रूपा के पास बैठते हुए पूछा, "उसे जानती हो?" रूपा ने केवल सिर हिला दिया और फिर वह खिड़की से बाहर देखने लगी।

दत्तल, खैरा और गदियारी, तीनों गाँवों में दिवाकर और रूपा के भाग जाने की खबर से हलचल मची। लेकिन आश्चर्य यह हुआ कि जिन व्यक्तियों को इस घटना से अधिक प्रभावित होना चाहिए था, वे विचलित नहीं हुए। बाहरी रूप से उन सब में चिन्ता अवश्य दिखाई दी लेकिन हृदय से वे ऐसे थे कि मानो कुछ हुआ ही नहीं। शुकरू ने दूसरे दिन सुबह उठकर अपने को बिल्कुल निस्सहाय पाया। सूने घर की ओर देखते-देखते उसकी आँखों में आँसू आ गए। उठकर उसने चाय बनाई लेकिन दूध के लिए दुकान तक जाने की इच्छा नहीं हुई। काली चाय पीकर ही संतोष कर लिया। गाय को घास डालकर वह वापस आया तो उसके सारे शरीर में आलस भरा हुआ था। पिछले दिन उसे तीन-चार दिन का काम मिला था किन्तु आज उसे ऐसा

लगा कि वह कुछ नहीं कर सकेगा, कहीं नहीं जा सकेगा। इच्छा यही हो रही थी कि दरवाजे बन्द करके भीतर सो जाऊँ और दो-चार छः जितने दिन हो सके बाहर न निकलूँ। अभी वह इस कार्यक्रम के ऊपर गौर कर ही रहा था कि परमेसरी आँगन में आ खड़ी हुई। घर और बाहर फैले हुए सूनेपन को देखकर उसके मन में शंका हुई तो वह सीधे भीतर चली आई। शुकरू लेटे-लेटे हुक्का पी रहा था। परमेसरी ने घर के चारों ओर नजर डालकर देखा और अन्त में उसकी आँखें शुकरू पर आकर ठहर गईं। शुकरू प्रश्न समझ गया और वह मुस्करा भर दिया।

परमेसरी ने पूछा, "रूपा कहाँ है?"

बड़ी बेतकल्लुफी से शुकरू ने उत्तर दिया, "अपने घर चली गई।"

"क्या कहा"जरा सीधे से बात करो!" परमेसरी ने तीखी आवाज में कहा।

शुकरू फिर हँस दिया। फिर बिस्तर पर उठकर बैठकर बोला, "बता तो दिया।"रात को पणतजी के साथ भाग गई।"

"कहाँ?"

"क्या जानूँ?"

'तुमने अपनी आँखों से देखा?"

"हाँ"मैं उस वक्त जागता था। कल पणत जी आए थे। उनकी बातचीत हुई थी वह भी मैंने सुन ली थी।"

परमेसरी ने गर्दन मटकाकर कहा, "अब हल्के होकर बैठो। जात-बिरादरी में खूब नाम कमाया।"

शुकरू बोला, "जात-बिरादरी गई भाड़ में। बेटी सुखी हो गई और क्या चाहिए? मेरे कौन से दस-पाँच बच्चे हैं जो उनकी शादी की चिन्ता मुझे होगी?"

परमेसरी चुपचाप चली गई वहाँ से।

परमेसरी ने रामसुरा की बहू से यह बात कही। उसने खेत पर जाते समय एक-दो स्त्रियों से चर्चा की। स्वयं परमेसरी भी कई घरों में काम करने जाती थी। गाँव की दाई होने के नाते उसकी पूछताछ सभी घरों में होती थी। अवस्थियों के यहाँ वह बच्चे को तेल लगाने बैठी तो यह बात छेड़ दी। बड़े घर की औरतें उसके पास जमा हो गईं और तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगीं। वैसे तो जाति की सीमा में औरतों का एक घर छोड़कर दूसरे घर बैठ जाना उन्होंने अक्सर सुना था। छोटी जातियों में यह बात विचित्र भी नहीं कही जाती थी लेकिन चमार की लड़की ब्राह्मण के लड़के के साथ भाग जाना एक नई ही घटना थी अतः यह सभी की चर्चा का विषय बन गई।

खैरा में भी इस बात को फैलते देर नहीं लगी। कुली जब पिछले दिन पंडित नित्यानन्द के घर से बिस्तर ट्रंक उठाकर ले गया था तभी कुछ लोगों ने कहना शुरू कर दिया था। आज तो लोगों को विश्वसनीय समाचार मिल गया। ज्ञानचन्द ने दिवाकर और रूपा को अपनी आँखों से देखा था। उसने गुजरू से यह बात कही। गुजरू एक बोझे के सिलसिले में वहाँ आया था। उसे समझते देर नहीं लगी कि दिवाकर के साथ कौन थी। गाँव में आकर उसने सब से पहले पंडित जी से यह बात पूछी। पंडित जी ने कबूल कर लिया। सारे गाँव में हलचल मच गई। हरिजनों के मुहल्ले में दिवाकर के गुण गाए जाने लगे और बड़े लोगों ने कुल के सत्यानाश की

भविष्यवाणी कर दी। स्वयं पंडिताइन के मुँह से भी भयंकर बात निकल गई। पति के साथ बहस करते-करते उसने कह दिया—"इससे तो अच्छा होता कि उसे पैदा होते ही गढ्ढे में डाल दिया होता।" रमा की चिन्ता ने भी उसके क्रोध में घी डाल दिया। वह रमा पर भी बरस पड़ी, "तेरे करम में ही ऐसा लिखा है...अभागी, तू जहाँ जाएगी सत्यानाश ही करेगी।" रमा गम्भीर थी, भविष्य की कल्पना ने उसकी सारी विचार-शक्ति को केन्द्रित कर रखा था। अमर उस दिन उसका अपमान कर गया था और उसी अपमान का बदला लेने के लिए उसने कृष्ण के साथ शादी की रजामन्दी दे दी थी। कृष्ण बिरादरी का विरोध सहकर भी शादी के लिए तैयार है किन्तु यदि इस खबर से उसका मन भी विचलित हो जाए तो क्या होगा? यह सोचते-सोचते वह अपने में इतना खो गई थी कि माँ के क्रोध को वह समझ ही नहीं सकी। पंडितजी मन ही मन प्रसन्न थे।

गदियारी में अमर को सब से पहले इस घटना का पता चला। वह अपने मित्र रघुबीरसिंह से मिलने के लिए बैजनाथ से चला। साढ़े चार बजे सुबह की बस पकड़कर मारंढ़ा आया तो उसे एक परिचित सा स्वर सुनाई पड़ा। वह ड्राइवर के पास बैठा हुआ था उसने पीछे घूमकर देखा किन्तु मोटर में अँधेरा होने के कारण कुछ दिखाई नहीं दिया। अधिक ध्यान उस ओर न देकर वह ड्राइवर से बातें करने में लग गया। जब वह काँगड़ा में उतरने लगा तो उसने दिवाकर को भी स्पष्ट देख लिया और रूपा को भी। आगे जाकर अपने-आप को प्रकट करना उसने उचित नहीं समझा इसलिए वह चुपके से एक ओर खड़ा रहा। मोटर आगे बढ़ गई तो वह धीरे-धीरे अपने मित्र के घर की ओर चल पड़ा।

उसी दिन दोपहर की मोटर से वह वापस घर आ गया। आते ही उसने यह खुशखबरी कृष्ण से कही। कृष्ण ने भी खुशी जाहिर की लेकिन उसने यह भी ताड़ लिया कि अमर की खुशी बाहरी है। भीतर उसके कुछ और है। उसने पूछा, "लेकिन तुम शायद दिवाकर के काम से खुश नहीं हो?"

इस सीधे प्रश्न से अमर के चेहरे पर बड़ी करुण मुस्कराहट प्रकट हुई। मानो उसने किसी बलवान भाव को भीतर दबाना चाहा। कृष्ण ने पूछा, "क्या बात है?"

अमर पहले तो चुप रहा फिर गम्भीर होकर बोला, "मुझे डर है कि दिवाकर उसका जीवन बर्बाद न कर दे।"

कृष्ण को काफी विस्मय हुआ। वह बोला, "लेकिन उसने इतना त्याग करके जब यह कदम उठाया है तो..."

अमर बीच में ही बोल उठा, "मुझे उसकी भावुकता का डर है। भावुकता के आवेश में उसने यह कदम उठाया तो है लेकिन अंत तक इसे निभा सकेगा, इसमें मुझे सन्देह है।" बात यहीं समाप्त हो गई। कृष्ण ने इस चर्चा में विशेष रुचि नहीं दिखाई। अमर को इस बात से प्रसन्नता ही हुई। इसे डर था कि इस घटना से कृष्ण शादी से पीछे न हट जाए। लेकिन उसने ऐसे कोई चिह्न उसके चेहरे पर नहीं देखे।

शाम तक यह बात सब घरों में फैल गई। कृष्ण की मँगनी से सवर्ण लोग चिढ़े हुए थे, इस घटना ने उन्हें चुटकियाँ लेने का पूरा मौका दे दिया। कृष्ण की माँ और लक्ष्मी में इस विषय में

काफी बातें होती रहीं। दोनों की दृष्टि में यह काम बड़ा भारी अपराध था। लेकिन शादी की बातचीत में इसका कोई असर न पड़े, यह मत भी दोनों का था।

दूसरे दिन पंचायत भी हुई। लेकिन अपराधी एक भी उपस्थित नहीं था। शुकरू ने अपना विचार बदल दिया था। अतः वह हाजिर ही नहीं हुआ। गुजरू बेचारा पंचों की मुफ्त बेगार करके वापस चला आया। पंडित नित्यानंद पंचायत में हाजिर हुए लेकिन न तो वे दिवाकर की जिम्मेवारी लेने के लिए तैयार थे और न जात-बिरादरी को भोग देकर प्रायश्चित्त ही करना चाहते थे।

धान गाहे जाने लगे। गाँव के लोगों में चहल-पहल दिखाई देने लगी। जमीन-मालिकों ने अपनी मूँछों पर ताव दिए। बड़े जमीन-मालिक तो गाँव में मियाँ यशवंतचंद और पंडित दयाराम ही थे जिनके पास इतनी जमीन थी कि सैकड़ों परिवार उस पर पलते थे किन्तु वे लोग जिनके पास पैतृक सम्पत्ति के रूप में थोड़ी-सी बीस-पच्चीस बीघे जमीन थी वे भी अपने को जमींदार ही कहते थे। ब्राह्मणों में ऐसें बहुत परिवार थे। कभी दक्षिणा के रूप में मिली हुई उनकी जमीन थी। शास्त्रानुमोदित धर्म की रक्षा के लिए अपने हाथ से काश्त न कर उसे दूसरों के पास उन्होंने दे रखा था। नये कानून के अनुसार काश्तकार को तीन चौथाई अनाज मिलने लगा था। इस बात से वे भी खूब चिढ़े हुए थे और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए उन्होंने भी अपना गठबन्धन जमींदार समाज से कर लिया था। उसका फायदा भी हुआ था। अब वे पहले की तरह आधा अनाज उन्हें देकर तीन चौथाई का अँगूठा लगवा लेते थे। यह बड़े जमींदारों की संगत से ही हुआ था। किन्तु कुछ दिनों से वे उड़ती खबरें सुन-सुनकर बेचैन से हैं। अमर और उसके दस-बारह साथियों ने गाँव भर में जहर फैला दिया है। गाँव में ही क्यों आस-पास के दस-बारह गाँवों के काश्तकार यह कहने लगे हैं कि इस बार वे तीन-चौथाई लेकर रहेंगे। अमर के साथियों में ऐसे छोटे-मोटे जमींदारों के लड़के भी थे। वे भी अपने घर वालों से इस फैसले पर बहस कर चुके थे। जिस दिन से अमर आया है और उसने तथा उसके गुट के लड़कों ने हरिजनों से बेरोक-टोक मिलना-जुलना शुरू किया है, उसी दिन से इन छोटी जात वालों को अभिमान हो गया है ऐसा वे समझ रहे थे। बड़े जमींदार के लड़के ने, जो कुछ दिन अमर के दल में रहा था नमक, मिर्च लगाकर उन लोगों को भड़काया है। ज्यों ज्यों फसल इकट्ठी करने के दिन नजदीक आ रहे थे, उन लोगों का भय बढ़ता जा रहा था। एक दिन पाँच-सात लोग मिलकर यशवन्तचन्द के पास गए और अपनी स्थिति बताकर पूछा कि इस विषय में उनकी क्या राय है? यशवन्तचन्द स्वयं कुछ दिनों से परेशान थे। उन्हें कोई युक्ति नजर नहीं आ रही थी। दूसरे लोगों का सहयोग मिल जाने से उनके हृदय में आशा की जोत जगी। बड़ी देर तक विचार में डूबे रहने के बाद वे बोले, "यह आग अमर की लगाई हुई है। लेकिन मैं कहता हूँ, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। उसके साथ दस-बारह दूसरे हैं, उन्हीं की शक्ति से अमर काम कर रहा है।

अगर वे लोग पीछे हट जाएँ तो उस अकेले की इतनी मजाल ही क्या?"

देवकीनन्दन, जो दूसरे दर्जे के जमींदारों में अग्रणी थे, बोले, "हमने समझा था कि ये नये छोकरे हैं, मिलजुलकर कोई अच्छा काम करेंगे। इसीलिए मैंने अपने लड़के देवदत्त को वहाँ जाने से मना नहीं किया। लेकिन अब तो वह भी नहीं मानता है। कहता है, मैं घरबार छोड़ सकता हूँ, लेकिन अमर को नहीं छोड़ सकता।"

देवीप्रसाद जी बोले, "उस छोकरे में पता नहीं क्या जादू है! जो कहता है, दूसरा आदमी उसको मानने से इन्कार नहीं कर सकता। वैसे वे लोग दस-बारह ही हैं। लेकिन सच पूछो तो उनके पीछे जुलाहे, चमार, ढोली, तेली सभी हैं। सभी उसका गुण गाते हैं। कृष्ण को ही देखो, सारी बिरादरी से टक्कर लेने को तैयार बैठा है।"

यशवन्तचन्द गम्भीर होकर बोले, "आप लोग जिस काम के लिए आए हैं उस पर विचार कीजिए। यह तो सभी जानते हैं कि अमर के गुट की ताकत कम नहीं है लेकिन सवाल यह है कि हमें उसकी ताकत को कम करना है। जिस तरह भी हो सके, यह काम हमें करना ही है। नहीं तो हमारी जमीनें, हमारी आमदनी, सब चली जाएगी। इतना ही नहीं, मुझे तो और भी डर है। ये लोग नीचों को मुँह लगा रहे हैं न अगर ये लोग कल हमारे सिर पर सवार हो गए तो भी हमारी पेश नहीं चलेगी। हमारी इज्जत-आबरू और धर्म-कर्म सब डूब जाएगा। कल ये लोग कहेंगे, हमारे साथ बैठकर खाओ, हमारे घरों में शादी-ब्याह करो। तब हमें वह भी करना होगा।"

सभी लोग इस भविष्यवाणी को सुन चिन्ता में पड़ गए। प्रभुदयाल जो गाँव के शास्त्रज्ञ पंडित माने जाते थे, बोले, "आप सच कहते हैं, यशवन्त जी! ये लड़के जो न करें सो थोड़ा। बातें ऐसी-ऐसी करते हैं कि दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। किसी बात में हार मानते ही नहीं। धर्म की बात करो तो कहते हैं, मनुष्य-मनुष्य से प्यार करे इससे बढ़कर दूसरा धर्म है ही नहीं। पुराणों-शास्त्रों के लिए कहते हैं ये पुराने जमाने के लिए थे, अब तो नये शास्त्र बने हैं और नये पुराण। ईश्वर की बात करो तो कहते हैं, घंटी हिलाने से ईश्वर नहीं मिलता, वह सर्वव्यापक है सब चीजों में तो उसे देखा जा सकता है। अगर हम किसी आदमी से छू जाने से नफरत करते हैं, तो असल में उस आदमी में बैठे हुए भगवान् से नफरत करते हैं, इसलिए हम नास्तिक हैं। क्या बताऊँ, ऐसी-ऐसी बातें करते हैं कि मेरा दिमाग चकरा जाता है। मेरा ही लड़का ऐसे सवाल-जवाब करता है। पता नही उसे कौन सिखा देता है? अभी कल ही कह रहा था, पिताजी, संसार में पहले ब्राह्मणों का प्रभुत्व था। मुनि वशिष्ठ आदि कई ऋषि राजाओं पर भी शासन करते थे। उसके बाद राजाओं याने क्षत्रियों की बारी आई। तब ऋषि-मुनि याने ब्राह्मण भी उनके दरबारों में नौकरी करने लगे। वह जमाना बीता तो वैश्यों के दिन आए। बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी उनके कर्जदार हुए और उनके इशारों पर नाचने लगे। आज तक वही जमाना चलता आ रहा है। आप लोग भी वैश्य हैं जो लोगों पर शासन कर रहे हैं। किंतु अब ये जमाना शूद्रों का आ रहा है। वह आकर ही रहेगा। मेहनत-मजदूरी करने वाले ही शूद्र होते हैं और उन्हीं का जमाना है। निठल्ले लोगों के दिन अब बीत गए।"

प्रभुदयाल की बातें सभी बड़े ध्यान से सुन रहे थे, साथ ही साथ वे इन नई-नई बातों पर

आश्चर्य भी प्रकट कर रहे थे। उनकी बात समाप्त हुई तो यशवन्त फिर बोले, "इनकी जड़ है अमर। वही इन छोकरों को भड़काता है। अगर उसे ठिकाने लगा दिया जाए तो..."

देवकीनन्दन जो रिश्ते में अमर के चचा लगते थे, बोल उठे, "आप क्या करना चाहते हैं?"

उनकी व्यग्रता दूसरे लोगों से छिपी न रह सकी। यशवन्त ने बात ताड़ ली। बात बदलकर बोले, "मेरा मतलब है, किसी तरह से दूसरे लड़कों को उसके पंजे से छुड़ाना चाहिए। अपने-आप उसका दिमाग ठिकाने लग जाएगा।"

"लेकिन, यह होगा कैसे?" देवीप्रसाद बोल उठे, "अगर धमकी दोगे तो लेने के देने पड़ जाएँगे। उसके पीछे डेढ़ सौ हरिजन मरने-मारने के लिए तैयार बैठे हैं।"

सभी एक-दूसरे की ओर देखने लगे। यशवन्त के दिल में सहसा एक विचार पैदा हुआ, उन्होंने पूछा, "चौधरी बुधीसिंह के साथ, सुना है अमर का बड़ा मेल-जोल है।"

प्रभुदयाल बोले, "वे एक दूसरे को भाई कहते हैं।"

"और चौधराइन के साथ उनका देवर भाभी का रिश्ता होगा?" कहकर यशवन्त ऐसे मुस्कराए मानो कोई रहस्य की बात कर रहे हों। कुछ देर के बाद वे हँस पड़े, "अब समझा... तो वह देवर-भाभी का मजाक था?"

उनकी बात ने कई लोगों के कान खड़े कर दिये। देवकीनन्दन ने पूछा, "क्या बात है?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं।" कहकर यशवन्त फिर हँस पड़े।

लोगों का शक दुगुना हो गया। जगतसिंह ने पूछा, "कहिए तो क्या बात हुई थी?"

"बड़ी देर के बाद गम्भीर होकर बोले, "नहीं जी... वह तो मजाक में ही होगा। अमर चाहे हमारे लिए कितना भी बुरा हो लेकिन चाल चलन में अच्छा है।"

देवकीनन्दन कुछ गर्म से हो गए, "बताइए न, आपने क्या देखा है?"

यशवन्त ने बड़े सहज ढंग से कहा, "कल शाम को अमर चौधरी के खलियानें में था। मैं उधर से होकर गुजर रहा था। ऐसे ही मेरी नजर पड़ गई। उस वक्त अँधेरा हो चला था। देखा तो चौधराइन 'झुगी'[1] में बैठी हुई है। वह अकेली ही थी। शायद बुधीसिंह घर गया था या कहीं और जगह। इतने में वहाँ अमर आया। दोनों बड़े हँस-हँसकर बातें कर रहे थे। मैं तो काफी दूर था इसलिए कुछ सुन नहीं सका और सच पूछो तो मैं देख भी नहीं सका। पुराने ढर्रे का आदमी ठहरा। यह बात मेरी आँखों को अच्छी नहीं लगी, इसलिए वहाँ से चला आया। लेकिन... उनकी शायद कोई बुरी भावना नहीं थी ऐसा हमें सोचना ही नहीं चाहिए। फिर भी पुराना आदमी ठहरा। खैर जाने दो उस बात को।"

वह तो तीर चलाकर चुप हो गया किन्तु जिन्हें यह तीर चुभा वे चुप कैसे रह सकते थे। प्रभुदयाल बोले, "ऐसी बात... ? तब तो यह बहुत बुरी बात है। गाँव में यही तो एक चीज बची है, चाल-चलन। हमारा लड़का भी इतना बड़ा है लेकिन किसी औरत पर नजर डाले तो सिर काट दूँ। अजी ये बीमारी फैली तो गाँव में रहना भी मुश्किल हो जाएगा।"

दो-तीन आदमियों ने उनकी बात का समर्थन किया और कहा, "यह निश्चय ही बुरी बात है।"

देवकीनन्दन के मुँह पर किसी ने जैसे थूक दिया। यद्यपि वह अमर से बोलता-चालता नहीं

१. खलियान में रात काटने के लिए जो पुआल से छाकर छोटी सी झोंपड़ी बांधी जाती है, उसे हिमाचल में झुंगी कहते हैं।

था। उसके पिता के समय से लेकर ही वह अपना रिश्ता भूल चुका था। बड़े भाई की जमीन जिस तरह उसने हड़प ली थी, उस बात को गाँव के सभी लोग जानते थे इसलिए इन दो परिवारों में कभी मित्रता नहीं होगी इसका विश्वास भी सभी को था। किन्तु इस समय अमर के चरित्र पर लांछन लगते देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ। आखिर वह उसी के खानदान का है। इतनी बड़ी उच्छृंखलता उसमें कैसे आ सकती है? वह बोला, "जमींदार साहब, यह बात सच्ची नहीं हुई तो आपको इसका जवाब देना पड़ेगा। मैं कहे देता हूँ। अमर में और चाहे कितनी ही बुराइयाँ हों लेकिन वह बदचलन नहीं हो सकता, इसका मुझे पूरा विश्वास है। मैं आज ही चौधरी के घर जाकर इस बात की तफतीश करता हूँ।"

यशवन्त कुछ सकपका गए, बोले, "देवकीनन्दन, तुम यूँ ही गुस्से में आ जाते हो। मैंने यह कब कहा कि वह बदचलन है। हो सकता है उनकी भावना कुछ और रही हो। और प्रभुदयाल भी तो कह रहे हैं कि उनका आपस में देवर-भाभी का सम्बन्ध है।"

उन्होंने तो शायद अन्तिम वाक्य सहज भाव से कहा लेकिन दूसरे उपस्थित सज्जनों ने इस पर कहकहा लगा दिया। देवकीनन्दन गुस्से में आ गया। अपनी जगह से वह उठ गया, बोला, "आप लोग बिना सबूत किसी पर इल्जाम नहीं लगा सकते। मैं देखता हूँ, आज ही इस बात का पता लगाऊंगा। अगर यह बात झूठी निकली तो आप सभी पर इज्जत का दावा करूंगा। पंचायत में सभी को पेश करूँगा।"

यशवन्त ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसे पास बिठाते हुए कहा, "तुम्हारा मिजाज बड़ा गर्म है। भला यह भी कोई बात हुई? मैं पूछता हूँ इसमें हो क्या गया? अव्वल तो उस घटना में कोई शक करने जैसी चीज ही नहीं है। लेकिन अगर हो भी तो अमर का इसमें क्या बिगड़ता है। चौधराइन जवान है, खूबसूरत है, अमर भी बदसूरत नहीं है। उस औरत ने कुछ कारस्तानी की हो तो इसमें बेचारे अमर का क्या कसूर? और फिर यह तो चलता ही रहता है। चौधरी के घर जाकर पूछोगे तो चौधरी तुम्हें पीट बैठेगा, बनेगा कुछ नहीं।"

यशवन्तचन्द की इन बातों ने देवकीनन्दन पर थोड़ा सा असर तो किया लेकिन उसके दिल की बेचैनी बनी रही।

इसके बाद उनमें फसल की वसूली की बातें बड़ी देर तक होती रहीं। यशवन्तचन्द ने भी अपना भय प्रकट किया कि इस फसल में हमें आधा नहीं मिलेगा।

"लेकिन इसका कोई उपाय तो सोचना ही पड़ेगा।" जगत्सिंह ने कहा। प्रभुदयाल बोले, "काश्तकारों को यह धमकी दी जाए कि अगर वे आधा अनाज नहीं देंगे तो उनसे जमीनें छुड़ा ली जाएँगी।"

जगत्सिंह ने कहा, "यह बात भी हो सकती है लेकिन आप तो जानते हैं कि कानून के मुताबिक आप चार साल पुराने काश्तकारों से जमीन नहीं छुड़ा सकते।"

प्रभुदयाल बोला, "अरे, उन बेवकूफों को कानून का क्या पता?"

देवकीनन्दन ने आक्षेप किया, "बेवकूफ हैं लेकिन उनकी मदद करने वाला अमर भी तो है।"

जगत्सिंह ने एक नई समस्या खड़ी कर दी, बोला, "खैर, मान लो कि हम उनसे जमीन

छुड़ा लेते हैं। पुराने मौरूसी काश्तकारों से तो नहीं लेकिन नयों से छुड़ा सकते हैं, तो भी यह सवाल रह जाता है कि उन जमीनों का क्या होगा? उन्हें कौन बोएगा?"

यशवन्तचन्द ने कठोरतापूर्वक उत्तर दिया, "बंजर पड़ी रहे न""हमें क्या नुकसान होगा। उस पर घास होगी उसे हम बेच देंगे। मुश्किल तो उन्हीं को पड़ेगी जो जमीन काश्त के लिए न मिलने से भूखों मरेंगे।"

प्रभुदयाल बोला, "तो फिर आपका यह खयाल है कि इस धमकी से वे आधा लेकर तीन चौथाई पर अँगूठा लगा देंगे।"

देवीप्रसाद ने कहा, "भाई अँगूठा तो इस बार वे लोग देंगे ही नहीं। मामूली पढ़ना-लिखना वे सीख गए हैं। हाँ, उन्हें जमीन छुड़ाने की धमकी देकर उनसे आधा वसूल किया जा सकता है।"

यशवन्तचन्द ने पूछा, "ऐसा न हो सका तो साम-दाम, दण्ड-भेद चारों उपाय काम में लाने पड़ेंगे। क्यों पंडित प्रभुदयाल जी?"

पंडित जी ने हाँ की। दूसरे लोगों ने भी इस बात का समर्थन किया। इसके बाद सब लोग नई आशा लेकर अपने-अपने घरों को चले आए।

गाँवों में सब से बड़ी बुराई है कि कितना ही महान् आदर्श उनके आगे प्रत्यक्ष खड़ा हो किन्तु यदि परम्परा से चले आए हुए आदर्श को ठेस पहुँचे तो वे कमर कस कर लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। यदि कोई पुरुष किसी स्त्री से बातचीत मात्र करता हुआ देख लिया जाए तो चाहे वह पुरुष अथवा स्त्री कितने ही महान् क्यों न हों, वे लोगों की दृष्टि में गिर जाते हैं। अमर बेचारे के साथ कुछ इसी प्रकार सलूक हुआ। देवकीनन्दन ने यशवन्तचन्द के यहाँ जो खबर सुनी थी उसे उसने गुप्त रखने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु वह बात गाँव में रातभर में ही फैल गई। अमर की माँ को इस पर बहुत दुःख हुआ यद्यपि वह मन से अमर अथवा नीलू दोनों में से किसी पर भी अविश्वास नहीं करती थी किन्तु लोकचर्चा के भय से वह विचलित हो गई थी। उसी शाम को जब अमर घर खाना खाने आया तो माँ ने बात छेड़ दी। पहले तो अमर आश्चर्य से सुनता रहा, फिर बोला, "माँ, लोगों की मुझे परवाह नहीं। मुझे दुःख है तो तुम्हारा। तुमने भी अपने बेटे पर अविश्वास कर लिया, तब तो मेरे लिए निश्चय ही डूब मरने की बात है।"

अमर के इन शब्दों ने माँ का हृदय बहुत कुछ हलका कर दिया। वह बोली, "बेटा, मैंने तो तुम पर कभी अविश्वास नहीं किया, लेकिन सोचती हूँ, यह चर्चा फैलती गई तो नीलू को बड़ा कष्ट होगा। हो सकता है चौधरी उसे मार-पीट बैठे।"

अमर इस तरह की कल्पना नहीं कर सकता था। चौधरी को वह जानता था, वह इस तरह का तंगदिल नहीं हो सकता। फिर भी माँ की बात ने उसके दिल में शंका अवश्य भर दी कि नीलू और चौधरी के दाम्पत्य जीवन में इस तरह की चर्चा जहर भी घोल सकती है। आखिर वे भी तो

गाँव के ही रहने वाले हैं। उनकी मान्यताएँ और धारणाएँ भी औरों की तरह ही सीमित हैं। माँ के साथ उसने इस बात की अधिक चर्चा नहीं की। वह जल्दी में था। खलियान में वह एक लड़के को छोड़ आया था। दस-बारह दिनों के लिए उसने उस लड़के को रख लिया था। वह धान गाहने में मदद भी करता था और दौड़-भाग का काम भी करता था। आज खलियान में उसकी तीसरी रात थी। खाना खाकर उसे जल्दी ही वहाँ पहुँचना था।

खलियान में पहुँचकर उसने लड़के को छुट्टी दे दी और स्वयं टपरिया के बाहर बैठकर सोचने लगा, "क्या नीलू और चौधरी इस अफवाह से बेखबर हैं। चौधरी कल से मेरे खलियान में नहीं आया लेकिन नीलू तो पहले की ही तरह आई थी। उसके व्यवहार में, उसकी बातचीत में किसी भी तरह का अन्तर तो दिखाई नहीं दिया।" वह उधेड़बुन में ही था कि सामने बुधीसिंह दिखाई पड़ा। वह अपने खलियान से उसकी ओर आ रहा था। पता नहीं क्यों अमर को लगा कि वह इसी प्रसंग को छेड़ने के लिए धीरे-धीरे आ रहा है। वह अपनी झुंगी के भीतर घुस गया और सिरहाने से एक किताब निकाल कर देखने लगा। लालटेन के हल्के से प्रकाश में वह अक्षरों पर आँखें दौड़ाने लगा किन्तु उसका मन तो उत्सुकता से चौधरी की बाट जोह रहा था। काफी समय बीत गया लेकिन चौधरी नहीं आया। अमर ने बाहर निकल कर देखा तो चौधरी अपने खलियान में ही चक्कर काट रहा था। अमर समझ गया कि वह रास्ते से वापस हो गया है और उसके मन में किसी तरह का द्वंद्व चल रहा है। उसके पाँव चौधरी के खलियान की ओर अनजाने में बढ़ गए।

वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि बुधीसिंह उसी बेचैनी से टहल रहा है। अमर को देखते ही वह चंचल होकर आगे बढ़ा। उसने हाथ पकड़ कर उसे झुंगी में बिठाया। बिना भूमिका के उसने बात शुरू की, "अमर भैया, मैं तुम्हारे ही पास आ रहा था।"

अमर ने भी पूछ लिया, "क्या तुम्हें भी मुझ पर शक है?"

चौधरी ने आँखें झुका कर कहा, "लेकिन तुम्हें शाम के झुटपुटे में वहाँ नहीं आना चाहिए था।"

अमर बोला, "मैं माफी चाहता हूँ, लेकिन यह......"

चौधरी बीच में ही बोल उठा, "लेकिन की जरूरत नहीं..... माफी की भी नहीं। तुम मुझ से कई बातों में बड़े हो। भगवान् जानता है मुझे इस समय तुम्हारे खिलाफ कोई शिकायत नहीं है। लेकिन मुझे डर है तो लोकचर्चा का। आखिर मैं इसी गांव में रहूँगा। इन्हीं लोगों से मुझे मिलना-बरतना है।"

अमर उठते हुए बोला, "अच्छा, ऐसी सलाह दो कि चर्चा बंद हो जाए।"

चौधरी बोला, "एक ही रास्ता है। तुम मेरे यहाँ आना-जाना छोड़ दो। हम से मिलना जुलना छोड़ दो।"

अमर बोला, "ठीक है।"

वह जाने लगा तो चौधरी ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, "एक बात है..... नीलू बड़ी गर्म मिज़ाज है। उसने जब से यह अफवाह सुनी है, उसका पारा चढ़ा हुआ है। उसने मुझे भी खूब सुनाई है। और ऐसा लगता है कि वह किसी को मार-पीट भी बैठेगी। किन्तु इससे फायदा तो

कुछ नहीं होगा। फायदा तो इसी में है कि तुम नीलू से न मिलो। वह इसका विरोध करे तो तुम्हें यह बात उससे मनवानी होगी।"

संक्षेप में ही उसने अपने हृदय का परिचय अमर को दे दिया और अमर ने भी उसे समझने में देर नहीं की। वह विदा लेकर अपने खलियान में चला आया। झुंगी में बैठकर अमर ने सोने का प्रयत्न किया किन्तु विफल। झुंगी के नीचे भी पुआल था, उस पर एक खेस बिछा हुआ था। ओढ़ने के लिए अच्छा गाढ़ा कम्बल था पर उसमें भी सर्दी लग रही थी। पिछली दो रातों में उसे सर्दी नहीं लगी थी। पता नहीं क्यों आज पुआल के नीचे की ठंडी और गीली जमीन का स्पर्श भी उसे मिल रहा था। करवटें बदलते-बदलते काफी रात बीत गई। लेकिन नींद नहीं आई। इस कशमकश में नीलू का चेहरा उसे कई बार आँखों के सामने दिखाई दिया। वह सोचने लगा—'मेरे व्यवहार में कोई दोष तो नहीं था?' वह अपने मन का विश्लेषण करने लगा। जिस दिन उसने पहले-पहल नीलू को देखा था उसके मन में एक शान्ति का ज्वार, तृप्ति की तरंग उठी थी। श्रद्धा का जनम कैसे होता है, यह वह नहीं जानता था, लेकिन उस समय वह हृदय में पैदा हुई श्रद्धा को पहचानने में भूल नहीं कर सका था। वह प्रेम नहीं था क्योंकि उसमें अधिकार पाने की भावना नहीं थी। वह नीलू के सान्निध्य में रहना चाहता था उसे प्राप्त करना नही। अब भी वह भाव वैसे ही बना हुआ है। नीलू के पति के नाते बुधीसिंह चौधरी भी उसकी श्रद्धा का पात्र था। उसके मन में कभी ईर्ष्या नहीं जगी। जिस दिन नीलू के साथ भाभी का रिश्ता हुआ उस दिन से तो अमर की तमाम इच्छाएँ पूर्ण हो गईं, उसके तमाम अभाव दूर हो गए। देवर बनकर वह धन्य हो गया। अपने उद्देश्य में उसकी एकाग्रता बढ़ने लगी। गाँव के कठोर जीवन के प्रत्याघात को मुस्कराकर सहने में वह पूर्णरूप से समर्थ हो गया। रमा को वह अपना बनाना चाहता था। उसके न मिलने पर हृदय में जो आघात पहुँचा वह भी कम नहीं था। रूपा की ओर उसे कुछ और ही तरह के भाव खींचकर ले गए थे। रमा की ओर से निराश होकर वह उस ओर झुका था तो इसीलिए कि वह उससे शादी करना चाहता था। इसका कारण प्रेम की आकुलना नहीं सामाजिक रूढ़ियों के विरोध का साहस था। शादी को वह जीवन के लिए अनिवार्य नहीं समझता था किन्तु लाभदायक अवश्य मानता था। इससे जीवन में जिम्मेवारी की भावना आती है, संघर्षों से परिचय होता है और उन संघर्षों से जूझने की शक्ति मिलती है। स्त्री सहचरी है, वह दुःख-सुख में साथ देने वाली है, इसे पाकर पुरुष की शक्ति बढ़ती है। हाँ दोनों के जीवन में मेल बिल्कुल नहीं हो तब बात अलग है। अमर को यह विश्वास था कि रूपा उसके साथ जीवन-यात्रा कर सकती है। लेकिन जब वह भी अपनी इच्छित दिशा की ओर चली गई तो अमर को पश्चाताप नहीं हुआ। यह तो था उन दो लड़कियों के साथ उसके हृदय का सम्बन्ध। किन्तु नीलू का स्थान अलग ही था। वह अमर की भाभी थी, बहन थी और कभी-कभी उसे पथ दिखाने वाली सखी भी थी।

उसे उस दिन चार बजे तक नींद नहीं आई। उसके बाद घड़ी भर पलकें लगी थीं कि उसे कुछ व्यक्तियों के आने की शंका हुई। बाहर पाला जम गया था। लोगों के पाँवों के नीचे दबकर उससे 'कर्र-कर्र' की ध्वनि आ रही थी। कम्बल से मुँह निकाल कर देखा तो अंधेरे में उसे पाँच-सात आदमी दिखाई दिए। अमर भय से काँप उठा। सिरहाने रखा हुआ लट्ठ उसने

सँभाल लिया और बिस्तर पर उठ बैठा । पाँव की आवाजें झुंगी तक आ गईं और वहाँ आकर रुक गईं ।अमर सतर्क होकर निकला और लट्ठ को पत्थर पर फोड़ते हुए बोला, "कौन है ?"

अँधेरे में सात-आठ व्यक्ति उस पर टूट पड़े । अमर ने लाठी घुमाई । दो-एक के मुँह से चीख निकली । लेकिन तभी एक लाठी उसके सिर पर आ गिरी । उसकी आँखों के आगे अंधेरा छा गया । लोगों ने उसके मुँह में पुआल ठूँस दिया और उसके हाथ-पाँव रस्सियों से बाँध दिए । फिर उन्होंने खलियान का अनाज बोरों में भरा और चल दिये । यह सब आधे घंटे में ही हो गया । अमर को होश आया तो उसकी साल भर की कमाई लुट चुकी थी ।

चोरों के चले जाने के बाद बुधीसिंह वहाँ दौड़ा-दौड़ा आया । कुछ लोगों को भागता देखकर उसके मन में शंका जागी थी । लोगों के पैरों की आवाज ने उसे जगा दिया था और वह झुंगी से बाहर निकल कर देखने लगा तो उसने सात-आठ व्यक्तियों को अनाज के बोरों सहित भागते हुए देखा । वह दौड़ा-दौड़ा अमर के खलियान में पहुँचा । वहाँ का दृश्य देखकर वह स्तब्ध रह गया । उसने अमर के बन्धन खोले, उस के सिर के घाव को पोंछकर कपड़े की राख बाँध दी । सर्दी मे वह ठिठुर रहा था । उसने कम्बल से अमर को लपेट दिया और फिर आग जलाकर चाय बनाने लगा । अमर अब तक चुप ही था । उस घटना ने उसे अधमरा-सा कर दिया था । बुधीसिंह ने पूछा, "ये लोग थे कौन? किसी को पहचाना नहीं?"

अमर ने दर्द को दबाते हुए कहा, "अंधेरे में कैसे पहचानता ?"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद चौधरी ने पूछा, "साल भर का अनाज यहीं पर था या घर भी ले गए थे ?"

"कुल छः मन घर पहुँचा सका था ।" अमर के शब्दों में वेदना छिपी हुई थी ।" कुछ देर के बाद वह फिर बोला, "हैरानी की बात है कि वे इतनी जल्दी सारा अनाज कैसे ले गए ?"

चौधरी ने अनुमान लगाया, "पन्द्रह-बीस चोर होंगे । आठ तो मैंने अपनी आँखों से देखे हैं ।"

"तो भी क्या हुआ ? धान की बड़ी ढेरी थी ।"

दोनों इस प्रश्न को हल नहीं कर सके । चौधरी ने चाय बनाई चाय पीकर अमर ने अपने में शक्ति का अनुभव किया ।

दूसरे दिन गाँव में इस घटना के फैलने से आतंक छा गया । अमर की माँ ने जब बेटे की यह हालत देखी तो वह कुछ देर के लिए तो पागल सी हो गई । अमर को चौधरी कंधे पर उठाकर पहुँचा गया था क्योंकि उसकी दाईं टाँग भी लाठी के प्रहार से नाकाम हो गई थी । गाँव के सब लोग उसे देखने के लिए आए । कृष्ण पास के गाँव से हकीम को बुला लाया । इलाज होने लगा । कुछ लोगों ने अस्पताल ले जाने की राय भी दी लेकिन मयदास हकीम ने सभी को आश्वासन दिया कि सात दिनों में ही अमर ठीक हो जाएगा ।

गाँव में इस घटना की अनेक प्रकार से आलोचना होने लगी । कुछ लोगों ने कहा, "चोरों का गिरोह है....।" कुछ ने कहा, "कुछ बड़े लोगों की शरारत है ।" देवकीनन्दन ने इस बात पर जोर देना शुरू किया कि अमर के जानी दुश्मन इसी गाँव के हैं । मैं पुलिस के आगे गवाही दूँगा

और सब की कलई खोल दूँगा। उसकी बातों से लोगों ने जमींदार यशवन्तचन्द और उसके कुछ सगे-सम्बन्धियों पर शक करना शुरू किया।

हरिजनों की बस्ती में घोर निराशा छा गई। अमर उनकी शक्ति था, उन्हें कदम-कदम पर रोशनी दिखाने वाला था। उसी के हिम्मत दिलाने पर इस वर्ष उन्होंने बड़े-बड़े इरादे कर रखे थे। अनाज का तीन चौथाई वे इस बार लेकर ही छोड़ेंगे, यह इरादा सभी का था। सदियों से जमींदारों की झिड़कियाँ खा-खाकर उनमें जो कायरता आ गई थी वह अमर के उत्साह दिलाने पर दूर होने लगी थी। लेकिन आज फिर उन्हें कायरता का बोध होने लगा।

लेकिन इन सब से भयंकर कानाफूसी स्त्रियों में चल रही थी। वे नीलू की अफवाह के साथ इस घटना का सम्बन्ध जोड़ रही थीं। कुछ का कहना था कि चौधरी ने ही उन लोगों को सिखाकर भेजा था। यह खबर अमर के कानों में भी पहुँच गई और इसी चर्चा ने उसे बहुत बड़ी चिन्ता में डाल दिया। चौधरी बुधीसिंह के प्रति उसका मन शीशे की तरह साफ था और उसे किसी भी खतरे में पड़ा देखना अमर के लिए असह्य था।

अमर के प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए गाँव के सभी लोग आए। वे भी जो मन ही मन उससे असंतुष्ट थे किन्तु नीलू नहीं आई। अमर को आशा थी कि वह आएगी किन्तु दिन निकल गया उसे नीलू के दर्शन नहीं हुए। वह अकेली ही अपनी मुस्कराहट से उसके कष्टों को आधा कर सकती थी। उसके पदार्पण मात्र से घर में फैला हुआ आधा दुःख कम हो सकता था। किन्तु न तो वह आई न उसकी ओर से समाचार ही मिला। चौधरी दोपहर तक अमर के बिस्तर के पास बैठा रहा फिर घर गया। घर पहुँचते ही उसने देखा नीलू की आँखें रो-रोकर सूज गई हैं। चौधरी ने शान्त स्वर में कहा—"अमर को देख क्यों नहीं आती? इतनी तकलीफ में है बेचारा"घड़ी भर उसके पास बैठ आओ न...."

नीलू ने तीक्ष्ण दृष्टि से पति की ओर देखा और बोली, "मैं वहाँ क्यों जाऊँ? तुम्हीं ने तो कल मुझे मना किया था।"

चौधरी कुछ शर्मिन्दा होकर बोला, "कल की बात दूसरी थी, आज की दूसरी है। आज तुम्हें जाना चाहिए।"

नीलू ने दृढ़ता से कहा, "नहीं, मैं नहीं, जाऊँगी।"

चौधरी समझ गया कि नीलू अपने हठ पर उतर आई है। उसे कल के व्यवहार पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। जरा-सी अफवाह पर उसने कल उसे कठोर शब्द कहे, इसके लिए वह बहुत लज्जित था।

वह सिर झुकाकर दूसरी ओर चला गया। नीलू वहीं बैठी रही। अमर की खबर उसने जब से सुनी थी तभी से उसका मन वहाँ जाने के लिए छटपटा रहा था। किन्तु वह हृदय पर पत्थर रखकर निश्चेष्ट वहाँ बैठी रही। थोड़ी देर बाद चौधरी ने फिर कमरे में प्रवेश किया। अब की बार उसने अनुनय के स्वर में कहा, "नीलू, कल की बातें भूल जाओ। मुझे माफ करो।"

नीलू ने कोई उत्तर नहीं दिया। चौधरी पास ही बैठ गया। कुछ देर शान्त रहने के बाद उसने भय के स्वर में कहा, "तुम नहीं जानतीं, यहाँ क्या होने वाला है। लोग यह भी कह रहे हैं कि मैंने अमर को मारने के लिए आदमी भेजे थे। पुलिस आ गई तो हमारी पिटाई होगी।"

नीलू पति का भाव ताड़ गई, बोली, "तो मैं क्या करूँ? क्या लाला जी को यह कहूँ कि पुलिस न बुलाएँ? लेकिन ऐसा क्यों करूँ? उनकी जान पर आ बनी, साल भर की कमाई लुट गई फिर भी वे हमारे लिए पुलिस को न बुलाएँ। यह बात मैं उनसे कैसे कह सकती हूँ? और कहूँ भी तो वे मानने को तैयार क्यों होंगे?"

कहते-कहते उसका गला भर आया। कल उसने जिसके लिए पति का विरोध किया था आज उसी की उपेक्षा करने के लिए बुद्धि जोर डाल रही थी, लेकिन हृदय को वह कैसे समझाती? उसकी आँखों में आँसू बड़े वेग से बहने लगे। वह अधिक बातचीत से बचने के लिए दूसरे कमरे में चली गई।

चौधरी बुधीसिंह हारे हुए जुआरी की तरह सिर झुकाकर बैठा रहा। एक बार इच्छा हुई कि अमर के पास जाकर अपनी सारी स्थिति स्पष्ट कर दे लेकिन हिम्मत नहीं पड़ी। नीलू के ऊपर उसे भरोसा था कि वह जाएगी और उसके कहने पर पुलिस तक नौबत भी नहीं जाएगी। किन्तु यह काम उसे अब असम्भव-सा दिखाई पड़ा। नीलू का कहना ठीक ही था। इतने बड़े नुकसान के बाद कौन चुप बैठा रह सकता है?

अमर के कहने पर कृष्ण पुलिस चौकी के लिए तैयार हो गया। वह कपड़े बदलने घर गया। इतने में ही माँ ने उसे खबर दी कि लोग चौधरी पर शक कर रहे हैं। अमर इस खबर को सुनकर स्तम्भित रह गया। पूछा, "कौन कहता है?"

माँ बोली, "किस-किस का नाम लूँ बेटा? पाँच छः औरतों से यही बात सुन चुकी हूँ।"

अमर क्रोध में बोल उठा, "लोग कहते हैं! यह बिल्कुल झूठ है।"

माँ शान्त स्वर में बोली, "बेटा, मैं भी यही कहती हूँ कि यह बात झूठ है लेकिन पलिस को तो मनाना मुश्किल होगा। यह तो जिस-जिस का नाम सुनेगी उसी की शामत आ जाएगी।"

अमर चिन्ता में पड़ गया। उसने माँ से पूछा, "तो इसका क्या इलाज है? दाने के साथ घुन पिसता ही है। मैं इसमें क्या कर सकता हूँ?"

माँ बोली, "बेटा, तुम्हीं तो कर सकते हो···और किसी में भी हिम्मत नहीं है। पुलिस आएगी तो कई बेगुनाह पिटेंगे।···सबसे पहले तो गरीब लोगों पर मुसीबत आएगी। वे गरीब हैं, इसलिए चोरी का शक उन्हीं पर होगा। दस-पांच को पुलिस अधमरा कर देगी और उस बेचारे चौधरी की···भी···।"

अमर बीच में ही बोल उठा, "माँ, जो होना होगा, होता रहे। मेरा खलियान लुटा है तो मैं तफतीश कराऊँगा ही। सालभर की रोटी खोकर कौन माई का लाल संतोष कर सकता है?"

माँ ने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, "बेटा, पुलिस के आने से दाने बरामद नहीं होंगे। जो होना था सो हो गया। गाँव सारा डर के मारे काँप रहा है। यहाँ की पुलिस यमदूतों से भी बुरी है। पिछले साल काठक में एक खून हुआ तो पुलिस ने सारे गाँव को पीटा था। औरतों तक को उन्होंने नहीं छोड़ा था। आठ दिन तक गाँव के लोग घरों से बाहर नहीं निकले थे···तुम नहीं समझते। तुमने शहरों की पुलिस देखी है। यहाँ की हालत दूसरी ही है। यहाँ एक सिपाही भी बादशाह बनकर आता है।"

अमर गहरी चिन्ता में डूब गया था। उसके अनुसार पुलिस को न बुलाना दुश्मनों को

प्रोत्साहित करना था। किन्तु माँ ने जिन परिणामों की ओर ध्यान मोड़ा वे इतने भयावह थे कि वह अपने निश्चय से विचलित हो उठा। तभी कृष्ण कमरे में प्रवेश करते हुए बोला, "अच्छा, मैं जाता हूँ। ""बाजार से कुछ सामान लाना हो तो बता दो।"

अमर बोला, "जरा ठहरो।"

कृष्ण पास आकर बैठ गया। अमर ने कहा—

"अगर पुलिस को न बुलाया जाए तो""

कृष्ण चौंककर बोला, "क्यों? पागल हो क्या?"

उसने सिर नीचा करके कहा, "नहीं, पागल तो नहीं हूँ लेकिन कायर-सा लग रहा हूँ।"

"यह कायरता छोड़ देनी पड़ेगी।"

"सुनो तो सही" "कहकर अमर गम्भीर होकर कहने लगा— "लोग चौधरी पर शक कर रहे हैं। मैं सोचता हूँ पुलिस उन पर अत्याचार करे उससे तो बेहतर है कि मैं डूब मरूँ।"

कृष्ण ने आवेश में आकर कहा, "तुम सचमुच आज पागल हो गए हो। उस पर शक करते हैं तो पुलिस उसे खा जाएगी?"

"नहीं कृष्ण," अमर ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "मैं नहीं चाहता कि वह बेगुनाह उन अत्याचारियों के हाथ में पड़ें। मेरा अनाज गया, वह तो मिलने वाला नहीं, फिर इतनी परेशानी मोल लेने से क्या फायदा?"

"माँ क्या कहती है" कृष्ण ने पूछा।

"उनका भी यही ख्याल है और सच बात तो यह है कि उन्होंने ही मुझे यह सलाह दी है। मैं तो कुछ और ही सोच बैठा था।"

मुसीबत आते-आते टल गई। अमर ने पुलिस में रिपोर्ट नहीं की, इस खबर से कुछ लोगों को छोड़कर सभी को खुशी हुई। जिन्हें खुशी नहीं हुई वे अमर के साथी थे। नीलू भी उनमें से एक थी। उसने तो स्वयम् अमर के पास आकर शिकायत करनी चाही थी किन्तु अमर के सामने न जाने का उसने प्रण कर लिया था इसीलिए नहीं आ सकी। जो लोग इस खबर से प्रसन्न थे उनमें हरिजन भी थे, जो पुलिस के नाम से ही थरथराने लगे थे। उस दिन उनकी एक सभा हुई। घीणूँ ने उनके सामने यह प्रस्ताव रखा, "भाइयो, अमर बझिया ने हमारी खातिर अपना इरादा बदला है। उनका हम पर बहुत बड़ा एहसान है। लेकिन हमें भी यह सोचना चाहिए कि अब हमारा क्या फर्ज है। उनका अनाज लुट गया। सालभर उन पर क्या बीतेगी। इसका अंदाजा आप लोग लगा सकते हैं। मैं सोचता हूँ कि अब हमें निडर होकर मैदान में आ जाना चाहिए। हमें चानू सिद्ध[1] की कसम खाकर यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम अमर बझिया की बात मानकर अनाज की तीन चौथाई लेंगे। जमींदार कई तरह की धमकियाँ देंगे। लेकिन हमें अपनी बात पर अड़ जाना चाहिए। इस तरह हमारे पास जो ज्यादा अनाज आएगा आधा हिस्सा अमर बझिया के हवाले कर देंगे। वे अस्पताल बनाएँ, स्कूल खोलें या कोई और काम करें। हाँ, उनके सालभर के अनाज का बन्दोबस्त भी हमें करना है।"

लोगों पर घीणूँ की बात का बहुत अच्छा असर पड़ा। सभी ने चानू सिद्ध की कसम लेकर

१. "चानू सिद्ध' हरिजनों का एक हीरो जो कंस के दरबार में मल्ल था।

कहा, "हम तीन चौथाई लेकर रहेंगे।"

अमर का स्वास्थ्य सुधर रहा था लेकिन उसकी चिन्ताएँ बढ़ रही थीं। अनाज लुट जाने से उसके सामने बड़ी भारी समस्या खड़ी हो गई थी। उसके पिता की आमदनी साधारण-सी थी जिससे वे घर का खर्च मात्र चला पाते थे। जायदाद के नाम पर केवल कच्चा मकान था और थोड़ी-सी जमीन। जब तक वे जीते थे उनकी जमीन दूसरे ही बोते थे। उन्हें तो रोगियों को देखने से फुर्सत ही नहीं मिलती थी। रोगियों की अधिक संख्या गरीब जातियों की थी। उनसे अधिक आमदनी की आशा वे नहीं करते थे। आत्मसन्तोष की उन्हें भूख थी। वह उन्हें पर्याप्त मात्रा में मिल जाता था। गरीबों का स्नेह पाकर वे सुखी थे,। जमीन से जो अनाज उन्हें मिल जाता था, उससे साल भर की रोटी निकल जाती थी। कपड़े लत्ते, नमक-तम्बाकू का खर्च रोगियों से मिली दक्षिणा से चलता था। अमर की पढ़ाई का उन पर बोझ नहीं पड़ा। उसने छात्रवृत्ति और ट्यूशनों से ही अपनी पढ़ाई पूरी की थी।

दो-चार सौ रुपये उनके स्वर्गवास के बाद बचे थे, उनमें से कुछ तो उनके क्रियाकर्म में उठ गए, बाकी अमर ने गाँव में काम शुरू करते ही खर्च कर डाले। जमीन अपने हाथ से बोने के लिए नये सिरे से हल-कुदाल जमा किए, बैलों की जोड़ी खरीदी, इसी तरह के कई खर्च उस समय थे जिनमें रही-सही पूँजी भी समाप्त हो गई थी। अब तो घर में कुछ भी नहीं था। सालभर का अनाज खरीदने के लिए अगर महाजन से कर्ज लिया भी तो उसको अदा करने में कितनी कठिनाई होगी।

इसके अतिरिक्त उसे माँ की बड़ी चिन्ता होती। वह सोचता, "माँ का जीवन कष्टों में बीता है, गरीबी की आग में गल-गल कर उसका शरीर कितना कृश दिखाई देता है। मुझ पर उसे गर्व है लेकिन मैंने तो उसे कोई सुख नहीं पहुँचाया। इस वृद्धावस्था में उसे घर का सारा काम करना पड़ता है। मैं बीमार हो जाऊँ तो सेवा का भार भी उसी पर आ पड़ता है। वह स्वयं बीमार हो जाए तो मुझे पता तक नहीं चलने देती। मुझे उसकी सेवा करनी चाहिए थी लेकिन मैं उलटे उसी से सेवा करवा रहा हूँ।"

इन दो-चार दिनों में कुछ असाधारण घटनेवाला है, इस तरह का विश्वास लोगों को हो रहा था। अमर के साथ वाली दुर्घटना उसकी भूमिका थी। अमर और उसके सात-आठ साथियों के विरुद्ध गाँव मे काफी आदमी हो गए थे। आए दिन कोई न कोई बात होने लगी जिससे यह विरोध स्पष्ट होता गया। परमानन्द ने धान गाहने के लिए पड़ोसियों के बैल माँगे तो उसे टका सा जवाब मिला। दीनू की भैंस जंगल से आते आते गिर गई, उसे उठाने के लिए आदमी नहीं मिले। आखिर उसे घीणू चमार से सहायता माँगनी पड़ी। रघु का बाप बीमार पड़ा तो उसे दवा-दारू के लिए पचास रुपये की जरूरत पड़ी लेकिन जिन लोगों से कर्ज मिल सकता था उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। इस तरह की मामूली बातें तो चल ही रही थीं। एक बड़ा प्रसंग सामने खड़ा हुआ था अनाज के बटवारे का। काश्तकारों ने तीन चौथाई लेने का फैसला कर लिया। उनको डराने धमकाने के लिए जमीन के मालिकों ने भी कुछ तरकीबें सोची थीं। दंगे-फसाद की उम्मीद भी सभी को थी। उसके लिए दोनों पक्ष तैयार बैठे थे। यशवन्तचन्द जमींदार ने अपने मामा दरोगा साहब की पीठ ठोंकी है। वकीलों से भी सलाह-मशविरे हो रहे

हैं। इसके अतिरिक्त पंचायत की हलचल भी मची है। ऊपर से हुक्म आया है कि पंचायत का नये सिरे से चुनाव हो और उसमें छोटी जातियों के नुमाइंदे भी लिये जाएँ। इस खबर ने छोटी जातियों में उत्साह भर दिया था। पंचों को अपनी गद्दी छिन जाने का खतरा हो रहा है। अमर के साथियों ने यह प्रचार किया है कि वर्तमान पंचायत नाममात्र की पंचायत है। वह गाँव की भलाई की ओर ध्यान नहीं देती। उधर कृष्ण की शादी निकट आ रही है। यह शादी भी अ ाने ढंग की निराली ही होगी। लोग अपने हठ पर अड़े हुए हैं और कृष्ण ने भी यह कह दिया ' कि वह आर्यसमाजी ढंग से शादी कर लेगा, किसी को बुलाने की आवश्यकता ही नहीं ड़ेगी।

अमर और नीलू की चर्चा ने विरोधियों की शक्ति बढ़ा दी, उन्हें व्यंग्य कसने का ूरा मौका मिल गया। उसके साथियों में भी कानाफूसी चल रही थी। कृष्ण ने उन्हें समझाया सही लेकिन अपने ही घर के बूढ़ों और औरतों के तर्कों के आगे उनके विश्बास ढीले पड़ रहे थे। उधर नीलू ने घर के बाहर निकलना बन्द कर दिया था। चौधरी बुधीसिंह भी सब से नजरें बचाता था। नीलू की भोली सूरत और निष्कपट व्यवहार से मन को आश्वासन तो मिलता था किन्तु आश्वासन थोड़ी देर ही टिक पाता था।

खलियानों में धानों के ढेर लगने लगे। काश्तकारों ने धान की फसल की उपमा पुत्र-पालन से दी है। कहते हैं धान बोने के बाद और पुत्र पैदा होने के बाद आराम नहीं मिलता है। लगातार छः महीने खेतों में पसीना बहाने के बाद उन्हें जब यह दिन देखने को मिलता है तो उनके कष्टों से झुलसे हुए चेहरों पर एक नई रंगत आ जाती है। ये दिन ऐसे ही थे। एक और खुशी सब के दिल में यह थी कि इस बर्ष अनाज का तीन चौथाई मिलेगा। इरादा तो प्रायः सभी काश्तकार कर चुके थे। जमींदार की ओर से विरोध की आशा थी लेकिन कानून उनके साथ था। इससे भी अधिक अमर की प्रेरणा से सब को बल मिला हुआ था। जमींदार और दूसरे जमीन के मालिक इस विषय में चुप थे। उस गाँव के आधे से ज्यादा काश्तकार यशवन्तचन्द की जमीन बोते थे।

लहनू बड़े तड़के उठा। झुंगी के बाहर खड़े होकर उसने चारों ओर देखा। खलियान में धानों का ढेर दो-तीन फटी-सी चटाइयों से ढका था। उसने पहले चटाई उठाकर ढेर पर माथा टेका। फिर वापस आकर चाय बनाने लगा। सर्दी से उसके हाथ ठिठुर रहे थे। गुदड़ी के नीचे से दियासलाई निकालकर आग जलानी चाही किन्तु जमीन की नमी पुआल से होकर गुदड़ी तक पहुंच गई थी। भला दियासलाई कहाँ बचती? आग नहीं जली तो चाय की प्यास सौगुनी हो गई। काफी सबेरा था, छज्जू को सुबह ही आ जाने के लिए कहा था लेकिन इतनी सर्दी में वह भी कैसे आएगा? उसका ध्यान छज्जू पर केन्द्रित हो गया, 'इस वर्ष उसे स्कूल में जरूर बिठा दूँगा। आठ साल का हो गया, दो-तीन जमात पढ़ लेगा तो उसी के काम आएगा। अब तो दुनिया में हमारे जैसों का काम नहीं रहा। हमारी तरह उसने भी अँगूठा लगाना ही सीखा तो उसका दुनिया में रहना मुश्किल हो जाएगा।' वह यह सोच ही रहा था कि बाहर छज्जू की आवाज सुनाई दी।

वह चाय, रोटियाँ और अधजला उपला लेकर आया था। उसे देखते ही लहनू का हृदय वात्सल्य से भर गया। छज्जू ने चाय की लुटिया पास ही रख दी। रोटियाँ भी पिता के हाथ में दे दीं फिर स्वयम् आग जलाने लगा। लहनू ने उसे बाँह से खींचकर झुंगी के अन्दर खींच लिया। फिर गुदड़ी के आधे भाग से उसे लपेटकर उसका माथा चूम लिया। "बेटा, इतनी सुबह क्यों चले आए ?"

छज्जू ने बाहर निकलने की कोशिश करते हुए कहा, "क्यों बापू ? तुम्हें सर्दी नहीं लगती थी ?"

लहनू का गला भर आया, "अरे, तू अपने बापू का इतना खयाल करता है ?"

छज्जू ने कहा, "बापू ! मैं तो धानों के ढेर देखने चला आया। माँ कहती थी, इस बार धान रखने के लिए हमें दो पैड़ियाँ और बनवानी पड़ेंगी। मैंने सोचा तब तो ढेर हमारे घर की छत तक हो जाएगा।

'लहनू ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह बड़े प्रेम से बेटे के भोलेपन को देखता रहा।

लहनू ने प्रसन्नता से मुस्कराते हुए आग जलाई। चाय गर्म करके दोनों ने उसमें भिगोकर रोटी खाई। जब छज्जू घर जाने के लिए तैयार हुआ तो उसे बात याद आई। उसने कहा, "बापू, कल लम्बरदार का आदमी आया था''' तुम्हें आज सुबह बुलाया है। मैं तो भूल ही गया था।"

पहले तो इस सूचना से लहनू का चेहरा फीका पड़ गया। चिलम भरी थी किन्तु दम लगाना भूल गया फिर''' दूसरे ही क्षण वह संभल कर अपने में ही बोला—'अनाज के बँटवारे के लिए बुलाया होगा। सोचता होगा कि घर में अकेले को बुलाकर डरा-धमका दूँगा ! लेकिन अब लहनू पुराना लहनू नहीं रहा है।' छज्जू से कहा, "अच्छा तुम यहाँ रहो बेटा, मैं जाता हूँ। देखूँ वह क्या कहता है ? लेकिन इधर ही बैठे रहना। कोई पुआल माँगने आए तो मत देना। कहना बापू आएगा तो ले जाना।"

छज्जू के ऊपर सारे खलियान की जिम्मेवारी आ गई। यह उसके लिए बेहद खुशी की बात थी। लहनू ने झटपट दो-चार कश लगाकर धानों के ढेर से चटाइयाँ हटा दीं। सूर्य की दो चार किरणें पहाड़ की चोटी से निकलकर ढेर पर पड़ने लगीं। वह बड़ी देर तक हसरत भरी नजरों से उसकी ओर देखता रहा फिर उसने पुआल का गट्ठर बाँधा। पिछली शाम को थोड़े से धान पुनने बाकी रह गए थे। उसने एक चुटकी उठाकर हवा का रुख देखा। हवा बन्द थी। उस काम का ख्याल छोड़कर उसने पुआल सुखाने के लिए फैला दिया। एक रात के पाले से जो पुआल भीग गया था उसे पास के खाली खेत में बिखेर दिया। उसकी नजरों में पुआल के प्रति भी उतना ही स्नेह था जितना धानों के प्रति। बैलों के भोजन की चिन्ता भी उसे कम नहीं थी। इसके बाद उसने एक झाड़ी को काट-छाँट कर कुछ लकड़ियाँ इकट्ठी कीं। उनसे आग को अच्छी तरह जला दिया। बेटे को सर्दी न लगे इसलिए आग का प्रबन्ध कर जाना भी जरूरी था। ये काम हो गए तो उसने पुआल का गट्ठर सिर पर उठाया और घर की ओर चल पड़ा। चलते-चलते छज्जू को कहता गया, "डरना नहीं, मैं दो घड़ी में ही आ जाऊँगा।"

छज्जू ने बड़ी दृढ़ता से कहा, "मैं नहीं डरता बापू ! तुम बेशक खाना खाकर आना। हाँ, थोड़ी सी लुगडी[1] ले आओगे तो यहाँ पीने का मजा आ जाएगा।"

१. चावल की कांजी।

शायद पुआल की आवाज में लहनू उसके आखिरी शब्दों को सुन नहीं पाया।

पुआल का गट्ठर घर फेंककर वह जमींदार के घर की ओर चल पड़ा। उसकी पत्नी बासन्ती ने कुछ पूछना चाहा किन्तु पूछ नहीं सकी। धड़कते दिल से शिथिल डग भरते हुए वह जब लम्बरदार की चौपाल में पहुँचा तो वहाँ का दृश्य देखकर उसके दिल का बहुत सा बोझ उतर गया। भुक्खन, हीरा, मल्लो, घीणूँ, जस्सू कई काश्तकार वहाँ पहले से ही बैठे थे। वातावरण गम्भीर था किन्तु जमींदार के चेहरे पर क्रोध के स्थान पर चिन्ता छाई हुई थी। उसे स्मरण हो आया···आज से दो साल पहले तक मियाँ यशवन्त को उसने कभी चिन्ता में नहीं देखा था। उस दिन वह छोटे बाबू के जन्म-दिन पर सरसों के साग की टोकरी लेकर गया था तो उसने उसे 'घास' कह टोकरी मेरे सिर पर फेंक दी थी। उस समय उन आँखों से जो चिनगारियाँ निकली थीं, आजकल नहीं दीखतीं··· । वह चुपचाप मल्लो के पास अँगोछा बिछाकर बैठ गया। उसका मन लम्बरदार के मन की खोजबीन करने लग पड़ा। यह वही यशवन्तचन्द है जिसने घुंघर की चमारिन से अपनी बेइज्जती कराई थी और फिर उसके गुस्से में पन्द्रह घर गिरा दिए थे और पचास-साठ प्राणियों को भर बरसात में बेघर कर दिया था, जिसने आम के पेड़ से आम तोड़ने के लिए सूंकू की नंगी पीठ पर पचास बैंत लगवाए थे।···और भी कितनी ही बातें उसे याद आई। पिछले दो सालों से उनके स्वभाव में बड़ा अन्तर आ गया है। अब वे किसी से झिड़ककर नहीं बोलते। मारना-पीटना तो उन्होंने बिल्कुल बन्द कर दिया है। किसी बड़े दिन में 'डाली' के लिए किसी पर दबाव नहीं डाला जाता। गाँव में निकलते समय सिर हमेशा नीचा होता है। यह परिवर्तन कैसे हुआ। यह समझना उसके लिए कठिन था। लोग अपने मन में कुछ कुछ अनुमान लगाते गए। आजादी क्या है, यह तो उसके लिए अब भी पहेली है किन्तु इतना वह समझ गया था कि अब अंग्रेज देश छोड़ कर चले गए हैं। उनके जाने से ही इनकी ताकत मन्द पड़ गई है। जिस दिन 'तीन चौथाई' अनाज की अफ़वाह गाँव में फैली उस दिन से तो उन्हें इसका कुछ कारण समझ में आया था। अब यह भी सुनने में आता था कि जमींदारी अब कुछ ही दिनों की मेहमान है। उनकी बड़ी-बड़ी जमीनें काश्तकारों में बाँट दी जाएँगी।

इतने में लम्बरदार सँभल कर बैठ गए। सब की नजरें उनके चेहरे पर जम गईं। उन्होंने बड़े शान्त भाव से कहना शुरू किया—"आप लोगों को आज इसलिए बुलाया है कि कुछ आपसी बातें हो जानी चाहिए। मैंने सुना है कि आप लोग उस सिर-फिरे अमर के बहकाने में आकर कुछ इरादा किए हुए हैं। लेकिन एक बात याद रखना। दूसरों की अकल पर चलने वाला बुरी तरह ठोकर खाता है। अमर तो कम्यूनिस्ट है। भगवान् को नहीं मानता, देवी-देवता के प्रति श्रद्धा उसमें नहीं, उसका तो कोई दीनधर्म ही नहीं है। दूसरों को लड़ाना ही उसका काम है। वह पढ़ा-लिखा है, तुम्हें पाठ-पढ़ाकर लीडर बनना चाहता है। लेकिन मैं पूछता हूँ, तुम्हारे पास अपना दिमाग अपनी अकल नहीं है। खैर, मुझे अमर से गर्ज नहीं। मैं उसकी परवाह ही क्यों करूँ? वह मेरा बाल बाँका नहीं कर सकता। वही क्यों, तुम सब मिलकर भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। मैं तो तुमसे सिर्फ इतना पूछना चाहता हूँ कि तुम लोगों ने 'तीन चौथाई' लेने का जो निश्चय किया है, क्या वह पक्का है।

घन की चोट की तरह उसके आखिरी शब्द थे। सब चौंक पड़े। इतनी जल्दी, उन्हें इस

भयंकर उत्तर के लिए मुंह खोलना पड़ेगा, ऐसी आशा किसी में नहीं थी। सभी एक-दूसरे की ओर देखने लगे। लम्बरदार ने एक-एक करके सब की नजरों से नजर मिलाने का प्रयास किया। लम्बरदार के नजर घुमाते ही लोग अपनी नजर अपराधी की तरह झुका लेते थे। कुछ देर तक सन्नाटा रहा फिर लम्बरदार ने घीणूं की तरफ मुड़कर कहा—

"घीणूं, तुम्हीं बोलो। पहले तुम्हारा ही जवाब सुन लूं।"

घीणूं लम्बरदार का काश्तकार ही नहीं, बंधुआ नौकर भी था। दस वर्ष की उम्र से ही वह उनकी सेवा कर रहा था। उन्हीं की कृपा से उसे गाँव की चौकीदारी भी मिली हुई थी। वह निर्णय नहीं कर पाया कि प्रश्न का क्या उत्तर दे? किन्तु उसे उत्तर देना ही था। यशवन्त ने जानबूझ कर उसे चुना था। वह उसके काश्तकारों में सब से पुराना था, उसकी बात की दूसरे काश्तकारों में कद्र थी। घीणूं भी यह जानता था कि उसे उत्तर देना ही होगा। इतना ही नहीं, उसी उत्तर पर सारा मामला टिका हुआ है, इतना भी वह जानता था। दूसरे लोग तो सिर्फ सिर हिला सकने लायक थे। बात करने के लिए उसे पहले से ही लोगों ने चुन रखा था। अमर ने भी उसी पर यह भार रखा था। यह सब होते हुए भी सब के मुँह में नमकहलाली का ताला लगा हुआ था। जिस घर का नमक खाकर उसने अपनी जिन्दगी बिता दी उसी घर के विरुद्ध वह किस प्रकार कुछ कहेगा? बड़ी देर तक वह सोच में पड़ा रहा। उसे गुमसुम देखकर यशवन्तचन्द के चेहरे पर मुस्कराहट बिखर गई। घीणूं ने अपने साथियों की तरफ देखा तो उनके चेहरे कुम्लहाए हुए थे। वे साँस रोके उसके मुँह से निकलने वाले शब्दों की प्रतीक्षा कर रहे थे। लम्बरदार ने हुक्के का कश खींचकर धुएँ का गुबारा छोड़ते हुए पूछा, "क्या कहते हो घीणूं?"

घीणूं ने किंचित् काँपते हुए स्वर में कहा, "मालिक, मैंने आपका नमक खाया है...।"

यह कहकर उसकी जबान रुक गई। लम्बरदार यशवन्तचन्द का चेहरा खिल उठा। घीणूं ने आगे कहना शुरू किया, "लेकिन, मालिक! अगर यह मामला मुझ अकेले का होता तब मैं आपकी इच्छा के खिलाफ कोई बात सोच भी नहीं सकता था। मुझे किस चीज की कमी थी? आपकी दया से मेरे बाल-बच्चे पेट भरकर खाते और नींद भरकर सोते हैं। मैं इस वक्त अपनी ही बात नहीं कहूँगा, इन गूँगों की बात भी मुझे ही कहनी है। अगर मैं आपकी बात मान लूं तो इन लोगों से दग़ा होगा, सरकार से दग़ा करना पड़ेगा।"

यशवन्तचन्द की भौंहें तन गईं, "और मेरे साथ दग़ा नहीं होगा?"

घीणूं बोला, "नहीं मालिक! आपसे दग़ा तब होता जब मैं आपके सामने कुछ और कहता और करता कुछ और। मैं आपका ऋणी हूं। लेकिन उस ऋण के बदले दूसरों की बलि नहीं दे सकता। आप चाहें तो मेरे हिस्से के सारे अनाज को ले सकते हैं लेकिन पहले तो ठीक बंटवारा करना ही पड़ेगा।"

घीणूं ने इतना कहकर अपना सिर झुका लिया। लम्बरदार की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसके पास गाँव के दूसरे जमीन मालिक बैठे हुए थे। लम्बरदार ने उनकी ओर देखा और पूछा, "अब आप लोगों की क्या राय है? इन लोगों को तो उसने पट्टी पढ़ा दी है। ये लोग अपनी बात पर अड़े हुए हैं।"

पंडित प्रभुदयाल ने कहा, "दूसरों को भी पूछ कर देख लीजिए।"

लम्बरदार ने घीर्णू के साथियों की ओर देखा, "क्या आप सभी का यही फैसला है ?"

किसी ने उत्तर नहीं दिया। उन्होंने दाँत पीसते हुए कहा—

"तो मेरा फैसला भी सुन लो। मुझ से टक्कर लोगे तो भूख से तड़प-तड़प कर मर जाओगे? मैं अपनी जमीन तुम लोगों को नहीं दे सकता। मुझे हजारों काश्तकार मिलते हैं, मिल रहे हैं। मैंने भी फैसला कर लिया है कि अगली फसल के लिए सब काश्तकार नये होंगे। और तुम सब मेरी ही जमीन पर रहते हो, तुम्हें वह जगह छोड़नी पड़ेगी। अपना घर उठाकर किसी दूसरी जगह ले जाओ।" फिर उन्होंने अपनी ओर के लोगों की ओर देखकर कहा, "इन्हें तीन चौथाई दो और साथ ही यह भी बता दो कि अगली फसल के लिए जमीन इनको नहीं दी जाएगी।"

घीर्णू के साथियों के दिल धक्-धक् कर रहे थे। जमीन निकल जाने का सदमा उनके लिए बड़ा भारी सदमा था। घीर्णू ने जरा आगे बढ़कर कहा, "मालिक, हम तो मौरूसी काश्तकार हैं। दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह सालों से इसी जमीन को बो रहे हैं। आप जमीन छुड़ाने की बात कहते हैं, वह हमारी समझ में नहीं आती।"

लम्बरदार ने रहस्य भरी हँसी हँसते हुए कहा, "तुम मौरूसी हो या नहीं, इसका फैसला किताबें कर देंगी। तुम्हारे अँगूठे उस पर लगे हुए हैं।"

इस बात को सुनते ही घीर्णू के चेहरे पर मुर्दनी छा गई। उसके दूसरे साथी भी डर के मारे पीले पड़ गए। लहनू ने उठते-उठते कहा, "भाइयो, अब पछताने से क्या होगा? अगर हम दो अक्खर पढ़े होते तो यह नौबत नहीं आती। हम तो लम्बरदार साहब पर विश्वास करके चुपचाप अँगूठा लगा जाते थे। किसलिए लगाते थे, यह जानने की हमने कोशिश ही नही की। अब चलो, चलकर अपनी किस्मत को रोओ।"

यशवन्तचन्द ने दो-तीन आदमियो को उठते हुए देखा तो मुस्कराकर बोले, "जो घोड़े पालते हैं, वे दरवाजे ऊँचे रख लेते हैं। खैर, अब भी वक्त है। तुम लोग सोच सकते हो। दोपहर तक हमें जवाब देना।" वे उठकर चले गए। उनके जाते ही दूसरे जमीन मालिक भी उठ गए। घीर्णू भी अपने साथियों सहित वहाँ से चल दिया।

रास्ते मे घीर्णू ने बात की, "यह तो बहुत बुरा हुआ। जमीन हाथ से निकल गई तो खाएँगे क्या? और अगर लम्बरदार की जगह से घर भी उठाने पड़े तो कहाँ जाकर सिर छिपाएँगे ?"

अमर खाट पर लेटा-लेटा एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसके जख्म अब ठीक हो गए थे किन्तु पट्टी अभी तक बँधी हुई थी। सब लोग अमर के आँगन में जाकर खड़े हो गए। लक्ष्मी बाहर आई तो आँगन मे पच्चीस-तीस आदमियों को देखकर पहले तो डर गई फिर जरा धैर्य से पूछा, "क्या बात है घीर्णू ?"

घीर्णू ने माथा टेककर कहा, "बड़ी मुसीबत में फँस गए हैं। अमर बझिया से मिलने आए हैं।"

लक्ष्मी समझ गई कि जमींदार ने कोई कूट चाल चली है। क्षण भर विचार करने के बाद बोली, "अच्छा, अन्दर आ जाओ।"

घीर्णू विस्मय से अपने साथियो की ओर देखने लगा। लक्ष्मी उसके मन का भाव ताड़ गई,

बोली, "फिक्र मत करो। तुम लोगों के भीतर आने से कुछ बिगड़ेगा नहीं।"

सभी भीतर आए। अमर उन्हें देखते ही खाट से उठ गया। लक्ष्मी ने एक चटाई बिछा दी और सभी को उस पर बैठ जाने के लिए कहा। अमर ने पूछा, "जमींदार के यहाँ से आ रहे हो ?"

अमर समझ चुका था कि ये लोग किसी बड़ी उलझन में फँस गए हैं। वह उलझन क्या हो सकती है इसका अनुमान भी उसने लगा लिया था। फिर भी उसने पूछ लिया, "क्या कहता है वह ?"

घीणूं बोला, "कहता है, अगली फसल के लिए काश्तकार बाहर से आएँगे।"

अमर बोला, "लेकिन तुम लोगों ने कहा नहीं कि हम मौरूसी काश्तकार हैं और कानून के मुताबिक वह जमीन नहीं छुड़ा सकता ?"

लहनू आगे बढ़कर बोला, "भैया, हमारे अँगूठे उसने न जाने कहाँ से ले लिए हैं ? कहता था कि मेरे कागजों में यह बात चढ़ी हुई है कि तुम मौरूसी नहीं हो।"

भुक्खन की जबान भी खुली, "कोई तरीका नहीं निकला, तब तो बहुत बुरा होगा। हम भूखों मर जाएँगे और घर कहाँ बनाएँगे ?"

लक्ष्मी ने दूसरे कमरे से प्रवेश किया। अमर इस नई समस्या के हल में उलझा हुआ था। उसका ध्यान उस ओर नहीं गया। लक्ष्मी ने आते ही उनकी ओर देखकर कहा, "तुम लोग इतने गए-बीते हो। तुम सौ-डेढ़ सौ आदमियों को एक आदमी कैसे निकाल सकेगा ? क्या तुम सूखे तिनके हो जो फूँक मारते ही उड़ जाओगे ?"

अमर का ध्यान भंग हुआ। घीणूं ने कहा, "अम्मा, वह पुलिस लेकर आएगा।"

लक्ष्मी बोली, "पुलिस लेकर आएगा तो क्या हुआ ? तुम अपनी जगह छोड़ना नहीं चाहोगे तो पुलिस क्या कर लेगी। जिस जगह तुम पचास-साठ सालों से रहते आ रहे हो उस पर से लम्बरदार तुम्हें उठा ही नही सकता है। ज्यादा से ज्यादा वह तुम से जगह का किराया ले सकता है। पुलिस तो अब मनमानी नहीं कर सकती। करेगी तो उसे फल भोगना पड़ेगा। जब तक फरियाद की सुनवाई बड़े अफसरों तक न हो तब तक तुम्हें हिम्मत बांधकर मुकाबला करना ही पड़ेगा ?"

थोड़ी देर के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया। लोगों को लक्ष्मी की बात अच्छी तरह समझ नहीं पड़ी। वे अमर की ओर प्रश्नभरी मुद्रा से देखने लगे। अमर ने कहना शुरू किया, "मां ठीक कहती है घीणूं ! किसी भी काम में सफलता तभी मिलती है जब हम उसके लिए कुछ कुर्बानी करते हैं। बिना कष्ट उठाए सुख नहीं मिलता। इस काम में हमारी सफलता निश्चित है किन्तु हमें कष्ट तो सहने ही पड़ेंगे। लम्बरदार के मुकाबले के साथ-साथ पुलिस का भी मुकाबला करना पड़ेगा। लम्बरदार का रसूख है। बड़े-बड़े अफसरों तक उसकी पहुँच है। वह पुलिस से मनमाना काम करा सकता है। लेकिन अगर सच्चाई हमारे साथ होगी तो पुलिस भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी। कानून के मुताबिक तुम्हारा उस जगह पर अधिकार है जहाँ तुम पचास-साठ साल से घर बनाकर रह रहे हो। सरकार तुम्हें घर छोड़ने से मजबूर नहीं कर सकती। लेकिन सरकार तक बात पहुँचने से पहले ही पुलिस से मिल-मिलाकर जमींदार कुछ धांधली करने की कोशिश करेगा, तब हमारे धैर्य की परीक्षा होगी।"

हीरा के चेहरे पर रौनक आ गई। वह बोला, "हम साठ-सत्तर जवान मरने-मारने को तैयार हैं।"

अमर बोला, "नहीं, नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है कि हम लट्ठ लेकर पुलिस से लड़ने लगेंगे। ऐसा करने पर हमारी हार हो जाएगी। हमें तो लाठी हाथ में लेनी ही नहीं है। चुपचाप अपनी जगह पर डटे रहना है। पुलिस लाठियाँ मारेगी तो भी हमें उसका जवाब नहीं देना है। वह पकड़कर ले जाएगी तो चुपचाप चले जाना होगा।"

लहनू बोला, "यह कैसे होगा भैया ? वे मार-मारकर हमारी चमड़ी उधेड़ देंगे। और हम पत्थर की तरह बैठे रहेंगे ?"

"हाँ, ऐसा ही करना पड़ेगा तभी हमारी जीत होगी। यही तरीका हमें जमीनों के लिए करना होगा। नये काश्तकार आएँगे तो वे अपने आप वापस चले जाएँगे। ऐसा समझ लो कि कुछ हुआ ही नहीं, ये जमीनें तुम्हारी हैं। हर साल की तरह तुम वहाँ खाद डालना शुरू कर दो। आसपास के दो-तीन गाँवों से नये काश्तकार आएँगे तो मैं उन्हें समझा दूँगा। वे भी आखिर हमारी-तुम्हारी तरह ही होंगे। आज हम पर मुसीबत आई है कल उन पर भी आएगी। जब उन्हें इस बात का पता चलेगा तो वे सँभल जाएँगे।

लोगों की समझ में बात अब भी नहीं आई। लक्ष्मी ने कहना शुरू किया, "डरते क्यों हो ?" अब पहले जैसी अँधेरगर्दी नहीं है कि कोई गरीबों की रोटी इस तरह छीन लेगा। अगर तुम लोग हिम्मत से काम लोगे तो जमींदार को झुकना ही पड़ेगा।"

घीणूं काफी देर से चुप था। अब वह बोला, "भैया का कहना ठीक है। लम्बरदार अब हम पर जबरदस्ती नहीं कर सकता। पुलिस के हाथ भी कानून से बँधे हुए हैं। उन्होंने कुछ बेकायदा काम किया तो हम सब मिलकर डिप्टी साहब के बँगले पर धरना देंगे। चलो, हम अनाज के तीन चौथाई से एक दाना भी कम नहीं लेंगे। मैं अभी जाकर लम्बरदार को यह फैसला सुना आता हूँ।"

सभी के दिल साहस से भर गए। लक्ष्मी ने जाते-जाते उन्हें फिर हिम्मत बँधाई, "भगवान् पर भरोसा रखो...वह इतना बड़ा अन्याय नहीं होने देगा। तुम लोगों को कुछ कष्ट उठाने भी पड़े तो समझना कि हम सब की भलाई इसी में छिपी हुई है।"

सब लोग लक्ष्मी और अमर को माथा टेककर विदा हुए। अमर भावी संकट की चिन्ता में पड़ गया।

लहनू ने घर जाकर देखा, भात तैयार था। उसे छज्जू का ख्याल आया—वह इतनी देर तक भूखा बैठा होगा। उसने भात पत्तल में लपेट कर अँगोछे में बाँध लिया और खलियान की ओर चल पड़ा। रास्ते में वह सोचता जा रहा था कि लम्बरदार को किस तरह तीन चौथाई देने के लिए कहेगा। अभी दो-एक घंटे बाद ही वह उसके खलियान में आएगा। उसके आगे सवाल-जवाब करने की उसकी कभी हिम्मत नहीं होती थी। जब उसकी जमीन चार सेर कोदो पर कुर्क हो गई थी तो भी उसके दिल में आग धधक उठी थी लेकिन वह कुछ भी नहीं कर सका था। अपने मन को दिलासा देते-देते वह खलियान में पहुँच गया। वहाँ जाकर देखा, अमर का साथी देवराज उसी की प्रतीक्षा कर रहा है। लहनू ने आश्चर्य से पूछा, "क्यों भैया, क्या बात

हुई ?"

देवराज बोला, "यह कहने आया हूँ कि हमारे लिए खलियाना[1] जरूर रख लेना।"

लहनू संकोच से दब गया, बोला, "भैया, यह कैसी बातें करते हो? मैं गरीब आदमी ठहरा, आपको दान देने की मेरी क्या औकात है?"

देवराज ने अपने कंधों से थैली उतारकर मेड़ पर रखते हुए कहा, "ऐसी बात नहीं है लहनू? दान तो तुम्हारा ही सच्चा होगा। मेहनत की कमाई का दान ही असली दान होता है। और फिर यह दान बड़े काम के लिए है। अगर सच्चे दिल वालों का दान मिलेगा तो हमारा काम जरूर सफल होगा। आज जितने भी खलियान तैयार हैं सभी से हमें अनाज इकट्ठा करना है। जो जितना दे सकता है उतना उससे ले लेंगे। और गाँवों में भी हमारे आदमी गए हैं। सौ मन अनाज भी इकट्ठा हो जाएगा तो अस्पताल की नींव रखी जा सकती है।"

लहनू ने कुछ सोचने के बाद पूछा, " कितना अनाज कम से कम...."

उसे बीच में टोकते हुए देवराज बोला, "एक दाने से लेकर दस मन तक ..... । मैं यह बोरी रख जाता हूँ जो कुछ देना होगा इसमें भरकर रख देना। हम में से कोई उठाकर ले जाएगा।" देवराज तो यह कहकर चला गया और लहनू स्नेह भरी नजरों से उसकी ओर देखता रहा।

छज्जू को भूख लग रही थी, यह उसके चेहरे से ही स्पष्ट था। दोनों ने मिलकर खाना खाया। छज्जू के दिल में खेत में खाना खाने की कई दिनों से इच्छा थी, आज वह भी पूरी हो गई।

धीरे-धीरे खलियान में खलियाना लेने वाले इकट्ठे होने लगे। लहनू के पड़ोस के बच्चों के अतिरिक्त दूसरे गाँव की गरीब लड़कियाँ भी आ गईं। इस वर्ष लहनू के धान सब लोगों से बाजी मार गए थे इसलिए उसके खलियान भरने का पता सब को लग गया। गाँव के दो-एक आदमी यूँ ही तमाशा देखने आ गए थे। लहनू बड़ी उत्सुकता से लम्बरदार की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके सामने घीणूँ, हीरा के खलियान भी तैयार थे। अनाज भरने के लिए पहले लहनू की बारी थी। लोग भी यह देखने के लिए उत्सुक हो रहे थे कि जमींदार क्या करता है ?

सूरज ढलने लगा तो लम्बरदार अपने आदमियों को लेकर आ पहुँचा। उस समय उसमें क्रोध के भाव तो नहीं थे किन्तु नाराजगी प्रकट हो रही थी। उसने अपने नौकर को काम शुरू करने के लिए कहा। मधुआ 'पथ' (माप) लेकर धान भरने लगा। किसी ने बात नहीं की। लहनू साँस रोके खड़ा था। 'एक, दो,तीन, चार ' की गिनती से धान भरे जाने लगे। छियानवे पथ मापने के बाद वह एक पत्थर अलग रख लेता था यह 'टोपे' का प्रतीक था। इसी प्रकार बीस टोपे उसने एक ओर भर दिए। अभी तक ढेर आधा हुआ था। यहाँ पर वह रुक गया। जमींदार ने कहा, "अब जरा तम्बाकू पी ले।"

वह तम्बाकू पीने के लिए उठा। सभी ने यह मान लिया कि यही खलियान सब से अच्छा रहेगा। लम्बरदार ने भी उनकी हाँ में हाँ मिलाई। लहनू बोला, "बझिया, यह अमर भैया के प्रताप से हुआ। मैंने हर साल की तरह मेहनत की लेकिन इस बार उनके कहने से जरायती खाद डाली थी। आप लोग उनके धान देखते तो हैरान रह जाते।"

एक सज्जन ने कहा, "लेकिन वे रहे कहाँ बेचारे का सब कुछ लुट गया।"

१. खलियान भरने पर जरूरतमंदों और गरीबों को बख्शीश या दान के तौर पर दिया हुआ अनाज।

लम्बरदार ने बार्तालाप में भाग नहीं लिया। उन्हीं के साथ वाले एक व्यक्ति ने कहा, "औरतों के पीछे राजपाट बर्बाद हो जाते हैं।"

लहनू ने भेड़िये की तरह उसकी ओर देखा किन्तु कुछ कह नहीं सका। वह व्यक्ति भी झेंप कर चुप हो गया। मधुआ तम्बाकू पी चुका तो उसने लम्बरदार की ओर देखा। लम्बरदार ने की ओर देखकर पूछा, "कितना भरने को कहते हो? तीन चौथाई या आधा?"

लहनू बोला, "मालिक आप जो चाहें भर सकते हैं।"

"लेकिन तुम लोगों का फैसला क्या है।" लम्बरदार ने रुखाई से पूछा।

"हम तो आपके खिलाफ नहीं जाना चाहते मालिक! आप सच्चाई ईमान पर चलेंगे तो हम आपके दास हैं।"

पता नहीं कैसे वह इतनी बात कह गया।

"क्यों बे बदतमीज, मुझे सच्चाई से गिरा हुआ कहता है? अमर के भरोसे रहकर तुम्हारी जबान इतनी लम्बी हो गई है? तुम मुझे पहचानते हो न?"

उसका क्रोध चेहरे पर स्पष्ट हो उठा। लहनू ने दिल को मजबूत किया। हीरा और घीणूँ आते दिखाई दिए तो उसका हौसला और भी बढ़ गया। उसने कहा, "इस वक्त मैं ज़्यादा कुछ नहीं कहना चाहता। आप तीन चौथाई भर दीजिए।"

लम्बरदार की आँखों में चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने कड़ककर कहा, "कोई बात नहीं। मधुआ, भर दे। लेकिन लहनू मेरा फैसला भी तुमने सुन लिया है न। गेहूँ की फसल तो तुमने बो दी है अगली फसल के लिए इधर मेरा दूसरा काश्तकार आएगा। और कल ही तुम मेरी जगह छोड़कर चले जाओ, नहीं तो मैं घर में आग लगवा दूँगा।"

लहनू का अंग-अंग क्रोध से काँप रहा था। उसके सामने मियाँ यशवन्तचन्द के सभी अत्याचार साकार हो उठे। उसने कहा, "मालिक, आप अपना फर्ज पूरा करना, हमें जो ठीक लगेगा, हम करेंगे। लेकिन यह बात याद रखना कि अब वह जमाना नहीं रहा जब चार सेर कोदों पर दस करनाल जमीन कुर्क करा ली जाती थी।"

यशवन्तचन्द ने आँखें तरेर कर पूछा, "अब कैसा जमाना है? क्या तुम लोग दंगा-फिसाद करोगे?"

"दंगा-फिसाद वे करते हैं जिनके पास सचाई नहीं होती..."

लहनू की बात सुनकर सभी लोग चकित थे। स्वयं यशवन्तचन्द भी हैरान था। आज तक किसी ने उसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखा। इस प्रकार के सवाल-जवाब की आशा उसे नहीं थी। उसने समझ लिया कि जिस दिन से वह डर रहा था वह अब आ ही गया। उसको अभी तक यही अनुमान था कि ये लोग अमर के पढ़ाए हुए तोते हैं। किन्तु आज उसने अपनी आँखों से देख लिया कि वे अब दबकर रहने वाले नहीं हैं उसके मन में भय छा गया। इतने लोगों के सामने उसी की दया पर पलने वाला जुलाहा उसका अपमान कर बैठे यह उसके लिए बड़ा भारी सदमा था। कुछ देर तक वह चुप खड़ा रहा फिर पास के एक आदमी को सम्बोधन करते हुए बोला "सन्ता...कल खाद के टोकरे दो-चार इधर रख जाना और यहाँ बैलों के लिए छपरिया भी बाँध लेना। सामान हमारे यहाँ सब मिल जाएगा। दो-चार आदमी लगाकर कल ही यह काम हो

जाए।"

सन्ता ने आगे झुककर कहा, "अच्छा सरकार..."

मधुआ फिर अनाज भरने लगा। बीस टोपे की ढेरी दूसरी ओर लग गई। अब लम्बरदार के कहने के अनुसार उसमें से दस टोपे निकाल कर लहनू की ढेरी में डालने थे। मधुआ तेजी से यह काम किए जा रहा था। लम्बरदार ने लहनू की ओर मुड़कर कहा, "पुआल का चौथा हिस्सा भी अलग कर दो।"

लहनू बोला, "पुआल पर बैलों का हक है। इसका बँटवारा नहीं हो सकता।"

"कैसे नहीं हो सकता? जब कानून से बँटवारा हो तो सभी का होगा।"

"लेकिन मेरे बैल क्या खाँएगे? हर साल चारे की कमी पड़ जाती है।"

"मैं यह नहीं जानता।"

"लेकिन मैं बैलों के हक को नहीं मार सकता। पुआल का बटवारा आज तक कभी नहीं हुआ।"

लम्बरदार का धैर्य जवाब दे रहा था। उसने कड़क कर कहा, "लहनू, तुम झगड़ा करने पर तुले हुए हो। उस बदमाश के बहकाने पर तुम वैर मोल ले रहे हो।"

लहनू ने बड़े धीरज से कहा, "मालिक, आपके मुँह में गालियाँ शोभा नहीं देतीं।"

"तो क्या उसे संत-महात्मा कहूँ? साँड की तरह बन-ठन कर गाँव में फिरता है। गाँव की बहू-बेटियों पर बुरी नजर डालता है। बदमाश कहीं का!"

लहनू के लिए यह बात असह्य थी। वह बोला, "सरकार, अपने घर में झाड़ू देकर दूसरों की घर की सफाई का उपदेश देना चाहिए! आप क्या घुंघर चमारी का जूता भूल गए हैं? वह अभी तक जीती है।"

यशवन्तचन्द आपे से बाहर हो गया। उसने कसकर एक लात उसके पेट पर दे मारी। लहनू की आँखों की आगे अँधेरा छा गया। वह पेट पकड़ कर वहीं बैठ गया। उसका बेटा छज्जू जो पास खड़ा-खड़ा सब कुछ देख रहा था, रों पड़ा। लम्बरदार का गुस्सा थमा नहीं। उसने नीच, कमीना, नमकहराम आदि सैकड़ों बेहूदा गालियाँ बकते-बकते लहनू पर दस-बारह घूँसे भी जमा दिए। लहनू पहली ही चोट से अधमरा हो गया था। वह औंधा जमीन पर लेट गया और घूसों के प्रहार को सहता गया। पास बीस-पच्चीस आदमी खड़े थे, लेकिन किसी की हिम्मत आगे बढ़कर लम्बरदार का हाथ पकड़ने की नहीं हो रही थी। छज्जू ने और कोई उपाय न देखकर एक पत्थर जोर से लम्बरदार की नाक पर दे मारा। नाक से खून बहने लगा। क्रोध से पागल होकर वह बच्चे की ओर दौड़ा। उन्मत्त पशु की तरह एक जोर का थप्पड़ उसे दे मारा। वह चोट नहीं सह सका। 'बापू' कहकर वह जमीन पर गिर पड़ा। हीरा अब तक खड़ा देख रहा था। अब उससे न देखा गया। उसने लपक कर लम्बरदार की गर्दन पकड़ ली। एक ही धक्के से वह दूर जा गिरा। लम्बरदार के नौकरों ने अपनी आस्तीनें खींच लीं। घीणूं, भुक्खन भी तैयार हो गए। जिनके हाथ में जो आया उसी को लेकर वे तन गए। तीन-चार आदमी हीरा को पकड़ने के लिए आगे बढ़े थे। घीणूं ने उनका रास्ता रोक लिया। एक लाठी घीणूं के सिर पर आ गिरी। लेकिन उसने उस प्रहार को सहकर भी उन्हें जाने नहीं दिया। उसकी लाठी में सौगुना ताकत

सिमट आई। उसका एक वार सन्ता के ऊपर गिरा, वह सँभल नहीं सका। दूसरा वार उसने आँखें मीचकर और दाँत पीसकर किया। किसके ऊपर किया? कहाँ किया? इत्यादि बातों की ओर उसका ध्यान नहीं गया किन्तु वार कर चुकने के बाद उसने जो चीत्कार सुनी उससे उसका दिल धड़क उठा। सामने जो आदमी गिरा था, वह अमर था।

लहनू के खलियान के सामने चौधरी बुधीसिंह का खलियान था। जिस समय चौधराइन खाना लेकर खलियान की ओर आ रही थी तो उसने पास से गुजरते लम्बरदार और सन्ता आदि को दंगे-फिसाद की बातें करते सुना था। घूँघट होने के कारण वे उसे पहचान नहीं पाए थे किन्तु नीलू का दिल भय से काँप उठा था। खलियान में आकर उसने पति से सारी बातें कहीं तो वह भी घबरा गया। बैलों को खलियान से बाहर निकालकर वह अमर को खबर देने के लिए तैयार हो गया। नीलू बोली, "लेकिन वे तो बीमार हैं, उनसे चला भी नहीं जाता। यहां तक कैसे आएँगे?"

चौधरी ने रुक कर कहा, "कुछ भी हो इस दंगे को रोकने की शक्ति और किसी में नहीं है। नहीं होगा तो मैं उन्हें कन्धे पर उठाकर ले आऊँगा। घीणूँ, लहनू, हीरा सभी गर्म हो गए हैं। अमर नहीं आया तो वे कुछ कर बैठेंगे।"

नीलू की चिन्ता और ही दिशा में बहने लगी, "नहीं, नहीं। आप उन्हें मत बुलाइए, पता नहीं, लम्बरदार क्या कह देगा? उनकी बेइज्जती करेगा, या…" कहते-कहते वह काँप उठी। चौधरी आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा। मारे घबराहट के वह पीली पड़ गई थी। वह आगे नहीं कह सकी।

चौधरी समझ गया, बोला, "मेरे जीते जी, उस पर कोई हाथ नहीं उठा सकता। मैं किसी का खून पी जाऊँगा।" कहकर वह जाने लगा। नीलू ने फिर अनुरोध भरे शब्दों में कहा, "नहीं-नहीं…उन्हें मत बुलाइए। कोई बहुत बुरी बात हो जाएगी। मुझे डर लग रहा है।"

चौधरी ने उसके शब्द नहीं सुने, वह चला गया। कुछ ही क्षणों में वह हाँफता-हाँफता अमर के घर पहुँचा। अमर उसे देखते ही प्रसन्नता से खिल उठा। उस घटना के बाद चौधरी पहली बार उसके घर आया था। चेहरे पर उतावली को देखकर अमर को शंका हुई कि वह नीलू के बारे में कुछ कहने वाला है। चौधरी ने बिना भूमिका के उसे सारी बात बता दी। साथ ही यह भय भी प्रकट किया कि अगर वे नहीं जाएंगे तो कोई भयंकर घटना हो जाएगी। अमर स्थिति को समझकर शीघ्र ही खलियान जाने को तैयार हो गया। अभी वह अच्छी तरह से नहीं चल सकता था। लाठी के सहारे जब वह दरवाजे तक पहुँचा तो माँ आकर सामने खड़ी हो गई। चौधरी की बातें उसने दूसरे कमरे से सुन ली थीं। भय से काँपते हुए स्वर में वह बोली, "बेटा, वहाँ मत जाओ।" लेकिन अमर उसे ढाढ़स बँधाते हुए बोला, "अम्माँ, तुम व्यर्थ की चिन्ता कर रही हो। मुझे कुछ नहीं होगा।"

न चाहते हुए भी माँ को रास्ता छोड़ना पड़ा क्योंकि वह बेटे के हठ से भली भाँति परिचित थी। चौधरी और अमर लहनू के खलियान की ओर चले। रास्ते में अमर ने एक भी शब्द नहीं कहा। मन ही मन वह दुष्परिणाम की कल्पना कर रहा था। जब वह खलियान के कुछ दूर पहुँचे तो उन्होंने देखा, यशवन्तचन्द अधमरे लहनू पर लात-घूँसे जमा रहा है। फिर हिंस्र पशु बनकर

नन्हें बच्चे छज्जू पर अपना क्रोध उंडेला। इसे देखकर हीरा आगे बढ़ा। उसने लम्बरदार को दबोच लिया। लम्बरदार के आदमी लट्ठ लेकर आगे आए। घीणूँ ने उनका रास्ता रोक लिया। एक लाठी घीणूँ ने सन्ते के सिर पर मारी और दूसरी को मारते समय अमर बीच में आ गया।…

घीणूँ ने अपने सामने जब अमर को लहु-लुहान देखा तो उसके होश-हवास गुम हो गए। हाथ से लाठी छूट गई और वह 'अमर भैया' चिल्लाकर वहीं बैठ गया। अमर के नाम की प्रतिध्वनि वातावरण में गूँज उठी। सब के हाथ रुक गए। हीरा लम्बरदार की गर्दन पकड़े था, पेड़ से उसका सिर टकराने वाला था कि अमर नाम सुनकर वह सिर से पाँव तक सिहर उठा। उसने लम्बरदार को छोड़ दिया। सभी लोग अमर के इर्द-गिर्द जमा हो गए। यशवन्तचन्द भी वहाँ आया। थोड़ी देर तक सारे दृश्य को देख कर उसने अपने लोगों से कहा, "अच्छा हुआ, शैतान अपनी ही कारस्तानी का शिकार हो गया। अमर यहाँ मर जाए तो बहुत अच्छा, नहीं तो पुलिस के हाथों से तो अब छूट ही नहीं सकता।"

घीणूँ को ये शब्द अंगारों की तरह लगे। उसने भूखे शेर की तरह लम्बरदार की तरफ देखा, फिर होंठ चबाते हुए बोला, "बझिया, तुम इस काले मुँह को लेकर घर चले जाओ, नहीं तो सच कहता हूँ बहुत बुरा होगा।"

यशवन्तचन्द पसीने से भीग गया था। भय से अब भी उसका सारा शरीर काँप रहा था। फिर भी हेकड़ी दिखाते हुए बोला, "बहुत बुरा तो होगा ही बच्चू, तूने समझ क्या रखा है। अगर दो साल की सजा न दिलवाऊँ तो अपने बाप का बेटा नहीं।"

हीरा से न रहा गया, वह बिजली की फुर्ती से अमर के पास से उठा और बिना कुछ कहे लम्बरदार के मुँह पर एक जोर का घूँसा जड़ दिया। यशवंत इस प्रहार को न सह सका। उसका सिर घूम गया, मुँह से रक्त की धार बहने लगी। बहुत सम्भव था कि वहाँ फिर दोनों पक्षों में युद्ध छिड़ जाता लेकिन तभी वहाँ अमर की माँ, नीलू और आसपास के दस-बारह और लोग पहुँच गए। लम्बरदार के लोग अपने मालिक को उठाकर घर ले गए।

माँ ने जब बेटे की यह दशा देखी तो वह निर्जीव सी उसके पास खड़ी रही। उसके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। आँसू भी आँखों में नहीं आए। उसकी साँस जैसे रुद्ध हो गई। लोग डर गए कि वह पागल हो जाएगी। अमर ने आँखें खोलीं तो सामने माँ को देखकर मुस्करा दिया। माँ उसके पास बैठ गई। नीलू भी नजदीक आ गई। सामने लहनू की छलकती हुई आँखें देखकर अमर पीड़ा दबाते हुए बोला, "लहनू तुम्हारी तबीयत कैसी है?"

लहनू ने आँसुओं के वेग को रोकते हुए कहा, "मैं तो ठीक हूँ भैया…।" वह आगे कुछ कहने वाला था कि अमर ने दूसरा प्रश्न किया, "छज्जू कहाँ है?"

लहनू ने भीड़ में खड़े हुए छज्जू को पकड़ कर आगे किया। उसके सुर्ख गालों को देखकर अमर ने माँ की ओर देखकर कहा—

"माँ, देखो तो इसका गाल अब भी लाल है…बड़े जोर का थप्पड़ मारा था उसने।

माँ ने आगे बढ़कर छज्जू को अपनी गोद में ले लिया। नीलू ने अमर की ओर देखकर कहा, "लला जी, आपकी तबीयत कैसी है?"

अमर मुस्करा पड़ा, "भाभी, तुम भी आई हो?…" और उसने आगे हाथ बढ़ाकर सहारा

माँगा। नीलू ने उसका हाथ पकड़ा, वह उठ बैठा। कुछ देर में वह किंचित् स्वस्थ हुआ तो बोला, "भाभी, ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है। अगर मेरे सिर पर लाठी न गिरती तो भला तुम और भैया मुझे माफ करते"?" कहते-कहते वह उठकर खड़ा हो गया। लहनू बोला, "भैया, तुम बैठे रहो। हम अभी पालकी ले आते हैं।"

अमर ने चौधरी के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "पालकी की जरूरत नहीं। बड़े भैया का सहारा लेकर घर पहुँच जाऊँगा।"

चौधरी आत्मग्लानि से घुट रहा था। अमर का निश्छल विश्वास पाकर उसका हृदय हल्का हो गया। सभी लोग घर की ओर चल दिए। खलियान का अनाज खलियान में ही रहा, केवल भुक्खन पहरे के लिए वहाँ पर रुक गया।

उस दिन खलियानों में अनाज का बँटवारा नहीं हो सका। गाँव में मुर्दनी-सी छा गई। लोग पुलिस के भय से काँपने लगे। लम्बरदार का एक आदमी चिट्ठी लेकर कोतवाली की ओर चला गया, यह बात गाँव भर में फैल गई थी।

दूसरे दिन पुलिस आई। लम्बरदार का रिश्तेदार इन्स्पेक्टर एक सार्जेंट दो हवलदारों और पाँच सिपाहियों को लेकर आ धमका। घीणूँ, भुक्खन, हीरा, लहनू आदि सभी लोगों को लम्बरदार की चौपाल में बुलाया गया। बेंतों की मार की कल्पना से उनके दिल काँप उठे। उनके घरों में स्त्रियों और बच्चों के रोने से कुहराम मच गया। अमर की हालत इतनी अच्छी नहीं थी कि वह लम्बरदार की चौपाल तक जा सकता किन्तु घर पर बैठे रहना भी उसके लिए कठिन था। नीलू और चौधरी रात भर उसकी सेवा में जागते रहे थे। चौधरी को तो सुबह होते ही उसने भेज दिया किन्तु नीलू वहाँ से न हटी। करीब आठ बजे लहनू ने आकर सूचना दी कि लम्बरदार की चौपाल में सब लोगों को बुलाया गया है। अमर वहाँ जाने के लिए तैयार हो गया। नीलू और माँ ने लाख विरोध किया पर वह रुका नहीं। लहनू के साथ-साथ वह धीरे-धीरे चल पड़ा।

इन्स्पेक्टर की लाल आँखों को देखकर सब के चेहरे फक पड़ गए थे। अमर को आते देखकर प्राण जैसे फिर लौट आए। इन्स्पेक्टर ने अमर की ओर देखकर रौब से पूछा, "तुम क्यों आए? तुम्हें तो मैंने नहीं बुलाया?"

अमर ने शान्त भाव से उत्तर दिया, "यही जानने के लिए आया हूँ कि आपने मुझे क्यों नहीं बुलाया?"

इन्स्पेक्टर का पारा गर्म हो गया, "तुम्हारा मतलब क्या है?"

अमर ने घीणूँ के पास बैठते हुए कहा, "मतलब इतना ही है कि मैं समझता हूँ मेरी यहाँ जरूरत है। इस केस के लिए दो ही आदमियों की जरूरत है। एक यशवन्तचन्द और दूसरा मैं। इन्होंने मारपीट कराई है और मेरी वजह से हुई है।"

यशवन्तचन्द बीच में ही चिल्ला पड़ा, "हरिसिंह, असल शैतान की खोपड़ी तो यही है। इसी ने लोगों को भड़काया है। आप नहीं जानते, यह कम्युनिस्ट है। इसके साथ गाँव के और भी पाँच-सात छोकरे हैं। सब मिलकर मीटिंगें करते हैं। हमारे खिलाफ इन लोगों को भड़काते हैं। कल इसी बात पर ये लोग भड़क उठे। मैंने कहा, सरकार के कानून के मुताबिक हमें तीन

चौथाई मिलना चाहिए। लेकिन इस शैतान के भड़काने पर ये एक दाना भी देने के लिए तैयार नहीं हुए।"

सब लोग एक दूसरे की ओर देखने लगे। अमर बोला, "लम्बरदार साहब, फूँक से पहाड़ नहीं उड़ते। आपके इस बेहूदा झूठ से न्याय का आसन नहीं डोल सकता। खलियानों में अनाज वैसा ही पड़ा है। आपके हिस्से की ढेरी और लहनू के हिस्से की ढेरी इस बात का सबूत देगी? यही बात होती तो ये लोग किसकी इन्तजार में अनाज खलिहानों में रहने देते?"

इन्स्पेक्टर साहब के ऊपर इस बात का कोई असर नहीं हुआ। उसने हवलदार की ओर इशारा करके कहा, "इन बदमाश लोगों को पच्चीस-पच्चीस कोड़े लगाओ। और इस शैतान को थाने ले चलो, वहाँ इसे देख लेंगे।"

कोड़ों के नाम से लोग काँपने लगे। अमर ने हवलदार की ओर देखकर कहा, "हिम्मतसिंह, क्या तुम भी बेवकूफ बन गए हो?" हिम्मतसिंह ने गौर से अमर की ओर देखा और पहचान लिया कि उसका सहपाठी अमर ही सामने है। उसने विवशता से अमर की ओर देखा, फिर बोला–

"भैया, हुक्म, हुक्म है।"

अमर बोला, "क्या इसी हुक्मपरस्ती के लिए तुम पुलिस में भरती हुए थे? क्या वह दिन, वह जोश, वे बातें भूल गए? क्या आजाद भारत की पुलिस का कर्मचारी बनकर तुम इसी तरह का अत्याचार करना चाहते थे?"

हिम्मतसिंह का हृदय-परिवर्तन हुआ, इन्स्पेक्टर ने कड़क कर कहा, "देख क्या रहे हो?"

हिम्मतसिंह बोला, "साहब मुझ से यह नहीं होगा?"

इन्स्पेक्टर की आँखें जल उठीं। वह स्वयम् उठकर खड़ा हो गया। लाल-लाल आँखों से हवलदार के पास जाकर बोला, "सूअर के बच्चे, हरामजादे, जानते हो इसका नतीजा क्या होगा?"

हिम्मतसिंह भी तनकर खड़ा हो गया, "देखिए साहब, आपके मुँह से दूसरी बार गाली निकली तो मुझ से बुरा कोई न होगा। आपके हुक्म को मैं हुक्म नहीं मानता हूँ। इसके लिए सरकार जो मुझे सजा देगी उसे मैं कबूल करूँगा, लेकिन उससे पहले आपने मुझ पर हाथ उठाया तो अपनी खैर मत समझिएगा।"

उपस्थित लोगों का कुतूहल बढ़ गया। इन्स्पेक्टर अपने ही अधीनस्थ कर्मचारी से उपेक्षा पाकर तिलमिला उठा। हिम्मतसिंह को वह जानता था, उससे हाथ लगाने का मतलब ही दाँत तुड़वाना है, इस बात का उसे विश्वास था किन्तु वह इस अपमान को सहन नहीं कर सका। स्वयं हाथ में कोड़ा लेकर वह घीणूँ, हीरा आदि की ओर बढ़ा। हवलदार का गुस्सा वह उन पर उतारना चाहता था। हवलदार हिम्मतसिंह दो कदम आगे बढ़कर खड़ा हो गया और बोला, "साहब, पुलिस अत्याचार ढाने के लिए नहीं होती, अत्याचारों से लोगों को बचाने के लिए होती है। मैं भी पुलिस का कर्मचारी हूँ, अगर आपने इन बेगुनाहों पर अत्याचार किया तो मुझे भी अपना फर्ज अदा करना पड़ेगा। ये लोग चोर-उचक्के नहीं हैं और न ही इन्होंने खून किया है। दंगा हुआ है लेकिन इस दंगे के लिए जो जिम्मेदार है उसे आप क्यों नहीं पकड़ते? लम्बरदार

साहब को ले चलिए। और आप इनको भी कसूरवार समझते हैं तो इन लोगों को भी कोतवाली ले चलिए। लेकिन मारने-पीटने का आपको हक नहीं है। खासकर इस केस में"।"

हवलदार की बातों से ही सब-इन्स्पेक्टर का दिल जल रहा था। किन्तु साथ ही उसे यह भय भी हो रहा था कि यदि यहाँ पर मारपीट की तो हवलदार कुछ कर बैठेगा। हो सकता है कि वह कोई ऐसा बयान दे दे जिससे नौकरी भी चली जाए। लोगों को कोतवाली ले जाने से तो लम्बरदार को भी ले जाना पड़ेगा। और वहाँ अगर अदालत में मुकदमा पहुँच गया तो सजा उसे ही होगी। इन सब बातों को सोचकर उसका उत्साह ढीला पड़ गया लेकिन हवलदार के प्रति क्रोध सौ गुना हो गया। उसने सार्जेंट की ओर देखकर कहा, "हवलदार को हथकड़ी डाल कर ले चलो और अमर को भी। यह कम्युनिस्ट है, इसे आजाद छोड़ने से गाँव की शांति को खतरा है।" फिर उसने लोगों की ओर देख कर कहा, इस बार मैं तुम लोगों को छोड़ता हूँ। अगर फिर मुझे कोई शिकायत मिली तो चमड़ी उधेड़ दूँगा।"

ोगों की जान में जान आई लेकिन अमर को पकड़ ले जाने की बात सुनकर सबके चेहरे कुम्हला गए।

अमर ने कहा, "चिन्ता मत करो। मेरा ये कुछ नहीं बिगाड़ सकते। दो-चार दिन में आ जाऊँगा। अदालत के सामने पेश होना पड़ेगा, बस इतनी सी बात है।"

किसी तरह समझा-बुझा कर उसने लोगों को विदा किया।

इन्स्पेक्टर और ुलिस के अन्य कर्मचारी लम्बरदार साहब की दावत खाने के लिए रुक गए। इतने में यह बात गाँव भर में फैल गई कि अमर को पुलिस वालों ने पकड़ लिया है। नीलू और अमर की माँ ने जब यह खबर सुनी तो उनके चेहरे पीले पड़ गए। अमर से मिलने के लिए वे लम्बरदार की चौपाल में आईं। माँ को उदास देखकर अमर ने उसे हिम्मत बँधाते हुए कहा, "माँ, तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मैं किसी बुरे अपराध के लिए नहीं पकड़ा गया हूँ। लोगों की भलाई के लिए अगर मुझे सजा भी हो गई तो भी घबराने की बात नहीं है। अव्वल तो ये लोग मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते और अगर धांधली से इन्होंने कुछ किया भी तो भी इनको इसका फल भुगतना पड़ेगा।"

माँ ने रुद्ध कण्ठ से कहा, "बेटा, लेकिन नाम तो बदनाम हो जाएगा।"

हिम्मतसिंह पास ही हथकड़ी में बँधा खड़ा था। वह बोला, "माता जी, पुलिस के पकड़ लेने भर से नाम बदनाम नहीं होता। आज देश के जितने भी बड़े-बड़े नेता हैं वे पुलिस के अत्याचारों और जेलों की तकलीफें उठाकर ही बड़े बने हैं। अमर भैया के ऊपर कोई इलजाम नहीं है। इन्हें किसी तरह की तकलीफ नहीं होगी। आप देखना, इस घटना से यह गाँववालों का प्यारा बन जाएगा।"

माँ के हृदय को पूरी तरह तसल्ली नहीं मिली। अमर ने नीलू की ओर देखकर कहा, "भाभी, माँ का खयाल रखना। और अब गाँव की जिम्मेवारी आप लोगों पर ही है। कृष्ण भैया से कहना कि काम जारी रखे।"

इन्स्पेक्टर साहब तैयार हो चुके थे, ज्यादा बातचीत नहीं हो सकी। नीलू और लक्ष्मी निराशा के बोझ से दबी हुई वापस आ गईं। थोड़ी देर बाद पुलिस के कर्मचारी अमर और

हिम्मतसिंह को लेकर चल पड़े। गाँव में जिस रास्ते से होकर उन्हें निकलना था उस रास्ते पर पहले से ही लोग जमा थे। वे अमर से मिलने के लिए आए थे। गाँव के दस-बारह लोगों को छोड़कर बाकी सभी स्त्री, बच्चे, बूढ़े वहाँ जमा थे। कृष्ण फूलों का हार लेकर खड़ा था उसके साथियों के हाथ में भी फूल थे। जब पुलिस वाले वहाँ से निकले तो कृष्ण ने आगे बढ़कर फूलो का हार अमर के गले में डालना चाहा, अमर ने कहा, "भैया, यह हार तुम हिम्मतसिंह के गले में डालते तो ठीक रहता।"

हिम्मतसिंह ने इसका विरोध किया, बोला, "नहीं मैं तो अपराधी हूँ। मैंने अनुशासन भंग किया है। अतः इसका हकदार मैं नहीं हूँ।"

सार्जेन्ट ने भी हिम्मतसिंह की बातों का समर्थन किया। कृष्ण ने अमर के गले में फूलों की माला डाल दी। दूसरे साथियों ने उस पर फूल बरसा दिए। पास ही भीड़ में माँ और नीलू को देखकर अमर ने दोनों के पाँव छुए और भीड़ की ओर देखकर नमस्ते की। ज्यों ही पुलिस अमर को लेकर आगे बढ़ी लोगों में कोलाहल मच गया। सभी लोग उनके पीछे-पीछे चलने लगे। करीब एक मील दूर तक सौ-डेढ़ सौ लोग उनके पीछे चलते रहे। आसपास के गाँवों में भी लोग यह तमाशा देखने के लिए जमा होते गए।

इन्स्पेक्टर बार-बार लोगों को डंडा दिखाकर भाग जाने के लिए कह रहा था। लेकिन लोग साथ-साथ चलते ही रहे। आखिर सड़क आई। सब-इंन्स्पेक्टर ने एक ट्रक को रुकवाकर अमर और हिम्मतसिंह को बिठा दिया। खुद वह अगली सीट पर जा बैठा। इस तरह भीड़ से उनका पीछा छूटा।

ट्रक के चले जाने के बाद लोग बड़ी देर तक खड़े होकर आपस में बातें करते रहे। आखिर कृष्ण ने उन लोगों से कहा, "आप लोग अपने घरों को चले जाइए। अमर के सम्बन्ध में किसी तरह की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। मैं और घीणूँ अभी पुलिस चौकी जा रहे हैं और अमर भैया को जमानत पर छुड़ाकर अपने साथ ले आएँगे। जहाँ तक आगे मुकदमे की बात है वह हमारे ही हक में है।"

लोग भविष्य के सम्बन्ध में अपने-अपने अनुमान लगाते हुए चले गए और कृष्ण घीणूँ को लेकर सीधे संगतराम के पास पहुँचा। संगतराम बैजनाथ में गल्ले के व्यापारी थे और दूर के रिश्ते के कृष्ण के मामा लगते थे। कन्ट्रोल की बदौलत दो-तीन सालों में ही उन्होंने इतना कमा लिया था कि वह बैजनाथ के व्यापारियों को अब मनमाना नचा सकते थे। पैसे के साथ ही उनके हाथ और भी कई शक्तियाँ आ गई थीं। तहसील और जिले के बड़े-बड़े अधिकारियों तक उनकी पहुँच थी। उनको साथ लेकर जाने में अमर की उस दिन जमानत पर रिहाई निश्चित ही थी।

संगतराम के साथ घीणूँ और कृष्ण थाने में आए। लेकिन उन्हें यह जानकर निराशा हुई कि थानेदार साहब किसी जरूरी काम पर बाहर चले गए हैं और उनकी गैर-हाजिरी में उनकी जमानत नहीं ली जा सकती। संगतराम हैड कांस्टेबल से मिला किन्तु हैड कांस्टेबल ने अपनी मजबूरी बताते हुए कहा, "शाहजी, यह काम तो थानेदार साहब ही कर सकते हैं।"

"लेकिन थानेदार साहब आएँगे कब?" संगतराम ने कुछ आतुरता के स्वर में पूछा।

"बस, कल शाम को आ जाएँगे।" हैड कांस्टेबल बोला।

कृष्ण की ओर देखकर संगतराम बोला, "फिर तो आज कुछ नहीं हो सकता।" कृष्ण को सारे शरीर में गर्मी सी महसूस हो रही थी, "इसका मतलब अमर भैया रात भर पुलिस की हिरासत में रहेंगे।"

"जी हाँ।" हैड कांस्टेबल ने व्यंग्य से उसकी ओर देखकर कहा।

कृष्ण बोला, "यह क्या तमाशा है! थानेदार बाहर गया है तो उसकी जगह पर काम करने वाला कोई दूसरा आदमी भी तो होगा। इसका मतलब है कि जिस आदमी पर अपना गुस्सा उतारना चाहे उसे किसी झूठ-मूठ के शक पर पकड़ ले और फिर थानेदार बाहर चला जाए जिससे उसकी जमानत न हो सके और बिना किसी कुसूर के उसे पुलिस की हिरासत में रहना पड़े। गरीब लोगों पर रौब जमाने का बड़ा अच्छा तरीका है आप लोगों के पास!"

अंग्रेजों के जमाने का हैड कांस्टेबल एक छोकरे के मुँह से यह उद्दंडता भरी बातें कैसे सुन सकता है? आँखें तरेर कर उसने कृष्ण को देखा और बोला, "तुम हमें कानून सिखाने आए हो? एक झापड़ लगेगा तो सारी होशियारी हवा हो जाएगी।"

हैड कांस्टेबल को ठेस लगी और उसकी प्रतिक्रिया हुई तो ऐसे व्यवहार में जिसका एकमात्र लक्ष्य प्रश्नकर्ता का पाशविक दमन था। संगतराम हैड कांस्टेबल का यह रूप देखकर कुछ सहम गया। उसने कृष्ण को ही डाँटते हुए कहा, "तुम छोकरों को बात करने की तमीज भी नहीं है। क्या हाकिमों से इस तरह सवाल-जवाब किए जाते हैं? फिर हैड कांस्टेबल की ओर देखकर बोला, "अजी सार्जेंट साहब, इन छोकरों की बातों पर गुस्सा नहीं करते। नादान हैं। अभी-अभी स्कूल छोड़ा है......"

लेकिन कृष्ण गुस्से से काँप रहा था। हैड कांस्टेबल की झापड़ देने की धमकी ने उसके दिल में कुछ ऐसे भाव भर दिये थे कि वह उसका गला दबोच लेना चाहता था। उसने सोचा—"क्या यह दूषित दिल-दिमाग वाली पुलिस किसी आजाद देश में शान्ति-व्यवस्था कर सकती है? जनता के प्रति सहानुभूति दिखाने के बदले उसे डराने-धमकाने और हर जायज और नाजायज तरीके से उन पर आतंक जमाने वाले इस संगठन की उपयोगिता क्या है? करोड़ों रुपये इस संगठन पर खर्च होते हैं, और बदले में नेताओं द्वारा इकट्ठी की गई भीड़ की व्यवस्था करने के अतिरिक्त और यह क्या करता है? अपराधों की संख्या हर साल बढ़ती जा रही है। चोरियाँ, डाके, खून, अपहरण और न जाने कितने बीभत्स अपराधों की बाढ़ सी समाज में आ गई है। अपने मामा संगतराम के प्रति भी उसे क्रोध आ रहा था—'इन्होंने भी उल्टा मुझे ही झाड़ना शुरू किया। आज तक हाकिमों और अफसरों के आगे कुत्तों की तरह दुम हिलाने से इन लोगों की आत्मा मर गई है। इनके लिए जीवन की सब से बड़ी कला खुशामद और रिश्वत ही है।' उसने मामा की ओर देखकर कहा, "मामा जी, बेशक मैंने अभी-अभी स्कूल छोड़ा है लेकिन स्कूल में मैं यह अच्छी तरह सीखकर निकला हूँ कि जनता और पुलिस के बीच क्या सम्बन्ध हैं। मैं अपने फर्ज को भी पहचानता हूँ और पुलिस के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में भी मुझे जानकारी है। यह मुझे झापड़ मारकर सबक सिखाना चाहता है तो मैं यहाँ खड़ा हूँ और अपनी बात को दोहराता हूँ कि यह पुलिस जनता की सहायता के लिए नहीं है, उसे डराने धमकाने के लिए, उस पर रौब गाँठने

के लिए है।"

हैड कांस्टेबल इस बार गुस्से को पी गया। एक तो कृष्ण के निर्भीक प्रतिकार ने उसका हौसला पस्त कर दिया था, दूसरे संगतराम की ताकत को जानते हुए वह उसके भानजे के साथ ऐसा-वैसा व्यवहार करके खतरे में नहीं पड़ना चाहता था। उसने रजिस्टर उठाया और बाहर जाने लगा। जाते-जाते संगतराम की ओर देखकर बोला, "देखा आपने, अभी दूध के दाँत गिरे नहीं और हम पर रौब गाँठने चला है।" फिर एक पैनी दृष्टि कृष्ण पर डालकर वह बाहर निकल गया। कृष्ण उसको बाहर जाते देखता रहा। संगतराम ने उठते हुए कहा, "आज कुछ नहीं होगा। कल देखा जाएगा।" कृष्ण बोला, "आप जाइए मामा जी, मैं आज अमर को साथ लेकर ही आऊँगा। मैं डिप्टी कमिश्नर के पी०ए० को टेलीफोन करता हूँ। वह अमर का दोस्त है। अभी इन लोगों का दिमाग ठिकाने लग जाएगा।"

उसकी बात कमरे में खड़े दो कांस्टेबलों ने सुन ली किन्तु उन्होंने उसमें कोई रुचि नहीं ली। कृष्ण ने एक सिपाही से पूछा, "हवलदार, अमर को कहाँ रखा है? क्या मैं उससे मिल सकता हूँ?"

सिपाही ने कहा, "हाँ-हाँ, मिल क्यों नहीं सकते हैं? आप सामने के बरांडे में चले जाइए। आखिरी कमरा है।" कृष्ण और घीणूँ उस ओर जाने लगे तो संगतराम ने कहा, "अच्छा भाई मैं चलता हूँ। ये लोग जमानत के लिए मान जाएँ तो मुझे बुला लेना।"

कृष्ण और घीणूँ अमर से मिले। अमर प्रसन्न था। उसके साथ हिम्मतसिंह भी उस कोठरी में बन्द था। कृष्ण ने बताया कि जमानत का बन्दोबस्त नहीं हो रहा है। कहते हैं थानेदार साहब बाहर चला गया है, कल शाम तक आएगा, उसकी गैर-हाजिरी में जमानत पर उसे नहीं छोड़ा जा सकता।"

हिम्मतसिंह बोला, "यह सब इनकी बदमाशी है। इसी तरह लोगों को तंग करते आए हैं। सारी बात तो यह है कि तुम थानेदार के ससुर के दुश्मन हो, इसलिए इस थाने में तुम्हारे लिए कोई सहानुभूति और कोई न्याय नहीं है। इसी में क्यों, अगर तुम डी०एस०पी० के पास फरियाद लेकर जाओगे तो वहाँ भी कुछ नहीं होगा।"

कृष्ण ने जब प्रकाश को टेलीफोन करने का अपना इरादा बताया तो अमर बोला, "इसकी कोई जरूरत नहीं है। किसी की सिफारिश का, किसी के रसूख और रुतबे का सहारा लेकर न्याय प्राप्त किया तो उसमें क्या मजा है? न्याय हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इसे भीख के रूप में या एहसान के रूप में लेना मैं पसन्द नहीं करूँगा। यह मनमानी करना चाहते हैं, मुझ पर झूठा केस बनाना चाहते हैं, मुझे जेल भिजवाना चाहते हैं। जो कुछ ये करना चाहते हैं कर लें। अगर इस देश में कानून और न्याय का शासन है तो ये लोग मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। तुम घर जाओ। माताजी को तसल्ली देना। कल-परसों तक ये लोग मुझे मजिस्ट्रेट के सामने खड़ा करेंगे। उसने मुझे जमानत पर छोड़ दिया तब तो अच्छा, नहीं तो तुम्हें कुछ समय तक मेरे घर की जिम्मेवारी सँभालनी पड़ेगी।" फिर अमर हिम्मतसिंह की ओर देखकर बोला, "तुम्हारे घर पर कुछ कहना हो तो कृष्ण कह आएगा।"

हिम्मतसिंह हँसकर बोला, "मेरे घर में है ही कौन, माँ थी, वह पिछले साल स्वर्ग सिधार

गई। अब चाचा है सो 'उसके लिए तो खुश-खबरी ही होगी।"

कृष्ण और घीणूं के वहाँ से चले जाने के कुछ देर बाद ही थानेदार जोरावरसिंह कहीं से आ गया। हैड कांस्टेबल ने उसे सारी बातें कह सुनाईं तो वह मुस्कराकर बोला, "खैर, संगतराम से पीछा छूट गया, यह अच्छा हुआ, नहीं तो उसकी बात को टालना मेरे लिए भी मुश्किल हो जाता।"

कृष्ण को सब से बड़ा डर इस बात का था कि कहीं अमर की गिरफ्तारी का माँ के स्वास्थ्य पर बुरा असर न पड़े इसलिए वह उसी दिन उन्हें अपने घर ले आया। लक्ष्मी ने इसका विरोध किया किन्तु कृष्ण उसे किसी भी हालत में अकेला छोड़ने के लिए तैयार न हुआ। लक्ष्मी हँसकर बोली, "तुमने मुझे क्या समझ रखा है? क्या मैं मोम की बनी हुई हूँ, जो जरा-सी आँच लगने पर गल जाऊँगी?" किन्तु कृष्ण उसकी कोई भी बात सुनने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने बहाना बनाया कि उसे अमर को छुड़ाने के लिए दौड़-धूप करनी पड़ेगी। शायद इस सिलसिले में उसे कई रातें बाहर रहना पड़े। उस हालत में मेरी माँ को अकेला रहना पड़ेगा। आप दोनों साथ रहें तो ठीक ही रहेगा।" लक्ष्मी को आखिर उसकी जिद पूरी करनी ही पड़ी।

दूसरे दिन कृष्ण और अमर की माँ गाँव के सरपंच दयाराम के पास गए। दयाराम गाँव का आदिपंच था। अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान छोड़ने से कुछ साल पहले जब पंचायतों के पंजर खड़े किए थे तो बाप-दादाओं की रईसी और इज्जत-सम्मान को देखते हुए सरपंची का बोझ दयाराम के कन्धों पर ही डाला गया था। उस समय भी वे सरपंची लेने के लिए तैयार नहीं थे किन्तु वैसे ही जैसे आज उसे छोड़ने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। जब-जब नई पंचायत बनने के अवसर आए उन्होंने सरपंची से दस्त-बरदार हो जाने का निश्चय सब लोगों पर प्रकट किया किन्तु आखिर गाड़ी उन्हीं को हाँकनी पड़ती थी। बात यह थी कि वे सब पर यह प्रकट करने का प्रयत्न करते थे कि उन्हें सरपंची का सिर-दर्द नहीं चाहिए किन्तु यह सब इसलिए कि लोग उनके काम की नुक्ताचीनी न कर सकें। वे जानते थे कि सरपंची का काम उनके सिवा और कोई नहीं कर सकता और उनके सरपंची छोड़ते ही पंचायत खत्म हो जाएगी तथा गाँव किसी और पंचायत के साथ जुड़ जाएगा। इन सब कारणों से पंचायत उनकी पुश्तैनी जायदाद-सी बनी हुई थी। वैसे नाममात्र को चार पंच और भी होते थे लेकिन उन्हें कभी किसी ने बैठकों में आते नहीं देखा। फैसले दयाराम ही करता था। बस हाजिरी और फैसले की सहमति के रूप में दूसरे पंचों के घर रजिस्टर भेजकर उनके दस्तखत करा लिये जाते थे। जहाँ तक फैसलों का सम्बन्ध है दयाराम जी के पंचायत-राज की सब से बड़ी विशेषता थी कि उन्होंने कभी किसी केस का फैसला नहीं किया। उनके हर मुकदमे का अन्त राजीनामे में होता था भले ही किसी ने सनक में ही किसी का घर जला डाला हो या किसी की फसल बर्बाद कर डाली हो। सब बीमारियों की रामबाण औषध उनके पास यही थी कि वे पीड़ित पक्ष के आगे अदालत के खर्च का लम्बा-चौड़ा ब्यौरा देकर

कहते कि अगर मामला आगे गया तो घर-बार बिक जाएगा। इसलिए यही अच्छा है कि वह अपने विरोधी को क्षमा कर दे और सारी बात भगवान् पर छोड़ दे। जिले के पंचायत अधिकारी उनसे बहुत खुश थे और उनकी लोकप्रियता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे क्योंकि उनके हाथ के सभी मुकदमों का अन्त शान्ति और सद्भावना में होता था। लेकिन यह तथाकथित शान्ति सद्भावना न्याय के कितनी प्रतिकूल होती है इसे समझने की उन भले अधिकारियों ने कभी आवश्यकता नहीं समझी।

देश की आजादी के बाद पंचायतों के रंगरूप में परिवर्तन हुए। विकास योजनाओं की अनेक ज़िम्मेवारियाँ पंचायतों को सौंपी गईं। उनके पास जंगलों का और भूमि का राजस्व भी आने लगा जिसके बल पर कई पंचायतों ने ग्राम-विकास के कई कार्य कर लिए किन्तु इस पंचायत ने सिवाय राजीनामे कराने के कोई काम नहीं किया। जब लोग दयाराम जी का ध्यान इन बातों की ओर खींचते थे तो वे कलम और रजिस्टर आगे बढ़ाकर कहते, "लो भाई, तुम सम्हाल लो इस पंचायत को, फिर जो मरजी आए करो। मैं कितनी बार कह चुका हूँ कि मुझ से यह काम नहीं चलेगा। मुफ्त में सिर-दर्द। आए दिन अफसर लोगों की धौंस, बेकार का खर्च उनकी आवभगत में।" लोग चुप हो जाते और बात आगे नहीं बढ़ती।

इस बार नये पंचायत कानून की बात उड़ रही थी। सुनते थे सरकार पंचायतों को दीवानी-फौजदारी सभी तरह के फैसलों के अधिकार दे रही है। गाँव का सारा राज्य-शासन पंचायतें चलाएँगी और अपने क्षेत्र में उन्हें पूरे अधिकार प्राप्त होंगे जिनमें सरकारी अफसर भी हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे। शासन की शक्ति को हथियाने के लक्ष्य से इस बार पंचायत के चुनावों की सब जगह जोर-शोर से तैयारियाँ हो रही थीं। इस गाँव के किसानों और हरिजनों के तबके में सरपंच के लिए अमर का नाम लिया जा रहा था। अमर और उनके साथियों ने इरादा कर लिया था कि गाँव में सच्चे लोकतन्त्र का निर्माण करेंगे।

दयाराम के कान इन बातों को सुनते-सुनते पक गए थे। यद्यपि वह लोगों से यही कहते थे कि मैं पंचायत का झंझट खुद ही छोड़ना चाहता हूँ किन्तु इस बार उन्हें वास्तव में शंका होने लगी थी कि उनकी स्थायी गद्दी छिन जाएगी। भीतर ही भीतर वे जलभुन गए थे। उस पर लम्बरदार और नाममात्र के पंच यशवन्त ने उनके कान भर दिए थे कि अमर और उनके दोस्त उनके खिलाफ लोगों में गंदा प्रचार करते हैं।

अमर की माँ ने दयाराम के आगे अपनी शिकायत रखी, "सरपंच जी (पुराने रुतबे के कारण गाँव के छोटे-बड़े उन्हें सरपंच ही कहते थे) आपके राज में यह क्या अँधेर हो रहा है? मेरे लड़के ने कोई कसूर नहीं किया, कोई मार-पीट नहीं की, फिर भी पुलिस वाले उसे पकड़ कर ले गए और आपने एक भी शब्द नहीं कहा।"

दयाराम ने साधु-महात्मा की तरह द्रवीभूत होकर कहा, "वैदनी जी, मुझे कल रात भर नींद नहीं आई। सच पूछो तो मुझे यह विश्वास ही नहीं हुआ कि थानेदार अमर को पकड़कर ले गया है। मैं कल यहाँ था नहीं, शाम को घर आया तो पता चला। यहाँ होता तो क्या पुलिस के हाथ में यह मामला जाता? लेकिन वैदनी जी, अब बात मेरे हाथ से निकल चुकी है। थानेदार साहब ने खुद मौके पर तफतीश करके केस अपने हाथ में ले लिया है। अब यह पुलिस केस बन

चुका है। पंचायत इसमें कुछ नहीं कर सकती।"

कृष्ण खड़ा-खड़ा उसकी बातें सुनता रहा। उसकी इच्छा हुई कि उससे पूछे कि तुम्हारी पंचायत ने पहले भी कुछ किया है जो अब करेगी ? लेकिन वह मन पर काबू रखकर चुप रहा। लक्ष्मी ने फिर कहा—

"लेकिन सरपंच जी, हम लोगों को तो आप का ही आसरा है। आप पंचायत के मालिक हैं, गाँव के मालिक हैं, आपकी बात को सरकार भी मान सकती है। अगर आप यहाँ की सच्ची रिपोर्ट सरकार को भेज दें तो अमर छूट सकता है। आप तो जानते हैं कि मेरे बेटे का इसमें कोई कसूर नहीं है।"

दयाराम गम्भीरता से बोला, "हाँ, हाँ ! वैदनी जी, भला अमर को मुझ से ज्यादा और कौन जानता है। मैं आँख बन्द कर यह लिखने के लिए तैयार हूँ कि अमर बेकसूर है। लेकिन वैदनी जी, मैं कल गाँव में था ही नहीं और थानेदार साहब खुद मौके पर तफतीश कर गए हैं। अब मेरा लिखना नहीं बनता। हाँ, हमारे समधी का लड़का तहसील में काम करता है। आप कहें तो मैं उससे सिफारिश करा दूँगा।"

कृष्ण बोला, "सरपंच साहब, इस सिफारिश को आप अपने किसी रिश्ते-नातेदार के लिए रख छोड़ें। हमें न्याय चाहिए, किसी का एहसान या भीख नहीं। चलो चाची !" और वह लक्ष्मी का हाथ पकड़ कर बाहर निकल आया।

उसके बाद कृष्ण ने अमर को छुड़ाने के लिए काफी दौड़-धूप की। वह जिले के कई अफसरों से मिला। लोकसभा और विधानसभा के सदस्यों से मिला, लेकिन कोई भी उसे न्याय नहीं दिला सका। थानेदार ने जो कुछ अपनी रिपोर्ट में लिख दिया, वह पत्थर की लकीर की तरह सत्य सिद्ध हो गया। अमर को डी०आई०आर० में बन्द कर दिया गया।

जिले के कई अधिकारियों से भेंट करने के दौरान कृष्ण को कई अनुभव हुए। उसने देखा कि छोटा-बड़ा हर अधिकारी पाप और भ्रष्टाचार में लिप्त है। अपने कर्त्तव्यों के प्रति सच्ची लगन किसी में नहीं है। शायद दुर्भाग्य से वह ऐसे ही व्यक्तियों से मिल सका जिनके लिए सरकारी अधिकार दूसरों को दबाने, दूसरों पर अपनी श्रेष्ठता लादने का साधन-मात्र था। सभी अफसर पाप और भ्रष्टाचार में सहभागी थे इसलिए एक की गलती और दुराचार का दूसरा आँख मूँदकर समर्थन करता था। कृष्ण ने देखा कि इन अधिकारियों से कुछ काम कराया जा सकता है तो इनके आगे गिड़गिड़ा कर, इनके पाँव पकड़कर इनके अहं में हवा भरकर इन्हें माई-बाप कहकर। इन्हें गरीब लोगों को पैरों के पास रेंगते देखने की हविस है। इससे इन्हें रोम के नीरो की तरह पाशविक आनन्द मिलता है। इस आनन्द के लिए वे हर काम कर सकते हैं। लेकिन जहाँ इन्हें उनके कर्त्तव्यों की ओर ध्यान दिलाकर काम करने के लिए कहा जाता है वहाँ इनके अहं को ठेस पहुँचती है और वे उग्र हो उठते हैं। वे जनता पर सच्चे अर्थों में शासन करते हैं जनता पर आतंक का सिक्का जमाना उनकी सफलता है।

और इन सब कारणों से कृष्ण को कहीं सहायता नहीं मिल सकी ! क्योंकि कृष्ण किसी के आगे गिड़गिड़ाना नहीं चाहता था, किसी के आगे हाथ नहीं जोड़ना चाहता था। उसने अमर के इस निश्चय का अक्षरशः पालन किया कि "हमें न्याय की भीख माँगनी है, न्याय का अधिकार

प्राप्त करना है। अगर हमारे देश की न्याय देने वाली मशीनरी दूषित है। यदि अधिकारों की रक्षा करने वाले अधिकार हड़प करने वाले हैं तो यह हमारा दुर्भाग्य है—दुर्भाग्य नहीं हमारा प्रमाद है, हमारा निकम्मापन है और उसका प्रायश्चित्त करने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।'

जनता का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुने गए विधायकों से उसे और भी निराशा हुई। संयोग से सभी विधायक सत्तारुढ़ दल के टिकटों पर चुने गए थे और इसलिए अपने दल द्वारा चालित शासन की मशीनरी का अन्ध-समर्थन करना वे अपना पुण्य कर्त्तव्य समझते थे। इसके अतिरिक्त वे शासनतन्त्र के उन अधिकारियों के कई बातों के लिए कृपा पात्र थे। उदाहरण के लिए वोटरों और वोट-प्रचारकों के साथ किए गए वायदों की पूर्ति के लिए चुनाव में हुई धनहानि की प्रतिपूर्ति के रूप में परमिट आदि लेने-दिलाने के लिए और अपने पुराने दुश्मनों के अभिमान को खण्डित करने के लिए वे उन्हीं अधिकारियों के कृपाकांक्षी थे।

कृष्ण का सारा उत्साह क्षीण पड़ गया। एक घोर निराशा ने उसके मस्तिष्क को जकड़ लिया। जीवन की इतनी सारी विद्रूपताओं का साक्षात्कार उसने पहले-पहल ही किया था। अमर से एक तो उसकी भेंट ही बड़ी कठिनता से होती थी फिर समय इतना कम होता था कि दोनों खुलकर इन समस्याओं पर विचार नहीं कर सकते थे। एक समाचार-पत्र के सम्पादक को भी उसने पत्र लिखा था जिसमें इस अंन्याय की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने की प्रार्थना की गई थी। यह पत्र उस समाचार-पत्र में छपा भी किन्तु उसका असर कुछ नहीं हुआ। कुछ लोगों ने इस पत्र को पढ़ा होगा और क्षण भर उस पर सहानुभूति-पूर्वक सोचकर उसे भुला दिया होगा। आखिर इस तरह की बातें इस युग में नई तो नहीं हैं। हर रोज इस तरह की कितनी वारदातें होती हैं। समाचार-पत्र पढ़ने वाले इन बातों के अभ्यस्त हो गए हैं और जिस तरह बीमारी के कीटाणुओं के सतत सम्पर्क में आने के कारण शरीर उस बीमारी से 'इम्यून' बन जाता है, उसी तरह अन्याय, भ्रष्टाचार और भीषण अपराधों का प्रभाव आज के मानव-मस्तिष्क पर नहीं के बराबर पडता है।

इन कटु अनुभवो ने कृष्ण के स्वभाव को कुछ चिड़चिड़ा बना दिया था। इसे बात-बात पर गुस्सा आ जाता था। घर पर माँ ने शादी के सम्बन्ध में एक दिन कहा था तो इसने बड़ी रुखाई के साथ उत्तर दिया था कि शादी के बारे में सोचने की न मुझे अभी फुर्सत है और न इच्छा। माँ ने उसकी विवशता को समझते हुए पंडित नित्यानन्द को कहला भेजा था कि अमर के वापस घर आने के बाद ही शादी होगी। इस तरह शादी की तारीख और आगे बढ़ गई थी।

आर्थिक दृष्टि से गदियारी गाँव की स्थिति उस पहाड़ी इलाके के और गाँवों से विशेष भिन्न नहीं थी। दो-तीन परिवारों को छोड़कर बाकी के पास इतनी जमीनें थीं कि सात-आठ या दस महीने के लिए अनाज आ जाता था। मालिको की भी यही स्थिति थी और मजदूरों की भी। एक-तीन के हिसाब से अनाज के बटवारे से मालिकों को काफी नुकसान होने वाला था। इसलिए

वे इस कानून का विरोध करने के लिए हर प्रकार का गठबंधन करने को तैयार थे। किन्तु इससे स्थिति सुधरने की भी आशा कम ही थी। कारण यह था कि सारी अर्थव्यवस्था शहरों से आने वाले मनिआर्डरों पर टिकी हुई थी। जिस घर के जितने लोग बाहर शहरों में नौकरियाँ करते थे उनसे उनकी स्थिति उतनी ही अच्छी समझी जाती थी और शायद होती भी थी। नकद पैसा जो तीन-चार महीने का अनाज खरीदने के लिए तथा जिन्दगी की और जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक था, केवल नौकरी के माध्यम से ही आ सकता था। जमीन को छोड़कर दूसरे उद्योग धन्धे थे नहीं और अनाज बेचकर नकदी हासिल करने की स्थिति में चन्द लोग ही थे। इसीलिए प्रत्येक परिवार की कोशिश होती थी कि लड़का कमाने लायक होते ही कहीं नौकरी करने लगे। सवर्ण परिवारों के लड़के बड़े होते ही गाँव छोड़कर कमाने लगते थे। लेकिन हरिजन परिवारों के लड़के अक्सर माँ-बाप के साथ खेतों में ही काम करने लगते थे। आजादी के बाद इस स्थिति में कुछ बदलाव आया था। हरिजनों के कुछ लड़के सेना में भरती हो गए थे लेकिन अधिकतर ऐसे थे जो स्कूल-शिक्षा न मिलने के कारण कहीं नौकरी पर नहीं लग पाते थे और खेतों में ही काम करने लगते थे। अनाज का तीन चौथाई मिलने पर इन परिवारों की अधिक से अधिक साल भर की अनाज की जरूरत पूरी हो सकती थी (हालाँकि उसमें भी संदेह है) लेकिन शादी-ब्याह, तीज-त्योहार और बीमारी के दिनों में नकद पैसे की जरूरत को पूरा करने के लिए उन्हें कर्ज की जरूरत तो पड़ती ही थी। इसके लिए वे यशवन्तचन्द, पंडित दयाराम या दूसरे नौकरी-जीवी परिवारों पर पूरी तरह आश्रित थे। सरकार ने कर्जों की सुविधा के लिए एक पंचायती बैंक भी खोल रखा था लेकिन उससे पंचों और उनके रिश्तेदारों को छोड़ कर किसी को जरूरत के वक्त कभी कर्ज नहीं मिला।

इन सब कारणों से दूसरों की जमीन काश्त करके गुजारा करनेवाले हरिजन तथा अन्य परिवार चाहते हुए भी यशवन्तचन्द, पंडित दयाराम और दूसरे नौकरी-पेशा लोगों का विरोध नहीं कर सकते थे। इसीलिए शायद घीणूँ, हीरा और लहनू को छोड़कर कोई अमर के पक्ष में गवाही देने के लिए भी आगे नहीं आए। अमर उनकी इन मजबूरियों को जानता था इसलिए उसे इस बात का कोई मलाल नहीं था।

जमीन के मालिकों और मजदूरों के बीच झगड़े, मारपीट की वारदातें अब कोई नई चीज नहीं रह गई थीं। आए दिन इस तरह की वारदातें होती थीं और उनकी खबरें पंजाब तथा दिल्ली के समाचार-पत्रों में भी कभी-कभी छपती थीं। कभी-कभी राज्य की विधान सभा में कोई सदस्य प्रश्न भी पूछ लेता था और उसके उत्तर में सरकार बड़े जोश के साथ बयान देती थी कि वह मजदूरों, काश्तकारों के अधिकारों की रक्षा के लिए और देश में समाजवाद लाने के लिए दृढ़ संकल्प है। विडम्बना यही थी कि सरकार की नीति तो मजदूरों और काश्तकारों के हक में थी लेकिन व्यवस्था उनके खिलाफ थी। अक्सर मालिक-मजदूरों के झगड़ों का अन्त या तो मालिकों के हक में होता था या उनके सुभीते के राजीनामे में।

आसपास के इलाके में शायद यह पहला केस था जिसमें एक आदमी को डी०आई०आर० में बन्द कर दिया था। इसलिए इसने बहुत से लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। इस केस के महत्त्वपूर्ण बनाने का एक कारण यह भी था कि जिस व्यक्ति को सजा हुई थी उसके बारे में

घूसखोर पुलिस अफसरों और दूसरे सरकारी अफसरों को छोड़कर हर आदमी जानता था कि उसने अपनी जान का जोखिम उठाकर मारपीट को रोका था। इसके अलावा दूसरा कारण यह भी था कि जान-पहचान होते हुए भी उसने किसी तथाकथित बड़े आदमी की सिफारिश के लिए कोशिश नहीं की थी। लोगों की नजरों में वह बेगुनाह था लेकिन कानून की नजरों में एक खतरनाक आदमी था।

विधानसभा में इसे विरोधी दल के एक सदस्य ने उठाया जो पिछले चुनावों में उस क्षेत्र से एक भूतपूर्व मंत्री को हराकर चुना गया था। हरिजनों और गरीब वर्गों में लोकप्रिय होने के कारण उसका दबदबा था। भाषण-कला में भी वह निपुण था। शासक दल के कुछ सदस्यों ने भी उसका समर्थन किया। शासक दल के नेताओं को चिन्ता हुई कि इस केस का पंचायत के चुनावों पर और बाद में आम चुनावों पर बुरा असर पड़ सकता है। मंत्री महोदय ने अपने दल-बल सहित गदियारी गाँव का निरीक्षण करने का इरादा प्रकट किया। कार्यक्रम तैयार हुआ और उसकी सूचना सभी सम्बन्धित अधिकारियों को भेज दी गई। उनके दौरे की खबर ने सरकारी मशीनरी में ग्रीज का काम किया। विकास-खंड अधिकारी ने अपनी फाइलों में दस साल पहले मंजूर हुई एक स्कीम को ढूँढ निकाला जिसमें तीन मील दूर एक टैंक बनवाकर पानी की नाली गाँव में पहुँचाने की बात थी। लोक निर्माण अधिकारियों के पास गाँव तक सड़क बनाने का प्रस्ताव अमर और उसके साथियों ने भेजा था। अभी तक उस पर कोई कार्रवाई नहीं हुई थी। मंत्री महोदय के दौरे की खबर सुनकर सड़क का सर्वे करने के लिए उस विभाग के दो-तीन लोग आ गए। इनके अतिरिक्त कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने भी मंत्री महोदय की नजरों में आने के लिए दौड़-धूप शुरू कर दी।

सब से पहले कांग्रेस पार्टी का गाँव में एक जलसा हुआ। उस इलाके के सब से सक्रिय कांग्रेस कार्यकर्ता श्री बसन्तलाल ने लंबरदार श्री यशवन्तचन्द और पंडित दयाराम के साथ हरिजनों की बस्ती में जाकर सब को जलसे में आने का निमन्त्रण दिया। पंडित दयाराम की अध्यक्षता में हुई सभा में जोरदार भाषण हुए और गाँव की ओर से मंत्री महोदय के आगे रखे जाने के लिए माँग-पत्र का मसौदा तैयार किया गया। सभा में बी०डी०ओ० साहब को भी बुलाया गया था जिन्होंने सूचना दी कि गाँव में पानी की नाली पहुँचाने की स्कीम मंजूर हो गई है और जल्दी ही उस पर काम शुरू हो जाएगा। यशवन्तचन्द ने सड़क की कमी का जिक्र किया और कहा कि गाँव वाले श्रमदान करें तो दस दिनों में गाँव तक सड़क बन सकती है और मन्त्री जी कार में बैठकर आ सकते हैं। उन्होंने श्रमदान करने वालों को सुबह-शाम दो बार चाय पिलाने का बीड़ा उठाया। पंडित दयाराम ने अपनी तरफ से चाय के साथ बूँदी की व्यवस्था करने का वचन दिया। सभा ने तालियों की गड़गड़ाहट के साथ उन दोनों का अभिनन्दन किया। मौके का फ़ायदा उठाकर श्री बसन्तलाल ने लोगों से अपील की कि वे अधिक से अधिक संख्या में कांग्रेस के सदस्य बनें क्योंकि यही एक संस्था है जो लोगों की भलाई के काम में लगी हुई है। उनकी अपील के उत्तर में सब से पहले मियाँ यशवन्तचन्द ने सदस्यता का फार्म भरा। उनकी देखा-देखी पंडित दयाराम और दूसरे लोगों ने भी फार्म भरने शुरू किए। देखते ही देखते वहाँ कांग्रेस के चालीस नये सदस्य बन गए। शेष लोगों ने भी जल्दी ही सदस्य बनने का आश्वासन दिया। गाँव

में विधिवत् कांग्रेस की शाखा खुल गई। लोगों ने एक स्वर से मियाँ यशवन्तचन्द को उसका अध्यक्ष और पंडित दयाराम को सेक्रेटरी बना दिया।

दूसरे दिन से श्रमदान से सड़क बनाने का काम शुरू हो गया। चौकीदार को भेजकर पंचायत का हुक्म सब को बता दिया गया कि प्रत्येक घर से एक आदमी सड़क बनाने के लिए आएगा और यदि न आ सके तो उस घर से दो रुपये जुर्माना वसूल किया जाएगा। सब घरों से एक-एक आदमी काम पर आया। जिन घरों में मरद नहीं थे उनसे बच्चे आए या औरतें आईं। आते कैसे नहीं? सरपंच साहब का हुक्म, लम्बरदार साहब का हुक्म, बी०डी०ओ० साहब और ओवरसियर साहब का हुक्म था। इतने साहबों का हुक्म न मानकर कोई श्रमदान करने कैसे नहीं आ सकता था।

आठ-दस दिनों तक सड़क का काम चलता रहा। एक अपूर्व उत्साह की लहर गाँव में दिखाई पड़ी। पक्की सड़क से लेकर गाँव के बीच तक डेढ़ मील की सड़क दस दिनों में बनकर तैयार हो गई। मन्त्री महोदय के स्वागत के लिए यह एक बहुत बड़ा काम था।

मन्त्री महोदय निश्चित दिन एक घण्टे के लिए गाँव में आए। सरपंच साहब के हुक्म पर सब लोग अपने खेत-खलियानों का काम छोड़कर दस बजे से ही गाँव के बीच के मैदान में जमा हो गए थे। सरकारी अफसरों की चहलकदमी भी सुबह से होने लगी थी। डंडे हाथ में लिये पुलिस के सिपाही भी मौजूद थे। मंत्री के भाषण के लिए चार-पाँच फुट ऊँचा मंच बनाया गया था। आस-पास के गाँवों से भी सौ-डेढ़ सौ लोग आ गए थे। स्कूल में छुट्टी कर दी गई थी और सब बच्चों को साफ-सुथरे कपड़े पहन कर मन्त्री के स्वागत के लिए एक लाइन में खड़ा किया गया था।

मियाँ यशवन्तचन्द और पं० दयाराम दो-तीन लोगों के साथ सुबह से ही उस सरकारी बंगले में डटे थे जहाँ मन्त्री जी आकर ठहरे थे। गाँव में हुए दंगे-फसाद की जानकारी देने के लिए वहाँ पुलिस इन्स्पेक्टर भी मौजूद था। बी०डी०ओ० तथा दूसरे अफसरों से बातचीत करने के बाद गाँव के प्रतिष्ठित लोगों से भी उन्होंने वहीं बात की और उनकी समस्याओं की जानकारी हासिल की। उन्हें बताया गया कि गाँव के कुछ लड़कों को छोड़कर जो बेरोजगारी के कारण कभी-कभी खुराफातें कर बैठते हैं, आम तौर पर सब शान्ति से रहना और अपना-अपना काम करना चाहते हैं।

मंत्री जी कार में बैठकर श्रमदान से बनी सड़क का मुआयना करते हुए जब गाँव में पहुँचे तो जिन्दाबाद के नारों से उनका स्वागत किया गया। गाँव की सात लड़कियों ने उनकी आरती उतारी और उन्हें फूलमाला भेंट की। बूढ़े पंडित श्रीराम ने शुद्ध संस्कृत उच्चारण के साथ मंगलाचरण पढ़ा। मन्त्री जी गद्गद हो गए। मंच पर खड़े होकर उन्होंने भावभीने स्वागत के लिए लोगों के प्रति आभार प्रकट किया। एक संक्षिप्त से भाषण में उन्होंने कहा कि देश को आगे ले जाने के कामों में सब को मिलकर सहयोग देना चाहिए तभी हम इस देश से गरीबी और पिछड़ेपन को दूर कर सकते हैं। उन्होंने लोगों को यह खुशखबरी भी दी कि गाँव को पीने का पानी पहुँचाने की स्कीम सरकार ने पास कर दी है और जल्दी ही इस पर काम शुरू हो जाएगा। गाँव के नौजवान लड़कों को साम्प्रदायिक तत्त्वों और तोड़-फोड़ करने वाले तत्त्वों से सावधान

रहना चाहिए और देश-निर्माण के कामों में सरकार का तथा कांग्रेस पार्टी का साथ देना चाहिए। मंच पर बैठे पंडित दयाराम और यशवन्तचन्द की ओर देखकर उन्होंने आगे कहा, "मुझे इस बात की खुशी है कि यहाँ यशवन्तचन्द जी की देख-रेख में कांग्रेस पार्टी की शाखा बहुत अच्छा काम कर रही है। पंडित दयाराम जी ने भी पंचायत के सरपंच के रूप में बहुत अच्छे काम किए हैं। मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि इस गाँव की पंचायत ने अब तक एक भी मामला अदालत में नहीं जाने दिया है और आपसी बातचीत से सभी मामलों को हल किया।" इसके साथ ही उन्हें याद आया कि यहाँ मालिक-मजारों के झगड़े में एक युवक को सजा हुई थी। वे आगे बोले, "अभी कुछ दिन पहले इस गाँव में जो घटना घटी उसका हमें बहुत अफसोस है। नौजवानों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। उन्हें देश का नया निर्माण करना है। लेकिन अगर ये नौजवान साम्प्रदायिक तत्त्वों और राष्ट्र विरोधी तत्त्वों के हाथ की कठपुतली बनकर सरकार के कामों में रोड़ा अटकाएंगे तो उनके खिलाफ सख्त कार्रवाई करनी ही पड़ेगी। सरकार की नीति है जमीन काश्त करने वालों को अनाज का तीन चौथाई मिले और मालिकों को एक चौथाई। इसके अलावा सरकार की यह पालिसी भी है कि मौरूसी काश्तकारों को उनकी जमीनों से बेदखल न किया जाए। हरिजन भाइयों को मैं खास तौर पर आश्वासन देना चाहता हूँ कि उन्हें उनकी जमीनों से और मकानों की जगह से बेदखल नहीं किया जाएगा। इस नीति के खिलाफ जो काम करेंगे उनके खिलाफ सख्त कानूनी कार्रवाई की जाएगी।"

यशवन्तचन्द और पं० दयाराम ने मंच पर से तालियाँ बजाने का इशारा किया। उपस्थित जनसमूह ने तालियों की गड़गड़ाहट से मन्त्री महोदय के इस कथन का स्वागत किया।

तालियों की गड़गड़ाहट अभी शान्त नहीं हुई थी कि मियाँ यशवन्तचन्द मन्त्री जी को धन्यवाद देने के लिए उठे। इतने में भीड़ से एक आवाज आई, "ठहरो, मैं मंत्री जी से कुछ सवाल करना चाहती हूँ।"

यशवन्तचन्द का चेहरा उस आवाज को सुनकर फक् पड़ गया। सामने लक्ष्मी देवी कृष्ण के कन्धे का सहारा लिये आगे आ रही थी। यशवन्तचन्द ने उसे वहीं रोकना चाहा, बोले, "वैदनी जी, सवाल फिर कभी पूछना। मन्त्री जी जल्दी में हैं। उन्हें जाना है।"

वैदनी बोली, "उन्हें जाना है यह मैं भी जानती हूँ। मैं उन्हें बाँध कर नहीं रखूँगी। हमारे गाँव के बड़े भाग कि इतनी दूर चलकर वे आए हैं। जनता के लीडर हैं तो जनता की बात सुनने के लिए उन्हें वक्त निकालना पड़ेगा।

मन्त्री उस अधेड़ उम्र की तेजस्वी महिला को अपने सामने सवाल करते देख सकपकाए। उन्होंने मुड़कर पंडित दयाराम की तरफ देखा और पूछा, "यह कौन है?"

इससे पहले कि पंडित दयाराम या यशवन्त में से कोई जवाब दे लक्ष्मी बोल उठी, "मैं उस लड़के की माँ हूँ जिसे इन शरीफ गुण्डों ने झूठी रिपोर्ट देकर जेल में डाल रखा है।"

यशवन्तचन्द के इशारा करने पर पुलिस का एक सिपाही आगे बढ़ा और लक्ष्मी देवी को बाहर जाने के लिए कहने लगा। लक्ष्मी देवी ने कठोर आवाज में कहा, "खबरदार जो मुझे हाथ लगाया। अब तक तुम इस लम्बरदार के घर की शराब पीकर बेगुनाह लोगों को डंगर-ढोरों की तरह पीटते रहे। अब नहीं चलेगा। कहाँ है वह तुम्हारा थानेदार बुलाओ उसे। मैं मंत्री जी को

वह जगह दिखाना चाहती हूँ जहाँ उसने जानवरों की तरह शराब पीकर उल्टी की थी।'

सिपाही जहाँ खड़ा था वहीं रुक गया। मंत्री जी ने उसकी तरफ देखकर कर कहा, "तुम जाओ।"

लक्ष्मी ने कहना शुरू किया—"आप कहते हैं कि सरकार काश्तकार को अनाज का तीन चौथाई दिलाना चाहती है। तो फिर मेरे लड़के ने क्या गुनाह किया। उसने हरिजन भाइयों को यही तो कहा था कि वे तीन चौथाई लें, हर साल की तरह जमीन मालिकों की धमकियों से डर आधा अनाज लेकर तीन चौथाई पर अंगूठा न लगाएँ। आप पूछिए इन लोगों से कि उन्हें कितना अनाज मिला है?"

मन्त्री जी ने लोगों की तरफ देखा। पंडित दयाराम ने आगे बढ़ कर कहा, "वैदनी जी इसका सबूत कागजों में है। सब को तीन-चौथाई दिया गया। बी०डी०ओ० साहब भी वहां मौजूद थे।"

लक्ष्मी बोली, "बी०डी०ओ० साहब हों या चौकीदार साहब हों। हैं तो सब एक ही मिट्टी के बने हुए। कागजी सबूतों से तुम सरकार को धोखा दे सकते हो लेकिन भगवान् के आगे क्या कहोगे जहाँ एक दिन सब को जाना पड़ेगा। गंगाजली उठाकर कह सकते हो कि तुमने इन लोगो से धोखा नहीं किया। आधा अनाज देकर तीन चौथाई पर अँगूठे नहीं लिये?"

सभा में एकदम सन्नाटा छा गया। लक्ष्मी देवी कहती गई—

"सरकार गाँवों की तरक्की करना चाहती है। गरीबों की मदद करना चाहती है। यह काम क्या इन लोगों के बलबूते पर होगा जिन्होंने सारी उम्र साहबों के तलवे चाटने और गरीबों को डरा-धमका कर लूटने का काम किया, जिन्होंने सेर अनाज के बदले गरीबों की जमीनें जब्त कर लीं, जो दस-बीस रुपये के बदले पूरे खानदान को पीढ़ियों से गुलाम बनाए बैठे हैं? इन लोगो के कंधों पर चढ़कर आएगा समाजवाद जिनका धर्म हरिजन को छूने भर से भ्रष्ट हो जाता है, जो समझते हैं कि वे भगवान् से लम्बरदारी और सरपंची का पट्टा लिखाकर लाए हैं? जिन लोगों ने अपने गुंडे भेजकर खलियानों का अनाज लूटा और किसानों को मारा-पीटा, वे तो सरकार के खैरख्वाह बन गए और जिस लड़के ने मारपीट को रोकने के लिए लाठियाँ खाईं, वह देश का दुश्मन हो गया? यह अँधेरगर्दी कब तक चलेगी? मन्त्री जी, भाषण करने और फूल-मालाएँ पहनने से गरीबों की हालत नहीं सुधार सकते आप। चल कर मेरे साथ देखें उस हीरे का घर जिसे इस लम्बरदार ने जला दिया।। इसलिए कि वह तीन चौथाई अनाज लेने के लिए अड़ा रहा। लहनू के नन्हे बेटे को देखो जो इस जानवर के थप्पड़ से हमेशा के लिए बहरा बन गया है। उस सूँकू से मिलो जिसे इसने गाँव के बीच नंगा करके सौ चाबुक मारे थे।......'

मियाँ यशवन्तचन्द गुस्से से काँप रहा था। अब वह बोला—

"वैदनी जी, अपना खटराग बन्द करो।" फिर मिनिस्टर साहब की तरफ देखकर बोला, "इस बेचारी का दिमाग कुछ खराब हो गया है।"

मन्त्री ने उसे झिड़क दिया, "आप चुप रहिए।"

"सच कहने वाले को लोग पागल कहते आए हैं। तुम कोई नई बात नहीं कर रहे हो। लेकिन यह बात गाँठ से बाँध लो कि अपने रिश्तेदार थानेदार से पिटवाकर तुम सारे गाँव वालो

की जबान बंद कर सकते हो, मेरी जबान बन्द नहीं कर सकते। पढ़े-लिखे लड़के गाँव के लिए कुछ अच्छे काम करना चाहते हैं। अनपढ़ लोगों को पढ़ाना चाहते हैं। कुछ नये काम-धन्धे यहाँ खोलना चाहते हैं, जिससे इन्हें नौकरी के लिए शहरों की खाक न छाननी पड़े। इन लड़कों की मदद करना तो दूर रहा, तुम लोग इन्हें झूठ-मूठ बदनाम करने और इन्हें डराने-धमकाने में लगे हो। तुम लोग चाहते हो जो लोग सदियों से गरीब हैं, वे गरीब ही बने रहें और तुम्हारी चाकरी करते रहें। जो अनपढ़ हैं वो अनपढ़ जाहिल ही बने रहें ताकि तुम्हारी बेईमानियों और कारस्तानियों को वे नहीं समझ सकें और तुम्हें मनमानी करने की छूट मिली रहे।''

मंत्री सिर झुकाए सारी बातें सुनते रहे। अब उन्होंने लक्ष्मी देवी की तरफ सिर उठाकर देखा और बोले, ''माँ जी, मुझे इन सब बातों का पता नहीं था। मुझे लगता है गलत रिपोर्ट दी गई थी। मैं इस मामले की जल्दी ही पूरी जाँच कराऊँगा और आप विश्वास रखें कि जिस किसी का भी कसूर पाया जाएगा, उसे माफ नहीं किया जाएगा। चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो। आपका लड़का बहुत जल्दी रिहा होकर आ जाएगा। मैं उससे मिलना चाहूँगा और गाँव की समस्याओं के बारे में उससे कुछ बातें करना चाहूँगा। आपने जो बातें आज कही हैं उससे मेरे मन को बड़ी शान्ति मिली है। अँधेरे में जैसे रोशनी की किरण दिखाई दी है।

मंत्री जी मंच से नीचे उतर आए। गाँव के लोगों ने जिन्दाबाद के नारे लगाने शुरू किए। और तब तक लगाते रहे जब तक मन्त्री धीरे धीरे सब को नमस्कार करते हुए कार में बैठकर चले नहीं गए।

तीसरे दिन अमर घर आ गया। उसके आने की खबर बिजली की तरह सारे गाँव में फैली। जो जहाँ था, वहीं अपना काम छोड़कर उसके घर की ओर चल पड़ा। देखते ही देखते वहाँ अच्छी खासी भीड़ लग गई।

गाँव की सभा और उसके बाद घटी घटनाओं की एक सरसरी जानकारी उसे नये मजिस्ट्रेट विशालसिंह से मिल चुकी थी। मन्त्री महोदय ने दूसरे ही दिन बी०डी०ओ० जशवन्तसिंह, जोरावरसिंह तथा मजिस्ट्रेट बी०एन० सेठी को मुअत्तल करने और अमर को तुरन्त रिहा करने के आदेश दे दिए थे। जाँच का काम एक ऊँचे अधिकारी को सौंपा गया। हिम्मतसिंह के खिलाफ निलंबन आदेश को भी रद्द कर दिया गया।

अमर के बाइज्जत रिहा होने की खबर का हरिजन वर्गों ने ही नहीं सवर्ण वर्गों के लोगों ने भी दिल से स्वागत किया। लम्बरदार की गुण्डागर्दी और पुलिस की ज्यादती के अलावा लोग अपनी आँखों से देख चुके थे कि अमर ने गाँव को खून-खराबे से बचाने के लिए किस तरह तकलीफ सही। लक्ष्मी देवी ने जिस हिम्मत के साथ उस दिन मन्त्री से सवाल-जवाब किया था वह तो घर-घर की कहानी बन गई थी। गाँव में उस घर की इज्जत पहले भी कम नहीं थी। लेकिन अब तो लोगों के लिए वह प्रेरणा का स्रोत बन चुका था। जो लोग तीन-चौथाई बटवारे के कानून से दुःखी थे उन्होंने भी अपने मन को समझा लिया था कि इसका विरोध करने से कोई फायदा नहीं होगा।

अमर के गाँव आ जाने से पँचायत के चुनावों की हवा रातों-रात बदल गई। चुनाव तीन

दिन बाद होने थे। दयाराम सरपंची के लिए और मियाँ यशवन्तचन्द पंची के लिए खड़े थे। उनकी तरफ से पंडित देवकीनन्दन और बुधीसिंह दो नाम पंची के लिए और थे। हरिजनों की तरफ से चीणू का नाम आया था। सरपंची के लिए दयाराम के मुकाबले कृष्ण का नाम था और मियां यशवन्तचन्द के मुकाबले में तेजू लोहार के लड़के चन्द्रशेखर का जिसने आई०टी० आई० में ट्रेनिंग लेने के बाद गाँव में वर्कशाप खोल दी थी।

दयाराम और यशवन्तचन्द अमर को ही सब से खतरनाक काँटा समझते थे। उसे झूठ-मूठ के केस में फँसा कर उन्होंने अपनी जीत लगभग पक्की कर रखी थी। लेकिन अब सारी स्थिति बदल गई और उन्हें परेशानी होनी लगी। चन्द्रशेखर के खिलाफ उन्होंने ब्राह्मणों और राजपूतों को भड़काया कि मियाँ यशवन्तचन्द के मुकाबले में वह जीत गया तो उनके लिए डूब मरने की बात है। कृष्ण के खिलाफ उनके पास एक ही हथियार था कि दयाराम पुराने अनुभवी आदमी हैं और कचहरी पंचायत का सारा काम जानते हैं। उनके मुकाबले में कृष्ण अभी बच्चा है। अगर वह सरपंच बन गया तो पंचायत नहीं चलेगी, सारा काम ठप्प हो जाएगा। इस बात का प्रचार इस तरह किया गया था कि लगभग सभी पर यह तर्क हावी हो गया था।

उस दिन जब अमर के घर गाँव के बहुत से लोग जमा हुए तो चुनावों की चर्चा छिड़ गई। अमर ने कृष्ण और चन्द्रशेखर का समर्थन किया और कहा, "अगर गाँव में कुछ नये काम करने हैं तो आप लोगों को नये आदमी लाने पड़ेंगे। पंडित दयाराम समझते हैं कि उनके बिना पंचायत का काम चल ही नहीं सकता। यह दृष्टि ही गलत है। पंचायत हो या बड़ी सरकार, किसी एक आदमी के भरोसे उसे छोड़ देना गलती है। जब से इस गाँव में पंचायत बनी है दयाराम इसके सरपंच हैं। क्यों? क्या और कोई आदमी इस काम को नहीं कर सकता? पं० दयाराम अजर-अमर तो हैं नहीं जो हमेशा तुम्हारी पंचायत का काम चलाने के लिए यहाँ बैठे रहेंगे। कभी न कभी तो आपको दूसरा आदमी तलाश करना पड़ेगा। और फिर आजादी का मतलब क्या है? लोक-तन्त्र का मतलब क्या है? अगर एक ही आदमी एक जगह पर हमेशा बना रहा तो लोकतन्त्र किस बात का? अगर देश की तमाम बड़ी-बड़ी जगहों पर इसी तरह कुछ आदमियों का मौरूसी हक हो गया तो उसे हम लोकतन्त्र कहेंगे या राजा-महाराजाओं का राज? लोकतन्त्र का अर्थ है जनता का राज। कुछ गिने-चुने आदमियों का राज नहीं। अगर मन्त्रियों से लेकर पंचों तक सब जगहों पर कुछ आदमी हमेशा कब्जा किए बैठे रहे तो हम यह कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि गरीब घर का लड़का पढ़ा-लिखा और हर तरह से योग्य होने पर अच्छी से अच्छी जगह तक जा सकता है। सब जगह मौरूसी और खानदानी राज होगा तो नये लोगों को आगे आने का मौका कैसे मिलेगा?"

अमर को यह आशा तो नहीं थी कि उसकी बातें सुनकर लोग एकाएक बदल जाएंगे लेकिन वह जानता था कि कुछ लोगों पर इसका कुछ असर जरूर होगा। हरिजनों में कुछ लोग ऐसे थे जो वर्षों की गुलाम जिन्दगी के संस्कारों के कारण दयाराम और यशवन्त के खिलाफ वोट देने की बात तक नहीं सोच सकते थे। अमर ने उन लोगों को सोचने के लिए मजबूर कर दिया।

पं० दयाराम और यशवन्तचन्द ने हवा के इस बदलते रुख को दूसरे दिन साफ देख लिया।

पहली बार लोगों ने देखा कि मियाँ यशवन्तचन्द प० दयाराम की कोठी में आए और दोनों में बातचीत हुई। शाम को मियाँ यशवन्तचन्द की बैठक में पं. दयाराम के अलावा गाँव के सात-आठ व्यक्ति जमा हुए। दूसरे दिन बाबा छोटसिद्ध और लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की तरफ से एक भोज की स्कीम बनाई गई जिसमें गाँव के सब लोगों के भोजन की व्यवस्था थी। घर-घर में न्योता दिया गया। पंडित दयाराम और मियाँ यशवन्तचन्द ने हर मिलने वाले से दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि वे प्रसाद लेने जरूर आएँ। हरिजनों में भी हर घर के लिए प्रसाद के एक बड़े पत्तल की व्यवस्था थी।

बाबा छोटसिद्ध और लक्ष्मीनारायण के नाम पर हर साल एक-एक भोज मियाँ यशवन्तचन्द और पं० दयाराम देते थे। इस पुण्य कार्य की वजह से वे गाँव मे धर्मात्मा व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित थे। लेकिन दोनों मन्दिरों की तरफ से सम्मिलित भोज का यह पहला ही मौका था। चुनाव से एक दिन पहले भोज देने से उनका क्या अभिप्राय था,यह बात लोगों से छिपी नहीं रही। स्वयं दयाराम और यशवन्तचन्द ने भी अपने अभिप्राय को छिपाने की कोशिश नहीं की क्योंकि भोजन के लिए आने वाले लोगों को वे किसी तरह घुमा-फिरा कर वोट की याद भी दिला देते थे। उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा कि गाँव में कोई आदमी बिना भोजन के न छूटे। अगर किसी घर से कोई आदमी नहीं आ सका तो उसके हिस्से का भोजन पत्तल में डालकर उसके घर भिजवा दिया गया। हरिजनों के प्रत्येक घर में ढाई-तीन किलो चावल की पत्तल भेजी गई। कुल मिलाकर यह एक शानदार भोज रहा और उस दिन पं० दयाराम और मियाँ यशवन्तचन्द का नाम गाँव में हर आदमी की जुबान पर चढ़ा रहा।

अगले दिन सुबह वोट पड़े। वोट डालने का काम तो एक घण्टे में ही हो गया लेकिन गिनती शाम को पाँच बजे के बाद होने वाली थी। अमर को कृष्ण और चन्द्रशेखर की जीत की काफी उम्मीद थी, लेकिन जब वोटों की गिनती होने लगी तो वह दस मिनट बाद ही वहाँ से उठ कर चला गया। पं० दयाराम के वोट इतने हो गए थे कि कृष्ण की हार निश्चित थी।

कृष्ण और चन्द्रशेखर दोनों के हार जाने से अमर को बड़ा धक्का लगा। हालांकि कृष्ण ने इस सारे चुनाव को एक हल्के-फुल्के ढंग से लिया था, और उसे हारने से जरा भी दुःख नहीं था लेकिन अमर की निराशा को देखकर वह चिन्तित हो उठा। उस दिन रात को बड़ी देर तक चन्द्रशेखर और कृष्ण अमर के घर बातें करते रहे।

कृष्ण ने अमर को समझाने का प्रयत्न किया। उसने कहा, "इसमें इन गाँव के लोगों का दोष नहीं है। दोष है उस व्यवस्था का जिसने इतने सालों में इन लोगों को पुराने संस्कारों से मुक्त करने के लिए कुछ नहीं किया। राजाओं, जमींदारों और साहबों के आतंक में जीते-जीते इनकी आत्माएँ बुरी तरह कुचली जा चुकी हैं। वे यह सोच ही नहीं सकते कि जिन्दगी को स्वाभिमान से भी जिया जा सकता है।"

अमर बोला, "तो फिर ऐसी जगह रहने से क्या फायदा? ऐसे लोगों के बीच काम करना बेकार है। जो लोग भात के पत्तल पर बिक जाएँ उनके लिए अपना जीवन नष्ट करना मूर्खता नहीं तो क्या है? हम से बड़ा बेवकूफ कौन होगा? अब तक कहीं शहर की खाक छानी होती तो

कहीं न कहीं नौकरी मिल ही जाती। आराम से दिन तो कटते। यहाँ तरह-तरह की तंगी में जिए। दूसरों के लिए दिन-रात टूटे। झगड़े सहे, मारपीट सही, जेल की बदनामी ओढ़ी। फायदा क्या हुआ?"

अमर की माँ ने भी उसे समझाने की कोशिश की किन्तु अमर निश्चय कर चुका था। उसका दृढ़ मत था कि उसे शहर में जाकर किसी नौकरी की तलाश करनी चाहिए।

दूसरे दिन अमर घर से बाहर नहीं निकला। कई लोग उससे मिलने आए लेकिन वह बुखार का बहाना बना करके बिस्तर पर पड़ा रहा। किसी से विशेष बात नहीं की। शाम को नीलू और सुभद्रा देवी आईं। कृष्ण के ब्याह की बातें होने लगीं। पंडित नित्यानन्द की चर्चा भी चली। शादी के सम्बन्ध में विस्तार से बातचीत के लिए किसी को खैरा भेजना जरूरी था। नीलू के ऊपर यह काम सौंपा गया। वह अपने मायके भी हो आएगी और रमा के माता-पिता से सलाह-मशविरा भी कर आएगी। सुभद्रा देवी का अनुरोध था कि अमर कृष्ण के ब्याह तक रुक जाए। अमर इस अनुरोध को नहीं टाल सकता था।

पंडित नित्यानन्द की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों रमा की शादी की तारीख नजदीक आती जा रही थी, पंडिताइन की चिन्ता बढ़ रही थी। उसने कई बार पति के आगे रो-रोकर कहा कि दो चार सौ लगाकर बिरादरी को भोज दे दो, लेकिन पंडित नित्यानन्द प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार नहीं हुए।

शादी के केवल पन्द्रह दिन रह गए थे किंतु कहीं निमन्त्रण नहीं दिए गए, बाजे-गाजे वालों का बन्दोबस्त नहीं हुआ। उधर लड़के वालों की ओर भी कोई खास तैयरियाँ नहीं हुईं। उनका कहना था कि जब गाँव के लोग आने वाले नहीं तो धूमधाम करके क्या फायदा? बिरादरी वाले अब बहुत ढीले पड़ गए थे। एक-दो ने तो पंडित नित्यानन्द को यहाँ तक सलाह दी थी कि पाँच-सात आदमियों को चाय पिला दो। एक-आध सेर बूँदी मंदिर में जाकर बाँट दो—प्रायश्चित्त हो जाएगा। लेकिन इतने पर भी पंडित जी का हठ बना रहा।

इस बीच नीलू अपने मायके आई। काफी दिन बाद वह रमा से मिली। उसकी बोलचाल और व्यवहार में इतना परिवर्तन देखकर नीलू दंग रह गई। दिन भर वह घर में रहती और कोई न कोई सिलाई बुनाई का काम करती रहती। सहेलियों से भी बहुत कम बोलती थी। एक तो परिवार के बहिष्कृत होने के कारण उनके घर सहेलियों का आना-जाना कम हो गया था और फिर उसका व्यवहार भी कुछ ऐसा हो गया था कि सहेलियाँ प्रायः अप्रसन्न होकर वापस जाती थीं।

नीलू को पहले तो कोई बात नहीं सूझी फिर कुछ देर चुप रहने के बाद उसने पूछा, "अच्छा रमा, जीजाजी को देखा?"

"नहीं।"

रमा का उत्तर कठोर और शुष्क था।

नीलू बोली, "देखना चाहती हो?"

रमा मुस्करा कर बोली, "जब उम्र सारी देखने के लिए पड़ी हो तो अभी इतनी उतावली क्यों?"

"और अगर उनकी आँख कानी और तिरछी हुई तो?"

"तो क्या? किस्मत से कौन लड़ सकता है?"

"किस्मत को तो आदमी खुद बनाता है और खुद बिगाड़ता है।"

"मैं नहीं मानती।"

"तो क्या तुम्हारी किस्मत में यह लिखा हुआ है कि तुम्हारी शादी कृष्ण भैया के साथ ही होगी?"

"शायद ऐसा ही हो।"

"शायद तो यह भी हो सकता है कि कृष्ण भैया की जगह..."

रमा ने तीखी नजर से देखकर नीलू की बात बीच में ही काट दी। नीलू को लगा कि वह अमर का नाम भी नहीं सुनना चाहती है। कुछ देर बाद नीलू ने कहा, "रमा, किस्मत की बात कोई नहीं जानता। लेकिन आदमी जो करता है उसे सब देखते हैं। खैर, उन बातों को छोड़ो। एक बात पूछती हूँ। शादी के बाद यदि किसी दिन कृष्ण भैया को पता चल गया कि तुम कभी अमर को प्यार करती थीं तो?"

रमा ने नीलू पर दृष्टि गड़ा दी। एक पल भर के लिए तो कुछ समझ नहीं सकी कि क्या उत्तर दिया जाए। फिर कुछ सँभल कर बोली, "मैंने उन्हें कभी प्यार नहीं किया?"

"कभी नहीं?"

"नहीं, नहीं, नहीं! अब तुम जाओ, मुझे तंग मत करो।"

और वह उठकर दूसरे कमरे में चली गई। नीलू आश्चर्य से उसे देखती रह गई।

थोड़ी देर बाद पंडित जी उस कमरे में आए तो नीलू को अकेला बैठा देखकर समझ गए कि रमा चिढ़कर चली गई है। सफाई देने के लिए बोले, "नीलू बिटिया, बुरा मत मानना। न जाने उसे क्या हो गया है। किसी से सीधे मुँह बात भी नहीं करती। अपनी माँ के साथ बात किये हुए कितने ही दिन हो गए हैं।"

"लेकिन इसकी वजह भी तो कोई होगी?" नीलू ने पूछा।

कुछ गम्भीर होकर वे बोले, "वह कुछ बताए ही नहीं तो वजह का पता किसको चलेगा। पहले तो मैं सोचता था कि उसे शायद रिश्ता पसंद नहीं है लेकिन मेरी यह धारणा भी गलत निकली। अमर का कोई नाम लेता है तो वह उपेक्षा से मुँह फेर लेती है। जब तुम्हारे गाँव में मारपीट हुई और पुलिस अमर को पकड़ कर ले गई तो यहाँ सब लोगों ने यही कहा कि पुलिस ने अन्याय किया लेकिन वह बोली, पुलिस ने जो कुछ किया, ठीक ही किया।"

इतने में रमा फिर उस कमरे में आई और पंडित जी कुछ कहते कहते रुक गए। नीलू ने प्रसंग बदल दिया, बोली, "बिरादरी को भोज क्यों नहीं देते आप? एक ही तो आपके घर लड़की

है। उसकी शादी में बिरादरी को नहीं बुलाओगे तो फिर कब मौका आएगा?"

पंडित जी थोड़ी देर तक चुपचाप नजर फेर कर बाहर की ओर देखते रहे, फिर बोले, "प्रायश्चित्त करने का मतलब तो यह होता है न कि जिस अपराध के लिए प्रायश्चित्त किया जाए वह फिर न किया जाए।"

नीलू बोली, "हाँ, उसका मतलब तो यही है।"

पंडित जी ने सिर झुकाकर कहा, "लेकिन मैं ऐसी गारण्टी नहीं दे सकता।"

नीलू की समझ में कुछ नहीं आया तो पंडित जी बोले, "तुम तो जानती हो कि दिवाकर रूपा को लेकर बम्बई रहता है।"

"बम्बई? क्या उसका पत्र आया है?"

"उसके कई पत्र आ चुके हैं। अब रूपा उसकी धर्मपत्नी है। उनके घर लड़का हुआ है। उसने लिखा है कि बच्चा बहुत प्यारा है। बम्बई उनके लिए आखिर परदेश ही है। कुछ दिन वह अपने एक दोस्त के घर रहा। अब एक कमरा किराये पर ले लिया है। लेकिन अभी नौकरी का कोई सिलसिला नहीं जमा है। चलती बार हजार-बारह सौ ले गया था उनसे कब तक गुजारा होगा। एक दिन तो उन्हें घर आना ही पड़ेगा। उस वक्त क्या मैं उसे घर में नहीं रहने दूँ? और जब वह इसी घर में रूपा के साथ रहेगा तो बिरादरी वालों के माथे पर फिर बल पड़ जाएँगे। फिर हुक्का-पानी बन्द होगा। उससे तो अच्छा यही है कि मैं जैसा हूँ, वैसा ही रहूँ।"

नीलू चुपचाप सुन रही थी। शायद वह रूपा और उसकी गृहस्थी की कल्पना में डूबकर यह भी साफ-साफ नहीं सुन सकी कि पंडित जी क्या कह रहे हैं। पंडित जी जब उठने लगे तो उसने चौंककर पूछा—"उन्होंने आने के लिए लिखा है?"

पंडित जी जरा रुककर बोले, "वैसे तो वह रमा की शादी पर आना चाहता था लेकिन मैंने लिख दिया है कि शादी के बाद आए। हो सकता है उसके आ जाने से कुछ गड़बड़ी पड़ जाए।"

नीलू बोली, "गड़बड़ी क्या पड़ेगी? उन्हें सब बातों का पता है। सारी बातें सोच-समझकर ही तो उन्होंने रिश्ता मंजूर किया है।"

"वह तो ठीक है।" पंडित जी कुछ आश्वस्त होकर बोले, "लेकिन फिर भी बिरादरी का दबदबा सहना कठिन होता है।"

नीलू ने आगे कोई प्रश्न नहीं किया। वह वास्तव में रमा से कुछ निजी बातें करना चाहती थी। इन जात-बिरादरी के बखेड़ों में उसे इस समय कोई रुचि नहीं थी। लेकिन बातों ही बातों में जो दिवाकर और रूपा का प्रसंग निकल आया इससे वह अपने असली उद्देश्य को ही भूल बैठी। फिर रमा का रवैया भी ऐसा था कि साफ-साफ कोई बात पूछने से डर लग रहा था। उसके व्यवहार से कोई निश्चित निष्कर्ष निकाला नहीं जा सकता था। नीलू जानती थी कि रमा अमर को चाहती थी, तब से जब उनकी सगाई की चर्चा भी नहीं चली थी। उसी के अनुरोध से नीलू ने सगाई की बात चलाई थी। ऐसे ढंग से पंडित जी को प्रभावित किया था कि उन्हें जरा भी शक न हो सके। उधर अमर की माँ को तैयार करने की जिम्मेवारी भी नीलू ने ही ली थी। और यह सब नीलू ने इसलिए किया था कि उसकी सहेली रमा ऐसा चाहती थी। आज उसी सहेली को

अमर के नाम मात्र से क्रोधित होता देखकर नीलू समझ नहीं सकी, रमा के दिल में क्या है।

पंडित जी के चले जाने के बाद नीलू उस कमरे में गई, जहाँ रमा बैठी कुछ सी रही थी। उसने पास बैठते हुए कहा, ''देखो रमा, तुम यह मत समझना कि मैं अमर की वकालत करने आई हूँ या कृष्ण भैया की भेदिया बनकर आई हूँ। मैं एक सहेली के नाते तुम से इतना पूछना चाहती हूँ कि तुम जो कुछ कर रही हो वह मन से कर रही हो या...

नीलू की बात मुँह में ही रह गई। रमा ने फिर उसकी ओर तीखी दृष्टि से देखा और बोली, ''तुम मुझे पागल समझती हो?'' नीलू उसके चेहरे पर दृष्टि गड़ाकर बोली, ''पागल तो नहीं, पर घमंडी जरूर समझती हूँ।''

वह बोली, ''घमंड तो थोड़ा बहुत सब में होता है।''

''लेकिन इतना तो मैंने कभी नहीं देखा कि जिसे कभी प्यार किया हो उसे बिना बात के दिल नफरत करने लग जाए।''

''छोड़ो इन बातों को'' रमा ने प्रसंग बदलना चाहा, ''इन बातों में अब क्या रखा है। जो बीत गया उसके बारे में क्या सोचना। हर लड़की एक बार यह बेवकूफी करती है। उसके लिए सारी उम्र पछताते रहना क्या उससे बड़ी बेवकूफी नहीं है?''

और एक फीकी मुस्कराहट उसके होंठों पर दिखाई दी। नीलू की समझ में नहीं आ रहा था कि आगे क्या बात करे। इतने में रमा ने कहा—

''अच्छा, यह तो बताओ कि तुम्हारे वे नये भैया कैसे आदमी हैं?''

''कौन, कृष्ण भैया?''

''हाँ!''

''बहुत अच्छे हैं। देखने में सुन्दर ''

''देखने में कैसे भी हों। दिल के कैसे हैं?''

''दिल के भी अच्छे हैं।''

''जीवट के आदमी हैं या वे भी डरपोक निकलेंगे।''

''मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी।''

रमा हँस कर बोली, ''मतलब यह है कि वे हमारे घर की बदनामी को सह लेंगे। बिरादरी के डर के मारे भाग तो नहीं खड़े होंगे।''

नीलू बोली, ''उन्होंने सब बातें जान कर ही तो हामी भरी है।''

रमा ने पूछा, ''क्या वे जानते हैं कि दिवाकर ने रूपा से शादी कर ली है और उनका अब एक बच्चा भी है।''

''जानते नहीं होंगे तो मेरे जाने पर जान लेंगे।''

''तो उन्हें यह भी बता देना कि दिवाकर घर आ रहा है अपनी पत्नी और बच्चे के साथ। वह अब इसी घर में रहेगा और वह मेरी शादी में भी शामिल होगा। मेरी भाभी रूपा भी शादी में शामिल होगी।''

''लेकिन पिता जी तो कह रहे थे कि दिवाकर तुम्हारी शादी के बाद आएगा।''

"मैंने भैया को पिताजी की बीमारी का झूठा तार देकर बुलाया है। दो-तीन दिन में वे यहाँ होंगे।"

नीलू सोच में पड़ गई। वैसे तो उसे विश्वास था कि कृष्ण पर इन बातों का कोई असर नहीं पड़ेगा लेकिन कृष्ण की माँ का क्या रुख होगा इस बारे में कुछ कहना कठिन था। औरत जात थी। रिश्ते-नातों के कहने से कभी भी बात बदल सकती थी। रमा बोली—

"देखो नीलू! कुछ बातें मैं तुमसे साफ-साफ कह देना चाहती हूँ। एक बात तो यह कि मेरी शादी में दिवाकर भैया और रूपा भाभी जरूर होंगे। दूसरी बात यह कि शादी पर कोई धूम-धड़ाका या शोर-शराबा नहीं होगा। कोई बैंड नहीं बजेगा, कोई दावत नहीं होगी, कोई दहेज नहीं होगा। सिर्फ ब्याह पढ़ा जाएगा। न दूल्हा पालकी या घोड़ी पर बैठकर आएगा, न दुल्हिन डोली में बैठकर जाएगी। किसी एक जगह दूल्हा-दूल्हिन इकट्ठे होंगे, रिश्तेदार भी वहीं आएँगे और तीन चार घंटे में ब्याह की रस्म पूरी की जाएगी।"

नीलू रमा के चेहरे की ओर देखकर मुस्करा रही थी। उसे शायद सारी बातें हल्का-फुल्का मजाक लग रही थीं। लेकिन रमा के चेहरे पर मजाक का जरा-सा भी भाव न देखकर उसे सन्देह हुआ तो वह बोली—

"तब तो तुम्हारी शादी का तमाशा देखने के लिए दूर-दूर से लोग आएँगे।"

रमा बोली, "आएँगे तो आएँ। तुम उन्हें ये सारी बातें बता देना उन्हें ये बातें मंजूर हों तो किसी आदमी के हाथ पता भेज देना। शादी यहाँ भी हो सकती है और अगर वे ठीक समझें तो मेरे घरवाले तुम्हारे गाँव में भी आ सकते हैं।"

रमा यह कहकर उठने लगी तो नीलू ने उसे खींचकर पास बिठा लिया, बोली, "मैं समझ रही थी, तुम मजाक कर रही हो।"

"मजाक? मेरे चेहरे पर तुम्हें मजाक नजर आता है?"

"लेकिन यह सब होगा कैसे? जो आज तक नहीं हुआ वह अब कैसे होगा?"

"रमा बोली, जो कभी नहीं हुआ वही तो करना चाहिए।" शादी में यह फूहड़ दिखावा, यह तमाशा क्यों जरूरी है। बेकार का खर्चा और बिना मतलब की परेशानी, खैर, मुझे जो कहना था वह मैंने कह दिया। अब तुम जानो और तुम्हारे भैया जानें।"

वह उठकर चली गई। नीलू कुछ देर वहाँ बैठी रही, फिर रमा की माँ से बातें करने के लिए दूसरे कमरे में चली गई।

पार्वती देवी बहुत कमजोर और थकी-थकी सी लग रही थी। नीलू को देखकर उसने चावलों से भरा सूप एक तरफ रख दिया। नीलू के लिए दरी बिछा दी और फिर उसके पास बैठ गई। बड़ी धीमी आवाज में उसने पूछा, "क्या कह रही थी रमा? मुझसे तो वह बात भी नहीं करती है। कई दिन हो गए उससे बात किए।" नीलू ने उसे सारी बातें बता दीं। सुनकर उसका दिल बैठ गया। आंखें डबडबा आईं। भर्राई हुई आवाज में बोली, "पता नहीं यह छोकरी क्या कर बैठे। अपनी जिद की इतनी पक्की है कि जो चाहेगी करके छोड़ेगी। सोचा था, जैसे तैसे इसके हाथ पीले हो जाएँ तो हमें मुक्ति मिले। कहीं हरिद्वार-काशी जाकर रहेंगे। अब तो लगता

है, हमारा मुँह और काला होना है और यह छोकरी करके रहेगी।'

कुछ देर सोचने के बाद वह फिर बोली—

"सुना है कि वह अमर की बड़ी इज्जत करता है। उसकी बात वह नहीं टाल सकता। उसकी माँ को भी अमर का बड़ा भरोसा है। उनसे कहना जैसे भी हो वह कृष्ण को और उसकी माँ को समझा दे। कुछ गड़बड़ हो गई तो छोकरी न जाने क्या कर बैठे।"

नीलू ने उसे तसल्ली दी। "अमर भैया किसी तरह की गड़बड़ नहीं होने देंगे। वैसे कृष्ण भी पढ़ा-लिखा है, समझदार है। मुझे पक्का यकीन है कि इन बातों से दोनों को खुशी होगी।"

रमा नीलू के लिए चाय और हलवा बना कर लाई। नीलू ने पूछा, "हलवा किस खुशी में खिला रही हो?" रमा हँसकर बोली, "इसे मेरी शादी की दावत समझ लो।"

नीलू ने कहा, "तुम्हारी शादी की दावत अब तुम नहीं दोगी, मैं दूँगी। शादी मेरे घर होगी। बारात मेरे घर आएगी। मैं जैसा चाहूँगी वैसा करूँगी। तुम्हारी धौंस मैं नहीं सहूँगी।"

रमा के होंठों पर एक फीकी मुस्कराहट जितने सहज भाव से प्रकट हुई उतने ही सहज भाव से अदृश्य भी हो गई।

नीलू ने मायके से लौटने के बाद सब से पहले अमर और लक्ष्मी देवी को सारी हकीकत सुनाई। यह जानकर कि ये सारी शर्तें रमा की तरफ से रखी गई है, अमर को विश्वास हो गया कि इन्हें पूरा किए बिना शादी नहीं हो सकती। लक्ष्मी देवी का विचार था कि इसी तरह शादी हो जाए तो इसमें हर्ज नहीं। शादियों में जो अनाप-शनाप ख़र्च किया जाता है, वह भी तो एक बुराई ही है। सादे ढंग से सारा काम हो जाए तो दोनों घर कर्ज के बोझ से बचेंगे। अमर को रमा के इस प्रस्ताव से प्रसन्नता ही हुई। उसका कहना था कि इससे एक मिसाल कायम होगी। और फिजूलखर्ची की बेकार रस्मों को तोड़ा जा सकेगा। शहरों में भी तो इस तरह की शादियाँ होती हैं जहाँ लड़का-लड़की वाले मंदिर या गिरजे में इकट्ठे होते हैं और दो-तीन घंटे में ब्याह हो जाता है। इन दिनों जब जीने के लिए जरूरी चीजें जुटाना मुश्किल हो गया है, शादियों के रस्मो रिवाज बदलने ही चाहिए।

लेकिन दिवाकर और रूपा के आने से जो समस्या खड़ी होने वाली थी उसका हल किसी को नहीं सूझ रहा था। यह निश्चित था कि गाँव के लोग इस बात को लेकर हंगामा करेंगे। शादी में वे न भी आएँ लेकिन इसकी चर्चा से जो वातावरण बनेगा उसका सामना करने के लिए कृष्ण की माँ और उसके रिश्तेदार शायद तैयार न हों। कृष्ण के बारे में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता था कि वह किस हद तक उदार हो सकता है।

लेकिन शाम को जब कृष्ण और उसकी माँ से इन बातों का जिक्र किया गया तो उन्होंने इसे कुतूहल की तरह लिया और इसमें किसी तरह की परेशानी की बात नहीं देखी। कृष्ण बोला, "हम तो यह मानकर चले हैं कि बिरादरी वाले नहीं आएँगे। आएँगे तो हमारे सिर-माथे, नहीं आएँगे तो भी उनकी मेहरबानी। हम किसी को बुलाने नहीं जाएँगे। कृष्ण की माँ को केवल इतनी आपत्ति थी कि 'गाँव वालों को धाम तो देनी ही पड़ेगी। हम सब को नयौता देंगे। जो नहीं आना चाहेंगे न आएँ हमें अपनी तरफ से सारा इन्तजाम करना ही है।"

जो समस्या बड़ीं कठिन लग रही थी, वह इतनी आसानीं से सुलझ जाएगी इसकी अमर को भी आशा नहीं थी। कृष्ण के विचारों से वह काफी सीमा तक परिचित था और वह जानता था कि घिसे-पिटे रिवाजों और दकियानूसी बातों से उसे चिढ़ है। लेकिन वह जानता था कि भावुकता में आदर्शों की बात करना और बात है और जीवन में उन्हें उतारना और बात। फिर भी कृष्ण के व्यवहार ने उसे निश्चित कर दिया।

उस दिन बड़ी देर तक सब शादी के कार्यक्रम पर विचार करते रहे। किस काम की जिम्मेदारी किसको सौंपी जाए, यह भी तय किया गया। लड़की वाले नीलू के घर आकर ठहरेंगे और वहीं शादी होगी। पंडित श्रीराम अगर ब्याह पढ़ने नहीं आएँगे तो, युवक दल का सदस्य ज्ञानचन्द ही ब्याह पढ़ेगा।

दूसरे दिन लड़की वालों को सूचना भेज दी गई और दोनों तरफ शादी की तैयारियाँ शुरू हो गईं।

वैशाख के तीन प्रविष्टे शादी का दिन निश्चित हुआ था। रमा को लेकर पंडित नित्यानन्द और परिवार के अन्य लोग दो तारीख को ही बुधीसिंह के घर पहुँच गए थे। जैसा कि रमा ने नीलू को बताया था दिवाकर भी अपनी पत्नी रूपा और बच्चे के साथ बम्बई से आ पहुँचा था और वे भी बुधीसिंह के घर ठहरे हुए थे। लड़की वालों की ओर से उनके रिश्तेदारों में सिर्फ एक मामा आए थे। अमर और नीलू के ऊपर लड़की वालों की तरफ से सारे काम की जिम्मेवारी रखी गई थी। रमा की शर्तों के अनुसार लड़के वालों को बुधीसिंह के घर आना था। शाम को साढ़े छः बजे लग्न का मुहूर्त निश्चित हुआ था। बुधीसिंह के आँगन में वेदी-मंडप बनाया गया था। शादी में बैंड या किसी और तरह का दिखावा नहीं था। केवल लग्न-मण्डप मे ब्याह पढ़ा जाना था। और एक-डेढ़ घंटे में सारा काम पूरा कर देने की योजना बनी थी। पंडित श्रीराम ब्याह पढ़ने के लिए तैयार हो गए थे।

गाँव में पहली बार एक ऐसी शादी हो रही थी जिसमें शादियों जैसी कोई धूम-धाम नहीं थी। हालाँकि नीलू की जिद पर ब्याह की रस्म के बाद सारे गाँव को धाम देने की व्यवस्था की गई थी लेकिन यह कहना कठिन था कि गाँव के कितने लोग इस धाम में शामिल होने वाले थे। लेकिन एक अजीब शादी को देखने के लिए गाँव के लोग उत्सुक अवश्य थे और दुल्हन को उबटन लगाने के लिए गाँव की कई औरतें नीलू के घर इकट्ठी हुई थीं रूपा को देखने के लिए कई लड़कियों और औरतों में उत्सुकता थी। रूपा के रूप की चर्चा सारे गाँव में फैल गई थी।

अमर पिछले दो दिनों से खूब व्यस्त था। इधर कृष्ण के घर का काम भी उसके जिम्मे था, और नीलू के घर की व्यवस्था भी उसी को करनी थी। आज अमर का खाना भी नीलू भाभी के घर पर था। पंडित नित्यानन्द के साथ बैठकर उसने खाना खाया। रमा दूसरे कमरे में छिप कर बैठी थी। उसके पैरों में मेंहदी लगी थी, उबटन की खुशबू उस कमरे से आ रही थी। पंडित जी चुप थे, बिल्कुल मौन और पंडिताइन रमा के पास बैठी हुई थी। सुबह जब गाँव की औरतों ने रमा को उबटन-स्नान कराया तो रमा परम्परा को निभाने के लिए कम्बल में मुँह छिपाकर रोई नहीं। इस तरह का रोना लड़कियों के लिए बहुत जरूरी समझा जाता था। यह रीति थी। जो

लड़की नहीं रोती उसका स्त्रियाँ मजाक उड़ाती थीं। लेकिन रमा किसी औपचारिकता को निभाने के लिए तैयार नहीं थी। कृष्ण ने अपने दूर-दराज के सब रिश्तेदारों को और गाँव के सब लोगों को न्यौता दिया था। लेकिन तीन तारीख दोपहर तक कोई रिश्तेदार नहीं आया। गाँव से भी तीन-चार लोग ही आए।

छः बजे शाम को उन्हें घर से चलकर बुधीसिंह के घर पहुँचना था। दूल्हे के सारे कपड़े और कृष्ण का दूसरा सामान तैयार था। लेकिन रिश्तेदार नहीं आए। बिरादरी के लोग नही आए। घर के आँगन में बेचैनी से टहलते-टहलते वह न जाने किस-किस को कोसता रहा। अपने को, अमर को या बिरादरी को?

समय हो गया लेकिन दो-तीन साथियों को छोड़कर कोई नही आया। वह उदास हो गया। ब्याह पढ़ने वाले पंडित श्रीराम चिल्लाने लगे, "अरे भई, जल्दी करो, वहाँ मुहूर्त टल जाएगा।" किन्तु कृष्ण रास्ते की ओर देखता रहा। आखिर लक्ष्मी ने आकर उसको झकझोर दिया, "क्या देखते हो बेटा, अगर कोई नहीं आता है तो न आए। उनके बगैर शादी थोड़े ही रुक जाएगी।" और सुभद्रा ने भी पास आकर इसी तरह के शब्द कहे। कृष्ण उनकी ओर मुड़कर बोला—

"नहीं, अगर बिरादरी नहीं आएगी तो शादी भी नहीं होगी।"

लक्ष्मी ने समझा, कृष्ण मजाक कर रहा है, लेकिन जब उसने सुभद्रा की ओर देखा तो उसकी मुख-मुद्रा भी बदल गई। सुभद्रा को जैसे काठ मार गया। वह कृष्ण की ओर सिर उठाकर देख भी नही सकी। लक्ष्मी ने भीतर के सत्य की उपेक्षा करते हुए कहा, "अच्छा, यह लेक्चरबाजी छोड़। जल्दी कर, मुहूर्त टल जाएगा। बड़ा आया बिरादरी का लाडला।"

कृष्ण गम्भीर होकर बोला, "चाची, मैं कह चुका हूँ कि शादी नही होगी। मैं बिरादरी वालों का विरोध लेकर शादी नहीं करूँगा। समाज बड़ा है, बिरादरी बड़ी है। एक लड़की के लिए उसे नाराज नहीं किया जा सकता।"

उसने यह शब्द इतनी गम्भीरता के साथ कहे कि लक्ष्मी को भी विश्वास करना पड़ा। उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। दूसरी स्त्रियाँ आश्चर्य से कृष्ण की ओर देखती रहीं। उनमें से एक आगे बढ़ कर बोली, "ऐसा भी कभी होता है। यही बात थी तो शादी के लिए हामी ही क्यों भरी थी? उन भले मानसों को इधर बुलाया ही क्यों? यह तो घर बुलाकर जूते मारने की-सी बात हुई। वे लोग क्या सोचेंगे?"

कृष्ण बोला, "उन्हें जो भी सोचना होगा, सोचते रहें। इसमें कसूर भी उन्हीं का है। कितने ही लोगों ने उन्हें समझाया कि बिरादरी को भोज आदि देकर प्रायश्चित्त कर लो। अगर उतना नहीं करना था तो सेर भर मिठाई मन्दिर में चढ़ा आते, बस छुट्टी हो जाती। लेकिन इतना भी नहीं किया। अब भोगें इसका फल।"

कृष्ण वहाँ से हटकर भीतर चला गया और वहाँ खाट पर जा लेटा।

नीलू के घर पाँच-सात स्त्रियाँ थीं और तीन-चार पुरुष। दूल्हे वालों की प्रतीक्षा हो रही थी। सब तैयारियाँ हो चुकी थीं। अमर पंडित जी के साथ आँगन में खड़े-खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। रमा पाँच-सात लड़कियों से घिरी हुई थी। तभी पंडित श्रीराम ने आकर खबर दी कि कृष्ण शादी करने से इन्कार करता है।

अमर यह बात सुनकर बेचैन हो उठा, "क्या कहते हो?" उसने गुस्से स पूछा।

"हाँ भैया, मैं ठीक कहता हूँ। ऐन मौके पर सारा काम ठप्प कर दिया उसने।" श्रीराम ने सजे हुए मण्डप की ओर देखकर एक निःश्वास छोड़ा।

"वह क्या कहता है?"

"कहता है कि बिरादरी को नाराज करके मैं शादी नहीं करूँगा। समाज के आगे एक लड़की का कोई महत्त्व नहीं।" और तब उसने सारी घटना ज्यों की त्यों कह सुनाई।

पंडित नित्यानन्द तो पीले पड़ गए थे। भीतर के कमरे से गीतों के जो स्वर अब तक सुनाई पड़ रहे थे, वे एकाएक रुक गए। पंडिताइन को गश आ गया और नीलू उसे पंखा झलने लग पड़ी थी। चौधरी बुधीसिंह पत्थर का बुत बना सारे दृश्य को देखता रहा। फिर अचानक अमर ने दाँत पीसते हुए कहा, "मैं देखता हूँ, उस बिरादरी के भक्त को।" और वह देखते ही देखते वहाँ से निकल गया।

कृष्ण के घर आकर उसने देखा कि वह खाट पर लेटा हुआ है। सुभद्रा को घेरकर दो-तीन स्त्रियाँ दूसरे कमरे में बैठी हैं। अमर ने आते ही पूछा, "क्यों भई, यह क्या तमाशा लगा रखा है तुमने?"

"क्या?" कृष्ण ने ऐसे प्रश्न किया जैसे कि उसे किसी बात का पता ही न हो?

अमर ने उसे हाथ से खींचते हुए कहा, "चल उठ, तैयार हो।" कृष्ण शान्ति से बोला, "अमर, मैं फैसला कर चुका हूँ। तुम चाहो तो मेरा गला घोंट दो लेकिन मैं शादी नहीं करूँगा।"

"क्यों"

"क्योंकि वे लोग बिरादरी से बाहर हैं। भैया, मुझे इसी बिरादरी में रहना है। मेरे सुख-दुःख, शादी-ब्याह में बिरादरी ही साथ देगी। मैं उसका विरोध करके शादी नहीं करूँगा।"

अमर न जाने कैसे अपना क्रोध पीये जा रहा था। बोला, "तुम दकियानूसी विचारों इतने बड़े गुलाम हो इसकी मुझे कल्पना नहीं थी।"

कृष्ण हँसकर बोला, "इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।"

'लेकिन जानते हो, तुम उस लड़की की जिन्दगी बर्बाद कर रहे हो?'

"तो तुम चाहते हो कि मैं अपनी जिन्दगी बर्बाद कर लूँ।"

"तुम्हें यह बात पहले ही सोच लेनी चाहिए थी।"

"मैंने तैश में आकर यह फैसला किया था। उस समय मैंने बिरादरी के महत्त्व को नहीं समझा था।"

तुम इतने कायर निकलोगे इसकी मुझे आशा नहीं थी।"

कृष्ण चुप रहा। अमर को लगा तर्क से उससे पार पाना कठिन है। उसका क्रोध ठंडा पड़ गया। अब वह अनुरोध के स्वर में बोला, "कृष्ण, तुम यह कैसे बर्दाश्त कर रहे हो कि तुम्हारे कारण सब लोगों की उम्मीदों पर पानी फिर जाए। चलकर देखो। तुम्हारे स्वागत की तैयारियाँ कितने चाव से की थीं उन्होंने।"

कृष्ण का स्वर और रूखा हो गया, "मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। अगर तुम्हें उनकी उम्मीदों का

इतना ही ख्याल है, इस निरपराध भोली लड़की की इतनी ही चिन्ता है तो खुद क्यों नहीं कर लेते शादी ? जिस लड़की को तुमने अस्वीकार कर दिया उसी से मेरा ब्याह कराना चाहते हो ? धन्य है तुम्हारी उदारता को, तुम्हारी मित्रता को।"

कृष्ण के चेहरे पर कुछ विकृत मुस्कराहट थी। उसके शब्द अमर की छाती में चुभ गए। उसने दाँत पीसकर कहा, "मैंने तुम्हें पहचानने में बड़ी गलती की, तुम बहुत ही घटिया दर्जे के आदमी हो। एकदम जाहिल।"

और वह वहाँ से निकल गया।

बुधीसिंह के घर गाँव के पाँच-सात सयाने समझदार आदमी आ गए थे। सब लोगों की राय थी कि कृष्ण ने बहुत बड़ा अनाड़ीपन दिखाया है। रमा की माँ रो रही थी, लेकिन रमा की मुख-मुद्रा कठोर थी। उसमें दीनता या दुःख नहीं था, केवल क्षोभ था, उग्रता थी। अमर के आने से पहले ही कृष्ण की सारी बातों का पता वहाँ लग चुका था। किसी को कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। अमर भी आकर आँगन में सिर झुका कर बैठ गया। सहसा नीलू तेजी से आँगन में आई, बोली, "लला जी, सोच क्या रहे हो। महूर्त्त टल रहा है। यह मुहूर्त लड़की के जीवन में सिर्फ एक ही बार आता है?"

"तो मैं क्या करूँ?" अमर ने पूछा।

नीलू बोली, "उठो, नहा-धोकर चौकी पर बैठो।"

"मैं?" अमर उसके चेहरे की ओर देखता रहा।

"क्या तुम भी कृष्ण की तरह डरपोक हो कि जात-बिरादरी के सामने सिर नहीं उठा सकोगे?"

अमर को लगा जैसे उसका हृदय पहलू से निकल जाना चाहता है। इससे पहले कि वह कुछ कहे पंडित नित्यानन्द आगे बढ़कर बोले, "हाँ अमर, तुम्हीं इस छोकरी का बेड़ा पार लगा दो।"

उनकी बात का समर्थन दो-तीन और लोगों ने भी कर दिया। अमर को इस घटना के इस नाटकीय परिवर्तन की बिल्कुल आशा नहीं थी यद्यपि वह स्वयं भी इस दिशा में सोच रहा था। कृष्ण के व्यंग्य ने उसे आहत कर दिया था। वह इतना ही कह सका, "लेकिन रमा की इच्छा के विरुद्ध..."

नीलू ने बात काटकर कहा, "रमा तैयार है।"

और एक बार फिर अमर की नजरें नीलू के चेहरे पर टिक गई। वह मुस्करा पड़ी और अमर की धड़कन दुगुनी हो गई।

घटना के इस नाटकीय मोड़ की खबर सारे गाँव में कुछ मिनटों में ही फैल गई। जब तक अमर और रमा दूल्हा-दुल्हिन बन कर मण्डप में बैठे गाँव के मर्द-औरतों की एक खासी बड़ी भीड़ बुधीसिंह के आँगन में जमा हो गई। हरिजनों से भी कई मर्द-औरतें तमाशा देखने के लिए आ गए। पंडित श्रीराम-मन्त्र पढ़ रहे थे। हवन-कुण्ड से उठने वाले सुगन्धित धुएँ से सारा वातावरण भर गया था। औरतों के गीत-स्वर सारे गाँव में फैलने लगे। जिस बिरादरी के

बहिष्कार के कारण यह अद्भुत शादी हो रही थी वह बिरादरी बहिष्कार को भूल कर एक स्वाभाविक इच्छा से इसमें शामिल हो गई।

शादी की रस्म के बाद धाम की व्यवस्था थी। सब लोगों ने पाँत में बैठकर भोजन किया।

अमर सब से आखिरी पाँत में बैठकर भोजन कर रहा था। उसकी नजर पाँत में सब से नीचे बैठे एक व्यक्ति पर पड़ी जो सिर नीचा किए खाए जा रहा था। वह कृष्ण था। अमर को लगा जैसे भोजन का ग्रास उसके गले में फँस जाएगा। खिड़की पर कुछ लड़कियाँ और औरतें बैठी शादी की गालियाँ गा रही थीं। नीलू भी उनमें थी जो बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्करा रही थी।

शादी के साथ-साथ ही घेरा-फेरा (गौना) भी हो गया। रमा के प्रवेश करते ही घर की रौनक बढ़ गई। दूसरे दिन पंडित नित्यानन्द और पार्वती देवी ने बेटी से विदा लेकर खैरा के लिए प्रस्थान किया। लक्ष्मी ने बहू के स्वागत में दिल खोल कर खर्च किया और अब उसे ऐसा लगा कि वह तमाम सांसारिक इच्छाओं से मुक्त हो गई हो।

कृष्ण के प्रति अमर के दिल में अभी तक क्रोध था यद्यपि उसे षड्यन्त्र की गन्ध मिल चुकी थी। इसलिए गौने के दूसरे दिन शाम को जब कृष्ण अमर के घर आया तो अमर ने उसके साथ बात नहीं की। उस समय लक्ष्मी भी उस कमरे में थी। कृष्ण ने जब अमर को मुँह फुलाए देखा तो लक्ष्मी से बोला, "चाची, तुम्हारे लिए एक खुशखबरी लाया हूँ। अमर भैया को समाज-सुधार के लिए राष्ट्रपति-पुरस्कार मिलने वाला है।"

लक्ष्मी ने पूछा, "कौन-सा समाज सुधार किया इसने?"

कृष्ण बोला, "शादी करके एक बेचारी लड़की को सहारा जो दिया। इनका नाम तो समाज-सुधार के इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों में लिखा जाएगा।" और फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए बोला, "जय हो समाज-सुधारक महाराज की।"

नीलू, रमा और लक्ष्मी हँस पड़ीं। अमर ने दाँत पीसते हुए कहा, "अबे ओ कृष्ण के बच्चे, तू मेरे सामने से चला जा, नहीं तो मैं तेरी हड्डी-पसली तोड़ बैठूँगा।" फिर वह माँ की ओर देखकर बोला, "माँ, अगर तूने इस चालबाज आदमी को घर में आने दिया तो मैं गाँव छोड़कर चला जाऊँगा।"

लक्ष्मी बड़ी मुश्किल से हँसी रोक पा रही थी। कृष्ण बोला—

"बच्चू, अब देखता हूँ तू गाँव छोड़कर कैसे जाता है? चाची, जिस दिन इसे जाना हो मुझे पता दे देना, किराया मैं दूँगा।"

अमर कृष्ण को पकड़ने के लिए लपका, कृष्ण तेजी से बाहर की ओर भागा और उसके पीछे अमर भी।

लक्ष्मी, नीलू और रमा तीनों हँसते-हँसते लोट-पोट हो गईं।

तीसरी आँख का दर्द

गदियारी गाँव की कच्ची सड़क पर धूल उड़ाती पुलिस की जीप को देखकर आस-पास के खेतों में काम करने वाले लोगों में भगदड़ मच गई। गेहूँ की पूलियाँ जल्दी जल्दी समेट कर खलिहान में डाली जाने लगीं। विवाहित-अविवाहित जवान लोग जंगल की तरफ भागे। औरतें अपना सामान समेट कर तेजी से घर की तरफ चलीं। शामलात के मैदान में डंगर चराने वाले ग्वालों ने अपने-अपने डंगरों को जोर-जोर से हाँक कर घरों की ओर खदेड़ना शुरू कर दिया।

लेकिन अमर और रमा अपने खेत में दो दराँतियों की सरसराहट के संगीत में डूबे हुए थे। उन्हें अपने आस-पास की सनसनी का कुछ पता नहीं चला। अमर सुबह से ही अपने खेत में आ जुटा था। रमा थोड़ी देर पहले नाश्ता लेकर आई थी। अमर ने बहुत कोशिश की थी कि काम में हाथ बटाने के लिए एक-दो मजदूर मिल जाएँ लेकिन इन दिनों मजदूर मिलना मुश्किल हो रहा था। सब को अपने-अपने खेत का काम था। जिन लोगों के अपने खेत नहीं थे उन्हें सड़क के काम में अच्छी मजदूरी मिल जाती थी। वैसे अमर के पास बहुत लम्बी-चौड़ी जमीन नहीं थी। पाँच द्रुण धानी जमीन थी। इस बार आधी जमीन में उसने गेहूँ बोया था और आधी में तिलहन था। तिलहन के खेत अब खाली हो गये थे, अलसी कट चुकी थी। खाली खेतों में उसके दो बैल और एक बछड़ा चर रहा था।

"सुना आपने? पुलिस की जीप गाँव की तरफ गई है।" बुधीसिंह की आवाज सुनकर अमर की दराँती रुक गई। रमा का काम भी रुक गया। दोनों ने बुधीसिंह की तरफ मुड़ कर देखा। उसकी पत्नी नीलू भी हाथ में दराँती लिये खड़ी थी।

"पुलिस की जीप? कब गई?" अमर ने पूछा।

"अभी-अभी निकली है।" बुधीसिंह ने बताया, "सुना है ठाकुर यशवंतचंद ने इस गाँव के सौ केस देने का वायदा किया है। उसने सोचा होगा कि फसल के दिनों में छापा मारने का सब से अच्छा मौका है।" अमर के चेहरे पर उसके भीतर का गुस्सा साफ झलकने लगा। दराँती की नोक को मेंड़ पर मार कर उसने दराँती को आधा गाड़ दिया। फिर बुधीसिंह की तरफ देखकर बोला, "इस देश को अब तबाही से कोई नहीं बचा सकता। यह इमरजेंसी नहीं, गुंडों का राज है, लेकिन इस देश के लोगों को इसी तरह के गुंडा राज की जरूरत है।

बुधीसिंह अमर की मन:स्थिति भली भाँति जानता था। पिछले दस वर्षों में अमर इस छोटे से गाँव में रहते हुए भी कुछ ऐसे अनुभवों से होकर गुजरा है जिन्होंने उसे भीतर से बेहद कटु बना दिया है। आज से दस साल पहले जब उसने कालेज की पढ़ाई समाप्त करके शहर में कोई नौकरी करने की बजाय गाँव में अपनी खेती पर गुजारा करने की जिद्द पकड़ी थी, उसने अपने मन में अनेक मोहक सपनों को पाला था लेकिन एक एक करके उसके सारे सपने टूट गए थे और वह उन सपनों के खयाल से ही कड़वाहट से भर जाता था। दस साल पहले वह भूमिहीन काश्तकारों के लिए जिनमें अधिकतर छोटी जातियों के लोग थे, ठाकुर यशवन्तचन्द और पंडित दयाराम जैसे बड़े भूमिपतियों से टकराया था। काश्तकारों को फसल का तीन चौथाई हिस्सा दिलाने के लिए उसने लाठियाँ खाई थीं, हाथ-पैर तुड़वाए थे और पुलिस की हवालात की हवा भी खाई थी लेकिन उसके कुछ ही दिन बाद पंचायत के चुनावों में उन्हीं काश्तकारों ने, उन्हीं छोटी जातियों ने ठाकुर यशवन्तचन्द और पंडित दयाराम द्वारा फेंकी गई हड्डियों को चूस कर उसके साथियों को बुरी तरह हरा दिया था। उस समय यदि रमा जैसी लड़की के साथ उसकी शादी न हुई होती तो वह गाँव छोड़कर कहीं चल दिया होता। लेकिन रमा ने न केवल उसके मन-मोहक सपनों को चकनाचूर होने से बचा लिया था बल्कि कुछ सपनों को साकार करने में भी उसने काफी सफलता प्राप्त कर ली थी। अपनी सास लक्ष्मीदेवी, बचपन की सहेली नीलू और अमर के दोस्त कृष्ण की माँ सुभद्रा देवी के सहयोग से उसने गाँव में लड़कियों और औरतों के लिए एक स्कूल, सिलाई-बुनाई का एक सिखलाई केन्द्र, एक हथकरघा केन्द्र शुरू किया था और इस समय आस-पास के गाँव की महिलाएँ भी वहाँ आती थीं। सरकार की तरफ से कुछ अनुदान भी मिलने लगा था। अमर की भी गाँव में काफी इज्जत थी। गाँव के बाहर भी लोग उसके नाम से और उसकी जिद्द से भली भाँति परिचित हो चुके थे। प्रदेश की राजनीति में अमर का प्रवेश तो नहीं था किन्तु राजनीति से जुड़ा हुआ हर आदमी उसे जानता था। कांग्रेस दल के लोग उसे अपने साथ आने का कई बार प्रलोभन दे चुके थे। जमीन-मालिकों और काश्तकारों के झगड़े में जब प्रदेश के मंत्री ने हस्तक्षेप करके उसे पुलिस की हिरासत से छुड़ाया था तो उसे मंत्री की तरफ से अगले चुनावों में टिकट का वायदा भी किया गया था लेकिन अमर राजनीति में जाने को तैयार नहीं हुआ था। इसका कारण यह नहीं था कि वह राजनीति को बुरा समझता था। कारण दरअसल यह था कि जिस ढंग की राजनीति वह करना चाहता था, उसके लिए वहाँ कोई अवसर नहीं था। राजनीति उसकी नजर में रोटी के सवाल से, बेकारी, भुखमरी और गरीबी की बेगैरत जिन्दगी से जुड़ी हुई थी लेकिन जिस तरह की राजनीति उसके चारों ओर मकड़ी के जाले की तरह फैली हुई थी, उसका इन सवालों से कोई मतलब नहीं था। वह केवल कुर्सी से, धन-संग्रह से, अमने स्वार्थों के लिए सत्ता के उपयोग से जुड़ी हुई थी। ऐसी स्थिति में राजनीति से अलग रहने के सिवा उसके आगे कोई चारा नहीं था। दलगत और स्वार्थगत राजनीति से अलग रहते हुए उसने मित्रों के सहयोग से गाँव में एक छोटा सा पुस्तकालय खोला था। दिल्ली, बम्बई और दूसरे शहरों में अपने मित्रों को पत्र लिखकर उसने दान में पुस्तकें प्राप्त की थीं। शादियों-ब्याहों में पुस्तकों के लिए दान माँग कर उसने खुद अपनी मनपसंद पुस्तकें खरीदी थीं। इस समय

'पुस्तकालय में लगभग पाँच हजार पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ थीं। अपने घर के एक कमरे में उसने वाचनालय बना रखा था जिसमें दो समाचार पत्र भी रोज आते थे। अपने घर पर ही उसने उन लोगों के लिए स्कूल भी चला रखा था जो लिखना-पढ़ना सीखना चाहते थे। अखबार पढ़ने वाले अब गाँव में काफी लोग हो गए थे और वे अब पुस्तकालय का लाभ भी उठाने लगे थे। इन सब कारणों से अमर को अब गाँव की जिन्दगी में उतनी नीरसता नहीं लगती थी जितनी कि उसने शुरू में कल्पना की थी। किन्तु इसके बावजूद चारों ओर की पाखंड भरी राजनीति उसके भीतर कटता भरती रही। पिछले दस वर्षों में देश की राजनीति ने जो भौंडा रूप धारण किया था, उसके कारण अमर को राजनीति के नाम से घृणा होने लगी थी।

पुलिस -जीप के आने की खबर पर अमर के इस तरह बौखला उठने का एक कारण शायद यह भी था कि खबर बुधींसिह ने सुनाई थी और बुधींसिह अमर का जिगरी दोस्त होते हुए भी राजनीतिक विचारों में उसका कट्टर विरोधी था। वह इंदिरा गांधी का कट्टर भक्त था और अमर को इंदिरा गांधी तथा उसके आस-पास जुटे नेताओं से चिढ़ थी। पिछले दस वर्षों में उनके विचारों में यह मतभेद बढ़ता रहा था। लेकिन इससे उनकी दोस्ती में, एक-दूसरे के प्रति प्यार में कोई फर्क नहीं आया था। बुधींसिह अमर का पड़ोसी भी था, उसका मित्र भी और किसी तरह की रिश्तेदारी न होते हुए भी भाई जैसी रिश्तेदारी निभाने वाला था। जातिगत दर्जे में बुधींसिह अमर से बहुत छोटा था लेकिन यह जातिगत भेदभाव उनके बीच कभी नहीं आया। बुधींसिह की पत्नी नीलू को अमर भाभी कहकर पुकारता था और अब सारा गाँव उसे नीलू भाभी के नाम से ही जानता था—यहाँ तक कि उसकी बचपन की सहेली रमा भी उसे नीलू भाभी कहकर पुकार बैठती थी।

जब इंदिरा गांधी ने इलाहाबाद हाईकोर्ट फैसले से बचने के लिए इमरजेंसी लागू की थी तो अमर और बुधींसिह के बीच जबर्दस्त बहस हुई थी। उस दिन रमा, नीलू भाभी और लक्ष्मी देवी को भी लगा था कि दोनों में मारपीट हो जाएगी। एक अमर को छोड़कर सभी इंदिरा गांधी के पक्ष में बोले थे और इस बात से अमर और चिढ़ गया था। लेकिन दूसरे ही दिन दोनों एक साथ अमर के खेत में काम करने लग गए थे और राजनीति की सारी कटुता धुल गई थी। फिर जब संजय गांधी को दिल्ली की गद्दी का उत्तराधिकारी बनाने के लिए नसबंदी का अभियान शुरू किया गया था, तब भी दोनों के बीच जबर्दस्त झड़प हुई थी लेकिन जब मकान के लिए शामलात की जमीन का एक करनाल टुकड़ा देने का लोभ दिखाकर हरिजन के इकलौते बेटे की नसबंदी की गई थी और वह मर गया था, तो बुधींसिह अपराधी की तरह सिर झुकाकर अमर की सारी बातें सुनता रहा था। उस दिन बुधींसिह को लगा था कि उसके सोचने में कहीं कोई गलती है। फिर उसने देखा कि वही ठाकुर यशवन्तचन्द और दयाराम जो कांग्रेस सरकार के कानून के अनुसार फसल का तीन चौथाई काश्तकार को देने के खिलाफ गुण्डागर्दी पर उतर आए थे, किस तरह इंदिरा सरकार के सब से बड़े समर्थक बनकर जबर्दस्ती नसबंदी के लिए आदमियों के झुंड जमा करने में लग गए थे और देखते ही देखते शक्तिशाली नेता बन गए थे। फिर जिस दिन बुधींसिह के आठ वर्षीय लड़के मुकुल ने टीके के डर से स्कूल न जाने की जिद की थी और थप्पड़ खाकर भी

दो दिन स्कूल नहीं गया था, उस दिन बुधीसिंह को अमर की बातों में काफी सच्चाई नजर आने लगी थी। हालांकि अमर ने बच्चों को नसबंदी के टीके लगाने की बात को वाहियात और बेबुनियाद बताया था लेकिन बुधीसिंह को यकीन हो गया था कि सरकार के काम करने के ढंग में कुछ बुनियादी खराबी है जिसके कारण बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सब के मन में भय बैठता जा रहा है। नसबंदी के डर से कितने ही नौजवान घरों को छोड़ कर जंगलों, खड्डों और गुफाओं में दिन बिताने लगे थे। इनमें अधिकतर नौजवान हरिजन वर्गों और दूसरे पिछड़े वर्गों से थे क्योंकि तानाशाह की हविस का सब से आसान शिकार यही कमजोर वर्ग हुआ करते हैं।

पुलिस के आने की खबर पर लोगों में भगदड़ मचने का कारण लोगों के मन में बैठा यह आतंक ही था। कुछ किसान जो नसबंदी के लिए पकड़े जा सकते थे, अपने खेतों से सीधे जंगल की तरफ भागे। गाँव के दो तरफ जंगल था, जहाँ आदमी आसानी से छिप सकता था। जंगल के साथ बहने वाली बिन्नू नदी के कगारों में बनी कितनी ही गुफाएँ थीं, जहाँ बड़े आराम से रहा जा सकता था। पुलिस के आने के साथ लोगों का जंगलों और गुफाओं में जा छिपना उन दिनों एक सामान्य बात हो गई थी।

अमर ने मेंड में गड़ी अपनी दराँती को निकाला और उसकी धार से मिट्टी पोंछते हुए बुधीसिंह की तरफ देखकर बोला, "अंग्रेजों के खिलाफ १८५७ में जब पहला विद्रोह हुआ था वह मामूली घटना से शुरू हुआ था। घटना भी नहीं, शायद अफवाह से, क्योंकि कुछ लोग उसमें सच्चाई नहीं मानते हैं. किसी तरह यह खबर फैली कि अंग्रेज की फौज के हिन्दुस्तानी सिपाहियों को जो कारतूस दिए जाते हैं, उनमें गाय की चरबी होती है और दांतों से कारतूस का खोल निकालते समय हर सिपाही का धर्म भ्रष्ट हो जाता है। यह खबर जो किसी अखबार में नहीं छपी, किस तरह सारे देश में फैलकर विद्रोह की आग बन गई, यह एक इतिहास प्रसिद्ध घटना है। जिस दिन मुकुल ने टीके के डर से स्कूल जाने से इन्कार किया था उस दिन मुझे लगा था कि यह अफवाह भी १८५७ की अफवाह की तरह भ्रष्ट सरकार के खिलाफ विद्रोह की आग जलाएगी। अगर चुनाव हुए, और कभी न कभी तो चुनाव कराने ही पड़ेंगे, तो यह नसबंदी ही कांग्रेस को ले डूबेगी। इस देश के लोगों को लोकतन्त्र से कोई गर्ज नहीं है। विरोधी पक्ष के नेता पकड़े गए, किसी ने चूँ नहीं की। जिन कामों की कोई कल्पना नहीं कर सकता था, वे हुए लेकिन लोगों में तब भी कोई फर्क नहीं आया। लेकिन इस नसबंदी ने जो भय लोगों में भर दिया है, वह एक दिन जरूर अपना रंग दिखाएगा।"

"रंग-बंग कुछ नहीं दिखाएगा," बुधीसिंह ने उसकी बात काटते हुए कहा, "इंदिरा गांधी में वह शक्ति है कि वह किसी भी समय चुनाव कराकर जीत सकती है। लोग इंदिरा के नाम पर वोट देंगे।"

रमा को लगा कि दोनों में अब इंदिरा गांधी को लेकर बहस छिड़ जाएगी। वह उठकर गेहूँ की कटाई में लग गई। नीलू भी उसके साथ वहीं गेहूँ काटने लगी। अमर और बुधीसिंह के बीच बहस छिड़ते-छिड़ते रुक गई क्योंकि गाँव का चौकीदार हीरा उन्हें आता दिखाई दिया। वह सीधा उनकी तरफ आ रहा था। चौकीदारी का डंडा हाथ में लिए उसका इस समय खेत में आने

का कोई खास कारण ही हो सकता है, यह सोच कर दोनों उसकी तरफ देखने लगे।

"बझिया!" हीरा पास आकर बोला, "पुलिस के अफसर आए हैं, आपको बुलाया है।"

अमर कुछ न होते हुए भी गाँव का नेता माना जाता था। पुलिस-कचहरी में उसका नाम सब जानते थे। गाँव के मसलों में अमर से सलाह-मशविरा किया जाता था। हीरा की बात से अमर ने समझा कि पुलिस के लोग किसी मशविरे के लिए उसे बुला रहे हैं। "चलो" कहकर वह अपनी चप्पल ढूँढ़ने लगा।

लेकिन हीरा ने कहा, "आपको नहीं, बुधीसिंह बझिया को बुलाया है। लंबरदार-सरपंच भी वहाँ बैठे हैं।"

पुलस के बुलावे से बुधीसिंह एक बार भीतर ही भीतर काँप उठा। लेकिन उसे कारण समझ में नहीं आया। अमर को भी आश्चर्य हुआ कि बुधीसिंह का एक ही बच्चा है, फिर उसे क्यों बुलाया गया। रमा और नीलू भी अपना काम बन्द करके वहाँ आ गईं।

"चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।" अमर बोला, "इन अफसरों के दिमाग खराब हो गए हैं।" बुधीसिंह कई तरह की आशंकाएँ लेकर अमर के साथ चल पड़ा।

गदियारी गाँव के सरपंच पं० दयाराम की कोठी महत्त्वपूर्ण बैठकों के काम आती है। सरकार के बड़े अधिकारियों के अतिथि-सत्कार में किसी तरह की कमी न आए, इस बात के लिए पं० दयाराम बड़े सजग रहते थे।

जब चौधरी बुधीसिंह अमर के साथ कोठी के गेट पर पहुँचा तो उसका दिल कोई कारण न होते हुए भी धड़क रहा था। वरांडे में ही पं० दयाराम, लंबरदार ठाकुर यशवन्तचन्द और पुलिस की वर्दी में दो आदमी बैठे हुए थे। उनके साथ एक आदमी सादा कपड़ों में भी था जो पुलिस के अफसरों के साथ बैठा हुआ था। उनके अलावा गाँव के कई लोग वहाँ जमा थे। सारे वरांडे में दरी बिछी हुई थी। बाहर से आए मेहमान मसनदों के सहारे दीवार के साथ टिक कर बैठे हुए थे। उनके सामने गाँव के बड़े बूढ़े आदमी दरी पर विराजमान थे।

अमर और बुधीसिंह को देखते ही सरपंच पं० दयाराम ने उन्हें आगे आ जाने के लिए कहा। लेकिन बुधीसिंह सब से पीछे दरी पर संकोच के साथ बैठ गया। अमर को पं० दयाराम ने हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया।

ठाकुर यशवन्तचन्द ने बात शुरू की। अमर की तरफ देखते हुए उसने बुधीसिंह को सुनाकर कहा, "ये लोग मुरली का वारंट लेकर आए हैं।" "मुरली?" अमर ने चौंक कर उनकी तरफ देखा। बुधीसिंह को लगा कि वह दरी पर बैठा-बैठा उछल कर छत से जा टकराएगा।

"हाँ, हाँ मुरली। बुधीसिंह का छोटा भाई! बम्बई की पुलिस उसकी तलाश में है।" यशवन्तचन्द ने बात स्पष्ट की।

अमर ने बुधीसिंह की तरफ देखा। बुधीसिंह के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई। वह

अपनी जगह से उठ कर बोला—

"मेरा भाई मुरली? कहाँ है वह? वह जिन्दा है! वह जिन्दा है!" और वह आगे कुछ नहीं कह सका। खुशी के मारे वह रोने लगा। बच्चे की तरह सिसक-सिसक कर। फिर आगे आकर उसने पुलिस अफसर के पैर पकड़ लिये।

"इन्स्पेक्टर साहब, आप सारी बात बताइए। कहाँ है मेरा भाई? क्या वह जिन्दा है? कहाँ रहता था? क्या करता था? उसने क्या किया है?" बुधीसिंह बच्चों की तरह पुलिस अफसर के कदमों से लिपट गया।

पुलिस अफसर ने कहना शुरू किया, "भई, हम यह नहीं जानते कि वह तुम्हारा भाई है या नहीं। यह साहब बम्बई से आए हैं। इन्हें मुरलीधर शास्त्री नाम के एक आदमी की तलाश है। वह एक खतरनाक मजदूर नेता है। वहाँ की एक मजदूर यूनियन का सेक्रेटरी है। सरकार ने उसके नाम वारंट निकाला है। उसके घर की तलाशी लेने पर हमें कुछ कागजों में इस गाँव का पता चला। पुलिस कई दिनों से उसकी तलाश कर रही है। हमें पता चला कि वह बम्बई से निकलकर पंजाब, हिमाचल प्रदेश की तरफ गया है।"

सादा वरदी पहने पुलिस अफसर ने हाथ में लिये फोटो को उसके आगे बढ़ा कर कहा, "यह है उसका फोटो। क्या आप इसे पहचान सकते हैं?"

अमर ने फोटो लिया और फिर उसे बुधीसिंह को थमा दिया। बुधीसिंह बड़े ध्यान से फोटो को देखता रहा और उसकी आँखों से आँसू बहते रहे।

"हाँ-हाँ यह मेरा भाई मुरली ही है। ठीक वही नाक-नक्शा। यह माथे का निशान भी वही है। बचपन में वह खिड़की से नीचे गिर गया था। बहुत बड़ा हो गया है मेरा भाई।"

फिर उसने लपक कर अमर का हाथ पकड़ लिया, "तुम देखो न? यह मेरा भाई ही है न? तुम तो उसके बचपन के साथी रहे हो। मेरी आँखें धोखा तो नहीं खा रही हैं?"

अमर के मन में कोई संदेह नहीं था। वह मुरली का ही चित्र था। उसी मुरली का जो तेरह-चौदह साल की उम्र में घर से भाग गया था और सब लोगों ने मान लिया था कि वह मर गया है। बुधीसिंह की तरह अमर के लिए भी यह अत्यन्त प्रसन्नता का क्षण था। अभी कुछ क्षण पहले जब बुधीसिंह के साथ सरपंच की कोठी में प्रवेश किया था तो वह पुलिस के अत्याचारों की कल्पना करके आशंकित था। मुरली के जीवित होने के समाचार ने अचानक उसकी मानसिक स्थिति में जो जबर्दस्त सुखद आलोडन किया उसकी मार को सह पाना उसके लिए भी कठिन हो रहा था। बुधीसिंह की मनःस्थिति की कल्पना वह आसानी से कर सकता था। बीस वर्ष से बिछुड़े हुए भाई को उसने मृत मान कर अपने दिल को किसी तरह समझा-बुझा लिया था किन्तु बीस साल बाद अचानक उसके जीवित होने के समाचार ने उसमें इतनी खुशी भर दी कि वह यह भी भूल गया कि मुरली पुलिस की नजरों में एक खतरनाक अपराधी है और उसकी तलाश हो रही है। उसकी इच्छा हो रही थी कि वह यहाँ से उठकर घर भाग जाए और नीलू को यह खबर सुनाए। किन्तु वह बैठा रहा वहीं; फोटो को निहारता हुआ और टप-टप आँसू बहाता हुआ। फिर सादा वर्दी में पुलिस के अफसर की बात सुनकर वह चौंक पड़ा। "हम यह

साफ-साफ जानना चाहते हैं कि तुमने अपने भाई को कहाँ छिपाया है?" उसने कहा।

बुधीसिंह ने निरीह दृष्टि से अमर की ओर देखा। अमर बोला, "क्या आपको विश्वास नहीं हो रहा कि हमें उसके जीवित होने की सूचना पहली बार मिल रही है? ऐसी स्थिति में उसके यहाँ आने का और हमारे द्वारा उसको छिपाए जाने का सवाल कहाँ उठता है?"

"देखिए साहब!" वह अफसर कहने लगा, "हम पुलिस वालों का काम है अपराधी का पता लगाना। अपराधियों को पुलिस की नजरों से छिपाने के लिए उनके रिश्तेदार कई तिकड़म करते हैं। ऐसे लोगों से हमारा आए दिन वास्ता पड़ता है। अगर हम उनकी हर बात पर विश्वास करने लगें तो हमारा काम हो चुका।"

"लेकिन आप गाँव के इन तमाम लोगों से पूछ लीजिए।"

ठाकुर यशवन्तचन्द्र बीच में बोल उठे—

"हम लोग तो यही मानते रहे हैं कि मुरली अब इस दुनिया में नहीं है। आपने जो खबर सुनाई उससे सारे गाँव को खुशी हुई है। जहाँ तक उसके यहाँ छिपने का सवाल है, मेरे ख्याल से इस बात पर सभी सहमत हैं कि मुरली न तो यहाँ आया है और न किसी ने उसे देखा है। मैं तो कहता हूँ कि अगर वह सचमुच जिन्दा है तो हमें उसे पुलिस की हवालात में भी देखकर खुशी होगी क्योंकि वह चोर-उचक्का नहीं, एक राजनीतिक कैदी है।"

"लेकिन उस पर चार सौ बीसी का शुबह भी है। उसे वहाँ कई नामों से जाना जाता है। कहीं पर वह पंडित मुरलीधर शास्त्री बन जाता है, कहीं सिर्फ मुरलीधर शास्त्री, और कहीं मास्टर जी। इन अलग-अलग नामों से पता नहीं वह क्या-क्या धंधे करता रहा है।"

पुलिस अफसर की इस बात से कर्मकाण्डी पंडित देवीदत्त उछल पड़े, "वह अपने को पंडित कहता है?"

"वह कहता है या नहीं, यह तो मैं नहीं बता सकता लेकिन पास-पड़ोस के लोग उसे पंडित मुरलीधर शास्त्री नाम से भी जानते हैं।"

देवीदत्त ने इस पंडित शब्द को लेकर बेकार की चर्चा उठानी चाही लेकिन अमर ने उसे बीच में ही टोक दिया, "पंडित जी, आप सिर्फ जन्म से पंडित हैं और मुरली कर्म से पंडित है। पंडित का अर्थ है विद्वान्, पढ़ा-लिखा।" देवीदत्त खिसिया कर चुप हो गया। बुधीसिंह अपने भाई के बारे में सब कुछ जान लेने को उत्सुक हो रहा था। उसने पूछा—

"इन्स्पेक्टर साहब, आप मुरली के बारे में सारी बातें बताएँ तो बड़ी कृपा होगी। वह कहाँ रहता था? क्या करता था? उसने सरकार के खिलाफ क्या किया है? आप कहते हैं कि वह खतरनाक अपराधी है तो उसने कौन सा खतरनाक काम किया है?"

"देखिए, मैं बता चुका हूँ। वह पोलिटीकल वर्कर है, यूनियन का सेक्रेटरी है। सरकार का तख्ता पलटने के एक षड्यंत्र में उसका हाथ माना जाता है, इसलिए उसके वारंट निकले हैं।"

बुधीसिंह को उसकी बात पर जरा भी विश्वास नहीं हो रहा था। लेकिन अमर की छाती गर्व से फूली जा रही थी कि उस गाँव में एक तो कोई जवाँमर्द निकला।

पुलिस के अधिकारी पूछताछ के बाद पूरी तरह संतुष्ट हो गए कि मुरलीधर शास्त्री इस

तरफ नहीं आया है। इस बीच सरपंच पं० दयाराम ने उनके लिए हलुआ और चाय का प्रबन्ध कर दिया था। चलते-चलते पुलिस के अफसर ने बुधींसिह की तरफ देखकर कहा, "अगर वह यहाँ आए तो पुलिस को खबर देना तुम्हारा काम है। पुलिस से किसी तरह का धोखा किया तो मुसीबत में पड़ जाओगे।"

पुलिस की जीप उसी तरह धूल उड़ाती वापस चली गई। बुधींसिह और अमर तेजी से निकल कर घर की तरफ चले।

अमर और बुधींसिह वहाँ से निकले तो दिन डूबने जा रहा था। बुधींसिह जैसे नींद में चलता जा रहा था, एक सपने की मोहिनी में बँधा हुआ वह उस स्थिति से नहीं उबरा था जो कुछ देर पहले अचानक उसके सामने प्रकट हुई थी। अमर दूसरी दिशा में सोच रहा था। तानाशाह को चुनौती देने वाले मुरली के प्रति उसका मन श्रद्धा से भर गया था। उसकी इच्छा हो रही थी कि वह उससे मिले, बातें करें। जिस चीज के लिए उसका मन हृदय कई दिनों से आतुर हो रहा था, उसे मुरली में देख कर उसे अत्यंत प्रसन्नता हो रही थी। उसे लगा, जो कुछ पुलिस कहती है अगर वह सच है तो मुरली जरूर इस तरफ आया होगा और एक-दो दिन में जरूर भेंट होगी। उसने यह बात बुधींसिह से कही, "मुझे लगता है, वह एक-दो दिन में यहां आने वाला है।"

उसकी बात सुनकर बुधींसिह जैसे नींद से चौंक पड़ा।

"नहीं नहीं, उसे यहाँ नहीं आना चाहिए। पुलिस को पता चल गया तो उसे पकड़ कर ले जाएगी। उसकी दुर्गत बना देगी। सुना है जेल में इन लोगों को कई-कई दिन भूखा रखा जाता है, बड़ी बेरहमी से पीटा जाता है, बूटों के नीचे हड्डियाँ कुचल दी जाती हैं।"

पुलिस की यातनाओं की कल्पना ने थोड़ी देर के लिए बुधींसिह की उस खुशी को भुला दिया जो उसे भाई के जीवित होने के समाचार से मिली थी। अमर ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—

"बुधींसिह, तुम्हारा भाई मामूली आदमी नहीं है। बम्बई का एक प्रसिद्ध कार्यकर्ता है जिसने अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने का साहस किया है। कितने लोग हैं इस देश में जिन्होंने तानाशाह के खिलाफ आवाज उठाई हो? बड़ी-बड़ी बातें करने वाले, बड़े जोशीले भाषण देने वाले भीगी बिल्ली बनकर रह गए हैं। नेता लोग चुपचाप जेलों में चले गए और उनके हजारों लाखों वर्कर जिनकी वे डींग मारा करते थे, चूहे के बिलों में छिपे बैठे हैं। इन सब लोगों से मुरली बहुत ऊँचा है। वह सिद्धान्त के लिए जीना और सिद्धान्त के लिए मरना जानता है। पुलिस उसका क्या कर लेगी? सरदार भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद और उनके क्रांतिकारी साथी क्या पुलिस से डरते थे? पुलिस से आँख-मिचौनी खेलने में इन वीरों को मजा आता है।"

"अमर भैया, तुम शायद नहीं जानते। मेरा भाई दुबला-पतला लड़का है। वह मार से बहुत डरता है। एक बार पंडित जी ने झूठ बोलने के लिए उसके हाथ पर चार डंडे मारे थे। वह तीन दिन स्कूल नहीं गया था। एक दिन पिताजी की मार के डर से वह घर से भाग गया था और रात उसने पेड़ के ऊपर बैठकर बिताई थी।"

अमर उसकी बातें सुन कर हँस पड़ा।

"तुम समझते हो, वह अभी वैसा ही दुबला-पतला और डरपोक बच्चा है? बीस साल में वह कुछ भी नहीं बदलेगा?"

"कितना बदल जाएगा? दाढ़ी-मूँछ आ जाएगी, लेकिन रहेगा तो वही मुरली।"

बुधीसिंह के घर के पास पहुँच कर उन्होंने देखा कि आँगन में चार-पाँच औरतें खड़ी बातें कर रही हैं। अमर ने देखा कि नीलू भाभी के साथ रमा और माँ जी भी हैं। पड़ोस की भी एक-दो औरतें वहाँ थीं। शायद उन्हें सरपंच की कोठी में हुई बातचीत की खबर मिल गई थी और वे उसी की चर्चा कर रही थीं। अमर और बुधीसिंह को देखते ही सब चुप हो गईं। लक्ष्मी देवी ने पूछा—

"क्या सचमुच पुलिस मुरली की खबर लेकर आई थी?"

अमर ने दोनों बाहों में माँ को भरकर कहा, "हाँ माँ, पुलिस मुरली को पकड़ने के लिए आई थी। मुरली जिंदा है, सही मायनों में जिंदा है। वह बहुत बड़ा आदमी है। अगर वह यहाँ आ जाए तो मैं उसके पैर धोकर पीऊँगा। उसने अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाई है। उसने तानाशाही ताकत से लोहा लिया है।"

नीलू अपने आँसुओं को पोंछते हुए बोली, "बाहर खड़े-खड़े कितनी देर हो गई है। अन्दर चलो। मैं चाय बनाती हूँ।"

इतने में मुकुल कहीं से दौड़ कर आया और बुधीसिंह की टाँगों से लिपट कर बोला, "पिताजी! मुरलीधर शास्त्री कौन हैं?"

बुधीसिंह ने उसे गोद में उठा लिया, "तुम्हारा चाचा है।"

"मेरे चाचा कहाँ रहते हैं? मैंने उन्हें कभी देखा नहीं। यहाँ नहीं आते?"

"अब आएँगे बेटा! बहुत दूर रहते हैं, बम्बई में। बड़ी पढ़ाई करने गए थे। अब आ जाएँगे।"

"मैं भी उनके साथ बम्बई जाऊँगा। बड़ी पढ़ाई मैं भी करूँगा।"

"हाँ, हाँ, तुम जल्दी-जल्दी अपने स्कूल की पढ़ाई खत्म करो फिर चाचाजी के साथ बम्बई चले जाना।"

पड़ोस की औरतें अपने-अपने घर चली गईं लेकिन रमा और लक्ष्मीदेवी को नीलू ने अन्दर खींच लिया। नीलू ने चाय बनाई। खाना भी सब का वहीं हुआ। बड़ी रात तक वे दोनों परिवार मुरली के बारे में बातें करते रहे।

पठानकोट के बस अड्डे पर पूछ-ताछ करने पर उसे पता चला कि पौने नौ बजे के बाद साढ़े दस पर एक बस बैजनाथ जाएगी। पौने नौ बजे वाली बस में अभी काफी सीटें खाली थीं लेकिन उसने अगली बस से जाने का निश्चय किया। शाम को चार बजे के करीब यह बस उसे बैजनाथ पहुँचाएगी और यह उसकी दृष्टि से बहुत उपयुक्त समय होगा। वह शाम के समय ही

वहाँ पहुँचना चाहता था। उसने साढ़े दस बजे वाली का टिकट ले लिया और ड्राइवर के ठीक पीछे वाली सीट पर अपना अटैची केस रख दिया। एयर बैग को कंधे से लटकाए वह इधर-उधर टहलने लगा।

उसके बाल हिप्पियों की तरह बढ़े हुए थे। दाढ़ी-मूँछ के बाल भी काफी लम्बे थे। चमड़े की जैकेट और काफी चौड़ी मोहरी की जीन पहने तथा आँखों पर हल्के हरे रंग का चश्मा चढ़ाए वह एक अत्याधुनिक फिलासफर या कलाकार लग रहा था। गोरा-चिट्टा रंग, मझोला कद, हल्का-फुल्का किंतु चुस्त शरीर, आँखें बड़ी लेकिन जैसे सपनों में खोई हुई। जो सामने दीखता है उसे न देखकर उसके पीछे जो नहीं दीखता है उसे देखने की जिद्द को पकड़े हुए ये आँखें दूसरों को सपनों में डूबी हुई ही लगती थीं लेकिन उन आँखों में बच्चों की सी जिज्ञासा और उत्सुकता थी। हर चीज में उनके लिए आकर्षण था, हर दृश्य नई दुनिया के उन्मेष की अनुभूति देता था।

बस अड्डे के साथ चाय की कई दुकानें थीं। वह एक दुकान के आगे जाकर खड़ा हो गया।

"बैठिए बाबूजी, चाय बनाऊँ?" एक मैले से कपड़े पहने लड़के ने पूछा।

"नहीं" कहकर वह उस लड़के को ध्यान से देखने लगा।

"बैठिए बाबूजी गरम-गरम चाय पिलाता हूँ।" उस लड़के ने फिर कहा। लेकिन वह उस लड़के को देखकर जरा मुस्कराया और आगे बढ़ गया। चाय की अगली दुकान पर उसे फिर एक मैले-कुचैले लड़के ने चाय पीने के लिए आमंत्रित किया और वह उसी तरह मुस्करा कर अगली दुकान के सामने पहुँच गया। एक-एक करके सभी दुकानों पर वह गया और सब जगह उसका स्वागत फटे-पुराने कपड़े पहने एक बालक ने किया। वह दूर किन्हीं सपनों में खो गया और उदास मन लिये लौट पड़ा। उसके मन से आवाज उठ रही थी, "बीस साल में कहीं कुछ नहीं बदला। सब कुछ ज्यों का त्यों है, सिर्फ मैं बीस साल बूढ़ा हो गया हूँ।" वह लौट कर अपनी सीट पर आ बैठा। जेब से सिगरेट का पैकेट निकालकर एक सिगरेट सुलगा ली। धीरे-धीरे धुएँ के दायरे खिड़की से छोड़ता हुआ वह बस के चलने की प्रतीक्षा करने लगा।

बीस साल पहले वह इसी अड्डे पर किसी एक चाय की दुकान पर फटे से कपड़े पहने ग्राहकों को चाय पीने के लिए आमंत्रित करता था। उसे दो वक्त खाना और बीस रुपया महीना वेतन मिलता था। इन बच्चों को बीस की बजाय पचास-साठ मिलता होगा। बात तो वहीं की वहीं है। उसे उन बीस रुपयों से बेहद संतोष मिला था क्योंकि वह नौकरी पर लगा था, अपने पाँव पर खड़ा था और हर महीने बीस के बीस बचा रहा था। शायद इन लड़कों को भी उतना ही संतोष मिलता हो क्योंकि वे नौकरी पर थे, कुछ कमा रहे थे, और यह अपने में बहुत बड़ी बात है। पेट की लड़ाई में छोटे से छोटा सिपाही भी बहुत मददगार सिद्ध होता है।

लेकिन उसने क्या किया? उसने अपना सिपाही का फर्ज कहाँ अदा किया? पेट के लिए पिता जिस संघर्ष में लगे हुए थे, उसमें उसने कहाँ योगदान दिया? वह तो जिंदगी से भागने वाला कमजोर और बुजदिल आदमी सिद्ध हुआ।

उसे अपने पिता का चेहरा साफ-साफ अब भी दिखाई दे रहा था। जबड़ों की दोनों हड्डियाँ काफी बड़ी और तनी हुई जो चेहरे को एक कठोर रूप देती थीं लेकिन पतली और कुछ

आगे की ओर निकली हुई ठोड़ी और मोटी घनी मूछें उनके चेहरे को बहुत प्यारा बना देती थीं। उसे याद है जब वे उसे गोद में उठाकर उसके गालों पर अपनी मूछें छुआते थे तो उसे बड़ी गुदगुदी होती थी और वह उनकी गोद से निकल भागने की कोशिश करता था। इन मूँछों के डर से वह उनकी गोद में बैठने से कतराता था लेकिन उनके पास बैठकर कहानी सुनने को वह बहुत उत्सुक रहता था। कहानी तो माँ भी अच्छी सुनाती थी लेकिन माँ की कहानियों में डूब-डूब जाने वाली बातें होती थीं, कहीं अचरज से आँखें फटी रह जाती थीं, कहीं आँसू उमड़ने लगते थे। माँ कहानी सुनाते-सुनाते अक्सर रुक जाती थी, उसका गला भर आता था और उसे आँसू पोंछने पड़ते थे। ऐसे मौके पर उसकी आँखों में बार-बार गीलापन हो जाता था। लेकिन पिताजी की कहानियाँ हँसाने वाली और मन में जोश भरने वाली होती थीं। जँगली जानवरों की कहानियों का जैसे उनके पास भण्डार था। लेकिन जब हँसाने पर आते तो शब्दों से हँसा देते थे। कौवे और चिड़िया की कहानी उनके मुँह से जैसे सुनी थी वैसे अब भी उसे याद है। शब्द संगीत के साथ उस कहानी को सुनाने के लिए वह अक्सर उनसे जिद्द किया करता था और हर बार वह कहानी नई सी लगती थी। एक थी, चिड़िया एक था कौवा। कौवे ने चिड़िया से कहा, "चिड़िया-चिड़िया, मुझे बहुत भूख लगी है। मुझे अपना एक बच्चा खाने को दे।" चिड़िया बोली, "तुम्हारी चोंच गंदी है, जाओ इसे कुएँ पर धोकर आओ।" कौवे ने कुएँ से पानी माँगा। कुएँ ने उससे कुम्हार से घड़ा लाने को कहा। कुम्हार ने मिट्टी लाने के लिए कहा। मिट्टी माँगने वह गड्ढे के पास गया तो उसने बकरे के पास सींग लाने के लिए भेजा। इसी तरह कहानी लम्बी चलती जाती थी। कहानी का आकर्षण था कौवे का संवाद जो कविता में एक-एक पंक्ति लंबा होता जाता था और अंत में लोहार के पास पहुँच कर वह बहुत लम्बा हो जाता था—

'तुम लुहारराज मैं कागराज
लेऊँ दँतरुवा, काटूँ घसरुवा
देऊँ गऊरवा, दूहूँ दुधरुवा
पिये बकरुवा, लड़े सँभरुवा
टूटे सिगरुवा, खुनूँ मिटरुवा
देऊँ कुम्हरुवा, घड़ूँ घड़रुवा
भरूँ पनरुवा, धोऊँ चुँचरुवा
खाऊँ चिड़ी के बच्चे
काँव काँव भई काँव काँव

लोहार कौवे को दराँती देकर कहता है, "कैसे ले जाओगे?" कौवा कहता है, "मेरी गर्दन पर रख दो।" लोहार कौवे की गर्दन पर तेज धार वाली दराँती रख देता है। जैसे ही कौवा उड़ता है उसकी गर्दन कट जाती है।

वे किसी स्कूल में नहीं गए। घर पर ही उन्होंने टाँकरी लिखना-पढ़ना सीख लिया था। गाँव के मास्टर पंडित अनिरुद्ध से उनकी अच्छी दोस्ती थी। दोनों हमउम्र थे। रोज एकाध बार उनके बीच गप्पबाजी होती थी। इस गप्पबाजी के क्षणों में ही उन्होंने मास्टर जी से धीरे-धीरे

उर्दू पढ़ना सीख लिया था लेकिन लिखना सिर्फ टाँकरी में ही आता था। किताबें पढ़ने का सवाल नहीं उठता फिर भी बच्चों को सुनाने के लिए कहानियाँ और बड़ों की बैठक के लिए मार्मिक दृष्टांतों का उनके पास काफी बड़ा खजाना था। संगीत भी उन्होंने गाँव में रहकर बुजुर्गों और अपने साथियों से सीखा था। ढोलक बहुत अच्छी बजाते थे और शास्त्रीय गाने गा भी लेते थे। होली आदि के मौकों पर अक्सर महफिल जमती थी और उसमें उनका रहना बहुत जरूरी समझा जाता था। गाँव में किसी भी घर में शादी-ब्याह वगैरह कोई कारज होता तो उनसे सलाह जरूर ली जाती। घर में कोई बीमार पड़ जाता तो भी उनकी राय ली जाती। वे खुद वैद्य नहीं थे लेकिन देसी जड़ी-बूटियों का उन्हें अच्छा ज्ञान था और उनकी पहचान भी थी। वैसे फोड़े-फुंसियों के इलाज और टूटी हड्डी को जोड़ने वाले गाँव में अकेले वही थे। इसलिए गाँव के 'वैद जी' के साथ भी उनकी बड़ी मिली-भगत थी।

चितू चौधरी का जन्म इस गाँव में नहीं हुआ था लेकिन वे छुटपन से ही यहाँ पले थे। उनकी माँ छाँगी और पिता बूटाराम शादी के बाद यहाँ आकर रहने लगे थे। छाँगी की माँ ने जिसे सारा गाँव 'जी' (सास) कहकर पुकारता था। बूटाराम को चितू के जन्म के बाद घर-जमाई बना लिया था। नानी के कठोर अनुशासन में पले और माँ के लाड़-प्यार में बड़े हुए चितू चौधरी में दोनो गुण समा गए थे। पिता की अकेली संतान होने के कारण वे छुटपन में ही घर की जिम्मेदारियों को समझने लग गए थे। पिता का स्वर्गवास होने के बाद सारे घर का बोझ उनके कंधों पर आ पड़ा। उस समय उनकी उम्र बाईस-तेईस साल रही होगी। घर का गुजारा चलाने का एकमात्र साधन था बटाई पर खेती। अपनी जमीन पर खेती करने का सवाल ही नहीं उठता था। घास-फूस के छप्पर वाला कच्चा मकान भी दूसरों की जमीन पर बना हुआ था। गाँव के दो बड़े जमींदार थे पंडित विद्यासागर और मिया घुमनचन्द। आस-पास के कई गाँवों के लोग उनकी जमीन ही बटाई पर लेते थे। चितू चौधरी शुरू से ही पं० विद्यासागर के बटाईदार रहे। उन दिनों फसल का दो तिहाई मालिक को मिलता था और एक-तिहाई काश्तकार को मिलता था। दो टोपे जमीन बटाई पर ले रखी थी, इस पर भी साल भर के लिए मुश्किल से अनाज पूरा होता था। जिस साल फसल खराब हो जाती, फाकों की नौबत आती। लेकिन यह स्थिति कुछ घरों को छोड़कर बाकी सब घरों में थी।

चितू चौधरी की शादी की याद गाँव के सब बड़े-बूढ़ों के मन में ताजा है। इसलिए नहीं कि शादी बड़ी धूम-धाम से हुई थी बल्कि इसलिए कि जब चितू की दुल्हन लच्छो की डोली आँगन में उतरी थी तो धरती दोहरी होकर रह गई थी और जिस घास-फूस के छप्पर वाले घर में दुल्हन को प्रवेश करना था वह चरमराकर बैठ गया था। गाँव का एक भी घर उस भूचाल में नहीं बचा था। काँगड़ा का वह प्रसिद्ध भूचाल कितनी जानें ले गया इसकी गिनती न हो सकती थी, न किसी ने की। लेकिन उस गाँव में एक भी आदमी दब कर नहीं मरा था। जिस समय भूचाल आया, लच्छो दुल्हन की आरती उतारने के लिए घर की सब मेहमान औरतें बाहर आँगन में निकल आई थीं। पास-पड़ोस के बच्चे भी तमाशा देखने के लिए आँगन में जुट आए थे। घर बिल्कुल खाली हो गया था, इसलिए इतना बड़ा भूचाल आने पर भी कोई दब कर नहीं मरा। दूसरे दिन आँगन

के दूसरे छोर पर बड़े-बड़े बाँसों पर एक छप्पर खड़ा किया गया और उसी में दुल्हन को ले जाया गया था। भूचाल के झटके साल भर आते रहे और साल भर सैकड़ों गाँवों के हजारों लोग इस तरह के बाँस के छप्परों में दिन काटते रहे।

साल के बाद जब भूचाल का डर लोगों के मन से निकल गया तो लोग अपने-अपने घर बनाने लगे लेकिन चितू चौधरी पाँच साल तक अपना घर नहीं बना सका। दो टोपे जमीन की आमदनी से घर का खर्च भी मुश्किल से चलता था। ज्यादा जमीन बटाई पर लेने की हिम्मत नहीं थी क्योंकि खेत में काम करने वाले वे पति-पत्नी दो ही थे। नानीजी के स्वर्ग सिधारने के बाद घर का सारा काम छाँगी माँ करती थी और जब वह भी चल बसी तो लच्छो पर घर और बाहर दोनों का काम आ पड़ा। फिर भी फुर्सत के दिनों में गुम्मे की नमक की खान में मजदूरी करके उन्होंने घर के लिए कुछ रुपये जमा किए और भूचाल के पाँच साल बाद धूप से पकी ईंटों और घास-फूस के छप्पर वाला मकान बना लिया।

इसी घास-फूस के छप्पर के नीचे चितू चौधरी के तीन लड़कों का जन्म हुआ। बड़ा लड़का जनक, उससे छोटा बुधीसिंह और सब से छोटा मुरली।

जनक की उस घर में सिर्फ याद बाकी है। लेकिन वह ऐसी याद है जो दीवारों की मिट्टी में और छप्पर के एक-एक तिनके में समाई हुई है। गाँव की हिंदी-संस्कृत पाठशाला में वह पं० सोहनलाल का प्रिय शिष्य था। उसकी कुशाग्र बुद्धि पर पंडित सोहनलाल को गर्व था और वे उसे बेटे की तरह प्यार करते थे। वे जनक को संस्कृत पढ़ाना चाहते थे और गाँव के दूसरे सवर्ण उनकी आलोचना करते थे कि शूद्र के लड़के को संस्कृत पढ़ाकर वे देव-वाणी को भ्रष्ट कर रहे हैं।

चितू चौधरी अस्पृश्य तो नहीं थे लेकिन शूद्रों में तो आते ही थे। ब्राह्मण, राजपूत और बनियों को छोड़कर शेष सभी जातियाँ शूद्रों में गिनी जाती थीं। खेती-बाड़ी और विभिन्न कारीगरी के कामों पर गुजारा करने वाली इन जातियों में चौधरियों की संख्या सब से अधिक थी। सारे जनजीवन की रीढ़ होते हुए भी शूद्र होने के कारण इनके लिए ज्ञान के दरवाजे बन्द थे और इन्हें संस्कृत जैसी पवित्र वाणी की शिक्षा देना तो महापाप माना जाता था। लेकिन पंडित सोहनलाल सही मायनों में गुरु थे और एक योग्य शिष्य को पाकर वे धन्य हो उठे थे।

लेकिन चितू चौधरी की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि पाठशाला की पढ़ाई के बाद जनक को संस्कृत की पढ़ाई के लिए दूर किसी शहर में भेजा जाता इसलिए जनक पाठशाला की पढ़ाई के बाद खेत में पिता का हाथ बटाने लगा। पंडित सोहनलाल को इस बात से बड़ा दुःख होता था किंतु वे भी लाचार थे।

एक दिन जनक कंधे पर हल उठाए, बैलों को हांकता हुआ खेत की तरफ जा रहा था कि सामने से पंडित जी आ गए। जनक ने कंधे से हल को उतार कर जमीन पर रखा और पंडितजी के पांव छुए। पंडितजी ने मुस्कराकर कहा, "क्यों भई, यह हल ही जोतना था तो मेरी पाठशाला में संस्कृत क्यों पढ़ी थी?"

जनक से कोई उत्तर नहीं बना। लज्जा से सिर झुकाकर वह खड़ा रहा। पंडित सोहनलाल

ने उसके कंधे पर हाथ रख कर अपने पास खींच लिया और बोले, "चलो कोई बात नहीं। आदमी का क्या बस चलता है, जो भगवान् को मंजूर होगा वही होगा।" और वे भारी मन से आगे बढ़ गये। लेकिन जनक बड़ी देर तक वहीं खड़ा न जाने क्या-क्या सोचता रहा।

उसी दिन जनक हल-बैलों को खेत पर छोड़कर चुपचाप कहीं चला गया। चितू चौधरी जब खेत पर आए तो देखा बैल चर रहे थे, हल पड़ा था लेकिन जनक का कहीं अता-पता नहीं था। उन्होंने सोचा, लड़कों के साथ खेलने-कूदने कहीं गया होगा। दोपहर हो गई। जनक नहीं लौटा। फिर शाम हो गई। जनक का कहीं पता नहीं। इधर-उधर ढूँढा, गाँव के लड़कों से पूछताछ की लेकिन किसी ने उस दिन जनक को नहीं देखा था। सोचा किसी रिश्तेदार के घर चला गया होगा। दूसरे दिन चितू चौधरी अपने रिश्तेदारों के यहाँ उसे देखने गए। जब वहाँ भी उन्हें लड़का न मिला तो बड़े चिंतित हुए। पंडित सोहनलाल से भेंट हुई तो उन्होंने बताया कि उस दिन सुबह खेत जाते वक्त जनक उन्हें मिला था। उन्होंने यह भी बताया कि मजाक में उन्होंने जनक को ताना भी दिया था कि संस्कृत पढ़ कर हल चलाने का काम कर रहा है। अब पंडित सोहनलाल को भी चिन्ता होने लगी कि जनक वह ताना सुनकर तो घर से नहीं भागा।

उसके बाद दो महीनों तक दूर-दूर के गाँवों और कस्बों में उसकी खोज की गई लेकिन उसका कहीं पता नहीं चला। चितू चौधरी के मन में अब कई तरह की कुशंकाएँ उठने लगीं। फिर घर में रोना-धोना हुआ और चितू चौधरी यह मान कर बैठ गए कि लडका हमेशा के लिए उनसे बिछुड़ गया।

दस वर्ष बीत गए। चितू चौधरी का दूसरा लड़का बुधीसिंह गाँव की पाठशाला में चार कक्षाएँ पास करने के बाद खेत में पिता का हाथ बटाने लगा और छोटा लड़का मुरली पंडित सोहनलाल के पास हिन्दी-संस्कृत पढ़ने लगा। उन्हीं दिनों चितू चौधरी को मियादी बुखार ने पकड़ा और चालीस दिन बिस्तर प्रर पड़े रहने के बाद अपने जनक को देखने की हसरत लिये वे इस दुनिया से चल बसे।

विधवा लच्छो के लिए ये कठिन परीक्षा के दिन थे। जमीन का सारा काम अब उसके कंधों पर आ पड़ा। दोनों बेटे अभी नाबालिग थे। आमदनी का कोई और जरिया नहीं था। लेकिन दो टोपे जमीन की काश्त करना उस अकेली औरत के लिए असंभव था। पंडित विद्यासागर का लड़का पंडित दयासागर चितू चौधरी का हमजोली था लेकिन वह यह जानता था कि दो टोपे जमीन का काम अब अकेली लच्छो के बस की बात नहीं है। उसने एक टोपा जमीन उससे छुड़ा ली।

चितू चौधरी की तेरहवीं क दिन घर के पिछवाड़े वाले छोटे आँगन में कुछ रिश्तेदार बैठे सोच-विचार कर रहे थे कि घर का काम कैसे चलाया जाए। गाँव के कुछ लोग भी वहाँ थे। रात हो गई थी। अलाव में जल रही लकड़ियों की रोशनी छोटे से दायरे में फैल कर रह गई थी। आँगन के अधिकांश भाग में अँधेरा था। एक आदमी सफेद धोती, सफेद कुर्ता पहने और सिर पर गांधी टोपी लगाए चुपचाप आकर सब लोगों के पीछे अँधेरे में बैठ गया था। किसी का ध्यान उसकी तरफ नहीं गया। लेकिन जब उसके सिसकने की आवाज आई तो वैद जी की नजर उस

पर पड़ी। "अरे, यह तो जनक है !" उन्होंने कहा। और जनक जोर-जोर से बच्चे की तरह रोने लगा। उसकी माँ लच्छो दौड़ कर अन्दर से आई और बेटे से लिपट गई। पति की मृत्यु का गम और जिस पुत्र को मृत समझ लिया गया था, उसके मिलने की खुशी दोनों ने उसे व्याकुल कर दिया। वह भूल गई कि गाँव के बीस-पच्चीस आदमी वहाँ बैठे हैं। वह बेटे को गले से लगा कर फूट-फूट कर रोने लगी। बुधीसिंह और मुरली जो खा-पीकर सो गए थे, माँ का रोना सुनकर बाहर आ गए और माँ से सटकर खड़े-खड़े उस आदमी को देखते रहे जो सफेद धोती, सफेद कुरते और सफेद गांधी टोपी में उन्हें बिल्कुल अजनबी लग रहा था।

बुधीसिंह को अपने बड़े भाई की याद थी लेकिन मुरली बिल्कुल नहीं जानता था कि उसका भाई देखने में कैसा है। उसने सुन जरूर रखा था कि उसके जनक नाम का एक भाई था और वह घर से भाग गया था; लोग कहते थे कि वह अब इस दुनिया में नहीं है। जब जनक ने बुधीसिंह और मुरली को अपने पास खींच कर गले से लगाया तो उन्हें विश्वास हो गया कि वह उनका खोया हुआ भाई जनक ही है।

दूसरे दिन सारे गाँव में यह खबर फैल गई कि चितू चौधरी का लड़का जनक, शास्त्री पास करके आया है और अब अंग्रेजी पढ़ रहा है। बात यह हुई कि दूसरे दिन सुबह होते ही जनक सब से पहले पंडित सोहनलाल से मिलने गया और गुरु के चरणों में नमस्कार करके उसने अपनी सारी कहानी उन्हें सुना दी। उसने बताया कि वह किस तरह उस दिन खेत पर हल-बैल छोड़कर भागा। किसी तरह पठानकोट पहुँच कर उसने एक होटल में बर्तन धोने की नौकरी कर ली। दस महीने नौकरी करने के बाद उसने जो कुछ बचाया उससे वह लाहौर पहुँच गया। यहाँ भी उसे दो साल तक होटलों में छोटी-मोटी नौकरी करके अपना पेट पालना पड़ा। उसके बाद एक आर्यसमाजी संन्यासी से उसकी भेंट हुई और उसने उसे संस्कृत कॉलेज में भरती होने में सहायता की। उस कॉलेज में केवल सवर्ण जाति के लड़कों को ही प्रवेश मिल सकता था इसलिए उसने अपने को पंडित सोहनलाल का लड़का बता कर कॉलेज में प्रवेश ले लिया और चार साल में शास्त्री की परीक्षा पास कर ली।

पंडित सोहनलाल को इस सारी घटना से इतनी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने गाँव में घूम कर कई लोगों को जनक की आश्चर्य भरी कहानी सुनाई और शाम तक हर बच्चे-बूढ़े की जबान पर यह कहानी थी।

मुरली ने भी यह कहानी अपने साथियों के मुँह से सुनी और उसकी पुष्टि अपने भाई से कराई। मुरली के लिए यह दिन बहुत ही रोमांचकारी था। उसका हर साथी उससे जनक भैया के बारे में बातें करने के लिए उत्सुक था। बच्चों ने बड़ों के मुँह से सुना था कि जनक ने जितनी पढ़ाई की है उतनी कोई नहीं कर सकता।

जनक पंद्रह दिन गाँव में रहा। वह अक्सर घर में बंद रहता और अपनी पुस्तकों में खोया रहता लेकिन शाम के समय एक बार भुलूई खड्ड के किनारे-किनारे चल कर पंडित सोहनलाल के पास अवश्य जाता। वह एक ट्रंक भर कर पुस्तकें लाया था। एक दिन मुरली ने उन पुस्तकों को देखा तो उसकी आँखें फटी रह गई। इतनी मोटी-मोटी पुस्तकें थीं कि उन्हें एक हाथ से

उठाना भी मुश्किल था। हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू की इतनी पुस्तकें उसने पहली बार देखीं। वह उनमें से एक भी पुस्तक को पढ़ नहीं सकता था लेकिन उनको छूने भर से उसके शरीर में रोमांच हो उठता था। एक बार वह जनक भैया की नजर बचा कर पुस्तकों को एक-एक करके छू रहा था कि वे आ गए। उसे प्यार से अपने पास बिठाते हुए बोले, "ये पुस्तकें तुम्हारे काम की नहीं हैं। अगली बार जब आऊँगा तो तुम्हारे लिए पुस्तकें लाऊँगा।" फिर उन्होंने पूछा, "क्या-क्या पढ़ा है तुमने ?" मुरली ने बताया, "कि उसने चौथी कक्षा पास कर ली है और अब लघु कौमुदी पढ़ रहा है।"

"कहाँ तक पढ़ी है कौमुदी ?" उन्होंने पूछा।

"भ्वादि गणों तक।" मुरली डरते-डरते बोला।

"अच्छा, बताओ वृद्धि संज्ञा कौन सूत्र करता है ?"

मुरली सोचता रहा। कुछ नहीं बता सका। फिर बोला, "यह तो मैंने पढ़ा ही नहीं है।"

"क्यों नहीं ? तुम कहते हो भ्वादि गणों तक पढ़ ली है। अच्छा, अच् संधि से सुनाओ।"

मुरली ने "इकोयणचि इक: स्थाने" से लेकर शब्दश: पाठ करना शुरू कर दिया। जनक भैया मुस्कराते रहे। जब मुरली "वृद्धिरादैच्" सूत्र के बाद बिना रुके वृत्ति को दुहराता हुआ बोला, "आदैच् वृद्धिसंज्ञा स्यात्।" तो जनक भैया ने उसे रोक कर कहा, "अरे यही तो है वह सूत्र जो वृद्धि संज्ञा करता है।"

मुरली सकुचा गया। कौमुदी को उसने सिर्फ रटा था, उसके अर्थ और उसके उपयोग के बारे में उसने कुछ नहीं सीखा था। फिर भी जनक भैया ने उसकी पीठ थपथपाई और कहा, "शाबाश, ध्यान लगाकर पढ़ना, मैं तुम्हें बहुत दूर तक पढ़ाऊँगा।" और फिर उन्होंने उसे हिंदी की एक पुस्तक दी जिसमें कुछ मजेदार कहानियाँ, कुछ कविताएँ और कुछ लेख थे। इस पुस्तक को मुरली ने सैकड़ों बार पढ़ा और आज भी उसे उसकी कई कहानियाँ और कविताएँ याद थीं।

जनक के वापस कालेज जाने के बाद मुरली को गाँव बड़ा सूना-सूना लगा। कई दिनों तक उसका मन इसी कल्पना में डूबा रहा कि एक दिन वह इतनी मोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ेगा।

लेकिन उसके बाद जब जनक घर आया तो वह बहुत बीमार था। उसे एम०ए० की परीक्षा देनी थी इसलिए किताबों का भरा ट्रंक भी वह साथ लाया था लेकिन वह पुस्तकें पढ़ने की स्थिति में नहीं था। बिस्तर से उठ पाना उसके लिए कठिन हो रहा था। डाक्टर और वैद्यों का इलाज हुआ लेकिन उसकी बीमारी बढ़ती ही गई। वह मुरली के कंधे का सहारा लेकर बड़ी मुश्किल से एक-दो मिनट के लिए आँगन में टहलता। एक दिन मुरली ने दुकान पर खड़े कुछ लोगों को बातें करते सुना। पंडित देवीदत्त कह रहा था, "शूद्रों को संस्कृत विद्या नहीं पढ़नी चाहिए। जनक उस पाप का फल भोग रहा है।" मुरली की आँखों में आग जलने लगी और वह घर की ओर भागा और आते ही उसने जनक भैया को सारी बात दी। जनक भैया मुस्कराकर बोले, "मूर्खों की बातों पर विश्वास नहीं करते।" लेकिन मुरली के मन को सांत्वना नहीं मिली। उसको लगा कि उसके भीतर एक आग जलने लगी है जिसको बुझाना अब बहुत मुश्किल

होगा।

जनक भैया की चिता धू-धू करके जलने लगी तो मुरली को लगा कि उसके भीतर की आग भी प्रबल हो उठी है। चिता पर टकटकी लगाकर सोचता रहा। उसकी आँखों के आँसू घंटों रोने के बाद सूख चुके थे और अब उनमें एक तीखी जलन के सिवा कुछ नहीं बचा था।

जनक भैया की मृत्यु ने नियति के मारे उस परिवार को झकझोर कर रख दिया। चितू चौधरी की विधवा लच्छो, जिसने पति की मृत्यु के बाद असाधारण जीवन का परिचय देते हुए घर का बोझ अपने कंधों पर उठाने में सफलता प्राप्त की थी, इस वज्रपात को नहीं सह सकी। बछड़े से बिछुड़ी गाय की तरह वह अधपगली सी हो गई और फिर एक महीने के अन्दर-अन्दर वह भी अपने पति और पुत्र के पास चली गई। उसकी तमाम यातनाओं का अन्त हो गया।

बुधीसिंह और मुरली अनाथ हो गए। बुधीसिंह खेती-बाड़ी का सारा काम सीख चुका था। पिता की मृत्यु के बाद माँ की देख-रेख में हल-बैलों का सारा काम उसने सँभाला था। मुरली भी अब खेत में उसका हांथ बटाने लायक हो गया था। उसने गाँव से चार मील दूर एक मिडिल स्कूल में दाखिला ले लिया लेकिन अक्सर बैलों के सानी-पानी के लिए या खेत के जरूरी काम के लिए घर पर ही रहता। स्कूल में वैसे भी उसका मन नहीं लगता था। स्कूल की पढ़ाई से उसे कुछ चिढ़-सी होने लगी थी। पढ़ाई में उसकी अरुचि का एक कारण यह भी था कि वह अपने भाई को बहुत प्यार करता था और उस पर काम का सारा बोझ नहीं डालना चाहता था, हालाँकि भाई उसे पढ़ाई में मन लगाने को बार-बार कहता था। वह बड़े भाई से छह-सात साल ही छोटा था लेकिन मन ही मन भाई को पिता के समान आदर देता था। ऐसी कोई बात जो भाई को कष्ट दे उसे बर्दाश्त नहीं होती थी। उसने निश्चय कर रखा था कि वह पढ़ाई छोड़ कर पूरी तरह खेती के काम में जुट जायेगा। अगर वे दोनों मिलकर काम करें तो वे दो टोपे जमीन बटाई पर काश्त कर सकते हैं। बटाईदार को अब फसल का आधा मिलने लगा था इसलिए दो टोपे जमीन लेकर उन्हें दो-तीन साल में इतनी बचत तो हो ही सकती है कि अपने पिता के मकान में घास-फूस के छप्पर की जगह सलेट की छत डाल लें और बड़े भाई की शादी कर लें।

मुरली इन लुभावने सपनों को मन में पाले जिन्दगी की उथल-पुथल के साथ अपने को समंजित करने की कोशिश कर रहा था कि एक दिन ऐसी घटना हो गई कि उसने उसके दिल को चीर कर रख दिया।

बुधीसिंह एक दिन खेत से घर लौट रहा था। रास्ते में हरिहर की जमीन पर लगे आम के पेड़ से एक आम गिरा। बुधीसिंह आम उठाने के लिए पेड़ के नीचे आया। वहाँ उसे चार-पाँच आम और मिल गए। वह उन सब आमों को हाथ में उठाए चलने लगा तो हरिहर ने उसे पकड़ लिया। आम के मौसम में कोई भी आदमी किसी के भी पेड़ के नीचे से आम बीन सकता था। इसमें कोई चोरी नहीं मानी जाती थी। गाँव के सब लोग ऐसा करते थे। लेकिन हरिहर झगड़ालू और उद्दण्ड किस्म का आदमी था। उसके बाल-बच्चा कोई नहीं था, क्योंकि लाख कोशिश करने पर भी उसकी शादी नहीं हो सकी थी। लोग उसके पेड़ के नीचे जाने से डरते थे। हरिहर ने बुधीसिंह को आम बीनते हुए पकड़ा था, इसलिए वह उसकी नजर में चोर था। उसने

बुधीसिंह को गाँव के चौराहे पर खड़ा करके नंगा किया और दस बेंत मारे। गाँव के कई लोगों ने उस दृश्य को देखा लेकिन किसी की हिम्मत नहीं हुई कि वे हरिहर को रोकें।

उस दिन शाम को जब मुरली स्कूल से घर लौटा तो उसके साथियों ने ही सारा किस्सा सुना दिया। उसने बड़े भाई से पूछा तो वे बोले, "छोड़ो यह सब तो होता ही रहता है। बड़े लोग हैं जिसको चाहें उसको पीट दें। इन्हें कौन रोक सकता है?"

"लेकिन भैया, पुलिस में रपट क्यों नहीं लिखाते? उस हरिहर के बच्चे का दिमाग ठीक करना चाहिए।"

"पुलिस में रपट लिखाकर क्या होगा? पुलिस में भी इन लोगों के रिश्तेदार हैं। वहाँ भी हमारी ही पिटाई होगी।"

मुरली के लिए इन सब बातों को समझ पाना आसान नहीं था। उसके बड़े भाई को हरिहर ने गाँव के चौराहे पर नंगा करके दस कोड़े मारे थे, इस बात ने उसके शरीर में आग लगा दी थी। उस रात भाई के हाथ की बनी रोटी खाते समय वह रो पड़ा। बुधीसिंह को उसके रोने का कारण समझ में नहीं आया। उसने मुरली को बच्चे की तरह गले से लगाया और पूछा कि उसे क्या कष्ट है। लेकिन मुरली के कष्ट का अनुमान कौन लगा सकता था! संसार में ऐसा कोई माप नहीं था जिससे मुरली के कष्ट को मापा जा सकता था।

रात भर मुरली सो नहीं सका। भाई की बगल में दुबका हुआ वह सिसक-सिसक कर रोता रहा। बुधीसिंह ने भी उसे समझाने-बुझाने और थपकियाँ देकर सुलाने की कोशिश करने में रात बिता दी।

दूसरे दिन मुरली घर छोड़ कर चला गया। भाई के नाम उसने एक छोटा-सा पत्र लिखा था, "मैं जा रहा हूँ। शायद अब कभी लौट कर नहीं आऊँ। मुझे ढूँढने की कोशिश मत करना। पिता समान भाई को इतना दु:ख देकर जा रहा हूँ इसके लिए बहुत-बहुत शर्मिन्दा हूँ—मुरली।"

दूसरे दिन सारे गाँव में यह बात फैल गई। कुछ लोगों ने कहा कि चितू चौधरी के घर को कोई शाप लगा है कि उसका कोई न कोई लड़का घर से भाग जाता है। बुधीसिंह भाई के वियोग में अर्ध-पागल सा हो गया। जिस तरह जनक की खोज में उसके पिता ने जमीन-आसमान एक किया था, उसी तरह बुधीसिंह ने भी मुरली की खोज में कोई कसर नहीं उठा रखी, लेकिन वह नहीं मिला। आखिर लोगों ने मान लिया कि वह इस दुनिया में नहीं रहा है।

और तभी एक रात हरिहर के पिछवाड़े लगे भूसे के ढेर में आग लगी। तेज हवा में वह आग इस तरह फैली कि जब तक लोगों को आग लगने का पता चले, हरिहर का मकान जल कर राख हो गया। हरिहर के हाथ-पाँव बुरी तरह जल गए और वह हमेशा के लिए अपाहिज हो गया।

बस तेजी से भागी जा रही थी। मुरली ड्राइवर के ठीक पीछे की सीट पर बैठा लगातार खिड़की से बाहर क्षण-प्रतिक्षण बदलते दृश्यों को देखता जा रहा था। बीच-बीच में उसकी नजर सामने के शीशे पर जाती जिसमें बस के तमाम यात्रियों की परछाईं पड़ रही थी। वह लगभग सभी के चेहरों को देख सकता था। बस में आने वाले नये यात्रियों को, जो पिछले दरवाजे से चढ़ते थे, वह आसानी से देख सकता था। लोगों के चेहरे देख कर जाने उसका मन कैसा हो रहा था। शायद उसने सोच रखा था कि बीस साल के अर्से में लोगों के चेहरे कुछ बदले हुए लगेंगे। गरीबी की कील से जवान चेहरों पर उकेरी गई रेखाएँ इन चेहरों की विशेषता थी। जवान लड़कियों की उफनती नदी सी जवानी जो देखते ही देखते क्षीण हो जाती है, पतली हड्डियों पर झीनी पीत त्वचा-परत वाले बच्चे और असमय बुढ़ापे की सौगात लिये बलगम थूकते प्रौढ़ सभी इस बात के सूचक थे कि पिछले बीस सालों में कहीं कुछ नहीं बदला है। बीस साल से भी पहले जितनी दूर तक उसे याद ले जाती है, उसे इसी तरह के चेहरे बच्चे, बूढ़े-जवान मर्द, औरतों के दिखाई देते हैं। जीवन जैसे एक पीली चट्टान के नीचे दबा है और वह चट्टान न हिलती है, न खिसकती है सिर्फ परत-दर-परत उस पर काई चढ़ती जाती है।

खिड़की के बाहर सड़क के किनारे खेतों पर मरियल से बैलों से खींचा जा रहा हल धीरे-धीरे चिकनी मिट्टी के ढेलों को उखाड़ता है और हल की मूठ थामे हलवाले की बाँहों की नसें ढेले को हल की फाल से हटाने के प्रयास में उभर-उभर आती हैं। फावड़ा हाथ में लिए खेत की खनाई करता हलवाले का बेटा हर चोट के साथ सारे शरीर को तोलता है और ढेले तोड़ती हलवाले की पत्नी या बेटी हर ढेले पर चार-चार बार झुकती-उठती है।

इन सब अनबदले दृश्यों ने मुरली के मन में एक घनी उदासी भर दी। अब वह खिड़की से बाहर देखते हुए भी आँखों के आगे गुजरने वाले दृश्यों को नहीं देख रहा था। वह इन दृश्यों से परे कहीं दूर देखने की कोशिश कर रहा था। गाँव के बाहर पहरेदार की तरह खड़ी वह बड़ी चट्टान 'मसाणटोहल' क्या अब भी वैसे ही खड़ी होगी। मुरली को इस पर चढ़कर नीचे फिसलने में बड़ा मजा आता था। उसके ऊपर चढ़ने की तरकीब उसे बड़े भाई ने सिखाई थी। फिर तो वह उस चट्टान पर किसी भी तरफ से चढ़ सकता था और उतर भी सकता था। चारों तरफ उसके नीचे की मिट्टी वर्षों के बाढ़-पानी से बह गई थी और चट्टान छोटी सी जगह पर चमत्कारिक ढंग से टिकी हुई थी। रामदित्तू के बगीचे में लगा मिसरू आम का बूढ़ा पेड़ जिसके कोटरों में और जिसकी शाखाओं के बीच असंख्य बच्चों द्वारा फेंके गए पत्थर फँसे हैं। क्या मिसरू आम अब भी खड़ा होगा? क्या अब भी बच्चे उस पेड़ के नीचे जाने से डरते होंगे क्योंकि उस पर 'पहाड़िया' भूत बताया जाता है। उम्मू का बड़ जिसकी जटाओं से झूला झूलने का उसे बेहद शौक था, क्या सही-सलामत होगा? इसी तरह की अनेक बातें उसके मन पर छाए जा रही थीं किन्तु इनसे आगे बढ़ कर उस घास-फूस के छप्पर वाले मकान की तरफ बढ़ने या उसके भीतर झाँकने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। भैया कैसे होंगे? होंगे भी या नहीं......और यह

सोचते-सोचते उसने मन को पूरे वेग से उस खयाल से अलग कर दिया। वह खिड़की के बाहर आँखों के ठीक सामने गुजरती हुई चीजों पर ही सारा ध्यान केन्द्रित करने लगा।

फिर वही दृश्य। कंधों पर जुए की रगड़ और कूल्हों पर परैण की चुभन के सफेद दागों वाले बैल, गाँव से दूर बावली या कुएँ से पानी ढोती औरतें, हर गुजरती मोटर को आश्चर्य भरी निगाहों से देखने वाले बच्चे, बस-स्टाप के आस-पास छोटी-छोटी पिटारियों में मौसमी जंगली फल या तेल में तले मिर्च वाले काले चने या पकौड़े बेचने वाले लोग, हर पुलिस वर्दीधारी या खद्दरधारी से आँख चुराने वाले डरे-डरे गरीब लोग......।

साढ़े तीन बजे के करीब वह पपरौला पहुँचा। अगला स्टाप बैजनाथ का था। उसे वहीं जाना था लेकिन वह यहीं पर उतर गया। पपरौला का छोटा-सा बाजार कितना बढ़ा हुआ है, वहाँ कितने ऊँचे और पक्के मकान बने हैं, वह शायद यह सब देखना चाहता था। हाथ में छोटी सी अटैची और कंधे पर एयर बैग लटकाए उसने सारे बाजार का चक्कर लगाया। एक—दो नई दुकानों को छोड़कर कहीं कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह बाजार से निकल कर बिन्नू खड्ड के ऊपर बने पुल के पास एक पत्थर पर बैठ गया और दो मछुओं को देखने लगा जो छोटे-छोटे जाल फैंक कर मछलियाँ पकड़ रहे थे। बिन्नू के रूप में उसे कुछ नयापन दिखाई दिया। उसने आस-पास की बहुत ज्यादा जमीन को काट दिया था। उसके कगार कुछ ऊँचे और भयानक हो गए थे और नदी और गहरे, जमीन में धँस गई थी। फिर वह धीरे-धीरे क्वालू की चढ़ाई चढ़ने लगा।

बैजनाथ के बाजार में पहुँचा तो दिन डूबने वाला था। वह पगडंडी की तरफ मुड़ने के बजाय बाजार का एक चक्कर लगा लेना चाहता था। उसे एक बस आती दिखाई दी जिस पर गदियारी लिखा था। उसे कुछ कुतूहल हुआ। एक आदमी से पूछने पर उसने बताया कि बस गदियारी जा रही है। मुस्करा कर वह आगे बढ़ गया। तकियां के मोड़ से लेकर कालेज तक बाजार के उसने दो-तीन चक्कर लगाएं। बस अड्डे के पास चाय के होटल में बैठ कर चाय पी। हलवाई की दुकान से एक किलो मिठाई लेकर बैग में डाली। एक जनरल स्टोर से टार्च ली। इस बीच न तो उसे कोई जाना-पहचाना चेहरा दिखाई दिया और न किसी ने उसे पहचानने की कोशिश की। अपनी वेश-भूषा से वह पूरा सैलानी लग रहा था।

साढ़े आठ बजे जब बाजार की दुकानें बन्द होने लगीं तो वह अपनी मंजिल की तरफ चला। उस मंजिल की तरफ जिसके अस्तित्व के विषय में वह कुछ नहीं कह सकता था। तकियां की तरफ मुड़ने वाली कच्ची सड़क पर चलते-चलते उसे अजीब अनुभूति हुई। वह दौड़ना चाहता था लेकिन पैर आगे बढ़ते लड़खड़ा रहे थे। वह जानता था कि उसे पकड़ने के लिए मीसा का वारंट जारी हो चुका है। बम्बई में उसके कमरे की तलाशी से पुलिस को यहाँ का पता अवश्य मिला होगा। ऐसी स्थिति में अपने घर जाना उचित होगा या नहीं, इस बात का निर्णय वह नहीं कर पा रहा था। भाई से मिलने की इच्छा इतनी तीव्र थी कि जल्दी से जल्दी वहाँ पहुँचना चाहता था। किन्तु उसके आने से भाई किसी संकट में न पड़ जाए, यह विचार उसे रुकने के लिए विवश कर रहा था।'

वह बस की सड़क पर चलने के बजाय पगडंडी के छोटे रास्ते पर चलने लगा। शीतला देवी के मंदिर के बाद ही पगडंडी शुरू हो जाती थी। दोनों तरफ के खेतों में काम करने वाले अपने-अपने घरों को जा चुके थे। रास्ता सुनसान था और रास्ते के किनारे के दो-चार घरों में भी रोशनी नहीं दिखाई दे रही थी। फिर भी वह एक जगह बैठकर और रात बीत जाने की प्रतीक्षा करने लगा। वह चाहता था कि जब वह गाँव में प्रवेश करे तो उसे कोई आदमी न मिले।

रात के ग्यारह बजे उसने अपने गाँव की सीमा में प्रवेश किया। अँधेरे में धीरे-धीरे कदम रखता हुआ जब वह अपने घर के 'गोहर' के पास पहुँचा तो उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। उसे घास-फूस का छप्पर नहीं दिखाई दिया। उस जगह उसे एक नया मकान दिखाई दिया जिस पर सलेटों की छत थी। पहले तो निराश हो गया और उल्टे कदम लौट पड़ने को तैयार हुआ। लेकिन ध्यान से देखने पर उसे लगा कि मकान की बनावट में और कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। शायद भाई ने घास के छप्पर की जगह सलेटों का छप्पर डाल लिया है। वह साहस बटोर कर आगे बढ़ा और दरवाजे के पास जा खड़ा हुआ।

उसे आश्चर्य हुआ कि अन्दर रोशनी थी और कई लोग घर के भीतर बातें कर रहे थे। उसकी इच्छा हुई कि लौट जाए क्योंकि वह किसी और की नजरों में पड़ना नहीं चाहता था। तभी अचानक दरवाजा खुला और वह सब के सामने था।

हिप्पियों की वेश-भूषा में एक अजनबी को दरवाज़े पर देखकर एक क्षण के लिए सब हक्के-बक्के खड़े रहे। फिर मुरली ने आगे बढ़कर भाई के पाँव छुए। पाँव छूने के बाद जब मुरली ने गले मिलने के लिए भाई को अपनी बाँहों में भरा तो बुधीसिंह ने उसे पहचान लिया। "मुरली! मेरे भैया, तुम कहाँ......!" कहते-कहते बुधीसिंह फफक-फफक कर रो पड़ा। मुरली भी सिसकने लगा। बड़ी देर तक एक-दूसरे को गले लगाए रहे। बाहर जाने के लिए तैयार लोग रुक गए।

मुरली ने अब अमर की ओर देखा और उसे गले से लगा लिया। लक्ष्मीदेवी के चरण छुए। फिर वह दूसरी दो महिलाओं की तरफ देखने लगा। बुधीसिंह ने परिचय कराया, "यह हमारी भाभी जी हैं, अमर भैया की पत्नी......" और फिर नीलू की तरफ इशारा करके कहा, "यह तुम्हारी भाभी हैं।" मुरली ने दोनों के पैर छूने चाहे लेकिन दोनों ने उसके हाथ पकड़ लिये। मुरली बोला—

"लगता है मेरी गैरहाजिरी में इस गाँव में छुआछूत कुछ ज्यादा हो गई है।"

"छुआछूत?" रमा ने आश्चर्य से उसकी तरफ देखा।

"और नहीं तो क्या?" आप दोनों ने ही मुझे पैर छूने नहीं दिए।

"तुम इतने बड़े आदमी हो गए हो। क्या तुम से पैर छुआकर पाप लेना है?"

"लम्बाई बढ़ जाने से क्या आदमी बड़ा हो जाता है? वैसे पैर छूने के मैं भी खिलाफ हूँ लेकिन मरदों को औरतों के पैर छूने चाहिए। औरतों का मरदों के पैर छूना बिल्कुल गलत है।"

अमर ने बीच-बचाव करते हुए कहा—

"यह झगड़ा छोड़ो! आराम से बैठकर बातें करो। भाभी जी, मुरली के लिए खाने-पीने का

प्रबन्ध करो। पहले तो चाय बनाओ।"

नीलू और रमा दोनों रसोई में आकर चाय आदि का प्रबन्ध करने लगीं लेकिन दोनों के कान बाहर लगे हुए थे।

अमर बोला, "जानते हो, कि हम इतनी रात तक यहाँ बैठे क्या बातें कर रहे थे ? हम तुम्हारी ही बातें कर रहे थे।"

"मेरी ? क्या आप जानते थे कि......"

"हाँ, आज ही हमें तुम्हारे बारे में पता चला। पुलिस तुम्हें ढूँढ़ती यहाँ आई थी।"

मुरली ने अपने भाई की ओर देखा, मानो उसे विश्वास नहीं हो रहा हो। बुधीसिंह ने कहा, "बम्बई की पुलिस तुम्हारा वारंट लेकर आई थी।"

"तब तो मुझे फौरन यहाँ से चले जाना चाहिए", मुरली बोला।

"पुलिस से इतना डर है तो बुरे काम क्यों करते हो ?" अमर ने उसकी तरफ मुस्कराकर देखा, "माता जी की जय-जयकार करो। माफीनामा लिख दो, वारंट कैंसिल हो जाएगा। आजकल तो बड़े-बड़े तीसमारखाँ माफीनामे लिखकर जेलों से छूट रहे हैं। अच्छा खैर, तुम अब कहीं नहीं जाओगे। यहाँ अपने घर में रहना तो तुम्हारा ठीक नहीं। सारा गाँव जानता है कि पुलिस तुम्हारी तलाश में आई थी। सुबह होते ही तुम्हें लोग पहचान लेंगे। लेकिन मेरे घर रहोगे तो तुम्हें कोई नहीं पहचान सकेगा, बशर्ते कि तुम घर में ही रहो और बाहर न निकलो। दो-तीन दिन बाद कुछ और रास्ता ढूँढ़ा जा सकता है।"

"दो-तीन दिन से ज्यादा तो मैं वैसे भी नहीं रुक सकता। मुझे बहुत से काम हैं। कई जगह जाना है।"

"वह बाद में देखा जाएगा। अच्छा यह सुनाओ कि बीस साल कहाँ रहे, क्या करते रहे ? यह मीसा-वीसा का क्या चक्कर है ?"

मुरली ने संक्षेप में आपबीती सुनाई—

"जब मैं घर से भागा तो दिल में एक ही बात थी कि मैं हरिहर से भाई के अपमान का बदला चुकाऊँगा। कई दिनों तक मैं इधर-उधर भटकता रहा और मौके की तलाश करता रहा। फिर एक दिन मौका हाथ लगा और मैंने अपनी इच्छा पूरी करके दिल की आग ठंडी की। लेकिन पुलिस के डर के मारे वापस घर आने की हिम्मत नहीं हुई इसलिए किसी तरह पठानकोट जा पहुँचा। वहाँ होटल में बरतन माँजने की नौकरी की और जब कुछ पैसे जमा हुए तो एक दिन बम्बई का टिकट लेकर चुपचाप फ्रण्टियर मेल में जा बैठा।

बम्बई में रेलवे स्टेशन पर कुली का काम करने की कोशिश की लेकिन लाइसेंस के बिना कुलीगीरी का काम भी नहीं मिलता था इसलिए कुछ दिन बाद बूट-पालिश करने का धंधा अपना लिया। दिन भर बूट-पालिश करके रोटी के पैसे बन जाते। रात को फुटपाथ पर सोता। मेरे साथ और भी कितने ही लड़के थे जो दिन भर छोटा-मोटा काम करते और रात फुटपाथ पर काटते थे। दो साल तक यही धंधा चला फिर एक मोटर गैरेज में मैकेनिक का काम सीखने लगा। फिर मैकेनिक की नौकरी मिल गई और एक गरीब बस्ती में छोटा-सा कमरा किराये पर

लेकर रहने लगा। यहाँ रहकर मैंने शाम को स्कूल ज्वाइन कर लिया। आर्यसमाज के मंदिर में संस्कृत की क्लासें चलती थीं। वहाँ संस्कृत पढ़नी शुरू की और तीन साल में शास्त्री पास की। फिर वहीं पर पढ़ाने भी लगा और अब भी पढ़ाता हूँ। लेकिन पेट के लिए कारखाने की नौकरी है। मैकेनिक से तरक्की करते-करते फोरमैनी तक पहुँचा हूँ। बस इससे ज्यादा न बन सकता हूँ और न बनने की चाह है। यूनियन का काम भी हाथ में ले रखा है। उसी यूनियन के काम से मैं पंजाब, जम्मू-कश्मीर और हिमालय के दौरे पर आया हूँ।"

मुरली अपनी कहानी संक्षेप में सुनाकर रुक गया तो अमर बोला—"तुमने बीस साल की कहानी सुनाने में बीस मिनट भी नहीं लिये।" मुरली भी मुस्करा पड़ा, "भई, जो सुनाने लायक था सुना दिया। हम लोगों की जिंदगी में सुनाने लायक होता ही क्या है। बीस साल जी लिए, क्या इतना काफी नहीं है ?"

"और मीसा का क्या चक्कर है ?" अमर ने पूछा।

"छुटभैयों ने उस भली औरत का दिमाग खराब कर दिया है। उसे हर साये में भूत नजर आने लगा है। वह समझती है कि हिन्दुस्तान की गद्दी पर उसका पुश्तैनी अधिकार है और जो इस अधिकार को नहीं मानता वह देश का शत्रु है। अच्छा डिक्टेटर बनने के लिए लोगों को बेवकूफ बनाने का गुण तो उसमें भरपूर है लेकिन अपनी बेवकूफियों को छिपाने की कला उसे नहीं आती। मैं बम्बई की बस कम्पनी की वर्कशॉप में फोरमैन हूँ। कंपनी की मजदूर यूनियन का सेक्रेटरी हूँ। उस यूनियन के अध्यक्ष से मेरी उनकी पुरानी जान-पहचान है। बड़ौदा डायनामाइट केस में अध्यक्ष और उसके कई साथियों के खिलाफ वारंट निकले हैं। मैं भी उनमें से हूँ।"

चाय आ गई थी। सब चाय पीने लगे तो पिछले कमरे से मुकुल आँखें मलता हुआ निकला। वह सो गया था लेकिन बीच में उसकी नींद टूट गई। बाहर के कमरे में लोगों की बातें सुनकर उसके मन में जिज्ञासा जागी और वह बाहर आ गया। कमरे में दाढ़ी-मूँछ वाले एक अजनबी को देख कर वह ठिठक गया। बुधीसिंह ने उसे बुलाया, "आओ बेटा, देख तो हमारे घर कौन आया है। तुम्हारे चाचा आए हैं।"

मुकुल दौड़कर मुरली के पास चला गया और उसे ध्यान से देखने लगा। कुछ देर पहले उसने अपने किसी चाचा के बारे में घर वालों को बातें करते सुना था। जब वह सोया था तो मन ही मन चाचा के चेहरे-मोहरे के बारे में कल्पना कर रहा था। जो व्यक्ति उसके सामने था, शायद उसकी कल्पना में फिट नहीं बैठता था, इसलिए, चाचा के निकट जाकर वह ठिठक गया।

मुरली ने उसे गोद में उठा लिया। "अरे, यह मेरा भतीजा है ? क्या नाम है भई तुम्हारा ?"

"मुकुल।" उसने बड़े बेलागपन से कहा।

"ओह, मुकुल तो बहुत अच्छा नाम है। मैंने सोचा था तुम्हारा कोई गाँव जैसा नाम होगा, सवारू, मंगलू, जेठू, माघू वगैरह-वगैरह। यहाँ तो ऐसे ही नाम रखे जाते हैं। तुम्हारा यह सुन्दर नाम किसने रखा ?" मुरली ने प्यार से पूछा।

"अमरूद वाले चाचा ने।"

"भई यह अमरूद वाले चाचा कौन हुए ?"

मुकुल ने अमर की तरफ इशारा किया। लक्ष्मीदेवी हँसकर बोली, "हमारे आँगन में अमरूद का पेड़ है न इसलिए यह अमरूद वाले चाचा हो गए।"

मुरली खिलखिला कर हँस पड़ा। फिर मुकुल से बोला, "और मुझे क्या दाढ़ी वाला चाचा कहोगे ? चलो चाचा तो हुआ न ! और तुम हुए मेरे भतीजे। अब भतीजे, कोई गाना हो जाए।"

मुकुल अब भी अपने को कुछ अलग रखने की कोशिश कर रहा था। वह बोला, "मुझे गाना नहीं आता।"

"अच्छा गाना नहीं आता तो रोना तो आता होगा। तुम रो कर ही सुना दो।"

मुकुल हँस पड़ा। बोला, "मुझे रोना भी नहीं आता।"

"झूठ, बिल्कुल झूठ" कहते हुए मुरली ने मुकुल को कंधे पर उठा लिया और बोला, "अरे, वह चाचा-भतीजा का गाना तो तुमने जरूर सुना होगा।"

"कौन ? सुन भाई चाचा......"

"हाँ भतीजा"

सब लोग हँसने लगे। मुरली मुकुल को कंधे पर उठाए नाचने लगा और फिल्मी गीत गाने लगा। फिर उसने मुकुल को कंधे से उतार कर पूछा—

"स्कूल जाते हो ?"

"हाँ, चौथी में हूँ।"

"क्या-क्या पढ़ा है ?"

"बहुत कुछ पढ़ा है, जो किताबों में लिखा है सब पढ़ा है।"

"किताबों के अलावा कुछ गाने-वाने तो सीखे होंगे स्कूल में ?"

"हाँ......"

"तो सुनाओ।"

"देश की नेता इंदिरा गांधी, युवकों के नेता संजय गांधी, बच्चों के नेता राहुल गांधी।"

सब खिलखिलाकर हँस पड़े। मुरली तो हँसते-हँसते दुहरा हो गया।

जब उसकी हँसी थमी तो पूछा—

"और क्या गाना सीखा है ?"

मुकुल उठकर खड़ा हो गया और हाथ उठा कर बोला—

"गली-गली से आई आवाज, इंदिरा गांधी जिंदाबाद।......"

हँसी का और कहकहा उस बंद कमरे में गूँज उठा। रमा और नीलू भी रसोईघर से बाहर निकल आई थीं और उस हँसी के वातावरण में सराबोर हो गई थीं। मुकुल की झिझक अब काफी हद तक दूर हो गई थी। अपने अजनबी चाचा की दाढ़ी छू कर वह बोला—

"चाचा जी, चाचा जी, हमारे घर में रेडियो भी है। उसमें बहुत अच्छे-अच्छे गाने आते हैं।"

"तुम्हें याद है रेडियो का गाना ?"

"रेडियो का गाना नहीं, फिल्म का गाना जो रेडियो में आता है।"

"फिल्म का ही सही, कोई सुना दो।"

मुकुल ने हवा में रेडियो का स्विच दबाया और बोला, "ट्रिंग······ट्रिंग······"

आजादी का मतलब यह नहीं है कि लोग जो चाहें सो करें, आजादी का मतलब यह है कि सरकार जो चाहे सो करे······ट्रिंग······ट्रिंग······

अभी आप 'चोर मचाए शोर' का गाना सुन रहे थे। अब सुनिए मोहम्मद रफी को फिल्म पूर्व और पश्चिम में—'मैं उस देश का वासी हूँ जिस देश में गंगा बहती है।'

मुकुल की बातों का सिलसिला न जाने कब तक चलता किन्तु तभी नीलू खाने की थाली लेकर बाहर आई। मुरली जब खाना खाने लगा तो मुकुल बोला—

"चाचाजी, चाचाजी, आप तो बम्बई से आए हैं न?"

"हाँ, हाँ, बम्बई से आया हूँ।"

"और रात को खाना खा रहे हैं।"

"हाँ, तो क्या हुआ?"

मुकुल उठकर नाचते हुए गाने लगा—

'बम्बई से आया मेरा दोस्त
दोस्त को सलाम करो।
रात को खाओ पियो
दिन में आराम करो।'

मुरली के मुँह का कौर हँसी के कारण दूर जा गिरा और इस पर मुकुल हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया। इस हँसी-खुशी के माहौल में सभी लोग यह भूल गए कि मुरली को पकड़ने के लिए पुलिस आई थी और कल मुरली की उपस्थिति उन सबके लिए संकट का कारण बन जाएगी।

जब मुरली खाना खा चुका तो अमर ने सुझाव दिया कि अब चलकर सोना चाहिए। रात आधी से भी ज्यादा बीत चुकी थी। मुरली की अटैची हाथ में लेकर उसने मुरली को भी साथ चलने के लिए कहा तो मुकुल मचल गया, बोला, "चाचा जी, अपने घर रहेंगे। आप इन्हें क्यों ले जा रहे हैं?" अमर हँसकर बोला, "अरे भई, यह तुम्हारे चाचा हैं तो हमारे भी तो दोस्त हैं। हम भी तो कुछ बातें करेंगे। सुबह तुम्हारे चाचा को हम लौटा देंगे।"

मुरली ने एयर बैग से मिठाई का पैकेट निकाल कर मुकुल के हाथ में दे दिया और मुकुल को प्यार करते हुए कहा, "तुम्हारे अमरूद वाले चाचा का घर देखना है। सुबह आ जाऊँगा।"

अमर और मुरली दरवाजे से निकल कर बाहर आए। उनके पीछे रमा और लक्ष्मीदेवी भी बाहर आ गयीं। घुप्प अँधेरे में चारों चल पड़े।

अमर का मकान बहुत दूर नहीं था। दरवाजे का ताला खोल कर रमा ने कमरे की बत्ती जलाई। मुरली ने कमरा देखा तो भौंचक रह गया। चारों दीवारों के साथ खड़े लकड़ी के शैल्फों में किताबें भरी थीं। सब करीने से सजी हुई। उसे लगा कि वह किसी कालेज के पुस्तकालय में

आ गया है। भाई के घर बिजली की बत्तियाँ देखकर उसे थोड़ा आश्चर्य हुआ था। उसके मन में गाँव का बीस साल पुराना चित्र ही था। बिजली की उसने उम्मीद नहीं की थी। इसी तरह गाँव तक बस-सर्विस की जानकारी मिलने पर भी उसकी मान्यताओं को कुछ धक्का लगा था। किंतु इस गाँव में इतने अच्छे पुस्तकालय की उसने बिल्कुल कल्पना नहीं की थी।

वह शैल्फ में लगी पुस्तकों को देखने लगा। ज्यों-ज्यों वह पुस्तकों के नामों को पढ़ता गया उसका आश्चर्य बढ़ता गया।

"आप किसी कालेज में पढ़ाते हैं?" उसने अमर की तरफ देखकर कहा। अमर मुस्करा दिया—

"इन पुस्तकों को देखकर कह रहे होंगे। मैंने न जाने कहाँ-कहाँ से इन्हें इकट्ठा किया है। इनमें ज्यादातर पुस्तकें दोस्तों की दान की हुई हैं। कुछ अपनी मन-पसंद पुस्तकें मैंने दिल्ली जाकर खरीदी हैं। विश्व पुस्तक मेले में सस्ती पुस्तकें मिल रही थीं; कुछ वहां से खरीदीं और कुछ पटरी वालों से खरीद लाया। पुस्तक मेले में तो इतनी अच्छी-अच्छी पुस्तकें थीं कि क्या बताऊँ? पैसा गाँठ में होता तो ट्रक भरकर ले आता। लेकिन ऐसी किस्मत हमारी कहाँ?"

"लेकिन आपका सेलेक्शन देखकर तो लगता है कि आप……।'

"कालेज के प्रोफेसर हैं। लेकिन तुम्हारा सोचना गलत है। मैं अपने गाँव में ही रहता हूँ। थोड़ी-सी जमीन है उसे काश्त करता हूँ। आपके खेत के साथ लगा हुआ मेरा खेत है। हाँ, किताबें पढ़ने की लत है। गाँव के लोगों के लिए भी काफी पुस्तकें खरीदी हैं। दो समाचार पत्र भी यहाँ आते हैं। धीरे-धीरे गाँव के लोग अब इस पुस्तकालय का इस्तेमाल करने लगे हैं। शाम के वक्त जो लोग पढ़ना चाहते हैं उन्हें यहीं घर पर पढ़ा भी देता हूँ। सुबह यहाँ लड़कियों और महिलाओं के लिए रमा स्कूल चलाती है। पंचायतघर में सिलाई-बुनाई का एक केन्द्र भी चल रहा है।"

मुरली अमर की तरफ आश्चर्य से देखता रहा। उसे लगा कि वह एक असाधारण आदमी के सामने खड़ा है जो असम्भव को सम्भव बनाने की क्षमता रखता है।

"आपको किसी राजनीतिक पार्टी से जुड़ा होना चाहिए।"

"कौन सी पार्टी से?"

"किसी से भी। आप जिसमें जाएँगे अपने लिए फौरन जगह बना लेंगे।"

"कोई पार्टी हमें अपने साथ जोड़ने के लिए तैयार न हो तो?"

"आप खुद ही जुड़ना न चाहें तो और बा— है।"

"कोई ऐसी पार्टी भी हो।"

'क्यों? कांग्रेस में आइए।"

'बिटिया रानी के गुड्डे बनने?"

"दूसरी कांग्रेस में।"

"उसमें अब क्या रखा है? बूढ़े और चुके हुए लोगों के बीच मेरा दम घुट जाएगा।"

"जनसंघ में।"

"उसके योग्य नहीं हूं। न तो मेरा मनु महाराज के धर्मशास्त्र पर विश्वास है और न अवतारवाद, गुरुवाद का कायल हूं।"

"साम्यवादी दल तो है प्रगतिशील विचार वालों के लिए......।"

"उनसे ज्यादा प्रगतिशील तो जनसंघ है। साम्यवादी सौ साल पुराने विचारों से चिपके हैं, जनसंघी हजार-दो हजार साल पुराने विचारों से।"

"फिर तो भारतीय लोकदल और समाजवादी पार्टी रह जाती है।"

"इनमें जाकर समय नष्ट करना नहीं चाहता। मुझे लगता है कि ये तमाम पार्टियां अपनी उपयोगिता खो चुकी हैं। अब ये सूखा ठूंठ बनकर रह गई हैं। इस देश में जातिवाद, व्यक्तिवाद, अवतारवाद, अफसरवाद और खुशामदवाद के जो असाध्य रोग लग गए हैं, उन्हें दूर करने की क्षमता जिस पार्टी में आ सकती है, वह अभी दूर भविष्य की चीज है। लेकिन छोड़ो, यह सब बेकार की बहस है। न इस देश में ऐसी कोई पार्टी बनेगी, न यहां की सड़ी हुई स्थिति में बदलाव आएगा। सच बात तो यह है कि अब किसी भी पार्टी का कोई भविष्य नहीं है। देश पूरी तरह तानाशाही के शिकंजे में जकड़ा है। खानदानी उत्तराधिकार के सारे सामान तैयार हैं। अब न तो चुनाव की जरूरत होगी न राजनीतिक दलों की। कभी-कभी सोचता हूं कि जो कुछ हो रहा है ठीक ही हो रहा है। यह स्थिति इन्हीं राजनीतिक दलों की बनाई हुई है। यदि इनमें समझदार और दूरदर्शी नेता होते तो क्या मजाल थी जो इन्दिरा गांधी खुले आम संविधान को रौंद कर, संसद को कठपुतली घर बनाकर और अदालतों को नौटंकी बनाकर तानाशाही लाती। यह सब अचानक तो हुआ नहीं। सारी क्रिया में दस साल के लगभग समय लगा है लेकिन एक भी दल ऐसा नहीं था जिसने स्थिति को सही ढंग से समझा और उस दुर्भाग्यपूर्ण प्रक्रिया को रोकने की कोशिश की।"

अमर आवेश की स्थिति में यह सब बातें कह गया। बाद में उसे लगा कि वह जरूरत से ज्यादा बोल गया है। मुरली दिन भर का थका होगा, उसे अब आराम करना चाहिए। अपने व्यवहार पर मन ही मन ग्लानि अनुभव करते हुए उसने कहा—

"ये बातें दिमाग खराब कर देती हैं। तुम दिन भर के थके हुए हो। चल कर आराम करना चाहिए।"

लेकिन मुरली की आंखों में नींद नहीं थी। वह चाहता था कि रातभर यूँ ही बैठकर अमर से बातें करता रहे। वह उससे तमाम बातों को जान लेना चाहता था जो पिछले बीस वर्षों में यहाँ के जनजीवन में घटी हैं। वह गाँव के एक-एक घर के बारे में जानना चाहता था।

दोनों के लिए ऊपर वाले कमरे में बिस्तर लग गए थे। जब वे अपने-अपने बिस्तर पर जाकर लेट गए और बत्तियां बुझ गयीं तो अमर के दिमाग में अचानक एक बात कौंधी। वह बेचैन हो उठा। बड़ी देर तक वह बिस्तर पर पड़ा-पड़ा सोचता रहा कि मुरली से बात करे या नहीं। वह उसकी नींद में दखल नहीं देना चाहता था लेकिन वह जितना सोचता गया उतना ही उसके लिए चुप रहना असंभव होता गया। आखिर उसने धीरे से मुरली को आवाज दी। मुरली को अभी नींद नहीं आई थी। उसने पूछा, "क्या बात है?"

अमर बोला, "एक भयंकर गलती हो-गई।"

"क्या ?"

"हमने मुकुल को बता दिया कि तुम उसके चाचा हो। अब लाख कोशिश करने पर भी यह बात छिपी नहीं रहेगी। मुकुल अपने स्कूल के साथियों को बताएगा और उनसे घर-घर में बात फैल जाएगी।"

मुरली चुप हो गया। सचमुच इसकी तरफ तो उसका ध्यान गया ही नहीं था।

"लेकिन मैं यहाँ से बहुत जल्दी चला जाऊँगा।"

"यह तो और खतरनाक बात होगी। पुलिस को पता चल गया कि तुम यहाँ आए थे, तो तुम्हारा भाई मुसीबत में पड़ जाएगा। घरवालों पर भी मुसीबत आ सकती है।"

मुरली सोच में पड़ गया।

"अब क्या हो सकता है?" उसने पूछा।

अमर के पास भी इसका कोई उत्तर नहीं था। मुकुल को समझाया जा सकता है लेकिन वह बच्चा है, अपने मन की बात को मन में छिपाना उसके लिए असंभव है। अगर उससे कहा जाय कि जो आदमी रात को तुम्हारे घर आया था वह तुम्हारा चाचा नहीं कोई और था तो वह मानेगा नहीं। मान भी जाए तो उसके मन को बड़ी ठेस लगेगी। यह और भी बुरी बात होगी। मुरली अब बिस्तर पर उठ बैठा था। वह बोला, "अमर, मैं यह नहीं देख सकता कि भैया पर कोई मुसीबत आए। मेरे यहाँ से जाने से भैया-भाभी को पुलिस के अत्याचार सहने पड़ें तो मैं चाहूँगा कि मैं यही रहूँ और अपने को पुलिस के हवाले कर दूँ।"

"यह बात तुम्हारे भैया को सहन नहीं होगी।"

"इसके सिवा कोई चारा भी तो नहीं।"

"एक रास्ता है।"

"क्या?"

"तुम सुबह होने से पहले-पहले यहाँ से चले जाओ। तुम्हें यहाँ हम लोगों को छोड़कर किसी ने नहीं देखा है। मुकुल पूछेगा तो उसे समझा देंगे कि तुम्हें एक जरूरी काम से जाना था इसलिए रात को ही तुम चले गए। अगर हम उसे सच-सच बता दें कि तुम्हारे यहाँ रहने से पुलिस तुम्हें पकड़कर ले जा सकती थी इसलिए तुम रात को ही चले गए और इसके साथ ही उसे समझा दें कि वह चाचा के आने की बात कुछ दिन किसी से न कहे क्योंकि तब पुलिस चाचा को पकड़ लेगी, तो शायद वह मान जाए और बात भी बन जाए। अगर बात निकल गई तो हम लोगों को यह कह कर टालेंगे कि तुम कलकत्ता से आए मेरे मित्र थे और मुकुल गलती से उन्हें अपना चाचा मानने लग गया था।"

"मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा। सब गड़बड़ हो गया। जरा-सी लापरवाही से सारा काम बिगड़ गया।"

"जो हो गया उसे छोड़ो। यह सोचो कि आगे क्या करना है।"

बड़ी देर तक दोनों में कोई बात नहीं हुई। दोनों अपने-अपने ढंग से समस्या का हल ढूंढ

रहे थे। मुरली ने चुप्पी तोड़ी।

"खैरा यहाँ से कितनी दूर है?"

"खैरा सात-आठ मील होगा। लेकिन वहाँ क्या करोगे?"

"वहाँ मेरा एक दोस्त है। उसके पास चला जाऊँ तो मुझे कोई नहीं पहचानेगा।"

"कौन दोस्त है? क्या नाम है उसका?"

"नाम तो उसका दिवाकर है।"

अमर चौंक पड़ा। दिवाकर के साथ मुरली की दोस्ती कब और कैसे हुई? उसकी उत्सुकता बढ़ गई।

"कौन दिवाकर? पंडित नित्यानंद का लड़का?"

"हाँ, शायद उसके पिता का नाम यही है। लेकिन आप उसे कैसे जानते हैं?"

"रमा दिवाकर की बहन है।"

"ओह! तभी मैं बड़ी देर से सोच रहा था कि भाभी जी की शक्ल कुछ जानी पहचानी सी लगती है। उनका चेहरा दिवाकर से बहुत मिलता है।"

"लेकिन दिवाकर घर पर नहीं होगा।"

"तो कहाँ होगा?"

"सुनते हैं धनबाद में है। उसे घर से गए आठ-नौ साल हो गए।"

"घर पर कौन है?"

"माँ, पत्नी और बच्चा।"

"पत्नी उसके साथ नही रहती?"

"नहीं, वह पत्नी और बच्चे दोनों को छोड़ गया है। बच्चा भी अपनी माँ से अलग रहता है। उसे दादा ने अपने पास रखा है।"

मुरली मुस्करा दिया लेकिन मुस्कान अँधेरे में अमर को नहीं दिखाई दी। फिर बोला—

"रूपा की छूत से बच्चे को अलग रखा जा रहा है।"

अमर से कोई उत्तर नहीं बन पडा।

रात के अंधेरे में गाँव छोड़ने से पहले अमर ने बुधीसिंह के घर जाकर सारी बात समझा दी थी और यह भी बता दिया था कि मुकुल अगर चाचा के बारे में पूछे तो उसे सच-सच बता दिया जाए और यह समझा दिया जाए कि वह अपने चाचा के आने की बात किसी से न कहे, नहीं तो उसे पुलिस पकड़ कर ले जाएगी। अमर जानता था कि यह एक जुआ ही है क्योंकि बच्चे से किसी बात को गुप्त रखने की आशा नहीं की जा सकती थी, लेकिन उस समय उनके सामने यही एकमात्र रास्ता था।

गाँव से काफी दूर निकल जाने के बाद अँधेरा फीके से उजाले में बदलने लगा। इतनी देर वे चुपचाप चलते रहे थे। रात के सन्नाटे को तोड़ने में दोनों हिचक रहे थे। अंधेरा छँटते ही मौन बने चलते जाना दोनों को अजीब लग रहा था। किन्तु वे समझ नहीं पा रहे थे कि बात कैसे शुरू की जाए। अमर रूपा की तमाम यातनाओं का साक्षी था। साक्षी ही नहीं, वह उनके लिए अपने को दोषी भी मानता था, हालाँकि वह इस स्थिति को टालने की भरसक कोशिश कर चुका था, लेकिन कभी-कभी उसे लगता था, कि रूपा के लिए उसे जो कुछ करना चाहिए था, वह नहीं कर पाया। मुरली के लिए दिवाकर और रूपा के सम्बन्ध-विच्छेद का समाचार अप्रत्याशित तो नहीं था लेकिन अपनी आशंका को सच में बदलते देखकर उसे जो धक्का लगा था उसने उसे रूपा के बारे में बातें करने के बजाय सोचने में प्रवृत्त कर दिया था। उसके सामने रूपा की वह छवि जो दस साल पहले उसने देखी थी बार बार आ रही थी और वह उस छवि में इतना खोया हुआ था कि वह अपने साथ अमर की उपस्थिति से बेखबर बना हुआ था।

आखिर अमर ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा—

"रूपा और दिवाकर से तुम्हारा परिचय कैसे हुआ, यह बात तुमने बताई नहीं।"

मुरली जैसे नींद से जाग पड़ा। कुछ देर खोया-खोया सा कभी अमर को और कभी धीरे-धीरे खुलते आसमान को देखता रहा। फिर बोला—

"कोई दस साल पुरानी बात है। मजदूर यूनियनों की एक गोष्ठी में हिस्सा लेने के बाद मैं जम्मू से लौट रहा था। पठानकोट स्टेशन से मैंने अमृतसर के लिए गाड़ी पकड़ी। रिज़र्वेशन था नहीं इसलिए कुली को दो रुपये देकर एक सीट मिल गई थी। डिब्बे में बहुत भीड़ थी। लोग खिड़कियों से ट्रंक-बिस्तर अन्दर फेंक रहे थे। इसी भीड़ में एक युवक और उसके साथ एक जवान लड़की डिब्बे में आने की कोशिश कर रहे थे। युवक ने अन्दर घुस कर खिड़की के पास दो सीटें रोकीं लेकिन एक मोटे-तगड़े सरदार ने उन सीटों पर कब्जा करना चाहा। युवक ने एतराज किया तो सरदार ने "पहाड़ी साला, दाल-भात खाने वाला" कहकर उसे धक्का दे दिया। युवक ने उसकी गर्दन पकड़ ली और उसे दो-तीन मुक्के जड़ दिये। झगड़े में सरदार की पगड़ी खुल गई और उसके दाँत से खून बहने लगा। इस पर सरदार के तीन साथियों ने युवक को घेर लिया। वह तीनों के घूँसों का जवाब दे रहा था कि इतने में प्लेटफार्म पर खड़ी युवती तेजी से डिब्बे में आई। उसने एक सरदार को खींचकर इतने जोर से धक्का दिया कि वह दूर दरवाजे से जा टकराया। उसके सिर से खून बहने लगा। डिब्बे के लोगों ने बीच-बचाव करके झगड़े को बन्द करवाया। मैं प्लेटफार्म पर खड़ा यह दृश्य देख रहा था। उस लड़की की हिम्मत और उसका तेज देखकर मैं दंग रह गया। कुछ देर बाद वे दोनों डिब्बे से बाहर निकल आए क्योंकि उनका कुली किसी दूसरे डिब्बे में उनके लिए सीट का प्रबन्ध कर आया था। जिस डिब्बे में वह बैठे, उसी में मेरी सीट भी थी।

मैं उस लड़की से बहुत प्रभावित था, और उस युवक से भी जो तीन हट्टे-कट्टे आदमियों से अकेला ही जूझ रहा था। बातचीत होने लगी। मैंने उनका परिचय जानना चाहा लेकिन वह युवक बचने की कोशिश कर रहा था। उसने अपना नाम दिवाकर बताया और यह भी बताया

कि वह दोनों बम्बई आ रहे हैं। लेकिन युवती के बारे में बात न करने की इच्छा को मैंने भाँप लिया और इसलिए मैं विषय बदल कर इधर-उधर की बातें करने लगा। सही बात यह थी कि मैं स्वयं भी परिचय बढ़ाना नहीं चाह रहा था क्योंकि मैं अपना सही परिचय भी किसी को नहीं देना चाहता था, विशेष कर किसी कांगड़ा वासी को। उन दिनों मैं अजीब मन:स्थिति में चल रहा था। किसी भी आदमी से मिलते हुए मुझे भय लगता था कि कहीं मुझे असली परिचय न देना पड़े। यदि कांगड़ा-हिमाचल के किसी व्यक्ति के सम्पर्क में कभी आना पड़ता तो मेरी यह कोशिश रहती कि मुलाकात कम से कम समय हो ताकि बातचीत में मेरे हिमाचली होने का राज दूसरे व्यक्ति पर न खुल जाए। एक तो अपनी जाति को लेकर हीन भावना थी जिसका जबर्दस्त अहसास किसी हिमाचली से मिलने पर होता था। दूसरे गुप्तवास का जीवन अपनाने के कारण मैं निकट परिचय से बचना चाहता था।

सौभाग्य से जिस डिब्बे में हम बैठे थे, वही बम्बई की गाड़ी से जुड़ने वाला था। अमृतसर में हमें गाड़ी बदलने की जरूरत नहीं पड़ी। दो दिन और दो रात का सफर एक डिब्बे में हम लोगों ने किया इसलिए दोनों तरफ की झिझक के बावजूद परिचय बढ़ा। दिवाकर ने बताया कि रूपा एक हरिजन लड़की है और इसीलिए वे दोनों गाँव से दूर आकर शादी करना चाहते हैं। समाज की गली-सड़ी परम्पराओं को तोड़ कर एक नये ढंग से जीवन जीने के उनके निश्चय को देखकर मेरे मन को बड़ा सुख मिला। मैंने उन्हें बताया कि मैं उनकी हर सम्भव सहायता करूँगा। मैंने उन्हें अपना असली परिचय तो नहीं दिया लेकिन उन्हें अपने परिवार का सदस्य मान कर उनकी सहायता करने का निश्चय कर लिया। बात-चीत से पता चला कि बम्बई में उनका कोई परिचित नहीं है जिसके यहाँ वे रह सकते हैं। मैंने उन्हें अपने घर चलने का सुझाव दिया और वे इसके लिए सहर्ष तैयार हो गए।

बम्बई पहुँचकर मैं उन्हें अपने घर ले गया। मेरा मकान एक कमरे का था और उसके साथ एक छोटी-सी रसोई थी। हम तीनों वहीं रहने लगे। रूपा खाना बनाती। हम तीनों एक परिवार के सदस्यों की तरह मिल कर खाना खाते। रात को मैं खाना खाने के बाद आर्यसमाज के मन्दिर में सोने चला जाता। मैंने अपने मित्रों और पड़ोसियों को बताया कि दिवाकर मेरे दूर के रिश्ते का भाई लगता है और चूँकि वह रूपा से अन्तर्जातीय विवाह करना चाहता है इसलिए वह गाँव से यहाँ आया है। कुछ दिन बाद आर्यसमाज मन्दिर में उनकी शादी हो गई।

दिवाकर ने मुझे बिना दुराव के सारी कहानी बताई कि किस तरह वह ततवानी की यात्रा में रूपा की सुन्दरता का दीवाना बना और किस तरह उस एकांत-निर्जन स्थान पर अपने शरीर की सहज भूख को तृप्त करने के बाद उनके मन में जीवन भर के लिए एक-दूसरे से बँध जाने की इच्छा पैदा हुई। दिवाकर ने यह भी बताया कि जब उसे रूपा के पेट में बच्चा होने की खबर मिली तो वह बहुत व्याकुल रहा। स्वभाव से वह बहुत अस्थिर मन था और यदि उसे पिता का समर्थन न मिलता तो वह रूपा को अपनी किस्मत पर छोड़ कर भाग जाता।

उसकी बातें सुनने के बाद मैंने अनुमान लगाया था कि वह परावलंबी व्यक्तित्व का आदमी

है। अपने लिए खुद निर्णय लेने का साहस उसमें नहीं है। वह पिता या माँ की आज्ञा का पालन करते-करते इतना कमजोर हो गया है कि माता-पिता के साथ एक घर में रहकर रूपा को पूरे हृदय से अपना पाना उसके लिए संभव नहीं होगा। लेकिन मुझे आशा थी कि दिवाकर के पिता रूपा के साथ कोई अन्याय नहीं होने देंगे।

वे दोनों मेरे कमरे में दस-ग्यारह महीने रहे। उसके बाद बहन की शादी के लिए उन्हें घर आना पड़ा। इस बीच उनके एक सुन्दर बच्चा हुआ। उसका रवि नाम मैंने ही रखा। इधर मैं दिवाकर की नौकरी के लिए कोशिश करता रहा और मुझे उम्मीद थी कि हमारी कम्पनी के दफ्तर में ही उसका काम बन जाएगा। लेकिन वह घर से लौट कर नहीं आया और तब से मेरा उसके साथ कोई सम्पर्क नहीं है। मैं सोचता था कि सब ठीक ही चल रहा होगा लेकिन रूढ़ियों से जकड़े ग्राम-समाज में उसने और दिवाकर ने कैसे एडजस्ट किया होगा, यह जानने की कई बार इच्छा हुई। कल भी घर जाने के बजाय दिवाकर के पास चलने की इच्छा हो रही थी। लेकिन यह सब हुआ कैसे? दिवाकर रूपा को सच्चे दिल से प्यार करता था। इसमें मुझे जरा भी संदेह नहीं। विशेषकर रवि के पैदा होने के बाद तो दोनों का प्यार देखे ही बनता था। उस लड़की में बदली हुई परिस्थितियों से अपने को एडजस्ट करने की जबर्दस्त क्षमता है। उसने उन नौ-दस महीनों में अपने को इस तरह बना लिया था कि कोई यह जान नहीं पाता था कि वह एक पिछड़े हुए गाँव के पिछड़े हुए परिवार में पली है।"

अमर मूक पात्र बना मुरली की कहानी सुन रहा था। उसका रूपा के साथ चंद घटों का परिचय रहा है लेकिन चंद घटों में रूपा ने अमर के दिल में जो जगह बना ली थी उसकी अमर को छोड़कर किसी को भी जानकारी नहीं थी। उसकी और रमा की शादी में रूपा और दिवाकर को विशेष रूप से बुलाया गया था। रमा और अमर की शादी बिरादरी की इच्छा के विरुद्ध हुई थी। रूपा और दिवाकर के सम्बन्ध का भेद खुलने के बाद पंडित नित्यानंद के परिवार को बिरादरी से बाहर कर दिया गया था इसलिए रमा की शादी में भी बिरादरी के लोग नहीं आए थे। रूपा और दिवाकर की उपस्थिति ने बिरादरी वालों को और भड़का दिया था। लेकिन शादी रुकी नहीं। सीधे-सादे ढंग से शादी हुई थी और गाँव के कई लोग उसमें शामिल हुए थे। शादी में आयी औरतों के बीच रूपा गुमसुम बैठी रही थी। रमा की शादी के बाद रूपा के दुर्दिन शुरू हो गए थे। रूपा की सास पार्वती देवी किसी भी हालत में चौके-चूल्हे के पास उसका आना नहीं सह सकती थी इसलिए उसके लिए अलग कमरा दे दिया गया। कुछ दिन एक पीतल की थाली में भोजन परोस कर उसके कमरे में पहुँचाती रही लेकिन फिर रूपा अपना भोजन खुद बनाने लगी। दिवाकर अपनी माँ के हाथ का बना खाना खाता। माँ की इच्छा के विरुद्ध रूपा के साथ खुलकर बातें कर पाना भी उसके लिए असंभव नजर आता था। दिवाकर के पिता पंडित नित्यानन्द इन तमाम चीजों से निर्विकार बने रहते। उनकी सेहत भी तेजी से गिरने लगी। अपने कमरे में पड़े रहते। न रूपा से कहने का साहस जुटा पाते और न पत्नी से। कोई चाय दे जाता तो पी लेते। खाने के लिए बुलाता तो उठकर खाने के लिए चल पड़ते। अपनी तरफ़ से किसी से न कोई चीज माँगते, न कोई शिकायत करते। दिवाकर नौकरी की तलाश में हफ्ते

चार-पांच दिन बाहर रहता। जब घर रहता तब भी अधिकतर अपने कमरे में पड़ा रहता। कभी-कभी माँ की नजर बचाकर वह रूपा के कमरे में आकर बच्चे से खेलने लगता। रूपा चाय बना देती तो पी लेता। उसे सांत्वना देते हुए कहता, "मेरी नौकरी लग जाएगी तो तुम्हें अपने साथ रखूँगा लेकिन यहाँ माँ जो चाहेगी वही करना पड़ेगा। वह इस उम्र में अपने संस्कारों को नहीं छोड़ सकती। उसे छोड़ने के लिए कहना भी बेरहमी होगी। जैसे-तैसे कुछ दिन निकालने पड़ेंगे। पिताजी को न जाने क्या हो गया है? कुछ बोलते ही नहीं। मुझे उनकी सेहत की चिंता हो रही है। लेकिन मैं समझता हूँ वे मन ही मन तुम्हें बहुत प्यार करते हैं। बच्चे से खेलने के लिए वे बहुत तड़पते हैं लेकिन माँ का दिल दुखाने का साहस उनमें भी नहीं है।"

रूपा को ऐसे मौकों पर बड़ी सांत्वना मिलती लेकिन ऐसे मौके कभी-कभी आते। अक्सर तो अकेली पड़ी रहती। बच्चे की देखभाल में अधिक से अधिक समय निकालने की कोशिश करती। जब बच्चा सो जाता तो खुरपी-दराँती लेकर घर के साथ लगी साग-सब्जी की क्यारी में काम करती रहती और अपने से ही बातें करती। धीरे-धीरे उसने अपनी इस स्थिति से समझौता कर लिया। सास की देखा-देखी वह पति, बच्चे या सास-ससुर के सुखी जीवन की कामना से व्रत-उपवास भी करने लगी। दिवाकर ने उसे एक डायरी लाकर दी थी जिसमें सभी व्रत-त्यौहारों को देखकर वह उपवास करने लगी। अक्सर उसके उपवास निराहार होते थे। सास कभी-कभी गुस्से में कहती, "व्रत-उपवास करने से तुम्हारी जात नहीं धुलेगी। इस तरह फाके करोगी तो बच्चे को दूध कहाँ से मिलेगा? बच्चे से दुश्मनी तो न करो।" सास की बातों से उसे बड़ी ठेस पहुँचती। उसने बच्चे को गाय का दूध पिलाना शुरू कर दिया। फिर जब वह दाल-भात खाने लगा तो उसको काफी राहत मिल गई।

दिवाकर को आस-पास कोई नौकरी मिल जाती तो रूपा को बुरे दिन न देखने पड़ते। लेकिन वह दो साल तक नौकरी की तलाश में भटकता रहा। इन बेकारी के दिनों में उसका गुस्सा और चिड़चिड़ापन बढ़ता गया। अब वह माँ से भी अक्सर लड़ पड़ता और रूपा से उखड़ी-उखड़ी बातें करता। फिर एक दिन वह बिना किसी को बताए घर से चला गया।

अमर जानता था कि दिवाकर घर छोड़ कर क्यों गया। वह घर की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति से दु:खी था। माँ के तानों से दु:खी था। पिता की बीमारी से दु:खी था और रूपा तथा बच्चे की हालत से दु:खी था। मन में इतना अधिक बोझ सहने की शक्ति उसमें नहीं थी। किन्तु रूपा तो असीम सहन-शक्ति को लेकर इस दुनिया में आई थी। जन्म से ही उसने गरीबी से, भुखमरी से और तिरस्कार से समझौता करना सीखा था। उसके लिए यह स्थिति कोई नई नहीं थी।

अब तक परिवार का गुजारा कुछ जमीन की आमदनी से कुछ यजमानी से बड़े आराम के साथ चलता रहा था। डेढ़ टोपे की जमीन बटाई पर साझी को दी हुई थी। उससे आधा अनाज मिल जाता था। पंडित नित्यानन्द शादी-ब्याह कमा कर या कथा पाठ वगैरह से कुछ अतिरिक्त आमदनी भी कर लेते थे। लेकिन अब साझी आधे अनाज की जगह चौथाई देने लगे थे और यह भी सुनने में आ रहा था कि जमीनों पर काश्तकारों का ही कब्जा हो जाएगा। उधर यजमानी का काम भी धीरे-धीरे घटता जा रहा था। पंडित नित्यानन्द अब अक्सर बीमार रहते। उनके

यजमान दूसरे पुरोहित की तलाश करने लगे। पंडित नित्यानन्द ने भी अपने यजमानों को मनाने और उनकी खुशामद करने की कोई कोशिश नहीं की। उन्होंने यजमानों के घर जाना भी छोड़ दिया। घर में आकर कोई बुला ले जाता तो जाकर कथा-पाठ कर आते। शादी-ब्याह पर भी वे बिना बुलाए न जाते। नतीजा यह हुआ कि उनकी यजमानी सिकुड़ती गई और घर की आमदनी का एक प्रमुख स्रोत पतला पड़ता गया।

यही स्थिति रहती तब भी कोई बात नहीं थी। लेकिन उनकी सेहत गिरती जा रही थी और दिवाकर के घर से जाने के बाद तो वह और भी बिगड़ती गई। दिवाकर की खोज के लिए कई दिनों तक वे इधर-उधर भटकते रहे और फिर घर लौटे तो बिस्तर पर पड़ गए। बुखार रहने लगा, खाँसी-बलगम का प्रकोप भी बढ़ गया।

एक दिन उन्होंने रूपा को आँगन बुहारते देखा तो बिस्तर पर पड़े-पड़े आवाज दी। रूपा की सास बड़ पूजने गई थी। शायद उस दिन बड़-अमावस थी। घर में पंडिताइन होती तो वे रूपा को अपने कमरे में बुलाने का साहस नहीं जुटा पाते थे।

रूपा डरती-डरती कमरे में आई तो उन्होंने कहा—

"बेटी, एक काम कर। अंदर जा कर देख। घर में सूजी हो तो थोड़ा सा हलुआ बना। सूजी न हो तो आटे का ही बना। चाय भी बनाना। बड़ी इच्छा हो रही है हलुआ खाने की। और देख, रवि कहाँ है?"

"अंदर खेल रहा है पिताजी," रूपा ने कहा।

"तो उसको मेरे पास छोड़ जा। लेकिन देखो, जल्दी करना। पंडिताइन आ जाएगी तो तूफान खड़ा कर देगी।"

रूपा रवि को उठाकर ले आई और वह दादा के साथ खेलने लगा। रूपा घर की रसोई में न जाकर दुकान की तरफ गई। वहाँ उसने सूजी, घी और चीनी खरीदी, फिर लौट कर हलुआ बनाने लगी। इतने दिनों में पहली बार उसे रोने की इच्छा हुई। अपने ससुर का वह बहुत आदर करती थी। उनकी चुप्पी, उनकी बीमारी, उनकी मजबूरी उसे उतना ही दुःखी करती थी जितना पति का वियोग। लेकिन उसने अपने आँसुओं पर हमेशा काबू रखा था। जब दुःख बर्दाश्त से बाहर हो जाता, तो वह बच्चे के साथ खेलने लगती थी या साग-सब्जी की क्यारी में काम करने लग जाती थी। लेकिन ससुर के लिए हलुआ बनाते-बनाते उसकी आँखों में आँसू निकल ही पड़े। अपने पल्लू से आँखें मल-मल कर उसने उन्हें सुखाया और फिर कटोरे में हलुआ तथा दुपट्टे के पल्लू में गर्म चाय का गिलास पकड़े वह ससुर के कमरे में आई। रवि दादा की मूँछों से खेल रहा था। रूपा ने रवि को गोद में उठा लिया और फर्श पर बैठकर उसे गोद में झुलाने लगी। पंडित नित्यानन्द चम्मच से हलुआ खाने लगे तो उनके चेहरे पर एक अपूर्व संतोष झलकने लगा।

"बहुत अच्छा बना है। लो तुम भी खाओ।"

और उन्होंने एक चम्मच भर कर रूपा की तरफ बढ़ा दिया। रूपा बोली—

"आप खाइये, वहाँ और भी बच गया है।"

"अच्छा एक चम्मच मेरे हाथ से ले लो।"

रूपा ने हथेली बढ़ा कर हलुआ ले लिया।

"बेटी तुम चिंता मत किया करो।" उन्होंने कुछ देर चुप रहने के बाद कहना शुरू किया, "दिवाकर पढ़ा-लिखा है। कहीं न कहीं नौकरी मिल ही जाएगी। अब दो-चार दिन में उसकी चिट्ठी आनी चाहिए।" रूपा सिर झुकाए सुनती रही।

"उसकी नौकरी लग जाएगी तो मैं उससे कहूँगा कि तुम्हें साथ ले जाए। गाँव तो नरक है। यहाँ रह कर तो अच्छा-खासा आदमी मर जाता है। दिवाकर के साथ किसी शहर में रहोगी तो कोई तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेगा।"

रूपा सिर झुकाए आँसू टपकाती रही।

"और देखो बेटी, रवि को किसी अच्छे स्कूल में भरती कराना। उसे अच्छी तालीम देना। धर्म-कर्म के ढकोसलों से उसे दूर रखना।"

हलुआ खा कर उन्होंने चाय पी और कटोरी-गिलास रूपा की ओर बढ़ाते हुए कहा, "अब तुम जल्दी-जल्दी यहाँ से चली जाओ। तुम्हारी सास ने देख लिया तो आफत कर देगी।" रूपा भारी मन से गिलास-कटोरी उठाकर और बच्चे को ले कर बाहर चली गई, तो पंडित नित्यानन्द सिर से पाँव तक चादर ओढ़ कर सो गए। उस दिन उन्हें दिन में ही बहुत गहरी नींद आई। दिन भर सोए रहे। शाम को पंडिताइन ने खाना खाने के लिए जगाया तो काफी स्वस्थ नजर आ रहे थे। उन्होंने खाना खाया, फिर टहलने निकल गए। बहुत दिनों बाद वे घर से निकले थे इसलिए वे सभी मित्रों के पास कुछ-कुछ देर रुके। कई दिनों के बाद वे अपने मन पर पड़े किसी बोझ से मुक्ति महसूस कर रहे थे।

दूसरे दिन सुबह वे अपने बिस्तर से नहीं उठे। वे पूर्ण शांति को प्राप्त कर चुके थे।

पंडित नित्यानन्द के स्वर्गवास से रूपा की सास पार्वतीदेवी को सारा जीवन ही व्यर्थ लगने लगा था। लड़के के घर से चले जाने का गम उसे पहले ही खाए जा रहा था। अब पति का साया भी उठ गया। अब वह किसके लिए जीती? किसके सहारे जीती? अमर रमा को लेकर पहुँच गया था। सारा क्रिया-कर्म विधि अनुसार किया गया। अमर ने ही पिंडदान दिया था। गंगाजी में फूल चढ़ाने जब वह हरिद्वार गया तो पार्वती देवी को भी साथ ले गया। वहाँ से लौटने के बाद भी उसे कुछ दिन गृहस्थी का कारोबार ठीक-ठाक करने के लिए वहाँ रुकना पड़ा। इसके बाद रमा को अपनी माँ के पास छोड़कर वह अपने घर आ गया।

लेकिन ससुर के स्वर्गवास से रूपा के जीवन में जो सूनापन भर गया था उसे किसी ने नहीं देखा। कोई देखता भी कैसे? ससुर और पुत्र वधू के बीच एक रस्मी लगाव तो लोगों ने देखा था लेकिन कोई पुत्र वधू अपने ससुर को पिता की तरह प्यार कर सकती है और उनके न रहने पर अपने को अनाथ महसूस कर सकती है, यह तो लोगों की कल्पना से बाहर था। रूपा के मन की थाह अगर कोई पा सकता था तो वह अमर था, लेकिन अमर को इतनी फुर्सत कहाँ होती थी कि वह रूपा से उसके दुःख दर्द की बातें करे। शादी के बाद वह जब कभी ससुराल जाता था तो उसे सास-ससुर की बातों को ही अधिक समय देना पड़ता था। रूपा से तो कुशल-मंगल की

पूछ-ताछ भर कर पाता था। ससुर का क्रिया-कर्म करने के लिए वह जितने दिन वहाँ रहा उसको बेहद व्यस्त रहना पड़ा। रूपा के दिल की गहराई में देखने के लिए उसे कोशिश करने पर भी उपयुक्त अवसर नहीं मिल पाया।

जब तक रमा वहाँ रही, रूपा अपने सूनेपन को कुछ आसानी से सहती रही। घर के काम-काज से फुर्सत पाने के बाद रमा उसके कमरे में आ बैठती और दोनों घंटों बातें करतीं। रवि रमा से बहुत हिल गया था। बुआ की गोद में जाने के लिए वह मचल उठता था। रमा रसोई का काम कर रही होती तब भी वह वहाँ पहुँच जाता। पार्वतीदेवी भी बच्चे को बहुत प्यार करती थी। उसके लिए वह अपनी चादर के पल्ले में हमेशा खील, बताशे या कोई और चीज बाँधे रहती। अपने पोते को गोद में उठाकर उसे बहुत सुख मिलता। उसे अपनी गोद में बिठा कर दूध-भात खिलाने, उसके लिए नये कपड़े, नये खिलौने लाने में उसे महसूस होता कि उसके भीतर की रिक्तता भरने लगी है। धीरे-धीरे बच्चा भी उसके आस-पास मँडराने लगा। जब रमा एक महीना रहने के बाद अपने घर चली गई तो पार्वती देवी को अपनी रिक्तता भरने के लिए चाँद सा पोता मिल गया। सम्बन्धों का यह परिवर्तन बहुत ही सहज भाव से और अदृश्य रूप से हुआ था। बच्चे को अब माँ के दूध की जरूरत नहीं रह गई थी। उसकी कई जरूरतें ऐसी थीं जो माँ की अपेक्षा दादी के पास अधिक आसानी से पूरी हो सकती थीं। रूपा खर्च-पत्ते के लिए अब पूरी तरह सास की आश्रित हो चुकी थी। ससुर के जीवित रहते तो उसे कभी इसकी कमी महसूस नहीं हुई थी, वे छिप-छिपा कर उसे कुछ रुपये बीच-बीच में दे दिया करते थे। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद तो उसे उसी पर निर्भर रहना था जो उसकी सास दया करके उसे देती। वैसे उसकी अपनी जरूरतें तो कुछ थीं ही नहीं। अब बच्चा दादी का चहेता बन गया, तो अच्छी ही बात थी। उसे किसी चीज की कमी तो नहीं रहेगी। बच्चा हर तरह से सुखी रहे-खुश रहे, इस से ज्यादा माँ का क्या अभीष्ट हो सकता है।

अपने भोलेपन में, अपने सीधेपन में रूपा को इस बात का पता ही नहीं चला कि धीरे-धीरे उसका बच्चा उससे छीना जा रहा है। जब पता चला तो बहुत देर हो चुकी थी। बच्चा दादी के साथ इतना हिल-मिल गया था कि उसके बिना उसे चैन नहीं मिलता। रूपा जब उसे नहलाने लगती तो वह 'बड़ी माँ बड़ी माँ' चिल्लाने लगता। वह उसे पास बिठाकर खाना खिलाने लगती तो दादी की तरफ भागने की कोशिश करता। ऐसे मौके पर दादी फौरन वहाँ पहुँच कर उसे उठा लेती और कहती, "बच्चे पालना कोई हँसी-खेल नहीं है। तू अपना काम कर। बच्चे को मैं सँभाल दूँगी।" और जब वह बच्चे को उठा कर ले जाती तो रूपा का सूनापन भाँय-भाँय करने लगता। कभी-कभी बच्चे की मचलाहट पर उसे गुस्सा भी आ जाता और वह उसे पीट देती। बच्चा जोर-जोर से रोने लगता। दादी माँ ऐसे मौके पर रूपा को खूब डाँट-फटकार सुनाती और कहती, "अरी डायन, तूने इस घर को तबाह कर दिया। मेरा बेटा गया, मेरे पति को तू खा गई, अब इस बच्चे को तो बख्श दे। तू मेरा सत्यानाश करने पर क्यों तुली है?" फिर उसका राग घंटों चलता रहता और इस बीच वह अपने दिल की सारी भड़ास निकाल लेती।

रूपा अपनी सास को पलटकर कभी जवाब नहीं देती। वह चुपचाप उसकी सारी बातें सुनती। फिर उठकर बाहर चली जाती या साग-सब्जी की क्यारी में जाकर काम करने लगती

और अकेले में जी भर कर रो लेती।

चार साल बाद दिवाकर घर आया। इन चार सालों में से दो साल उसने बड़े कष्टों और संघर्षों में बिताए थे। दो-तीन महीने नौकरी, फिर तीन-चार महीने बेकारी, फिर कुछ दिनों के लिए नौकरी और फिर बेकारी, बस इसी तरह उसने दो साल धनबाद में काटे। फिर किसी तरह बर्फ की फैक्टरी में उसे अच्छी जगह मिल गई। उस बर्फ की फैक्टरी का मालिक सेठ दुनीचंद उसकी ईमानदारी से, उसके भलेपन से और उसकी कुछ अन्य विशेषताओं से इतना प्रभावित हुआ कि उसने दिवाकर को फैक्टरी का मैनेजर बना दिया। उस सेठ जी की जवान लड़की माया उसके आसपास मंडराने लगी और सेठ जी की दिवाकर पर विशेष कृपा बरसने लगी। दिवाकर एक अदनी नौकरी के लिए तरसता रहा था और अब उसके सामने फैक्टरी की मैनेजरी ही नहीं उसकी मिल्कियत भी लहरानें लगी। वह उसका शिकार हो गया। चार साल बाद जब वह अपने माता-पिता से मिलने के बहाने घर आया तो अपने उस राज को उसने किसी पर जाहिर नहीं होने दिया। उसने पिता का चौथे वर्ष का श्राद्ध किया, घर के खर्च-पत्ते के लिए काफी रुपयों की व्यवस्था कर दी और फिर अपनी नौकरी पर चला गया। रूपा को अपने साथ ले जाने का अमर का सुझाव उसने यह कहकर टाल दिया कि माँ को गाँव में अकेला छोड़ना उचित नहीं होगा। उसके बाद दिवाकर घर नहीं आया। लेकिन दिवाकर का राज ज्यादा दिन छिपा नहीं रहा। एक दिन अमर धनबाद पहुँच गया और सारी स्थिति को अपनी आँखों से देख आया। उसने वहाँ से लौटकर जब रूपा को यह खबर सुनाई तो उस पर जैसे कोई असर ही नहीं हुआ। उसका जीवन पहले की तरह सास की गालियों और तानों को चुपचाप सुनने, बच्चे को दूर से देखने और व्रत-उपवासों से अपने शरीर को जलाने में बीतने लगा।

पिछली रात अमर के मुँह से रूपा की इस त्रासदी कथा को सुन कर मुरली एक बार उससे मिलने के लिए बहुत उतावला हो उठा था इसलिए अमर को उसके साथ चलना पड़ा। रास्ते भर मुरली अपने अज्ञातवास की कहानी सुनाता रहा। जब वे खैरा में पंडित दिवाकर के घर पहुँचे तो सूरज निकला ही निकला था। रूपा की सास मुँह-अँधेरे उठकर गाँव से बाहर बावली में स्नान करने जाती थी और मंदिर में पूजा करके काफी देर से लौटती थी। उस समय रूपा घर पर अकेली थी और आँगन बुहार रही थी। रवि अपनी दादी के कमरे में अभी सोया पड़ा था। इतनी सुबह अमर को एक अजनबी के साथ अपने आँगन में देखकर रूपा को आश्चर्य तो हुआ लेकिन वह हड़बड़ाहट में कुछ कह न सकी। दौड़कर अंदर गई और कमरे में एक दरी बिछा दी। दोनों अन्दर आकर बैठ गए तो उसने आकर अमर के पैर छुए और फिर रसोई में जाकर वह उनके लिए चाय बनाने लगी। चूल्हे पर चाय की पतीली रखकर वह रसोई की देहली पर आकर बैठ गई।

"इतने सवेरे कहाँ से आ रहे हैं ननदोई जी?"

"घर से ही आ रहे हैं।"

"घर से? क्या आधी रात को चल पड़े थे वहाँ से?"

"हाँ, कुछ ऐसा ही समझो। यह मेरे साथी हैं न, इन्हें आज ही बहुत जरूरी काम से चले

जाना है और आपसे मिल कर जाना चाहते थे।

रूपा उठकर भीतर रसोई में चली गई। वह उस आदमी को नहीं जानती थी और यह समझ नहीं पा रही थी कि अमर उसे मुझ से मिलाने क्यों लाए हैं। वह बड़ी देर तक चूल्हे में आग तेज करने के बहाने रसोई में बैठी रही। पतीली का पानी उबलने लगा तो उसने पत्ती डाल दी और फिर सोचने लगी। पतीली उतार कर उसने चीनी और दूध डाला और दो गिलास रकर बाहर आई। चाय के गिलास मेहमानों के आगे रख कर वह फिर देहली पर आकर बै: गई।

"मैंने इन्हें पहचाना नहीं।" उसने धीरे से कहा।

अमर मुस्कराकर बोला–

"जिस हालत में यह हैं उस हालत में तुम इन्हें पहचान भी नहीं सकती हो। यह हमारी नीलू भाभी के देवर हैं जो बीस साल पहले घर से भाग गए थे। कल अपने अज्ञातवास से आए हैं और आज फिर अज्ञातवास पर जा रहे हैं।"

रूपा चुपचाप बैठी रही। वह पूछना चाहती थी कि नीलू भाभी के देवर अगर अज्ञातवास से आए हैं और फिर अज्ञातवास पर जा रहे हैं तो इससे उसे क्या लेना देना! मुझ से यह किसलिए मिलना चाहते हैं? लेकिन प्रश्न उसके मन में ही घुमड़ता रहा। वह एक भी शब्द नहीं बोल सकी। "बम्बई के मास्टर जी हैं।"अमर ने मुस्कराकर कहा।

'अरे सच! आप तो बिल्कुल नहीं पहचाने जा रहे हैं।" वह बच्चे की तरह खिल उठी, "आप तो बिल्कुल वैसे नहीं लग रहे हैं। ये दाढ़ी-बाल, ये कपड़े…"

"कहा न, अज्ञातवास से आए हैं और अज्ञातवास पर जा रहे हैं। पुलिस को चकमा देने के लिए यह भेष बनाया है।" अमर बोला।

मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा। इन्हें भेष बनाने की क्या जरूरत? पुलिस को इनसे दुश्मनी हो सकती है? मास्टर जी, आप बताइये न, आप क्यों चुप हैं? यह सब क्या है?"

मुरली ने बस इतना ही कहा, "अमर भैया जो कह रहे हैं, ठीक है।"

ठेठ पहाड़ी बोली में उनकी बात सुनकर रूपा को आश्चर्य हुआ। फिर उसे याद आया कि अमर ने उनका परिचय नीलू भाभी का देवर कह कर दिया था। हम इतने दिन इनके साथ बम्बई रहे और इन्होंने हमें बताया ही नहीं। कभी भूले से भी हमें पता चलने नहीं दिया कि वे हमारी तरफ के हैं। उसके मन में दस साल पुरानी यादें ताजा होने लगीं। किस तरह वे उससे कतराकर बातें करते थे। एक-दो मिनट से ज्यादा कभी नहीं ठहरते। शाम को क्लास में पढ़ाते, तो वह भी जाकर बैठ जाती थी। वे पढ़ाते-पढ़ाते सब की तरफ देखते लेकिन उसकी तरफ कभी-कभार एक क्षण के लिए नजर डालकर हटा देते थे।

"आप कैसी हैं?" मुरली ने संक्षिप्त-सा प्रश्न किया।

उनके 'आप' कहने पर रूपा बहुत नाराज होती थी। वह चिढ़कर कहती–

"आपकी यह बात अच्छी नहीं है। मुझे 'आप' कहकर क्यों बुलाते हैं? मैं आप से छोटी हूं। हर तरह से छोटी। आप जैसे आदमी के हमें पाँव छूने चाहिए और आप हमें 'आप' कहकर बुलाते हैं।" मुरली को पाँव छूने की बात बहुत बुरी लगती थी। रूपा को अगर 'आप' कहे जाने

से गुस्सा आता था तो मास्टर जी पाँव छूने के नाम से बेहद चिढ़ते थे। रूपा को इस बात का पता एक दिन तब चला जब उसने किसी व्रत पर अपने पति दिवाकर के पाँव छूने के बाद मास्टर जी के पाँव भी छू दिए थे। "यह क्या बदतमीजी है?" वे उछल कर बोले थे और फिर दिवाकर पर बरस पड़े थे, "अजीब ढकोसले पाल रखे हैं आप लोगों ने। ये व्रत-उपवास, पूजा-आरती, और जिस-तिस के पैर छूना।"

दिवाकर हँस कर बोला, "लेकिन रूपा ने जिस-तिस के पैर तो नहीं छुए। हम तो पति देवता हैं। आज के दिन हमारे पैर तो छूने चाहिएं थे। और आप हैं ब्राह्मण देवता, आपके पैर हमेशा ही छूने योग्य हैं।"

"आपको किसने बताया कि मैं ब्राह्मण देवता हूँ?"

"बताने की क्या जरूरत? आप देखने में, काम में, व्यवहार में सौ फीसदी......"

"जी नहीं, मैं जन्म से शूद्र हूँ और कर्म से भी। मैं मोटर मैकेनिक हूँ।"

"इससे क्या फर्क पड़ता है? हमारी नजर में तो आप......?"

"देखो दिवाकर, मुझे ये बातें पसन्द नहीं हैं। मैं बहुत मामूली आदमी हूँ। मैं किसी के भी पैर छुआने के योग्य नहीं हूँ और एक औरत से तो बिल्कुल नहीं।" रूपा ने देखा, मास्टर जी के चेहरे पर सचमुच गुस्सा नजर आया था।

मुरली के प्रश्न का उत्तर रूपा ने नहीं दिया था लेकिन मुरली के लिए उत्तर बहुत स्पष्ट हो गया था। रूपा पहले से बहुत कमजोर हो गई थी। इतनी कमजोर कि मुरली पहले तो पहचान ही नहीं सका। उसका चेहरा पीला पड़ गया था। आँखों के आस-पास काले दायरे भी दिखाई देने लगे थे, बोलते समय चेहरे पर दो झुर्रियाँ भी बनने लगी थीं लेकिन इससे भी ज्यादा चौंकाने वाली बात मुरली को यह लगी कि रूपा में जीवन की उमंग नाम की चीज दिखाई नहीं पड़ती है। लगता था वह अपने जीवन को जी नहीं रही है, ढो रही है।

"यह आपने अपनी क्या हालत बना रखी है?" उसने फिर 'आप' संबोधन का इस्तेमाल किया।

रूपा ने इस बार संबोधन पर एतराज नहीं किया। अपने पैर के अँगूठे से फर्श को कुरेदते हुए बोली, "भगवान् जिस हालत में रखता है, उसी में रहना पड़ता है।"

मुरली की इच्छा हुई कि गला फाड़ कर चिल्लाए कि भगवान् बहुत बड़ा फ्रॉड है। आदमी की हर कमजोरी को ढकने वाला, उसके हर पाप पर पर्दा डालने वाला। सदियों से आदमी का आदमी ने इस भगवान् के हौवे से डराकर शोषण किया है। सदियों से पैरों पर पड़े हुए आदमी को भगवान् की इच्छा की दुहाई देकर उठने की कोशिश करने से रोका गया है। भगवान् ने कभी गमजदा आदमी का गम दूर नहीं किया, उससे चुपचाप गम पी जाने के लिए एक नकारात्मक बल दिया है। लेकिन उसके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। वह केवल अमर की तरफ देख कर रह गया। अमर ने बताया कि वह सास की देखा-देखी व्रत-उपवासों के चक्कर में पड़ गई है और अपने स्वास्थ्य के प्रति बिल्कुल लापरवाह हो गई है। वह स्वयम् उसे कई बार समझा चुका था लेकिन उस पर अब किसी की बात का असर नहीं होता। आप समझा दें तो शायद मान

जाए। इससे पहले कि मुरली कुछ कहता रूपा बोल उठी—

"इनकी बातों पर विश्वास मत कीजिए। मुझे कुछ नहीं हुआ है। अच्छी-भली हूँ। उम्र बढ़ती है तो जिस्म में कई खराबियाँ आ जाती हैं। इसमें नई बात क्या है?"

मुरली बोला—

"खराबियाँ आती हैं इसमें तो कोई नई बात नहीं है लेकिन उन्हें दूर करने के लिए या रोकने के लिए कुछ न किया जाए, यह भी तो अक्लमंदी नहीं है। मैं आपको कुछ उपदेश तो दे नहीं सकता। इतना ज़रूर कहना चाहूँगा कि आपको अपनी सेहत का खयाल रखना चाहिए। और किसी के लिए नहीं तो कम से कम बच्चे के लिए तो आपको ज़िंदा रहना ही है।"

बच्चे का प्रसंग चलते ही रूपा के गले में कोई चीज अटक गई। बड़ी मुश्किल से अपनी आवाज को काबू में रखकर उसने कहा—

"बच्चे की देख-भाल के लिए दादी जो हैं। वैसे अब वह बड़ा हो गया है। दो-चार साल में उसे किसी की देखभाल की जरूरत नहीं रहेगी। उलटे, मैं उसके ऊपर बोझ बन जाऊँगी।"

"रवि है कहाँ? क्या दादी के साथ गया है?" अमर ने पूछा।

"सो रहा है! दादी आकर दूध गरम करेगी तो उठेगा।"

इतने में रूपा की सास आँगन में आती दिखाई दी। रूपा देहली से उठ कर अपने कमरे में चली गई। पार्वतीदेवी के अन्दर आने पर अमर ने उनके पाँव छुए और बताया कि वे भवारने एक जरूरी काम से जा रहे थे। आज ही वापस जाना है।

इतने में रवि भी आंखें मलता हुआ दूसरे कमरे से आ गया। अमर और मुरली को देखकर वह कुछ दूरी पर ठिठक गया। फिर दादी के पास जाकर खड़ा हो गया और मुरली की लम्बी दाढ़ी और बालों को गौर से देखने लगा।

अमर ने रवि को अपने पास खींचते हुए कहा, "आओ रवि, मेरे पास आओ। देखो यह कौन हैं? यह तुम्हारे गुरु जी हैं और तुम्हारे पापा के भी गुरु जी हैं।"

"यह लड़का बहुत शरमालू हो गया है।" पार्वती ने कहा, "किसी के पास नहीं जाता। अपनी माँ के पास भी नहीं। स्कूल भेजने के लिए भी इसकी मिन्नतें करनी पड़ती हैं। अबकी दिवाकर आएगा तो मैं इसे साथ भेज दूँगी। वहाँ ठीक पढ़-लिख तो लेगा। यहाँ रह कर तो यह बिगड़ जाएगा।"

रवि का हाथ पकड़ कर बोली—

"चल, दूध पी ले। हाथ-मुँह धो?" फिर अमर की तरफ देख कर बोली, मैं नाश्ता बना कर लाती हूँ।"

लेकिन अमर ने नाश्ते के लिए मना करते हुए कहा, "हमें जल्दी है। इन्हें दो-तीन काम हैं, फिर आज ही जाना है। चाय पी ली, अब किसी चीज की इच्छा नहीं है।"

"लेकिन, इतनी दूर से आए हैं। भूख लगी होगी, बिना नाश्ता किए कैसे जाएँगे?"

"अभी नाश्ते का वक्त भी नहीं हुआ है। भवारने जाकर कर लेंगे। इस वक्त हम चलेंगे।"

और वे दोनों उठ गए। मुरली ने जेब से पाँच रुपये का नोट निकाला और उसे रवि को देते हुए कहा, "इसकी मिठाई खा लेना। अगली बार आऊँगा तो तुम्हारे लिए कोई बढ़िया चीज लाऊँगा।"

रवि दादी की आड़ में छिप गया। फिर अमर और दादी के मनाने पर उसने नोट ले लिया।

भवारना में मुरली को अज्ञातवास के लिए विदा करने के बाद अमर को कई बार उसका अता-पता जानने की इच्छा हुई, लेकिन मुरली से उसका सम्पर्क नहीं हो सका। गाँव के लोगों को दो-तीन दिन में ही भनक मिल गई थी कि जिस दिन पुलिस मुरली की खोज में आई थी, उस दिन मुरली भी घर आया था और उसी रात कहीं चला गया था। मुकुल ने कुछ दिन तो मन पर काबू रख अपने हमजोलियों से बात नहीं की किंतु आखिर इतनी बड़ी बात को कब तक छिपाए रखता। अपने दोस्तों को, किसी से न कहने के लिए विद्या माता की कसम दिला कर, उसने सब कुछ बता दिया कि किस तरह उसके चाचा आए और किस तरह रातों-रात कहीं चले गए। अपने दोस्तों के बीच चाचा के रंग-रूप का उसने ऐसा चित्र खींचा कि गाँव के बच्चों में वे एक रहस्य भरा नायक बन गए। बच्चों के माध्यम से यह बात सारे गाँव में फैली और जैसा कि अमर का अनुमान था, मुरली घर-घर चर्चा का विषय बन गया। समाचार-पत्रों में छपी-अनछपी खबरों के आधार पर मुरली के नाम के इर्द-गिर्द एक रहस्य-रोमांच का वातावरण बन गया। आपातस्थिति में पुलिस की नजरों में धूल झोंकने वाले भूमिगत राजनीतिक कार्यकर्ताओं में गदियारी गाँव का एक नौजवान भी है, यह आस-पास के गाँवों की चर्चा का विषय भी बन गया था। सन् 1942 की घटनाओं को भी इस प्रसंग में याद किया जाने लगा और बड़े-बूढ़ों ने सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, ऊधम सिंह, अशफाकुल्ला और उनके साथियों के किस्से भी बयान करने शुरू किए। हालांकि समाचारपत्रों में भूमिगत आंदोलनकारियों के बारे में कुछ नहीं छपता था लेकिन लोग अपने मन से उनके किस्से गढ़ कर सुनाने लगे थे। मुरली के बारे में यह प्रसिद्ध हो गया कि मुरली एक पूरे दल को लेकर हिमाचल प्रदेश, पंजाब और जम्मू व काश्मीर में सरकार का तख्ता पलटने का काम कर रहा था।

पुराने क्रांतिकारियों से जुड़ी कहानियों ने लोगों के मन में मुरली के प्रति आदर और भय का भाव पैदा कर दिया। लोगों की धारणा बन गई कि किसी ने यदि उसके खिलाफ पुलिस में मुखबिरी की तो उसको क्रांतिकारियों की गोली का शिकार होना पड़ेगा। यही कारण था कि मियाँ यशवंतचंद और पंडित दयाराम जो सरकार की खैरख्वाही में जबर्दस्त होड़ कर रहे थे, पुलिस को खबर करने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। पुलिस अफवाहों के आधार पर एक-दो बार गाँव में पूछताछ करने के लिए जरूर आई लेकिन मियाँ यशवंतचंद और पंडित दयाराम ने एक स्वर से कह दिया कि मुरली गाँव में नहीं आया और किसी ने उसे नहीं देखा।

मियाँ यशवंतचंद ने पुश्तों से चली आ रही लंबरदारी छोड़ दी थी। जमीन का ठेका उगाहने का काम अब दूसरे गाँव के पंडित मनसुखराम को मिल गया था। लंबरदारी के साथ अब राजसी प्रतिष्ठा या दबदबा नहीं रहा था। वह एक मामूली से कारकुन का काम हो गया था। इसीलिए मियाँ यशवंतचंद की इस काम में कोई रुचि नहीं रह गई थी। शक्ति के अनेक द्वार खुले थे और वे एक-एक करके उसमें प्रवेश कर रहे थे। चाय के बागान-मालिकों की एक सहकारी समिति बनी थी। उसके कोषाध्यक्ष का काम उन्होंने स्वीकार कर लिया था। इसके अतिरिक्त गाँव के सहकारी बैंक के कोषाध्यक्ष भी बन गए थे। गाँव के लोगों को शादी-ब्याहो पर कर्ज दिलाने का अधिकार बहुत बड़ा अधिकार था, जिसके बल पर गाँव का हर आदमी उन्हें झुक कर प्रणाम करता था। उन्हीं की कोशिशों से गाँव का प्राइमरी स्कूल, हाई स्कूल बना था, और एक डिस्पेंसरी भी खुली थी। इन सब कामों का श्रेय इसीलिए उनको दिया जाता था कि वे धनराशि जुटाने की स्थिति में थे। अधिकारियों से पुराना परिचय तो था ही। इलाके के एम०एल०ए० और एक मंत्री से भी अच्छी साँठ-गाँठ हो गई थी। सन् 1972 के आम चुनावों में उन्होंने असेम्बली के लिए टिकट लेने की कोशिश की थी और इस सिलसिले में वे दिल्ली भी हो आए थे। लेकिन ऐन मौके पर पंडित सेवाराम जो कांग्रेस विभाजन के बाद पुरानी कांग्रेस में रह गए थे, अचानक पलट गए। 1971 के लोकसभा चुनावों ने इन्दिरा कांग्रेस को असली कांग्रेस सिद्ध कर दिया था और उसके बाद एक-एक करके पुराने कांग्रेसी नई कांग्रेस में आने लगे थे। पंडित सेवाराम उस समय भी एम०एल०ए० थे और उम्मीद यही थी कि वे पुरानी कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ेंगे और मियाँ यशवंतचंद को नई कांग्रेस से टिकट मिल जाएगा। किन्तु पं० सेवाराम भी हवा का रुख पहचानते थे। टिकट बँटने से एक दिन पहले वे पाँच सौ कार्यकर्त्ताओं के साथ नई कांग्रेस में आ गए और मियाँ यशवंतचंद का सपना चकनाचूर हो गया।

लेकिन पंडित दयाराम ने गाँव की सरपंची नहीं छोड़ी थी। दस साल पहले हुए पंचायत चुनावों में हमेशा की तरह उन्होंने सरपंची सम्हालने की अपनी अनिच्छा प्रकट की थी, फिर लोगों के कहने पर इलेक्शन लड़ लिया था। तब से पंचायत चली आ रही थी और उनके लिए सरपंची छोड़ने का कोई अवसर नहीं आया। अपनी पुरानी धाक के कारण वे ब्लाक पंचायत समिति के सदस्य भी बन गए थे और एक-दो पंचायत सम्मेलनों के सिलसिले में दिल्ली तथा बम्बई जैसे शहरों में भी हो आए थे। पंचायतों को मजबूत बनाने की सरकारी नीति ने उनके हाथ उत्तरोत्तर मजबूत किए थे। बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत जब हरिजनों और भूमिहीनों को जमीनें देने का सवाल उठा तो पं० दयाराम ही सब लोगों का केंद्रबिन्दु थे। गाँव में पचास के करीब हरिजन परिवार थे और वे सभी भूमिहीन थे। इसके अतिरिक्त आठ-दस परिवार गैर-हरिजन थे जिन्हें भूमि दी जानी थी। गाँव सभा के पास इतनी जमीन नहीं थी कि इन सब परिवारों को बांटी जा सकती। वैसे तो जमीन बहुत थी लेकिन उस पर गैर-कानूनी कब्जे बरसों पहले किए जा चुके थे और अब उन्हें छुड़ाना टेढ़ी खीर था। जिस किसी की जमीन गाँव सभा की जमीन के साथ पड़ती थी, उसने हर साल अपनी हद को थोड़ा-थोड़ा आगे खिसका कर काफी बड़े हिस्से पर अपना कब्जा कर लिया था और कई लोगों ने तो पटवारियों तथा तहसीलदारों को

घूस खिलाकर उसके इंदराज भी सरकारी खातों में करा लिये थे। जमीन के इन नाजायज़ कब्ज़ों के बाद गाँव के पशुओं के लिए दो छोटे-छोटे चरान बचे थे। तीसरा चरान अब जंगल वालों ने बन्द कर दिया था क्योंकि वहाँ सफेदे और चीड़ के पौधे लगाए गए थे। इन दो चरानों में से एक चरान हरिजन और भूमिहीनों को बाँटे जाने का फैसला हुआ था। प्रत्येक हिस्से में डेढ़ करनाल जमीन आई थी। इसमें कौन-सा टुकड़ा किसको मिले, यह फैसला सरपंच के ऊपर छोड़ दिया गया था। इस जमीन के बटवारे में सरपंच को लोगों का विरोध भी सहना पड़ा था क्योंकि पशुओं के लिए अब एक छोटा-सा टुकड़ा ही बचा था। लेकिन इन तमाम विरोधों के बावजूद सरपंच दयाराम ने सब को जमीन देकर अपने नाम का सिक्का जमा लिया था।

चरान से जमीनें बाँटे जाने का अमर ने भी विरोध किया था। उसका तर्क था कि जब तक गाँव सभा की जमीन को नाजायज़ कब्ज़ा करने वालों से नहीं छुड़ाया जाता, तब तक शेष जमीन का बटवारा नहीं होना चाहिए। पं० दयाराम और मियाँ यशवंतचंद गाँव के सब से बड़े भूमिपति थे और नाजायज़ कब्ज़े भी सब से अधिक उन्हीं के पास थे। वे जल्दी से जल्दी हरिजनों और भूमिहीनों में बची-खुची जमीन बाँटकर अपने-अपने नाजायज़ कब्ज़ों पर नये बटवारे के साथ-साथ सरकारी मुहर लगवाना चाहते थे। उनके लिए यह स्वर्ण अवसर था इसलिए गाँव के और लोगों के विरोध करने पर भी दोनों ने मिलकर इस योजना को कार्यरूप देकर न केवल सरकार की प्रशंसा अर्जित की बल्कि अपने स्वार्थों की भी पूरी तरह रक्षा कर ली।

जमीनों के मामले में अमर के प्रति हरिजनों और दूसरे गरीब लोगों में गलतफहमी पैदा हो गई और उसे भड़काने का काम पंडित दयाराम तथा मियाँ यशवंतचंद ने किया। एक दिन घीणूं और हीरा को जब अमर ने अपनी बात समझानी चाही तो उन्होंने उसका ठीक उलटा अर्थ निकाला।

अमर ने उन्हें समझाया कि जिस जमीन में वे वर्षों से रह रहे हैं, वह सरकारी कागजों में भले ही मियाँ यशवंतचंद या पंडित दयाराम की हो, असल में यह जमीन उनकी है क्योंकि वे वर्षों से वहाँ घर बना कर रह रहे हैं और अब कोई उन्हें बेदखल नहीं कर सकता। अगर गाँव सभा की डेढ़-डेढ़ करनाल जमीन उन्हें मिल भी गई तो वे उसमें सिर्फ छोटा-सा घर बना सकते हैं। उन्हें पुरानी जगह छोड़नी पड़ेगी और उस पर मालिकों का आसानी से कब्जा हो जाएगा। नई जगह उनके लिए बहुत छोटी है और उस पर उनका गुजारा नहीं होगा। बात वहीं की वहीं रहेगी और सरकार का एहसान ऊपर से लेना पड़ेगा। सरकार के फेंके हुए टुकड़े पर जीने के बजाय तुम्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। जिस जमीन पर तुम काश्त कर रहे हो उसके मालिकाना हक के लिए लड़ाई लड़नी चाहिए।

लेकिन घीणूं, हीरा और दूसरे हरिजन अमर की बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे। वर्षों से वे दूसरों की जमीन पर झोंपड़ी बना कर रह रहे थे। अपने नाम की जमीन का एक जरा सा टुकड़ा भी उनके लिए बहुत बड़ा प्रलोभन था और वे इसे किसी भी कीमत पर हासिल करना चाहते थे।

अमर को लगा कि वह अपनी बात इन लोगों को नहीं समझा सकता। सरकार की

रियायतों पर पर जीने के बजाय आत्मसम्मान के साथ अपने अधिकारों के वास्ते संघर्ष करने के लिए उन्हें प्रेरित करना उस समय एक असंभव काम था। अमर ने इस तरफ से अपना ध्यान हटा लिया लेकिन अनचाहे में उसका नाम गाँव के उन लोगों के साथ जुड़ गया जो पशुओं के चरान के कम हो जाने से चिंतित थे और गाँव-सभा की जमीन को हरिजनों में बाँटने का विरोध कर रहे थे। उधर मियाँ यशवंतचंद और पंडित दयाराम प्रगतिशील माने जाने लगे और हरिजनों, भूमिहीनों का उन्हें भरपूर समर्थन मिलने लगा। यह भूमिहीन तबका ही ऐसा था जो सरकारी सत्ता की सीढ़ी पर चढ़ने वाले हर व्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण होता था। सरकार की नई नीति ने सदियों से सत्ता पर कब्जा करने वाले सर्वोच्च वर्ग और सदियों से सत्ता के नीचे कुचले जाने वाले निम्नवर्गों को एक करके उच्चवर्गों के आधिपत्य को भली प्रकार सुरक्षित कर दिया था।

अमर को लासेबाजी की इस राजनीति से घृणा होने लगी थी जो कुछ लोगों की स्वार्थ-पूर्ति का साधन बनते हुए गरीब जनता को सरकार द्वारा फेंके गए लासे पर जीने के लिए तैयार कर रही थी और सारे समाज को जाति युद्ध की तरफ धकेल रही थी। यह राजनीति केवल उस गाँव की नहीं थी, यह समस्त गाँवों की और सारे देश की घिनौनी राजनीति थी, जिसकी शुरूआत ऊपर से हुई थी। अब यह देश के कंकाल में प्रवेश करती जा रही थी, एक घातक जहर की तरह किंतु किसी का इस ओर ध्यान नहीं था।

आश्चर्य इस बात का था कि यह सब कुछ प्रगतिशीलता के नाम पर हो रहा था। जब से संविधान को भीतर से तोड़ने के उद्देश्य से कांग्रेस में घुसपैठ शुरू हुई थी, इन सारे कार्यक्रमों को जो कांग्रेस करती थी, प्रगतिशीलता की सनद मिल गई थी। अमर को अच्छी तरह याद है कि जब 1969 में राष्ट्रपति के चुनाव के समय अन्तरात्मा की आवाज के नाम पर स्वार्थ-पूर्ण राजनीति ने पहली बार नंगा नाच दिखाया था तो अच्छे भले लोगों तक ने इसे एक मजेदार तमाशे के रूप में लिया था और इस सारी घटना में साफ दिखाई देने वाले अनिष्ट को किसी ने नहीं देखा था। हालांकि यह बात उस समय साफ थी कि यह सारा आयोजन सत्ता को एक व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित करने के लिए किया जा रहा था किन्तु इसके सही रूप को किसी ने समझने की कोशिश नहीं की। उलटे इस दुर्भाग्यपूर्ण आयोजन को सफल बनाने के लिए इस देश के बुद्धिजीवियों ने, समाचारपत्रों ने और विपक्षी दल के नेताओं ने योगदान दिया, किसी ने मात्र मजा लेने के लिए, किसी ने मूर्खतावश और किसी ने अपने कूल्हों पर प्रगतिशीलता की छाप लगवाने के लिए। उसके बाद एक-एक करके उन तमाम संस्थाओं को तोड़ा गया जो हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन का आधार थीं और हर कदम को प्रगतिशील कह कर एक व्यक्ति के हाथ में समग्र सत्ता को सौंपने का उपक्रम अबाध गति से चलता रहा। और अंत में आई आपातस्थिति जो पिछले छः-सात वर्षों में बोये बीज का स्वाभाविक परिणाम थी। इसने एक झटके के साथ राष्ट्र की काठमारी चेतना को जगाया लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। भाग्य के भरोसे अपने को छोड़ने के अलावा कोई चारा नहीं था।

भाग्यवाद, नियतिवाद, अवतारवाद और व्यक्तिपूजा, ये सब एक ही मानसिकता की उपज हैं जो न जाने कब से इस देश में जड़ें जमाए बैठी है। भाग्यवाद और कर्मवाद ने दलितों को

दलित बने रहने में संतोष की अनुभूति कराई और व्यक्तिपूजा ने आदमी से यह विश्वास भी छीन लिया कि वह बिना किसी बैसाखी के खड़ा हो सकता है।

एक दूरस्थ गाँव में रहते हुए भी अमर देश की इन बदलती-बिगड़ती परिस्थितियों का निकट साक्षी सा रहा था और धीरे-धीरे उसके मन में यह एहसास भरता गया था कि इस देश के निम्न और निम्न मध्य वर्ग के लोग जिन में वह स्वयं को भी गिनता था, निकट भविष्य में सम्मान से जीवन जीने का अधिकार नहीं पा सकेंगे। आजादी के लगभग तीस वर्षों में यदि निर्धनता की सीमा सिकुड़ने के बजाय फैली है तो इसका क्या भरोसा कि आगे आने वाले दस-पन्द्रह या बीस वर्षों में इन अभागे लोगों के रहन-सहन में कोई फर्क आएगा।

कुछ इसी तरह के विचारों ने अमर को भविष्य के प्रति सशंकित बना दिया था। उसकी इस संवेदनशीलता ने उसे यह मानने को बाध्य कर दिया था कि जब तक इस देश की परिस्थितियाँ नहीं बदलतीं, जब तक यहाँ हर आम आदमी के बच्चे के लिए शिक्षा और सम्मानपूर्ण जीवन की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो जातीं, तब तक बच्चे पैदा करने की कोई तुक नहीं है।

रमा उसके विचारों से भली भाँति परिचित थी और उसकी असाधारण संवेदनशीलता से उत्पन्न यातनाओं की साक्षी रह चुकी थी। जब-जब समाचारपत्रों में कोई ऐसी घटना छपी जो इतिहास के चेहरे पर एक मनहूस कील की तरह उभरने वाली थी, जब-जब किसी बड़े आदमी के मुँह से बहुत ही घटिया बात निकली और उसे बुद्धिजीवियों ने बहुत बड़ी बात कह कर पुकारा, तब-तब अमर की आँखें आसमान के तारों की तरह रात भर जलती रही थीं। रमा को याद है कि एक बार दिल्ली से जब वे ढेर सारी पुस्तकें फुटपाथ से खरीद कर लाए थे, तो एक पुस्तक को लेकर वे कई दिनों तक परेशान रहे थे। पुस्तक अंग्रेजी में थी। शायद बिस्मार्क की जीवनी थी। उस पुस्तक को पढ़ते-पढ़ते वे डायरी में नोट लेते जाते थे और फिर उन्हें पढ़ कर उसे सुनाते थे। वे कहा करते थे कि इस देश में बिस्मार्क की रिहर्सल की जा रही है, न सिर्फ बिस्मार्क द्वारा किए गए कामों को दुहराया जा रहा है बल्कि उसके शब्दों और वाक्यों को भी ज्यों का त्यों सरकारी वक्तव्यों और भाषणों में अपनाया जा रहा है और पिछलग्गू बुद्धिजीवियों द्वारा उन्हें मौलिक एवं प्रगतिशील विचार कह कर उछाला जा रहा है।

रमा जानती थी अमर उन गिने-चुने लोगों में है जो सिर्फ अपने लिए जीने को सही जीना न मानकर सबके साथ जीने को सही जीना मानते हैं। उनके लिए उठने का मतलब था सब का एक साथ उठना, आगे बढ़ने का अर्थ था सब का एक साथ बढ़ना। सिर्फ अपने लिए सुविधाएँ जुटाने में वे अक्षम नहीं थे। अपने बच्चों को पढ़ाना-लिखाना और किसी तरह उनके जीने लायक इस संसार में जगह बनाना अमर के लिए यह असंभव नहीं था। लेकिन उनकी जिद थी कि क्यों नहीं इस देश की, इस समाज की परिस्थितियों को सब के लिए अनकूल बनाया जा सकता। कम से कम उन लोगों का तो यही लक्ष्य होना चाहिए जिनके ऊपर इस समाज के संचालन की जिम्मेदारी सौंपी गई है। यदि ये लोग अपने लिए विलास की वस्तुएँ जुटाने, अपने संबंधियों के लिए सुविधाएँ सुरक्षित करने का काम करते हैं, उन चालीस-पचास करोड़ लोगों की अनदेखी

करके जो अपनी मूलभूत जरूरतों से भी वंचित हैं, तो इससे बड़ा पाप क्या हो सकता है ? पिछले तीस सालों में यही तो हुआ है । तो फिर उन्हीं निकम्मे नेताओं की मूर्तियाँ चौराहों पर लगाने का क्या औचित्य है ? क्यों वे लोग जिन्हें पिछले तीस वर्षों में कुछ नहीं मिला, उन्हीं लोगों को मसीहा माने जा रहे हैं जिन्होंने अपने और अपने पिछलग्गुओं के सिवाय किसी के लिए कुछ नहीं किया ? क्यों इन लोगों का आत्मविश्वास मर गया है कि ऊपर बैठे चंद व्यक्तियों की कृपा के बिना भी वे जी सकते हैं ।

अमर के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि उसे रमा जैसी लड़की पत्नी के रूप में मिली थी जो उसकी भावनाओं को समझती थी । यह उन दोनों के बीच समझौते से ही तय हुआ था कि जब तक इस देश के करोड़ों लोगों के भाग्य पर सत्ता लोलुप एक या चंद व्यक्तियों का नियन्त्रण रहेगा तब तक वे कोई बच्चा पैदा नहीं करेंगे ।

उनके इस पारस्परिक समझौते से उनके वैवाहिक जीवन में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं हुई । सही बात तो यह है कि पिछले दस वर्षों में एक-दूसरे के प्रति शारीरिक एवं मानसिक आकर्षण में रंच मात्र भी कमी नहीं आई । उन्हें शादी के दस वर्ष बीत जाने का बोध ही नहीं हुआ ।

अमर का बचपन का दोस्त कृष्ण अब अपने परिवार के साथ कुल्लू जा बसा था । वहाँ एक स्कूल में उसे अध्यापक की नौकरी मिल गई थी । कुछ दिन पहले वह परिवार सहित गाँव में आया था तो अमर को यह देखकर आश्चर्य हुआ था कि वह तीन बच्चों का बाप बन चुका है । उसकी पत्नी सुशीला रमा से एक-दो साल छोटी ही थी लेकिन उसमें बुढ़ापे के आसार कुछ-कुछ उभरने लगे थे । देवू अमर से काफी छोटा था । उसकी शादी भी अमर की शादी के तीन-चार साल बाद हुई थी । उसके भी दो बच्चे थे । बुधीसिंह की पत्नी नीलू भी दो बच्चों को जन्म दे चुकी थी । यद्यपि एक बच्चा उसे जन्म के कुछ दिन बाद ही खोना पड़ा था ।

रमा की सहेलियाँ अक्सर उससे ठिठोली करती थीं, लेकिन रमा ने कभी उनकी बातों की ओर ध्यान नहीं दिया । लेकिन रमा की सास लक्ष्मीदेवी को दिन-रात चिंता सताए रहती । कभी वह सोचती, बेटे-बहू में अनबन है और कभी बहू के लिए कोई जंतर-मंतर कराने की बात सोचती । मन ही मन वह घुलती रहती । उसने कभी अपने बेटे से इस बारे में बात नहीं की । बहू से जरूर एक-दो बार सवाल पूछे लेकिन रमा ने उन्हें टाल दिया ।

लक्ष्मीदेवी अपने आँगन में पोते को खेलता देखने की हसरत लिये जी रही थी । गाँव की हमउम्र औरतों के साथ बातें करते हुए अपने मन की बात कहती । कभी किसी साधु-महात्मा के दर्शन करने का मौका मिलता तो इस बारे में प्रश्न भी करती ।

परसों गाँव की कुछ महिलाओं के साथ वह बाबा बालकरूपी की यात्रा के लिए गई थी । वहाँ से लौटते समय दत्तल गाँव के पास सड़क के किनारे बने एक मन्दिर में सब लोग सुस्ताने बैठे तो उन्हें वहाँ एक महात्मा धूनी रमाए दिखाई दिए । उनके आस-पास काफी लोग बैठे थे और वे गीता पर प्रवचन कर रहे थे । महात्मा जी के चेहरे पर ऐसा तेज था कि बरबस उनके प्रति श्रद्धा उमड़ आती थी । लक्ष्मीदेवी ने उनसे अपने मन का प्रश्न पूछना चाहा । प्रवचन खत्म होने के

बाद जब महात्मा जी अकेले रह गए तो लक्ष्मीदेवी ने एक रुपये का नोट उनके चरणों में रख दिया। महात्मा जी उसे देखकर मुस्करा दिए और बोले, "माता जी, यह रुपया उठा लीजिए। मुझे रुपयों का क्या करना है ? हाँ आपके मन की मुराद पूरी होगी, बहुत जल्दी। लेकिन आपको एक काम करना होगा। मैं एक जन्तर दूँगा। इस जंतर को आपके बेटे के अलावा कोई न खोले और बेटा भी एकांत में खोले और उसकी पूजा करके गले में बाँध ले।"

लक्ष्मीदेवी ने महात्मा के अन्तर्ज्ञान से प्रभावित होकर सिर झुका लिया। महात्मा जी के दिये हुए जंतर को लेकर वह खुशी-खुशी घर आ गई।

अमर के हाथ में जंतर देकर उसने महात्मा जी की सारी बातें बता दीं, तो अमर गंभीर हो गया। उसे लगा कि माँ अपने मन में एक हसरत लिये जीए जा रही है, और उसका तथा रमा का इस तरह रहना लोगों की नजरों में काफी अस्वाभाविक लगने लगा है। उसने निश्चय किया कि वह रमा से इस विषय में आज खुल कर परामर्श करेगा।

रमा और अमर के बीच प्रथम परिचय से लेकर विवाह-संबंध तक कुछ ऐसी बात रही है जो आम तौर पर गाँव में देखने को बहुत कम मिलती है। रमा अमर के मित्र दिवाकर की बहन थी। अक्सर उसका दिवाकर के घर जाना होता था और इसलिए विवाह से काफी समय पहले वे एक-दूसरे से भली प्रकार परिचित हो चुके थे। एक-दूसरे के स्वभाव को वे जानते थे। मंगनी की बात दो परिवारों में उस समय चल पड़ी थी जब अमर तथा रमा शायद शिशु अवस्था में थे। उन दो परिवारों के बीच घनिष्ठ संबंध के मद्दे नजर इसमें कहीं कोई विचित्रता नहीं थी और फिर यह रिश्ता हँसी-मजाक तक सीमित था। अमर के पिता की मृत्यु के बाद इस संबंध को स्थायी रूप देने के लिए प्रयत्न हुए किंतु कुछ गलत-फहमियों के कारण रिश्ते की बात पूरी तरह टूट गई।

लेकिन जहाँ तक रमा और अमर का प्रश्न था वे एक-दूसरे को शायद बचपन की अबोध अवस्था में समर्पित कर चुके थे। रिश्ते की बातचीत टूटने के बाद वे जीवन की अलग-अलग रौ में बहने के लिए अपने को तैयार कर ही रहे थे कि जात-बिरादरी की कट्टर रूढ़िवादिता ने दोनों को फिर एक ही चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया और बिरादरी के विरोध की चुनौती को स्वीकार करके वे विवाह के बंधन में बँध गए। उनकी शादी इस मायने में आधुनिक थी कि उसका बिरादरी ने बहिष्कार किया था और उसमें बरात, बैंड बाजा या अन्य किसी प्रकार का प्रदर्शन नहीं हुआ था।

अमर और रमा दोनों एक-दूसरे को इतनी अच्छी तरह जानते थे कि उनके बीच किसी प्रकार की गलतफहमी की गुंजाइश नहीं थी। शादी के बाद दोनों के बीच अलिखित समझौता हो गया था कि वे बच्चे पैदा करने में जल्दी नहीं करेंगे। किन्हीं अन्य प्रकार के निरोधक उपायों का सहारा लेने के बजाय वे विवेक और संयम के साथ कुछ निश्चित तिथियों के नियम का पालन करते थे और इसमें उन्हें काफी सफलता मिली थी। शुरू-शुरू में इस तरह का जीवन बिताने के निश्चय के पीछे केवल यही भाव था कि जल्दी-जल्दी बच्चे होने से शारीरिक आकर्षण की मात्रा में कमी की संभावना होती है या समाज के कार्य-क्षेत्र में काम करने वाली नारी के रास्ते में बच्चे

बाधक हो सकते हैं। किन्तु बाद में अमर की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक संवेदनशीलता ने समस्या को नया मोड़ दिया और वे मानने लगे कि जब तक इस देश में साधारण आदमी के लिए रहन-सहन एवं ससम्मान जीवन की परिस्थितियाँ सहज सुलभ नहीं हो जातीं तब तक बच्चों को पैदा करके निर्मम परिस्थितियों के हवाले कर देना बुद्धिमत्ता का काम नहीं है। किन्तु शायद वे यह नहीं जानते थे कि वे जिस प्रकार के समाज के बीच रह रहे हैं, उसमें इस दृष्टिकोण को अस्वाभाविक और असामान्य माना जाएगा।

शुरू में रमा का कार्य-क्षेत्र अपने गाँव तक सीमित था। गाँव की छः सात-औरतों को लेकर उसने सिलाई-कढ़ाई और बुनाई का प्रशिक्षण केन्द्र शुरू किया था। सरकार की तरफ से एक महिला प्रशिक्षक की व्यवस्था हो गई थी। कुछ समय तक तो यह केन्द्र लोगों की नजर में औरतों की गपबाजी का केन्द्र माना जाता रहा। फिर रमा ने इसे आर्थिक दृष्टि से उपयोगी केन्द्र बनाने के लिए दौड़-धूप करनी शुरू की। उसकी योजना थी कि गाँव में उपलब्ध कच्चे माल से वस्तुओं का उत्पादन किया जाए और उसे बाजार में बेचने की व्यवस्था की जाए। इसके लिए जरूरी था कि सरकार पूँजी की व्यवस्था करती और तैयार माल की बिक्री का प्रबन्ध करती। महिलाओं की एक सहकारी संस्था बनाकर इस केन्द्र को कुटीर उद्योग की अच्छी इकाई के रूप में बदलना चाहती थी। गाँवों में भेड़ों की ऊन आसानी से मिल सकती थी और उसकी कताई, रँगाई और बुनाई का काम बड़ी आसानी से चल सकता था। इसके अतिरिक्त रीठों से बढ़िया किस्म का साबुन बनाया जा सकता था। इस काम के सिलसिले में उसे कभी अमर के साथ और कभी अकेले ही सरकारी अधिकारियों से और नेताओं से मिलना पड़ा। सहकारिता विभाग से पूँजी के रूप में उन्हें कुछ ऋण अनुदान भी मिल गया। तैयार माल की बिक्री के लिए खादी ग्रामोद्योग कमीशन से सम्पर्क स्थापित किया गया। पाँच-छः महीने की दौड़-धूप के बाद केन्द्र चलने लगा और उसमें काम करने वाली महिलाओं को आर्थिक लाभ मिलने लगा। घर बैठे फुर्सत के क्षणों में काम करके चालीस-पचास रुपये महीने में कमाने का आकर्षण काफी बड़ा आकर्षण था और इसलिए न केवल उस गाँव की महिलाएँ वहाँ काम सीखने को उत्सुक थीं बल्कि आसपास के गाँवों में भी इसकी चर्चा होने लगी। रमा को अब दूसरे गाँवों में भी इसी तरह के केन्द्र चलाने के लिए बुलाया जाने लगा। उसे इस काम के सिलसिले में मरदों से भी खुलकर बातें करनी पड़तीं। केन्द्र में लड़कियों और विवाहित महिलाओं के लिए कुछ सामान्य पढ़ाई-लिखाई भी कराई जाती। साक्षरता के प्रसार का काम उत्पादन-केन्द्रों से जुड़ा हुआ था। गांव की पढ़ी-लिखी लड़कियों के जिम्मे इस काम को सौंप कर रमा का बोझ काफी कम हो जाता था। लेकिन केन्द्र के काम की निगरानी करने, आमदनी-खर्च का हिसाब-किताब करने और सरकारी अधिकारियों से पत्र-व्यवहार या बातचीत करने में उसका बहुत समय लग जाता था।

दो वर्ष में ही रमा की देख-रेख में पाँच केन्द्र बन गए और उन में चार सौ के लगभग महिलाओं को काम मिलने लगा था। ये सभी केन्द्र गदियारी की सहकारी संस्था के अंगों के रूप में काम कर रहे थे। संस्था की सदस्य संख्या तीन सौ के करीब पहुँच गई थी।

निष्ठा और निःस्वार्थ सेवा के कारण रमा एक आन्दोलन बन चुकी थी। आस-पास के

अनेक गाँवों में लोग उसको आदर करते थे। महिलाओं में विशेष रूप से उसका बहुत आदर था। लेकिन इस समाज सेवा की उसे कीमत भी चुकानी पड़ी थी। घर के काम-काज के अतिरिक्त उसे बाहर के कामों में अत्यधिक व्यस्त रहना पड़ता था। कई बार उसे घर से बाहर भी रहना पड़ता था। यह सब काम उसके लिए संभव नहीं था यदि शादी के तुरन्त बाद ही उसे बाल-बच्चों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी उठानी पड़ती। वह एक धुन को लेकर, एक उद्देश्य को लेकर कार्यक्षेत्र में उतरी थी। वहां अपनी सारी शक्ति को लगा देना जरूरी था। अमर इस आवश्यकता को समझता था और रमा को अधिक से अधिक स्वतंत्र रखना चाहता था। वह जानता था कि संतान औरत की सार्थकता भी है और उसके विकास की सब से बड़ी बाधा भी है। इसने न सिर्फ औरत को सदियों से घरों में बंद रखा है बल्कि स्त्री को पुरुष का गुलाम बनाने का भी शायद सब से बड़ा कारण यही रहा है।

लेकिन अमर और रमा जिस बात को भली प्रकार समझते थे, गाँव के दूसरे लोगों के लिए यह समझ से परे की बात थी और उन लोगों में अमर की माँ लक्ष्मीदेवी भी थी। उसे दाल में कुछ काला नजर आता था। उसके मन का यह संदेह बाहर के लोगों में तो और भी बड़ा बन जाता था। रमा के सामने औरतें भले ही कुछ न कहतीं लेकिन पीठ-पीछे उनमें कानाफूसी होती थी। कुछ तो रमा में कोई कमी मानती थीं और कुछ उसके पति अमर में। उस कानाफूसी की कई बार रमा को भी भनक मिल चुकी थी लेकिन उसने उसे मन ही मन मुस्करा कर टाल दिया था। पुरुष भी इस बात को लेकर कभी-कभी अमर और रमा के पीठ-पीछे कोई फबती कस देते थे। फिर रमा का बेझिझक पुरुषों से बात करना, और सभा-सोसायटियों में भाग लेना भी लोगों को रमा के बारे में कुछ फूहड़ मजाक करने का अवसर जुटाते थे।

घर से बाहर, सामाजिक क्षेत्र में काम करने वाली हर महिला को शायद इस प्रकार की बातें सुननी पड़ती हैं। रमा भी पीठ-पीछे चलने वाली इन बातों को चुपचाप सुन लेती थी। यदि ये सारी बातें उसे अपने मन में ही दबाए रखनी पड़तीं तो शायद वह टूट जाती। लेकिन वह इन तमाम कानाफूसियों और उनसे मन में आने वाली कमजोरियों का पति के आगे खुलकर जिक्र करती। अमर मुस्करा कर उन सब को टाल देता और कहता, यह तो खेल का एक हिस्सा है। जब औरत सामाजिक जीवन में हाथ बंटाने के लिए घर से बाहर कदम रखती है तो उसे इन सब बातों के लिए तैयार रहना चाहिए। पति के विचारों को सुनकर रमा के मन का बोझ हल्का हो जाता और वह फिर दूसरे दिन उसी उत्साह से अपने काम में जुट जाती।

उस रात खाना खाने के बाद जब अमर अपनी रोज की आदत के अनुसार उस कमरे में बैठा जहाँ उसका छोटा-सा पुस्तकालय था तो उसका मन किसी पुस्तक में नहीं लगा। उसके सामने माँ का वह चेहरा घूम रहा था जो महात्मा के जंतर को लेते हुए उसने देखा था। रमा से आज बात करने को वह उत्सुक था किन्तु उसका अवसर उसे दिन भर नहीं मिला था। महिला-मंडल की एक मीटिंग के लिए रमा को आज दिन भर बाहर रहना पड़ा था। शाम को जरा देर से लौटने के बाद वह बहुत थकी हुई दिखाई दे रही थी। उसके बाद घर के काम-काज में लग गई और इस समय रसोई के काम से फुर्सत पाकर सास की सेवा में लगी हुई थी। वह गरम पानी से उसके

पैरों को मल-मल कर धोएगी, फिर तेल गरम करके पैरों की बिवाइयों में लगाएगी या उसकी दु:खती टाँगों को धीरे-धीरे दबाएगी। सास के सो जाने के बाद अपने अम्बर चरखे पर आ बैठेगी और आधा-पौन घंटा ऊन कातेगी। यह उसका रोज का काम था जिससे वह अपने लिए महीने में चालीस-पचास रुपये कमा लेती थी। वह जानती थी कि जब तक उसका यह नित्य क्रम चलता रहेगा, अमर अपनी बैठक में पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओं में डूबा रहेगा। बैठक का दरवाजा बंद करके जब वह ऊपर के कमरे में सोने के लिए जाएगा, तब रमा अपना काम बंद कर देगी।

लेकिन उस दिन अमर ज्यादा देर अपनी बैठक में नहीं रुका। वह सोने के ऊपर वाले कमरे में चला गया और रमा की प्रतीक्षा करने लगा।

चाँदनी छन कर खिड़की से अन्दर आ रही थी, इसलिए उसे बत्ती जलाने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। दो तकियों का सहारा लेकर वह बिस्तर पर लेट गया और खिड़की से बाहर आसमान में धीरे-धीरे सरकते चाँद में खो गया।

कमरे में रमा की प्रतीक्षा के क्षण वह इसी तरह बिताता था। उसके कान नीचे के कमरे में चल रहे कार्य-कलाप का ठीक अनुमान लगा सकते थे। रमा के पैरों की हल्की-सी आहट जब उसे सीढ़ियों पर सुनाई देती थी, तो उसकी साँस गरम हो जाती थी। उसकी कनपटियाँ रमा की चूड़ियों की खनक पर तपने लगती थीं। रमा की प्रतीक्षा के ये क्षण अमर को हमेशा ही बड़े मधुर और उत्तेजनापूर्ण लगते रहे। कभी-कभी जब घर के काम में रमा को देर तक नीचे रुकना पड़ता, तो अमर बेचैन-सा होकर कमरे में चहल-कदमी करने लगता था। रमा के शरीर के प्रति अमर का आकर्षण पिछले दस वर्षों में जरा सा भी कम नहीं हुआ था। हर रोज उसे प्रतीक्षा के ये क्षण वैसे ही लगते थे जैसे प्रथम मिलन के क्षण होते हैं।

नीचे किवाड़ बन्द करने और बत्ती बुझाने की आवाज हुई तो उसके दिल की धड़कन तेज हो गई। सीढ़ियों पर चढ़ते समय वह न केवल चूड़ियों की हल्की-सी खनक को सुन सकता था बल्कि रमा की साँसों को भी गिन सकता था। हाथ में लिया दूध का गिलास उसने कोने में रखी तिपाई पर रख दिया और पास आकर खड़ी हो गई।

"आज जल्दी चले आए ऊपर?"

"हाँ......"

"क्यों?"

"अखबार पढ़ने की इच्छा नहीं होती।"

"अखबार तो आप कई दिनों से नहीं पढ़ रहे हैं।"

"क्या करूँ?" धमकियों और नारों के सिवा उसमें कुछ होता ही नहीं।"

"तुम भी तो जल्दी चली आई।"

"काम करने को जी नहीं कर रहा था। आपकी तबीयत तो ठीक है?"

"तबीयत? हाँ, कुछ गड़बड़ जरूर लगती है। बुखार-सा कुछ"

'बुखार......"

रमा ने उसके माथे पर हाथ रखा, अमर ने हाथ पकड़ कर उसे अपने करीब खींच लिया। वह धीरे-से बोली—

"यह क्या कर रहे हो ? बुखार है तो आराम से सो जाओ। लाओ मैं तुम्हारा सिर दबा देती हूँ।"

अमर ने उसकी कमर में दोनों हाथ डाल दिए। फिर उसे खींचकर अपनी गोद में बिठा लिया। सिर पर रखे दुपट्टे को पीछे सरका कर उसने अपने होंठों को उसके होठों पर रख दिया। रमा ने आँखें मूँद लीं और दोनों बाँहें उसके गले में डाल दीं। अमर ने धीरे से उसे अपने बिस्तर पर लिटा दिया। दोनों ने एक-दूसरे की आँखों में कुछ देखा और पढ़ा। अमर ने एक हाथ से रमा को कसकर अपने साथ सटा लिया। दूसरा हाथ उसके बदन पर ऊपर-नीचे सरकने लगा। पीठ, वक्ष, कमर से होते हुए जब वह हाथ नितंबों पर आकर रुका तो रमा ने अपने को अमर के आलिंग्न से छुड़ाने की कोशिश की।

"जानते हो, कौन-सा दिन है ?"

"कौन सा ?"

"खतरनाक !"

"बहुत खतरनाक या मामूली खतरनाक ?"

"बहुत खतरनाक !"

"फिर तो आज खतरे से खेलना ही पड़ेगा !"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं ! खतरे से आखिर कब तक भागते रहेंगे। आज ...... आज बहुत अच्छा दिन है।" रमा अमर के वक्ष से सट गई। उसने अपने चेहरे को उसके वक्ष में छिपा लिया। अमर के तपते होठ उसकी आंखों, गालों, गर्दन और होंठों पर बारी-बारी फिरने लगे। जलते हुए जिस्मों से आग की लपटें निकलने लगीं। एक अतीन्द्रिय सुख में दोनों खो गए।

चाँद अब आसमान में काफी ऊपर आ गया था। खिड़की से होकर कमरे के भीतर आई चाँदनी चुपके से सरक कर बाहर चली गई थी। अब केवल रोशनदान से होकर मुट्ठी भर किरणें अन्दर आ रही थीं और वे अमर और रमा के चेहरों पर पड़ रही थीं। दोनों जाग रहे थे, एक-दूसरे की बाँहों में लिपटे हुए।

"मैं कई दिनों से सोच रही थी कि आपसे कुछ कहूँ ?" रमा ने अमर ी छाती के बालों को सहलाते हुए कहा।

"क्या ?"

"यही कि हमें अब अपनी जिन्दगी बदलनी चाहिए।"

"मुझे भी यह लग रहा था। मैं तो आज सुबह से यही बात सोच रहा था।"

"सुबह से क्यों ?" किसी ने कुछ कहा था ?"

"माँ बालकरूपी की यात्रा पर गई थी न ! रास्ते में कोई साधु मिला। उस साधु से वह मेरे लिए जंतर बनवा लाई थी।" कहते-कहते अमर हँस पड़ा। रमा भी हँसने लगी।

कुछ देर बाद अमर बोला—

"मेरा ध्यान इस तरफ बिल्कुल नहीं गया था। एक-दो बार माँ ने कुछ घुमा-फिराकर बात जरूर की थी लेकिन आज मुझे पहली बार महसूस हुआ कि माँ सचमुच हमारी चिंता में घुली जा रही है।"

"लेकिन मैं बहुत दिनों से समझती थी। मुझे गोजर के तीर्थ पर नहा आने के लिए माँ जी कई बार कह चुकी हैं। पास-पड़ोस की औरतों के साथ कई बार मैंने उन्हें इस बारे में बातें करते सुना है। गाँव की बूढ़ी औरतों के साथ जब भी मिलती हूँ मुझे किसी न किसी व्रत-तीर्थ का उपदेश मिल जाता है।......"

अमर उसकी आँखों में आँखें डालकर उसके मनोभावों को पढ़ने की कोशिश कर रहा था। कुछ क्षण के लिए रमा सोचती रही फिर बोली— "गाँव में ही क्यों ? गाँव के बाहर भी जहाँ कहीं मैं जाती हूँ, लोग मुझे अजीब नजरों से देखते हैं। सामने कोई बात नहीं करता लेकिन पीठ-पीछे औरतें भी फबती कसती हैं। कुछ हमदर्दी जताती हैं। कुछ उपदेश देने लगती हैं। औरतों से निजी बात चलती है तो पहला सवाल होता है। "तुम्हारे कितने बच्चे हैं।" मरदों के बीच जाती हूँ तो वे जरूरत से ज्यादा हमदर्दी जताने लगते हैं।

अमर हँस पड़ा, बोला—

"यह तो बहुत अच्छी बात है। लोगों की हमदर्दी तुम्हारे साथ होगी तो तुम्हारा काम आसान होगा। लोगों को समझाने-बुझाने में तुम्हें आसानी होगी। देखो रमा, अब तक तुम्हें अपने काम में जो इतनी सारी सफलता मिली है, उसकी एक वजह यह भी है कि लोग तुम से बातें करने के लिए और तुम्हारी बातें सुनने के लिए तैयार होते हैं। चाहे किसी भी कारण से हों।"

"मजाक छोड़िये। मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।"

"क्या अच्छा नहीं लगता। मरदों का हमदर्दी दिखाना ?"

"हमदर्दी दिखाना और बात है। उनकी नीयत कुछ और होती है।"

"इतनी बड़ी दुनिया में हर मर्द और हर औरत में नेकनीयत हो तो यह दुनिया आदमी के काम की चीज कहाँ रहेगी ? इसे बदलने और सुधारने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी तो आदमी के ये सारे प्रयास जो इस दुनिया को बदलने के लिए किए जा रहे हैं, बेकार नहीं हो जाएँगे ? अरे भई, तुमने जिस काम का बीड़ा उठाया है, वह मामूली काम नहीं है। सब लोग जानते हैं और मानते भी हैं कि जो काम इस इलाके में असंभव था उसे तुमने संभव कर दिखाया है। सैकड़ों परिवार तुम्हारे प्रति एहसानमंद हैं। जिन घरों में पाँच रुपये की आमदनी भी नहीं थी उनमें अब चालीस-पचास रुपये आने लगे हैं। अब इसकी कीमत के रूप में तुम्हें थोड़ी बहुत हँसी-ठिठोली तो सहनी ही पड़ेगी।"

"हँसी-ठिठोली से आगे बढ़कर लोग कलाई पकड़ने लगे तो ?"

"कलाई पकड़ने वाला मनपसंद आदमी हो तो कोई हर्ज नहीं।"

रमा ने गुस्से से अमर की तरफ देखा—

"आप फिर मजाक करने लगे न !"

अमर इस बार न हँसा न मुस्कराया। गंभीर होकर बोला—

"मजाक बिल्कुल नहीं कर रहा हूँ। मैं यह कहना चाहता हूँ रमा कि इस वाहियात धारणा को हमें अपने मन से निकाल देना चाहिये कि औरत एक छुईमुई है। छू भर देने से उसका सतीत्व भंग हो जाता है। चरित्र के संबंध में इस प्रकार की वाहियात धारणाओं ने हमारे समाज को सदियों से बौना बना रखा है। शहरों में आज हजारों-लाखों लड़कियाँ और औरतें दफ्तरों-फैक्टरियों में काम करने जाती हैं। वे पुरुषों के संपर्क में आती हैं। उनके साथ मिल-बैठकर काम करती हैं। रेस्तरां में चाय पीती हैं। इन सब बातों को अगर कोई चरित्र के साथ जोड़े तो यह कितनी घटिया बात होगी। मैं जानता हूँ कि शहरों में भी कुछ लोग ऐसा सोचते हैं। गाँवों में ऐसा सोचने वालों की तादाद और भी ज्यादा है। लेकिन यह हमारे समाज की सड़न को दिखाता है। यह समाज की बीमारी है, जिसे दूर करने के लिए हर पढ़े-लिखे आदमी को कोशिश करनी चाहिए।"

"लेकिन समाज में भेड़िये भी तो होते हैं।"

"भेड़ियों से अपनी रक्षा की कोशिश हर व्यक्ति को करनी चाहिए।"

"और कोशिश में सफलता न मिले तो ..... ?"

"अपने में इतनी शक्ति तो पैदा करनी ही चाहिए कि अपनी रक्षा की जा सके। लेकिन यदि वह मजबूर हो जाता है तो उस पर किसी प्रकार का लांछन नहीं लगना चाहिए।"

रमा मुस्कराकर बोली—

"उपदेश देना तो आसान होता है। बात अपने पर आ पड़े तो सहना कठिन होता है।"

"मैं मानता हूँ।" अमर बोला, "आदमी की कथनी और करनी में हमेशा कुछ फर्क रहता है। जो बात हम आसानी से कह देते हैं, उसे व्यवहार में लाते समय हमारे सामने कई कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं। लेकिन अपने विश्वासों के अनुसार जीना ही तो सच्चा जीवन है। उसके लिए हमें कोशिश तो करते रहना चाहिए। अपने विचारों को व्यवहार में लाने का संघर्ष ही तो मनुष्य जीवन का संघर्ष है।"

कुछ देर रुककर अमर बोला, "लेकिन हम इस बिना मतलब की बहस में क्यों पड़ें। आओ अब सो जाएँ।"

"फिर जंतर वाले महात्मा के पास कब जाएँगे ?" रमा ने मुस्करा कर पूछा।

"मारो गोली महात्मा को।"

"वह जंतर कहां है ?"

"कमीज की जेब में है।"

"देखूँ तो सही कैसा जंतर है।"

"यह क्या बचपना है। जेब में पड़ा है, सुबह देख लेना।"

लेकिन रमा बिस्तर से उठ गई। किलनी पर टँगी कमीज की जेब से उसने लाल डोरी से लिपटी एक-पुड़िया सी निकाली। डोरी को खोलते हुए बोली, "मैं देखना चाहती हूँ जंतर में होता क्या है।" लाल डोरी के नीचे लाल कपड़े से लिपटा एक कागज का टुकड़ा था।

"बस यही है जंतर ? कागज का एक टुकड़ा ?" रमा ने उत्सुकता दिखाते हुए कहा।

"अरे, इस पर कुछ मंत्र लिखा होगा।" अमर बोला।

कागज की पुड़िया को खोलकर रमा ने उस पर नजर डाली। चाँदनी के हल्के प्रकाश में उसे ले जाकर उसने कुछ पढ़ना चाहा लेकिन कुछ दिखाई नहीं दिया।

"इसमें तो कुछ भी नहीं लिखा है।" और कौतूहलवश उसने पुर्जा अमर के हाथ में दे दिया। अमर ने पुर्जे को घुमा-फिरा कर देखा और गौर से किसी चीज को पढ़ने की कोशिश करने लगा। जब उसने उस शब्द को पढ़ लिया तो वह हँस पड़ा।

"क्या बात है?" रमा ने पूछा।

"मुझे सुबह ही महात्मा जी के दर्शनों के लिए जाना पड़ेगा।"

"क्यों, क्या लिखा है इसमें?"

"लिखा है, उसने अपना सिर! वह महात्मा अपना मुरली है।"

पाहड़ा के छोटे से बाजार को पार करने के बाद मंध खड्ड का चट्टानी पाट कच्ची सड़क का एक हिस्सा ही बन गया है। बरसात के कुछ महीनों को छोड़कर जब मंध खड्ड एक भयानक नदी की शक्ल ले लेती है, बाकी दिनों में इस चट्टानी पाट पर सम्पन्न देहातियों की साइकिलें और सरकारी अफसरों की इक्का-दुक्का जीपें आसानी से गुजर जाती हैं। सड़क के इस पार से उस पार जाने वाले पैदल यात्रियों को केवल चप्पल-जूते उतार कर हाथ में लेने पड़ते हैं। लेकिन बरसात के दिनों में यह चट्टानी पाट इतना खतरनाक बन जाता है कि देखने वालों के दिमाग चकराने लगते हैं। अक्सर बाढ़ से उमड़े मंध खड्ड का दृश्य देखने लायक होता है। पहाड़ से बहकर आते हुए बड़े-बड़े पत्थर और रोड़े जब इस चट्टानी पाट से होकर गुजरते हैं तो पत्थरों के परस्पर टकराने और लुढ़कने से गड़गड़ाहट और टनटनाहट की ऐसी ध्वनि उठती है जो अनेक नगाड़ों के एक साथ बजने का आभास देती है। लोग कहते हैं कि पानी के देवता राजा वरुण की सवारी नौबत-बाजों के साथ निकलती है। उस क्षेत्र के और खड्डों और नदियों में भी राजा वरुण की सवारी निकलती पाई गई है लेकिन मंध खड्ड के इस स्थान की सवारी बहुत प्रसिद्ध है क्योंकि यहाँ पर नौबत-बाजों की आवाज अधिक स्पष्ट सुनाई देती है। बाढ़ रात को भी आए तो भी खड्ड के दोनों ओर बसे पाहड़ा और दत्तल के गाँवों के लोग अपने घरों से इस आवाज को सुन सकते हैं।

इसी तरह की एक भयानक रात को दर-दर घूमने वाले एक जिज्ञासु साधु के पाँव इस दिव्य संगीत को सुनने के लिए यहाँ रुके। घनघोर वर्षा और आंधी के बीच यह साधु रात भर खड्ड के किनारे एक ऊँचे पत्थर पर बैठा रहा। सुबह होते ही पाहड़ा और दत्तल के गाँवों के लोग खड्ड का दृश्य देखने आए तो उन्होंने साधु को ऊँचे पत्थर के ऊपर ध्यान-मग्न देखा। लोगों का परम्परा से यह विश्वास था कि भादों महीने में उमड़ी नदी को देखना उसी तरह शुभ होता है जैसे सावन में झूला झूलना, और वरुण देवता की सवारी तो बहुत ही शुभ मानी जाती है।

इसीलिए दूसरे दिन आस-पास के गाँवों के लोग भी उस स्थान पर मंध खड्ड के विकराल सुन्दर रूप को देखने के लिए जमा हुए। दिन भर लोग आते-जाते रहे और ऊंचे पत्थर पर बैठा ध्यान-मग्न साधु सब के लिए कुतूहल और जिज्ञासा का कारण बन गया। साधु को समाधि में देखकर किसी को उसके पास आने या कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हो रही थी। सुबह से शाम तक लोगों ने उसे उसी तरह बिना हिले-डुले बैठा देखा। लोग आपस में बातें करते हुए तरह-तरह के अनुमान लगाने लगे। फिर जब अंधेरा घिरने लगा तो दत्तल गाँव के कुछ लोगों ने साहस बटोर कर महात्मा जी से बात करने का निश्चय किया। आठ लोगों की टोली हाथ जोड़कर महात्मा जी के पास जा खड़ी हुई और उन्हें प्रणाम किया।

'क्या बात है?" साधु ने मुस्करा कर पूछा।

टोली के लोगों ने एक दूसरे की तरफ देखा फिर एक बुजुर्ग सज्जन ने हिम्मत करके पूछा—

"बाबाजी, आप सुबह से यहाँ बैठे हैं।"

"नहीं, हम कल रात यहाँ आए थे।"

"तो क्या आप रात भर यहीं बैठे रहे?" एक ने प्रश्न किया।

"हाँ, हम को यहाँ बैठना अच्छा लगा इसलिए बैठ गए।"

"बाबा, आपने दिन भर खाया-पिया कुछ नहीं।" बुजुर्ग न पूछा।

"जिंदगी में खाना-पीना ही तो सब कुछ नहीं है! आदमी सिर्फ खाने-पीने के लिए ही तो नहीं पैदा हुआ?"

महात्मा जी ने लोगों की तरफ देखा। किसी से कोई उत्तर नहीं बन रहा था। उन्हें दुविधा में पड़ा देखकर वे बोले—

"भाई, खाना-पीना तो रोज ही होता है, लेकिन यह दृश्य जो यहाँ दिखाई दिया, रोज-रोज देखने को नहीं मिलता। यह क़ुदरत की लीला भाग्य से ही देखने को मिलती है।"

बुजुर्ग ने अब आगे बढ़ कर कहा—

"बाबा, हमारे धनभाग, जो आप हमारे गाँव में आए। अब चल कर कुछ विश्राम कीजिये। भोजन शरीर की रक्षा के लिए करना ही पड़ता है। हम से जो भी बनेगा आपकी सेवा करेंगे। आपका सत्संग पाकर हमें भी लाभ होगा। कुछ भगवान् का भजन हो जाएगा। आप अपनी यात्रा पर चल दें उससे पहले हमें कुछ सेवा का मौका दीजिए।"

महात्मा जी कुछ देर तक सोचते रहे फिर बोले—

"भाई, तुम कहते हो तो चलो। वैसे मुझे यह स्थान बहुत अच्छा लगा। जी चाहता है यहीं बैठा रहूँ।" फिर उन्होंने पास के एक टूटे-फूटे मंदिर की तरफ इशारा करके कहा, "यह टूटा-फूटा मंदिर किसका है? इसकी कोई देखभाल नहीं करता है? इतनी अच्छी जगह पर यह मंदिर बना है लेकिन उजाड़।"

एक आदमी ने कहा, "बाबा, यह बहुत पुराना मंदिर है। कभी यहाँ खूब चहल-पहल रही होगी। लेकिन हमने तो इसे इसी हालत में देखा है। कहते हैं यहाँ भूत ने एक साधु महात्मा को मार डाला था। तब से यहाँ कोई नहीं ठहरता। लोग भी इधर बहुत कम आते-जाते हैं।"

"यह मंदिर किसकी जमीन पर बना है?" महात्मा ने पूछा।

लोगों ने बताया कि जमीन शामलात की है। गाँव सभा का इस जमीन पर अधिकार है। यह सारी जगह गाँव के पशुओं का चरान है।

लोगों से बातें करते हुए महात्मा जी गाँव में आ गए। गाँव के सरपंच वही बुजुर्ग सज्जन पंडित बृजभान थे जो महात्मा जी को बुलाने टोली के साथ गए थे। उस दिन महात्मा जी उन्हीं के घर पर ठहरे। गाँव के लोगों को पता चला तो वे महात्मा जी के दर्शनों के लिए आए। बड़ी रात गए तक वे लोग उन्हें घेर कर बैठे रहे। महात्मा जी देखने में भी आम साधुओं की तरह नहीं थे। भगवा धोती और भगवा अंगरखा पहने थे। सिर पर गर्दन तक लम्बे बाल थे। उनके मस्तक पर एक दिव्य तेज की चमक थी। आँखों में दिल के अन्दर तक देख सकने की क्षमता थी। उनकी बातचीत भी आम साधुओं की तरह नहीं थी। संस्कृत के ग्रंथों से शुद्ध उच्चारण के साथ वे श्लोक पढ़ कर सुनाते थे तो सुनने वाले गद्‌गद हो जाते थे।

दूसरे दिन महात्मा जी की इच्छानुसार गाँव के बाहर स्थित उस टूटे-फूटे उजाड़ मंदिर की झाड़-बुहार हुई। बांस-लकड़ी और घास-फूस से एक छोटी सी कुटिया बनाई गई और महात्मा जी के वहाँ ठहरने का प्रबंध हो गया। दो-तीन दिन में मंदिर की मरम्मत का काम भी हो गया। भक्त जनों के बैठने के लिए एक चबूतरा भी बन गया।

सड़क के किनारे, ऊँची सी टेकड़ी पर कुटिया होने के कारण आने-जाने वाले लोगों की निगाह उस पर पड़ना स्वाभाविक ही था। लोग सुस्ताने के उद्‌देश्य से ही सही, थोड़ी देर के लिए वहाँ आकर बैठने लगे। कुटिया के बाहर चबूतरे पर बैठकर आस-पास के गाँवों के अतिरिक्त मंध खड्ड को बहुत दूर तक देखा जा सकता था। महात्मा जी बहुत सवेरे उठ कर मंध खड्ड के किनारे-किनारे दूर तक सैर करते। शौच-स्नान से निवृत्त होकर लौटते तो रास्ते में दत्तल गाँव के बीच से निकलते। जो रास्ते में मिल जाता उससे बातें करते। कोई चाय के लिए बुला लेता तो पी लेते। उनके लिए अमीर-गरीब सब समान थे। छोटी-बड़ी जात का उनके आगे कोई भेद नहीं था। लोग उनसे आशीर्वाद माँगते तो हँसकर आशीर्वाद दे देते। दुःखी अपना दुःखड़ा सुनाते तो यथासंभव सांत्वना देते। लेकिन भभूत, जंतर-मंतर नहीं करते। घर पर कोई बीमार होता तो भी उनसे सलाह लेने लोग आते, लेकिन वे उन्हें वैद्य-डाक्टर के पास जाने की सलाह देते। भक्त लोग कुटिया में आकर कभी फल, कभी आटा-चावल दे जाते, तो रख लेते। किसी से न कुछ माँगते, न किसी को झूठा दिलासा देते।

एक दिन सैर से लौटते समय उनके सामने एक व्यक्ति हाथ जोड़ खड़ा हो गया।

"क्या बात है भाई?" महात्मा ने पूछा।

"बाबा, मैं शुकरू हूँ, हरिजन हूँ, इसी गाँव का। आप थोड़ी देर के लिए मेरे घर चलें तो बहुत कृपा होगी।" शुकरू ने झुककर पाँव छूने चाहे लेकिन महात्मा जी हड़बड़ाकर पीछे हट गए।

"पैर मत छुओ, किसी के पैर मत छुओ, समझे?"

"लेकिन आप मेरे घर चलोगे न?"

"जरूर चलूँगा, चलो।"

महात्मा जी अपने मन की गहराइयों में डूबे-डूबे उसके साथ चल पड़े। थोड़ी दूर चलने पर उन्हें एक छोटा-सा घर दिखाई दिया। आँगन साफ-सुथरा था। आँगन के एक कोने में तुलसी का पौधा था जो शायद पूजा के लिए था। मकान की दीवारें भी अच्छी लिपी-पुती थीं। छत पर सलेट चमक रहे थे। लगता था सलेट की छत अभी कुछ दिन पहले ही डाली गई है। घर के अन्दर प्रवेश करने पर भी सब कुछ साफ-सुथरापन लिये दिखाई दिया। मुख्य कमरे उवान में चटाई बिछी हुई थी। महात्मा जी उस पर बैठ गए, और दीवारों पर लगे चित्रों को देखने लगे। दो सिनेमा के पोस्टर, एक देवी का कलैंडर और एक शिव की तसवीर। देवी के कलैंडर और शिव की तसवीर पर फूल-मालाएँ भी लटकी हुई थीं यद्यपि उनके फूल मुरझा गए थे।

महात्मा जी को चटाई पर बिठा कर शुकरू उस कमरे में ही बनी सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर वाले कमरे में चला गया। कुछ देर बाद उसके साथ अधेड़ उम्र की औरत नीचे उतरी। उसकी अवस्था चालीस-पैंतालीस की रही होगी। जिस्म भरा हुआ और अच्छा स्वस्थ दिखाई दे रहा था। महात्मा जी के न करने पर भी उसने अपने माथे को पैरों तक झुका कर प्रणाम किया और पास ही जमीन पर बैठ गई। शुकरू भी पास बैठ गया। शुकरू बोला—

"बाबा, यह मेरी नई घरवाली है। कई दिनों से कह रही थी कि बाबा के दर्शन करने हैं, सो आपको ले आया। हमारे धनभाग जो आप आए। हमारी झोंपड़ी पवित्र हो गई। बाबा, जैसे भी हो इसके लिए कोई जंतर बना दो। पूजा-पाठ के लिए जो खर्च होगा, सब करूँगा। बस अब आपका ही सहारा है।"

महात्मा जी परेशान से कभी शुकरू को, कभी उसकी घरवाली को देखते रहे। फिर बोले—

"तुम जानते हो, मैं जंतर-मंतर नहीं जानता। यह सब ढकोसले हैं। तुम क्यों इनके चक्कर में पड़ते हो।"

"नहीं बाबा, आप कुछ करो। आप पहुँचे हुए महात्मा हैं। सारा गाँव कहता है। आप चाहें तो सब कुछ हो सकता है।" शुकरू गिड़गिड़ाया। "भई, मैंने कह दिया न, मैं न जंतर-मंतर जानता हूँ न इन बातों पर विश्वास करता हूँ। अच्छा इन्हें क्या तकलीफ है?"

शुकरू ने अपनी घरवाली की तरफ देखा। वह थोड़ा शरमाई और उसने सिर का पल्लू कुछ खिसका कर आधा मुँह ढक लिया। शुकरू कहने लगा—"बात यह है बाबा कि हमारे ब्याह को तीन साल हो गए हैं। अभी इस बिचारी की गोद नहीं भरी। वैसे हमारे दो बच्चे हैं। बड़े हो गए हैं। एक तो मेरे साथ खेत में काम करता है। एक को हमने स्कूल में डाल दिया है। लेकिन हमारा कोई नहीं है। बस यही आपसे विनती है कि किसी तरह..."

"तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई शुकरू!" महात्मा जी बोले, "तुम कहते हो हमारे दो बच्चे हैं। फिर कहते हो हमारा कोई नहीं है।"

शुकरू ने स्थिति स्पष्ट की, "बाबा, दो तो इसके पिछले घर के हैं। इस घर से नहीं हुआ।"

महात्मा जी चिंता में पड़ गए। शुकरू की अवस्था भी पचपन-साठ से कम नहीं लगती

थी। इस अवस्था में दो बड़े बच्चों वाली चालीस—पैंतालीस साल की औरत से उसने क्यों शादी की। महात्मा जी पशोपेश में पड़े हुए थे कि आँगन में एक बूढ़ी औरत एक हाथ में रस्सी और दूसरे हाथ में दराँती लिये आ खड़ी हुई। आँगन से ही उसने आवाज दी—

"अरी ओ गुमटी! क्या कर रही है अंदर ? अपने उस निठल्ले मरद को कहाँ छिपा रखा है ओबरी में? खेत पर चलना है कि नहीं? थली में धान का ऊर पड़ा-पड़ा सड़ रहा है। दो दिन का काम है फिर मजे से मुँह से मुँह लगा कर बैठे रहना दोनों दूहरू।"

शुकरू उस आवाज को सुनकर झटपट उठ गया। शुकरू की नई घरवाली ने भी सिर का पल्लू ठीक किया। इतने में वह दरवाजे के पास आ गई। घुटनों तक लम्बी एक मैली कुरती जो एक-दो जगह से फट चुकी थी, सिर पर मैला सा दुपट्टा कस कर पीछे की ओर बँधा हुआ, गले में चाँदी के पुराने सिक्कों से बना हार, कानों में चाँदी की बालियाँ जिनके वज़न से कानों के छेद काफी लंबे हो गए थे, सिर के दुपट्टे की लपेट से बाहर निकले बाल एकदम सफेद। उवान में एक साधु को बैठा देखकर वह ठिठक गई। फिर एकदम पीछे की ओर घूम कर उसने सलवार को, जिसे तब उसने आधी पिंडलियों तक उठा रखा था, नीचे छोड़ा।

"आओ चाची।" शुकरू ने कहा, "महात्मा जी को आज रास्ते में पकड़ लिया था। बड़ी किरपा की इन्होंने। अंदर आ जाओ न, कुछ तुम कहो इनसे।"

परमेसरी चाची अब अंदर आ गई और चटाई से हट कर दीवार के पास खड़े होकर उसने माथे को जमीन से छू कर चरण-वंदना की और फिर एक तरफ बैठ गई। शुकरू ने परमेसरी चाची की तरफ देखा और कहा—"सुनों चाची, बेसिर-पैर की बातें मत करना। इन्साफ की बात करना। महात्मा जी से कोई बात छिपी नहीं है। सब के दिल की बात जानते हैं।"

शुकरू की घरवाली गुमटी उठ कर जाने लगी तो परमेसरी बोली—अरी, तू क्यों जा रही है उठकर। तू भी सुन ले। मैं न महात्मा से डरती हूँ न तुम दोनों से। अपने मन को जो ठीक लगता है वही कहूँगी। तुम्हारे धनी की खोपड़ी है खराब। साठ को ढुका है, पचास की तुम हो गई, अब भी क्या तुम्हारे बच्चे होते रहेंगे? क्या जरूरत है बच्चों की? तीन बेटियाँ इसने ब्याहीं, दो बेटे तुम्हारे हैं। कल को वो अपना घर-बार बसाएंगे। उनके ब्याह की फिक्र करो। अब क्या बच्चे जनने की उम्र है तुम्हारी?"

शुकरू कुछ कहना चाहता था लेकिन परमेसरी चाची के आगे उसकी घिग्घी सी बँध गई। परमेसरी चाची महात्मा जी की तरफ देख कर बोली—

"बाबा जी, इन दोनों को कुछ ऐसा उपदेश दो कि इन को अकल आए। मैं कहती हूँ तो इन्हें कड़वा लगता है। लेकिन जो सच है वह तो कड़वा होगा ही। इस शुकरू से पूछो कि मैंने उसे कैसे-कैसे नरक से उठा कर इस का घर बसाया है। इसलिए नहीं बसाया कि यह जवान था और बच्चे पैदा कर सकता था। इसलिए बसाया कि यह नरक में पड़ा हुआ था। जब इसकी छोटी बेटी ने खैरा के ब्राह्मण के छोरू के साथ भाग कर अपना घर बसा लिया तो यहाँ इसकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं रहा। सुर-शराब ने वैसे ही इसे अधमरा कर दिया था। दिन भर यहाँ पड़ा रहता और इस पर मक्खियाँ भिनभिनाती रहतीं। रामसुरे की बहू घर की झाड़-बुहार

कर जाती और कुछ बना कर खिला जाती। जब दुनिया में अपना कहने के लिए कोई नहीं होता तो ऐसा ही होता है। इसमें इस बिचारे का भी कसूर नहीं। रूपा गई तो इसका अपना कहने के लिए कोई न रहा। रामसुरा चचेरा भाई है, उससे और उसकी बहू से जितना हो सकता था, वे करते थे लेकिन अपने बाल-बच्चों की बात और ही होती है। फिर कोई काम-धाम न करे, दिनभर घर पर पड़ा रहे, उसे रोज-रोज कौन खिलाएगा? ऐसे आदमी को तो अपने सगे भी मुँह नहीं लगाते। रामसुरे के अपने भी बाल-बच्चे हैं। दो छोकरियाँ हैं, दो लड़के हैं। एक लड़के से पढ़ाई करा रहा है, दूसरा फौज में भरती है। कल दोनों का ब्याह-बत्तर करना पड़ेगा। वह कब तक इसे पड़ा-पड़ा पालता। फिर भी उसने जितना किया उतना कोई अपना क्या करेगा।"

शुकरू की घरवाली सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर वाले कमरे में चली गई थी। शायद चूल्हे पर चाय का पानी उबलने लगा था। परमेसरी चाची जब बोलने लगती है तो मशीन की तरह बोलती जाती है। गुमटी सब कुछ जानते हुए इस बीच चाय के चार गिलास थाली में रखकर नीचे आ गई। एक गिलास उसने थाली से उठा कर महात्मा जी के आगे रख दिया। परमेसरी आँखें फाड़कर कभी गिलास की तरफ और कभी गुमटी की तरफ देखती रह गई। शुकरू ने उसके मन की बात समझ कर कहा, "चाची, बाबाजी, कोई छुआछूत नहीं मानते। यह बहुत पहुँचे हुए महात्मा हैं, इनके आगे सब बराबर हैं।"

परमेसरी बोली, "बाबाजी नहीं मानें लेकिन तुम्हें तो अपनी जात नहीं भूलनी चाहिए।"

महात्मा जी ने तब तक गिलास उठाकर मुँह से लगा लिया था। परमेसरी एकदम हक्का बक्का थी। कुछ संभल कर बोली—

"बाबा, वैसे शुकरू की बहू बड़ी सोबतवाली है। भलेमानसों में रही है न। बर्तन-भाँडे ऐसे चमका कर रखती है कि किसी ब्राह्मण के घर क्या हों। आँगन, दुवार, कपड़े-लत्ते सब में इसने हमारी बिरादरी में नेकनामी कमाई है। भले घरों की बहू बेटियाँ भी इसके घर की साफ-सफाई देखकर दंग रह जाती हैं। आँगन में तुलसी का पौधा भी लगाया है। मैंने कहा, 'बहू तुलसी तो बड़ी पवित्तर होती है। सिर्फ ब्राह्मण के घर ही तुलसी पलती है।' लेकिन इसने मेरी बात नहीं मानी। गाँव के कई लोग इस पर नाराज़ हैं।"

महात्मा जी के लिए शुकरू, उसकी नई घरवाली, परमेसरी चाची, रामसुरा और उसकी बहू सभी एक अजीब दुनिया के प्राणी लग रहे थे। वे धीरे-धीरे चाय की चुस्कियाँ लेते जा रहे थे और मन ही मन सोच रहे थे कि इन सब अजीब प्राणियों के जीवन के साथ क्या इतिहास जुड़ा है। परमेसरी ने अपनी कुरती के एक पल्लू में चाय का गरम गिलास पकड़ रखा था और वह धीरे-धीरे चुस्कियाँ लेने लगी थी। शुकरू सिर झुकाए, अपराधी की तरह बैठा था और उसकी घरवाली अब परमेसरी चाची के पास बैठकर चाय पीने लगी थी।

परमेसरी ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—

"यह छोकरी मेरी भाभी लगती है। मेरा भाई दिल्ली में नौकरी करता था। वहाँ इसको भी ले गया था। दिल्ली में रहकर भले घरों का रहन-सहन देखा है न। इसीलिए घर के काम-काज में सुघड़ है। मेरे भाई का अक्सीडंट हो गया तो इस बिचारी का कोई देख-भाल करने वाला नहीं

रहा। दोनों लड़के छोटे। मैंने सोचा, इस बेचारी को भी सहारा मिल जाएगा और इस निखट्टू की जिंदगी भी सुधर जाएगी, इसलिए बिरादरी में चार मन चावल लगाकर दोनों का ब्याह करा दिया। अब इसमें मैंने कौन बुराई कर दी? बच्चे पल जाएँगे, बेसहारा औरत को सहारा मिल जाएगा। बड़ी बात यह कि इसका भी कोई अपना होगा तो वह उनके लिए नये सिरे से जिंदगी जियेगा। जिस हालत में वह रूपा के जाने के बाद पड़ा था, उसमें कोई नहीं जानता था कि वह बचेगा या नहीं। लेकिन इस औरत ने आते ही उसकी जिंदगी बदल दी। अब यह एक टोपे की जमीन बो रहा है। एक टोपा जमीन रामसुरे के पास है। बटाई पर ही सही। अपनी जमीन किसके पास है यहाँ? सब बटाई पर ही काम करते हैं। साल-भर के लिए अनाज घर में आता है। डट कर खाते हैं और इज्जत से सिर ऊँचा करके चलते हैं। किसी का कर्ज़ा नहीं, किसी के आगे हाथ पसारने की बात नहीं। एक लड़का स्कूल जाता है, दूसरा घर पर काम में हाथ बटाता है। बच्चों का सुख भी है, घर का सुख भी। अब इन्हें क्या चाहिए? और बच्चे पैदा करने की इन्हें क्यों फिक्र लगी है। मान लो कल किसी को कुछ हो जाए। जिंदगानी का क्या भरोसा? दुधमुँहे बच्चे होंगे तो उनका क्या हाल होगा। यह सब बातें इनके सोचने की हैं। मेरे कहने से नहीं मानते, आपके कहने का असर हो जाए तो और बात है।''

शुकरू अब तक समझ चुका था कि बात काफी बिगड़ चुकी है। महात्मा जी से अब वह उनकी कुटिया में मिलना चाहता था। परमेसरी चाची के सामने वह अपने मन की बात खुल कर नहीं कह सकता था। इसलिए उसने प्रसंग को बदलते हुए कहा, ''चाची, चलो हम खेत पर चलते हैं। गुमटी रोटी लेकर आ जाएगी। शंभू खेत में अकेला ही है। वीरू भी स्कूल से जल्दी आ जाएगा। सब मिलकर आज ही लगा देंगे बचा खेत।''

महात्माजी भी उठ गए। चलते-चलते शुकरू की तरफ देखकर बोले,—''देखो शुकरू, तुम्हारी चाची से अच्छी सलाह तो तुम्हें कोई दे नहीं सकता। रही जंतर-मंतर की बात, सो भैया इन ढकोसलों में मत पड़ो। पैसा बरबाद करोगे और कुछ हाथ नहीं लगेगा। भगवान् की दया से तुम्हारी घर-गृहस्थी मजे से चल रही है। बच्चों को प्यार दो, उन्हें पढ़ाओ-लिखाओ। मैं तो कहूँगा कि बड़े लड़के को भी स्कूल में भेज दिया करो। आगे चल-कर उसके काम आएगा पढ़ना-लिखना।''

महात्मा जी वहाँ से चलकर जब अपनी कुटिया में पहुँचे तब भी उनके मन पर शुकरू और उसके परिवार की याद छाई हुई थी। उनकी इच्छा हो रही थी कि परमेसरी चाची के पास बैठकर उसकी बातें सुनें। वे शुकरू के दोनों लड़कों से भी मिलना चाहते थे जो उसके अपने बेटे नहीं थे बल्कि उसकी घरवाली के साथ पिछले घर से आए थे। इन दोनों बच्चों के प्रति शुकरू का व्यवहार कैसा था, या दोनों बच्चों का अपने नये बाप के प्रति कैसा व्यवहार था? एक कुतूहल, एक जिज्ञासा लेकर महात्मा जी बड़ी देर तक उनके विषय में सोचते रहे।

उसके बाद हफ्ते-दस दिन में एकाध बार वे शुकरू के यहाँ जाने लगे। गाँव के और घरों में भी उनका आना-जाना होता था। सब घरों में उनका सम्मान होता था। पढ़े-लिखों के बीच उन्हें विशेष आदर से देखा जाता था।

गाँव में कुछ संस्कृत जानने वाले लोग भी थे और अंग्रेजी जाननेवाले कुछ युवक भी जो हाई स्कूल या कालेज की शिक्षा लेने के बाद नौकरी की इन्तजार में थे। कभी कोई संगीत महफिल भी हो जाती थी और महात्मा जी को सम्मान से बुलाया जाता था। महात्मा जी अब गाँव के जीवन का एक अंग बनते जा रहे थे।

शुकरू के परिवार के अब वे काफी निकट आ गए थे। उसके दोनों लड़के शम्भू और वीरू समझदार थे। अपनी माँ की दूसरी शादी को वे सहज भाव से लेते थे। ऐसा उनकी बिरादरी में अक्सर होता था। शुकरू को पिता की तरह सम्मान देने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। लेकिन रूपा को लेकर महात्मा जी के मन में अनेक प्रश्न बने हुए थे। रूपा ने शादी के बाद जिस नये समाज की नई दुनिया में प्रवेश किया था, उसमें रहते हुए उसे अपने पिता का बुढ़ापे में दो बच्चों वाली विधवा से शादी करना कैसा लगा होगा? क्या वह कभी अपने पिता से मिलने मायके आई होगी? अपनी नई माँ के प्रति उसका क्या रवैया रहा होगा?

एक दिन उन्होंने ये सवाल परमेसरी से ही पूछ लिये। सुबह सैर करके लौटते हुए वे गाँव से गुजरे तो शुकरू के घर की तरफ मुड गए। शुकरू के घर पर कोई नहीं था। सब अपने-अपने काम पर चले गए थे। रामसुरे के घर से परमेसरी बाहर निकली तो महात्मा जी को देखकर चली आई। वह उन्हें अपने घर ले गई। इससे पहले कि महात्मा जी कोई बात छेड़ें परमेसरी ने कहना शुरू किया—

"रामसुरे की बहू सीधी-सादी गँवार है। मैंने उसे कई बार कहा कि शुकरू की बहू के पास बैठकर कुछ भलेमानसों के तौर तरीके सीख ले। लेकिन उसके पल्ले कुछ पड़ता ही नहीं। मैं कहती हूँ कि सीखने से ही सब बातें आती हैं। शुकरू की बहू भलेमानसों के बीच रही और उनकी सोबत सीख कर आई। अपने घर को कैसा चमका कर रखती है। लेकिन मेरी बहू तो निरी उजड्ड है। मेरा बड़ा पोता है न रामसुरे का बड़ा लड़का छंदो, फौज मे भरती है। जब कभी घर आता है तो बहुत गुस्सा करता है। हमारे तो संस्कार ऐसे हैं कि हमें साफ-सुथरी जगह में रहना पड़े, तो जी घुटने लगता है। पुरानी आदतें हैं, पुराने संस्कार हैं, क्या करें? नये कपड़े पहन कर और पाँव में पनही डालकर गाँव में निकलती हूँ तो जी घबराने लगता है। कोई यह न कह बैठे कि इन लोगों को पर लग गए है। लेकिन ये लड़के तो नहीं मानते। बाहर रहकर इनके हौसले खुल गए हैं। छंदो कहता है, 'जब दूसरे लोग साफ-सफेद पकड़े पहन सकते हैं तो हम क्यों नहीं पहन सकते? हम न किसी का दिया खाते हैं, न किसी का दिया पहनते हैं। फिर किसी से क्यों डरें?' हमने जो दिन देखे हैं वो दिन इन लड़कों ने कहाँ देखे? लेकिन अब जैसा ये लड़के चाहते हैं, वैसे करना चाहिए। लोगों को बुरा लगता है तो लगता रहे। मैं रामसुरे की बहू को समझाती हूँ, वह समझती भी है। लेकिन गँवार है न, भलेमानसों के तौर तरीके सीखे तो कैसे?"

महात्मा जी इन्तजार कर रहे थे कि कब उसका भाषण समाप्त हो और कब वे अपनी बात करें। अब उन्होंने कहा—

"रूपा अपने बापू से मिलने आती है यहाँ?"

परमेसरी जैसे रूपा की ही बात कहने जा रही थी, बोली—

"यही तो सारा रोना है। शुकरू की बहू बड़ी समझदार औरत है। जब मैंने उसे सारी बात बताई कि शुकरू की बेटी रूपा ब्राह्मण के घर जाकर बस गई है, तो उसने अपने घर को ऐसा बना लिया जैसे खाते-पीते भले-मानसों का भी नहीं होता है। वह कहती है रूपा आएगी तो उसे किसी तरह की घिन नहीं आनी चाहिए। पिछले साल उसने शुकरू पर जोर डालकर किसी तरह घर का छप्पर भी सलेटों वाला कर लिया। हमने भी अपने घर में पिछले साल सलेट डाले थे। छंदो ने कुछ पैसे भेज दिए थे। कुछ बैंक से मिल गए थे। शुकरू को भी बैंक से कर्ज़ा मिल गया। दोनों घरों का काम एक साथ हो गया। शुकरू की बहू ने आधे तोले की अँगूठी भी इसके लिए बेच दी। हमारे जमाने में बाहर की जातों के छप्पर घास फूस के ही होते थे। कोई सलेटी छप्पर के मकानों की बात सोच भी नहीं सकता था। गदियारी गाँव में हमारी बिरादरी के लोभू सेठ थे। उन्होंने सलेटों के छप्पर वाला मकान बनाया था तो ब्राह्मणों-राजपूतों ने मिलकर रात को घर फूँक दिया था। लेकिन वो तो पुराने जमाने की बातें हैं। अब तो हमारी बिरादरी में उन्हीं के छप्पर घास-फूस के हैं जो बहुत ही गए बीते हैं। लेकिन बाबा जी मुझे तो अब डर भी लगता है। जिस दिन हमारे घर पर सलेट पड़े थे उस दिन मुझे रात भर नींद नहीं आई थी। लेकिन हमारी अब क्या पेश चलती है? लड़के जो चाहते हैं, वही करना पड़ता है।" "वही करना भी चाहिए," महात्मा जी ने बात आगे बढ़ाई, "पुराने जमाने में तो बहुत कुछ होता था। दक्षिण की तरफ हरिजन उस रास्ते पर नहीं चलते थे जिस रास्ते बड़ी जाति के लोग चलते थे। लोग जूठा खाकर गुजारा करते थे। पुराने जमाने में आदमी को आदमी नहीं माना जाता था। उसे जानवर से बदतर माना जाता था। अब इन सब बातों को कौन मान सकता है? लेकिन चाची शुकरू और गुमटी की शादी तुमने क्यों कराई, यह बात मेरी समझ में अब भी नहीं आ रही है।"

"बात यह हुई बाबा जी, कि शुकरू भी अपना है और यह छोकरी गुमटी तो मेरी भाभी ही है। हमारी बिरादरी में औरतें एक मरद छोड़ कर दूसरे मरद के घर जा बैठती हैं, इसमें कोई नई बात नहीं। लेकिन गुमटी तो बेसहारा हो गई थी। दो बच्चों को पालना उस अकेली औरत के लिए कितना मुश्किल होता? मेहनत-मजदूरी करके अपना पेट तो भर लेती लेकिन बच्चों को भी पालना था। फिर मरद का सहारा औरत को चाहिए ही। मरद जैसा भी हो औरत को उसका हौसला होता है। मरद निखट्टू हो तब भी औरत सारे घर का बोझ एक हौसले से उठा लेती है। लेकिन मरद के बिना तो औरत का हौसला ही पस्त हो जाता है। मरदों की बात तो कह नहीं सकती। पता नहीं मरदों को भी ऐसा लगता है कि नहीं। औरत के बिना मरद को कोई फरक पड़ता है कि नहीं इसके बारे में ज्यादा नहीं जानती। लेकिन शुकरू तो अपना सगा है। उसकी आदतों को जानती थी। जब उसने अपनी दो लड़कियाँ ब्याही थीं तो शुकरू बादशाह था। उसके बाद उसकी घरवाली चल बसी तो वो आधा रह गया था। रूपा उसकी देखभाल करने को न होती तो वह कभी का भगवान् को प्यारा हो गया होता। रूपा के प्यार के लिए वह जीता रहा। लेकिन जब रूपा भी चली गई तो उसके जीने के लिए कोई बहाना नहीं रहा। उसने सुर-शराब पीकर अपनी बुरी हालत कर ली। मैं कहती, 'अरे तू मर जाएगा।' वह कहता,

'चाची, अब मेरा कौन है जिसके लिए जीऊँ।' बस मैंने सोचा, उसके लिए औरत होनी चाहिएं। औरत के साथ बच्चे भी आ गए। दोनों बच्चे जब उसे बापू कह कर पुकारते हैं, तो उसकी आँखों में नई चमक आ जाती है। दोनों बच्चों के लिए और अपनी औरत के लिए वह अब डट कर काम करता है। एक टोपे की जमीन, दो बैल-बकरी।...''

''लेकिन रूपा क्यों नहीं आती?'' महात्मा जी असली बात पर आए।

''अरे बाबा जी, वो छोकरी बड़ी अभागिन है। बाह्मण के घर जा कर बस गई। सुना है उसका मरद घर आता ही नहीं। अपनी बिरादरी में होती तो मुए के सिर धूल डाल कर नया घर बसाती। लेकिन ऊँची जात में चली गई तो उनके तौर-तरीके बरतने पड़ेंगे। सुना है लड़का भी दादी के पास रहता है। वह अकेली अपने कमरे में रहती है। सास की दया पर जिंदा है। ऐसे जीने से क्या फायदा? यह भी कोई जीना है कि अपने जाये से भी दूर रहना पड़े? मैंने कई बार शुकरू से कहा कि उसे यहाँ बुला लाओ। वो वहाँ जाने से डरता है। कहता है नाली का पानी गंगा में मिल गया अब लौट कर नाली में नहीं आएगा। एक बार गया था वहाँ तो उस छोकरी ने रो-रोकर कहा था, 'यहाँ न आना। सारा गाँव तमाशा देखता है। उन लोगों की बड़ी भद होती है।' कभी-कभी मन करता है खुद जाऊँ और उस छोकरी को समझाऊँ कि घुल-घुलकर मरने से कोई फायदा नहीं। उसकी सास की तो मैं ऐसी खबर लेना चाहती हूँ कि उसके पितर भी याद करें।''

''सास को क्यों कोस रही हो चाची?'' महात्मा जी बोले, ''वह भी तो अपना नरक भोग रही है। जवान बेटा घर से चला गया। पति का स्वर्गवास हो गया। बहू ऐसी आई कि उसके हाथ का छुआ वह खा नहीं सकती। घर में कोई कमाने वाला नहीं। कैसे काटती होगी वह अपने दिन? बच्चे को कैसे पालती होगी? बहू को क्या खिलाती होगी?''

''यही तो मैं भी सोचती हूँ बाबा, लेकिन उस बुढ़िया का दिन-रात हमारी छोकरी को कोसते रहना भी तो बुरा लगता है। सुना है अब तो उन लोगों की हालत बहुत खराब है। लड़के ने पैसा-लत्ता भेजना बंद कर दिया है। थोड़ी-सी जमीन थी वह भी बिक गई है। अब तो सारा परिवार नेज पर पल रहा है। बुढ़िया घर-घर जाती है। विधवा बाह्मणी को कभी रोटियाँ, कभी चावल नेज में मिल जाते है। इसी पर सब पल रहे हैं। इस बार जब कनक गाही थी तो मैंने शुकरू को कहा था कि दो चार मन कनक उनके घर भिजवा दे। मुआ खुद तो नहीं गया लेकिन किरपू के घोड़े पर एक खेप उसने वहाँ डलवा दी थी। चावल भी कुछ भिजवा दिया था। इससे ज्यादा बेचारा शुकरू भी क्या कर सकता है? सुना है, उनका जमाई कुछ मदद करता रहता है। लेकिन बाबा, खेत की फसल आती ही कितनी है? सब को अपना गुजारा करना मुश्किल पड़ता है। दूसरे की मदद क्या करे? बाहर की जातों का जो हाल है, भलेमानसों का उससे अच्छा नहीं है। अन्दर ही अन्दर से सब नंगे हो चुके हैं। बाहर की टीम-टाम बनाए रखते हैं, इससे क्या? अब हमारी बिरादरी वालों नें सलेट के छप्पर डाल लिये लेकिन घर के अन्दर तो वही टूटे खप्पर हैं।''

पता नहीं परमेसरी चाची कितनी देर तक अपना भाषण जारी रखती। महात्मा जी चलने

को तैयार हुए। अचानक रुककर बोले, "यहाँ एक अच्छी दूधवाली भैंस कितने में मिल जाएगी?"

परमेसरी चाची को इस बेतुके सवाल पर अचरज हुआ। बोली, "जाने कितने में मिले? छः-सात सौ तो लगेंगे ही। आप क्या भैंस पालोगे?"

महात्मा जी मुस्करा दिए, "नहीं, यूँ ही पूछ रहा था।"

महात्मा जी जब परमेसरी के घर से चले तो अपने ही में डूबे हुए थे। गाँव में और कौन व्यक्ति उन्हें मिला, किसने उन्हें नमस्कार किया इसका उन्हें पता ही नहीं चला। कुटिया पर पहुँचे तो वहाँ आठ-दस लोग खड़े थे। कुछ लोग उनके लिए बिल्कुल नये थे जिन्हें वे पहली बार देख रहे थे। हिप्पियों की वेश-भूषा में दो लड़के भी वहाँ मौजूद थे और वे लोगों की टोली से हटकर बैठे हुए थे।

लोगों की टोली महात्मा जी के पास एक विराट् यज्ञ कराने का प्रस्ताव लेकर आई थी। इससे पहले गाँव के प्रमुख लोगों ने एक-दो बार यज्ञ कराने की बात कही थी, लेकिन कोई ठोस बात नहीं बनी थी। अब कई गाँवों ने मिलकर यह काम उठाया था। इसके लिए तीन हजार के लगभग रुपया जमा भी हो गया था। आटा, चावल और अन्य खाद्य-सामग्री का प्रबन्ध भी कर लिया गया था। महात्मा जी के आगे जब उन्होंने तीन हजार रुपये रखे तो उन्होंने पूछा–

"इन रुपयों से तुम क्या करना चाहते हो?"

"यह सब यज्ञ के लिए हैं।" एक ने बताया, "पाँच सौ के लगभग लोगों का भोजन होगा। जो पैसा बचेगा उसे इस मंदिर की मरम्मत में लगा देंगे।"

"इस मंदिर को मरम्मत की जरूरत नहीं है। जब इतने दिन यह बिना मरम्मत के रह सकता है, तो और भी कुछ दिन रह सकता है। और पाँच सौ लोग एक दिन यहाँ भोजन करके चले जाएँगे, उससे समाज को क्या लाभ होगा? यज्ञ का मतलब है ऐसा काम जिससे सारे समाज को लाभ हो। इस पैसे से कोई ऐसा काम करो जिससे सारे समाज को फायदा हो।"

लोग एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। एक ने पूछा–

"बाबा! ऐसा क्या काम इस पैसे से हो सकता है?"

"बहुत कुछ हो सकता है। यहाँ मंध पर पुल का काम क्यों नहीं शुरू करते। हर साल लोग तकलीफ झेलते हैं। रास्ता बन्द हो जाता है। इस तरफ या उस तरफ के सभी गाँवों को कष्ट होता है।"

"लेकिन बाबा, इतने कम रुपयों में पुल कैसे बनेगा?"

"काम शुरू करो तो पैसा और भी आ जायेगा। दूसरे गाँव वाले भी मदद करेंगे और सरकार से भी रुपया मिल सकता है। अरे, इन रुपयों से आर-पार के दो खंभों का सीमेंट-पत्थर तो आ ही जायेगा। हर साल मंध का पाट चौड़ा होता जाता है। हर साल वह अपने किनारों से टनों मिट्टी बहाकर ले जाती है और नंगी चट्टानों को पीछे छोड़ जाती है। ऊपर से लेकर नीचे तक इसके किनारों को बाँधने और उन पर पेड़ लगाने का काम भी तुम लोगों को करना चाहिए वरना एक दिन इस दत्तल गाँव को भी मंध निगल जाएगी और दूसरी तरफ पाहड़ा भी उसी में समा

आएगा। यज्ञ करना चाहते हो तो इन कामों को हाथ में लो। मेरी तो यही राय है।"

कुछ लोगों को महात्मा जी की बात ठीक लगी लेकिन कुछ निराश हुए। लोगों के जाने के बाद महात्मा जी उन दो व्यक्तियों से बातें करते रहे जो हिप्पियों की वेशभूषा में थे।

साधु के भेष में मुरली को पहचानने में अमर को जरा भी दिक्कत नहीं हुई। साठ-सत्तर लोग जिनमें आधे के करीब औरतें थीं, महात्मा जी का प्रवचन सुनने के लिए कुटिया के आँगन में जमा थे। दरी के आसन पर पालथी मार कर बैठे महात्मा जी अपने सामने गीता की पुस्तक खोले बैठे थे। प्रवचन का विषय था आदमी के दुःखों का कारण। महात्मा जी बता रहे थे—"विषयों का ध्यान करने से आदमी विषयों का शिकार हो जाता है, काम उसे दबोच लेता है। काम से क्रोध, क्रोध से सम्मोह, उससे स्मृति-विभ्रम और फिर बुद्धि का नाश होता है। बुद्धि नाश ही मनुष्य का नाश है। विषय क्या है? काम क्या है? विषयों से हम घिरे हुए हैं। सिर्फ शराब, स्त्री, भोग-विलास का नाम ही विषय नहीं हैं। सत्ता का नाम भी विषय है, ताकत भी विषय है। जब हम सोचते हैं कि दुनिया में सिर्फ मैं सब से ऊपर हो जाऊँ, दूसरे मेरे पैरों तक रहें, मेरा सब पर दबदबा रहे, मैं जो कुछ कहूँ, दूसरे उसे सिर झुका कर मान लें, तो वह भी विषय है, भूख है, कामना है। जब इसके साथ किसी का लगाव हो जाता है तो उसकी बुद्धि का भी नाश हो जाता है। दुनिया में जितने भी बड़े-बड़े डिक्टेटर हुए, सब का नाश इसी तरह हुआ। हिटलर सोचता था सारी दुनिया पर सिर्फ जर्मनों का कब्जा हो जाए। वह कहता था, जर्मन जाति दुनिया की सब से श्रेष्ठ जाति है, दूसरी जातियाँ सिर्फ उसका हुक्म बजाने के लिए हैं। हिटलर से भी बड़ा डिक्टेटर जर्मनी में बिस्मार्क हुआ। वह अपने को सब से बड़ा देशभक्त और दूसरों को देश का दुश्मन कहा करता था। दुनिया में और भी जितने डिक्टेटर हुए, जितने बेवकूफ राजा और बादशाह हुए हैं, उनका विनाश इसलिए हुआ कि वे सब सत्ता के कामी थे। जब कोई उनकी सत्ता के आड़े आता था तो क्रोध में अपना-आपा खो बैठते थे। उस समय उनकी मति भ्रष्ट हो जाती थी याने उनके आस-पास जो ईमानदार और सही सच्चे लोग होते थे, उनको वे शक की नजर से देखने लगते थे और अपने से दूर कर देते थे। जो लोग झूठे-बेईमान होते थे वे उनकी हाँ में हाँ मिलाकर प्रधान बन जाते थे और कालांतर में उनके नाश का कारण बनते थे। हिरण्यकश्यप का नाश इसीलिए हुआ कि वह अपने ऊपर किसी को नहीं मानता था, भगवान् को भी नहीं। उसने प्रह्लाद जैसे सच्चे इन्सान का तिरस्कार किया और झूठे लोगों के कहने पर उसे कई प्रकार से सताया। कंस का नाश इसलिए हुआ कि वह सत्ता का लोभी बन चुका था। उसके सिंहासन को जिससे खतरा हो सकता था उसे खत्म करने के प्रयास में वह क्रोध से पागल हो गया और खुद अपने विनाश को बुला लाया। दुर्योधन का नाश इसलिए हुआ कि उसने भीष्म और कृष्ण जैसे लोगों की बात नहीं सुनी और शकुनि तथा दुःशासन की सलाह पर चला। विषयों के

पीछे, सत्ता के पीछे, काम के पीछे भागने वाला खुद अपने विनाश को बुलावा देता है। ये दुःशासन और शकुनि, ये दुर्योधन और कंस, ये हिरण्यकश्यप और रावण अपना रूप बदल कर किसी भी समय में और किसी भी देश में प्रकट हो सकते हैं और तुम कहोगे उनके विनाश के लिए भगवान् भी प्रकट हो सकते हैं। 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' का मतलब यह नहीं कि हर बार भगवान् अवतार लेकर दुष्टों का नाश करता है। भगवान् की शक्ति याने अच्छाई का बल, सचाई की शक्ति ही उसे परास्त करती है। देखो, जब कोई व्यक्ति अपने तक सीमित रहकर यह कहे कि मैं अच्छा हूँ बाकी सब बुरे हैं, तब कोई ज्यादा नुकसान नहीं होता, क्योंकि तब उस एक व्यक्ति का ही नाश होता है। लेकिन जब एक परिवार का मुखिया यह कहने लगे कि मैं अच्छा बाकी सब बुरे तो वह परिवार का नाश करने वाला बनता है। इसी तरह जब राजा यह बात कहने लगे तो वह सारी प्रजा का, सारे समाज का नाश करने वाला बनता है। एक बात जो मैं तुम लोगों को यहाँ बताना चाहता हूँ वह यह कि गीता का लोग शाब्दिक अर्थ लगाने की कोशिश करते हैं, वह गलत है। गीता एक पवित्र पुस्तक है, एक शाश्वत ग्रंथ है। उसी तरह जैसे वेद पवित्र और शाश्वत ग्रंथ हैं। मुसलमानों के लिए कुरान शरीफ, ईसाइयों के लिए बाइबिल, पारसियों के लिए जेंदावस्ता और सिक्खों के लिए गुरु ग्रंथ साहब भी पवित्र और शाश्वत ग्रंथ हैं। शाश्वत का अर्थ क्या है ? शाश्वत का अर्थ है कि हर काल में ये ग्रंथ मनुष्य को नई प्रेरणा देते हैं। उसे नया रास्ता दिखाते हैं, उसकी प्रगति में सहायक होते हैं। समय के अनुसार ये नये अर्थ को प्रकाशित करते हैं। इसलिए इनके शाब्दिक अर्थ में न जाकर इनके पीछे छिपे अर्थ को समझना चाहिए और उससे प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। अब गीता के भगवान् कृष्ण कहते हैं कि जब-जब धर्म की हानि होती है तो मैं धर्म के उत्थान के लिए और दुष्टों के नाश के लिए प्रकट होता हूँ। इस वाक्य का हमारे देश में बहुत गलत अर्थ लगाया गया है और इससे हमें बहुत नुकसान उठाना पड़ा है। गलत अर्थ यह लगाया गया कि जब समाज में अधर्म बढ़े, भ्रष्टाचार बढ़े, बेईमानी बढ़े, स्वार्थी लोगों का प्रभाव बढ़े या जब कोई हमलावर देश पर अत्याचार करे तो उसके प्रतिकार के लिए कुछ मत करो। भगवान् के अवतार लेने की प्रतीक्षा करो। ऐसा अर्थ लगाने से हमारा देश भाग्य के भरोसे जीनेवाला बन गया। लोग आए, हमें कुचल गए। क्रूर और दुष्ट राजा हुए उन्होंने हमें जी भर कर लूटा, जी भरकर सताया। हम तमाम अत्याचारों को, तमाम ज्यादतियों को चुपचाप सहन करते गए, इस उम्मीद पर कि भगवान् अवतार लेकर दुष्टों का नाश करेंगे। यह दृष्टि आत्म-हत्या की दृष्टि है। अपनी हर समस्या के समाधान के लिए किसी अवतार की प्रतीक्षा करने की प्रवृत्ति के कारण ही हम दो हजार साल तक निरंतर गिरते गए। हम जुल्मों को चुपचाप सहते गए। अत्याचारों का जहर चुपचाप पीते गए। गीता में कहीं यह बात नहीं कही गई है कि जुल्मों को चुपचाप सहन करते जाओ। सही मायनों में देखा जाए तो महाभारत का सार ही यह है कि जुल्मों के खिलाफ संघर्ष करो। महाभारत युद्ध इसीलिए लड़ा गया कि कौरव पांडवों पर जुल्म किए जा रहे थे। जब कृष्ण ने देखा कि जुल्मों का सिलसिला बंद होने वाला नहीं है, तो उन्होंने दुर्योधन की राज-सभा में स्वयं युद्ध की घोषणा कर दी थी। हमारी बहनों को द्रौपदी से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

दुर्योधन की सभा में उस पर अत्याचार हुआ तो उसने कसम खाई कि जब तक वह दुर्योधन के रक्त से अपनी वेणी को नहीं सींचेगी वह वेणी नहीं बाँधेगी। यह है एक तेजस्वी नारी का रूप जो अत्याचारों को चुपचाप सहन करने के बजाय उसके विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देता है। हमारे वर्तमान समाज में भी अनेक बुराइयाँ आ गई हैं जिनके कारण आम आदमी दु:खी है। आज भी सीधा और सच्चा इन्सान यहाँ सुख से नहीं जी सकता। केवल वही लोग तरक्की करते हैं जो जोड़-तोड़ कर सकते हैं, घूस ले-दे सकते हैं या भाई-भतीजावाद का सहारा पाते हैं। इस देश के साठ करोड़ लोगों में से पचास करोड़ गरीबी में जीते हैं। उनकी जिंदगी जानवरों की जिंदगी से कोई ज्यादा अच्छी नहीं है। क्यों है यह स्थिति? इसलिए कि चंद ऊपर के लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हैं। समाज की यह असमानता, यह गैर बराबरी आदमी की बनाई हुई है। इसे पूर्वजन्म के कर्मों का फल मानकर चुपचाप स्वीकार करना सब से बड़ी मूर्खता है। यह चंद लोगों का सारे समाज पर अत्याचार है और इसके खिलाफ संघर्ष करना हर आदमी का फर्ज होना चाहिए। गीता कहती है कि सब मनुष्यों में एक ही शुद्ध-बुद्ध आत्मा का निवास है। शरीर भिन्न हो सकता है। कोई गरीबी के कारण मैला-कुचैला हो सकता है, कोई अमीरी के कारण सुंदर, स्वस्थ और दर्शनीय हो सकता है। किंतु शरीर तो बाहरी चीज है, यह आत्मा का परिधान है, कपड़े हैं। असली चीज तो है आत्मा, जो सब में एक समान है। उसमें कोई भेद नहीं है। फिर आदमी-आदमी में भेद कहाँ से आया? ब्राह्मण और शूद्र का भेद, काले और गोरे का भेद, अमीर और गरीब का भेद, हम में कैसे पैदा हुआ? यह हमारे अज्ञान से पैदा हुआ। इस अज्ञान से कि शरीर ही मनुष्य है; जबकि गीता की सच्चाई यह है कि आत्मा ही मनुष्य है और वह सब में एक ही है...."

भीड़ के पीछे बैठा हुआ अमर महात्मा जी के प्रवचन में खो गया था। महात्मा जी की आँखों में एक सम्मोहिनी शक्ति थी जो प्रत्येक श्रोता को उनकी ओर बाँधे हुए थी। एक मंत्र-मुग्ध की स्थिति में मरद, औरतें और बच्चे उनके चेहरे की ओर टकटकी बाँधे देख रहे थे और उनके शब्दों की गहराई में डूबे हुए थे। अमर कुछ समय के लिए यह भी भूल गया कि उसके सामने सरकार के खिलाफ विद्रोह करने वाला एक भूमिगत कार्यकर्त्ता बैठा है।

महात्मा जी ने अपने सामने पड़ी गीता की पुस्तक को बंद करते हुए कहा, "आज के लिए मैं तुम लोगों से इतना ही कहना चाहता हूँ गीता के अनुसार चलना चाहते हो, तो सही और गलत की पहचान करो। सोचो और सोच कर पता लगाओ कि धर्म क्या है और पाप क्या है? सही क्या है, गलत क्या है? फिर उसके बाद जो गलत है उसके खिलाफ संघर्ष करो। और भाग्य के भरोसे, अवतार के भरोसे मत जियो, कर्म करो। गीता का सार है ज्ञान से सही और गलत को समझो और फिर सही चीज को आगे बढ़ाने के लिए और गलत को खत्म करने के लिए कर्म करो। यही है गीता का ज्ञान-योग और कर्म-योग। ज्ञान के बिना कर्म और कर्म के बिना ज्ञान अधूरा है।"

प्रवचन खत्म हुआ। लोग एक-एक करके महात्मा जी को नमस्कार करके जाने लगे। चरणों पर माथा टेकने की महात्मा जी की ओर से सख्त मनाही थी इसलिए हाथ जोड़कर

नमस्कार करते और चले जाते। थोड़ी देर में सारी भीड़ छँट गई और केवल अमर और महात्मा जी वहाँ रह गए।

अमर महात्मा जी के व्यक्तित्व और गीता के प्रवचन से इतना अभिभूत हो गया था कि कुछ क्षण के लिए उसे मुरली से बराबरी के स्तर पर बात करने में संकोच हुआ। किंतु मुरली ने शीघ्र ही वह संकोच दूर कर दिया। अमर को हाथ से पकड़ कर कुटिया के भीतर ले जाते हुए बोला—

"जंतर मिल गया था? किसी को दिखाया तो नहीं?"

"सिर्फ रमा ने देखा है।" अमर ने मुस्कराते हुए कहा।

"तब तो जंतर ने कुछ करिश्मा भी कर दिखाया होगा।"

"हाँ, कुछ करिश्मा भी दिखाया लेकिन वह तुम्हारे जंतर का नहीं था। जंतर खोलने से पहले का था।"

"उससे क्या होता है? करिश्मा तो उसी का हुआ?"

दोनों हँसने लगे। फिर अमर ने पूछा—

"ये प्रवचन क्या यहाँ रोज होते हैं?"

"नहीं, हफ्ते में तीन दिन। अब तो दूर-दूर के गाँव के लोग भी यहाँ आने लगे हैं। कभी-कभी तो अच्छा-खासा मेला लग जाता है।"

"बड़े भव्य लगते हो प्रवचन देते समय। मेरा जी कर रहा था कि प्रवचन चलता रहे और मैं सुनता रहूँ।"

"आर्यसमाज में रह कर यह भाषणबाजी ही तो सीखी है।"

"लेकिन जरा संभल कर किया करो यह प्रवचन, नहीं तो किसी दिन भंडा फूट जाएगा।"

"वह तो एक दिन फूटना ही है। अच्छा घर पर पुलिस तो नहीं आई थी पूछताछ करने?"

"आई थी दो बार। लेकिन गाँव वालों ने कह दिया कि तुम्हें यहाँ किसी ने नहीं देखा। मुकुल ने जरूर सारे गाँव में यह बात फैला दी कि तुम आए थे। लेकिन पुलिस के आगे सब ने यही कहा कि तुम्हें किसी ने नहीं देखा।"

'मियाँ यशवंतचंद और दयाराम ने भी?"

"हाँ, उन्हें डर है कि अगर उन्होंने तुम्हारे खिलाफ पुलिस में बयान दिया तो क्रांतिकारी उन्हें गोली से उड़ा देंगे। तुम्हारा नाम सरदार भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद की क्रांतिकारी पार्टी से जोड़ा जाता है।"

"ओह! यह बात है। मैं तो सोचता था कि इनाम के लालच में ये सरकारी कुत्ते पुलिस को खबर जरूर करेंगे और तब भैया पर मुसीबत आएगी। इसीलिए मैं कहीं आस-पास रहना चाहता था कि ऐसा मौका आए तो मैं अपने को पुलिस के हवाले करके भैया को पुलिस के अत्याचारों से बचा सकूँ।"

"तुम्हें चिंता करने की कोई जरूरत नहीं। जब तक मैं गाँव में हूँ, उन पर कोई मुसीबत नहीं आएगी।"

"आप नहीं जानते हैं कि पुलिस किस हद तक अब जुल्म करने लगी है। बड़े-बड़े अफसर संजय गांधी और कंपनी को खुश करने में लगे हैं। ये लोग जिसे चाहें मीसा में पकड़ सकते हैं और उन पर ऐसे-ऐसे अत्याचार ढाते हैं जिनकी कोई मिसाल नहीं। अंग्रेजी राज में भी पुलिस के ऐसे अत्याचार लोगों ने नहीं देखे थे। फर्नांडूस के भाई लारेंस का उन्होंने मार-मार कर बुरा हाल कर दिया है। वह अपाहिज बन गया है। स्नेहलता रेड्डी जेल की यातनाओं के कारण अब मरण शैय्या पर हैं। रेणु की हालत भी खराब है।"

"फणीश्वरनाथ रेणु की?"

"तुम कैसे जानते हो?"

"मुझे तमाम खबरें मिल रही हैं। हमारे बुलेटिन छप रहे हैं और बंट रहे हैं। हमारे ग्रुप के लोग हिप्पियों के भेष में मुझ से मिलते हैं। बुलेटिन छपाने और बटवाने का काम यहाँ भी चल रहा है। लेकिन उतना अच्छा नहीं जितना शहरों में।"

"और क्या खबर है? यह स्थिति कब तक चलेगी?"

"कह नहीं सकते कब तक चलेगी। अपने को सब से बड़ा देशभक्त कहने वाले लोग धड़ाधड़ माफीनामे लिख कर बाहर आ रहे हैं और लगता है इंदिरा गांधी से समझौता करने को तैयार हैं। चरणसिंह भी बाहर आ गए हैं। शायद वे भी स्थिति को बदलने की कुछ कोशिश कर रहे हैं। लेकिन मुझे लगता है कि सरकार खुद इस स्थिति से परेशान है। कीमतें अब फिर तेजी के साथ बढ़ने लगी हैं। लोकसभा का कार्यकाल एक साल के लिए बढ़ाया था वह खत्म हो रहा है। अब एक साल की अवधि और बढ़ाने के लिए कोशिश हो रही है। सरकार की स्थिति साँप-छछूंदर की सी हो गई है। जब एक व्यक्ति के पास सारी सत्ता केंद्रित हो जाती है, तो हमेशा यही स्थिति होती है। न तो सत्ता को छोड़ा जा सकता है और न उसे भली प्रकार सँभाला जा सकता है। ऐसे मौकों पर ही डिक्टेटर लोकतंत्र का नाटक खेलता है। वह चुनाव कराता है लेकिन ऐसा चुनाव कराता है जिसमें उसकी विजय निश्चित हो। हिटलर और बिस्मार्क दोनों इस तरह के मौकों पर चुनाव करने का नाटक खेलते थे और वे इस चाल में सफल होते थे। हो सकता है इंदिरा गांधी भी चुनाव का नाटक खेले। लोकसभा की अवधि को एक साल और बढ़ाना उसके लिए मुश्किल नहीं है लेकिन इस एक साल में उसे चुनाव कराने ही पड़ेंगे, क्योंकि लोकसभा की अवधि को बढ़ाते रहना, या लोकतंत्र की तमाम संस्थाओं को समाप्त करके पूर्ण तानाशाही स्थापित करना इस देश में संभव नहीं है। यह तभी संभव होता है जब सैनिक सत्ता का पूरा समर्थन राजनेता को प्राप्त हो। हमारी सेना की परंपरा बड़ी स्वस्थ रही है और मेरा ख्याल है कि हमारी सेना सत्ता की होड़ से अपने को अलग ही रखेगी।"

अमर बड़े ध्यान से मुरली की युक्तियों को सुन रहा था। उसे आश्चर्य भी हो रहा था कि मुरली की राजनीति की इतनी गहराइयों में पैठ है। वह बोला—

"लेकिन चुनाव हुए तो उसका जीतना अब की बार जरूरी नहीं है।"

"असंभव भी नहीं है। इस देश की जनता चुनाव का मतलब नहीं समझती। वोट बड़ी आसानी से खरीदे जा सकते हैं और शासक के पास वोट खरीदने के सारे साधन होते हैं।"

"लेकिन इस समय स्थिति काफी बदल चुकी है। जिन लोगों के वोट आसानी से खरीदे जाते थे, वे भी दु:खी हैं। अकेले परिवार नियोजन की ज्यादतियों ने गरीब तबके में एक दहशत फैला दी है। इसी तबके के वोटों से कांग्रेस हमेशा जीतती रही है। अब की बार उसे बहुत वोट इस तबके के खोने पड़ेंगे।"

"फिर भी वह जीत सकती है। उसके खिलाफ के वोट कई पार्टियों में बंट जाएंगे। सारी विरोधी पार्टियाँ एक मोर्चा बनाएँ, दो उम्मीदवारों के बीच सीधी टक्कर हो, तभी कुछ उम्मीद हो सकती है। सुना है विरोधी पक्ष की एकता के लिए जेल में ही कुछ बातचीत चल रही है। कामयाब हो जाए तो अच्छा है।"

"धुर दक्षिणपंथियों और धुर वामपंथियों के बीच एकता तो कहाँ होगी अगर संयुक्त मोर्चा भी बन जाए तो भी अच्छा है। डॉ० लोहिया कहते कहते चले गए। किसी ने उनकी बात नहीं सुनी। अब भी अगर उनके होश ठिकाने न आए तो इस देश का दुर्भाग्य ही होगा। यह सारी स्थिति इन विरोधी पार्टियों की अपनी बनाई हुई है। ये बुद्धिमान् होते तो इस स्थिति को बहुत पहले रोका जा सकता था। खैर, अब भी इन्हें अक्ल आ जाए तो देश की विपत्ति टल सकती है।"

राजनीति से हट कर चर्चा गाँव पर आ गई। मुरली ने बताया कि रूपा के पिता शुकरू का कायाकल्प हो गया है। उसने दो बच्चों वाली एक अधेड़ महिला से शादी कर ली है और अब वह एक बच्चा पैदा करने की फिक्र में है। परमेसरी चाची की गुमटी भाभी लगती है। उसी ने दोनों का ब्याह कराया है। कहती थी, मेरी भाभी को मरद के सहारे की जरूरत थी और शुकरू को जीने के लिए एक औरत और बाल-बच्चों की जरूरत थी। रूपा के चले जाने के बाद उसने सुर शराब पी कर अपनी बुरी हालत बना रखी थी। परमेसरी ने उसे फिर आदमी की जिन्दगी दी है। वह अब एक टोपे की जमीन बोता है। उसकी घरवाली गुमटी ने घरबार ऐसे चमका कर रखे हैं कि ऊँची जातों के घरों की सफाई भी उसके सामने फीकी पड़ जाए। वह कहती है रूपा अपने बापू के पास आए तो उसे घिन न लगे। उसने आँगन में तुलसी का पौधा भी लगाया है।"

शुकरू और गुमटी की ब्याह-कथा अमर के लिए भी कम कुतूहल जनक नहीं थी और परमेसरी चाची के जीवन-दर्शन से तो वह पहले से ही परिचित था।

"यह परमेसरी चाची भी अजीब औरत है।" अमर बोला, "कभी-कभी तो वह ऐसी बात कह जाती है कि बड़े-बड़े प्रगतिशील दंग रह जाएँ। शायद जिंदगी को उसने नजदीक से देखा और जिया है।"

"परमेसरी कहती थी कि खैरा में हालत अच्छी नहीं है। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गई है।"

"वह ठीक कहती है। खलिहान तैयार होने पर मैं कुछ अनाज वहाँ भेज देता हूँ। इससे खाने-पीने की तो ज्यादा समस्या नहीं रहती लेकिन दूसरे खर्चे भी तो हैं। दिवाकर की तरफ से तो अब चिट्ठी भी नहीं आती है।"

कुछ सोचने के बाद मुरली बोला—

"मेरी एक योजना है। अगर इसमें आप मेरी मदद करें तो..."

"मैं तो कुछ भी करने को तैयार हूँ। लेकिन अड़चन तो यह है कि रूपा बहुत स्वाभिमानी औरत है। मेरी मदद को उसने कभी स्वीकार नहीं किया। उसे सास के फेंके हुए टुकड़े पर जीना स्वीकार है लेकिन किसी की मदद नहीं लेगी। वह करीब-करीब आत्म-हत्या करने पर तुली है। भूखे रहकर, तिरस्कार सहकर और कष्टों को चुप-चुप भोग कर वह अपने को स्वाहा कर देना चाहती है।"

कुछ देर रुकने के बाद अमर बोला—

"बात यह है कि वह अपने पर से विश्वास खो चुकी है। उसकी जिंदगी में अब कोई उम्मीद नहीं बची है, कोई सहारा नहीं बचा है। जिंदगी जीने के लिए अब कोई बहाना उसके पास नहीं है।"

"यही तो मैं भी कहना चाहता हूँ। प्यार जिंदगी की सब से बड़ी शक्ति है। उसके लिए आदमी कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी जिंदा रहना चाहता है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि वह पुराने संबंध तोड़ कर नये संबंध जोड़े और नये सिरे से जिंदगी शुरू करे?"

"इसके लिए वह कभी तैयार नहीं होगी। अगर वह ऊंची जात में न गई होती तो वह शायद अब तक ऐसा कर चुकी होती। लेकिन अब वह ऊंची जातों की सड़ी-गली परंपराओं को भी एक शाश्वत नियम मान कर चलने लगी है। और फिर जिस हालत में वह है उस हालत में कौन उसे अपना बनाएगा। अब न उसमें शारीरिक आकर्षण बचा है, न कोई और प्रलोभन है।" "मैं जानता हूँ," मुरली दूर क्षितिज पर नज़र गड़ा कर बोला, "लेकिन जब वह दिवाकर के साथ बम्बई आई थी, तो उसमें गजब का आकर्षण था। मुझे लगा था कि दिवाकर का उस आकर्षण में बँध जाना स्वाभाविक ही था। कुछ ही वर्षों की तो बात है। अचानक वह आकर्षण कहाँ चला गया? मेरा विचार है कि रूपा अगर अब भी ढंग से जीवन जीना शुरू करे, तो वह आकर्षण, वह जीवंतता लौट सकती है।"

"लेकिन यह कैसे होगा?"

"अगर आप उसे समझा सकें तो मैं उसे लेकर दिवाकर के पास जाना चाहता हूँ और दोनों के बीच कानूनी तलाक कराना चाहता हूँ। उसके बाद... उसके बाद मैं उससे शादी करना चाहता हूँ।"

अमर उसके चेहरे की तरफ देखता रहा। मुरली की नज़र अब भी दूर क्षितिज पर टिकी हुई थी। अब वह बोला—

"आपके आगे मैं यह स्वीकार करना चाहता हूँ कि जब मैंने उसे बम्बई में देखा था तो उसे देखने, उससे बातें करने में मुझे बड़ा सुख मिलता था। लेकिन चूँकि वह उस समय दिवाकर की पत्नी थी, मैंने कभी अपने मन की बात बाहर नहीं आने दी। अब वह दिवाकर की पत्नी नहीं है लेकिन मेरे मन में अब भी उसकी वही छवि अंकित है।"

"वह इस तरह की बात अब सोचेगी भी नहीं। वह दिवाकर की पत्नी रह कर ही मर जाना चाहती है।"

कुछ देर तक दोनों के बीच कोई बात नहीं हुई। दोनों अपने-अपने ढंग से समस्या का समाधान ढूँढने में लगे थे।

"अच्छा, एक काम करो।" मुरली ने अमर की तरफ देखकर कहना शुरू किया, "मेरे पास कुछ रुपये हैं। मैं आपको पाँच सौ रुपये देता हूँ। इन रुपयों की एक दुधारु गाय खरीदकर किसी तरह रूपा को सौंप दो।"

"इससे क्या होगा?"

"गाय की देखभाल करने में उसका मन लगेगा। दिन बिताने के लिए उसके पास कोई काम हो जाएगा और शायद कुछ लाभ भी।"

"लेकिन मैं क्या कहकर उसे गाय दूँगा?"

"कहना आपने अपने लिए ली थी लेकिन रमा की तबियत कुछ ठीक नहीं रहती इसलिए इसकी अच्छी देखभाल नहीं हो रही है।"

अमर को इस योजना में कुछ सार दिखाई दिया।

"लेकिन रुपयों की तो तुम्हें भी जरूरत होगी।"

"मुझे क्या जरूरत? मेरी सारी जरूरतें यहाँ पूरी हो जाती हैं और फिर बम्बई से कुछ पैसा भी तो मुझे आ जाता है।"

अमर स्वयं कई दिनों से सोच रहा था कि उस परिवार की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति में किसी प्रकार मदद की जाए। लेकिन उसकी अपनी मजबूरियाँ थीं। उसकी अपनी पारिवारिक आय इतनी नहीं थी कि किसी अन्य परिवार का पूरा बोझ उठा सके। जो ज़मीन उसके पास थी वह इतनी कम थी कि उसमें से एक परिवार के लिए साल भर का अनाज आ सकता है। रमा और लक्ष्मी देवी सहकारी उत्पादन केन्द्र में कुछ काम करके सत्तर-अस्सी रुपये मासिक कमा लेती थीं, उनसे घर के अन्य खर्च चलते थे। पिछले दो-तीन सालों से खेत के एक भाग में आलू और लाल मिर्च की अच्छी फसल मिल रही थी जिसे अढ़ाई-तीन हजार के करीब नकद रकम मिल जाती थी। इस आमदनी के साथ अपने ससुराल के परिवार की उसे जितनी मदद करनी चाहिए थी, वह नहीं कर पाता था। मुरली से पाँच सौ रुपये की नकद सहायता का उसने इसीलिए स्वागत किया। उसने सोचा इस रकम में दो सौ और जोड़ कर एक भैंस खरीदी जा सकती है और भैंस एक परिवार का पेट पाल सकती है। लेकिन रूपा को इसके लिए तैयार करने की समस्या टेढ़ी नज़र आ रही थी।

अमर जब वहाँ से जाने लगा तो मुरली ने मंध खड्ड पर पुल बनाने की योजना का भी जिक्र किया। उसने बताया कि लोग कुछ रुपया इकट्ठा करके लाए थे और उससे एक यज्ञ करना चाहते थे। उसकी सलाह पर वे इस रुपये से पुल का काम शुरू करने को राज़ी हो गए हैं। आर-पार के दो खंभों के लिए सीमेंट-पत्थर का बन्दोबस्त हो गया है। लोक-निर्माण विभाग को इस योजना का प्रस्ताव भी भेजा गया है। कुछ जान-पहचान हो तो इस काम को सरकार अपने हाथ में ले सकती है। कुटिया के ठीक सामने मंध के चौड़े पाट की ओर इशारा करके वह बोला—

"हर साल मिट्टी के क्षरण से इसका पाट इतना चौड़ा हो गया है कि जब तक बीचों-बीच

तीसरा खंभा नहीं बनेगा, पुल टिकेगा नहीं। काफी खर्च का काम है। सरकार ही इसे हाथ में ले तभी यह हो सकता है। साल-दर-साल मिट्टी बहती जाती है और नंगी चट्टानों को अपने पीछे छोड़ जाती है। जानते हो मैंने अपने रहने के लिए यह जगह क्यों चुनी? यह मंध खड्ड मुझे वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक जीवन की तसवीर लगती है जिसके ऊपर की परत धुल गई है और भीतर की सही, नंगी और चट्टानी तसवीर उभर आई है।"

अमर जब मुरली से विदा लेकर घर चला तो उसके मन में अनेक प्रश्न घुमड़ रहे थे। मुरली ने मंध खड्ड के कंकाल रूप और पुल के तीसरे खंभे की बात करके उसकी कल्पना को बहुत दूर तक विहार करने की प्रेरणा दी थी। सुनसान खेतों के बीच से गुजरते हुए उसे वह दिन याद आया जब वह दस-ग्यारह वर्ष पूर्व रूपा से मिलने के बाद इन्हीं खेतों से गुज़रकर घर वापस जा रहा था। रूपा और दिवाकर के बीच का पुल शायद दो धुर किनारों का पुल था, इसीलिए वह टूट गया। समाज की धुर गरीबी और धुर सम्पन्नता के बीच भी पुल नहीं बनेगा। दो सुदूर किनारों में खिंचा हुआ हमारा समाज क्या कभी तीसरे खंभे के निर्माण का क़ाम कर सकेगा?

पुल टूट चुका है। खंभों की ईंटें भी एक-एक करके गिरती जा रही हैं। लेकिन किनारे सिमटकर पास नहीं आ रहे हैं। अमर के सामने पंडित दयाराम का चेहरा घूम गया। किसी समय पंडित दयाराम चाँदी से मढ़ी पालकी में बैठकर अपनी असामियों के पास जाया करते थे। कल गदियारी के क्वालू को चढ़ते हुए वे बुरी तरह हाँफ रहे थे। पीपल के पेड़ के नीचे सुस्ताने बैठे तो अमर भी उनके पास बैठ गया। दयाराम कुछ देर तक देश की हवा की, राजनीति की बातें करते रहे फिर अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का ज़िक्र करने लगे। बोले—

"हम नहीं जानते थे कि ये दिन भी हमें देखने पड़ेंगे। कभी बीसियों नौकर-चाकर घर में पलते थे। अब गाय-भैंस का काम देखने वाला एक नौकर भी भारी लगता है। माणिक भैया छोड़कर चले गए तो मेरी कमर ही टूट गई। इतने दिनों तक उस भाई के ज़ोर पर ही मैं अपनी गाड़ी खींच रहा था। बड़ा चचेरा भाई पहले ही अलग हो गया था। छोटा भाई और उसका परिवार अन्दर ही अन्दर से कटा-कटा रहता था। लेकिन जब तक माणिक रहा, उसने बँटवारे की कभी बात नहीं की। अब वह भी अलग हो गया है। माणिक के लड़के भी बाल-बच्चों वाले हो गए थे। भाई के स्वर्गवास होते ही उन्होंने भी बटवारे के लिए ज़ोर डाला था। आखिर जो चीज होनी थी उसे कब तक रोकता। इतने दिनों यही संतोष लेकर जी रहा था कि सब इकट्ठे हैं और घर की आबरू ढकी हुई है। हमारे परिवार का नाम इज्जत से लिया जाता था। जैसे भी रहते थे, घर की चारदीवारी के अन्दर सब छिपा रहता है। अब नये ज़माने की हवा क्या चली, बाप-बेटे की भी नहीं बनती।"

पंडित दयाराम ने जैसे मन का बोझ अमर के आगे हलका कर लिया। उठते हुए बोले, "यह इमरजैंसी कब तक चलेगी, कुछ पता है? एक अखबार पढ़कर कुछ तसल्ली होती थी, अब उसे पढ़ने की भी इच्छा नहीं होती। कुछ पता नहीं चलता कि कहाँ क्या हो रहा है।"

अमर ने दिलासा देते हुए कहा, "इतने बड़े देश में इमरजेंसी हमेशा तो रह नहीं सकती। कभी न कभी तो हटेगी ही।"

पंडित दयाराम धीरे-धीरे अपने घर की तरफ चल दिए। अमर सोचने लगा, "इस परिवार ने भी जिंदगी के कितने उतार चढ़ाव देखे हैं। अंग्रेजों के ज़माने में इनके ठाठ थे। एक बड़े जमींदार की हैसियत थी पं० दयाराम के पिता की। अब जमीनें या तो बिक गई हैं या परिवार के दर्जनों सदस्यों में बँट गई हैं। नौकरी-चाकरी करना इनके खानदान में अनहोनी बात मानी जाती थी। अब क्लर्क और चपरासी तक की नौकरियों की तलाश में इस खानदान के जवान बेटे भटकते हैं। यही घर क्यों? अमर गदियारी गाँव के और भी कितने ही घरों की हालत जानता था। उनके लड़के शहरों में छोटी-मोटी नौकरी करके घर का खर्च जैसे तैसे चलाते हैं। घरवाले महीना भर बनिये की दुकान से उधार लेते जाते हैं। महीने के बाद मनीआर्डर आता है तो बनिये का पिछला उधार चुकाकर अगला शुरू हो जाता है। बनिया गाँव में आने वाले हर मनीआर्डर की खोजबीन रखता है और डाकघर के बाबू से मिलकर मनीआर्डर घर पहुँचने से पहले ही अपना पैसा वसूल कर लेता है। ये सब ऊंची जातों के घर थे जिनके पास किसी समय इतनी ज़मीन थी कि बटाई पर होने के बावजूद उससे साल भर का खर्च आसानी से निकल आता था। अब ये ज़मीनें उत्तराधिकारियों में बँट गई हैं और इनकी आमदनी नहीं के बराबर रह गई है। जवान लड़के और मरद बाहर शहरों में काम करते हैं या नौकरी की तलाश में भटकते हैं। घर में सिर्फ औरतें और बच्चे हैं। खुद अपनी जमीन बोने के न इनके पास साधन हैं, न सामर्थ्य। बटाईदारों से कभी कुछ अनाज मिल जाता है, कभी कुछ भी नहीं मिलता। जिन घरों के लड़के नौकरियों पर लगे हैं, वे अपेक्षाकृत सुखी हैं। बनिया उन्हें बेहिचक उधार देता है। लेकिन अब धीरे-धीरे इन घरों की हालत भी बिगड़ती जा रही है। शहरों में काम करने वाले युवक अब अपने बाल-बच्चों को लेकर शहर में ही रहने लगे हैं। घर के दूसरे लोगों के लिए रुपये भेजना अब उनके लिए हर महीने संभव नहीं होता। किंतु बनिये का उधार उन्हें मिलता रहता है। इस उम्मीद पर कि गर्मी की छुट्टियों में जब नौकर घर आएँगे तो उसका हिसाब चुकता हो जाएगा।"

किसी समय इस गाँव में एक दर्जन के करीब दुकानें थीं। दुकानों में लूण-तंबाकू और किरयाने से लेकर शादी-ब्याह के कपड़े-लत्ते और दूसरा सामान तक मिल जाता था। धार और चंगर के गाँवों के लोग इसे शहर कहते थे। लेकिन अब सिर्फ एक दुकान यहाँ चलती है। दुकानें तो दो हैं, लेकिन चलती एक ही है। विद्याधर की दुकान सब से पुरानी है और कुछ साल पहले उसका एकछत्र साम्राज्य था। लेकिन उधार की वसूली के झंझट से तंग आकर उसने उधार देना बंद कर दिया। ऐसे मौके पर राजू ने अपनी दुकान खोली। राजू नई पीढ़ी का युवक था। आठवीं पास करने के बाद वह दिल्ली और दूसरे शहरों में नौकरी के लिए तीन-चार साल खाक छान आया था। जब कहीं पैर नहीं जमे तो गाँव में आकर जनरल स्टोर खोल दिया। उसे पता था कि गाँव की अर्थव्यवस्था मनीआर्डरों पर निर्भर है। शहरों में काम करने वालों की तरफ जो पैसा होगा, वह कभी न कभी वसूल हो ही जाएगा। उसने खुलकर उधार देने की नीति अपनाई। कुछ ही दिनों में राजू की दुकान में सुबह से शाम तक भीड़ जमने लगी। छुट्टी से आने वाले नौकरों के लिए उसने अपनी दुकान के बरामदे में एक बैठक भी बना रखी थी, जहाँ दिन भर ताश जमती

थी या गप्पबाजी होती। नीति चतुर राजू आड़े वक्त पर लोगों की मदद करता था और डाकबाबू से दोस्ती करके इस बात का पूरा पता रखता था कि कब किस का मनीआर्डर आया।

गाँव का कोई घर ऐसा नहीं है जो राजू का कर्ज़दार न हो। पंडित दयाराम भी जिसकी कभी इसी गाँव में छः दुकानें चलती थीं, अब राजू की दुकान से उधार लेता है। छः दुकानों में पाँच के तो अब खँडहर मात्र बचे हैं। एक दुकान को किसी तरह बाँस की टेकों के सहारे बचा रखा गया है। दो साल पहले दयाराम के सब से छोटे भाई चंडीदास के बेटे ने यहाँ किरयाने की दुकान खोली थी लेकिन वह दयाराम के संयुक्त परिवार की जरूरतों को भी पूरा नहीं कर पाई और घाटे की स्थिति में उसे बन्द करना पड़ा।

पंडित दयाराम को अब बाप-दादाओं से मिला हुआ लम्बा-चौड़ा चौघरा काटने को दौड़ता है। हवेली की शक्ल में बने इस चौघरे की परौल ही इतनी बड़ी थी कि उसमें पूरी बरात ठहर सकती थी। अब इस चौघरे का एक-एक कमरा भाइयों और उनके बच्चों में बँट गया है। पंडित दयाराम अब घर बहुत कम जाते है। क्योंकि घर उन्हें साँय-साँय करता लगता है। दिन-भर, बची हुई दुकान के उस अर्द्ध-खंडहर में दरी मसनद लगाकर पड़े रहते हैं। सामने उनकी कोठी है जो सरकारी अफसरों और बड़े मेहमानों के लिए उन्होंने कभी बनवाई थी। इसी कोठी में अब पंचायत बैठती है और डाकघर का काम भी यही देती है। उनका इकलौता लड़का सुधीर डाकघर का काम देखता है। बड़ी भागदौड़ के बाद उसे यह घर-बैठी नौकरी मिली थी। इकलौता लड़का होने के कारण वह माता-पिता को गाँव में बेसहारा छोड़कर बाहर नहीं जा सकता था। कोठी के चारों ओर के अहाते में उसने प्रयोग के तौर पर आड़ू, खुमानी, नाशपाती और सेब के पेड़ लगाए थे जो अब आमदनी भी देने लगे हैं। तरह तरह के फूल उगाने का उसे शौक है और वह उसमें मस्त रहता है। वैभव के क्षीण हो जाने का उसे कोई आभास नहीं होता। ज़मीनों के चले जाने का उसे कोई अफसोस नहीं। जब समय मिलता है तो चित्र बनाने का शौक भी पूरा कर लेता है। दुनिया जिस गति से बदल रही थी उस गति से सुधीर भी अपने को बदल रहा था। उसके मन में तनाव यदि कोई था, तो केवल पिता को लेकर जो परिवर्तन की ताब न ला सकने के कारण भीतर ही भीतर घुलते-गलते जा रहे थे।

लेकिन भीतर ही भीतर घुलने-गलने का यह सिलसिला व्यापक पैमाने पर चल रहा था यद्यपि वह अदृश्य था। बाहर से अधिकांश घरों की टीम-टाम बनी हुई थी, भीतर से सब की दीवारें खोखली हो गई थीं। पंडित दयाराम गाँव के प्रतीक थे। उन्हें देखकर गाँव के जीवन के भीतरी खोखलेपन का एहसास होता था। इनके अलावा कुछ और पात्र भी थे जो गाँव की कहानी बयान करते थे लेकिन वह कहानी टुकड़ों में थी, कुछ टोलों की थी।

नगरकोट ब्राह्मणों के टोले में पंडित भगीरथ की पंडिताइन दुर्गू की मौसी के रूप में सारे गाँव में जानी जाती थी। पंडित भगीरथ इलाके के माने हुए विद्वान् थे। काशी में जाकर वे षट्शास्त्री बनकर आये थे तो लोगों ने उन्हें 'खटशास्त्री' कहना शुरू कर दिया था। गृहस्थी रहते हुए वे संन्यासी से बन गए थे। दिन भर साधु-महात्माओं की संगत में रहते, सुलफे के दम में संसार के सारे झंझटों को भूल जाते। उन्हें न पत्नी की चिन्ता होती थी, न बाल-बच्चों का

ध्यान रहता था। एक बार पत्नी के मरणासन्न हो जाने पर उन्हें डीडू वैद को बुलाने भेजा गया था, तो वे महाकाल के मंदिर में एक महात्मा जी के साथ ज्ञान-चर्चा में रात भर बैठे रहे। दूसरे दिन उन्हें ढूँढ़कर घर लाया गया। शादी-ब्याह पढ़ने के लिए वे कभी नहीं जाते थे। घर आकर कोई जन्म-पत्री बनवा जाता तो उसकी दक्षिणा ले लेते। इसके अतिरिक्त आय का कोई साधन नहीं था। मंदिर की ज़मीन से जो दाने मिलते थे, उनसे गुज़ारा चलता था। उनके दो लड़के थे। बड़ा लड़का तो किसी तरह अपनी मेहनत से शास्त्री पास करके अब अध्यापक बन गया था लेकिन छोटे लड़के दुर्गू को माँ ने बड़ी मुश्किल से पाला था और वह हमेशा उसी के पास रहता था। पंडित भगीरथ की मृत्यु के बाद दुर्गू की माँ को (जिसे दुर्गू मौसी कहा करता था), बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। बड़ा लड़का पढ़ाई के लिए बाहर गया था। छोटा बहुत छोटा था। लेकिन गाँव के सब घरों में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। व्रत-पर्वों के मामले में उसी से सब औरतें सलाह-मशविरा करती थीं। शादी-ब्याह के मौकों पर उसकी खास पूछ होती थी क्योंकि वह शास्त्रीय लोक-गीतों और भजनों का चलता-फिरता संग्रहालय मानी जाती थी। गाँव के अनेक घरों से नेज और नसराँ के रूप में कुछ आ जाता था, उससे गुज़ारा चलता था। बड़ा लड़का शास्त्री पास करके आया तो उसकी नौकरी लग गई। ब्याह करके वह अलग रहने लगा। छोटे लड़के दुर्गू को वह पढ़ा-लिखा नहीं सकी लेकिन उसकी शादी भी उसने धूमधाम से की। उसके बाद दुर्गू भी भोपाल में जाकर पुलिस में भरती हो गया और अपनी पत्नी और बच्चों को भी वहाँ ले गया। कुछ साल बाद दुर्गू भोपाल में अचानक लापता हो गया। बहुत खोजबीन करने पर भी उसका कहीं पता नहीं लगा तो उसे मरा हुआ मानकर उसकी पत्नी दो बच्चों के साथ घर लौट आई। दुर्गू की मौसी के लिए यह आघात बहुत बड़ा था। दो बच्चों और विधवा बहू की जरूरतें अब नेज-नसराँ से नहीं पूरी हो सकती थीं। वह पागल हो गई। लोगों ने कहा, उसने काली का उलटा जाप किया है। वह ऊल-जलूल बकती गाँव में भटकने लगी और एक दिन दुर्गू के लौटने की हसरत लिये इस संसार से चल बसी।

नगरकोटों का टोला अब उजड़ा-उजड़ा सा लगता है। पंडित भगीरथ के चचेरे भाई दयानन्द के खानदान में अब अमर का साथी देवू है जो सेना में बड़ा अफसर बन गया है और कभी-कभार गाँव आता है। दूसरे घर में सनू पंडित के दोनों लड़के मंडी में जाकर बस गए हैं और उन्होंने वहाँ बड़ा अच्छा कारोबार खड़ा कर रखा है। तीसरा घर भी खाली पड़ा है क्योंकि पंडित शुकदेव हेडमास्टर बनने के बाद कहीं और बस गए हैं और उनके लड़के अच्छी नौकरियों पर लगकर शहरों में जा बसे हैं। चौथा घर कृष्ण का था, वह भी कुल्लू जा बसा है। एक और घर के दो लड़कों में छोटे लड़के को ससुराल की तरफ से काफी जमीन-जायदाद मिल गई थी और वहीं घर-बनाकर रहने लगा है। बड़े लड़के ने 'बदंगी' देशी दवा-दारू का काम सीख लिया है और उसके सहारे अपने दोनों लड़कों को पढ़ा-लिखाकर इस लायक बना दिया कि वे शहरों में नौकरी करके हर महीने कुछ रुपये भेजते रहें। नगरकोटों के इन सब घरों का मुख्य धंधा यजमानी हुआ करता था। शादी-ब्याह पढ़ना, ज्योतिष का काम आदि-आदि लेकिन अब इस टोले में एक भी व्यक्ति यजमानी करने वाला नहीं है। सब या तो शहरों में नौकरी पर लगे हैं या

घर बेकार बैठे हैं।

नगरकोटों के टोले के साथ ही नागों का टोला है। अब यह टोला भी उजाड़-सा है मोती नाग का नाम किसी समय गाँव के रईसों में गिना जाता था। लेकिन मोती ने जुए में सारी जायदाद लुटा दी तो उसकी पत्नी ने, जिसे गाँव में ताई के नाम से जाना जाता था, बड़ी मुसीबत के दिन देखे। तीन बेटों को जैसे-तैसे उसने पाला। फिर बड़े बेटे ने कुल्लू आकर दुकान खोली और धीरे-धीरे अपना कारोबार बढ़ाकर पुरानी प्रतिष्ठा प्राप्त की। उसने अपने दोनों छोटे भाइयों के लिए भी वहाँ कारोबार खोल दिए। अब सब लोग कुल्लू में ही जा बसे हैं। उस घर की देखभाल उनकी छोटी बहन पिउंगली, जो गाँव में ही अवस्थियों के घर ब्याही थी, तब तक करती रही, जब तक जीती रही। पिउंगली ने अपनी माँ से ज्यादा बुरे दिन देखे। जिस घर में वह ब्याही गई थी, वह पहले से ही गरीब था। पति की मृत्यु के बाद उसने दो लड़कों को पालने के लिए लोगों के खेतों और घरों में काम किया। बचपन से ही काठे जिस्म की थी। ऊँचे से ऊँचे पेड़ पर चढ़ना, और खतरनाक छम्ब से घास काटकर लाना उसने मायके में सीख लिया था। अपने घर के पास ही थोड़ी-सी जमीन को वह फावड़े से भी तोड़ लेती थी। उसने मरते दम तक किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया। गाँव के कुछ घरों से नेज-नसरा आ सकता था लेकिन पिउंगली को यह सब पसंद नहीं था। अपने दोनों लड़कों को उसने दसवीं तक पढ़ाया। जब उन्हें नौकरी नहीं मिली, तो भी उसने हिम्मत नहीं हारी। फिर वह बीमार पड़ गई। लोगों ने उसे पहली बार बीमार पड़ते देखा। पहली बार की बीमारी उसकी आखिरी बीमारी बन गई और वह लड़कों की नौकरी का स्वप्न आँखों में लिये संसार से विदा हो गई। अब पिउंगली के दोनों बेटों के ब्याह हो गए हैं। एक भाई बम्बई में, एक दिल्ली में नौकरी पर लग गया है। बाल बच्चे गाँव में रहते हैं। उनके खर्च के लिए हर महीने मनीआर्डर आ जाता है। न भी आए तो राजू से उधार तो मिल जाता है। लेकिन पिउंगली की किस्मत में यह सब कहाँ था!

अब नागों के टोले में लोग ताई को भूल चुके हैं लेकिन पिउंगली अवस्थियों के टोले की याद बनकर रह गई है। नागों के टोले में अब सिर्फ जगपाल की माँ इज्जो की आत्मा बोलती है। उसके दो बेटों जगपाल और तुलसी में से अब तुलसी का बूटा फल-फूल रहा है। उसके तीनों लड़के टैक्सी ड्राइवर हो गए हैं और घर अच्छी खाती-पीती स्थिति में हैं। जगपाल की शादी मुश्किल से बड़ी उम्र में जाकर हुई थी। शादी हुई तो बच्चे नहीं हुए। वह बूटा सूख गया और उसके साथ ही इज्जो की आत्मा भी मुर्झा गई। लेकिन इज्जो को कोई भूल नहीं सकता। गाँव के छोटे-बड़े किसी पर भी कोई मुसीबत आती तो इज्जो सब से पहले उस घर में पहुँचती। औरतें ऊँची जातों की हों या छोटी जातों की, घूँघट आगे सरकाए बिना उसके सामने से नहीं गुज़र सकती थीं। दो भैंसें बराबर उसके घर बँधी रहती थीं और सारे गाँव को दूध, दही और छाछ मिलता था। उसके दरवाजे पर जाकर कोई खाली हाथ नहीं लौटता था।

ब्राह्मणों के टोलों में किसी वक्त आचार्यों के टोले के भी बड़े ठाठ थे। चार भाई और उनके बाल-बच्चे सब एक ही परिवार में रहते थे। बड़े भाई शंकर का दबदबा रहता था। वे पूजा-पाठ में मस्त रहते और घर की तमाम आमदनी-खर्च का हिसाब रखते। घर की सब

बहुओं के लिए और सब बच्चों के लिए एक जैसा कपड़ा आता, एक रसोई में खाना बनता। तीनों भाई रसिक गुणी थे। शास्त्रीय संगीत में दूर-दूर की महफिलों में जाते थे। शिवदयाल घुँघरुओं वाले घोड़े पर बैठकर गाँव के बाहर निकलते थे और इनका इतना रौब था कि गाँव के बच्चे घुँघरू की आवाज़ सुनते ही खेल छोड़कर अपने-अपने घरों को भाग जाते थे। बरतेसरी से दान का सामान घोड़ों पर लदकर आता था। बड़े भाई शंकर के स्वर्गवास होते ही परिवार कई टुकड़ों में बँट गया। जमीन-जायदाद भी बँट गई। बटाईदारी के झगड़ों से बचने के लिए जमीनों के छोटे-छोटे टुकड़े बिक गए और अब उस टोले के ग्यारह परिवार पूरी तरह नौकरियों पर निर्भर हो गए थे। केवल एक परिवार आचार्यों के खानदानी धंधे मरणोपरांत दान-दक्षिणा पर गुजर करता है। लेकिन इस परिवार को परिवार कहना ठीक नहीं होगा। चार भाइयों में सब से छोटा भाई बीरबल और उसकी पत्नी मँझली चाची निस्संतान रहे। दूर-दूर के भांजे-भतीजों से ही उनका परिवार बनता है। यजमानी के बलबूते उस घर में दर्जनों आदमी पलते रहे हैं। लेकिन मँझली चाची अब यह देख-देख कर घुली जा रही है कि उसके पाले हुए भांजे-भतीजों में एक भी यजमानी का काम नहीं करना चाहता है।

ब्राह्मण टोलों की तरह राजपूतों और मियों के टोलों की भी लगभग यही कहानी थी। इस टोले के अब लगभग तीस परिवार हैं। मियाँ यशवंत चंद को छोड़कर, जो अपने पिता के इकलौते लड़के थे और उनके पिता भी अपने पिता के इकलौते लड़के थे। सभी की ज़मीन-जायदाद कई टुकड़ों में बँटकर या तो बिक गई है या काश्तकारों के मौरूसी कब्जे में आ गई है। इन परिवारों के युवक भी या तो पुलिस-फौज में भरती होते हैं या शहरों में कोई और नौकरी करते हैं। निक्कू मियाँ इस टोले के अपवाद थे जो सबसे पहले अपनी कुल-परम्परा को छोड़कर अपने हाथ से खेती-बाड़ी करने लगे थे। यद्यपि अब निक्कू मियाँ नहीं रहे हैं और उनका एक लड़का भी जंगलात में नौकर हो गया है लेकिन घर के लोग अपनी ज़मीन को खुद बो-जोतकर साल भर का अनाज आराम से पैदा कर लेते हैं। बाकी के परिवार मियाँ यशवंतचंद के परिवार को छोड़कर पूरी तरह नौकरियों पर निर्भर हैं।

मियों का टोला गाँव की टेकड़ी पर बसा हुआ है। उनका सम्बन्ध चूँकि राजघरानों से था, इसलिए गाँव की सब से ऊंची जगह ही उन्होंने अपने आवास के लिए चुनी थी। उस टेकड़ी के पश्चिम की तरफ गहरी कच्ची छम्ब बन गई है क्योंकि हर साल बरसात के दिनों में टेकड़ी का कुछ हिस्सा खिसककर नीचे लुढ़क जाता है। इससे अब गहरी छम्ब कुछ घरों के आँगन तक सिमट आई है। धीरे-धीरे अब मियों के परिवार ऊँची टेकड़ी से नीचे उतरकर समतल जगह पर मकान बनाने लगे हैं और इस प्रकार उन्हें शायद समाज के समतल स्तर का भी बोध होने लगा है।

हरिजन टोला भी परिवारों के बढ़ने-टूटने से अब काफी बड़ा हो गया है। पहले के लगभग तीस परिवार अब बढ़कर पचास के करीब हो गए हैं। गाँव के बाहर निचले इलाके में उनके मकान अब पहले की तरह झोंपड़ी जैसे नहीं लगते। अब कुछ घरों को छोड़कर सब की छतें सलेट की पड़ गई हैं। मकानों का आकार भी कुछ बढ़ गया है और आँगन-गोहर भी उतने गन्दे

नहीं दीखते। लगभग हर परिवार के पास टोपे-डेढ़ टोपे की जमीन है। काश्तकारी के मौरूसी अधिकारों के कारण वे अब उस जमीन के मालिक से ही बन गए हैं। परिवार का कम से कम एक लड़का फौज या पुलिस में नौकरी करता है। दसवीं पास लड़कों को तो बाबू की नौकरी भी आसानी से मिल जाती है। घर के खर्चों में अभी कोई खास फर्क नहीं पड़ा है, क्योंकि रहन-सहन का तरीका वही पुराना है। नई पीढ़ी के लड़के कुछ बदलना चाहते हैं लेकिन पुरानी पीढ़ी के लोग अपने संस्कारों से बंधे हुए हैं। सारा परिवार मिलकर खेत में काम करता है। बाहर से नकद आमदनी का स्रोत भी बना रहता है। अब गाँव सभा की जमीनें हरिजनों में बँटने के बाद उनकी स्थिति कुछ और अच्छी हो गई है। यद्यपि गाँव सभा से मिली जमीन बहुत कम है, पर वह उनकी अपनी है और उसे वे हर कीमत पर बनाए रखना चाहते हैं। अपनी ज़मीन के प्रबल मोह ने ही कइयों को नसबंदी का शिकार बनने के लिए मजबूर किया था। जो लोग नसबंदी से बचने के लिए घरों से भागकर जंगलों में छिप गए थे उनकी जमीनों की अभी तक रजिस्ट्री नहीं हुई है।

८

बरसात के बाद कच्चे मकानों की दीवारें जब सूखने लगती हैं, तो तेज हवा का झोंका भी उनके लिए खतरा बन जाता है। गदियारी गाँव के सभी मकान कच्चे ही हैं। धूप से पकी ईंटों की उम्र कोई कम नहीं होती। ऐसे मकान भी गाँव में हैं जिन्हें सौ साल से पुराना कहा जा सकता है। भट्टे में पकी ईंटों की न किसी ने शुरूआत की और न इसकी जरूरत पड़ी। गाँव से तीन मील दूर सतेहड़ में कुछ साल पहले ईंटों का भट्टा लगा था, लेकिन वह एक साल में ही बंद हो गया। नींव के लिए खड्डों-नदियों से लाए गए पत्थर और दीवारों के लिए धूप से पकी ईंटें अमीर गरीब सब के घरों में लगी थीं। दो ओर से ढलवाँ छतें बरसात के दिनों में आधी दीवारों को बौछारों से बचा लेती थीं। लेकिन नीचे के हिस्से की दीवारें भीगती रहती थीं। इसीलिए भादों महीने के खत्म होते याने सैर के त्योहार के बाद की आँधी हमेशा भयभीत करने वाली होती थी।

उस रात की आँधी कुछ अनहोनी थी। लक्ष्मीदेवी हमेशा की तरह नाच वाले कमरे 'उवान' में सोई थी। अमर और रमा ऊपर के कमरे में चले गए थे। मकान की खिड़कियाँ-दरवाजे चारों तरफ से बंद थे, लेकिन लक्ष्मीदेवी आँधी-तूफान के प्रत्येक झोंके में थरथराती दीवारों की कल्पना कर सकती थी। आँगन के पास बाँसों के झुरमुट में नालों के टकराने और चीखने की आवाज उसे सोने नहीं दे रही थी। कमरे की बत्ती जलाकर वह बाहर उठनेवाली उन भयानक आवाजों को धड़कते हुए दिल से सुनती रही। एक बार तो ऐसी भयानक आवाज सुनाई दी जैसे धरती फट गई हो या पास ही कोई पहाड़ टूटकर गिरा हो। उसने दरवाजा खोलकर बाहर भी झाँका। अँधेरे के बीच फटकर निकलती बिजली की रोशनी में उसने देखा जैसे कोई महादैत्य ऊँचे-ऊँचे पेड़ों को झाड़ू की तरह इस्तेमाल करके सारे संसार के कूड़ा-कर्कट को बुहारने में लगा है। हवा का तेज झोंका जब छत से टकराता तो उसे लगता कि सलेटों की

छत एकबारगी उड़कर दूर जा गिरेगी। उसकी इच्छा हुई कि रमा और अमर को आवाज देकर जगाए। उसे लगा यह घर, उसके स्वर्गीय पति के द्वारा बनवाया गया पचास साल पुराना घर किसी भी क्षण उड़ जाएगा।

लेकिन वह आँधी-तूफान ज्यादा देर नहीं रहा। पन्द्रह-बीस मिनट के बाद ही थम गया। उसके बाद ओलों की एक बौछार हुई। गरज के साथ ओले बरसे और ऐसा लगा कि छत का एक भी सलेट साबुत नहीं बचेगा। फिर ओले भी रुक गए और आसमान साफ हो गया। लक्ष्मीदेवी दरवाजा खोल कर बाहर आई आँगन में खड़ी होकर अपने चारों ओर का जायजा लेने लगी। घर के चारों ओर परिक्रमा करके उसने देखा कि दीवार कहीं से गिरी तो नहीं है। जब वह आश्वस्त हो चुकी कि घर को कहीं कोई क्षति नहीं हुई है तो उसने चैन की साँस ली। फिर अन्दर आकर बिस्तर पर लेट गई। आँधी-तूफान की याद से उसका दिल अब भी काँप रहा था। बत्ती बुझाने का उसमें साहस नहीं हुआ। फिर यह सोचकर कि घर के और लोग जग जाएँगे उसने बत्ती बुझा दी। उसने सोने की भरसक कोशिश की लेकिन नींद नहीं आई। जाने उसका मन कहाँ-कहाँ भटकने लगा।

उसे लगा कोई दरवाजा खटखटा रहा है। कान लगाकर सुनने लगी। सचमुच कोई दरवाजा खटखटा रहा था। कोई आवाज भी दे रहा था, "माँ जी, माँजी!" यह कौन है इस समय? पास-पड़ोस की बहुएँ उसे माँजी कहकर ही पुकारती थीं। जब तक उसने बत्ती जलाई और दरवाजा खोलने के लिए दरवाजे पर पहुँची उसने आवाज पहचान ली थी। यह नीलू की आवाज थी। ऊपर के कमरे से रमा और अमर भी नीचे आ गए थे। दरवाजा खुला तो नीलू घबराई हुई सामने खड़ी थी।

"क्या बात है नीलू?" लक्ष्मीदेवी ने पूछा।

"गंगा जल चाहिए दो बूँद।"

"क्यों? क्या हुआ?" अमर घबराकर बोला।

"बड़े पंडित जी की तबीयत बहुत खराब हो गई है।" नीलू सरदी से जैसे काँप रही थी। अमर और रमा भौंचक से खड़े थे। लक्ष्मीदेवी झट अलमारी खोल कर गंगाजल की बोतल उठा लाई।

"हुआ क्या? शाम को तो अच्छे भले थे। मन्दिर से लौटते हुए मुझे रास्ते में मिले थे।"

"ठीक ही थे," नीलू ने कहा, "मैं ज्यादा नहीं जानती। कुछ देर पहले उनके घर से रोने की आवाज सुनी तो मैं दौड़ कर गई। लगता है, उनकी जान मंदिर वाले पीपल के पेड़ पर अटकी थी। आँधी में वह पीपल का पेड़ जड़ से उखड़ गया। उसके उखड़ने से ऐसी अजीब आवाज हुई कि मेरा भी रोम-रोम काँप उठा। पंडित जी आज बहुत दिनों बाद घर सोने चले गए थे। रोज तो कोठी में ही सोते थे। जाने क्यों घर चले गए? आँधी चली तो वे घबरा कर बिस्तर पर उठ बैठे। बत्ती जला ली और हाँफने लगे। फिर पेड़ के चीखने की आवाज सुनकर दरवाजा खोल बाहर आ गए। मंदिर के साथ लगा वह बूढ़ा पीपल औंधा होकर पड़ा था। देखकर बुरी तरह काँपने लगे। घर के लोगों ने पकड़ कर उन्हें अन्दर लिटा दिया। तब से उनकी जबान बन्द है।

इशारे से बार-बार गंगाजल मांग रहे हैं।"

लक्ष्मीदेवी ने झटपट गाढ़े खद्दर की चादर लपेटी और हाथ में गंगाजल की बोतल लेकर नीलू के साथ जाने लगी। अमर ने चप्पल ढूँढ़ते हुए कहा, "ठहरो, मैं भी चलता हूँ।" रमा बोली, "नीलू, तुम रुक जाओ! मुझे अकेले में डर लगता है।" अमर ने नीलू को वहीं रुकने के लिए कहा और फिर माँ का हाथ पकड़ कर कमरे से बाहर हो गया।

जब तक लक्ष्मीदेवी और अमर पंडित दयाराम के घर पहुँचे, पास-पड़ोस के घरों के कई लोग रोना-धोना सुन कर जमा हो गए थे। चौघरे की परोल में सात-आठ मरद खड़े बातें कर रहे थे। लक्ष्मीदेवी को देखते ही मँझली चाची दौड़ कर पास आ गई, "बहन जल्दी चलो। पँखेरू उड़ने ही वाला है।"

मँझली चाची को वहाँ देखकर लक्ष्मीदेवी समझ गई थी कि मामला बहुत दूर पहुँच गया है। अब उस गाँव में ही नहीं आस-पास के कई गाँवों में गऊदान करानेवाली मँझली चाची ही थी। उसके पति बीरबल को दमे के रोग ने अपाहिज-सा बना दिया था, इसलिए यजमानी का काम उसे ही संभालना पड़ता था। पंडित दयाराम के घर के साथ लगा हुआ घर होने के कारण मँझली चाची रोने-धोने की आवाज सुनते ही जाग गई थी। ऐसे मौके पर बिना बुलाए जाने से लोग बुरा मानते थे, यही सोचकर वह कुछ देर तक घर पर ही रुकी रही। फिर जिज्ञासावश उस ओर चल दी। सुधीर रास्ते में ही मिल गया। शायद वह उसे ही बुलाने जा रहा था। उसके कमरे में पहुँचने से पहले ही एक बछिया को कमरे में पहुँचा दिया गया था। धान और गेहूँ से भरे दो बड़े टोकरे भी कमरे में तैयार थे। मँझली चाची ने आते ही अच्छत-फूल पंडित दयाराम के हाथ से छुआ कर बछिया पर और अनाज के टोकरों पर छिड़क दिए। गंगाजल घर पर नहीं मिला, इसलिए नीलू को अमर के घर दौड़ाया गया।

लक्ष्मीदेवी और अमर के कमरे में प्रवेश करते ही पंडित दयाराम ने पूरी ताकत लगाकर मुँह खोलने की कोशिश की। लक्ष्मीदेवी ने झटपट बोतल से एक कटोरी में दस-बारह बूँद गंगाजल की डालीं और कटोरी सुधीर के हाथ में दे दी। सुधीर ने चम्मच से गंगाजल उनके मुँह में डाला तो उनके चेहरे पर एक संतोष की झलक दिखाई दी। कुछ देर आँखें मूँदने के बाद उन्होंने अमर की तरफ देखा। अमर उनके पास आकर खड़ा हो गया। होंठों को 'ई' के उच्चारण की कोशिश में उन्होंने लंबा खींचा। अमर के मुँह से निकला, "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।" और इसके साथ ही एक अजीब शांति से उनकी आँखें मुँद गईं।

मरद, औरतें और बच्चे पंडित दयाराम के परिवार के ही लगभग चालीस व्यक्ति वहाँ मौजूद थे। एक अविभक्त परिवार को बनाए रखने की मानसिक लड़ाई में हारे हुए पंडित दयाराम ने अंतिम क्षणों में अपने सारे परिवार को एक जगह देखकर मन में जाने क्या सोचा होगा।

सुबह होते ही आँधी से उखड़े पीपल के पेड़ को काटा-चीरा गया। गाँव के सभी बुजुर्गों की राय थी कि इस पेड़ को पंडित दयाराम के साथ ही जला दिया जाए। गाँव के प्रत्येक घर के मरदों ने पीपल का एक-एक लट्ठा उठाकर महाकाल के श्मशान में पहुँचा दिया। दूसरे गाँवों के भी

बहुत से लोग श्मशान में इकट्ठे हुए। जलती चिता से कुछ हटकर दो-दो, चार-चार की टुकड़ियों में बैठे लोगों ने संसार की असारता की चर्चा की और इस बात पर सहमति प्रकट की कि बूढ़े पीपल के पेड़ और पंडित दयाराम में कहीं कुछ लगाव जरूर था।

अमर सुधीर के पास बैठा उसे सांत्वना देने का प्रयास कर रहा था। उसकी नजरें जलती चिता पर थीं और मन कहीं दूर, बहुत पीछे जाने की कोशिश कर रहा था। सुधीर की तरफ देखते हुए वह बोला, "कहते हैं जिंदगी क्या है, इस बात का बोध हमें श्मशान पर आकर ही होता है। लेकिन मुझे इसमें शक है। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो जिंदगी का अर्थ जानने की कोशिश करते हैं और फिर उस अर्थ के अनुसार जीने की कोशिश करते हैं। श्मशान पर आकर हमें जिस चीज का बोध होता है वह यह नहीं है कि जिंदगी क्या है बल्कि यह है कि मौत क्या है। मुझे लगता है कि जिंदगी संबंधों के जुड़ने-टूटने, फिर जुड़ने या बदलने का नाम है। आदमी जब इस संसार में आता है तो अपने आस-पास की चीजों, व्यक्तियों और परिस्थितियों से संबंध जोड़ता है ये संबंध टूटते हैं, जुड़ते हैं, बदलते हैं और उनके साथ-साथ आदमी भी टूटता है, जुड़ता है, बदलता है। लेकिन वह ज़मीन से तब तक उखड़ता नहीं जब तक बदलते संबंधों के अनुसार बदलने की क्षमता उसमें रहती है। जिस दिन उसकी यह क्षमता समाप्त हो जाती है उस दिन आँधी का एक झोंका ही उसे जड़ से उखाड़ देने के लिए काफी होता है।" अभी कुछ दिन पहले मुझे मालीबाग की चढ़ाई पर मिले थे तो पूछने लगे, 'नेपल्ज क्या बहुत खूबसूरत जगह है?"

मैंने कहा, "कौन जाने होगी। तो मुस्करा दिए बोले, 'मुहावरा चल पड़ा है : सी दि नेपल्ज़ बिफोर यू डाई : कौन जाए उसे देखने?" मुझे एकाएक हँसी आ गई थी। मुझ से जब भी मिलते इधर-उधर की बातें करते-करते बीच में एक-दो अंग्रेजी के वाक्य भी बोल दिया करते थे। यह वाक्य उनकी जबान से मैंने कई बार सुना है।

सुधीर बोला, "उन्हें सब से बड़ा धक्का लगा था चाचा जी की मृत्यु पर। जब तक चाचा जी जिंदा रहे परिवार एक रहा। हालांकि उस वक्त भी नाम मात्र को ही एक था। चाचा जी के दोनों कमाऊ लड़के अपनी कमाई अपने पास ही रखते थे। छोटे चाचा ने तो चूल्हा-चौका भी अलग कर लिया था। उनके साहबजादे पिताजी को तू कहकर पुकारने लग गए थे। लेकिन जब तक मँझले चाचा रहे घर की आबरू ढकी रही। उनके गुजरते ही भांडे-ठीकर बँट गए। पिताजी ने तीन दिन तक कुछ नहीं खाया, फिर बोले, 'अब मैं यहीं कोठी पर सोया करूँगा।' कल शाम जाने उन्हें क्या सूझा जो घर चले गए सोने।"

"इस गाँव के ही नहीं, इस समाज के अनेक उतार-चढ़ावों के वे साक्षी रहे।" अमर ने कहना शुरू किया, "राजसी ठाट-बाट की जिंदगी से उतर कर बहुत नीचे एक आम आदमी की जिंदगी तक उनकी यात्रा रही। हजारों लोगों को रोजी-रोटी देने का रोल अदा करते-करते वे अपनी संतान के लिए मामूली-सी नौकरी की सिफारिश ढूँढ़ने तक पहुँचे। इन तमाम परिवर्तनों को उन्होंने एक योगी-की-सी निर्लिप्तता के साथ सहन किया। मैं तो यही समझता था कि उनके लिए कोई भी परिवर्तन, कोई भी आँधी बर्दाश्त से बाहर नहीं है।"

सुधीर कुछ देर तक सोचता रहा फिर बोला, "लेकिन मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा था। मैं जानता था कि बाहर से निर्लिप्तता का लबादा ओढ़े रहने पर भी वे भीतर से एक-एक टुकड़ा करके टूटते जा रहे थे। परिवर्तन को स्वीकार करने, उसके झटके की ताब ला सकने की उनमें क्षमता नहीं थी। वह क्षमता थी हमारे मझले चाचा में। मुस्कराकर, हँसकर वे हर झोंके को हल्केपन से झेल सकते थे या उसकी उपेक्षा कर सकते थे। इसलिए पिताजी के लिए वे अंधे की लाठी की तरह थे। मँझले चाचा ने हर कदम पर उन्हें डगमगाने से बचाया। जब पुराने हिमाचल का कानून यहाँ लागू हुआ और काश्तकारों को तीन हिस्से और मालिकों को एक हिस्सा अनाज मिलने का कानून चला तो पिताजी दिन-रात परेशान रहने लगे। मँझले चाचा ने समझाया, 'कानून होने से क्या होता है। हमारे साझी अपनी मरजी से हमें पहले की तरह आधा देंगे। नहीं देंगे तो साझी को बेदखल करने के सौ रास्ते खुले हैं।' मझले चाचा की बातों में कुछ ऐसा जादू था कि वे जब तक रहे हमारे साझी हमें आधा भरते रहे। अब भी बहुत से आधा देते हैं, लेकिन कुछ ने आँखें दिखाना शुरू कर दिया है। अब तो जमीन ही कहाँ बची है? बीस टोपा जमीन अब चौदह हिस्सों में बँट चुकी है। मँझले चाचा के होते हुए ही चार हिस्सों में बँट गई थी। फिर लड़कियों के लिए भी हिस्से हुए और अब हिस्सों के हिस्से हो गए। कोई वक्त था जब वे पालकी पर बैठकर साझियों के पास जाते थे और दिनभर का प्रोग्राम बनता था। अब शाम को टहलने जाते थे तो अपनी जमीन का चक्कर लगा आते थे। मँझले चाचा के जीवित रहते हुए ही तीन दुकानें एक-एक करके ढह गईं। पिताजी का स्वप्न था कि छः की छः दुकानों को नये सिरे से बनवाएँगे। मझले चाचा ने समझाया, 'इस गाँव में अब एक ही दुकान का काम बचा है। सब लोग अब बैजनाथ पपरौला के बाज़ार से सामान लाते हैं। दुकानें बनवाने पर नाहक खर्च होगा।' जब कभी वे बहुत दुःखी होते तो मँझले चाचा समझाते, 'भाऊ, हमारे दादा महाजनी करते थे और डटकर सूद लेते थे। इस धंधे में उनकी हैसियत लंबेगाँव के राजा जितनी मानी जाती थी। अंग्रेज़ हाकिम जितनी इज्जत राजा को देते थे, उतनी ही दादा जी को देते थे।

'फिर हमारे पिताजी की पीढ़ी आई। उन्होंने जमींदारी में अपनी धाक जमाई। सूदखोरी का धंधा उन्हें पसंद नहीं था। उन्होंने अपने लिए नया रास्ता चुना। अब हमारे वक्त में न सूदखोरी चल सकती है, न जमींदारी। हमें अपने लिए नया रास्ता ढूँढना चाहिए। हम नहीं ढूँढेंगे तो अगली पीढ़ी ढूँढेगी। दुनिया बदलती है, हमेशा बदलती है। अगर इसके साथ हम भी बदलते रहे तो मन की शांति बनी रहेगी। नहीं बदलेंगे तो सिवाय दुःखी होने के कुछ हासिल नहीं होगा। दुनिया का बदलना तो रुकेगा नहीं और हम अगली पीढ़ी के लिए रास्ता निश्चित करना चाहें तो यह भी नहीं होगा। बच्चे पढ़ाई-लिखाई कर रहे हैं। कल वे क्या करेंगे इसका क्या पता? हमारी तरह इन जमीनों के इर्द-गिर्द चक्कर काट कर जिन्दगी बिता लेंगे, मुझे तो नहीं लगता। आज हर बच्चा बाहर जाने के, शहर में नौकरी या कोई काम-धंधा करने के सपने देखता है। बाहर जाकर जिंदगी ही कुछ और हो जाती है। सड़े तालाब की जिंदगी जैसे हमने जी ली, वैसे अब नई पीढ़ी के लोग नहीं जियेंगे।'

सधीर कहता गया—"मुझे मँझले चाचा की बातें बहुत अच्छी लगती थीं। मेरा खयाल है

कि उन्हें बात कहने की ऐसी कला आती थी कि कोई उनसे गैर रजामंदी जाहिर ही नहीं कर सकता था। पिताजी इसीलिए मँझले चाचा पर पूरी तरह निर्भर थे। उनके स्वर्गवास के बाद ही मुझे लगा था कि पिताजी अब इस दुनिया के साथ ज्यादा दिन नहीं चल पायेंगे।"

बुधीसिंह के साथ श्मशान से लौटते हुए अमर की नजर जब रास्ते के दोनों ओर धान के खेतों पर पड़ी तो उसे अपने धानों की याद आई। रातभर वह पंडित दयाराम के घर पर रहा था और सुबह कुछ देर के लिए अपने घर जा सका था। पिछली रात के आँधी-तूफान ने खेतों का क्या हाल किया होगा, इसका उसे ज़रा भी ज्ञान नहीं था। बुधीसिंह ने बताया कि आधे धान बिलकुल बिछ गए हैं। दो-तीन दिनों में कटाई नहीं हुई तो सड़ जाएँगे। कुछ खेतों में देर से 'ऊर' लगाया गया था। उनके धान तो अभी कच्चे हैं, लेकिन बाकी खेतों की फसल वसूल हो सकती है। कुछ इलाकों में तो बहुत नुकसान हुआ था।

बुधीसिंह दत्तल जाकर अपने भाई से भी मिल आया था। बुधीसिंह ने बताया कि महात्मा जी के प्रवचन सुनने के लिए बड़ी भीड़ जुटने लगी है और सड़क के पास मिठाई, छोले, पकौड़े और चाय की तीन दुकानें भी खुल गई हैं।

रास्ते में बुधीसिंह से विदा लेकर जब वह अपने घर की तरफ चला तो उसका ध्यान माँ की ओर गया। कल रात जब नीलू भाभी ने माँ को पंडित दयाराम की हालत बताई तो उसका चेहरा पीला पड़ गया था। कुछ देर के लिए वह बहुत घबरा गई थी। उससे पहले आँधी के झोंकों से डरी वह सो न सकी थी। उसने काँगड़ा का बड़ा भूचाल देखा था। रात के सन्नाटे में हवा के झोंकों से छत हिलने से भी वह भूचाल की कल्पना कर लेती थी। आँधी-तूफान में इसीलिए उसका दिल काँपने लगता था। लेकिन इसके बावजूद वह पंडित दयाराम की तरह कमजोर नहीं थी। वह परिवर्तन को झेल सकती थी, भले ही उसके लिए उसे अपने मन से संघर्ष करना पड़ता था।

अमर को याद है जब दस साल पहले बाबा ग्योटसिद्ध के थान तक सड़क बनाई जाने लगी, माँ को कई दिनों तक परेशान देखा गया था। उनकी सारी परेशानी उस बड़े पत्थर को लेकर थी जो सड़क के रास्ते पर न जाने कब से एक कमजोर-सी टेकड़ी पर टिक कर खड़ा था। जाने किसने कब उस पत्थर का, उस अधर में रखी हुई चट्टान का नाम 'मसाणटोह्ल' रख दिया था। कहते हैं उसे कोई मसाण (प्रेत) उठा कर लाया था और गाँव के बाहर रख गया था। चट्टान के नीचे की अधिकांश मिट्टी अनेक बरसातों की मार खाते-खाते गल गई थी। फिर भी वह चट्टान एक छोटे-से पत्थर के ऊपर इस तरह टिकी हुई थी जैसे बरसात में टटमोर (छतरीनुमा कुकुरमुत्ता) उग आया हो। स्कूल जाने वाले बच्चे, ढोर चराने वाले ग्वाले या रास्ते से गुजरने वाले दूसरे लोग बारिश से बचने के लिए उस चट्टान के नीचे आ बैठते थे। पच्चीस-तीस लोगों को अपने नीचे शरण देने वाली वह चट्टानी छतरी भी गढ़ियारी गाँव के साथ जुड़ी हुई थी। सड़क बनाने के लिए जिस दिन उसे तोड़ा गया उस दिन माँ ने खाना नहीं खाया। बिना कुछ कहे, बिना कुछ बोले वह खाट में पड़ी रही थी। यही हालत उसकी तब हुई थी जब मिसरू आम के पेड़ को रामदित्तू ने कटवा दिया था। पेड़ रामदित्तू का था, अपनी जरूरत के लिए उसने कटवाया,

लेकिन माँ को इस बात का इतना दु:ख हुआ कि कई दिनों तक वह उस तरफ गई ही नहीं । जाने कितना पुराना था वह पेड़ । इतना फैलाव था उसका कि चार बरातों को उसके नीचे डेरा मिल सकता था । कितनी ही पीढ़ियाँ उसकी डालों से लटक कर और उसके आम खाकर बड़ी हुई थीं । लोग कहते थे उस पर पहाड़िया भूत रहता है क्योंकि उसकी टहनियों के हिलने से पत्थर बरसते थे । शायद ये पत्थर अनेक पीढ़ियों के बच्चों द्वारा फेंके गए पत्थर थे जो घनी टहनियों के बीच फँस जाते थे और पेड़ के हिलने से गिरते रहते थे ।

मिसरू आम को रामदित्तू ने एक-एक डाल करके काटा था । हर साल जब सरदियाँ निकट आतीं तो सब लोग अपने-अपने घरों में तीन-चार महीने का जलावन जमा करने के लिए कुछ न कुछ जुगाड़ करते । जो लोग जंगल से चोरी-छिपे लकड़ियाँ काट कर ला सकते, वे जंगल से अपनी जरूरत पूरी करते । किसी समय गाँव के दो तरफ घना जंगल था और उसके झिलकंडों से ही गाँव के सब लोगों की जरूरतें पूरी हो जाती थीं । जितनी झाड़ियाँ कटतीं उतनी अगले साल उग आतीं । पेड़ों को काटने पर रोक थी । फिर लोगों में जलावन का लालच बढ़ा तो जंगल बेदर्दी से कटने लगा । अब तो वह आधा नंगा हो गया है । अब जलावन के लिए चोरी-छिपे ही लकड़ियाँ काटनी पड़ती हैं और जो ऐसा नहीं कर सकते उन्हें अपने पेड़ कटवाने पड़ते हैं । रामदित्तू की भी अपनी मजबूरी थी । घर में कोई जंगल से लकड़ियाँ लाने वाला नहीं था । लड़के सब शहरों में नौकरियों पर लग गए थे । छुट्टियों में घर आते भी तो जलावन के लिए जंगल में जाने की मुसीबत उठाने को कोई तैयार नहीं होता । रामदित्तू और उसके परिवार के आठ सदस्यों को सरदियाँ काटनी होती थीं । वह हर साल मिसरू आम की दो-तीन डालें कटवा लेता । फिर जब उसके ऊपर एक ही डाल बची रही तो उसने उसके तने को भी कटवा दिया ।

डाल-कटे मिसरू आम को देखकर लक्ष्मीदेवी को दहशत होती थी । उसे लगता जैसे किसी पापी ने किसी बूढ़े को हाथ-पाँव काट कर छोड़ दिया है । वह रामदित्तू को रोक भी नहीं सकती थी क्योंकि उसकी अपनी जरूरतों को वह समझती थी । वह गाँव में किसी को भी न करने योग्य काम को करने से नहीं रोक सकती थी । लेकिन उसे जो चीज बुरी लगती थी उसे बुरा कहने में वह चूकती भी नहीं थी । मिसरू आम ही नहीं, गाँव के और पेड़ भी बड़ी तेजी से कटते जाते थे । किसी समय गाँव दूर से घने पेड़ों के झुरमुट में बसा हुआ दिखाई देता था । सरदियों के लिए पेड़ कटते, शादी-ब्याह और मरण के मौकों पर पेड़ कटते, मकान बनाने के लिए पेड़ कटते । पुराने वक्तों में लोग झिलकंडे जलाकर या बाँस के ठडूडे जलाकर आग ताप लेते थे । घर में चूल्हा गरम रखने के लिए धान के तुष का उपयोग कर लेते थे । लेकिन अब काँटेदार झिलकंडे या ठडूडे बटोरने की तकलीफ कोई नहीं उठाना चाहता । धान कूटने वाली मशीनें अब तुष भी बेचने लगी हैं । घरों में धान कूटने की प्रथा अब नहीं रही है । इन सब कारणों से जलावन बहुत महँगा होता जा रहा था । उसकी माँग भी बहुत थी । शहरों में काम करने वाले, छोटी-मोटी नौकरियों वाले होते थे । घर के राशन-पानी का खर्च किसी प्रकार चलाते थे । नकद पैसे का कोई खास काम आ पड़ता तो पेड़ काटकर जलावन बेच देना सबसे अच्छा तरीका नजर आता । लक्ष्मीदेवी जानती थी कि केवल गाँव की आबरू ढकने वाला पेड़ों का झुरमुट नहीं छितरा रहा है,

केवल ज़ंगल नंगा नहीं हो रहा है उसके साथ आम आदमी भी छितरा रहा है, आदमी भी नंगा हो रहा है।

लक्ष्मीदेवी गाँव के लिए मिसरू आम का पेड़ थी। उसकी डालों की छाया छोटे-बड़े सब को मिलती रही है। गाँव के प्रत्येक घर से उसका अपनत्व रहा है। जब तक उसके पति बैद जी जीवित रहे, किसी घर को बीमार की दवा-दारू के लिए परेशान नहीं होना पड़ा। अमीर-गरीब, छोटे-बड़े, सभी घरों में उनकी पहुँच थी। उनके गुजरने के बाद लक्ष्मीदेवी ने भरसक उन्हें वह संरक्षण देने की कोशिश की जो उनके पति के जीते-जी उनसे मिलती थी। फोड़े-फुं .ों और साधारण बीमारियों के साथ-साथ दाई-के काम से लेकर डंगरों की बीमारियों तक । उसकी सलाह ली जाती थी और वह बिना कोई प्रतिदान लिए अपनी भूमिका निभाती थी।

लक्ष्मीदेवी ने गदियारी गाँव के हर परिवर्तन को एक कुतूहल के भाव से देखा है। गाँव में ही अपने-अपने काम-धंधों से गुजर करने वाला समाज किस तरह नौकरियों पर और शहरों में बनने-बिकने वाली वस्तुओं पर निर्भर हो गया, यह एक लम्बी प्रक्रिया थी, लेकिन लक्ष्मीदेवी ने इसे देखा-समझा था। खद्दर, लट्ठा, खासा, छींट और मलमल के कपड़ों का धीरे-धीरे लुप्त होना और नकली सिल्क, टैरालीन और दूसरे सैकड़ों किस्म के कपड़ों का उनका स्थान लेना, पाजामे-कुरते के स्थान पर पैंट-बैलबॉटम का प्रचलन, लड़कों का लड़कियों की वेशभूषा में और लड़कियों का लड़कों की वेशभूषा में रहना, हुक्के के स्थान पर तरह-तरह की सिगरेट-बीड़ियों का प्रचलन, ट्रांजिस्टर पर फिल्मी गीतों की धुन पर डंगर चराने और क्रिकेट की कमेंटरी के लिए दीवानगी की हद तक परेशान होने के फैशनों को उसने देखा था और हँस कर टाल दिया था। लेकिन मिसरू आम के कटने और मंदिर वाले पीपल के उखड़ने या मसाण टोहल के तोड़े जाने की घटनाओं ने उस पर गहरा असर डाला। हो सकता है, कुछ और घटनाएँ भी रही हों किन्तु लक्ष्मीदेवी ने उनका आभास दूसरों को लगने नहीं दिया। उसकी सब से निकट की सहेली दुर्गू की मौसी जब पागल की-सी हालत में मरी तो उसे दु:ख तो बहुत हुआ था लेकिन उसने यह कहकर मन को समझा लिया था कि उसको ज़िंदगी भर के संतापों से मुक्ति मिल गई। जगपाल की अम्माँ जब इस संसार से विदा हुई तो वह कई दिनों तक अपने को बहुत अकेला महसूस करती रही। फिर उसने मन को समझाया कि एक दिन सब को जाना है। आखिर कौन किसका साथ देता है?

कभी-कभी लक्ष्मीदेवी को गाँव में हो रहे परिवर्तन से दु:ख भी होता था। इसलिए नहीं कि वह उन्हें स्वीकार नहीं कर पाती थी, बल्कि इसलिए कि उसे लगता था इन परिवर्तनों से आदमी सुखी होने के बजाय दु:खी हो रहा था। राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उत्पादन, प्रति व्यक्ति आय अथवा व्यय के आँकड़ों की जादूगरी से परिचित होने का उसे कभी अवसर नहीं मिला। मिलता भी तो शायद ही उसे समझ पाती किंतु वह इतना जानती थी कि गाँव में सुख से गुजर-बसर करने वालों की संख्या बढ़ी नहीं है, घटी जरूर है, और यहाँ तक घटी है कि एकाध घर को छोड़कर उसे कोई घर दिखाई नहीं देता जो बेफिक्री से गुजर-बसर कर रहा हो। पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में उसने अनेक परिवारों को अपनी मूलभूत जरूरतें पूरी करने के लिए अपनी जमीनें बेचते, घर का पुराना

सामान बेचते, पेड़ों को बेचते और फिर अपने को छोटी-छोटी नौकरियों पर बेचते देखा है। ज़िंदगी के घिसटने का यह क्रम केवल ऊपर के वर्गों में ही चला हो ऐसी बात नहीं है। यह सर्वव्यापी क्रम था। मध्यवर्ग और निचले वर्ग की स्थिति में भी कुछ सुधार होता तो भी संतोष हो सकता था। किंतु उनकी स्थिति में भी कुछ ज्यादा फर्क नहीं पड़ा है। संभव है निचले वर्गों की आमदनी कुछ बढ़ी हो लेकिन वह आमदनी जीवन को सुखी बनाने में नहीं लगी, व्यर्थ के अहंकार के पोषण में लगी। इन्होंने ऊपर के वर्गों की देखा-देखी व्यर्थ के आडंबरों में अपने पर बड़प्पन का मुलम्मा चढ़ाने के प्रयासों में अपनी बढ़ी हुई आमदनी को लगाया। उनके लिए बदलने का और ऊँचे उठने का मतलब सिर्फ इतना ही रह गया कि जो व्यर्थ के आडंबर और रस्मो-रिवाज़ ऊँची जातियों ने ओढ़े हुए हैं, उन्हें ओढ़ लिया जाए भले ही वे कोढ़ की तरह हों। शादी-ब्याहों में मन दो मन आटा, आठ-दस तोले चाँदी के गहने, दूल्हा-दुल्हिन के लिए दो जोड़ी कपड़ों से काम चल जाता था। ज्यादा करना हुआ तो लोक कलाकारों की किसी मंडली को बुलाकर भगत रास) करा दी। अब बैंड बाजे भी करने पड़ते हैं। पालकी भी करनी पड़ती है। बिरादरी की अच्छी-खासी भीड़ को दो-तीन दिन भोज भी देना पड़ता है। भले ही इन सब कामों के लिए कर्ज के बोझ से दबना पड़े। पैदा होने से लेकर मरने तक के सभी सोलह संस्कारों को किए बिना शायद कोई ऊँचा उठ ही नहीं सकता। व्रत-पूजा की ओढ़नी भी जरूरी हो गई है। कुल मिलाकर बहुत कुछ बदलने के बावजूद असली चीज़ नहीं बदली। आदमी जहाँ का तहाँ है।

पंडित दयाराम की मृत्यु ने लक्ष्मीदेवी को गाँव के इतिहास का अंतिम साक्षी बना दिया था। कुछ वर्ष पहले उसकी स्थिति ऐसी नहीं थी। पंडित दयाराम की माँ उससे उम्र में काफी बड़ी थी। वह गाँव का चलता-फिरता इतिहास थी। छोटे-बड़े सभी घरों की तीन-तीन पीढ़ियों के नाम तथा उनके छोटे-छोटे रिश्तों की जानकारी उसे थी। घर की कलह के कारण वह बाहर बहुत कम निकलती थी किंतु लक्ष्मीदेवी के साथ उसकी बैठक लगभग रोज होती थी। एक बार वह अपने मँझले बेटे के साथ हरिद्वार गई और लौटते हुए दिल्ली भी देख आई। दिल्ली की सड़कों पर जब उसने तंग पैंट पहने जवान लड़कियों को घूमते देखा तो उसका माथा घूम गया। सड़क पर चलते-चलते अपने पचपन वर्षीय मँझले बेटे का हाथ पकड़ कर खड़ी हो गई और एक लड़की की तरफ हाथ उठा कर बोली, "देख तो, देख तो! कितनी बेशर्म लड़की है, फिटे मुँह, फिटे मुँह।" मँझले बेटे ने झट उसके मुँह पर हाथ रख दिया, बोला, "चुप कर अम्माँ, तू मुझे भी पिटवाएगी और अपनी भी दुर्गत कराएगी।" लेकिन वह तब भी हक्की-बक्की होकर उस लड़की को देखती रही और 'फिटे मुँह' 'फिटे मुँह' कहती रही। मँझला बेटा इस घटना को बड़ा मज़ा ले-लेकर सुनाता था और अक्सर जब वह (भाऊ) पंडित दयाराम को गमगीन मुद्रा में देखता तो इस घटना को दुहरा कर उन्हें हँसाने में अवश्य सफल हो जाता था। 'फिटे मुँह' पं० दयाराम की माँ का तकिया कलाम हो गया था। उसी तरह जैसे राजू की अम्माँ का तकिया कलाम था 'भिरी-फिरी'। कुएँ पर पानी भरने वाली गाँव की बहुओं का घूँघट उसे ऊँचा दिखाई देता तो झट से 'फिटे मुँह' से उसका सत्कार हो जाता था। कोई उसकी बात का बुरा नहीं मानता था लेकिन एक दिन जब उसके छोटे लड़के की बहू ने पलट कर कह दिया कि 'फिटे मुँह' कहने

वाले का तो उसको जैसे काठ मार गया। लक्ष्मीदेवी को छोड़ कर उसने किसी को यह बात नहीं बताई। घर के अंदरूनी झगड़ों के साथ तो उसने समझौता कर लिया था लेकिन बहू पलट कर जवाब देगी, यह उम्मीद उसे नहीं थी। अपने घर के वैभव को धीरे-धीरे क्षीण होते उसने देखा था किंतु भले घर की मर्यादा का टूटना उससे देखा नहीं गया। उस घटना के बाद उसमें बहुत परिवर्तन दिखाई दिया। उसने घर से बाहर निकलना बिल्कुल बंद कर दिया। एक महीना बाद जाने उसे क्या हुआ कि बैठे-बैठे लुढ़क गई और जितनी देर में वैद्य-हकीम के लिए आदमी दौड़े, वह बिना गऊदान के चल बसी।

अपने पति की मृत्यु के बाद जीवन के संघर्षों ने लक्ष्मीदेवी के दिल को इतना मजबूत बना दिया था कि वह इस तरह के झटकों को बर्दाश्त कर सकती थी लेकिन बूढ़े पीपल के पेड़ का जड़ से उखड़ना, मिसरू आम के हाथ-पैरों का और फिर धड़ का काटा जाना और मसाण टोहल को सड़क की रोड़ी में बदल दिया जाना शायद उसके मनोबल की अंतिम परीक्षाएँ थीं।

बाँबरी अमर का उस उम्र का दोस्त था जिस उम्र में आदमी सिर्फ आदमी होता है, जब उसके चेहरे पर किसी जाति का गोदना नहीं खुदा होता है। अमर और बुधीसिंह की दोस्ती भी इसी उम्र में हुई थी। अमर गाँव की सब से ऊँची जाति का था, बाँबरी सब से नीची जाति का और बुधीसिंह था बीच का जो न सवर्णों में आता था न अंत्यजों में। परिस्थितियों ने उन्हें ऐसी जमीन पर लाकर खड़ा कर दिया था जिसकी सतह हमवार थी और जिसकी मिट्टी एक-से कंकरों-पत्थरों से भरी थी। अमर के पिता वैद्य जी अपनी थोड़ी जमीन को दूसरों की मदद से खुद वसूल करते थे। गाँव में उनकी जमीन पर काम करने के लिए किसी को कभी आनाकानी नहीं होती थी। वैसे चूँकि वैद्य जी की जमीन बुधीसिंह के पिता चितू चौधरी की जमीन से लगी हुई थी, इसलिए चितू चौधरी ही हल का काम अपने खेत के साथ-साथ कर दिया करता था। गुड़ाई वगैरह के काम में वैद जी भी लग जाते थे लेकिन चितू चौधरी उन्हें इसके लिए भी मना करता था। वैद्य जी गाँव के गरीब-गुरबों के लिए देवता थे, इसलिए उनके खेत का काम पड़ता तो लोग खुद चले आते थे। लेकिन खेत में अपने हाथ से काम करने का अपना ही मजा था और वैद्य जी को पेड़-पौधों के उगने-उगाने से एक सहज लगाव था। केवल जड़ी-बूटियों के गुणों के कारण ही नहीं, हर पौधे को बढ़ता देखने में उन्हें एक अजीब आनंद की अनुभूति होती थी।

अमर को मिट्टी का प्यार शायद विरासत में मिला था। अक्सर जब चितू चौधरी के खेत में या वैद्य जी के खेत में ढेले तोड़ने का या गुड़ाई, वगैरह का काम चल रहा होता तो अमर और बुधीसिंह मेंड़ पर बैठकर छः-सात भटान (ढेले तोड़ने का औज़ार) चलने से पैदा होने वाले संगीत को सुनते या भटान की हर चोट से चिकनी मिट्टी पर बनने वाली तस्वीरों को देखते। ये तस्वीरें कभी मेलों में मिलने वाली पतीसे की मिठाई सी लगती थीं, कभी चाँदी के बड़े रुपयों की तरह। कभी-कभी वे भटान की चोटों से बचकर पतीसे या रुपये को हाथ में भी उठा लेते थे और उन्हें

तब थोड़ी देर के लिए असली पतीसे या असली रुपये का आनन्द मिल जाता था। बुधीसिंह का छोटा भाई मुरली भी कभी-कभी उनके साथ इसमें शामिल हो जाता था लेकिन अक्सर उसकी रुचियाँ उन दोनों से काफी भिन्न थीं। उसका समय ग्वालों के साथ जंगल में भटकने या नदी में तैरने में बीतता था। लोगों की बगीचियों से फल, ककड़ियाँ और भुट्टे चुराने में उसे बहुत महारत हासिल थी। ग्वालों की टोली का वह सरदार होता था। उसका एक और शगल था जंगल में मधुमक्खियों के छत्ते ढूँढ़ना, उनकी दूसरों से रक्षा करना और जब शहद तैयार हो तो शहद बीनना। यह काम जितना जोखिम भरा होता था, मुरली को उसमें उतना ही आनन्द मिलता था।

बाँबरी बुधीसिंह के यहाँ नौकर था। वह डंगरों की देखभाल भी करता था और खेत के काम में भी हाथ बँटाता था। बाँबरी के पिता और चितू चौधरी के खेत उन दिनों साथ-साथ लगे हुए थे। दोनों एक ही मालिक पंडित दयाराम के पिता की जमीन को बटाई पर बोते थे। पड़ोसी के नाते खेत के काम में एक दूसरे की मदद भी करते थे। एक बार चितू चौधरी बीमार पड़ गए। उनके खेत का काम पिछड़ गया तो बाँबरी के पिता ने उनकी फसल लगाई थी। दोनों में काफी आत्मीयता थी। बाँबरी और उसके तीन छोटे भाई भरे-पूरे परिवार में पल रहे थे। उनके माता-पिता थे। दादा भी जीवित थे। फिर एक साल न जाने उनके घर में कैसी बीमारी आई। दो महीने के अर्से में बाँबरी के माता-पिता और दादा तीनों चल बसे। उस समय बाँबरी सिर्फ दस साल का था और उसका सब से छोटा भाई पूरब तो चलने-फिरने भी नहीं लगा था। चार अनाथ बालकों का क्या होगा इस चिंता से चितू चौधरी काफी परेशान हुए। बाँबरी के चाचा चतरू ने उन्हें अपने घर पर जरूर रखा लेकिन उसके लिए अपने ही परिवार की गाड़ी को खींचना मुश्किल था। चाचा का सुलूक भी अनाथ भतीजों के प्रति अच्छा नहीं था। ऐसी स्थिति में चितू चौधरी ने बाँबरी को अपने यहाँ नौकर रख लिया। उन दिनों गाँव के सब से बड़े रईस मियाँ घमनचंद के नौकरों को साल में तीन रुपये, दो वक्त खाना और कभी-कभार उतरे हुए कपड़े मिल जाते थे। चितू चौधरी ने भी बाँबरी को तीन रुपये साल देना मंजूर किया था लेकिन वे बाँबरी और उसके तीनों भाइयों को अपने घर ले आए थे। भूसे के लिए बनाई गई एक कोठरी में उनको ठहरा दिया था। उस घर में रहकर बाँबरी और उसके सब भाइयों को भरपेट खाना मिल जाता था। फिर बाँबरी का छोटा भाई किरलू भी लंबरदार के यहाँ ग्वाला बन गया। अब दो जगह से खाना आ जाता था और सब भाई मिलकर खाते थे। जब दो साल बाद तीसरा भाई भी डंगर चराने पर एक घर में लग गया तो चितू चौधरी ने उनके पिता के घर को, जो ढह गया था, ठीक-ठाक कराकर सब को वहाँ बसा दिया।

बाँबरी के चारों भाइयों की अब शादियाँ हो चुकी हैं। उन्होंने अपने लिए अलग-अलग घर बना लिये हैं। दो भाई मिलकर दो टोपे की जमीन बटाई पर काश्त करते हैं और दो भाई नौकर हो गए हैं। एक पुलिस में भर्ती है और सब से छोटा पूरब फौज में चला गया है। सन् 1965 में पाकिस्तान की लड़ाई में वह जख्मी हुआ था और उसे इनाम भी मिला था। इन दिनों वह जमादार बनकर छुट्टी पर आया था।

हाँलाकि बाँबरी के चारों भाई अलग-अलग थे किन्तु उनमें ऐसा मेल-मिलाप था कि गाँव

में उनको एक ही परिवार माना जाता था। बाँबरी को सब पिता जैसा सम्मान देते थे और बाँबरी के मन में भी उनके प्रति वैसा ही प्यार था जो बाप को बेटों के प्रति होता है।

पूरब के जमादार बनने पर बाँबरी को बेहद खुशी हुई थी। पूरब बड़ी मेहनत और लगन से तरक्की करते-करते ऐसे ओहदे पर पहुँचा था जिस पर गाँव की ऊँची जातियों के लड़के भी एक-दो को छोड़कर नहीं पहुँचे थे। गाँव का सब से बड़ा ओहदेदार देबू था जो मेजर बन गया था और फिर रामगोपाल और दीनू आते थे जो सूबेदार के ओहदे तक पहुँचे थे। पूरब का स्थान उनके बाद था और उसकी उम्र भी काफी कम थी। इसलिए बाँबरी को अपने छोटे भाई के रुतबे पर गर्व होना स्वाभाविक था। ऊँची जातियों के लोग उसके रुतबे से मन ही मन जलते थे, लेकिन बाँबरी को इन सब की परवाह नहीं थी।

भाई की तरक्की की खुशी में बाँबरी ने अपने घर पर 'सत्तनरैन' की कथा का आयोजन किया। गाँव के लोगों के लिए यह खबर कुतूहल भरी भी थी और कुछ लोगों के लिए अन्दर ही अन्दर जलाने वाली भी थी। इधर कुछ दिनों से 'बाहरकी' जातों ने 'भलेमानसों' के रीति-रिवाजों की नकल करना शुरू किया था। उनकी औरतें पूर्णमासी और एकादशी के व्रत रखने लगी थीं। जन्माष्टमी, रामनवमी और शिवरात्रि के व्रतों का प्रचलन भी हो गया था। शादी-ब्याहों में दूल्हे-दूल्हिन के पैदल चलने की रस्म तो बहुत पहले खत्म हो गई थी और बैंड-बाजे तथा पालकी का रिवाज आम हो गया था। लेकिन सत्यनारायण की कथा कराने की हिम्मत अभी तक किसी ने नहीं की थी। कथा एक पंडित ही पढ़ सकता था और हरिजनों के घर जाकर कथा पढ़ने के लिए कौन पंडित आएगा, यही सवाल सब लोगों की जबान पर था।

कथा का आयोजन करने से पहले बाँबरी के मन में भी यही सवाल उठा था लेकिन तब उसने सोचा था कि अमर के पास जाने से काम चल जाएगा। अमर के व्यवहार में अब भी कोई फरक नहीं आया था। अपने बचपन के दोस्त की हर मदद करने को वह तैयार रहता था। हालाँकि अमर ने सरकार की तरफ से बाँटी जा रही डेढ़-दो करनाल जमीनों को न लेने की सलाह देकर हरिजनों में से कई लोगों की नाराजगी मोल ली थी, लेकिन बाँबरी अमर को भली प्रकार समझता था। बाद में नसबंदी की जोर जबर्दस्ती के दिनों में दूसरे लोग भी समझने लगे कि अमर ठीक ही कहता था और सरकार उनके आगे टुकड़ा फेंक कर उन्हें मनचाहे इस्तेमाल के लिए खरीद रही है। लेकिन बाँबरी के मन में इन उतार-चढ़ावों के बावजूद अमर के प्रति दोस्ती में कोई फरक नहीं आया था।

जब अमर ने सत्यनारायण की कथा पढ़ने से इन्कार कर दिया तो बाँबरी को बहुत दुःख हुआ। उसने लगभग एक सौ रुपया खर्च करके इस कथा का आयोजन सिर्फ अमर के भरोसे किया था और उसे पूरा विश्वास था कि अमर जात-पाँत के मामलों से ऊपर उठा हुआ इन्सान है। अमर के साफ इन्कार करने पर बाँबरी उसकी तरफ देखता रह गया। बुधीसिंह भी पास बैठा था। वह भी अमर के इस रवैये को नहीं समझ सका।

बुधीसिंह बोला, "भई, बाँबरी हमारे लिए क्या है, इसे सभी जानते हैं। हम एक साथ खेले हैं, एक साथ हँसे-रोए हैं। कितनी बार हमने खाना भी एक साथ खाया है। फिर इसके घर कथा पढ़ने से क्यों डरते हो? तुम्हारा धर्म बचपन में ही भ्रष्ट हो गया था, अब और क्या भ्रष्ट होगा?"

अमर बोला, "तुम दोनों पागल हो। क्या मैं इसलिए इन्कार करता हूँ कि मैं बाँबरी के घर नहीं जा सकता या उसके घर सत्यनारायण की कथा पढ़े जाने को मैं गलत मानता हूँ? बात यह है कि मैं सत्यनारायण की कथा नहीं पढ़ सकता। कहीं भी नहीं पढ़ सकता। मुझे जिन चीजों पर विश्वास नहीं है, उन्हें क्यों करूँ? बाँबरी की बात मैं समझता हूँ। उसकी बिरादरी में ऊँची जातों के हर ढकोसंले के प्रति मोह हो गया है। समाज के जो रस्मो-रिवाज सड़-गल गए हैं, उन्हें भी ये लोग इसलिए अपना रहे हैं कि ये भले मानसों के तौर तरीके हैं। 'भलेमानस' और 'बाहरके' मुझे इन शब्दों से सख्त नफरत है और मैं उन तमाम बेजान रस्मों से भी नफरत करता हूँ जिनका आदमी की जिन्दगी से अब कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है।"

बाँबरी को उसकी बातें समझ में नहीं आ रही थीं। अमर ने बाँबरी की तरफ देखकर कहा, "तुम यह मत समझना कि मैं भी लोगों की तरह तुम्हारे घर में सत्यनारायण की कथा को पसंद नहीं कर रहा हूँ। कथा कराके तुम्हें खुशी होगी, तुम्हारे घरवालों को खुशी होगी और तुम्हारी खुशी में मुझे भी खुशी होगी। मैं तुम्हारे घर जाऊँगा। उस खुशी में शामिल हूँगा लेकिन कथा-वथा पढ़ना मेरे बस की बात नहीं है। हाँ, कथा पढ़ने के लिए मैं एक पंडित का बंदोबस्त कर दूँगा।"

"कहाँ से करोगे पंडित का बंदोबस्त?" बुधीसिंह ने पूछा।

"यह बात मेरे ऊपर छोड़ दो। कहीं न कहीं से पकड़ कर ले आऊँगा।"

बाँबरी को अमर की बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह बोला, "गाँव के लोग इस बात पर पहले से ही जले-भुने बैठे हैं। मुझे तो डर है कि कुछ लोग दंगे-फिसाद पर न उतर आएँ। लेकिन मैंने बहुत दिनों से मन्नत कर रखी थी कि पूरब की तरक्की होगी तो कथा कराऊँगा।"

"मैंने कह दिया न, कथा होगी। अगर मुझे कोई पंडित नहीं मिला तो मैं पढ़ दूँगा कथा। लेकिन तुम्हें बता दूँ कि मुझे कथा-वथा पर कोई श्रद्धा नहीं है। यह काम न मैंने कभी किया है और न करना चाहता हूँ।"

अमर की तरफ से आश्वासन पाकर बाँबरी चला गया। बुधीसिंह और अमर उठकर खलिहान की तरफ चल दिए, जहाँ अमर के धानों की कुंदली लगाने का काम चल रहा था। पिछले आँधी-तूफान में बुधीसिंह और अमर के खेतों में धान का नुकसान बहुत ज्यादा नहीं हुआ था। दो तरफ के पेड़ों के झुरमुट ने आँधी के थपेड़े अपने पर सहकर धानों की रक्षा कर ली थी। अब सारे धान कटकर खलिहान में आ गए थे। बुधीसिंह के धानों की कुंदली लगाने का काम पिछले दिन पूरा हो गया था और आज अमर के खलिहान में कुंदली लगाने का काम चल रहा है। बुधीसिंह आधी बनी कुंदली के ऊपर खड़ा धान बिछा रहा था और अमर नीचे से धान के गट्ठर उस तक पहुँचा रहा था। बुधीसिंह कुंदली लगाने में काफी माहिर हो चुका था। उसकी लगाई हुई कुंदली में धान दो-तीन महीने तक वर्षा पानी से पूरी तरह सुरक्षित रहते थे।

काम खत्म करने के बाद दोनों मित्र जब सुस्ताने बैठे तो बुधीसिंह ने पूछा—

"माँ, अब कैसी है?"

"अब तो काफी ठीक है।" अमर बोला, "लेकिन पंडित दयाराम के स्वर्गवास के बाद वह काफी हिल गई है। कभी-कभी मुझे लगता है कि कुछ दिनों के लिए माँ को बाहर घुमा लाऊँ।

गाँव की चीज़ों से उसका इतना लगाव हो गया है कि जैसे-जैसे वह उन चीज़ों को खत्म होते देखती है, उसे लगता है कि उसकी जिंदगी का एक-एक हिस्सा टूटता जा रहा है। कुछ दिन बाहर घूम-फिर आएगी तो शायद उसका मन कुछ बदल जाए। लेकिन इस वक्त तो पाँच-सात सौ रुपये का इन्तजाम करना भी कठिन है।"

बुधीसिंह जानता था कि सिर्फ घूमने-फिरने के लिए पाँच-सात सौ खर्च करने की हैसियत न अमर की है और न खुद उसकी। दोनों किसी तरह गुज़ारा करने की स्थिति में थे। अमर को तो अभी शादी-ब्याह भी नहीं करना था लेकिन बुधीसिंह के सामने मुरली के ब्याह का सवाल था। इतने सालों से खोए हुए भाई को पाकर उसे जिंदगी का सब से बड़ा सुख मिला था और अब वह उसका ब्याह करके बड़े भाई की जिम्मेवारी को निभाना चाहता था। उसने जान-बूझ कर प्रसंग बदल दिया।

"मुरली के लिए कोई लड़की ढूँढनी है। कुछ सलाह दो न।"

अमर कुछ सोचकर बोला—

"मुरली के लिए लड़की ढूँढना बेकार है। उसका क्या भरोसा कि शादी करेगा या नहीं, और करेगा तो कैसी लड़की से। देखो बुधीसिंह, उसनें अपने लिए जो रास्ता चुना है, उसमें शादी-ब्याह का कोई खास मतलब नहीं होता। ये लोग हर वक्त जेल जाने के लिए तैयार रहते हैं। बाहर रहते हैं तो इन्हें सभा-सोसायटियों से फुर्सत नहीं मिलती। अभी तो वह साधु के भेष में छिपा हुआ है। क्या जाने कब पुलिस की नजर उस पर पड़ जाए। उस पर सरकार का तख्ता पलटने की साजिश का आरोप है। सरकार के हाथ पड़ गया तो आठ-दस साल के लिए तो जेल जाएगा ही। ऐसी हालत में उसकी शादी का सवाल ही कहाँ उठता है?"

बुधीसिंह घबरा कर बोला, "नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होगा। मुरली ऐसा नहीं करेगा।"

"मुरली इस वक्त क्या है, इसे तुम नहीं समझते बुधीसिंह। वह सिर पर कफन बाँध कर घूमने वाला सूरमा है। ऐसे सूरमा कितने हैं इस देश में? सरकार की जरा-सी धमकी से नाक रगड़ने वालों के इस देश में मुरली जैसे लोग बहुत नहीं होते। किसी भी देश में उनकी संख्या बहुत ज्यादा नहीं होती। लेकिन इन मुट्ठी भर लोगों के कारण ही समाज आगे बढ़ता है। ये लोग नेता नहीं बनते, मंत्री नहीं बनते, बड़े-बड़े ओहदों पर नहीं जाते। उन्हें तो आराम की जिंदगी भी नहीं मिलती। ये फटेहाल रहते हुए भी देश की आत्मा को, समाज की आत्मा को झँझोड़ते रहते हैं और उसे सड़ने से बचाते हैं। ऐसे लोगों को शादी ब्याह के बन्धन बाँधना कठिन भी है और गलत भी।"

अमर को धानों की कुंदली लगाते-लगाते शाम हो गई। अमर को बाँबरी के यहाँ कथा पढ़नेवाले पंडित की खोज करनी थी। घर पहुँच कर, चाय का एक गिलास पीकर वह भिक्खू के घर की तरफ चल पड़ा।

भिक्खू गाँव के उन तीन युवकों में से था जिन्हें किस्मत का मारा कहा जा सकता है। ये युवक थे रघु, गरीबू और भिक्खू। रघु नगरकोटी पंडितों के खानदान में से था। दुर्गू की मौसी के घर की निशानी अब यही था। दुर्गू के भोपाल पुलिस में काम करते-करते अचानक गुम हो जाने के समय उसकी उम्र छः बरस की थी। उसका बड़ा भाई चार-पाँच साल बड़ा था। दुर्गू की

मौसी ने नेज-निसरों इकट्ठा करके उन्हें पाला था। मौसी के मरने के बाद उनकी माँ भी जैसे-तैसे गाँव वालों की दान-दक्षिणा पर उन्हें पालती रही। फिर बड़े लड़के की शहर में नौकरी लग गई। उसकी शादी भी हो गई और वह अपनी पत्नी को भी शहर ले गया। अब माँ के खर्च के लिए वह कभी-कभी कुछ रुपये भेज देता था। रघु की कहीं नौकरी नहीं लगी। गाँव के स्कूल में उसने आठवीं पास की लेकिन दसवीं नहीं कर सका। बेकारी की हालत में गाँव में रहते-रहते वह वैसे ही बेकार हो गया। लोगों ने मान लिया कि वह कुछ भी नहीं कर सकता है और इसलिए उसकी शादी भी नहीं हुई। फिर अमर की सलाह पर उसने शादियो में खाना बनाने का काम सीख लिया। मिसर का काम गाँव के जीवन की एक अनिवार्य सेवा है। बिना मिसर के शादी नहीं हो सकती और इसलिए नई कला को सीखने के बाद रघु गाँव का एक संभ्रांत व्यक्ति बन गया था। आमदनी खास ज्यादा नहीं थी क्योंकि एक ब्याह कमाने पर अधिक से अधिक चालीस या पचास रुपये मिलते थे। लेकिन उसकी पूछ थी। लोग घर आकर रघु की खुशामद करते थे।

गरीबू मियों के खानदान का अभागा युवक था। उसके पिता उत्तम मियों के टोले में सब से गरीब थे। पत्नी जब बच्चे को जन्म देकर मर गई, तो उत्तम के लिए गरीबी के कारण दूसरा ब्याह करना पुनर्जन्म की तरह दूर का सपना बन गया था। उसकी हालत को देखकर ही पास-पड़ोस की औरतों ने बच्चे को गरीबू कहना शुरू किया और बच्चे का नाम ही गरीबू पड़ गया। बड़े खानदान का बटवारा होने पर उत्तम के हिस्से में तीन सौ चाय के पेड़ और दो द्रुण की दलदली ज़मीन आई थी। दलदली ज़मीन पर सिर्फ धान की एक फसल होती थी, वह भी दूसरों के हाथ से। चाय के पेड़ों का काम उत्तम मियाँ खुद करते थे लेकिन उनसे सिर्फ चाय की पत्ती का खर्च निकलता था। बेहद गरीबी में उत्तम मियाँ अपने दिन काट कर चले गए और उसके बाद गरीबू भी लाख कोशिश करने पर गरीबचंद नहीं बन सका। कई बार गाँव के और युवकों के साथ दिल्ली, जालंधर हो आया। होटलों में कुछ दिन बरतन मलने का काम भी किया लेकिन चपरासी की नौकरी की साध पूरी नहीं हुई। एक दिन वह अपने रीठे के पेड़ से रीठों की बोरी भरकर बाज़ार की तरफ जा रहा था कि अमर मिल गया। अमर बोला—

"इस बोरी का तुम्हें चार-पाँच रुपये से ज्यादा नहीं मिलेगा। लेकिन अगर इसका साबुन बनाकर बेचो तो पचास रुपये आसानी से मिल जाएँगे।"

और वहीं बैठ कर अमर और गरीबू ने स्कीम तैयार की। साबुन बनाने का तरीका कोई बहुत मुश्किल नहीं था। कुछ सामान बाज़ार से खरीदना जरूरी था। दो-तीन दिन में ही सामान जुट गया और गरीबू ने साबुन बनाने का काम शुरू कर दिया। अब घर बैठे साबुन बना कर वह महीने में दो सौ रुपये आसानी से कमा लेता है।

भिक्खू पुजारियों के टोले के आठ घरों में से गाँव में रहने वाला एक मात्र पुरुष था। शेष घरों के पुरुष बाहर नौकरियों पर लगे हुए थे। खुद उसके तीन भाई भी नौकरियों पर लगे थे। एक भाई किसी एक्सीडेंट में स्वर्ग सिधार गया था, शेष दो भाइयों ने कुल्लू और मंडी में ब्याह कर के अपनी अलग दुनिया बसा ली थी और वे गाँव में कभी एकाध दिन के लिए आते थे। भिक्खू के कंधों पर बूढ़ी माँ और विधवा भाभी का बोझ था।

नौकरी के लिए उसने भी बहुत हाथ-पैर मारे फिर हार कर गाँव में ही रहने लगा। पूरे टोले के हिस्से में गाँव के मंदिर की पूजा का काम था। मंदिर की चार-पाँच टोपे जमीन अब दो दर्जन हिस्सों में बट कर या तो बिक गई थी या साझियों के कब्जे में चली गई थी। भिक्खू के हिस्से में इतने दाने आ जाते थे कि घर के पाँच जने जिनमें दो स्वर्गीय भाई के बच्चे थे, दो महीने काट सकते थे। बाकी साल भिक्खू को कभी दो-चार पेड़ बेच कर, कभी घर का पुराना सामान बेच कर गुजारा करना पड़ता था। मंदिर की पूजा करने वाला चूँकि वही एक गाँव में था इसलिए दूसरों की बारी पर भी उसे पूजा करनी पड़ती थी और बदले में हर घर में से उसे मन-डेढ़ मन अनाज मिल जाता था। यूँ तो गुजर हो जाती थी लेकिन और पचास तरह के खर्चों के लिए नगद पैसे की कहीं आमद नहीं थी। लूण, तम्बाकू, बीड़ी-सिगरेट, तेल-साबुन, के लिए उसे हर बार राजू की खुशामद करनी पड़ती थी और उसके लिए सामान ढोने का काम करना पड़ता था।

अमर ने उसे शादी-ब्याह और श्राद्ध वगैरह पढ़ने का काम सीखने के लिए प्रोत्साहित किया। थोड़ा पढ़ा-लिखा तो था ही, किताब देख कर पढ़ना सीख गया। लेकिन अब समस्या थी कि उसे बरतेसरी कैसे मिले। साथ वाले गाँव के पंडित गजधर की धाक थी। वे पुराने कर्मकाण्डी पंडित थे। घर में भी नित्य पूजा-पाठ होता था। आस-पास के चार-छः गाँवों में उन्हीं की बरतेसरी थी। भिक्खू को, जो न खास पढ़ा-लिखा था, न पूजा-पाठ से दिन शुरू करने वाला कर्मकाण्डी, कौन अपने घर शादी-ब्याह पढ़ने बुलाता। लेकिन जब एक साथ कई शादियाँ पड़तीं तो उसकी पूछ होती थी। पंडित गजधर अकेला कहाँ-कहाँ जाता। ऐसे में लोग भिक्खू को बुलाने आते। धीरे-धीरे भिक्खू को कुछ स्थायी यजमान भी मिल गए। कुछ गरीब घर के लोग जो पंडित गजराज की नित बढ़ती दक्षिणा-दरों को देने की स्थिति में नहीं थे, भिक्खू के पास आ गए। पंडित गजराज ने इसका विरोध किया। अपनी बिरादरी की सभा में यह सवाल भी उठाया था कि भिक्खू उसकी बरतेसरी छीन रहा है। लेकिन भिक्खू का काम आगे बढ़ता गया। शादी-ब्याह में खर्च की किफायत हर आदमी चाहता था और भिक्खू कम पैसों में ब्याह पढ़ देता था। लेकिन पंद्रह-बीस घरों की बरतेसरी में क्या आमदनी होती। ब्याह-शादियाँ तो दो-तीन साल में एक बार होती थीं। सत्यनारायण की कथा और इस तरह के दूसरे अनुष्ठान बड़े घरों में होते थे और इसमें पंडित गजराज को ही बुलाया जाता था। अलबत्ता श्राद्ध के दिनों में भिक्खू की मांग बढ़ जाती थी क्योंकि गजराज बहुत व्यस्त होते थे। भिक्खू को जब पहली बार श्राद्ध पढ़ने के लिए एक गरीब घर से बुलावा आया था, तो उसे श्राद्ध के मंत्र नहीं आते थे। उसने अमरकोश के दो श्लोक पढ़ कर ही श्राद्ध छुड़वा दिया था। जबान में कुछ हकलापन था। स को वह फ की तरह बोलता था। अमरकोश के श्लोक से श्राद्ध पढ़ने की घटना अब सारे गाँव में प्रसिद्ध हो गई थी और गाँव के लोग उसे चिढ़ाने के लिए 'यस्य ज्ञानदयासिन्धो' को 'यफ्यो ज्ञानदयाफिधो' कहते थे। अब तो वह श्राद्ध के मंत्र भी सीख गया था। लेकिन एक तो उसका हकलाना और दूसरे निखट्टू के रूप में उसकी प्रसिद्धि—इन दो कारणों से वह पंडिताई के काम में जम नहीं पा रहा था।

अमर जब उसके घर पहुँचा तो रात को चूल्हे में जलाने के लिए बाँस की एक सूखी नाल को चीर रहा था। अपने छोटे भतीजे को दरी लाने की आवाज देकर वह बोला, "अमर भैया, थोड़ी

देर बैठो। मैं इसे चीर लेता हूँ। लकड़ी की बड़ी समस्या हो गई है। बाँस के दो बूटे बचे हैं। उसके बाद क्या होगा।"

भिक्खू के भतीजे सात-आठ साल के लड़के ने पुआल की बनी चटाई बिछा दी। अमर उस पर बैठ गया। शीघ्र ही वह बहुत पीछे अपने बचपन में पहुँच गया। उस वक्त उसकी अवस्था चार-पाँच साल की रही होगी। शायद किसी लड़की की शादी थी। चौघरे के बीच इस लंबे-चौड़े आँगन में बरात के लिए एक बहुत बड़ा गलीचा बिछा था। वह गलीचा इतना अच्छा था कि उस पर पैर रखते उसे डर लगा था। घर के बड़े वरांडे में धान कूटने की एक मशीन लगी थी जो पैर से चलती थी। लकड़ी के लट्‌ठे के एक सिरे पर मूसलनुमा पत्थर कसा हुआ था। लट्‌ठे के दूसरे सिरे को पैर से दबाया जाता था तो मूसल ऊपर उठता था और पैर उठाने पर मूसल धान की ओखली में गिरता था। गाँव में सिर्फ तीन घरों में धान कूटने की मशीन थी। अमर ने नजर घुमा कर देखा, अब उसी चौघरे की दीवारें जगह-जगह से दरक गई हैं। चौघरे का एक-एक कमरा अब बँट गया है। भिक्खू के हिस्से में एक कमरा और आधा वरांडा आया है। सामने वाला घर बंद है क्योंकि अब उस घर का एक भी व्यक्ति जीवित नहीं है। दूसरे घरों में भी औरतें और बच्चे रह गए हैं। पुरुष सब बाहर अपनी-अपनी नौकरियों पर हैं। बाईं तरफ का घर 'ऊपरली' काकी का है। उसकी दीवारें अब गिरने लगी हैं। ऊपरली काकी उस टोले में सब से समृद्ध मानी जाती थी। अकेली जान थी और मंदिर की जमीन की आमदनी इतनी थी कि उसके घर में अनाज के पेड़ हमेशा भरे रहते थे। लोगों का यह भी विश्वास था कि ऊपरली काकी के पास सोना-चाँदी भी काफी है। इसी विचार से बुढ़ापे मे ऊपरली काकी की देखभाल करने के लिए कई लोगों ने अपनी सेवाएँ पेश की थीं। सब से पहले उसका भतीजा केशव उसका धर्मपुत्र बना। लेकिन बहुत जल्दी ही ऊपरली काकी ने भाँप लिया कि वह उसे लूट रहा है और जमीन जायदाद उसके नाम लिखने के बाद वह उसे दाने-दाने के लिए तरसा देगा। उसके दूसरे भतीजे स्वरूप ने फुसलाकर उसे अपने साथ मिला लिया। फिर उससे भी वह नाराज हो गई। इसी तरह कई धर्मपुत्र बदलने के बाद वह श्रीधर के शिकजे में कस गई। एक दिन बुखार में जब वह बेहोश पड़ी हुई थी तो श्रीधर ने उसके अँगूठे का निशान कागजो पर लगा लिये और इस तरह वह उसकी सारी जायदाद का मालिक बन बैठा। ऊपरली काकी पानी के घूँट को तरसती मर गई लेकिन उसके बाद कहते है श्रीधर को बडी निराशा हुई। उसके घर मे पन्द्रह-बीस चाँदी के रुपयो को छोड़ कर कुछ नही निकला।

भिक्खू ने बचपन में अच्छी खासी रईसी के दिन भी देखे होगे, भले ही अब उसे उनकी याद न हो और दम घोंटने वाली गरीबी भी देखी। अब उसकी स्थिति इतनी खराब तो नही थी लेकिन फिर भी उतनी तंगी तो थी ही कि वह अपनी शादी की उम्मीद छोड चुका था। घर के चार प्राणियों को पालना मुश्किल हो रहा था।

अमर ने जब भिक्खू से बाँबरी के घर सत्यनारायण की कथा पढ़ने की बात की तो वह अमर की तरफ देखता रह गया। उससे कुछ उत्तर नही बना।

"क्या सोच रहे हो?" अमर ने पूछा।

"सोच रहा हूँ कि आप मजाक कर रहे है या अपने मन की बात कह रहे है।"

"मजाक के वक्त में मजाक होता है। इस वक्त मैं बिल्कुल मजाक नहीं कर रहा हूँ। इस में हर्ज ही क्या है?"

"बाहर की जातों में सत्यनारायण की कथा पढूँगा तो कुछ काम दूसरे घरों में मिलता है वह भी नहीं मिलेगा।"

"नहीं, ऐसा नहीं होगा। जिन घरों में तुम्हारी बरतेसरी है उनमें वह बनी रहेगी क्योंकि ये लोग पंडित गजराज के नखरे नहीं झेल सकते। इसके अलावा तुम्हारे लिए बरतेसरी का एक बड़ा क्षेत्र खुल जाएगा। हाँ तुम्हें धर्मभ्रष्ट होने का डर हो तो ख्याल छोड़ दो।"

नहीं धर्मभ्रष्ट तो क्या होगा। आँगन में बैठकर कथा पढ़नी होगी। सूखा अनाज और नकद दक्षिणा लेकर घर आ जाऊँगा। अब तो उन लोगों के आँगन-द्वार भी काफी साफ-सुथरे होते हैं। लेकिन गाँव के लोग क्या कहेंगे?"

"यह बात सोच लो। गाँव के लोगों की परवाह करनी है तो इरादा छोड़ दो। लेकिन मैं कहता हूँ, गाँव के इन लोगों ने तुम्हारी मुसीबत में साथ दिया जो तुम्हें इनकी परवाह करनी चाहिए?"

"और घरवाले क्या कहेंगे? भाभी और अम्माँ तो नहीं मानेंगी।"

"कुछ दिन बक-झक कर सब चुप हो जाएँगी। बड़ी बात है कि तुम अपने मन में निश्चय करो। तुम्हें यह काम बुरा लगता है तो मत करो। और अगर तुम समझते हो कि आदमी को तोड़नेवाली ऊँच-नीच की दीवारों को तोड़ने की कोशिश करनी चाहिए, तो आगे बढ़ो। मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

"क्या आप चलेंगे, कथा सुनने?" भिक्खू ने पूछा।

"मैं कथा-वथा तो नहीं सुनता लेकिन तुम्हारे साथ जरूर चलूँगा। रमा भी जाएगी और शायद माँ भी।"

"माँ जी भी जाएँगी?"

"भई, हमारे घर के सब लोगों को जाना पड़ेगा। तुम शायद नहीं जानते, पूरब की दुल्हन रमा की कंगन बहन बनी है। वह तीज-त्यौहार पर हमारे घर आती है। फिर बाँबरी तो मेरा बचपन का दोस्त है। बुधीसिंह और नीलू भाभी भी जाएँगे।"

भिक्खू के चेहरे पर कुछ रौनक दिखाई दी। वह तैयार हो गया। अमर को यह काम हो जाने से बड़ी राहत मिली।

उठते-उठते अमर बोला, "भई, एक बार फिर सोच लो। गाँव में हैल्ला जरूर मचेगा। हो सकता है लोग तुम्हारा हुक्का-पानी बंद कर दें।"

भिक्खू अब निश्चय कर चुका था, उसने कहा–

"हुक्का तो अब वैसे ही बंद हो गया है। बीड़ी पीता हूँ और पानी के लिए भी अब सरकारी नल लग गया है। फिर मेरी कौन अब शादी हो रही है जो इन लोगों की खुशामद करूँ।"

अमर वहाँ से चलकर बाँबरी के घर पहुँचा। उसने जब सारी बात बाँबरी को बताई तो वह प्रसन्न हुआ। वह बोला–

"भिक्खू बझिया तैयार हों तो हमारी बिरादरी में से ही दो सौ घरों में उनकी बरतेसरी हो जाएगी। उन्हें किसी चीज की कमी नहीं रहेगी।"

अमर को पूरब से मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके चेहरे पर तेज झलक रहा था। उसे वह दिन याद आया जब पूरब बहुत छोटा था और खटिया में लाचार पड़ा रहता था। उसके जमादार बनने की खुशी बाँबरी को जितनी थी, अमर को शायद उससे कम नहीं थी।

पानी को लेकर गदियारी गाँव में आए दिन लड़ाई-झगड़े होते रहे हैं। कभी मार-पीट की नौबत तो नहीं आई लेकिन गरमी भरे शब्दों का आदान-प्रदान और बर्तनों के लिए छीना-झपटी, फिर उसके बाद दो-चार दिन बोलचाल बंद, आम घटनाएँ हो चुकी थीं। गाँव में तीन कुएँ थे जिनमें से एक तो सूख गया था। शेष दो कुएँ गाँव के बीचोंबीच थे और वे इतने पुराने हो गए थे कि उनके चबूतरों पर घड़ों की रगड़ से सैकड़ों गोल-गड्ढे बन गए थे। एक को सत्यनारायण का कुआँ और दूसरे को ठाकुरद्वारे का कुआँ कहा जाता था। चूँकि सत्यनारायण का मंदिर मियों के टोले में था और ठाकुरद्वारे का मंदिर पंडित दयाराम के दादा ने बनवाया था, इसलिए इन दोनों कुओं पर मियों और पंडितों का अधिकार माना जाता था हालाँकि दोनों कुएँ सब गाँव वालों के लिए खुले थे लेकिन हरिजनों के लिए उसकी मेड़ पर चढ़ना भी मना था। सैकड़ों साल से यह व्यवस्था चली आ रही थी और इसमें किसी प्रकार की अड़चन नहीं आई थी।

लेकिन इन दो कुओं के अलावा गाँव के बाहर तीन ओर तीन-जोड़ी बावलियाँ थीं। प्रत्येक दिशा में दो बावलियाँ, एक भले मानसों के लिए और एक बाहरकी जातों के लिए। बरसात और सरदियों के मौसम में पानी की कोई दिक्कत नहीं होती थी किंतु गरमी के दिनों में काफी बड़ी समस्या लोगों के सामने खड़ी हो जाती थी। बावलियों का पानी भी कम हो जाता और कुएँ तो इतने सूख जाते कि टीन के डिब्बों में नीचे छेद डाल कर तल से एक-एक गड़वी पानी खींचना पड़ता। बारी-बारी से लोग अपने घड़े भरते। एक घड़ा भरने में आधा-पौना घंटा लग जाता। परिणाम-स्वरूप दोनों कुओं पर सुबह से शाम तक कुएँ की दीवारों से टकराते टीन के डिब्बों की आवाजें सुनाई देतीं और चबूतरों पर हमेशा बारी लेने के लिए लोगों की भीड़ लगी रहती। कुएँ के तल से निकला पानी यद्यपि मिट्टी कंकर मिला गँदला होता था लेकिन छानने के बाद वह पीने लायक हो जाता था। दोनों कुओं का पानी बहुत अच्छा माना जाता था। लोग बावली से पानी लाने के बजाय कुएँ का पानी ही पीने के लिए भरना चाहते थे। जिन लोगों को खेत-खलिहान के काम की वजह से समय कम मिलता था, वे सुबह बावलियों से घड़े भर लाते थे।

लेकिन गरमी के दिनों में बावलियाँ भी सूखने लगती थीं और अक्सर भलेमानसों की बावलियाँ जल्दी सूख जाती थीं। ऐसे समय भलेमानस सुबह तड़के उठकर हरिजनों की बावलियों से घड़े भर लाते थे। इससे पहले कि हरिजनों के घड़े बावली के पानी में डूबें, भलेमानसों द्वारा रात के ताजे पानी से घड़े भर लाने में कोई बुराई नहीं मानी जाती थी। हरिजनों में इस बात को लेकर कभी-कभी असंतोष प्रकट हो जाता था कि उन्हें अपनी बावलियों से भी सुबह तब तक पानी नहीं मिलता जब तक भलेमानसों के सारे घड़े नहीं भर जाते। इसके अतिरिक्त उन्हें कुओं में पानी भरने की सख्त मनाही थी।

कुल मिलाकर गदियारी गाँव के छोटे-बड़े सभी गरमी के दिनों में पानी के लिए काफी परेशान रहते थे। आजादी मिलने के बाद पानी की समस्या को हल करने के लिए प्रयत्न शुरू हुए। गरमी के दिनों में जब शहरों में काम करने वाले नौकर घर आते, तो इस समस्या को हल करने के लिए सभा-जलसे करते और प्रस्ताव बना कर सरकारी अधिकारियों के पास भेजते। गर्रामयाँ खत्म होतीं तो सब अपनी-अपनी नौकरियों पर चले जाते और उनके प्रस्ताव सरकारी फाइलों में खो जाते। अगली गरमियों में फिर प्रस्ताव बनते और सरकारी अधिकारियों के पास शिष्टमंडल जाते। यह सिलसिला बीस साल तक चलता रहा। फिर जब बीस साल से कुर्सी पर बैठी सरकार को लगा कि लोगों में कुछ भी बदलाव न होने के कारण असंतोष है और भेड़ों के सिर पर सींग उगने लगे है, तो गदियारी गाँव की पानी की स्कीम हरकत में आई। एक मंत्री के दौरे में घोषणा की गई कि गाँव में बस पहुँचेगी और पानी की नाली भी आएगी। बस के लिए कच्ची सड़क तो लोगों ने अपनी मेहनत से बना ली और चूँकि किसी रसूखवाले आदमी को बस-रूट मिला था, इसलिए बस भी चुनाव के कुछ दिन बाद आने लगी, लेकिन पानी की स्कीम फिर अगले चुनावों तक के लिए टल गई। पता चला कि गदियारी की पानी की स्कीम के लिए जो पैसा मंजूर हुआ था वह मुख्य मंत्री के चुनाव क्षेत्र के किसी और गाँव की पानी-योजना में चला गया हालाँकि उस गाँव का कागजों में कहीं नाम नहीं था। 1972 के चुनावों में अलबत्ता पानी की नाली गाँव में आ गई, लेकिन उससे पानी की समस्या हल नहीं हुई। कई नई समस्याओं को जरूर उसने खड़ा कर दिया।

बात यह हुई कि पानी की नाली तीन मील दूर एक चश्मे से लाई गई। जिन गाँवों के बीच से नाली गुजरती थी उन्होंने दावा किया कि नाली का पानी उन्हें भी मिलना चाहिए। उन गाँवों में पहले से काफी पानी था। बारह महीने नहर का पानी भी उन्हें मिलता था और उनकी बावलियाँ, कुएँ भी पानी से भरे रहते थे। लेकिन नाली आ रही थी तो घर में ही नल लगाने के लिए कौन उत्सुक न होता? इन गाँवों के लोगों ने पानी की स्कीम के लिए कभी कोई चंदा नहीं दिया था, लेकिन बड़ी नाली में से छोटी निकालकर अपने घरों में नल लगाने का खर्चा करने के लिए सब तैयार हो गए। इधर गदियारी गाँव के लोग जो बहुधा अब गरीब नौकरी पेशा थे, इतना तो सोच ही सकते थे कि गाँव के बीच एक हौदी में नाली डाल दी जाए और उस हौदी में तीन-चार नल लगा दिए जाएँ। रास्ते के लोगों की तमाम माँगों को पूरा करते हुए जब गदियारी गाँव में नाली पहुँची तो उसकी धार इतनी पतली रह गई कि एक घड़े को भरने में दस-बारह मिनट लग जाते। कभी-कभी तो रास्ते के सारे नल खुलने पर धार बिल्कुल ही सूख जाती।

पानी की हौदी बनवाने के लिए गाँव के लोगों ने चंदा जमा करके थोड़ा सा सामान खरीद लिया लेकिन हौदी नहीं बनी। मियाँ यशवंतचंद और पंडित दयाराम हौदी को अपने घर के निकट इस आधार पर बनवाना चाहते थे कि वह जगह ऊँची है और भविष्य में कभी सब घरों में पानी के नल लगाने की स्कीम बनी तो वहाँ से पानी जा सकेगा। लेकिन दूसरे लोग गाँव के बीचोंबीच हौदी बनाने पर अड़ गए। इसी झगड़े में जो सीमेंट वगैरा खरीदा था वह खराब हो गया और फिर पूरा सामान खरीदने के लिए चंदा इकट्ठा नहीं हो सका। नाली को गाँव की बीच

की खुली जगह पर कुछ पत्थरों पर टिका दिया गया और वह इसी स्थिति में लोगों के काम आ रही है। गरमी के दिनों में इसका पानी बहुत कम हो जाता है, या सूख जाता है लेकिन और दिनों में यह गाँव वालों के लिए काफी उपयोगी हो गई है।

इस नाली के लिए हरिजनों ने चंदा नहीं दिया था, या यूँ कहें कि उन से नहीं लिया गया था, अतः इसके पानी में उनका हिस्सा भी नहीं माना जाता था। लेकिन अमर और उसके एक-दो साथियों ने यह आवाज उठाई थी कि सरकार की किसी भी स्कीम में सब लोगों का बराबर हिस्सा होता है। सरकारी अफसरों ने भी उनकी बात का समर्थन किया था इसलिए हरिजनों को भी वहाँ से पानी भरने की सुविधा मिल गई थी।

बाँबरी के घर में "सत्तनरैन" की कथा की तैयारियाँ पूरे हरिजन टोले में बड़े उत्साह से हो रही थीं। पहली बार ऐसा अनुष्ठान हो रहा था कि एक पंडित शास्त्रों की विधि के अनुसार चौक पर बैठकर सारा काम करने वाला था।

पूरब की घरवाली (रति) तीन साल से पूर्णमासी का व्रत लगातार कर रही थी। इस अवधि में उसने एक बार भी नागा नहीं किया था। वह रमा की कंगन बहन थी। उसके पास आना-जाना बराबर होता था। अमर की माँ भी चूँकि पूर्णमासी का व्रत रखती थी इसलिए उसे व्रत के दिन का पता लगाने में कोई दिक्कत नहीं होती थी। खुद लक्ष्मीदेवी या रमा उसे ठीक वक्त पर याद दिला देतीं। हरिजनों के टोले में और भी कितनी ही बहुएँ व्रत करने लगी थीं लेकिन उनके व्रत में कई बार नागा हो जाता था। अब तो रति को सब अपना गुरु मानने लगी थीं और उसी की देखा-देखी विभिन्न व्रतों पर सारी धार्मिक क्रियाएँ करने लगी थीं। लक्ष्मीदेवी के कहने पर रति ने पूर्णमासी का अनुष्ठान कराने और सत्यनारायण की कथा कराने का इरादा बहुत दिनों से कर रखा था। अब पति की तरक्की ने उस इरादे को पूरा करने का अवसर जुटाया था।

सत्यनारायण की कथा के बाद बिरादरी के सौ-पचास लोगों को भोज भी दिया जाना था। उसकी सारी व्यवस्था का भार घीर्णू और हीरा पर था जो बाजार से सारा सामान पिछले दिन खरीद लाए थे। पानी भरने की ड्यूटी हरिजन टोले की औरतों को दी गई थी।

सुबह-सुबह जब आठ-दस औरतों ने दो-दो घड़े लेकर पानी की नाली को घेर लिया तो शौचादि से निवृत्त होकर जंगल से लौटने वाले पंडित देवीदत्त को नाली पर हाथ-मुँह धोने का मौका नहीं मिला। कानों में जनेऊ लटकाए, मुँह में दातुन चबाते हुए वे बड़ी देर तक नाली के खाली होने का इन्तजार करते रहे। इतने में हरिजन टोले की दो-तीन औरतें और घड़े लेकर आ गयीं। उधर शौचादि के बाद हाथ-मुँह धोने वाले दो लोग और वहाँ आ गए और इन्तजार करने लगे। पंडित देवीदत्त झल्लाकर बोले, "लगता है अब हमें गाँव छोड़कर कहीं और जाना पड़ेगा। ये हरिजन तो हमारे सिर पर चढ़ते जा रहे हैं।"

उनकी बात का न किसी ने जवाब दिया, न किसी ने समर्थन किया तो उनका गुस्सा और भी बढ़ गया। पाँव पटकते हुए वे घर की तरफ चल दिए। चलते-चलते उन दो आदमियों को सुनाकर बोले, "गाँव के सब लोग नामरद हो गए हैं। कल ये लोग कुएँ से पानी भरने लगेंगे और

परसों ठाकुरद्वारे का दरवाजा तोड़कर अन्दर घुस जाएँगे। मैं कहता हूँ इस गाँव में एक दिन कहर मचेगा कहर!"

पंडित देवीदत्त की ऊल-जलूल बकने की आदत थी लेकिन कभी-कभी गलत मौके पर कही गई हल्की-सी बात भी बड़ी बन जाती है। पंडित देवीदत्त की वह बात भी गाँव में फैल गई और इसका प्रभाव सवर्णों में और हरिजनों में अलग-अलग हुआ। सवर्णों को लगा कि बाँबरी के घर सत्यनारायण की कथा उनकी धार्मिक भावना के लिए एक चुनौती थी। इस बात को लेकर खुसर-पुसर तो तीन-चार दिन से हो रही थी लेकिन पंडित देवीदत्त की भविष्यवाणी ने उसे गरमा दिया। दूसरे गाँव में पंडित गजधर तक भी यह बात पहुँची। उन्हें लगा कि धार्मिक अनुष्ठानों की पवित्रता को बनाए रखने का दायित्व उन्हीं के कंधों पर है, यद्यपि मन ही मन वे भिक्खू की बरतेसरी का दायरा बहुत बढ़ जाने की संभावना से चिंतित थे। शाम तक दोनों तरफ तनाव बढ़ गया और सब को झगड़े की आशंका होने लगी।

रमा का छठा महीना चल रहा था। इन दिनों उसे चकोतरे खाने की बहुत इच्छा होती थी। रति अपने पेड़ के तीन चकोतरे रमा के लिए लाई थी। रोज की तरह वह दरवाजे के बाहर की तरफ देहली से सटकर बैठी हुई थी। दरवाजे के अन्दर की तरफ देहली से सटी रमा बैठी थी और उसके पीछे थी नीलू। सर्दियों में दोपहर के वक्त चकोतरे खाने का अपना ही आनन्द होता है। नीलू ने चकोतरे छीलक उसमें नमक-मिर्च लगा दिया था और वह एक-एक टुकड़ा रमा को दे रही थी। रति का आज व्रत था। रात को सत्यनारायण की कथा सुनने के बाद ही वह कुछ ले सकती थी। लक्ष्मीदेवी बाहर से आई। रति ने "पैरांबदी बझैणिए" कहकर उन्हें रास्ता दिया। लक्ष्मीदेवी रुककर बोली, "अरी मुई! पूर्णमासी का अनुष्ठान करने जा रही है तो अपने ये पुराने तौर-तरीके भी तो बदल कुछ।"

रति ने पूछा, "कौन से तौर-तरीके?"

"ये बझिया-बझैणी कहने के।" लक्ष्मीदेवी बोली।

रति हँस पड़ी, "आदत धीरे-धीरे तो छूटेगी और फिर जिनके लिए मन में श्रद्धा हो उनके लिए बोलना ही चाहिए।"

"सुना है तुम्हारे यहाँ कथा की बात को लेकर लोगों में बड़ी नाराजगी है।" लक्ष्मी ने फिर कहा।

"नाराजगी बेमतलब की है।" रति बोली, "कोई अपने घर ढोल बजाए या सूप, इससे दूसरे के पेट में क्यों दर्द होता है" भगवान् की कथा है।"भगवान् क्या भलेमानसों का ही है, हमारा नहीं?"

लक्ष्मीदेवी मुस्करा दी, "जब तक भलेमानस तुम लोगों को बाहरके कहना नहीं छोड़ेंगे और तुम लोग उन्हें भलेमानस कहना नहीं छोड़ोगे तब तक दोनों की नीयत नहीं बदलेगी, समझी?"

लक्ष्मीदेवी अन्दर आकर अपने काम में लग गई। तीनों सहेलियाँ बड़ी देर तक बातें करती रहीं। रति ने उन्हें बताया कि सत्तनरैन की कथा के लिए क्या-क्या तैयारियाँ की गई हैं। बाजार

से चार टोकरे सेब और चार टोकरे केले लाए गए हैं। रति के साथ हरिजन टोले की पाँच और बहुएँ भी अनुष्ठान में शामिल हो गई हैं।

बाँबरी के आँगन में दिन भर चहल-पहल बनी रही। आँगन को झाड़-बुहारकर गोबर से लीपा गया था। वैसे हरिजनों के दो-चार घरों को छोड़कर जहाँ लड़के पढ़-लिख गए थे या बाहर की दुनिया देख आए थे, बाकी के घरों में रहन-सहन का पुराना ढर्रा ही चल रहा था। साफ धुले हुए कपड़े सिर्फ शादी-ब्याह के मौकों पर या मेलों में पहने जाते थे। आम दिनों में मैले से मैले और फटे कपड़ों से काम चलाया जाता, इसलिए नहीं कि वे कपड़े बना नहीं सकते थे, बल्कि इसलिए कि अच्छे कपड़े पहनकर बाहर निकलने में उन्हें हिचक होती थी या वे आदत से मजबूर होते थे। घरों के अन्दर भी सफाई की तरफ उनका ध्यान बहुत कम जाता था। ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों, रसोई के बर्तन-भांडों और आँगन-द्वार की सफाई में वे अपनी पुरानी आदत के अनुसार लापरवाह थे। आर्थिक स्थिति इतनी बुरी नहीं थी लेकिन पुराने संस्कार और शायद शिक्षा की कमी भी उनके रहन-सहन के ढंग को बदलने में बाधक थी। फिर भी वे धीरे-धीरे बदल रहे थे। लेकिन बदलने के लिए उनके सामने आदर्श था गाँव की बड़ी जातियों का जिनके लिए उनकी जबान पर भलेमानस शब्द रूढ़ हो गया था। उनके बाहरी तौर-तरीकों की तो वे नकल कर रहे थे लेकिन अपने संस्कारों को बदलने में कठिनाई अनुभव कर रहे थे।

बाँबरी के घर की तरह लोभू सेठ का घर और घीणूँ का पूरा खानदान अब काफी बदल चुका था। साटे का आँगन-द्वार भी साफ-सुथरा रहता था क्योंकि उसका लड़का स्कूल में अध्यापक हो गया था। जबर्दस्ती नसबंदी के बाद उस लड़के की मृत्यु हो गई तो उसकी माँ पगला सी गई थी और उसकी दुलहन ने चुपचाप वैधव्य की सफेद चादर ओढ़कर सारा जीवन व्रत-पूजा में लगाने की ठान रखी थी। सांतो एक बहुत सुंदर लड़की थी। जब वह दुलहन बनकर गाँव में आई थी, तो गाँव के बड़े-बड़े घरो की बहुएँ उससे बातें करने के लिए कोई न कोई बहाना ढूँढ़ती थीं। लोभू सेठ की बहू, डूमनूँ की घरवाली और पूरब की घरवाली भी देखने में खासी अच्छी थीं लेकिन सांतो में तो ऐसी मासूमियत थी कि लगता था वह किसी कलाकार के हाथों की गढ़ी हुई मूर्ति है। रति, सांतों, डूमनूँ की घरवाली किरनी और घीणूँ के बेटे उम्दू की घरवाली मंगला के साथ सत्यनारायण की कथा में बैठने वाली सिराज की घरवाली थी।

सिराज की घरवाली सुरमा हरिजन टोले में ही नहीं गाँव-भर में अपनी अलग हैसियत रखती थी। सिराज जब उसे किसी शहर से ब्याहकर लाया था तो उसका बनाव-सिंगार एक महारानी जैसा था। खुद सिराज जब कोट-पतलून, बूट और सिर पर अंग्रेजी टोपी पहन गाँव के चौराहे पर खड़ा हुआ था, तो पंडित श्रीराम तक ने उसे अंग्रेज साहब समझ कर जय-जयकार की थी। कई साल बाद सिराज घर आया था, इसलिए उसे पहचानने में प्रायः सभी को कठिनाई हुई थी और रंग-रूप तो ऐसा निखरा था कि पूरा अंग्रेज लगता था। वह किसी अंग्रेज साहब की कोठी पर खानसामा था और सुरमा उसी अंग्रेज साहब के पास आया थी। घास-फूस के घुटन-भरे झोंपड़े में आकर सुरमा का दम घुटने लगा। उसने तीन-चार बार भागने की कोशिश की लेकिन हर बार सिराज उसे पकड़ कर ले आता और फिर खूब पीटता। आखिर उसने अपने

को किस्मत के हवाले कर दिया लेकिन सिराज के लिए कोई बच्चा नहीं जना।

लिपे-पुते आँगन में रमा और नीलू ने चावल के आटे और लाल, पीले, नीले रंगों के साथ बड़ा चौक बनाया था। आँगन के चारों तरफ ऊँचे तोरण बांधे गए थे। लोगों के बैठने के लिए दरियाँ बिछी थीं। भिक्खू पंडित के अतिरिक्त भलेमानसों में अमर, बुधीसिंह और उसके घरवाले भी आने वाले थे, इसलिए आँगन के एक तरफ उनके लिए अलग दरी बिछाई गई थी।

ठीक समय पर भिक्खू पंडित ने सत्यनारायण की कथा पढ़नी शुरू की। आँगन मर्द-औरतों और बच्चों से खचाखच भरा हुआ था। जिन्हें बैठने की जगह नहीं मिली वे एक-दूसरे को धकेलते हुए गोल दायरा बाँध कर खड़े थे। अमर के साथ बुधीसिंह, र [illegible] और गरीबू भी आए हुए थे। अमर की माँ लक्ष्मीदेवी भी रमा, नीलू और मुकुल के साथ अलग दरी पर बैठी हुई थी। पंडित भिक्खू के सामने रति, सांतो, किरनी, मंगला और सुरमा हाथ में लाल डोरी बाँधकर बैठी थीं।

भिक्खू कथा पढ़ रहा था, लेकिन बीच-बीच में उसका ध्यान भटक जाता था। कभी सामने बैठी चार जवान औरतों पर उसकी नजर जाती और उसको अपने क्वाँरेपन का पैंतीसवाँ साल बुरी तरह कचोटने लगता। अगर सांतो की नजरों से उसकी नजर टकरा जाती तो उसके सारे बदन में झुरझुरी पैदा हो जाती। वह झट से अपनी नजरें हटाकर सामने रखी पुस्तक पर गड़ा देता। फिर एकाएक उसका ध्यान पंडित गजधर की तरफ चला जाता तो उसे एक भय घेर लेता। वह बड़ी तेजी से कथा को पढ़े जा रहा था। उसकी कोशिश थी कि जितनी जल्दी हो, यह अनुष्ठान खत्म हो और वह सही-सलामत अपने घर पहुँच जाए।

कथा खत्म होते ही उसने शंख बजाकर आरती का संकेत दिया। लोगों के उठने और आरती के लिए खड़ा होने में एक हलचल हुई और उसी हलचल में कुछ लोग लाठियाँ लेकर अन्दर घुस आए। एक व्यक्ति ने आते ही आरती की थाली को लाठी मारकर गिरा दिया। कथा में आए हरिजन टोले के लोग भी सतर्क हो गए। हमला करने वालों की पिटाई होने लगी। एक लठैत के आगे लक्ष्मीदेवी आकर खड़ी हो गई और उसके हाथ की लाठी छीन ली। लठैत ने लक्ष्मीदेवी को धक्का देकर गिरा दिया जिससे उससे बाँह में काफी चोट आयी। दो-तीन मिनट में सब कुछ हो गया। चार लठैतों को पकड़ लिया गया, बाकी भाग गए।

पकड़े गए चारों लठैतों को पहचानने में कोई कठिनाई नहीं हुई। वे दूसरे गाँव से लाए गए थे। जो लोग भाग गए उनमें गाँव के भी कुछ लोग थे। लोगों ने उन्हें भी पहचान लिया था।

दूसरे दिन इस घटना को लेकर गाँव में खूब उत्तेजना रही। पंडित दयाराम के स्वर्गवास के बाद गाँव की पंचायत पंगु हो गई थी। जब से इस गाँव में पंचायत बनी थी, पंडित दयाराम ही सरपंची का बोझ ढोते थे। पंचायत एक्ट क्या है, पंचायतों के क्या अधिकार हैं, क्या काम हैं, इन सवालों का जवाब पंडित दयाराम जानते थे और वे अब नहीं थे। शेष चार पंचों में एक हरिजन सदस्य घीणूं था। एक महिला सदस्य थी और शेष दो में से एक मियों के टोले का एक ब्राह्मणों के टोले का सदस्य था। चारों पंचों को पंचायतघर में इकट्ठा तो किया गया लेकिन सरपंच के बिना पंचायत की कोई कार्रवाई न चल सकी। फिर भी गाँव के पन्द्रह-बीस लोगों के सामने

हरिजनों पर लाठियों से हमला करने वाले ı लोगों के नाम लिये गए और उनकी सूची भी बनाई गई। चूँकि कई लोग दूसरे गाँव के थे, कुछ लोगों ने इस मामले को पुलिस में देने का सुझाव दिया।

साटे की घरवाली, सांतों की सास गुन्नी को छोड़कर हरिजन टोले के सभी लोगों का विचार था कि इस मामले को पुलिस में दे दिया जाए। लेकिन गुन्नी की एकमात्र आवाज थी कि पुलिस एक जंगली महकमा है जो कसूरवार और बेकसूर के बीच भेद नहीं करता है और दोनों को लूटता है। जब से गुन्नी का इकलौता लड़का जबर्दस्ती नसबंदी के बाद चल बसा था, गुन्नी को पुलिस पर और सरकारी अमले पर रंचमात्र भी विश्वास नहीं रहा था। पिछली रात सत्यनारायण की कथा सुनते वक्त उसने कितनी ही बार भगवान् से प्रार्थना करते हुए कहा था, "हे सत्तनरैन, हे महाराज, जिन्होंने मेरे बेटे की जान ली है, जिन्होंने मेरी सातों का सुहाग मिटाया है, उनका सत्यानास करना।"

बाँबरी और पूरब भी इस मामले को पुलिस में ले जाना चाहते थे लेकिन उससे पहले वे अमर से सलाह करना चाहते थे। दोपहर को जब अमर के घर दो-तीन और लोगों के साथ गए तो वहाँ गरीबू, भिक्खू, रघु और बुधीसिंह भी बैठे हुए थे। लक्ष्मीदेवी की बाँह में काफी दर्द हो रहा था। बाँह कुछ सूज भी गई थी। अमर पालंपुर के अस्पताल में जाकर एक्स-रे कराने के लिए जोर डाल रहा था लेकिन लक्ष्मीदेवी अपनी जिद्द पर अड़ी थी। उसका कहना था कि मैंने अब तक किसी डाक्टरी दवाई का सेवन नहीं किया और न डाक्टर की मदद ली। उसने बाँह पर हल्दी और सरसों का तेल मल कर पट्टी बाँध ली थी। लाख समझाने पर भी वह अस्पताल जाने को तैयार नहीं थी।

बाँबरी और पूरब ने जब मामले को पुलिस में देने की बात कही तो अमर ने कोई भी राय देने से साफ इन्कार कर दिया। उसका कहना था कि यदि वे ठीक समझें तो पुलिस में रिपोर्ट करा दें और न समझें तो सारे प्रसंग को भूल जाएँ। उसने कहा—

"पुलिस में तुम्हारा पौवा है तो जाओ रिपोर्ट करो। नही है, तो चुपचाप घर बैठो। पुलिस लोगों की रक्षक है, सेवक है इस स्वप्न को पूरा होने में अभी सौ साल और चाहिए। और इमरजेंसी की पुलिस तो नीम चढ़ा करेला होती है। स्वाद चखना हो तो जाओ।"

"लेकिन अमर भैया! हम करें क्या?" पूरब ने आगे बढ़कर कहा, "यह लोग जरा-जरा सी बात पर लाठियाँ लेकर हम पर चढ़ दौड़ें तो इसका कोई इलाज भी तो होना चाहिए। यह तो शुक्र था कि वे लोग कम थे और हम ज्यादा, नहीं तो कई लोगों की लाशें वहाँ पड़ी होतीं।"

भिक्खू बोला, "देखो, यह सारी कारस्तानी गजधर की है। वह असल में मेरे पीछे पड़ा है। वह समझता है कि उसने धर्म-कर्म का ठेका ले रखा है। मेरे खिलाफ वह सारी बिरादरी को भड़काएगा, लेकिन मैं अब सरे-आम उसके सिर पर जूता मारूँगा। बिरादरी की ऐसी-तैसी। अब तो मैं खुलेआम हरिजनों को बरतेसर बनाऊँगा। जिसे जो करना है कर ले। बिरादरी ने मुझे दिया क्या? मैं और मेरी माँ और मेरी भाभी-भतीजे दो जून पेट भर खाने को तरसे लेकिन किसी ने आगे आकर हमदर्दी तक नहीं दिखाई।"

रघु और गरीबू चुपचाप बैठे थे। बुधीसिंह ने भी बीच में बात करना उचित नहीं समझा। थोड़ी देर पहले वे अमर से इस विषय पर काफी बहस कर चुके थे। उन्होंने अमर को इस सारे विवाद में आगे आकर एक आन्दोलन छेड़ने के लिए उकसाना चाहा था किंतु अमर अपने को बिल्कुल अलग रखने के लिए संकल्प कर चुका था। उसका तर्क था कि दूसरों के कहने-समझाने से कोई असर नहीं होता। हर आदमी को अपने लिए सोचने का काम खुद करना चाहिए। वे जानते थे कि अमर का यह रवैया किन कारणों से बना है। सरकारी जमीनों के बटवारे को लेकर हरिजन टोले के कई लोगों ने अमर पर आक्षेप लगाए थे यद्यपि अमर ने उन्हें यह समझाने की कोशिश की थी कि कांग्रेस की नीयत सिर्फ टुकड़ा फेंक कर वोट जेब में डालने की है। क्योंकि वह जानती है कि जब तक हरिजनों और दूसरे अल्पसंख्यकों के वोट उस पार्टी को मिलते रहेंगे, तब तक उनकी सरकार को कोई खतरा नहीं हो सकता। लेकिन जो पार्टी तीस साल शासन चलाने के बाद भी इस देश की गरीबी पर जरा सी भी चोट नहीं कर सकी उसे वोट देते जाना गुनाह है। जितनी जमीनें हरिजनों को दी जा रही थीं उससे हरिजनों की स्थिति में कोई खास फर्क पड़ने वाला नहीं था लेकिन उससे एक निकम्मी और खुदगर्ज पार्टी की सरकार मजबूत बनती जा रही थी। पिछले तीस साल से इस देश में घूस देकर चुनाव जीतने की राजनीति चल रही थी और इसका सब से आसान शिकार थे पिछड़े वर्ग तथा अल्पसंख्यक वर्ग। अमर चाहता था कि ये लोग अपने तत्काल स्वार्थ को भूल कर देश की भलाई को ध्यान में रखकर अपने वोट का इस्तेमाल करें ताकि निकम्मी सरकार को समय-समय पर बदलना संभव हो।

बाँबरी और पूरब बड़ी आस लेकर आए थे कि अमर कुछ सलाह देगा। पुलिस में रिपोर्ट उन्हें ही लिखानी थी और वे अमर को पूछे बगैर यह काम नहीं करना चाहते थे। पुलिस में गवाही के लिए लोगों को बुलाया गया तो शायद अमर को और उनकी माँ को भी जाना पड़े। वे उन्हें इस परेशानी में नहीं डालना चाहते थे।

लक्ष्मीदेवी अन्दर के कमरे से निकलकर आई। उसकी बाँह पर पट्टी बँधी थी और लगता था कि उसमें अब भी काफी दर्द था। बाँबरी की तरफ देखकर बोली—

"पुलिस में रिपोर्ट करना चाहते हो तो जाओ लेकिन हम गवाही देने नही जाएँगे। लेकिन मैं पूछती हूँ तुम्हें मिलेगा क्या? और फिर यह झगड़ा क्या पहला और आखिरी झगड़ा है? अरे अब तो ऐसे झगड़े आए दिन होंगे। तुम हर बार पुलिस के पास दौड़ते रहोगे तो तुम्हारे घर-बार बिक जाएँगे। अपने को मजबूत करो। मिल जुल कर रहो ताकि कोई तुम्हारी तरफ टेढ़ी नजर से देखने की हिम्मत न करे। लोग कितना जोर लगा लें अब पहले जैसा जमाना तो रहेगा नहीं। ये लोग सोचते हैं कि जैसे तुम लोग पहले जूठा-पीठा खाकर और उतरन पहनकर जिंदगी काट लेते थे, वैसे अब भी काटें। लेकिन यह अब कैसे होगा? कोई आँधी को बाँध कर रखना चाहे तो कितने दिन बाँधे रखेगा?"

लक्ष्मीदेवी की बात सुनकर अमर को भी थोड़ा आश्चर्य हुआ। पंडित दयाराम के स्वर्गवास के बाद माँ की मनःस्थिति से अमर को काफी चिंता होने लगी थी। उसे लगा था कि माँ अपने आपको अब संभाल नहीं पाएगी। कई दिनों तक वह घर के अंदर ही रही थी और बहुत कम

बोली थी। उसकी स्थिति देखकर अमर कुछ दिनों के लिए उसे बाहर ले जाने की सोच रहा था। कई दिनों बाद माँ के इन उत्साह भरे शब्दों ने अमर को काफी हिम्मत दी। बाँबरी की तरफ देखकर वह बोला, "देखो भैया, माँ ने जो कुछ कहा है, उससे ज्यादा मैं भी नहीं कह सकता। लेकिन जो बात मैं अपनी तरफ से कहना चाहता हूँ वह यह है कि तुम सब लोगों को मिलकर फैसला करना चाहिए। किसी के कहने से काम करना ठीक नहीं। खुद सोच कर काम करना ही ठीक होता है। अगर उसमें कुछ गलत भी हो जाए तो भी कोई हर्ज नहीं। तुम समझते हो, मैं तुम लोगों से नाराज हूँ क्योंकि जमीनों के बारे में तुम लोगों ने मेरी सलाह नहीं मानी। लेकिन ऐसी बात नहीं है। मेरी नाराजगी तुम्हारे ऊपर नहीं है। मुझे दुःख है इस देश में तीस साल से चल रहे पाखंड पर। इस देश के नेताओं पर जो गरीबी की पूजा का भोग लगाकर मोटे होते रहे लेकिन गरीबों के लिए किया कुछ नहीं। सिर्फ बीच-बीच में हड्डी उनके आगे फेंकते रहे ताकि वे उसे चूसते-चूसते अपना ही लहू पीकर जीते रहें और उनकी पूजा करते रहें। तुम लोग ही क्यों, किसी को भी जमीन का छोटा सा टुकड़ा मिल जाए तो वह लेने से इंकार नहीं करेगा। मुफ्त में कोई चीज मिल जाए तो उसे कौन छोड़ेगा? मैं भी नहीं छोड़ूँगा। लेकिन इसके बदले कोई मुझ से उम्मीद करे कि मैं अपने आपको उसके हाथों में बेच दूँगा, तो यह मुझ से नहीं होगा। तुम लोगों ने सरकार के फेंके गए टुकड़े के बदले में अपने को अब तक बेचा है, आगे भी इसी तरह बेचते रहोगे। समाज में कहीं कोई बदलाव नहीं आएगा। गरीब गरीब होते रहेंगे और ऊपर के कुछ लोगों के पेट फूलते रहेंगे। पिछले तीस सालों से यह सिलसिला देश में चल रहा है और आगे न जाने कितने साल चलेगा? लेकिन यह सब बातें तुम नहीं समझ सकते। मैं किसी को भी नहीं समझा सकता। मेरी बात का गलत अर्थ ही लगाया जाएगा। इसीलिए मैं नहीं चाहता कि किसी को कुछ करने के लिए कहूँ। मैं किसी को कोई सलाह देना नहीं चाहता। मैं अपने को इस लायक समझता भी नहीं। मैं अपने लिए ही कुछ नहीं कर सका तो दूसरों के लिए क्या करूँगा? तुम देख रहे हो न मेरे घर की हालत क्या है? ठीक है भूखा रहने की नौबत कभी नहीं आई लेकिन सौ-दो सौ का खर्च सिर पर आ जाए तो घर के भाँडे ठीकर बिक जाएँगे।"

अमर न चाहते हुए भी बहुत कुछ कह गया था। सामने बैठे लोगों ने उसकी बातों को समझा या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता। बाँबरी और पूरब चुपचाप उठ कर चले गए। गरीबू, रघु और भिक्खू उनके पीछे चल दिए। बुधीसिंह उसके सामने बैठा था, चुपचाप। उसके पास कहने के लिए कोई शब्द नहीं थे। बड़ी देर चुप रहने के बाद बुधीसिंह ने कहा—

"भैया यह दुनिया तो यूँ ही चलती रहेगी। तुम इसके लिए अपनी दुनिया को कब तक बर्बाद करते रहोगे। तुम पढ़े-लिखे हो, गाँव में सब से ज्यादा पढ़े-लिखे हो। कहीं नौकरी कर लेते तो सुख से दिन बिताते। अब भी कोशिश करो तो नौकरी मिल जाएगी। कहीं चले जाओ और सुख से रहो। क्या रखा है इस गाँव में अब?"

अमर मुस्करा दिया, "अब तो भैया यहीं रहना पड़ेगा। नौकरी एक खास उम्र तक मिलती है। मेरी वह उम्र निकल गई है। बड़ी बात तो यह कि अब नौकरी मुझ से होगी भी नहीं। एक ढर्रे पर जिंदगी जीने की आदत हो गई है न, अब उसे बदलना आसान नहीं है।"

बुधीसिंह के चले जाने के बाद अमर उठ कर अपने खेत की तरफ चल दिया। वास्तव में वह एकांत में कहीं जाकर बैठना चाहता था। रमा या माँ के सामने होने पर भी वह कभी-कभी असुविधा महसूस करता था। उसे लगता था कि वे उसके चेहरे की तरफ टकटकी लगाकर देख रही हैं और सोच रही हैं कि उसे क्या हो गया है। अमर को इन दिनों खुद समझ नहीं आता था कि उसे क्या हो गया है।

कभी-कभी उसे लगता कि ये समाचारपत्र और ये पुस्तकें यदि वह न पढ़ता तो उसे सोचने का रोग न लगता। इमरजेंसी से बहुत पहले वह इमरजेंसी की कल्पना करने लगा था। एक व्यक्ति के पीछे भीड़ को आँख मीचकर चलता देखकर उसे लगता था कि हेमलिन के बीनवादक के पीछे देश भर के चूहे, उछलते-कूदते नदी में डूबने चले जा रहे हैं। 1971 के लोकसभा चुनावों में और उसके बाद 1972 के असेम्बली के चुनावों में उसने यही स्थिति देखी थी। उसके मन में प्रश्न उठा था कि गऊ की पूँछ पकड़ कर वैतरणी पार करने की चाह रखने वाले इस देश में लोकतंत्र क्या मायने रखता है? भुरभुरी नींव पर टिका हुआ यह लोकतंत्र कितने दिन जिंदा रहेगा? अमर उस समय कई दिनों तक परेशान रहा था। उस परेशानी को उगलने के लिए उसने देश के कई नेताओं को पत्र भी लिखे थे। कुछ प्रमुख पत्रों के सम्पादकों के साथ उसका पत्र-व्यवहार चला था। उसने अपने पत्रों में यह आशंका प्रकट की थी कि देश में लोकतंत्र के स्थान पर डिक्टेटरशिप के लिए परिस्थितियाँ बड़ी तेजी से बनती जा रही हैं। लेकिन एक-दो को छोड़कर किसी ने उसके पत्रों का उत्तर नहीं दिया। एक नेता ने स्थिति को स्वीकार करते हुए भी भगवान् पर भरोसा रखने का उपदेश दिया। समाचारपत्र उस खतरनाक लहर को नवक्रांति की लहर कहकर उछालते रहे।

बेहद तनाव के इन दिनों में अमर की इच्छा होती कि वह गला फाड़ कर चिल्लाए और देश के तमाम लोगों से बदनाम मसीहा के शब्दों में कहे कि जिस गाड़ी पर बैठकर तुम तेजी से आगे चले जा रहे हो वह विनाश की ओर चली जा रही है, वह चकनाचूर होने जा रही है। लेकिन दूर गाँव में बैठा हुआ अमर अपने को बिल्कुल असमर्थ पाता। वह अपने मन की बात किसी से नहीं कह पाता। बिस्तर पर पड़े-पड़े कभी रात भर करवटें बदलता। रमा पूछती, 'क्या हो गया है तुम्हें?' माँ भी सवाल करती लेकिन अमर उन्हें कोई उत्तर नहीं दे पाता। केवल हँसकर टाल देता, कभी गुस्से में आकर कह देता, 'बेकार की बाते मत किया करो।' ऐसे क्षणों में अमर अपनी बात को कहने के लिए लिखने का सहारा लेने लगा। जब तनाव से दिमाग फटने की स्थिति होती तो वह अपने कमरे में बन्द होकर डायरी में कुछ लिखने की कोशिश करता। कभी ऊबड़-खाबड़ शब्दों में कविता का रूप लेकर, कभी गद्य में उसके विचारों को आकार मिलता। अपनी बात कह देने के पश्चात् उसके मन को कुछ शांति मिलती। उसकी व्याकुलता कम हो जाती और वह फिर अपनी सामान्य दिनचर्या के योग्य हो जाता। उसे पता नहीं कि जो कुछ उसने लिखा उसका मूल्य क्या होगा लेकिन उसके लिए वह बहुमूल्य था क्योंकि उसने उसे पागल होने से बचा लिया था।

पिछली रात की घटनाओं ने भी उसके मस्तिष्क को काफी उद्वेलित किया था। उसके मन

में उन राजनेताओं के प्रति एक तीव्र आक्रोश था जिन्होंने पिछले तीस वर्षों में आदमी और आदमी के बीच की खाई को पाटने के बजाय उसे इस हद तक चौड़ा कर दिया था कि समाज जाति युद्ध की तरफ बढ़ता दीख रहा था। गरीबी और पिछड़ेपन के मूल पर चोट करने के स्थान पर उन्होंने चंद सुविधाओं के नाम पर गरीबों को अपने इस्तेमाल के लिए खरीदने की नीति अपनाई थी।

वे लोग जो कल रात दल बाँधकर हमला करने आए थे, अमर के परिचित थे। उनमें कुछ खाते-पीते थे और कुछ साधारण गरीब थे। वह सोच भी नहीं सकता था कि वे धर्म के नाम पर इस तरह के पागलपन के लिए तैयार होंगे।

उसे याद आया कि देश के विभाजन के बाद जब आदमी ने जानवर को अपनी हरकतों से लज्जित किया था तो इस गाँव में एक घर तेलियों का और एक मिरासियों का था। गड़ीफू तेली को पचास-साठ साल पुरानी जंग-लगी तलवार से काटा गया था और उसके साथ उसके दस साल के बेटे की निर्मम हत्या की गई थी। बूटा मिरासी, जो नगाड़ा बजाने में बहुत अच्छा उस्ताद था, लाठी की पहली चोट से ढेर हो गया था। अमर उन दिनों बहुत छोटा था लेकिन गड़ीफू का वह लड़का उसका दोस्त था, और उसके लोथड़े को सूखे जोहड़ में पड़ा देखकर उसे न जाने क्या हुआ था कि वह चीखता हुआ घर की तरफ भागा था। वह दृश्य उसे कई बार सपने में दिखाई दिया था। अब भी दिखाई देता है और उसे देखकर वह इतना डर जाता है कि फिर उसे नींद नहीं आती।

गाँव के जिन मरद-औरतों ने वे दिन देखे थे वे उन्हें भूल नहीं सकते थे। साटे की घरवाली गुन्नी उन दिनों की याद करती है, तो रोने लग जाती है। उसे मन में पूरा यकीन हो चुका था कि जिस तरह मुसलमानों को इन लोगों ने काटा था, एक दिन उसी तरह वे 'बाहरकी' जातों का भी सफाया कर देंगे। पाकिस्तान के साथ जब लड़ाई हुई थी तो एक दिन गुन्नी अमर के घर आकर रोने लगी थी। लक्ष्मीदेवी के पूछने पर उसने बताया था कि आजकल रात भर उसे नींद नहीं आती। हरिजनों के टोले में उन दिनों बारी-बारी से रात को पहरा दिया जाता था क्योंकि यह अफवाह उड़ी थी कि किसी भी दिन हरिजनों के घर फूँक दिए जाएँगे और उनका सफाया कर दिया जाएगा। लक्ष्मीदेवी के बार-बार समझाने पर भी गुन्नी को यकीन नहीं हुआ था कि वैसा अब नहीं हो सकता।

लोगों के मन में भय की स्थिति आज भी बनी हुई है। कल की घटना से अमर को लगा कि छोटी जातियों के मन का यह भय निराधार नहीं है। यह लोकतंत्र का पाखंड, समाजवाद के थोथे नारे और प्रेम तथा अहिंसा के मक्कारी भरे भाषण न जाने कब तक इसकी गरीब और अपढ़ जनता को बहलाते रहेंगे। न जाने कब इस देश की अँधेरी रात का अंत होगा?

अमर अपने को बिल्कुल अशक्त, बिल्कुल निहत्था महसूस करता रहा है। अपने आस-पास घटने वाली घटनाओं को एक तमाशाई की तरह देखने के सिवा वह कुछ करने की स्थिति में नहीं था। मुरली से मिलने के बाद उसको अपना अपाहिजपन और भी खलने लगा था। मुरली अपने ढंग से लड़ाई लड़ने में लगा था, उसे इस बात की प्रसन्नता थी किंतु हर बार

जब वह मुरली से मिलता था तो उसे अपनी असमर्थता का बोध अधिक तीव्रता से होने लगता था।

बहुत थोड़े ही समय में जिंदगी की लंबी यात्रा को पूरा कर लेने के भ्रम ने जब रूपा को थका दिया था, तो अमर ने फिर उसे एक नई दिशा में चलने को बाध्य कर दिया था। रूपा की जिंदगी को लगभग बारह साल पहले एक नये, अनजाने रास्ते पर धकेल देने का काम अमर ने ही किया था। वह उस रास्ते की सम्मोहिनी में यह भी न जान सकी कि कैसे वह अमर के साये को पकड़ने की कोशिश में दिवाकर की बाँहों में आ गई थी और कैसे बाद में पूरे सफर भर अमर को अपने से बहुत दूर पाकर भी उसके साये को हमेशा अपने आस-पास महसूस करती रही थी। स्वच्छन्द, अल्हड़ यौवन की देहरी पर क्षण भर के लिए रुक कर उसने एक ही छलाँग में नारी जीवन की पूरी वादी को पार कर लिया था और वह अपने को आखिरी मंजिल पर पहुँचा हुआ महसूस कर रही थी कि अमर ने उसे खींच कर फिर उस वादी पर ला कर खड़ा कर दिया।

पहली बार बियाई भूरी थोर, टिकली और उसकी नन्हीं प्यारी कटिया, बिंदली को लेकर जब अमर अपने ससुराल में आया था, तो रूपा ने यही समझा था कि ननदोई जी कहीं दूर से भैंस ख़रीद लाए हैं और रात भर यहाँ ठहर कर दूसरे दिन उसे घर ले जाएँगे। लेकिन जब अमर ने बताया कि टिकली और उसकी कटिया बिंदली, दोनों की देखभाल रूपा को करनी होगी, तो रूपा कुछ समझ नहीं सकी थी। रवि ने भैंस के आँगन में आते ही बिंदली पर अपना हक जता दिया था क्योंकि बिंदली ने घर की अन्य वस्तुओं या व्यक्तियों से परिचित होने से पहले रवि के हाथों को चाटकर उसी से परिचय स्थापित किया था। अमर की सास पार्वती देवी भीतर के कमरे से खाट पर लेटे-लेटे टिकली और बिंदली को देखकर चीखी थी, "अरी ओ नासपीटी, पीहरखानी! देख यह किसकी भैंस आँगन में आ गई है। क्यारी में दो-चार पौधे साग के बचे हैं, उन्हें भी खा जाएगी।" फिर जब उसकी नजर दामाद पर पड़ी तो वह सहमकर चुप हो गई थी। इतने में रवि दौड़कर भीतर गया था और दादी की खटिया के पास उछलकर बोला था, "बड़ी माँ, बड़ी माँ, फूफाजी, भैंस लाए हैं। भूरी भैंस है। माथे पर सफेद टीका है। कटिया भी बहुत सुन्दर है। माँ की जैसी भूरी और माथे पर उसके भी सफेद बिंदी है। फूफाजी कहते हैं माँ का नाम टिकली और बेटी का नाम बिंदली है।"

इतने में अमर ने अंदर आकर पार्वती देवी के पाँव छुए और फर्श पर बिछी दरी पर बैठते हुए पूछा—

"अब कैसी है आपकी तबीयत?"

"ठीक है।" उसने बुझी हुई आवाज में कहा, "बिस्तर पर बिछी हूँ। हिल-डुल नहीं सकती। बाहर-अंदर नहीं जा सकती। हर काम के लिए अब दूसरों का सहारा लेना पड़ता है। फिर भी जी रही हूँ। भगवान् जिस हालत में रखे, उसी में तो रहना पड़ता है।"

"दवाई से कुछ फर्क नहीं पड़ा?"

पार्वती देवी ने करवट बदलने की कोशिश करते हुए कहा, "दवाई क्या करेगी? मजा भोगनी है, वह भोग कर ही जाऊँगी।"

अमर बोला, "लेकिन दवा-दारू भी ऐसे ही वक्त के लिए होते हैं। डाक्टर ने कहा था कई महीने लगातार दवाई करनी पड़ेगी। हिम्मत हारने से काम नहीं चलेगा।"

मुस्कराने की कोशिश करते हुए पार्वती देवी बोली, " हिम्मत हारने वाली तो मैं भी नहीं थी लेकिन अब लगता है यह खाट मुझे नहीं छोड़ेगी।"

"नहीं-नहीं, यह आप क्या सोचती हैं?" अमर ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा, "आप बिल्कुल ठीक हो जाएँगी। बस कुछ दिनों की बात है।"

इतने में रवि, जो एक बार फिर आँगन में जाकर बिदली और उसकी माँ टिकली के सींगों पर हाथ फेर आया था, अंदर आकर दादी से लिपट गया और बोला, "बड़ी माँ-बड़ी माँ, छोटी माँ कहती है कि फूफा जी से बिदली को हम ले लेंगे। फिर वह अमर की तरफ देखकर बोला, " क्यों फूफा जी, आप बिदली को हमें देंगे?" अमर ने रवि को खींचकर अपनी गोद में बिठा लिया।

"अरे बिदली ही नहीं उसकी माँ टिकली भी यहीं रहेगी। तुम्हें दोनों के लिए घास काट कर लानी पड़ेगी और दाना-पानी भी देना पड़ेगा। करोगे यह काम?"

"हाँ, फूफा जी, मैं लाऊँगा घास।"

"और टिकली का दूध भी दुहना पड़ेगा।"

"वह भी करूँगा।"

"दोनों को नहलाना-धुलाना पड़ेगा।"

'वह भी करूँगा।"

"जंगल में उन्हें चराने ले जाना पड़ेगा।"

"वह भी करूँगा।"

"शाबाश! फिर तुम रोज अपनी बड़ी माँ को गरम-गरम दूध पिलाना।"

"हाँ, पिलाऊँगा।"

"और खुद भी पीना।"

"पीऊँगा। लेकिन फूफा जी! छोटी माँ को जरूर समझा देना, वह भी दूध पीए। कितनी कमजोर हो गई है।"

अमर ने नजर उठाकर बगल वाले कमरे की तरफ देखा। रूपा दरवाजे पर खड़ी उनकी बातें सुन रही थी। रूपा के चेहरे पर एक सरसरी नजर डालने पर अमर को लगा कि रवि अपनी माँ के बारे में जो कुछ कह रहा है, वह बिल्कुल सही है। इससे पहले भी उसने रूपा के चेहरे पर बिना हिचक कई बार नजर डाली थी, लेकिन उसमें ऐसी थकान, ऐसी बेबसी उसे नहीं दिखाई दी थी। गालों की हड्डियाँ काफी नुमायाँ हो गई थीं और आँखों के घेरे भी काफी स्याह हो गए थे।

दरवाजे पर खड़ी रूपा की नज़र जब अमर की नज़रों से टकराई थी तो रूपा चौंककर

दरवाजे की आड़ में चली गई थी। दूसरी तरफ से निकल कर वह फिर आँगन में आ गई। टिकली को आँगन के कोने में बचे शहतूत के ठूँठ के साथ बाँध दिया गया था और बिदली उछलती-कूदती कभी पूरे आँगन का चक्कर लगा कर मिट्टी की गंध लेती, कभी अपनी माँ के पास आकर खड़ी हो जाती और अपना मुँह उसके मुँह के पास ले जाकर जिस्म को चटवाने लगती। रूपा बिदली को देखती रही। फिर धीरे-धीरे चलकर टिकली के पास आकर खड़ी हो गई। बिदली ने अब अपनी माँ से मुड़ कर रूपा की तरफ देखा और उसके निकट आकर अपनी नरम-नरम जीभ से उसके हाथ चाटने लगी। रूपा ने बिदली के गले में हाथ डालकर उसकी मुलायम झालर को अपने गालों से लगा लिया और बड़ी देर तक वह उसे सहलाती रही। फिर उसे याद आया कि वह चूल्हे पर चाय की पतीली रख आई थी। वह दौड़कर रसोई में गई। पानी उबलने लगा था। झटपट चाय की पत्ती और चीनी डालकर वह दो गिलास कमरे में ले आई। एक गिलास को अमर के सामने रख कर दूसरा उसने अपनी सास की खाट पर रख दिया। पीठ को सहारा देकर पार्वती देवी को बिस्तर से उठाया और तकिये के सहारे बिठा दिया। फिर चाय का गिलास उसके हाथों में थमाकर वह जाने लगी तो अमर ने कहा–

"रूपा, यह टिकली-बिदली अब तुम्हारे जिम्मे हैं?" रूपा रुककर अमर की ओर देखने लगी। वह समझ नहीं सकी कि अमर क्या कहना चाहता है। अमर ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा–

"रमा की तबीयत आजकल ठीक नहीं चल रही है। इधर-उधर की बहुत भाग-दौड़ करनी पड़ती है। बहुत थक जाती है। दो-चार महीने इसे पालो। माँ भी अब काफी कमजोर हो गई हैं और मेरी बात तो तुम जानती हो कि मुझ से भैंस नहीं पाली जाती। पिछले साल मजाक-मजाक में एक दोस्त से इस थोर को माँग लिया था। कल वह सचमुच इसे खूँटे से बाँध गया। मैं तो अजीब मुसीबत में पड़ गया हूँ। कौन यह जान का बावेला मोल ले?"

रूपा अमर की तरफ बड़े गौर से देख रही थी। अमर सीधे उसकी तरफ न देखकर तकिये के सहारे बैठी अपनी सास की तरफ और आँगन में बिदली के पीछे दौड़ते रवि की तरफ देख रहा था। रूपा ने पूछा,

"जब आप भैंस पाल नहीं सकते थे, तो ली क्यों थी?"

"कहा न..." अमर बोला, "मजाक-मजाक में मुसीबत गले फँस गई। उस भले आदमी ने अभी पैसे भी नहीं लिये। पैसों की बात भी नहीं की। बस, खूँटे में बाँध गया। उसके घर दो भैंसें पहले ही थीं, तीसरी थोर ने भी बच्चा दे दिया तो उसने उसे मेरे घर पहुँचा दिया।"

"अजीब दोस्त हैं आपके। सात-आठ सौ रुपये की भैंस उसने मुफ्त में दे दी।"

"मुफ्त में कौन देता है? पैसे उसे देने ही हैं। धीरे-धीरे दे देंगे।"

"कितने होंगे?"

"यह तो उससे बात करने पर मालूम होगा। लेकिन छः-सात सौ तो शायद देने ही पड़ेंगे।"

"दूध कितना है?"

"दस किलो है।"

रूपा ने आगे कुछ नहीं कहा। वह धीरे-धीरे कुछ सोचती हुई रसोईघर की तरफ चल दी। पार्वती देवी जो अब चाय पी चुकी थी। खुद सरक कर खाट पर लेट गई और बोली—

"यह छोकरी बड़ी अभागिन है। एक मुसीबत खत्म होती नहीं कि दूसरी सिर पर आ जाती है। अब मेरी अधमरी लाश को भी इसे ढोना पड़ रहा है। लड़का इतना शरारती है कि उसे तंग कर देता है। स्कूल जाता है तो थोड़ी देर के लिए उसे फुर्सत मिलती है। घर पर होता है तो कोई न कोई उठा-पटक करता रहता है। मेरे पास बैठा-बैठा वह हुक्म चलाता है। इतना बड़ा हो गया है। कभी अपनी माँ के काम में हाथ नहीं बँटाता। दुकान से कुछ लाना होता है तो भी रूपा को खुद जाना पड़ता है।"

अमर इस सारी स्थिति को भली-भाँति समझता था। दादी के लाड़-प्यार में पल कर उसमें यह भावना आ गई थी कि उसे जिद्द करने पर हर चीज मिल सकती है और उसकी इच्छा को पूरा करने के लिए हर कोई बाध्य है। विशेष कर अपनी बड़ी माँ को उसने देखा था कि वह छोटी माँ को एक नौकरानी से ज्यादा दर्जा नहीं देती थी। कुछ इसी तरह का भाव रवि ने भी अपना लिया था।

अमर कमरे से उठकर आँगन में आ गया और टहलने लगा। पार्वती देवी की फालिज की चोट काफी खतरनाक थी। पालंपुर अस्पताल के बड़े डाक्टर से उसने जांच कराई थी और उसने कहा था कि कमर के नीचे का फालिज कई बार दवाओं से ठीक भी हो जाता है लेकिन गारंटी नहीं होती। पिछले पन्द्रह दिनों में इन्जेक्शनों और गोलियों से कोई खास फर्क नहीं दिखाई दे रहा था। अब इन्जेक्शन बन्द कर दिए गए थे और सिर्फ गोलियाँ दी जा रही थीं। अमर दो महीने की दवाई खरीद कर रख गया था।

अमर टहलते-टहलते आँगन से कुछ दूर निकल गया। वह रूपा और पार्वती देवी के सम्बन्धों के विषय में कुछ जानना चाहता था। रूपा से बात करने का उसे कोई अवसर नहीं मिल रहा था। रूपा रसोई में थी इस बात से वह इतना अनुमान तो लगा रहा था कि अब उसकी स्थिति उस घर में वैसी नहीं है, जैसी पहली थी। पार्वती देवी ने उसके हाथ से चाय का गिलास भी ले लिया था। पार्वती देवी के परवश होने के बाद दस-बारह दिनों तक रमा यहाँ रही थी और फिर अमर ने जानबूझ कर माँ की तबीयत खराब होने का बहाना करके उसे घर वापस बुला लिया था। वह देखना चाहता था कि इस परवशता की हालत में पार्वती देवी रूपा की सेवा को स्वीकारती है या नहीं।

अमर घूम कर पिछवाड़े की तरफ साग की क्यारी में जा पहुँचा। रसोईघर की खिड़की से जब रूपा ने अमर को वहाँ देखा तो वह पिछवाड़े के दरवाजे से बाहर आ गई।

"यहाँ क्या कर रहे हैं, अन्दर आ कर बैठिए न।"

"यूँ ही टहलते-टहलते निकल आया था," अमर ने बहाना किया, "क्या कर रही हो?"

"खाना बना रही हूँ।"

"खाना इतनी जल्दी? अभी तो दस भी नहीं बजे हैं।"

"माँजी ने नाश्ता भी नहीं किया है। उन्हें रोटी खिलाकर चावल चढ़ाऊँगी।"

अमर को सुनकर कुछ तसल्ली हुई।

"माँजी चावल नहीं खातीं?"

"मेरे हाथ की कच्ची रसोई नहीं खातीं।"

अमर ने मुस्करा कर उसकी तरफ देखा फिर बोला—

"कच्ची रसोई तो कोई भी नहीं खा सकता। मैं अच्छा तन्दुरुस्त हूँ। मुझे कोई कच्ची रसोई खिलाए तो मैं न खाऊँ। वह तो बिचारी बीमार हैं।"

रूपा भी हँस पड़ी। यह कच्ची और पक्की रसोई कहना मैंने बम्बई में सीखा था। पड़ोस में एक परिवार था, शायद उत्तर प्रदेश का था। वे दाल-चावल की रसोई को कच्ची रसोई कहते थे और रोटी को पक्की रसोई।"

अमर की काफी बड़ी परेशानी दूर हो गई थी। वह बोला—

"चलो कुछ तो खाने लगी। मैं तो सोच रहा था कि वह अपनी जिद्द पर अड़ी रहेगी और बिना खाए प्राण दे देगी।"

रूपा कुछ नहीं बोली। कुछ देर बाद प्रसंग बदलकर उसने कहा—

"ऐसे कौन दोस्त मिल गए आपको जिन्होंने सात-आठ सौ रुपये की भैंस बिना एक दमड़ी लिये आपको दे दी? बड़े रईसजादे लगते हैं।"

"रईसजादे तो हैं ही। तीन-तीन भैंसें घर में बँधी रहती हैं।"

"अच्छा अब ठीक-ठीक बताओ। कितना कर्ज उठाया?"

"अभी तो कर्ज कुछ भी नहीं लिया है।"

"तो क्या लाटरी खुली है आपके नाम? मैं पूछती हूँ इतना सब करने की क्या जरूरत थी? गुजारा किसी तरह चल रहा था। तीन-चार घरों से नेज-नसराँ आ जाता था। माँजी के बीमारी के बाद लोग घर आकर दे जाते हैं। हमारी वजह से आप भी कर्जे के बोझ से दबें, यह क्या अच्छी बात है?"

"किसने कहा हम कर्जे से दबे हैं? अगर कुछ कर्ज लेना भी पड़ा तो इसमें बुराई भी क्या है? सभी कर्जा लेकर काम निकालते हैं। हाथ-पैर सलामत हैं तो कर्जा उतर भी सकता है।"

"कैसे उतारेंगे? नौकरी आप नहीं करते, कोई और धंधा आपके पास नहीं।"

अमर मुस्करा कर बोला, "छोड़ो इस बखेड़े को। अन्दर जाओ माँजी के लिए पक्की रसोई बनाओ।"

अमर का मन रूपा से बातें करके काफी हल्का हो गया। उसके चेहरे पर कई दिनों के बाद पहली बार उसने जीने की इच्छा को प्रतिबिंबित देखा था।

रूपा को भी उन्हीं दिनों अपने भीतर जीने की ललक का एहसास हुआ था। सास की तीखी बातों और जवान हो रहे बेटे की भरपूर उपेक्षा ने उसके मन में जीने की इच्छा को पूरी तरह समाप्त कर दिया था, लेकिन फिर अपने सामने दो बेबस इन्सानों को पाकर वह कब्र से उठकर एक और लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हो गई थी। व्रत, उपवास, अनियमित और अपर्याप्त भोजन ने शरीर को पहले ही काफी दुर्बल बना दिया था। उस पर उसे कई दिनों तक हल्का बुखार भी आता रहा। खाँसी की शिकायत भी थी और कभी-कभी तो उसे पसलियों में भी दर्द

होने लगता था। वह जानती थी कि भीतर से काफी कुछ टूट चुका है और लगातार टूटता जा रहा है। लेकिन अब उसे लगता था कि उसके भीतर कुछ जान आ गई है। उसने निश्चय कर लिया था कि उसे हर हालत में अपने को जीवित रखना है। अपने लिए नहीं बल्कि उन दो इन्सानों के लिए जो अब पूरी तरह उस पर निर्भर हैं।

गाँव के तीन-चार घरों से जो अन्न नेज के रूप में आ जाता था, उससे गुजारा तो चल सकता था लेकिन रूपा को यह अच्छा नहीं लगता था। दान में मिली रोटी उसके गले से नहीं उतरती थी। इसलिए यह जानते हुए भी कि अमर ने एक खासी बड़ी रकम उधार लेकर भैंस उनकी मदद करने के उद्देश्य से खरीदी है, रूपा ने चुपचाप अमर की उस अमानत को स्वीकार कर लिया था। वह जानती थी कि भैंस को पालना इतना आसान काम नहीं है। इसके लिए उसे अपनी शक्ति से ज्यादा काम करना पड़ेगा। लेकिन जिस स्थिति से वह गुजर रही थी, उसमें टिकली-बिदली सचमुच उसके लिए वरदान थीं और वह उसके लिए अमर के प्रति कृतज्ञ थी।

टिकली के आने से कुछ ही दिनों में रूपा ने अपने खोये मनोबल को प्राप्त कर लिया। सुबह से शाम तक चार प्राणियों की सुविधा के लिए उसे फिरकी की तरह अन्दर-बाहर घूमना पड़ता। टिकली-बिदली की देखभाल से दिन शुरू होता। टिकली को दुहने के बाद गाँव वालों की दूध की माँग को किसी तरह पूरा करना पड़ता।

टिकली की जरूरत सिर्फ रूपा को नहीं थी बल्कि सारे खैरा गाँव को थी। बरसात का मौसम खत्म होने पर हर साल टायडफायड, फ्लू आदि का दौरा आता था, उस वर्ष मलेरिया भी आ मिला था। घर-घर बिस्तर पड़े हुए थे। मलेरिया के लिए कुनीन और कुनीन के लिए दूध चाहिए और गाँव में दूध दो-तीन घरों को छोड़कर किसी के पास नहीं था। यह भी संयोग ही था, अधिकांश घरों में दुधारू गायें नहीं थीं। यदि थीं भी तो इतना कम दूध देती थीं कि रोगियों की जरूरत पूरी नहीं होती थी। धार के दूधिये सारा दूध बाजार में बेचते थे। एक-दो गाँव में आते तो वे पानी को दूध के नाम पर बेचकर चले जाते थे।

टिकली के गाँव में आने से अच्छा दूध लोगों को मिलने लगा। दो रुपये किलो का भाव चल रहा था लेकिन टिकली का दूध तीन रुपये के भाव से भी मिलता तो भी लोग खरीदते। रूपा जब तक टिकली को दुह कर घराल से बाहर निकलती, आँगन में दूध लेने वालों की भीड़ उसका इन्तजार करती। रूपा जानती थी कि गाँव में दूध अधिकतर कमजोर बच्चों और बीमारों के लिए खरीदा जाता है। इसलिए दूध में पानी मिलाना उसे पाप लगता था। लेकिन सब की ज़रूरतें पूरी करना भी उसके लिए संभव नहीं था, इसलिए एक किलो माँगने वाले को तीन पाव या आधा किलो देती थी। कोई भी बिना दूध के न रह जाए, इस बात का ध्यान रख कर उसे दूध का बटवारा करना पड़ता था। एक किलो दूध अपने घर के लिए रखकर वह सारा दूध सुबह बाँट देती। शाम के दूध से वह दो या तीन किलो जमाने के लिए रख लेती। इसी तरह गाँव के कई घरों की घी की जरूरत भी वह पूरा करती थी और लस्सी को बाँट देती। जो लोग दूध की कीमत नहीं दे पाते उनसे भैंस के लिए चारा मँगा लेती। लस्सी लेने वाले भी टिकली की सेवा में उसका हाथ बटाते। इस तरह भैंस के दाने-चारे के लिए उसे ज्यादा दौड़-धूप नहीं करनी

पड़ती। टिकली-बिंदली गाँव में प्रसिद्ध हो गई थीं। लोगों को लगता था कि टिकली-बिंदली सिर्फ रूपा की नहीं सारे गाँव की हैं।

बड़ी बात यह थी कि जरूरतमंद लोग केवल इसलिए दूध से वंचित नहीं रहते थे कि उनके पास नकद पैसे देने के लिए नहीं होते थे। रूपा को चावल, आटा, गेहूँ, दाल और भैंस के लिए दाना-चारा सब की जरूरत थी और दूध के बदले में उसे जो मिल जाता उसे ले लेती। वह यह भी जानती थी कि कुछ घर इतने गरीब हैं कि उनसे दूध की कीमत बड़ी मुश्किल से वसूल होने वाली है, लेकिन रोगियों और बच्चों की जरूरत वह तब भी पूरा करती। टिकली का दूध भी इतना मीठा और गाढ़ा होता था कि आधा किलो दूध में आधा किलो पानी मिलाकर भी दूधिये के दूध से कई गुना अच्छा लगता था। टिकली के दूध की छाछ ने तो कई लोगों का उपकार किया। एक गड़वी छाछ में एक गड़वी पानी और दो आलू मिलाकर कंड़ाड़ी भरकर खोरू (कड़ही) बनता था जिससे घर के छः जने खाना खा सकते थे। रूपा के घर छाछ की मटकी कभी खाली नहीं रहती थी और लोग भी कभी खाली हाथ नहीं लौटते थे।

टिकली के दाने-चारे के खर्च और उधार की रकम निकालकर भी रूपा के पास एक महीने बाद तीन सौ रुपये जमा हो गये। टिकली दूध भी ज्यादा देने लगी थी। लोगों के मन में टिकली के प्रति कुछ ऐसी ममता जागी कि वे अपने घर का नवाणी (चावल की धोवन) या हरी घास के दो-चार पूले उसके लिए भेज देते।

लेकिन टिकली के आने के बाद रूपा के जीवन में एक और बड़ा परिवर्तन हुआ था और इसकी ओर रूपा का ध्यान तब तक नहीं गया जब तक एक दिन पार्वती देवी ने उसे कच्चा खाना बनाने के लिए नहीं कहा। दूध लेने वालों से फुर्सत पाकर और रवि को स्कूल भेजने के बाद जब वह पार्वतीदेवी को गरम पानी से नहलाने लगी, तो पार्वतीदेवी ने कहा, "बहू! आज रोटी नहीं बनाना।"

एक क्षण को रूपा को झटका-सा लगा। सास के मुँह से बहू का सम्बोधन उसने पहली बार सुना। उसकी इच्छा हुई कि फूटकर रो पड़े और सास के गले से लिपट जाए। फिर यह सोचकर कि यह सम्बोधन अनजाने में उनके मुँह से निकल गया है, उसने अपने को रोक लिया।

"क्यों? क्या तबीयत ठीक नहीं है?" रूपा ने रोटी न पकाने का कारण जानना चाहा। पार्वतीदेवी ने अपने उलझे हुए बालों को छुड़ाते हुए कहा—

"अरे मरी! कब तक खाती रहूँगी रोटी। जली अब तो गले से नहीं उतरती। आज तो बस चावल ही बनाना और देख उड़द-चने की दाल के साथ गाढ़ी छाछ का खोरू भी बनाना।"

रूपा सास की तरफ देखती रह गई।

"क्या देख रही है मरी! सुना नहीं तूने?" पार्वतीदेवी कुछ बनावटी खीज के स्वर में बोली। रूपा की समझ में कुछ नहीं आया कि क्या कहे।

"पर माँ जी ।" कहकर ही वह चुप हो गई।

"पर क्या? यही कहना चाहती है न कि इस बुढ़िया को क्या हो गया है? अरी अब सारा गाँव तेरे हाथ का छुआ दूध, तेरे हाथ की बिलोई छाछ, खुशी-खुशी ले रहा

है तो मैं तो तेरी सास हूँ। अधमरी लोथ को तू पान के पत्ते की तरह सम्हाल रही है। गालियाँ सहकर भी तू मेरे नरक को धो रही है। इस पर भी मैं तुझसे दूर रहूँ तो लानत है मेरी जिन्दगी पर। इस लोक में तू मुझे जो चीज दे रही है, वह परलोक में मुझे मिलेगी? नहीं बहू, नहीं। सारे दुःख सहकर भी तू मुझे जो सुख दे रही है वह हजार साल तपस्या करने पर भी मुझे परलोक में नहीं मिल सकता...।" कहते-कहते पार्वतीदेवी का गला रुँध गया। उनकी आँखों से बड़े-बड़े आँसू लुढ़क कर गालों पर आ गए। रूपा एकटक अपनी सास को देखे जा रही थी, उसकी आंखों से भी आँसू झरने लगे थे। गले में कोई चीज अटक गई थी। फिर वह बेकाबू होकर सास से लिपट गई। बच्चे की तरह फूटफूट कर रोने लगी। पार्वतीदेवी भी अब तक अपना धैर्य पूरी तरह खो चुकी थी। उसने रूपा को अपनी छाती से लगा लिया।

पिछवाड़े की क्यारी में लकड़ी की चौकी पर नहाने के लिए वह बैठी थी। शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं था। उसके पास बैठी बहू के कपड़े भी अस्त-व्यस्त थे क्योंकि उसे सास के बदन को मल-मलकर धोना था। रास्ते से गुजरने वालों की नजर उन पर पड़ सकती थी। यही सोच कर रूपा ने जल्दी ही अपने को सम्हाल लिया। उसने पार्वतीदेवी को जल्दी-जल्दी नहलाकर कपड़े पहनाए और भीतर लाकर खाट पर सुला दिया। इसके बाद वह रसोईघर में आ गई और तब तक रोती रही जब तक उसके मन का वर्षों से जमा दुःख धुल नहीं गया।

टिकली और बिदली इन दो पशुओं ने रूपा को वह सब लौटा दिया था जो आदमी ने बिना किसी कसूर के उससे छीन लिया था। उसे जीवन का अर्थ मिला, टूटा सम्बन्ध जुड़ा। अब उसका बेटा रवि भी उसका था। वह उसे छोटी माँ कहकर सिर्फ बुलाता नहीं था, उसे माँ मानता भी था। सुबह से लेकर स्कूल जाने तक वह उसके साथ रहता। टिकली और बिदली के गले में हाथ डालकर जब तक वह उन्हें सहला नहीं लेता उसे चैन नहीं पड़ता। बिदली के साथ आँगन के चक्कर लगाना तो उसका प्रिय खेल था। जब रूपा टिंकली को दुहने घराल में जाती तो रवि अपना गिलास लिये पहुँच जाता। थनों की धार से सीधे गिलास भरकर पीना उसे बहुत अच्छा लगता। दूध बाँटने में भी रवि उसकी मदद करता। रूपा दही बिलोने लगती तो रवि उसके पास आकर बैठ जाता और ताजा मक्खन निकलने की प्रतीक्षा करता। रूपा को तब स्वर्गीय ससुर के कमरे में उस चित्र की छवि दिखाई देने लगती जिसमें यशोदा को दही बिलोते और कृष्ण को पास मक्खन खाते दिखाया गया था। स्कूल से आने के बाद भी रवि माँ के आगे-पीछे रहता। खाना भी अब वह माँ के साथ खाता।

रूपा को कभी-कभी लगता टिकली उसकी सगी बहन है जो मुसीबत के वक्त उसका दुःख बाँटने आई है। वह उसे खली या चावल का नवाणी देने जाती तो सामने बैठकर उसे खिलाती-पिलाती। टिकली का कभी खाने का मन नहीं होता तो रूपा उसका मुँह पकड़कर जबर्दस्ती खिलाने की कोशिश करती। उससे अपने दिल की बातें करती, ऐसी बातें जिन्हें वह किसी से नहीं कह पाती थी। कभी-कभी उसे टिकली को खिलाते-खिलाते खाँसी का दौरा पड़ जाता, तो टिकली उससे अपना थोबड़ रगड़ती, उसे चाटती। शायद वह अपने ढंग से उसे सहलाने की कोशिश करती।

अमर दस-बारह दिन में एक बार जरूर वहाँ आता। जब से पार्वतीदेवी को फालिज हुआ, उस पर उस घर की सारी जिम्मेदारी आ गई थी। अस्पताल या दुकान से दवाई लाने के अलावा उसे घर के दूसरे कामों का भी प्रबन्ध करना पड़ता था। बरसात के दिनों में घर की एक दीवार ढह गई थी, उसकी मरम्मत का काम भी उसने अपनी देख-रेख में कराया था।

टिकली-बिदली के आने के बाद उस घर के वातावरण में जो तबदीली आयी थी, अमर को उससे बड़ा संतोष मिला था। उसकी बहुत बड़ी चिन्ता दूर हो गई थी। एक दिन वह बाजार से दवाई लेकर पहुँचा तो शाम हो गई थी और वह अपने घर सुबह ही जा सकता था। उस शाम को खाना खाने के बाद जब वह सोने के लिए अपने कमरे में गया तो रूपा भी वहाँ आ गई। पार्वतीदेवी दूसरे कमरे में सोई थी। रवि भी सो चुका था। अमर अपने बिस्तर पर लेटा ही था कि रूपा कमरे में आई और पंलग के पास जमीन पर बैठ गयी।

"क्या बात है रूपा! नींद नहीं आ रही तुम्हें?" अमर ने पूछा।

रूपा कुछ सकपकायी, फिर बोली—

"बरस जितनी रातें होती हैं आजकल। इतनी जल्दी सोकर क्या करूँगी? आप जब भी आते हैं तो जैसे चूल्हे पर तवा चढ़ाकर आते हैं। भाग-दौड़ में कभी आपसे बात करने की भी फुर्सत नहीं मिलती।"

रूपा ने भूमिका बँधनी चाही। अमर ने रूपा की तरफ करवट बदली और कुहनी के ऊपर सिर को टिकाकर बोला—

"अच्छा, बोलो! आज तुम चाहो तो रात-भर बातें करना। मैं सोऊँगा नहीं।"

"आपको रात-भर जगाऊँ, यह पाप तो नहीं कर सकती। आपने मेरे लिए और मेरे घर के लिए जितना कुछ किया, क्या उसे भूलकर मैं आपको रात-भर जागने का कष्ट दूँगी?"

"तुम पागल हो।" अमर ने उसे झिड़कते हुए कहा, "मैंने तुम्हारे लिए क्या किया? यह सब क्या मेरा भी नहीं है? इस घर के साथ क्या मैं उपकार की भावना से जुड़ा हूँ?"

रूपा ने सफाई देने के उद्देश्य से कहा—

"नहीं, फिर भी कौन रिश्तेदार इतनी मदद करता है? और मुझे तो आपने खोयी हुई जिन्दगी ही दे दी। अगर आप टिकली-बिदली को यहाँ न लाते तो शायद मैं अपनी ही घुटन में मर जाती। टिकली ने जैसे मेरे सारे पाप धो दिए। मेरा इस दुनिया में कोई नहीं था लेकिन अब मेरी सास है, मेरा बेटा है। पड़ोसी हैं, गाँव की कई सहेलियाँ हैं। अब मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैं फिजूल जी रही हूँ। मैं जी रही हूँ क्योंकि कुछ लोगों को मेरी जरूरत है। मैं किसी के काम में आ सकती हूँ।"

अमर की इच्छा हो रही थी कि रूपा को साफ-साफ बता दे कि उसके इस परिवर्तन में मेरा नहीं, मुरली का योगदान अधिक है। लेकिन मुरली का नाम सुनते ही वह अनेक प्रश्न करने लगती। हो सकता है वह चिढ़ जाती। उसने मुरली के ख्याल को थोड़ी देर दिल से निकाल कर कहा—

"रूपा, मैं बता नहीं सकता कि तुम्हारे इस परिवर्तन को देखकर मुझे कितनी खुशी है।

एक बेमानी जिंदगी को जीना सब से बड़ा क्लेश होता है। तुम उस क्लेश से बचकर निकल आईं, इससे ज्यादा खुशी की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है? लेकिन यह सब तुम्हारी सेवा और तुम्हारे श्रम का फल है। मेरा इसमें यदि कुछ योगदान है भी तो बहुत कम।"

"वह तो मैं जानती हूँ कि आपका कितना योगदान है", रूपा ने सिर झुका कर कहा, "लेकिन सोचती हूँ टिकली-बिंदली को जब आप ले जाएँगे तो मैं क्या करूँगी?"

"किसने कहा मैं टिकली-बिंदली को ले जाऊँगा? हमारे घर पर इनकी कौन देखभाल करेगा? रमा को अपने काम से फुर्सत नहीं मिलती। मैं तो, तुम जानती हो, बिल्कुल निकम्मा हो गया हूँ।"

"लेकिन आपने इसे अपने लिए तो खरीदा था। आपने कहा था…"

"कहा था, लेकिन वह सच नहीं था। टिकली-बिंदली को मैंने तुम्हारे लिए ही खरीदा था।"

रूपा के चेहरे पर मुस्कान खिल गई।

"तो फिर…यह ले लो" उसने एक कागज की पुड़िया को अमर की तरफ बढ़ा दिया।

"यह क्या है?"

"तीन-चार महीनों में सारा घर का खर्च निकाल कर सात सौ रुपये जमा हुए हैं। टिकली-बिंदली को मुझे दे दो।"

अमर ने कागज की पुड़िया को उसके हाथ में देते हुए कहा—

"इन्हें अपने पास रखो। टिकली-बिंदली तुम्हारी ही हैं। इन रुपयों की तुम्हें जरूरत पड़ेगी। दो-चार दिन बाद आऊँगा तो पालंपुर चलकर बैंक में तुम्हारा खाता खुलवा दूंगा। जब टिकली का दूध सूख जाएगा तो एक गाय ले लेना।"

रूपा ने अमर के सुझाव का जोरदार विरोध करते हुए कहा, "आप अजीब आदमी हैं। आप कर्ज से लदे रहें और मैं इस पैसे को बैंक में जमा रखूँ? जब तक टिकली सूखेगी, मैं एक गाय खरीदने लायक रुपये और जमा कर लूँगी। इन्हें ले जाइए नहीं तो मुझे चैन नहीं मिलेगा। आपके घर की हालत मैं भी जानती हूँ। इतने रुपये चुकाने के लिए आपको न जाने क्या-क्या बेचना पड़ेगा।"

"मुझे कुछ नहीं बेचना पडेगा, तुम मेरी बात मानो। मेरे ऊपर कोई कर्जा नहीं है। टिकली के रुपये मुझे किसीसे मिल गए थे।"

रूपा उसकी तरफ देखती रही। अमर की बात को एक और बहाना मानकर वह मुस्करा दी, "किससे मिले थे?"

"एक महात्मा जी से। तुमने सुना होगा दत्तल में एक महात्मा जी आकर ठहरे हैं। बड़ी शोहरत है उनकी। जगह-जगह उनका प्रवचन होता है। सैकड़ों की भीड़ जमा होती है।"

रूपा ने महात्मा के बारे में बहुत कुछ सुना था। उन्हें देखा नहीं था। एक बार खैरा में भी उन्हें बुलाया गया था। बड़ी भीड़ जमा हुई थी। रूपा की सास उसका प्रवचन सुनने गई थी लेकिन रूपा घर पर ही रही थी। एक दिन परमेसरी चाची भी आकर उनके बारे में बहुत-सी

बातें कर गई थीं। रूपा की तब से इच्छा होने लगी थी कि किसी दिन महात्मा के दर्शन करने जाए, लेकिन सास के बीमार पड़ने के बाद तो वह पूरी तरह से घर के साथ बँध गई थी। एक दिन के लिए निकलना भी संभव न था। उसने सुन रखा था कि महात्मा जी के पास रुपया-पैसा खूब आता है लेकिन वे उसमें से एक भी पैसा अपने पास नहीं रखते। गाँवों की भलाई के कामों में उस रुपये को लगा देते हैं। कई गाँवों में उनके पैसे से डिस्पेंसरियाँ और पुस्तकालय खुले थे। स्कूलों की टूटी-फूटी इमारतों की मरम्मत भी उन्होंने कराई थी। उनके प्रवचनों के ब रे में भी रूपा ने कई लोगों से सुन रखा था कि लोगों पर जादू कर देते हैं। ऊँच-नीच का भेद न ो। जो बुलाकर ले जाता है उसके घर खाना खा लेते हैं। परमेसरी चाची से उसने यह भी सुन था कि उसके बापू ने फिर से अपनी गृहस्थी बसा ली है। गुमटी और उसके दो बच्चों के साथ अब वह बड़े मजे से खा-कमा रहा है। रूपा एक बार अपने बापू से मिलने दत्तल जाना चाहती थी और महात्मा जी के दर्शन भी करना चाहती थी, लेकिन, सास का ख्याल करके वह अपनी भावनाओं को दबाती रही थी। अब तो सास को छोड़कर वह घर से निकल नहीं सकती।

लेकिन रूपा को अमर की बात पर अब भी विश्वास नहीं हो रहा था। महात्मा जी के पास रुपया फालतू हो सकता है लेकिन उस रुपये को खर्च करने के लिए उसने अमर को क्यों चुना? और फिर अमर तो साधु-महात्माओं से वैसे भी दूर रहने वाला इन्सान है।

"महात्मा जी से आपकी अच्छी-खासी दोस्ती लगती है।" बड़ी देर बाद रूपा के इस प्रश्न ने अमर को ज्यादा सोचने का समय नहीं दिया। उसके मुँह से निकल गया—

"दोस्ती बचपन की है।"

रूपा उसकी तरफ देखती रही। शायद अमर यूँ ही कह रहा था।

"महात्मा, जानती हो, कौन हैं?"

"कौन?" रूपा के मन में कुतहूल जागा।

"मुरली ब्रम्बई वाले मास्टर जी।"

रूपा के सामने मुरली का लंबी दाढ़ी और लंबे बालों वाला चेहरा घूम गया। उस दिन अमर के साथ मुरली को अपने घर में देखकर रूपा पहचान नहीं पाई थी। रमा की सहेली नीलू का देवर कहकर उसका परिचय दिया गया था तो रूपा को बुरा लगा था कि अमर किसी अनजाने व्यक्ति को उससे मिलाने के लिए घर लाया। मुरली का असली परिचय पा लेने के बाद उसे अपने सोचने पर पश्चात्ताप हुआ था। एक संक्षिप्त-सी मुलाकात के बाद मुरली अपने रास्ते पर चल दिया था तो रूपा को यह बात भी खलने लगी थी कि इतने दिनों बाद मास्टर जी मिले तो बस कुछ देर के लिए। शायद अमर नहीं जानता था कि रूपा और मुरली का परिचय कितना निकट और घनिष्ठ था। वह मुरली के घर अपने पति के साथ रही थी और मुरली से एक देवर के रिश्ते का हँसी-मजाक भी किया था। उनके बीच एक पारिवारिक संबंध-सा बन गया था लेकिन मुरली के यहाँ आने पर वह केवल दूर के परिचय की भूमिका निभा सकी थी।

अमर की चौंकाने वाली बात पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था। जिन परिस्थितियों से मुरली गुजर रहा था, उनमें यह अस्वाभाविक नहीं था। रूपा बोली—

"तब तो उनके प्रवचन सुनने लायक होंगे। वे बहुत अच्छा बोलते हैं। बम्बई में मैंने कई बार उन्हें आर्यसमाज की सभाओं में बोलते सुना है। अब अगर इस गाँव में वे आए तो मैं जरूर जाऊँगी।"

"लेकिन मुझे नहीं लगता कि वे अब ज्यादा दिन तक पुलिस की नजरों से बचे रहेंगे। भाषण वे गीता पर देते हैं और चोट सरकार पर करते हैं। इंदिरा सरकार के खिलाफ काफी अच्छा माहौल उन्होंने बना दिया है। चारों तरफ अब सरकार के खिलाफ पर्चे भी बँटने लगे हैं।"

रूपा सोच में पड़ गई। उसे सरकार से कुछ लेना-देना नहीं था लेकिन मास्टरजी के प्रति उसे श्रद्धा थी। वे कुछ काम कर रहे हैं तो ठीक ही होगा। लेकिन मुरली के पकड़े जाने वाली संभावना उसे चिंतित करने वाली जरूर थी। वह बोली—

"पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया तब तो बुरा होगा।"

"जेल होगी, मार-पिटाई होगी। हो सकता है जेल में उन्हें मार भी दें। लेकिन वह पट्ठा तो यह सब सोचकर ही अपने रास्ते पर निकला है।"

कुछ देर तक रूपा और अमर के बीच कोई बात नहीं हुई। रूपा मुरली के बारे में काफी कुछ सोचती रही और अमर चाह रहा था कि अब जो भी बात हो रूपा की तरफ से शुरू हो। फिर रूपा का ध्यान अपने हाथ में पकड़े रुपयों पर गया। वह बोली—

"तो फिर ये रुपये उन्हें पहुँचा दीजिए। उन्हें अपने काम के लिए जरूरत पड़ेगी।"

"वह रुपये नहीं लेगा।" अमर ने कहा, "उसने ये रुपये भैंस खरीदने के लिए दिए थे। वह तुम्हारे लिए कुछ करना चाहता था।"

रूपा सोच में पड़ गई। मेरे लिए वे कुछ क्यों करना चाहते थे? मैं उनकी क्या लगती हूँ? मेरे बारे में वे क्या सोचते हैं? वह बोली-

"आपने उन्हें मेरे बारे में बढ़ा-चढ़ाकर बताया होगा।"

"नहीं, मुझे इतना समय नहीं मिला। उसने खुद ही तुम्हारे बारे में जाना है। उसी ने मुझे बताया कि तुम अपनी जिंदगी की आहुति देने के लिए तैयार बैठी हो। तुम्हारे मन से जीने की इच्छा खत्म होती जा रही थी क्योंकि तुम्हारी हर चीज तुम से छिनती जा रही थी। उसी ने सुझाव दिया था कि तुम्हारे पास दिन बिताने के लिए कोई ऐसा काम होना चाहिए जो तुममें विश्वास पैदा कर सके कि तुम भी कुछ हो, किसी को तुम्हारी जरूरत है। मुरली तुम्हारे बापू के घर अक्सर जाता है। वह सब से हिलमिल गया है। परमेसरी चाची उसे तुम्हारे बारे में सब कुछ बताती रहती है।"

रूपा ने मुस्करा कर अमर की तरफ देखा। उसे लगा कि अमर सारी बातें अपनी तरफ से गढ़कर कह रहा है। मुरली से उसका परिचय जरूर रहा है लेकिन वह परिचय ऐसा नहीं था कि वह उसके बारे में इतनी पूछताछ करने लगे। मजाक के लिए उसने पूछा-

"और क्या बताया महात्मा जी ने मेरे बारे में? मेरा लोक-परलोक सुधारने के लिए उन्होंने और भी कुछ सलाह दी होगी।"

अमर ने उसके चेहरे से नजर हटा ली और बोला—

"दी तो है, लेकिन तुम मानोगी कहाँ?"

"सुनूँ तो सही।"

"उनका विचार है कि तुम्हें अपनी जिंदगी नये सिरे से शुरू करनी चाहिए।"

"वह तो मैंने कर दी है।"

"मेरा मतलब है, तुम्हें दिवाकर की याद भुलाकर नये सिरे से अपने बारे में सोचना चाहिए।"

अमर ने बड़ी हिम्मत करके यह बात कह दी थी जिसे वह बड़ी देर से टाल रहा था। लेकिन वह रूपा से नजर मिलाने का साहस नहीं जुटा पाया। रूपा को लगा उसकी कनपटियाँ बहुत गरम हो गई हैं। कुछ सम्हलकर उसने प्रश्न किया—

"यह सलाह आपकी है या महात्मा जी की?"

"मेरी भी यही सलाह है।" अमर ने उसी तरह सूनी दीवार की तरफ देखते हुए कहा जिस पर छत से लटकने वाली वंदनवार की एक सूखी लड़ी का साया हिलता हुआ दिखाई दे रहा था। बम्बई से जब दिवाकर रूपा और रवि को लेकर आया था तो पंडित नित्यानन्द ने इस कमरे में वंदनवार सजाकर एक छोटा-सा अनुष्ठान किया था। वंदनवार की कुछ लड़ियाँ अब भी छत से लटकी हुई थीं। रूपा अमर की तरफ नजर किये हुए थी ताकि एक बार वह मुड़कर उसकी तरफ देखे तो वह उसके मन के भीतर प्रवेश करके जान सके कि उसकी सलाह किस सीमा तक उसकी अपनी है। जब रूपा ने अमर को बड़ी देर तक नजर बचाते देखा तो वह बोली—

"जब सलाह दी है तो इतनी और दे दो कि नये सिरे की तलाश के लिए दूसरा जन्म जल्दी से जल्दी कैसे मिल सकता है? अमर के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। वह चुपचाप दीवार पर ताकता हुआ क्षणों के बीतने की प्रतीक्षा करता रहा। रूपा की आवाज में एक हल्का-सा कम्पन उसने देख लिया था। शायद वह दुपट्टे के पल्ले को ठीक करने के बहाने आँखों में उमड़े आँसुओं को भी पोंछने का प्रयास कर रही थी। अमर को लगा कि उसने रूपा के बीते जीवन को कुरेदकर अच्छा नहीं किया। रूपा अपनी जगह से उठते-उठते बोली, "अब सो जाइए। बहुत रात हो गई है।"

"तुम्हारी खाँसी कैसी है अब?" अमर ने सवाल कर ही लिया।

रूपा ने 'ठीक है' का संक्षिप्त उत्तर दिया और दूसरे कमरे की तरफ जाने लगी। अमर अपने पश्चात्ताप से उबर नहीं पाया था। वह चाहता था रूपा कुछ देर और रुके। इसी गर्ज से उसने फिर सवाल किया-

"अब बुखार तो नहीं रहता?"

रूपा रुक कर बोली, "क्या पता? मैंने ध्यान नहीं दिया। रहता भी होगा तो मेरा क्या बिगाड़ लेगा। लेकिन आपने मेरे बारे में इतनी पूछताछ की और मुझे देखो मैंने पूछा भी नहीं कि घर पर सब कैसे हैं।"

"सब ठीक ही हैं। माँ की चिंता अब होने लगी है।"

"क्यों? क्या कुछ ठीक नहीं रहती उनकी तबीयत?"

"यूँ तो ठीक है लेकिन जिस दिन बड़ी आँधी से मंदिर वाला पीपल का पेड़ गिरा था, उस दिन से बहुत उदास रहने लगी हैं।"

"कुछ दिनों के लिए आप उन्हें यहाँ छोड़ जाएँ तो कैसा रहेगा?"

"कोई माने भी! कहती हैं मेरे पीछे घर चलेगा कैसे। रमा को तो बाहर के कामों से फुर्सत नहीं मिलती। मैं सोचता हूँ कुछ दिनों के लिए सब को बाहर ले जाऊँ।"

"कहाँ?"

"कहीं भी। हरिद्वार ही सही। माँ कई बार हरिद्वार जाने की बात कह चुकी है। होली के बाद कुछ सोचूँगा।"

रूपा जानती थी कि होली के बाद भी कुछ नहीं होगा। अमर जिस गोरखधन्धे में फँस चुका है उससे बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। कुछ सोचकर वह मुड़ी। नोटों की पुड़िया को अमर के तकिये के नीचे रखती हुई बोली, "अब जब भी महात्मा जी के पास जाएँ ये रुपये उन्हें वापस कर देना।"

इसके बाद तेज़ी से दूसरे कमरे में चली गई।

दूसरे दिन तड़के ही अमर अपने घर के लिए चल दिया। जाते समय उसने रूपा से भी बात नहीं की। पार्वतीदेवी से जाते समय मिला और यह कहकर चला गया कि जरूरी काम से जाना है। रूपा जब बिस्तर को झाड़ने लगी तो रुपयों की पुड़िया वैसे ही तकिये के नीचे पड़ी थी।

रात को अमर से हुई बातचीत ने उसके भीतर काफी खलबली पैदा की। उसे टुकड़ों में जरा सी नींद आई, फिर उचट गई। बिस्तर पर बैठे-बैठे वह कभी महात्मा जी के बारे में कभी अमर की बातों के बारे में सोचती रही। अँधेरे मुँह उठकर उसने घराल का दरवाजा खोला। टिकली आराम से बैठी जुगाली कर रही थी। कोने में बिंदली अपने नन्हें थोबड़ को जमीन पर रखकर सोई थी। वह टिकली और बिंदली के बीच घास-फूस के ऊपर बैठ गई। बिंदली के सिर को उसने अपनी गोद में ले लिया और एक हाथ से टिकली के माथे को सहलाने लगी। इतनी सुबह झुटपुटे में रूपा को अपने पास देखकर शायद टिकली को भी आश्चर्य हुआ होगा। वह रूपा के हाथ को चाटने लगी। उस एंकात में दो मूक प्राणियों के बीच बैठकर उसे अपनी छोटी-सी जिंदगी की सारी घटनाएँ एक-एक करके याद आने लगीं। उसे दिवाकर की याद आई। उसने कल्पना की कि वह किसी पैसे वाले दामाद के रूप में बीवी-बच्चों के साथ मजे में होगा। क्या वह सचमुच मुझे भूल गया होगा? रवि की याद भी उसे क्या नहीं आती होगी? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। दिवाकर ऐसा नहीं कर सकता। कुछ वजह होगी जो उसे मजबूर कर रही होगी। एक दिन वह जरूर घर वापस आएगा।...लेकिन...ऐश-आराम की जिंदगी छोड़कर कोई इस नरक में रहने क्यों आएगा? आएगा तो उसका इस घर पर क्या हक है? मुझ पर या रवि पर उसका क्या हक है? हम दोनों तो उसके लिए मर चुके हैं।

टिकली को दुहने के बाद उसने दूध वालों को निपटाया। तब तक उसे पता चला कि अमर चला गया।

रूपा ने पैसे अपने पास सम्हाल कर रख लिए। सोचा किसी दिन फुर्सत मिलेगी तो दत्तल जाकर महात्मा जी को पैसे दे आऊँगी।

लेकिन जिस फुर्सत की उसे तलाश थी वह अब उसके नसीब में कहाँ थी। सुबह का समय दूध दुहने, बाँटने, दही बिलोने और भैंस को सानी-पानी देने में निकल जाता। दोपहर बाद खाने के काम से फुर्सत मिलती तो टिकली को थोड़ी देर के लिए चराने ले जाती थी। उसके लिए हरी घास की खोज में समय निकल जाता। शाम को फिर वही क्रम शुरू हो जाता और रात दस बजे तक उसे व्यस्त रहना पड़ता। बीच-बीच में उसकी तबीयत भी खराब हो जाती। कभी खाँसी बढ़ जाती, कभी पीठ और छाती का दर्द होने लगता। बुखार भी कभी हो जाता। लेकिन दिन भर के कामों में अपने शरीर के कष्टों की तरफ कहाँ देखने को मिलता। रात को बिस्तर पर जब अधमरी हो गिरती तो उसे लगता कि शरीर बुरी तरह टूट रहा है।

दो-अढ़ाई महीने इसी तरह निकल गए। इसी बीच अमर का दो-तीन बार आना भी हुआ लेकिन इस प्रसंग को लेकर फिर दोनों के बीच बात नहीं हुई। उनके गाँव में सत्यनारायण की कथा को लेकर जो झगड़ा हुआ था उसकी खबर भी रूपा को मिल गई थी। अमर की माँ की बाँह में चोट आ जाने से अब रमा को घर पर अधिकतर रहना पड़ता था। इसके अलावा रूपा यह भी जानती थी कि रमा के दिन काफी चढ़ गए हैं। अमर को अपने घर की समस्याओं से बहुत कम फुर्सत मिलती है।

एक दिन बड़ी हिम्मत करके वह महात्मा जी सेमिलने दत्तल के लिए तैयार हो गई। सास से बात की तो उसने भी जोर डाला कि जरूर हो आओ। ख्याति तो महात्मा जी की चारों तरफ फैल ही चुकी थी। पार्वतीदेवी भी चाहती थी कि उसके लिए महात्मा जी से कोई नुस्खा मिल जाए।

रूपा शादी के बाद पहली बार अपने मायके के गाँव में जा रही थी। जब महात्मा जी के पास जाना है तो वह अपने बापू के घर भी जरूर जाएगी चाहे थोड़ी ही देर के लिए ही सही। अपना ट्रंक खोलकर कपड़े निकालने लगी। शादी के बाद बनवाए तीन-चार सूट उसने सम्हालकर रखे थे। यहाँ पहनने का मौका ही नहीं मिला। उसने एक हल्के रंग का सादा-सा सूट निकाला। इसे वह पाँच-छः बार पहन चुकी थी। दूसरे सूट अब उसे बहुत भड़कीले लगते थे इसलिए उन्हें पहनने का सवाल ही नहीं था। जो सूट उसने निकाला उसे पहनने के बाद उसे लगा कि वह बहुत पतली हो गई है। सूट बहुत ढीला लग रहा था। लेकिन उसे पहनने के अलावा और कोई चारा भी नहीं था। सूट पहनने के बाद उसने बिंदी भी लगाई और शादी के समय मास्टर जी द्वारा भेंट में दिए गए श्रृंगार बक्से के शीशे में अपने चेहरे को देखने लगी। शीशे में घुमा-घुमाकर वह अपने चेहरे की हड्डियों और झुर्रियों को देखती रह गई। पहले तो उसे लगा कि शीशा बहुत पुराना हो गया है, फिर धीरे-धीरे उसे विश्वास होने लगा कि यह चेहरा उसी का चेहरा है। जिगर से उठने वाली हूक को उसने होंठ भींचकर दबा दिया और श्रृंगार बक्से को झटपट ट्रंक में बन्द कर दिया। रवि न जाने कब स्कूल से लौटकर सीधा उस कमरे में आ गया था। पहली बार उसने अपनी माँ को बिंदी लगाते और छोटे से शीशे में अपना

चेहरा देखते देखा। वह आश्चर्य से उसकी तरफ देख रहा था और चुपचाप खड़ा था। रूपा की नजर जब उस पर पड़ी तो उसने झटपट उसे गले से लगा लिया।

रवि साथ जाने के लिए मचलने लगा। रूपा ने बड़ी मुश्किल से समझा-बुझाकर उसे दादी के पास छोड़ा और दत्तल के रास्ते पर चल दी।

धीरे-धीरे चलने पर भी वह एक घंटे में दत्तल पहुँच गई। सड़क के किनारे पुराने मंदिर के पास कुटिया देखकर वह उस तरफ मुड़ गई लेकिन वहाँ जाकर देखा कुटिया बिल्कुल उजाड़ थी, वहाँ किसी साधु-महात्मा के ठहरने का कोई निशान नहीं था।

वहीं से वह अपने मायके की तरफ मुड़ गई। रास्ते में उसे कोई नहीं मिला। किसी ने दूर से देखा भी होगा तो पहचाना नहीं। वह अपने बापू के आँगन में जाकर खड़ी हुई तो आँगन की साफ-सफाई और घर का रंग-रूप देखकर दंग रह गई। गुमटी अन्दर से निकल कर आई। रूपा को देखकर एक पल ठिठकी, फिर उसने उसे पहचान लिया और उसके गले से लिपट गई। गुमटी उसे अन्दर ले गई। अन्दर वाले कमरे में पहुँचकर रूपा को लगा कि सचमुच गुमटी ने घर का कायाकल्प कर दिया है।

थोड़ी देर बाद पड़ोस की परमेसरी चाची, रामसुरे की बहू, रामसुरा भी आ गए। शुकरू को पता चला तो वह हल-बैल खेत पर छोड़कर भागा-भागा आया। शुकरू के दोनों लड़के भी खेत छोड़कर आ गए।

बड़ी देर तक दुःख-सुख की बातें होती रहीं। गुमटी ने चाय बनाई और साथ में सूजी का हलुआ भी। सब ने मिलकर खाया। जब रूपा अपने घर चलने को तैयार हुई तो उसे महात्मा जी की याद आई। उसके पूछने पर परमेसरी चाची ने बताया कि "महात्मा जी तो कहीं लोप हो गए। मुए पुलिस वाले उनके पीछे पड़े हैं। कहते हैं वह बड़ा खतरनाक आदमी है। अरे मैं तो कहती हूँ कि उनके जैसा पहुँचा हुआ महात्मा मैंने नहीं देखा।"

दिन डूबने के करीब जब रूपा वापस अपने घर पहुँची तो उसके मन में एक ही मलाल था कि महात्मा जी से उसकी भेंट नहीं हुई।

महात्मा जी के अचानक अन्तर्धान हो जाने की घटना एक दैवी चमत्कार के रूप में एक गाँव से दूसरे गाँव में बड़ी तेजी से फैलती गई। दत्तल गाँव के लोगों ने बताया कि पिछली रात दस बजे तक कुटिया में पचास-साठ लोग बैठे प्रवचन सुनते रहे। उसके बाद एक-एक करके रोज की तरह सब अपने-अपने घरों को चल दिए। सुबह कुटिया खाली थी। किसी ने महात्मा जी को निकलते नहीं देखा। उनका नाम दत्तल में ही नहीं आस-पास के साठ-सत्तर गाँवों में बच्चा-बच्चा जानता था। इन गाँवों में शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसने महात्मा जी के एक बार दर्शन न किए हों या उनका प्रवचन नहीं सुना हो। महात्मा जी गए कहाँ, इसका जवाब किसी के पास नहीं था। कुछ लोग कहते, "साधु-संतों का कोई ठिकाना तो होना नहीं। जब भक्तों की

मोह-ममता ज्यादा हो गई तो सब छोड़ कर चल दिए।" लेकिन सवाल था कि गए कहाँ? किस रास्ते गए? किसी ने भी तो उन्हें नहीं देखा।

जिन गाँवों में महात्मा जी नहीं गए थे, उनमें भी उनके लापता होने की खबर एक रहस्य-कथा की तरह पहुँच गई। हाट-बाजार में या चौपाल में जहाँ पाँच-सात आदमी इकट्ठे होते, महात्मा जी और उनके उपदेश चर्चा का विषय होते। इधर कुछ दिनों से उनके प्रवचनों में देश की वर्तमान राजनीति के उदाहरण कुछ ज्यादा आने लगे थे। गीता की बातों को आज के माहौल के संदर्भ में वे कुछ इस तरह से रखते थे कि लोगों को लगता कि गीता उनकी जिंदगी को छूती है। वे सिर्फ परलोक की बातें नहीं थीं, इहलोक की भी थीं। बीच-बीच में राजनीति के चुटकलों से वे अपने प्रवचनों में मिर्च-मसाला भरते। उनके प्रवचनों से कुछ लोगों के कान खड़े होने लगे थे। कुछ भक्त लोगों ने यह कहना भी शुरू किया कि महात्मा जी को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है और इस खबर के उड़ते ही सरकार के खिलाफ मन ही मन लोगों में कटु भावना भी भरने लगी थी। इमरजेंसी जब से लगी थी, लोगों के मुँह बन्द हो गए थे। कोई साधारण बातचीत में भी सरकार के खिलाफ कुछ नहीं बोलता था। ऐसी घटनाएँ भी हो चुकी थीं कि बसों में, या सड़कों पर या दुकान पर आपस की बातचीत करते लोगों में से कुछ को पुलिस पकड़कर ले गई थी और दो-तीन दिन हवालात में रखकर नसबन्दी करने के बाद उन्हें छोड़ा गया था। इस आंतक के कारण लोग हँसी-मजाक में भी मंत्रियों का नाम लेने से डरते थे। लेकिन महात्मा जी के गीता प्रवचनों में जब वे शकुनियों और दुःशासनों के उदाहरणों में सरकार पर छींटाकशी सुनते तो खूब मजा लेते। साधु-सन्तों का स्थान हमेशा राजा से ऊँचा माना जाता रहा है। उनके मुँह से निकले वचनों पर कौन आक्षेप करता? मजमे में जो सरकार के भक्त होते वे भी चुप रह जाते। लोगों के मन का गुब्बार महात्मा जी की गीता-सभाओं में निकलता। उनके प्रवचन दिन-ब-दिन लोकप्रिय होते गए और बड़े अधिकारियों के भी कान खड़े हुए। इधर सरकार के खिलाफ बड़ी संख्या में पर्चे भी बँटने लगे थे। पुलिस के बड़े अधिकारियों को महात्मा जी पर शक होने लगा, लेकिन इससे पहले कि वे कुछ कदम उठाते, महात्मा जी अचानक लापता हो गए।

जब पुलिस कुछ गाँवों में महात्मा जी के बारे में पूछताछ करने गई तो लोगों को पता चला कि महात्मा गदियारी गाँव का युवक मुरली था जो एक भूमिगत कार्यकर्ता था। एक बार फिर चन्द्रशेखर आज़ाद और भगतसिंह की क्रांतिकारी पार्टी से उसका नाम जोड़ा जाने लगा और रहस्य भरी कहानियों का वह नायक बन गया।

इन्हीं दिनों देश में व्याप्त राजनीतिक माहौल में एक बड़ा परिवर्तन हुआ। प्रधानमंत्री ने लोकसभा के चुनाव कराने की घोषणा कर दी। लोकसभा की अवधि जो एक वर्ष के लिए पहले बढ़ी थी, एक साल के लिए और बढ़ा दी गई थी। लोग यह सोच बैठे थे कि इसी तरह लोकसभा की अवधि बढ़ती रहेगी और चुनाव कभी होंगे ही नहीं। चुनावों की घोषणा ने जैसे हमेशा के लिए बन्द दरवाजे एक झटके के साथ खोल दिए और हालांकि इमरजेंसी चल रही थी, लोगों ने सोचना और खुलकर अपनी बात कहना शुरू कर दिया। विचारों की आजादी के छिन जाने का

क्या अर्थ होता है, इसे लोगों ने इस अर्से में समझ लिया था और इसलिए जरा सी ढील मिलने पर लोगों ने उस दमघोटू स्थिति से अपने को निकालने का निश्चय किया। ऐसे मौके पर मुरली की रहस्य भरी कहानियाँ और महात्मा जी के गीता-प्रवचन चर्चा के अनुकूल विषय बन गए।

गदियारी में मुरली के बारे में पूछताछ करने के लिए तीन-चार बार पुलिस आई, लेकिन वहाँ पुलिस के हाथ कुछ नहीं लगा। बुधीसिंह को थाने पर ले जाने की कोशिश भी की गई। अमर की योजना के अनुसार गाँव के सभी मर्द-औरतों ने बुधीसिंह के घर को घेर लिया और वह स्थिति नहीं आने दी। इस काम में मियाँ यशवंतचन्द ने भी पूरी मदद की। मियाँ यशवंतचन्द चुनाव घोषणा होते ही मुरली के प्रशंसक बन गए थे और सरकार की जोर-जबर्दस्ती की नीति के आलोचक बन गए थे। जयप्रकाश नारायण और मोरारजी भाई की प्रशंसा करने लगे थे। लगता था वे अगले चुनावों को ध्यान में रखकर अपना रूप बदलने लगे हैं। सत्यनारायण की कथा के दिन हरिजन टोले में हमला कराने में उनका भी हाथ था, यह बात सब लोगों को मालूम हो चुकी थी। युवा कांग्रेस की रैलियों में चंदा और भीड़ जमा करने में उन्होंने अच्छा नाम कमा लिया था इसलिए पुलिस तक बात पहुँचने पर भी उस घटना पर कोई कार्रवाई नहीं हुई थी। उल्टे पुलिस के अफसर बाँबरी के घर वालों को डरा-धमका गए थे कि उन्होंने झगड़ा कराने के लिए कथा कराई थी जिससे बड़ी जातों की धार्मिक भावना को ठेस लगी थी। चुनाव की घोषणा होते ही मियाँ यशवंतचन्द एकदम बदल गए थे और अपने को जयप्रकाश नारायण के सब से बड़े समर्थक कहने लगे थे।

जैसे-जैसे दिन बीतते गए, हवा गरम होती गई। दिल्ली में जनता पार्टी के बनने और रामलीला मैदान पर बहुत बड़ी रैली की खबरों को पढ़ने-सुनने के लिए अमर के घर पर लोग आने लगे। शाम के समय एक सभा सी वहाँ जुट जाती और राजनीति पर धुँआधार बहस होती। मीसा में बन्द नेता जेलों से छूटकर बाहर आने लगे और उनका जगह-जगह शानदार स्वागत होने लगा। कांग्रेस सरकार के भक्तों के पैरों तले की जमीन खिसकती नजर आने लगी। कांग्रेस के खिलाफ जिस तरह का वातावरण बन रहा था, उसे देखते हुए कुछ कांग्रेस भक्त चाह रहे थे कि चुनाव-घोषणा रद्द हो जाए लेकिन अब इसकी कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही थी। संजय गांधी के नसबन्दी अभियान के जो पोस्टर जगह-जगह लगे हुए थे, लोग उन्हें फाड़ने में मजा ले रहे थे।

जनता पार्टी की तरफ से लोकसभा के चुनाव में कौन खड़ा होगा, इस बारे में तरह-तरह के अनुमान लगाए जा रहे थे। कुछ युवकों ने अमर से चुनाव लड़ने का अनुरोध किया लेकिन अमर ने हँसकर इस बात को टाल दिया। फिर भी अमर न केवल गदियारी गाँव के लिए बल्कि आस-पास के अनेक गाँवों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। लोग जानते थे कि लोगों के लिए सरकार से टक्कर लेने की उसमें हिम्मत थी और मीसा से बहुत पहले वह कांग्रेस सरकार की जेल में रह चुका था। उस समय जमीन के मालिकों और काश्तकारों के बीच अनाज के बँटवारे के सवाल को लेकर काफी बड़ा आंदोलन इस गाँव में खड़ा हुआ था और अमर ने लाठियाँ सहकर जमीन मालिकों तथा पुलिस की जोर-जबर्दस्ती का विरोध किया था। इन सारी घटनाओं

से अमर की ख्याति निष्ठावान् कार्यकर्ता के रूप में दूर-दूर तक हो चुकी थी लेकिन अमर जानता था कि चुनाव लड़ना उसके बस की बात नहीं है और न ही वह इस तरह की राजनीति में हिस्सा लेना चाहता था।

अमर का पारिवारिक जीवन भी इन दिनों काफी कठिनाइयों गुजर रहा था। लक्ष्मीदेवी की बाँह का दर्द बना हुआ था। देसी नुस्खों से जितना कुछ हो सकता था उतना हुआ था। हड्डी तो जुड़ गई थी लेकिन गठिये की तरह का दर्द बाँह में रहने लगा था। हर रोज रात को नमक मिले पानी से घंटा-आधा घंटा सेंक किए बिना उन्हें रात को नींद नहीं आती थी। उधर रमा के दिन काफी चढ़ गए थे। घर पर अमर को छोड़कर कोई काम करने वाला नहीं था। रिश्तेदारों की तरफ से किसी मदद की कोई आशा नहीं थी। ससुराल का परिवार रूपा ने सम्हाल लिया था लेकिन कुछ दिनों से रूपा के स्वास्थ्य को लेकर नई चिंता अमर को होने लगी थी। बुखार और खाँसी काफी दिनों से थी। अमर एक दिन उसे पालंपुर के अस्पताल में दिखाने ले गया था। वहाँ डाक्टर ने एक्सरे वगैरह करने के बाद रूपा को टाँडा के टी०बी० अस्पताल में दाखिल करने की बात कही थी। एक साथ इतनी परेशानियों के बीच में रहते हुए अमर अपनी शक्ति और लोगों की माँगों के बीच जूझ रहा था। एक दमघोटू वातावरण के टूटने की संभावना के कारण राजनीतिक हलचल में वह रुचि अवश्य ले रहा था लेकिन चुनाव के अखाड़े में कूदने की बात वह सोच भी नहीं सकता था।

एक रात बारह -साढ़े बारह बजे के करीब किसी ने अमर का दरवाजा खटखटाया। अमर उस समय जाग रहा था। हल्की सी दस्तक सुनकर वह ऊपर वाले कमरे से नीचे आ गया। दरवाजा खोलने पर उसने देखा मुरली सिर पर मैला-सा साफा लपेटे, मैले से कपड़े पहने और गाढ़े खद्दर की चादर को कंबल की तरह लपेटे खड़ा था। उस वेषभूषा में भी अमर को पहचानते देर नहीं लगी। दोनों आकर पुस्तकालय वाले कमरे में बैठ गए। अमर ने रमा को जगाकर चाय बनवाने का इरादा प्रकट किया तो मुरली बोला—

"इस वक्त किसी को जगाने की जरूरत नहीं। चाय की भी जरूरत नहीं है, मैं बहुत जल्दी में हूँ। आप से कुछ खास बात करना चाहता हूँ। यहीं बैठेंगे।"

अमर कुछ समझ नहीं सका कि ऐसी कौन-सी बात है जो मुरली इसी वक्त उससे करना चाहता है। दोनों बैठ गए। मुरली ने जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला और एक सिगरेट सुलगा ली।

अमर बोला, "महात्मा के रूप में तुम्हारी इतनी प्रसिद्धि हो गई है कि अब तुम लोगों के सामने सिगरेट पीओगे तो बड़ा अजीब लगेगा।"

मुरली मुस्करा दिया, "शुक्र यही है कि मैं सिगरेट का इतना गुलाम नहीं हुआ हूँ कि उसके बिना रह ही नहीं सकता। जब तक साधु बना रहा एक दिन भी सिगरेट पीने की इच्छा नहीं हुई। भगवा कपड़े पहनते ही आदमी का मन भी जैसे बदल जाता है।"

"तुम्हारे भाषणों ने तो सरकारी अफसरों की नींद हराम कर दी है। उस दिन मैंने तुम्हारा गीता प्रवचन सुना था। तभी मुझे लगा था कि तुम्हारी महात्मागिरी ज्यादा दिन नहीं चलेगी।"

"ज्यादा दिन चलानी भी किसे थी? लेकिन आपको उस दिन बुरा तो नहीं लगा था?"

"किस बात का?"

"मैंने आपके विचारों का अपने भाषणों में प्रयोग कर लिया था।"

"विचार बिल्कुल मेरे हैं यह कैसे कह सकते हो। न जाने उन्हें देने वाले कौन-कौन हैं?

"फिर भी उस दिन पहली मुलाकात के समय आप से जो बातें हुई थीं उनमे मुझे बड़ा सुकून मिला था मुझे लगा था कि लोगों की जड़ता को तोड़ने के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है। आपने कहा था कि आप अपने मानसिक तनाव को कम करने के लिए डायरी में कुछ लिखते रहते हैं। मैं आपकी डायरी देखना चाहता हूं।"

अमर को उसकी बात पर हँसी आ गई। बोला—

"अजीब खब्ती इन्सान हो तुम! पुलिस की नजर से बचे-बचे घूम रहे हो। आधी रात को मेरे घर क्या इस बेकार बात को लेकर आए हो?"

"मेरे लिए इस बेकार बात का बड़ा महत्त्व है। बात यह है कि इलेक्शन के लिए मुझे एक अखबार निकालने का काम भी सौंपा गया है। तुम जानते हो कि हमारी जिन्दगी नारेबाजी में जाती है, हमें पढ़ने और सोचने का वक्त ही कहाँ मिलता है। मुझे तुम्हारी डायरी से लिखने का अच्छा मसाला मिल जाएगा। बोल तो सभी लेते हैं, लिख भी लेते हैं लेकिन उसके पीछे दर्द का पुट देना सभी के बस की बात नहीं है। यह काम तो तुम्हारे जैसे लोग ही कर सकते हैं जो धमाचौकड़ी से दूर रहकर हर चीज का विश्लेषण कर सकते हैं और रोजी-रोटी के लिए जूझने वाले एक साधारण आदमी के संदर्भ में सारे परिवर्तनों को देख सकते हैं।

अमर को मुरली की बात एक बच्चे की जिद्द की तरह लग रही थी। वह बोला—

"मैंने कभी छपने के इरादे से कुछ नहीं लिखा और जो कुछ ऊल-जलूल लिखा भी होगा, वह उन्मादी का प्रलाप-भर हो सकता है।"

"अच्छा मुझे दिखाओ तो सही...... मैं उस पर सरसरी नजर डालना चाहता हूँ"

अमर ने मेज की दराज से एक डायरी निकालकर उसके आगे बढ़ा दी, "नहीं मानते हो तो लो। चाहो तो इसे अपनी जेब में रख लो। इसका जो चाहे इस्तेमाल करो। मुझे इसकी जरूरत भी नहीं है। मेरे लिए इसका जो उपयोग था वह मैंने कर लिया लेकिन मैं फिर कहे देता हूँ इसमें कोई तत्त्व की बात तुम्हें नहीं मिलेगी।"

मुरली ने डायरी को खोलकर पढ़ना शुरू कर दिया था। डायरी के सब से पहले पन्ने पर अक्तूबर, 1967 की कोई तारीख थी। किसी के मृत्यु के समाचार पर टिप्पणी करते हुए अमर ने लिखा था—"इस देश को राजनीति के पाखंड से मुक्त करने की क्षमता जिसमें थी वह नहीं रहा। ऐ बदनाम मसीहा! तुम्हारे विचारों की तपिश को झेलने की सामर्थ्य बीसवीं शती में नहीं है।"

उसके बाद 1967 और 1969 के बीच की परिस्थितियों को लेकर कुछ पन्नों पर अमर के मन की प्रतिक्रियाएँ अनगढ़ और अनियंत्रित रूप से बिखरी हुई थीं। 1971 और 1972 के चुनावों के बाद कुछ नेताओं से हुए पत्र-व्यवहार का उल्लेख भी था। बीच-बीच में कविताएँ भी लिखने की कोशिश की गई थी। मुरली डायरी के पन्नों को जल्दी-जल्दी पलटता गया और एक

सरसरी नजर से उसने डायरी देख डाली।

"मैंने कहा था न तुम्हारे काम की चीज इसमें कुछ नहीं होगी।" अमर ने उसकी तरफ देखा। वह उस डायरी को अपनी सँकरी-सी जेब में ठूँसने की कोशिश कर रहा था।

"मैं इस डायरी को लौटा दूँगा। आप नहीं जानते हैं आपने इसमें क्या लिखा है और उसका कितना महत्त्व है। इसमें एक संवेदनशील व्यक्ति के दर्द का सच्चा प्रतिबिम्ब है। मैं इसके छपवाने की व्यवस्था भी कर सकता हूँ बशर्ते कि आप इसके लिए तैयार हों।'

अमर फिर हँस दिया, बोला, "'यह' पागलपन है तुम्हारा। मेरे लिए यह बेकार की चीज है। तुम इसे ले जाओ। खैर··· अब यह बताओ कि आजकल क्या नाटक कर रहे हो। लोग तो तुम्हारे बाबा रूप के पीछे पागल हुए जा रहे हैं। क्या इलेक्शन लड़ोगे?"

मुरली चौंक पड़ा, बोला, "मुझे तो याद ही नहीं रहा। मुझे इलेक्शन के बारे में भी आपसे बात करनी थी। जनता पार्टी की कार्यकारिणी के तीन-चार सदस्य मेरे अच्छे परिचित हैं। हमारे पुराने साथी हैं। आपका चुनाव लड़ने का विचार हो तो टिकट मैं दिला सकता हूँ। इस वक्त जनता पार्टी के सभी घटक अपने-अपने आदमी तलाश कर रहे हैं।"

अमर ने साफ-साफ बताया कि वह चुनाव लड़ने की बात सोच भी नहीं सकता है। "जनता पार्टी बन जाए। सारे विरोधी दल एक हो जाएँ तो इससे मुझे खुशी होगी। उसके जीतने की संभावनाएँ भी मुझे दिखाई दे रही हैं। लेकिन जिस तरह की पार्टी बननी चाहिए उस तरह की बनेगी नहीं और रोग वैसा का वैसा बना रहेगा। पाँचों घटकों के अपने-अपने स्वार्थ हैं। स्वार्थों को वे छोड़ेंगे नहीं और इसलिए इस देश में जिस बदलाव की बात मैं सोचता हूँ वह नहीं आएगा। यह ठीक है कि यह देश डिक्टेटरशिप के चंगुल से छूट जाएगा, लेकिन आम आदमी की दशा सुधारने वाला कुछ माहौल बनेगा, इसकी आशा मुझे कतई नहीं है। आखिर ये लोग वही तो हैं जो देश को इस हालत तक पहुँचाने के लिए जिम्मेदार हैं। इन्होंने अपनी मूर्खता से इसकी दुर्गति की है। इन्दिरा गांधी तो एक बहाना बन गई। दरअसल जिस तरह से यह देश तीस साल से घिसटता जा रहा था और सभी दलों के नेता जिस तरह की अदूरदर्शिता का परिचय दे रहे थे उसका यह स्वाभाविक परिणाम था। बदलाव आएगा, जब इन लोगों के दिमाग बदलेंगे। जब ये लोग अपने-अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर नये सिरे से सोचेंगे! लेकिन यह परिस्थिति आने वाली नहीं है।"

"लेकिन नये लोग आगे आएँगे नहीं तो पूर्वाग्रहों से मुक्त चिंतन की प्रक्रिया कौन शुरू करेगा?"

"आएँगे जरूर, लेकिन उसके लिए अभी समय नहीं है। इस समय तो कोशिश करने पर भी नहीं आ सकते।"

"आपके टिकट की व्यवस्था करूँगा। चुनाव प्रचार के लिए जनता पार्टी के बड़े-बड़े नेताओं को यहाँ बुला सकता हूँ। आपको सिर्फ अपनी स्वीकृति देनी है।"

मुरली के बार-बार आग्रह करने पर भी अमर इसके लिए तैयार नहीं हुआ। मुरली ने अनुरोध के स्वर में कहा, "आपकी परेशानियों को मैं समझता हूँ। फिर भी मेरा निजी मत है कि

आपको राजनीति में आना चाहिए। यह इतनी बुरी चीज नहीं है अगर ठीक राजनीति करने वाले लोग आएँ। इसके साथ करोड़ों लोगों की जिन्दगी जुड़ी हुई है। राजनीति मनुष्य की सब से बड़ी सेवा भी हो सकती है।"

अमर अपने निश्चय पर अडिग रहा। उसने प्रसंग बदलकर कहा—

"कभी रूपा से इस बीच मिले?"

रूपा की चर्चा से मुरली के चेहरे का रंग बदल गया। बोला—

"आपको उस दिन मेरी बात बुरी लगी थी। शायद मुझे वह बात नहीं कहनी चाहिए थी। लेकिन यकीन मानिए, रूपा को मैं इसलिए पाना चाहता था कि वह मेरी अधूरी जिन्दगी को पूरा कर सकती है, वह जिन्दगी की निर्मम लड़ाई में बहुत दूर तक साथ दे सकती है। लेकिन इससे अगर आपको या रूपा की भावनाओं को ठेस पहुँचती है तो मैं कभी इस तरह का विचार होठों पर नहीं लाऊँगा।"

अमर गम्भीर हो गया। मुरली की ओर से नजरें हटाकर वह सामने दीवार की तरफ देखता हुआ बोला—

"उस बेचारी को अब अपनी जिन्दगी का ही भरोसा नहीं रह गया है। वह तुम्हारी अधूरी जिन्दगी को क्या पूरा करेगी?"

मुरली के चेहरे का रंग एकदम बदल गया।

"क्या हुआ उसे?"

इससे पहले कि अमर कोई उत्तर दे पाता, रमा चाय के दो गिलास थाली में रखे कमरे में आई। पता नहीं वह कब उठकर नीचे आ गई थी और रसोइघर में जाकर चाय बनाने लगी थी। लक्ष्मीदेवी भी लगता है, जग गई थी क्योंकि उसके कमरे में रोशनी दिखाई दे रही थी। मुरली के अजीब भेष को देखकर रमा मुस्करा कर बोली—

"बहुरूपिये की तरह कब तक घूमते रहेंगे आप? अब तो आप लोगों को बाहर आ जाना चाहिए।"

मुरली सकपका गया, बोला, "अभी वक्त नहीं आया है। हमारे नाम का वारंट तो अब भी है। जेलों वाले लोग छूटकर आ रहे हैं, हम तो उन लोगों में नहीं आते।"

चाय की इच्छा तो दोनों को ही हो रही थी। ठीक समय पर रमा ने चाय लाकर दी, इसके लिए मुरली ने रमा का आभार मानते हुए कहा, "पुलिस मेरी खोज में इतनी उतावली होती तो मैं ऐसे वक्त पर आपको चाय बनाने का कष्ट न देता।"

"कष्ट की इसमें क्या बात है?" रमा बोली, "हमारे धनभाग जो आप हमारे घर आए। आपके दर्शनों के लिए तो हजारों आदमी तरस रहे हैं।"

"जब उन्हें असली बात का पता चलेगा तो मेरे खून के प्यासे हो जाएँगे। इस देश के लोग बड़े निराले हैं, एक तरफ वे आदमी की पूजा के लिए उतावले रहते हैं दूसरी तरफ आदमी का कुत्ते से भी अधिक तिरस्कार करने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। एक के चरण छूते हैं, दूसरे को लात मारते हैं। अब देखिए न..... यूरोप या अमेरिका का कोई देश होता तो ऐसे मौके बेमौके

पर कोई चाय पिलाता?"

मुरली की बात पर अमर भी हँस पड़ा। रमा चाय के गिलास रख कर चली गई। जब दोनों अकेले रह गए तो मुरली ने पूछा—

"क्या रूपा की तबीयत खराब है? मुझे उसी दिन शक हो रहा था।"

"शक तो मुझे भी कई दिनों से हो रहा था।" अमर कहने लगा, "लेकिन जब भी मैं डाक्टर को दिखाने के लिए कहता वह हँसकर टाल देती थी। निराहार व्रत-उपवास उसके आये दिन होते थे। गम भी खाये जा रहे थे। कभी-कभी हम चाहते हुए भी किसी के लिए कुछ नहीं कर पाते। सच पूछो तो मेरी हालत भी कुछ ऐसी ही हो गई थी। फिर जब टिकली-बिंदली उसके घर आ गईं तब वह बिल्कुल बदल गई। उसमें इतना आत्म विश्वास आ गया कि लगता था कि उसे कोई शारीरिक कष्ट है ही नहीं। अब तो उसे लगातार बुखार रहने लगा है। उसे टी०बी० सेनिटोरियम में भरती कराने के लिए डाक्टर ने कहा है लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि यह कैसे होगा! टांडा के सैनिटोरियम में इतने मरीज आते हैं कि छः-सात महीने से पहले वहाँ बिस्तर नहीं मिल सकता। घर पर रहकर इलाज होना मुश्किल है। एक भैंस का काम जान लेने वाला होता है। वह उसे छोड़ नहीं सकती।"

मुरली अमर की बातें सुनते-सुनते कहीं खो गया था। कुछ याद करके वह बोला, "अगर टांडा में उसे भर्ती कराने का बन्दोबस्त हो भी जाए, तो घर का क्या होगा? पार्वती देवी को और रवि को कौन सम्हालेगा?"

अमर बोला, "उनकी इतनी समस्या नहीं है। दोनों को मैं अपने घर ले आऊँगा। टिकली-बिंदली को भी यहाँ रख लेंगे। लेकिन अस्पताल में जगह कैसे मिलेगी। उसके लिए तो किसी मंत्री की सिफारिश भी काम नहीं करेगी। वहाँ तो सुना है बारी से ही मरीज़ लिये जाते हैं।"

"क्या बहुत कमजोर हो गई है?"

"हाँ, आजकल तो दस-बीस कदम चलना भी मुश्किल हो गया है। लेकिन कमजोरी से भी बड़ी समस्या है उसकी जीवन के प्रति निराशा। वह हिम्मत हार गई है। जब से उसे पता चला है कि उसे टी०बी० हो गई है, उसने जीने की उम्मीद छोड़ दी है। मेरे समझाने पर भी उसे यकीन नहीं होता कि वह ठीक हो जाएगी।"

"वह पागल है। टी०बी० तो आजकल आम बीमारी है। सर्दी-जुकाम की तरह की बीमारी। इसमें खतरे की कोई बात ही नहीं। आपको उसे यह बात समझानी चाहिए कि ज्यादा से ज्यादा एक महीने में वह अपना सारा काम-काज फिर सम्हाल सकती है।"

"मेरे कहने का कोई असर उस पर नहीं हो रहा। टी०बी० के नाम से ऐसी दहशत लोगों के मन में बैठ गई है कि लाख समझाने पर भी उन्हें विश्वास नहीं होता।"

मुरली कुछ देर तक सोचता रहा। फिर बोला

"आप कितनी जल्दी उसे टाँडा अस्पताल ले जा सकते हैं?"

"मैं तो कल ही ले जा सकता हूँ, लेकिन वहाँ कुछ बन्दोबस्त भी तो हो।

"बन्दोबस्त मुझ पर छोड़ दीजिये। मैं यहाँ से सीधे टाँडा जाऊँगा। वहाँ मेरा एक दोस्त डाक्टर बनकर आया है। उससे मिलकर बिस्तर का बन्दोबस्त हो सका तो ठीक, नहीं तो अस्पताल के पास ही एक कमरा किराए पर ले लूँगा? टाँडा से शाहपुर दूर नहीं है। वहाँ हमारा छोटा-सा प्रेस लगा है और वहीं से हम अखबार निकालना चाहते हैं। टी०बी० के रोगी का रिश्तेदार बनकर वहाँ रहूँगा तो किसी को शक भी नहीं होगा। मेरे लिए वह सब से सुरक्षित जगह होगी।"

अमर मुरली की तरफ देखता रह गया। उसने मन ही मन कहा, 'इस अजीब आदमी को अजीब-अजीब बातें सूझती हैं।' अमर के सामने खर्च का सवाल भी था लेकिन वह जानता था कि रूपा ने दूध की कमाई से जो रुपये बचाकर रखे हैं, उनसे काम चल जाएगा। मुरली ने फिर कहा–

"मैं जानता हूँ, आपके ऊपर काफी बोझ आ पड़ेगा। पार्वतीदेवी और रवि के अलावा टिकली-बिंदली की भी देखभाल करनी पड़ेगी। आप अकेले यह सब कैसे करेंगे?"

"मेरी बात छोड़ो, यहाँ सब हो जाएगा। भैया भाभी मेरे काम का बोझ हल्का करेंगे।"

मुरली को याद आया कि बड़े भैया और भाभी तो अमर के लिए परिवार के सदस्य जैसे हैं।

"उस दिन अगर आप भैया को पुलिस के हाथ पड़ने से न बचाते तो बहुत बुरा होता। मैं आपका अहसान कभी नहीं भूलूँगा।"

अमर कुछ नाराज़गी के स्वर में बोला, "बुधासिंह ने मुझे सगे भाई जैसा प्यार दिया है। नीलू भाभी चार-पाँच दिनों के लिए मायके चली जाती हैं, तो हमारा घर अस्तव्यस्त हो जाता है। सच बात तो यह है कि भैया-भाभी का सहारा न मिला होता तो इस गाँव को छोड़कर कहीं भाग गया होता। उनको पुलिस के हाथ चुपचाप सौंप देता तो मेरे जैसा अधम इन्सान कौन होता?"

मुरली की आँखें नम हो गईं। वह कुछ कह नहीं सका। उसे डर था कि कहीं बोलते-बोलते भावुकता का ज्वार बाहर न फूट पड़े। किसी तरह होठों को भींचकर उसने अपने आवेश पर काबू रखा। जिस दिन मुरली को खबर मिली थी कि पुलिस उसके भाई को पकड़ने गई है, उस दिन उसने मन में एक भयानक इरादा कर लिया था। बहुत पहले बचपन की उस कच्ची उम्र में भाई को नंगा करके चौराहे पर पीटे जाने के समाचार मे वह प्रतिशोध की आग से जल उठा था। उसी तरह की आग उसमें उस दिन जलने लगी थी। अमर की वजह से वह वैसा कुछ काम करते-करते रुक गया था। कुछ देर बाद वह बोला–

"मैं कई दिनों से आपसे कुछ सवाल करना चाहता हूँ लेकिन··· ठीक मौका नहीं मिला।"

"इससे अच्छा मौका और क्या मिलेगा?" अमर ने मुस्करा कर कहा, "लेकिन ऐसे सवाल मत पूछना जिनका जवाब मेरे पास न हो। गणित मेरा हमेशा कमजोर विषय रहा है।"

"इस समय नहीं पूछूँगा। उस सवाल पर कभी इत्मीनान से बात होगी।"

"फिर भी सवाल क्या है?"

"मैं जानना चाहता हूँ कि आपने जीवन के प्रति जो रुख अपनाया है उसमें कितना हिस्सा

सपना है और कितना हिस्सा हकीकत। आप सपने के लिए जी रहे हैं या वर्तमान यथार्थ के लिए जी रहे हैं। लेकिन इससे पहले कि मैं इस सवाल पर आपसे बहस करूँ, शायद मुझे सोचने के लिए काफी समय तलाशना पड़ेगा। इसीलिए कहता हूँ कि कभी इत्मीनान से इस पर बातें होंगी। अब मैं चलूंगा। आप ग्यारह बजे की बस से टाँडा पहुँच जाएँ तो मैं आपको वहाँ मिल जाऊँगा।''

उसने अपने जूते पहने। गाँव के कारीगर के बने देसी जूते, जिनके नीचे उसने रबड़ के मोटे सोल लगा रखे थे। दाढ़ी जैसे दस-बारह दिन से नहीं बनी थी और बीच-बीच में आधे बाल सफेद दिखाई दे रहे थे। लगता था चेहरे पर भी कुछ मेकअप किया हुआ है क्योंकि ठेठ देहाती वेशभूषा में वह पचास के लगभग का दिखाई दे रहा था। रमा और लक्ष्मीदेवी दूसरे कमरे में अब भी बैठी हुई थीं। उन्हें नमस्कार करने के बाद वह अँधेरे में निकल गया।

उस वक्त साढ़े तीन बज चुके थे। सोने का अब समय नहीं था। रमा और माँ के साथ अमर ने सारी योजना पर विचार-विमर्श किया। बुधीसिंह और नीलू से परामर्श करना भी जरूरी था क्योंकि उनकी मदद के बिना यह काम नहीं हो सकता था। योजना यह बनी कि अमर और बुधीसिंह दोनों खैरा जाएँगे। अमर रूपा को लेकर ग्यारह बजे की बस से टाँडा जाएगा और बुधीसिंह पार्वती देवी और रवि को यहाँ लेकर आएगा। पार्वती देवी के लिए घोड़ा या पालकी का प्रबंध करना होगा। टिकली-बिदली को भी साथ लाना पड़ेगा। सुबह होते ही अमर बुधीसिंह के घर जा पहुँचा। उसने सारी योजना उसे बताई। नीलू और बुधीसिंह दोनों ने इस योजना का समर्थन किया। नीलू ने आश्वासन दिलाया कि मौसी (पार्वती देवी) को किसी तरह का कष्ट नहीं होगा और टिकली-बिदली की देखभाल हो जाएगी।

लेकिन जितनी आसानी से यहाँ योजना बन गई थी, खैरा में उसके रास्ते में उतनी बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई। रूपा ने अस्पताल में दाखिल होने से इन्कार कर दिया। अस्पताल का नाम सुनते ही वह रोने लगी और सास से लिपटकर बोली, ''माँजी, मुझे वहाँ मत भेजो। मैं वहाँ से जिन्दा नहीं लौटूँगी। मैं आपको छोड़कर नहीं जाऊँगी। मैं जितने दिन जिऊँगी, यहीं रहकर जिऊँगी। सब को अपने सामने देखकर मरूँगी। मुझे वहाँ अकेले में मत मारो मांजी मत मारो।''

पार्वतीदेवी खुद अपाहिज होकर उसके सहारे जी रही थीं। रूपा अब उसके लिए पुत्रवधू ही नहीं थी, उसकी बेटी, माँ, बहन सब कुछ थी। वह उसे नहलाती-धुलाती थी, उसका मलमूत्र उठाती थी। उसे मनपसंद खाना बनाकर देती थी और जब अपने गमों की याद करते-करते उसका दम घुटने लगता तो वह उसे अपनी छाती से लगा लेती थी।

अमर ने उसे समझाने की कोशिश की, ''देखो रूपा, तुम बिल्कुल बच्चों की तरह जिद्द कर रही हो। मैंने कहा न, यह बीमारी अब बहुत मामूली बीमारी रह गई है। इसका अब सौ फीसदी इलाज हो जाता है। तुम्हें वहाँ रहने के लिए इसलिए कह रहा हूँ कि घर पर रहोगी तो तुम्हें घर का सारा काम करना पड़ेगा। एक महीना तुम्हें पूरा आराम चाहिए। मैं कहता हूँ एक महीने बाद तुम्हें अपना सारा संसार ज्यों का त्यों वापस मिल जाएगा। तुम्हें हिम्मत नहीं हारनी

चाहिए। देखो, तुम पर कितने लोगों का जीवन टिका हुआ है। माँ जी के लिए तुम जीने का सहारा हो। रवि के लिए तुम्हीं सहारा हो ''' तुम्हें इनके लिए जीना है। तुम हिम्मत हार दोगी तो इनका क्या होगा?''

बुधीसिंह ने भी समझाया लेकिन रूपा लगातार रोती रही और अपनी सास के गले से लिपटी रही। पार्वती देवी ने उसके सिर पर हाथ फेरा और बोली, ''जा बेटी, इनकी बात मान ले। अस्पताल आदमी की जान लेने के लिए तो बने नहीं। तुम जल्दी ठीक हो जाओगी। मैं दिन-रात तुम्हारे लिए भगवान् से प्रार्थना करूँगी। मेरा रोम-रोम तुम्हारे लिए प्रार्थना करेगा।''

काफी रोने-धोने के बाद रूपा ने अपने को किस्मत के हवाले छोड़ दिया। वह तैयार हो गई। पार्वतीदेवी को ले जाने के लिए घोड़े का प्रबंध कर लिया गया था। टिकली-बिंदली को लेकर बुधीसिंह और रवि पैदल गदियारी की तरफ चल दिए और रूपा अमर के साथ मारंडा के बस अड्डे की तरफ चल पड़ी।

बारह बजे के लगभग अमर और रूपा टाँडा के पास बस से उतरे। वहाँ से अस्पताल लगभग डेढ़ मील दूर था। सड़क छोड़कर जैसे ही वे पगडंडी पर चलने लगे, ठेठ देहाती की वेशभूषा में मुरली सामने से आता दिखाई पड़ा। अमर के पास आकर जब उसने कहा कि मकान का बन्दोबस्त कर लिया है तो रूपा को उसकी आवाज पर कुछ संदेह हुआ। अमर ने शीघ्र ही उसके संदेह को दूर कर दिया और रूपा को सारी बात साफ-साफ बता दी। उसे यह भी बता दिया कि उसे अस्पताल में नहीं रहना है। अस्पताल के पास एक किराए के मकान में रहना है और 'मास्टर जी' उसकी देखभाल करेंगे। जाने क्यों रूपा को लगा कि वह जितना डर रही थी, उतना डरने की बात नहीं थी।

अस्पताल में उन्हें आधे घंटे से ज्यादा नहीं रुकना पड़ा। डाक्टर शरद ने जाते ही रूपा की जांच की। एक्सरे की फिल्म भी धुलकर आ गई। रूपा के बाएँ फेफड़े में दो दाग साफ नजर आ रहे थे। डाक्टर ने इन्जेक्शन और दवाई लिख दी। फिर मुरली की तरफ देखकर कहा, ''पेशेंट को ज्यादा से ज्यादा आराम दो। दूध, अण्डा, मांस, मछली, फल खिलाओ। बहुत जल्दी ठीक हो जाएगी।''

रूपा को लेकर जब मुरली और अमर अस्पताल से बाहर निकले तो मुरली बोला, ''अस्पताल के नाम से लोगों की तबीयत यूँ ही घबराने लगती है। आधे घंटे में सारी परेशानी दूर हो गई।'' अमर बोला, ''भाई, बीमारी कोई भी हो उससे डर तो लगता है लेकिन मैंने देखा है कि बीमारी की ठीक पहचान हो जाए तो वह आधी कम हो जाती है। उसके बाद तो सिर्फ इन्तजार करना होता है। लेकिन रोग की पहचान न हो तो बड़ी परेशानी होती है।''

रूपा अस्पताल के बने बगीचे में बैठे अनेक मरद-औरतों को देखकर बोली, ''ये लोग अपने रोगियों के साथ आए हैं?''

''रोगियों के साथ नहीं, ये खुद रोगी हैं।'' मुरली ने कहा, ''जब ये लोग यहाँ आए थे तो ये भी किसी का हाथ पकड़कर चलते थे, जैसे तुम अमर का हाथ पकड़े हुए हो। अब ये लोग बड़े मजे से घूमते-फिरते हैं, हँसते-खेलते हैं। कुछ दिनों में ये अपने-अपने घर चले जाएँगे।''

रूपा ने अमर का हाथ छोड़कर चलने की कोशिश की तो उसके कदम डगमगा गए और मुरली ने उसके कंधे पर हाथ रखकर थाम लिया। अमर हँसकर बोला, "बस-बस, महात्मा जी का हाथ जिसके कंधे पर पड़ गया, उसे किसी बात का डर नहीं।"

महात्मा जी का सम्बोधन सुनकर रूपा भी हँस दी। फिर बोली—

"मैं एक दिन दत्तल गई थी, महात्मा जी के दर्शन करने। पता चला कि महात्मा जी कुटिया छोड़कर भाग गए हैं। बापू के घर गई तो परमेसरी चाची ने सारी कहानी सुनाई।"

"और तुम्हें नई माँ कैसी लगी?" मुरली ने पूछा।

"बहुत अच्छी हैं।" रूपा ने कहा, "मुझे खुशी है कि उसने बापू को नई जिन्दगी दी। मैं उस दिन आपसे मिलना चाहती थी। जब आप नहीं मिले तो मुझे बड़ी निराशा हुई।"

मुरली ने अमर की तरफ देखा और बोला, "अब मिलने पर भी निराशा हुई तो?"

"यह सवाल तो तुम्हें रूपा से ही पूछना चाहिए।" अमर ने उत्तर को रूपा पर टाल दिया। रूपा झेंप गई।

रूपा के लिए मुरली ने जो कमरा ठीक कर रखा था वह अस्पताल के बिल्कुल पास था। आँगन में खड़े होकर एक तरफ चीड़ का जंगल और दूसरी सफेदे के पेड़ों की लंबी कतार दिखाई देती थी और बीच में बहती थी एक छोटी सी पहाड़ी नदी। कमरे की खिड़कियाँ खोल देने से चीड़ के वन की सुगंधित हवा फर्राटे से कमरे में घुस आती थी। कमरे में दो पलंग दो आराम कुर्सियाँ, एक छोटी मेज (जिस पर ताजे फूलों का गुलदस्ता रखा था), दीवारों पर तीन सुन्दर लैंडस्केप, एक बड़ी मेज पर क्रॉकरी का सामान था। कमरे के साथ ही रसोईघर था जिसमें खाना पकाने का सारा सामान तैयार था।

कमरे पर सरसरी नजर डालने के बाद रूपा बोली, "यह तो किसी का बँगला लगता है? इसका किराया तो बहुत होगा।"

"बहुत नहीं है कुल दो सौ रुपये महीने है।" मुरली ने बताया, "डाक्टर शरद की वजह से सस्ते में काम बन गया।"

रूपा और अमर को कमरे में बिठा कर मुरली रसोईघर में गया और थोड़ी देर में मक्खन, टोस्ट, सेब, दूध का एक गिलास और चाय के दो गिलास ट्रे में रखकर ले आया। इतनी सारी चीजें देखकर अमर आश्चर्य से उसकी तरफ देखकर बोला, "यह सब खाना क्या मंत्र के जोर से बना लिया इतनी जल्दी? तभी लोग तुम्हारे पीछे पागल हैं।"

मुरली ने ट्रे को मेज पर रखते हुए कहा, "अजी जनाब, यह सब मंत्र का प्रताप नहीं, मेहनत का फल है। डाक्टर शरद के नौकर नीरू की करामात है।"

"लेकिन इतनी सारी चीजें कौन खाएगा?" रूपा ने ट्रे पर नज़र दौड़ाकर कहा, "मुझे तो ज़रा भी भूख नहीं है।"

मुरली बोला, "भूख हो या नहीं, ये सब चीजें तुम्हें ही खानी पड़ेंगी। हम तो सिर्फ चाय पियेंगे। हमारा खाना बन रहा है।"

दो टोस्ट, आधा सेब और दूध का गिलास लेने के बाद रूपा बोली, "बस, इससे ज्यादा नहीं

खा सकती।"

मुरली ने बचे हुए आधे सेब को उसकी तरफ बढ़ाकर कहा, "जी नहीं, यह तो आपको खाना ही पड़ेगा। टोस्ट पड़े रहेंगे, थोड़ी, देर बाद खा लेना। लेकिन एक बात अभी से बता देता हूँ। यह चिड़ियों जैसा खाना नहीं चलेगा। जो यहाँ मिलेगा सब खाना पड़ेगा। यहाँ अस्पताल की तरह रहना पड़ेगा। खाने-पीने के मामले में तुम्हारी बात नहीं चलेगी, मेरी बात चलेगी।"

शाम चार बजे की बस से अमर घर वापस चला गया। मुरली को भी शाहपुर के बाजार से इंजेक्शन और खाने की दवाई लानी थी वह भी अमर के साथ बाहर निकल गया। रूपा कमरे में अकेली रह गई। कुछ देर तक वह खिड़की से चीड़ के वन को देखती रही। अपने पीछे छूटे हुए संसार की तरफ उसका बरबस ध्यान चला गया। "माँजी, रवि, टिकली-बिंदली...शायद अब तक सब गादियारी पहुँच गए होंगे। रवि मेरे बगैर कैसे रहेगा? माँजी को भी मेरे बिना जानें कैसा लगेगा? रमा बेचारी क्या-क्या करेंगी?" इसी तरह के विचारों में डूबी बड़ी देर तक वह वहाँ खड़ी रही। थक गई तो बिस्तर पर आकर लेट गई। उसे नींद आ गई।

जब उसकी नींद खुली तो सूरज छिपने जा रहा था। वह खिड़की पर आकर खड़ी हो गई और सामने की पहाड़ी की ओट में अधछिपे सूरज को देखती रही। 'मास्टर जी अभी तक नहीं लौटे, कहाँ चले गए वे?' उसने सोचा और फिर अपने को कमरे में बिल्कुल अकेला पाकर वह उदास हो गई। 'मास्टर जी मेरे लिए इतना कुछ कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं? मैं उनकी क्या लगती हूँ? मैं उन्हें क्या दे सकती हूँ? मेरे पास कुछ भी तो नहीं बचा है। यह शरीर अब मिट्टी का लौंदा भर है, शायद भीतर से कितना सड गया है। डाक्टर कहता था इनके खाने-पीने के बर्तन् और ओढ़ने-बिछाने के कपड़े अलग रखना। यह शरीर अब छूने लायक भी नहीं रहा गया है।" सोचते-सोचते उसका गला रूँध गया, आँखें भर आई। वह बिस्तर पर आकर लेट गई और सुबक-सुबक कर रोने लगी।

उसे पता नहीं चला कि मुरली कमरे में आ गया था। उसने रूपा के सर पर हाथ रखकर बालों को सहलाया। उसके पास बैठते हुए वह बोला, "माफ करना रूपा, मुझे देर हो गई। भगोड़े की ज़िंदगी है न, लोगों की नजरों से बचकर बाहर निकलना पड़ता है। देखो तुम हिम्मत से काम नहीं लोगी तो कैसे काम चलेगा? इस समय सब को परिस्थितियों से जूझना है। अमर को जैसे-तैसे चार लाचार प्राणियों की देखभाल करनी होगी। तुम्हें अपने मन से लड़ना होगा। मुझे पुलिस की नजरों से बचकर वे सब काम करने पड़ेंगे जो मुझे सौंपे गए हैं। फिर भी मैं तुम्हें किसी कष्ट में नहीं रहने दूँगा लेकिन तुम्हें हिम्मत रखनी होगी।"

रूपा की हिचकियाँ कोशिश करने पर भी नहीं रुक रही थीं। उसने अपने आँसू पोंछते हुए कहा, "मेरे लिए आप कितनी तकलीफ उठा रहे हैं। मैं आपकी क्या लगती हूँ? कुछ भी तो नहीं लगती। मैं इसका बदला कैसे चुकाऊँगी? मेरे पास बचा ही क्या है? जितने दिन जिऊँगी आपको दुआएँ दे सकती हूँ।"

मुरली ने उसे बाँह का सहारा देकर उठाया और फिर अपने कंधे पर उसका सिर टिका दिया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोला—

"पगली, आदमी क्या हर काम बदले के लिए करता है? आदमी-आदमी के बीच भी तो एक रिश्ता होता है। कुछ दिन जीने की बात करती हो? किसने कहा तुम कुछ दिन जियोगी? तुम्हें जिंदगी का बहुत लंबा सफ़र तय करना है। छि:! अब ऐसी बातें मत सोचना। चलो खाना खा लो। आज शाम का खाना भी डाक्टर के यहाँ से आ गया है। हम तो अपनी रसोई का श्रीगणेश कल करेंगे। आटा, चावल, नमक, मिर्च-मसाला सब ले आया हूँ।"

दोनों ने एक साथ बैठकर खाना खाया। फिर बड़ी देर तक दोनों बातें करते रहे। मुरली ने उसे अपने गुप्त जीवन के प्रसंग सुनाए। रूपा ने टिकली-बिंदली की बातें कीं। रूपा कुछ देर के लिए अपना कष्ट भूल गई।

दूसरे दिन से रूपा के इन्जेक्शन और दवाई चालू हो गई। मुरली सुबह तड़के उठकर रूपा के लिए पानी गरम करता। दवाई खिलाने के आधे घंटे बाद नाश्ता, दूध, फल। दोपहर के खाने के बाद दो घंटे के लिए रूपा को आराम करना जरूरी होता। उस समय वह शाम के लिए चाय या काफी बनाकर थर्मस में रख देता और अपने काम पर चल देता। शाम को अँधेरा घिरने से पहले-पहले लौट आता। आकर फिर खाना बनाता और दोनों मिलकर खाते। छः-सात दिनों में ही रूपा बिना मुरली का हाथ पकड़े बाहर जाने लगी। वह अब खाना भी खुद बनाने लगी। मुरली के लिए उसकी मनपसंद चीज बनाने में उसे बड़ा सुख मिलता। मुरली के साथ बातें करते समय उसमें विश्वास जगता। उसकी कहानियाँ सुनते-सुनते वह अपने जीवन की कटुताओं को भूल जाती। उसके चले जाने के बाद रूपा को हमेशा डर लगा रहता कि वह पुलिस के हाथ न पड़ जाए। एक दिन जब वह शाम को लौटा तो उसके हाथ में एक समाचारपत्र था। वह उसे समाचारपत्र दिखाते हुए बोला, "यह हमारा 'खुफिया अखबार' है जो खुफिया प्रेस में छपता है। सुबह तक इसकी पाँच हजार प्रतियाँ दूर-दूर तक पहुँच जाएँगी। अभी तक तो हम सिर्फ पर्चे छापते और बाँटते थे। इस अखबार के छापने से हमारा काम काफी आसान हो जाएगा।"

रूपा ने अखबार लेकर पढ़ना शुरू किया। उसमें पन्द्रह दिन बाद होने वाले चुनाव की तैयारी की खबरें थीं। हर जगह इंदिरा सरकार की घबराहट और जनता के उत्साह का वातावरण था। इमरजेंसी की ज्यादतियों की डटकर आलोचना की गई थी। सामने के पृष्ठ पर एक कविता भी छपी थी। उसका शीर्षक था 'अभी अँधेरा है।'

"जानती हो यह कविता किसने लिखी है?" मुरली ने पूछा।

"इसके ऊपर या नीचे किसी का भी तो नाम नहीं है।" रूपा बोली।

"नहीं है" लेकिन कविता मैंने अमर की डायरी से ली है। लाओ मैं पढ़कर सुनाता हूँ। लिखा है–

'उछल कूद रहे हैं चूहे अभी
रसोईघर में, बैठक में, तहखानों में
दरारों, छेदों से निकले तिलचट्टे
छिपकिली की गड़ी नजरों के आगे
दौड़ रहे हैं अभी निडर हो कर।

कानों में भर रही है मच्छरों की भिनभिन
भौंक रहे हैं गली के आवारा कुत्ते
शहरों से निकाले गए सियारों का रोना
अनचाहे बच्चों की चीखों में डूबा है।
चंद वट-वृक्षों की गोद में सोए पंछी
हो रहे हैं बेखबर आज और कल से
अभी आसमाँ का मुँह काला है
दूर सवेरा है
मत जगाओ, सोने दो मुझे
अभी अँधेरा है।'

"जानती हो अमर क्या कहता है? कहता है इस डायरी में सब बेमतलब की चीजें है। मैं इस डायरी का एक पन्ना हर रोज अखबार में छापूँगा।"

रूपा इस डायरी के महत्त्व को मुरली के चेहरे पर प्रकट हुए भावों से भली प्रकार समझ रही थी। मुरली ने कुर्ते के अंदर बनियान की जेब से डायरी निकालकर उसे दिखाते हुए कहा—

"अमर के लिए यह बेमतलब की चीज हो सकती है लेकिन मेरे लिए यह गीता से कम नहीं है। यह एक बहुत बड़े इन्सान के दर्द का दस्तावेज है। ऐसे दर्द का जिसका सम्बन्ध उसके जीवन से नहीं, समग्र मानव जीवन से है। यह डायरी समस्त संवेदनशील आदमियों का कार्डियोग्राम है, यह इस देश के रोगी समाज का एक्सरे है। मैं अमर को समझने में अब तक असमर्थ रहा हूँ। यह कैसा इन्सान है जिसके मन में अपने उत्कर्ष के लिए जरा भी चिंता नहीं है, जो जिंदगी की गहमागहमी से दूर एक छोटे से गाँव में अभावों के जीवन को अपना कर भी विचारों की जबर्दस्त लड़ाई लड़ रहा है।"

रूपा मुरली की बहुत सी बातों को समझने में असमर्थ थी, लेकिन वह जानती थी कि मुरली जो कुछ भी कह रहा है, उसमें सच्चाई अवश्य होगी।

उस दिन मार्च महीने की शायद बीस तारीख थी। मुरली सुबह से कुछ बेचैन, कुछ उखड़ा हुआ सा दिखाई दे रहा था। किसी काम में उसका मन नहीं लग रहा था। नहाने के लिए गर्म पानी की बाल्टी पास रखी रही और वह ठंडे पानी से नहाने लग गया था। कपड़े पहनते समय भी वह अन्दर बनियान पहनना भूल गया जिसकी जेब में वह अमर की डायरी सुरक्षित रखता था। रूपा ने नाश्ता तैयार कर रखा था और चाय बना रही थी। उसने रसोईघर से मुरली को परेशान घूमते देखा। आज सुबह से ही वह उसमें आए परिवर्तनों को गौर से देखती रही थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि कौन सी चीज व्याकुल किए हुए है। उसे इतना याद था कि चुनाव

हुए थे और आज वोटों की गिनती होने वाली थी लेकिन वह नहीं जानती थी कि इसमें इस तरह परेशान होने वाली बात क्या है? नाश्ता करते समय भी मुरली कुछ नहीं बोला। वह अपने खयालों में डूबा हुआ था, किन्हीं दूर के सपनों में खोया हुआ।

एक बार तो रूपा को यह भी डर लगा कि कहीं मुरली को पुलिस ने पहचान न लिया हो। अगर पुलिस मुरली को पकड़कर ले जाएगी, तो उसका क्या हाल करेगी? पुलिस उसे मारेगी, पीटेगी, जेल में भूखा रखेगी, तरह-तरह के कष्ट देगी। और फिर उसका क्या होगा? वह मुरली के बिना यहाँ कैसे रहेगी? उसे लगा कि मुरली के बिना अब वह नहीं रह सकती है। वैसे वह मुरली पर अब निर्भर नहीं थी। अपना सारा काम वह खुद कर लेती थी। इन्जेक्शन लगवाने के लिए भी वह खुद अस्पताल चली जाती थी। आधा मील चल कर साग-सब्जी भी खरीद लेती थी। फिर भी उसे लगता था कि इस मकान में उसे मुरली के बिना एक दिन भी रहना पड़ा तो वह नहीं रह सकती है। शायद मुरली अब किसी तरह उसकी जिंदगी का हिस्सा बन चुका है और उसे अलग करना उसके लिए संभव नहीं होगा।

कुछ दिनों से रूपा आइने में अपने चेहरे को गौर से देखती रही थी। उसे लग रहा था कि उसका चेहरा बदल रहा है। उसे अपनी आँखों के आस-पास अब वैसी बदलियाँ नहीं दीखती थीं। वह आइने में यह देखने की कोशिश भी करती रही थी कि मुस्कराने पर उसका चेहरा कैसा लगता है। उसने घर से लाए कपड़ों के एक पुराने जोड़े को पहनते समय यह भी अनुभव किया था कि अब कपड़े इतने ढीले-ढाले नहीं लगते, जितने पहले लगते थे। जब वह कमरे में अकेली होती तो वह अपने हाथों को, अपनी कलाइयों को भी गौर से देखती थी और उसे लगता था कि उसमें नई जान आ रही है। पिछले दिनों वह कई बार तड़के उठकर नींद में पड़े मुरली के चेहरे को ध्यान से देखती रही थी। उस चेहरे की मासूमियत ने उसके मन में तीव्र इच्छा जगाई थी कि वह नीचे झुककर उसे अपने होठों से स्पर्श कर सके किंतु वह कुछ सोचकर दूर खड़ी रह गई थी। डाक्टर के कहे अनुसार वह अपने बर्तन, अपने कपड़ों आदि को मुरली से अलग रखने की सावधानी बरतती रही थी। इस विषय में वह जरा-सी भी लापरवाही नहीं कर सकती थी।

नाश्ता करने के बाद जब वह बाहर जाने को तैयार हुआ तो रूपा ने हिम्मत करके पूछ ही लिया।

"आज बहुत परेशान दीख रहे हैं आप?"

मुरली ने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा—

"आज हमारी किस्मत का फैसला होगा न...! सोचता हूँ अगर वह फिर जीत गई तो हमें क्या करना होगा?"

रूपा को यकीन हो गया कि चिंता का कारण चुनाव ही है। फिर भी उसने पूछा—

"पुलिस को तो पता नहीं चला आपका?"

"नहीं, पुलिस अब पता लगाने की खास कोशिश भी नहीं कर रही है। माहौल ऐसा बदल गया है कि पुलिस वालों को भी उसके हारने की ज्यादा उम्मीद लगती है।"

"तब तो ठीक ही है। अगर वह हार गई तो आप यहाँ से चले जाएँगे।"

"जाना तो पड़ेगा, लेकिन तुम्हें यहाँ अकेला छोड़कर नहीं जाऊँगा। तुम्हें घर पहुँचा दूँगा। वैसे भी अब यहाँ ठहरने की कोई जरूरत नहीं है। घर पर रहकर भी दवाई ले सकती हो।"

अस्पताल छोड़कर घर वापस जाने के विचार ने रूपा में एक नया उत्साह भर दिया। बोली—

"क्या सच मैं घर जाने के लायक हो गई हूँ?"

"जरूर...लेकिन तुम्हें दवाई काफी दिनों तक लेनी पड़ेगी।"

"कितने दिन?"

"नव्वे इन्जेक्शन पूरे करने के बाद शायद सात-आठ महीने तो लेनी ही पड़ेगी। परसों तुम्हारा एक्सरे हुआ था न... डाक्टर कहता है एक्सरे बहुत अच्छा है। अच्छा देखो, आज मैं काफी देर तक बाहर रहूँगा। हो सकता है रात हो जाए। हो सकता है रात को भी आना न हो। घबराना मत।"

मुरली के जाने के बाद रूपा बड़ी देर तक खिड़की के पास खड़ी होकर चीड़ के पेड़ों को हवा में झूमते देखती रही और उनकी सौंधी-सौंधी सिसकियों को अनुभव करती रही। उसे लगा कि सामने की घाटी एकाएक बहुत सुन्दर हो गई है। खिड़की से हटकर उसने कमरे में नजर दौड़ाई तो चीजों को अस्तव्यस्त देखकर उसके मन में काफी झुँझलाहट हुई। वह कमरे की सफाई करने लगी, तो उसके होठों से लड़की की विदाई के गीत के बोल अपने आप निकलने लगे, "तेरेयाँ महलाँ दे अन्दर बापू मेरियाँ गुड़ियाँ रहियाँ---"

उसने एक-एक चीज को झाड़-पोंछ कर कमरे को नये सिरे से सजाया। फिर खाना तैयार किया। अस्पताल में जाकर इन्जेक्शन लिया। अकेले खाना खाने की इच्छा नहीं हो रही थी फिर भी डाक्टर की हिदायत थी और मुरली का आग्रह था, इसलिए थोड़ा सा खाकर वह बिस्तर पर लेट गई। दूसरे ही क्षण वह बिस्तर से उठकर खिड़की के पास आ खड़ी हुई। आज उसकी सोने की बिल्कुल इच्छा नहीं थी और न ही अकेले कमरे में बैठने की। वह बाहर निकल गई और अस्पताल के लान में बैठे, ताश खेलते या गप्प मारते मरीजों को देखते सारे अहाते में घूम आई। इसके बाद वह चीड़ के जंगल की तरफ चल दी। हर कदम के नीचे उसे एक नई धरती का स्पर्श मिल रहा था। वह एक चट्टान पर बैठकर नदी का संगीत सुनती रही। मछियारे पंछी के पानी में डुबकी लगाने और मछली पकड़ने का खेल देखती रही। नदी के किनारे डंगर चराने वाले ग्वालों को गिट्टियों से खेलते निहारती रही। हालाँकि उसने भी बचपन में इसी तरह डंगर चराए थे और गिट्टियाँ खेली थीं लेकिन आज उसे लग रहा था कि एक नया जीवन है और नया खेल है।

सूरज चीड़ के पेड़ों की चोटियों के बीच आ गया तो वह कमरे में वापस आ गई। उसने अपने लिए चाय बनाई। मुरली की हिदायत के अनुसार उसने एक सेब और एक अमरूद खाया, चाय का कप पिया और सोचने लगी कि रात को खाने में मुरली की मन पसंद चीज क्या बनाई जाए। पता नहीं वह रात को आएगा तो उसके चेहरे पर खुशी होगी या गमी! जब वह खुश होता तो वह एक बच्चे की तरह हँसता है और जब चिंता में डूबा होता तो रूपा को लगता, वह

बहुत बेबस है। उसकी इच्छा होती कि ऐसे मौके पर मुरली को अपनी छाती से लगा कर कुछ ढाढस बँधाए, लेकिन वह इतना साहस नहीं जुटा पाती।

खाना तैयार करके वह मुरली का इन्तजार करती रही। अँधेरा गहरा गया। रात न जाने कितनी बीत गई। चारों तरफ का सन्नाटा दूर कहीं कुत्तों के भौंकने और गीदड़ों के रोने की आवाजों से टूटता था। रूपा को डर लगा। आज पहली बार इस कमरे में रात को अकेली थी। शायद मुरली रातभर नहीं आएगा। उसने इच्छा न होने पर भी थोड़ा-सा खाना खाया फिर दरवाजा बन्द करके सोने की कोशिश करने लगी। लेकिन आँखों में नींद नहीं थी। कभी मुरली आँखों के सामने आ जाता, कभी बूढ़ी सास, रवि और टिकली-बिदली की याद में खो जाती। इस एक डेढ़ महीने में मेरे बिना उनकी क्या हालत हुई होगी? फिर अचानक उसका ध्यान दिवाकर की तरफ चला गया। वह कहाँ होगा? कैसे होगा? सेठ की लड़की से शादी करके वह बीवी-बच्चों के साथ मजे में रह रहा होगा। क्या उसे मेरा ख्याल नहीं आता होगा? रवि को क्या वो बिल्कुल भूल गया होगा? अपनी बूढ़ी माँ की याद भी उसे नहीं आती होगी? क्या पैसा इतनी बड़ी चीज है कि उसके लिए अपने माँ-बाप, बीवी-बच्चे को छोड़ा जा सकता है? इधर अमर है जिसके मन में पैसा कमाने की रंचमात्र भी चाह नहीं है। अमर.....अमर.....तुम क्या हो? दूसरों का दुःख-दर्द झेलकर अपनी कीमती जिन्दगी को जला देने वाले इस आदमी को कौन समझेगा यहाँ? शायद मुरली समझता है.....मुरली को आदमी की पहचान है।

रूपा का बेलगाम मन न जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहा। उसका शरीर बिस्तर पर निढाल पड़ा रहा और वह मन की दुनिया में विचरती रही। वह दुनिया जो कभी रुकती नहीं है, कभी सोती नहीं है। वह दुनिया जो देखने वाले की कभी रही होती है, जिसकी मात्र चाह या आशंका रही होती है। इस दुनिया में मन से विचरण करते-करते अचानक रूपा कांप उठी। उसके मन से चीख निकलना चाही लेकिन आवाज जैसे अन्दर ही अन्दर घुटकर रह गई। उसके सामने एक लहूलुहान लाश थी जो पहचानी नहीं जा रही थी लेकिन रूपा के लिए वह शायद किसी जाने-पहचाने और प्रिय व्यक्ति की लाश थी इसलिए वह बुरी तरह घबरा उठी। उसका निढाल पड़ा हुआ शरीर झटका खाकर पंलग से नीचे गिरता-गिरता बचा। इस झटके के साथ ही वह जाग गई थी और कमरे की बत्ती जलाकर बिस्तर पर बैठ गई थी लेकिन उसका शरीर अब भी कांप रहा था।

उस भयानक सपने को भूलने का उसने बहुत प्रयत्न किया लेकिन हर बार वह लहूलुहान लाश उसके सामने आ जाती थी। उसे बत्ती बुझाकर सो जाने का साहस नहीं हुआ। वह उठकर रसोईघर में गई। अपने लिए चाय बनाई। चाय पीने के बाद वह उसी तरह बिस्तर पर बैठकर सुबह होने की प्रतीक्षा करने लगी।

जैसे-तैसे सुबह हुई और उसने रोज़ की तरह अपनी दिनचर्या शुरू की लेकिन भयानक सपने को वह अब भी नहीं भूल पा रही थी। उसे कभी मुरली की चिन्ता होने लगती जिसके पीछे पुलिस लगी हुई थी। कभी उसका ध्यान बीमार सास की ओर जाता, कभी उसे रवि याद आता। वह इस सपने का अर्थ नहीं समझ पा रही थी।

नाश्ते के समय तक भी मुरली नहीं आया, तो उसकी चिंता बढ़ गई। लेकिन सिवाय प्रतीक्षा करने के वह कर ही क्या सकती थी। जब वह चलने-फिरने से लाचार हो गई थी और पालंपुर वाले डाक्टर ने उसे टाँडा के अस्पताल में भरती होने के लिए कहा था तो रूपा को लगा था कि उसकी साँसें अब गिनी-चुनी हैं, उसे अब कुछ ही दिन जीना है, इसलिए उसने उस घड़ी के लिए अपने को तैयार कर लिया था और इस प्रक्रिया में तमाम रिश्तों के प्रति बेरुखी का रुख अपना लिया था। उन दिनों वह अपनी अपाहिज सास से भी चिढ़ने लगी थी और चंचल बेटे की हरकतों पर गुस्सा करने लगी थी। उस बात को वह सोचती है तो उसे आश्चर्य होता है कि वह कितनी मूर्खता थी। अब उसमें उन तमाम रिश्तों के प्रति ममता जाग उठी थी और फिर मुरली के प्रति ममता तो कुछ और ही प्रकार की थी। मुरली ने वह सब कुछ उसे वापस दिया था जिसे वह खो चुकी थी और बदले में वह मुरली को कुछ भी नहीं दे सकती थी।

ग्यारह बजे की बसों के निकलने के दस-बारह मिनट बाद ही मुरली आ गया। शायद वह कहीं दूर चला गया था और ग्यारह बजे की बस से उतरा था। कमरे में आते ही उसने एक तमाशा खड़ा कर दिया। इससे पहले कि रूपा उससे कुछ पूछे, मुरली ने कमरे का दरवाजा बंद किया और रूपा को दोनों बाँहों में भरकर ऊपर उठा लिया। उसी स्थिति में कमरे का चक्कर लगाने के बाद उसने धीरे से रूपा को पलंग पर बिठा दिया और बोला—

"जालिम सरकार हार गई। जानती हो इंदिरा गांधी, संजय गांधी और उनके सारे पिट्ठू एक-एक करके हार गए हैं। जनता जिंदाबाद, आम आदमी जिंदाबाद, गरीब आदमी जिंदाबाद। हिन्दुस्तान जिंदाबाद! इस देश का आम आदमी कितना भी गरीब हो वह जिंदा इन्सान है, वह भेड़-बकरी नहीं है।"

रूपा ने देखा मुरली बेहद खुश था। उस खुशी के नशे में जब उसने रूपा के जिस्म को कसकर पकड़ा था, तो रूपा को लगा था कि उसकी रगों का खून अचानक बड़ी तेजी से दौड़ने लगा था। रूपा भी बहुत खुश थी। वह बोली—

"आपने इतनी देर कर दी। मुझे तो बहुत डर लग रहा था।"

"किस बात का डर?" मुरली ने पूछा।

"आपके पकड़े जाने का," रूपा ने कहा, "और जानते हो, रात को तो मैं ठीक से सो भी नही सकी। एक बुरा सपना दिखाई दिया और मेरी नींद टूट गई। फिर सुबह तक नही सो सकी।"

मुरली ठठाकर हँस पड़ा, "ओह! सपने से डरी थी। मैंने सोचा कोई चोर-उचक्का या पुलिसवाला कमरे में घुस आया था। अरे हाँ... एक बढ़िया खबर सुनाना तो भूल ही गया। जाओ, कुछ मीठा बनाकर लाओ। मीठा मुँह किए बिना खबर नहीं सुनाऊँगा।"

"अच्छा पहले खबर तो सुनाओ।" रूपा ने जिद्द की।

"नहीं पहले मुँह मीठा कराओ।"

रूपा झटपट चीनी की शीशी उठा लाई और उसमें से थोड़ी चीनी उसके मुँह में डालती हुई बोली—

"अब सुनाओ।"

"रमा के लड़की हुई है! मैंने उसका नाम भी रख दिया है—किरण, आजादी की किरण, शांति की किरण......"

"लड़की हुई है?" रूपा ने यूँ पूछा जैसे वह लड़का होने की उम्मीद लगाए बैठी हो।

"हाँ लड़की....क्या लड़कियाँ अच्छी नहीं होतीं?"

"नहीं, नहीं... मेरा मतलब यह नहीं है....लेकिन लड़का होता तो ज्यादा अच्छा होता। ग्यारह साल बाद बच्चा हुआ है न......"

मुरली हँस पड़ा, "पता नहीं इस देश की जहालत कब जाएगी। जिसको देखो वह लड़कों के पीछे पागल है। वहाँ भी अमर और रमा को छोड़कर सब लड़का चाह रहे थे।"

रूपा इस बात को लेकर बहस करने के मूड में नहीं थी। उसने बात बदलकर पूछा, "क्या रात वहाँ चले गए थे?"

"हाँ....वहीं बैठकर हम रेडियो पर इलेक्शन की खबरें सुनते रहे। आज तो लगता है इस देश के बेजुबान पत्थरों को भी जुबान मिल गई है। बस में रास्ते भर इलेक्शन की बातें होती रहीं।"

रूपा ने खाना तैयार कर रखा था। मुरली को भूख लगी होगी, यह सोचकर वह खाना परोसने के लिए रसोई में चली गई। थोड़ी देर बाद वह दो थालियों में खाना परोस कर ले आई। खाना खाते समय मुरली इलेक्शन की खबरें सुनाता रहा। कहाँ कौन मंत्री हारा, किसकी जमानत जब्त हुई, कहाँ-कहाँ कांग्रेस का बिल्कुल सफाया हुआ, उसे जैसे सब कुछ कण्ठस्थ था।

खाना खाने के बाद मुरली अपने बिस्तर पर आकर लेट गया। कुछ देर वह नींद लेना चाहता था क्योंकि पिछली रात वह और अमर एक पलभर के लिए भी नहीं सोए थे। रूपा उसके पास एक कुर्सी खिसकाकर आ बैठी।

"सचमुच आप अब यहाँ से चले जाएँगे?" उसने पूछा।

"तीन-चार दिन में दिल्ली में नई सरकार बनेगी। मुझे तब दिल्ली में रहना चाहिए।"

रूपा चुप हो गई। वह मुरली की तरफ देखती रही।

"क्यों....क्या बात है?" मुरली ने पूछा।

रूपा ने उसके चेहरे से नजर हटा कर नीचे झुका ली।

"कुछ नहीं..... यूँ ही पूछ रही थी।"

मुरली मुस्करा दिया, "मैंने सारा प्रोग्राम बना लिया है। कल अस्पताल जाकर तुम्हारा एक बार फिर एक्सरे कराऊँगा फिर डाक्टर से दवाई वगैरह लिखवाकर तुम्हें घर पहुँचा दूँगा। तुम्हारी सास और रवि भी वहाँ पहुँच जाएँगे। टिकली-बिंदली को कुछ दिन और वहाँ रहने देना। तुम्हें घर पर ज्यादा आराम करना होगा न इसलिए।"

रूपा कुछ भी नहीं बोल सकी। वह फिर मुरली के चेहरे को देखती रही। मुरली ने उसके चेहरे की उदासी देख ली थी लेकिन वह कारण समझने में असमर्थ था। वह बोला—

"अरे सोचती क्या हो? मैंने तुम्हें बताया था न कि तुम अब पहले से बहुत अच्छी हो गई हो। घर पर जाकर तुम पहले की तरह काम कर सकती हो। सिर्फ सख्त काम से कुछ दिन दूर

रहना पड़ेगा। एक-डेढ़ महीना। हाँ..... बर्तन-भाँडों का परहेज भी रखना पड़ेगा।"

रूपा अब भी कुछ नहीं बोली। वह कभी मुरली को कभी उसके चेहरे से नजर हटाकर खिड़की से बाहर सूने आसमान को देखती रही। फिर अचानक उसकी आँखें डबडबा आई और इससे पहले कि वह सँभले उसकी आँखों से बड़े-बड़े आँसू ढुलक कर गालों पर बहने लगे। मुरली चौंककर उठ बैठा। उसने रूपा का हाथ पकड़कर कहा, "क्या कर रही हो रूपा? यह सब क्या है?"

रूपा अपने को काबू में नहीं रख सकी। वह फफक पड़ी। मुरली ने उसके कंधे पर हाथ रखा तो वह अवश होकर उसकी तरफ लुढ़क गई। मुरली ने उसके सिर को अपनी गोद में रख लिया और धीरे-धीरे उसके बालों को सहलाने लगा।

रूपा... रूपा.... यह क्या पागलपन कर रही हो।"मुरली बोला, "अरी यह तो खुशी की घड़ी है। मेरे लिए भी क्योंकि अब पुलिस से छिपे-छिपे रहने की जरूरत नहीं होगी। तुम्हारे लिए भी क्योंकि अब तुम ठीक हो गई हो और वापस अपने घर जा रही हो।"

लेकिन रूपा की हिचकियाँ और भी तेज हो गई। मुरली की गोद में मुँह छिपाकर वह रोती रही। मुरली कुछ समझ नहीं पाया। उसने अपने घुटनों पर टिके रूपा के चेहरे को धीरे से उठाया और हाथ से उसकी आँखों के आँसू पोंछ दिए।

"कुछ बताओ न रूपा, तुम क्या सोच रही हो?" उसने अनुनय के स्वर में कहा।

रूपा उसकी तरफ एक नजर डालकर चुपचाप उठ गई। रसोईघर में जाकर उसने हाथ-मुँह धोकर सारे आँसुओं को पोंछ डाला। फिर वह कमरे मे आकर यूँ ही चीजों को इधर से उधर रखने लगी। मुरली ने कई बार उससे मन की बात जाननी चाही लेकिन वह 'कुछ नहीं' कहकर टालती रही। उसका यह अनबूझा मौन सारे दिन नहीं टूटा। रात को खाना खाते समय भी वह कुछ नहीं बोली। मुरली ने भी अधिक आग्रह नहीं किया। शायद वह स्वयं भी रूपा की सी मनोदशा से गुजर रहा था। और कुछ कहने की बजाय वह सब कुछ चुपचाप सहने में अधिक शांति महसूस कर रहा था।

दूसरे दिन सुबह रूपा काफी बदली हुई लग रही थी। चाय बनाकर जब वह कमरे में लाई तो उसके चेहरे पर हल्की सी मुस्कान साफ दिखाई दे रही थी। मुरली को यह मुस्कान कृत्रिम लगी फिर भी उसने इस परिवर्तन पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—

"लगता है, मूड अब कुछ ठीक है।"

रूपा के चेहरे की मुस्कान थोड़ी और स्पष्ट हो गई। उसने पूछा—

"हम कितने बजे की बस से जाएँगे?"

रूपा की अचानक घर जाने की उत्सुकता भी मुरली की समझ में नहीं आई। वह बोला—

"अस्पताल में थोड़ी देर का काम है। एक्सरे की रिपोर्ट आधे घंटे में मिल जाएगी। लेकिन हम चार बजे की बस पकड़ेंगे। वे लोग भी शाम को ही वहाँ पहुँचेंगे।"

उदासी का साया एक बार फिर रूपा के चेहरे पर उतर आया। वह चुपचाप नाश्ता करने लगी। मुरली ने यूँ ही बात छेड़ी—

"रूपा, घर जाने के बाद पता नहीं तुमसे भेंट होगी या नहीं।"

रूपा जैसे चौंक पड़ी। झटके के साथ उसने सिर उठाकर मुरली की तरफ देखा।

"क्यों····· आप गाँव में कभी नहीं आएँगे?"

"आऊँगा क्यों नहीं, वहाँ मेरा घर है। मेरे भाई-भाभी हैं, भतीजा है।"

"फिर·····?"

"फिर क्या·····? तुम्हारे घर आऊँगा तो किस रिश्ते से आऊँगा?"

रूपा उठकर रसोईघर में चली गई। बड़ी देर तक वह किसी काम का बहाना करके वहाँ रुकी रही। फिर बाहर आई तो बोली, "चलिए अस्पताल खुल गया होगा।"

एक घंटे के अंदर-अंदर अस्पताल का सारा काम हो गया। वापस आकर रूपा ने खाना बनाया। दोनों ने चुपचाप खाना खाया। बात कहीं से चल नहीं पा रही थी। अपने मन की बात कहने के लिए न रूपा तैयार थी और न मुरली।

खाना खाने के बाद मुरली कुछ चीजें खरीदने के लिए दुकान की तरफ चल दिया। रूपा कमरे में अकेली रह गई, तो खिड़की के पास खड़ी होकर दूर आसमान की तरफ देखती रही। आँखों में आँसुओं का उमड़ना, गालों पर ढुलकना और आँचल से रूपा का उन्हें पोंछना यह क्रम न जाने कब तक चलता रहा।

मुरली काफी देर बाद दुकान से लौटा तो उसके हाथ में सामान का पैकेट था, उसे मेज पर रखते हुए वह बोला—

"तुमने तो सामान भी नहीं बांधा है। एक घंटे में हमें यहाँ से चल देना चाहिए नहीं तो चार बजे की बस नहीं मिलेगी।"

रूपा का दिल धक-धक कर उठा। एक बार तो उसे लगा कि वह खड़े-खड़े गिर जाएगी। किंतु दूसरे ही क्षण वह सँभल गई और सामान को इकट्ठा करने लगी। मुरली ने यहाँ आने के बाद घर का काफी सामान इकट्ठा कर लिया था। एक थैले में सारा सामान नहीं आया तो बाकी का सामान उसे बिस्तरबंद में कपड़ों के साथ डालना पड़ा। मुरली का अपना बिस्तर और कुछ सामान वहीं पड़ा रहा क्योंकि उसे कुछ दिन इसी कमरे में ठहरना था।

इसी बीच रूपा ने कपड़े बदल लिये थे। बालों में कंघी करके माथे पर हल्की-सी बिंदी लगाने के बाद जब वह मुरली के सामने आकर खड़ी हुई तो वह एक क्षण के लिए चौंक सा गया।

"बहुत अच्छी लग रही हो·····।" उसने मुस्कराकर कहा।

रूपा ने अचानक झुककर मुरली की चरण-धूलि माथे से लगा ली। मुरली उछलकर खड़ा हो गया।

"यह क्या बेवकूफी है?" वह गुस्से से बोला।

रूपा ने मुस्करा दिया। फिर बोली—

"गुस्सा क्यों करते हो? मैं अब रोज-रोज थोड़े ही आपको तंग करूँगी।" और कोशिश करने पर भी वह अपने भर्राए हुए स्वर को नहीं दबा सकी।

मुरली ने दोनों हाथों से उसके कन्धों को झटककर कहा—

"लेकिन इसके लिए क्या पैर छूना जरूरी था?"

रूपा ने डबडबाई नजरों से उसे देखा—

"जिस हालत में मैं हूँ, उसमें सिर्फ पैर ही तो छू सकती हूँ।"

मुरली को लगा जैसे एक गर्म सलाख उसके हृदय में जा धँसी हो। उसने रूपा को कसकर अपने वक्ष से लगा लिया। रूपा नहीं-नहीं कहकर अपने को छुड़ाने की कोशिश करती रही लेकिन मुरली का आलिंगन और भी कसता गया और फिर उसने उसके चेहरे को उठाकर होंठों को धीरे-से चूम लिया।

रूपा ने छिटककर अपने को अलग कर लिया। फिर कुछ उदास स्वर में बोली—

"यह आपने क्या किया? तुम्हें कुछ हो गया तो ....।"

"क्या हो गया? बीमारी?" मुरली मुस्करा कर बोला, "बीमारी क्या जरा-सा छू देने से लग जाती है? ऐसा होता तो फिर अस्पताल के सारे डाक्टरों और नर्सों को बीमारी लग जाती। और फिर तुम तो अब बिल्कुल ठीक हो। तुम्हारे बलगम की रिपोर्ट भी ठीक है और एक्सरे भी। सिर्फ दवाई लेते रहना है।"

उसने बाँह पकड़कर फिर उसे अपने करीब खींच लिया। एक हाथ कमर में डालकर दूसरे से उसने रूपा की बिखरी लट को ठीक किया, आँखों के आँसुओं को पोंछा और फिर उसके चेहरे को अपने वक्ष से लगाकर बोला—

"कल से मेरे मन को यही बात व्याकुल कर रही थी कि तुम घर चली जाओगी, तो मैं कैसे रहूँगा? तुम्हारे बिना मैं अधूरा रह जाऊँगा।"

वह अधिक नहीं बोल सका। रूपा उसके वक्ष पर सिर रखकर जोर-जोर से रोने लगी थी।

"ऐसी बातें मत करो भगवान के लिए ऐसी बातें मत करो।" वह बोली, "मैं मर जाऊँगी, मेरा कलेजा फट जाएगा! मेरे पास बचा ही क्या है जो आपको दे सकती हूँ।"

मुरली बोला—

"तुम्हारे पास बहुत कुछ है। सच बात तो यह है कि तुमने कुछ भी नहीं खोया है। पाँच-छः महीने के बाद तुम वही रूपा हो जाओगी जिसे मैंने बम्बई में देखा था। सिर्फ कुछ दिनों की बात है। मुझे तुम से वह चीज मिल सकती है जिसे पाने का हर पुरुष सपना देखता है। तुम्हारे पास प्यार भरा दिल है और इसके साथ है कष्टों को सहने की हिम्मत, दुःखों से लड़ने का साहस जिसकी मुझे सख्त जरूरत है।"

रूपा उसके वक्ष से टिकी आँसुओं से संघर्ष करती रही।

"बताओ, मुझे अपना प्यार दे सकती हो?" मुरली ने पूछा।

"लेकिन ...मैं ....।" रूपा सकपकाई और फिर रुक गई।

"लेकिन क्या .....? यही न कि तुम दिवाकर की पत्नी हो? मैं जानता हूँ इसीलिए तो मैं तुमसे यह बात कहने में हिचकिचाता रहा। लेकिन दिवाकर अब तुम्हारे लिए क्या है? वह अपनी नई बीवी और बाल-बच्चों के साथ मजे से रह रहा है। तुम अगर तैयार हो जाओ तो मैं खुद वहाँ

जाकर उससे बात कर लूँगा। तलाक लेने में कोई ख़ास कठिनाई नहीं होगी। और रही पार्वतीदेवी और रवि की समस्या, उसके बारे में तुम्हें चिंता करने की कोई बात नहीं होगी। तुम्हारे ऊपर जितनी भी जिम्मेदारियाँ हैं, मैं उन सब को स्वीकार करूँगा।"

जिंदगी के एक बड़े मोड़ पर आकर जैसे आदमी की बुद्धि चकरा जाती है, उसी तरह रूपा की बुद्धि चकरा गई। वह समझ नहीं पा रही थी कि मुरली की बातों का क्या उत्तर दे। वह सिर्फ उसके चेहरे को देखती रही। धीरे-धीरे वह अपने चेहरे को उसके चेहरे के निकट ले गई और एक क्षणिक निर्णय में उसने अपने होंठों से मुरली के होंठों को छू लिया।

मार्च 1977 के ऐतिहासिक लोक सभा चुनावों में इन्दिरा सरकार की हार और जनता पार्टी की नई सरकार के आने से घटनाओं को गदियारी गाँव में उसी तरह लिया गया जिस तरह उत्तर, पूर्व, पश्चिम और मध्य भारत के किसी गाँव में उन्हें लिया गया। याने हर उस व्यक्ति ने जो कांग्रेस पार्टी का सदस्य नहीं था, इस परिवर्तन पर प्रसन्नता प्रकट की। चाहे वह समाज के किसी भी वर्ग या किसी भी धर्म से संबंध रखता था। लेकिन इस पर आश्चर्य तो बिना अपवाद के सभी व्यक्तियों को हुआ क्योंकि कुछ ऐसा घटित हुआ था जिसकी किसी ने कल्पना नहीं की थी।

साटे की घरवाली गुन्नी ने, जिसका इकलौता बेटा नसबंदी के बाद मर गया था, इसे गरीबों की आह का फल बताया। हर आने-जाने वालों को इसकी सूचना देने के लिए वह रोज गाँव के चौराहे पर आकर खड़ी हो जाती और जोर-जोर से बोलने लगती—

"उसे मेरी सांतो की हाय लगी। अरे ओ, भलेमानसो! सुनो, कान खोलकर सुनो! गरीब की हाय बुरी होती है। इससे कोई नहीं बच सकता। दिल्ली की गद्दी पर जो भी बैठेगा जल जाएगा। अगर उसने गरीब की हाय ली। मरी भेड़ की खाल लोहे को जला देती है, लोहे को। गद्दी तो चीज ही क्या है।"

आने-जाने वाले उसकी बातें सुनते और आगे बढ़ जाते। लोगों को डर होने लगा कि वह पागल हो जाएगी। लेकिन वह पागल नहीं हुई। कुछ दिनों बाद उसकी यह दिनचर्या बंद हो गई। और वह फिर पहले की तरह इस कुशंका से घबराई-घबराई-सी रहने लगी। रात को बड़ी-बड़ी देर तक वह जागने लगी कि किसी दिन मुसलमानों की तरह उसके घर को जला दिया जाएगा और घर के सब आदमियों को लाठियों या जंग लगी तलवारों से मार दिया जाएगा।

रति के साथ सांतो अक्सर रमा के पास आती थी। वैसे तो सिलाई-बुनाई के केन्द्र में उन्हें पच्चीस-तीस दूसरी औरतों के साथ आना ही होता था, लेकिन उसके बाद भी वह रमा के घर आती थी, कभी कुछ लिखाई-पढ़ाई करने और कभी सिर्फ अपना दुःख-दर्द सुनाने। सांतो ने रमा को बताया कि उसकी सास की यह हालत हो गई है कि वह कभी-कभी रात भर दिया जलाए रखती है और बाहर जरा-सी आवाज होने पर घबरा उठती है। जाने क्यों उसके मन में बैठ गया

है कि एक दिन भलेमानस बाहरकी जातों को खत्म कर देंगे। रमा ने खुद दो-तीन बार सांतो के घर आकर गुन्नी को समझाने की कोशिश की थी लेकिन उसे किसी तरह विश्वास ही नहीं होता था।

जब से रमा की गोद भरी थी, पीठ पीछे होने वाली कानाफूसी भी बन्द हो गई थी और रमा छोटी-बड़ी हर महिला के लिए आदर का पात्र बन गई थी। उसके द्वारा चलाए जा रहे सिलाई-बुनाई केन्द्रों से तथा दूसरा घरेलू सामान बनाने वाले केन्द्रों से गाँव के लगभग प्रत्येक घर को कुछ न कुछ आमदनी हो रही थी। उसके ये केन्द्र गदियारी गाँव में ही नहीं थे, दूर-दूर के गाँवों में भी चलने लगे थे, इसलिए रमा एक बड़े क्षेत्र में जानी-पहचानी जाती थी तथा सब जगह उसका मान भी होता था।

इसीलिए मुरली ने लोकसभा के चुनावों के बाद रमा के लिए विधान सभा के चुनाव का टिकट हासिल करने की कोशिश शुरू कर दी थी। अमर को बहुत कोशिश करने पर भी वह चुनाव लड़ने के लिए तैयार नहीं कर सका था, लेकिन रमा के चुनाव लड़ने पर उसने विशेष आपत्ति नहीं की। हालाँकि वह व्यक्तिगत रूप से इसके विरुद्ध था। वह अपनी मान्यता को रमा पर थोपने के पक्ष में भी नहीं था। उसने रमा पर ही इसका निर्णय छोड़ दिया था। रमा को तैयार करने का काम जितना मुरली के आग्रह ने किया था उतना ही केन्द्रों में आने वाली महिलाओं के आग्रह ने भी।

लोकसभा के चुनाव परिणामों को देखते हुए तीन महीने बाद विधानसभा के चुनाव के समय जनता पार्टी के झंडे से चुनाव लड़ने वालों में टिकट के लिए जबर्दस्त होड़ मच गई। जो लोग कुछ दिन पहले युवा कांग्रेस के नसबन्दी कैम्पों और रैलियों में भेड़-बकरियों की तरह आदमियों को पकड़ कर ला रहे थे, वे भी अपने को जनता पार्टी के समर्थक सिद्ध करने के लिए व्याकुल हो रहे थे। हर व्यक्ति जेल से छूटने वाले मीसा बंदियों के साथ रिश्ते स्थापित करने, उनके स्वागत में समारोह आयोजित करने और जनता पार्टी के नेताओं के चित्र अपने घरों में लटकाने के लिए बेचैन दिखाई दे रहा था। जनता पार्टी का अस्तित्व अभी नाम मात्र का था। उसका कोई संगठन या संविधान नहीं बना था। समय भी इतना कम था कि जनता पार्टी की केन्द्रीय कार्यकारिणी टिकट के उम्मीदवारों की योग्यता की जांच-पड़ताल नहीं कर सकती थी। ऐसी स्थिति में उन्हीं व्यक्तियों को टिकट मिल सकता था जिनकी पहुँच थी और जो पैसा लगा सकते थे।

मुरली इस सारी स्थिति को समझते हुए भी रमा के लिए टिकट लेने की कोशिश कर रहा था। उसी चुनाव क्षेत्र के पाँच अन्य व्यक्ति जनता पार्टी का टिकट चाह रहे थे और ये सब पुराने अखाड़ेबाज तथा पैसे वाले थे। इनमें से तीन व्यक्ति तो कांग्रेस से छलांग मारकर आए थे और उनकी काफी दूर तक पहुँच भी थी।

लेकिन इस सारी गला-काट होड़ के बावजूद मुरली अपने प्रयास में सफल हो गया। टिकट तो उसे मिल गया लेकिन चुनाव प्रचार के लिए पार्टी की तरफ से बहुत कम मदद मिलने की आशा थी।

बड़े-बड़े चुनाव महारथियों के नाम कटने के बाद रमा को टिकट मिला, इस बात की चर्चा बड़ी तेजी से होने लगी। जिनके नाम कट गए वे, उनमें ईर्ष्या की आग भी धीरे-धीरे सुलगने लगी और जैसे-जैसे प्रचार अभियान तेज होता गया यह आग भी भड़कती गई। कांग्रेस का उम्मीदवार तो अपने विरोधी के खिलाफ हर जायज-नाजायज प्रचार करने में लगा ही था, जनता पार्टी के लोगों ने भी अन्दर ही अन्दर रमा के खिलाफ प्रचार करना शुरू कर दिया। अमर ने इस संभावना का अनुमान लगाकर रमा को चुनाव न लड़ने की सलाह दी थी लेकिन मुरली की जिद्द के आगे उसकी पेश नहीं चली थी।

रमा दो सवा दो महीने पहले बच्ची की माँ बनी थी। प्रसव की कमजोरी के कारण वह अपने चुनाव के लिए ज्यादा दौड़-धूप नहीं कर सकती थी। लेकिन मुरली ने अपनी भाभी नीलू, पूरब की पत्नी रति और गुन्नी की बहू सांतो के नेतृत्व में तीन टुकड़ियों को घर-घर जाकर प्रचार करने का काम बाँट दिया था। वह स्वयं अब भी भूमिगत रहकर काम कर रहा था और लोगों के लिए वह अब भी रहस्य बना हुआ था।

चुनाव से तीन दिन पहले एक पर्चा खुफिया तौर पर कई गाँवों में बांटा गया। इस पर्चे में रमा के चरित्र के बारे में कुछ मनगढ़ंत बातें कही गई थीं। लिखा था कि रमा का पति ग्यारह साल तक बच्चा पैदा करने में नाकाबिल था, वह अचानक कैसे काबिल हो गया? और इसके साथ ही रमा का नाम ऐसे कई लोगों से जोड़ा गया था जिनसे वह अपने केन्द्रों के सिलसिले में मिलती रही थी।

गदियारी गाँव के अलावा यह पर्चा आस-पास के कई गाँवों में बँटा। पर्चे की भाषा इतनी भद्दी थी कि वह कुछ गंदे दिमागों की उपज लगता था। हालाँकि अधिकांश लोगों ने किसी की शरारत मानकर इसे ज्यादा महत्त्व नहीं दिया लेकिन रमा को इस बात का इतना दुःख हुआ कि उसने घर से निकलना ही बन्द कर दिया।

रात को खाना खाने के बाद अमर रोज की तरह अपनी बैठक में आकर पुस्तक पढ़ने लगा, तो उसके मन में पर्चे की बात को लेकर रमा की मनःस्थिति की समस्या उथल-पुथल मचा रही थी। आज वह इस बात को लेकर रोई भी थी। उसे पर्चे की बात आज ही मालूम हुई थी और वह इस पर हँस दिया था। लेकिन रमा इसे इतनी गंभीरता से लेगी, यह वह नहीं जानता था। उसने नियमानुसार पुस्तकों के साथ कुछ समय बिताया, डायरी में अपने मन की तरंगों को रेखांकित करने की कोशिश की और फिर सोने के लिए ऊपर वाले कमरे में चला गया।

रमा पहले ही ऊपर आ गई थी और वह बिस्तर पर लेटी सुबक रही थी। अमर उसके पास आकर बैठ गया और उसके बालों को सहलाते हुए बोला—

"पगली, जरा-जरा सी बातों से हिम्मत हारोगी तो कैसे काम चलेगा? यह सब चुनाव के दिनों में चलता ही है। जब तक इस देश की राजनीति व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि का अखाड़ा रहेगी तब तक यह चलता रहेगा। लेकिन इससे डरकर पीछे हटने का अर्थ होगा, गुण्डों और बदमाशों के हाथ राजनीति जैसे पवित्र सेवा-स्थल को सौंप देना। जब एक बार तुमने राजनीति में आने का निर्णय ले लिया तो उससे पीछे मत हटो।"

रमा ने अपने पति के वक्ष पर अपना सिर रख दिया। अपने आंसू पोंछकर वह बोली–

''शायद मैंने गलती की! आपने कहा था लेकिन मैं सोच भी नहीं सकती थी कि लोग इतने नीच हो जाएँगे।''

''तुमने कोई गलती नहीं की। यह ठीक है कि मैं राजनीति में नहीं जाना चाहता हूँ। लेकिन वह इसलिए नहीं कि राजनीति एक गंदी चीज है बल्कि इसलिए कि सही राजनीति करने वालों के लिए कोई स्थान नहीं है। ऐसी हालत में इस क्षेत्र में जाना अपने समय को नष्ट करना है। इसमें भी कोई शक नहीं कि वर्तमान राजनीति गंदी है, लेकिन गंदी तो हर चीज हो गई है। क्या धर्म में गंदगी नहीं है? सदियों से इस मुल्क में धर्म ने आदमी को पशु से ज्यादा तिरस्कृत किया है, क्या आज भी वह स्थिति नहीं बनी हुई है? लोग कुत्ते से मुँह चटवा सकते हैं लेकिन आदमी से छू जाने पर अपने को धर्मभ्रष्ट मानते हैं। क्या शिक्षा में गंदगी नहीं है? राजपुत्रों के उत्कर्ष के लिए मेधावी एकलव्यों के अँगूठे कटवाने का सिलसिला क्या जारी नहीं है? क्या सेवा शब्द गंदा नहीं हो गया है? सेवा के नाम पर संस्थाएं गरीब कार्यकर्त्ताओं का शोषण करके चंद लोगों के विलास-स्रोत नहीं बनी हैं? मुझे बताओ, गंदगी कहां नहीं है। गंदगी हर जगह है रमा, हर जगह है। यह भी भगवान् की तरह सर्वव्यापक है। इस गंदगी से भागकर हम जाएँगे कहाँ? इस गंदगी से भागना भी कायरता है, स्वयं में एक गंदगी है। हर औरत जो अपनी गुलामी छोड़कर बाहर की दुनिया में कुछ काम करने निकलती है, चारों तरफ कीड़ों-मकोड़ों की तरह फैले हुए गंदे लोगों की गंदी बातों का निशाना बनती है। एक बीमार मुल्क में इसके सिवाय और क्या मिल सकता है? लेकिन हमें यही सोचकर इन बातों को नजरअंदाज करना चाहिए कि यह मुल्क बीमार है। इसे सेवा और उपचार की जरूरत है। इससे नफरत करके भाग खड़े होने में उनकी कायरता है जो देश को स्वस्थ देखना चाहते हैं। लेकिन यह मत समझना कि सिर्फ हमारा मुल्क बीमार है और इस मुल्क से भागकर हम इससे बच सकते हैं। बीमारी सारी मानवता की है, सारे विश्व की है। हमारे देश में यह कुछ ज्यादा हो सकती है क्योंकि इसके इलाज की जिम्मेदारी जिन लोगों पर थी, वे खुद बीमार थे।''

रमा अपने पति के चेहरे को देखती हुई, उनकी आँखों में तैरते हुए स्वप्न को देखती हुई मंत्र-मुग्ध होकर सुनती रही। अमर किन्हीं सपनों में डूबा हुआ कहता गया–

''सच कहता हूँ रमा, इस दस-बारह साल के एकांत जीवन में मैंने जो कुछ सोचा है, समझा है, पढ़ा है, उसका निष्कर्ष मैं यही निकाल पाया हूँ कि यह मुल्क, यह साठ करोड़ के आदमियों का मुल्क बीमार है और इसकी बीमारी बहुत पुरानी हो गई है। लेकिन इसका इलाज नहीं हो सकता, यह मैं मानने के लिए तैयार नहीं हूँ। इतनी आस्था तो मुझ में अब भी बची हुई है। इस आस्था को खोना नहीं चाहता हूँ क्योंकि जिस दिन यह नहीं रहेगी उस दिन जीने के लिए कुछ भी सहारा नहीं रहेगा। यह मत समझना कि मुझे तुम्हारा चुनाव लड़ना पसंद नहीं था। मैंने उस वक्त इस लिए मना किया था कि मैं जानता था कि इस राजनीति को बर्दाश्त करना तुम्हारे लिए मुश्किल होगा। तुमने साहस किया है, अब पीछे नहीं हटो। यह तो मामूली बात है। तुम्हें और कुछ सहना पड़ सकता है। मत करो परवाह उसकी। यह सोचो कि तुम इस क्षेत्र में रहकर लोगों

के लिए बहुत कुछ कर सकती हो। तुमने बिना राजनीतिक बल के इतना कुछ किया है। सैकड़ों परिवारों को कुछ दिया है। इन परिवारों का आशीर्वाद तुम्हें मिलता रहेगा। राजनीति में रहकर तुम लोगों के लिए और ज्यादा कर सकती हो। अगर तुम यह मानकर चलो कि राजनीति तुम्हें लोगों को कुछ देने के लिए करनी है तो बेखटके आगे बढ़ो और बदनामी की परवाह मत करो। बदनामी को सहने की क्षमता जिसमें नहीं है उसे इस क्षेत्र में नहीं आना चाहिए। देखो न इस दुनिया में जिन लोगों ने बीमार मानवता के लिए कुछ किया है, वे सब अपने वक्त में बदनाम हुए थे, यहां तक कइयों को तो मार डाला गया। लेकिन दुनिया में जब भी कुछ अच्छा परिवर्तन हुआ है तो इन बदनाम मसीहों की वजह से हुआ है। जानती हो इस देश की बीमारी पिछले तीस सालों में कम क्यों नहीं हुई ? इसलिए कि इसके जो कर्णधार थे वे लोकप्रियता के पीछे पागल थे और बदनामी से डरते थे। जो हलाहल को पचा सकता है, वही सृष्टि को बदल सकता है। उसे लक्ष्मी नहीं मिलती, वैभवपूर्ण वैकुण्ठ नहीं मिलता। उसे तो नंगा रहना पड़ता है, पर्वतों के खंडहरों में उन तमाम जीव-जन्तुओं के साथ रहना पड़ता है, जिनसे लोग डरते हैं और दूर भागते हैं।"

शब्द इतने शीतल, शांतिदायक हो सकते हैं, रमा को यह अनुभूति आज पहली बार हुई।

रमा अपने पति को जानती थी लेकिन जहाँ तक पति को समझने का प्रश्न था, रमा हमेशा उनकी गहराई तक जाने में अपने को असमर्थ पाती थी। अपनी जरूरतों को सीमित करके एक सादा जीवन जीने का उन्होंने जो व्रत लिया था, उसमें रमा ने हमेशा पूरक रोल अदा किया था लेकिन वे सादा और एकांत जीवन का उपयोग मनुष्य के लिए एक नई व्यवस्था के स्वप्न-सृजन में कर रहे थे, शायद वह इसे नहीं समझती है।

चुनाव सम्पन्न हुए। रमा अच्छे बहुमत से जीत भी गई लेकिन पर्चे में छपे अश्लील प्रचार को लेकर उसके मन में अब भी कटुता बनी हुई थी। यह कटुता तब और गहरी हो गई जब पर्चा छपने के पीछे अपनी ही पार्टी वालों का हाथ नजर आया। पार्टी में घटकवाद ने अपना गंदा सिर उठाना शुरू कर दिया था और वह दिन-प्रतिदिन ऊँचा उठता जा रहा था।

कई राज्यों में जनता पार्टी की सरकारों के बनने के बाद से अखबारों में हरिजनों पर सवर्ण जातियों के अत्याचार की खबरें कुछ ज्यादा छपने लगी थीं। अत्याचार तो पहले भी होते थे लेकिन पाबंदी के कारण छपते नहीं थे। अमर का पहले ख्याल था कि अखबारों की पाबंदी हट जाने से ऐसे समाचार ज्यादा दिखाई देने लगे थे, लेकिन दिन-प्रतिदिन उसकी धारणा बदलती गई और उसे लगा कि माहौल में सचमुच कुछ परिवर्तन हो रहा है और यह परिवर्तन जंगलीपन की तरफ है। आपातस्थिति के दिनों में हरिजनों और भूमिहीनों के आगे जो जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप हड्डियां फेंकी गई थीं, उन्हें छीनने की बाकायदा कोशिश हो रही थी। इस काम के लिए संगठन बनाए जा रहे थे और कई स्थानों पर जोर-जबर्दस्ती से इन लोगों को बेखदल करने के प्रयास हुए थे। तथापि अमर को उम्मीद थी कि इस प्रकार की स्थिति गदियारी गाँव में नहीं आएगी किन्तु उसकी उम्मीद जल्दी ही टूट गई।

एक दिन गुन्नी अमर के घर आई। वह हमेशा की तरह लक्ष्मीदेवी को 'पैराबंदी' करके

दरवाजे के बाहर देहली से सटकर बैठ गई और रोने लगी। पूछने पर उसने बताया कि भलेमानस 'सैरूघास' वाली जमीनों को खाली कराने के लिए लाठियों और तलवारों से हमला करने वाले हैं।

अमर ने उसे लाख समझाने की कोशिश की कि ऐसा नहीं हो सकता लेकिन उसके मन में तो यह बात बैठ गई थी। अमर जानता था उसका डर बेबुनियाद नहीं है। हाट-बाजार में उस तरह की बातें सुनाई देने लगी थीं। एक दिन वह धीणू के घर किसी काम से गया तो वहाँ भी भनक मिली थी।

'सैरूघास' के मैदान में बरसात के दो महीनों में घास उगाई जाती थी। 'सैर' के त्योहार के दिन वहाँ गाँव के पशुओं को चराया जाता था। उसके बाद सारा साल यहाँ पशुओं का चरान बना रहता था। इस मैदान के साथ 'सैर' के त्यौहार की यादें जुड़ी हुई थीं और वे यादें बहुत पुरानी थीं।

जब इस मैदान से हरिजनों और भूमिहीनों को जमीन के टुकड़े बाँटे गए थे तो गाँव के सांस्कृतिक जीवन पर हुए आघात के कारण अमर को भी अच्छा नहीं लगा था। गाँव सभा की जमीनों पर बड़े लोगों द्वारा किए गए नाजायज कब्जों को खाली कराने के बजाय अफसरों ने 'सैरूघास' को बाँट दिया था।

लेकिन सैर के उत्सव के लिए और चरान के लिए अब भी काफी जमीन गाँव सभा के पास थी और 'सैरूघास' को हरिजनों से छुड़ाने का कोई कारण नहीं था, विशेषकर तब जब लोगों के नाजायज कब्जे की जमीन 'सैरूघास' से कहीं अधिक थी। इन नाजायज कब्जों को छुड़ाने के लिए न तो आपातस्थिति की सर्वग्रासी सत्ता ने कोई काम किया और न उसके बाद आने वाली सत्ता ने। इसलिए 'सैरूघास' से लोगों को बेदखल करने वाली बातें एक जुनून के सिवा कुछ नहीं था।

लेकिन जुनून जोर पकड़ता गया और एक आंदोलन की शक्ल लेता गया। आस-पास के गाँवों से भी इसको समर्थन मिलने लगा। गांव की सभी सवर्ण जातियाँ इस जुनून में शामिल नहीं थीं, अधिकतर वही लोग थे जिन्होंने खुद गाँवसभा की जमीनों पर नाजायज कब्जे कर रखे थे। लेकिन चूँकि इसे आंदोलन का रूप मिलने लगा था, इसलिए अमर को इसकी चिंता होने लगी थी।

फिर यह सुना जाने लगा कि 'सैर' के त्यौहार के दिन याने असूज महीने की पहली तारीख को लोग अपने पशु खेतों में छोड़ देंगे, और जो इस में बाधा डालेगा उसकी पिटाई की जाएगी। जिन हरिजनों और भूमिहीनों को 'सैरूघास' में जमीनें दी गई थीं उन्होंने इसका प्रतिकार करने की तैयारियां शुरू कर दीं। अमर कभी हरिजन टोले के सरगनों के पास कभी सवर्ण जातियों के सरगनों के पास जाकर उन्हें समझाता लेकिन दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी जिद्द पर अड़े रहे। पुलिस अधिकारियों को भी स्थिति से अवगत कराया गया लेकिन उन्होंने इस झगड़े को गंभीरता से नहीं लिया और ठीक वक्त पर उचित कार्रवाई करने का आश्वासन देकर टाल दिया।

गाँव के डंगर 'सैरूघास' के मैदान में केवल दो रास्तों से आ सकते थे। एक दक्षिण की

तरफ था और दूसरा पश्चिम की तरफ। हरिजन टोले के लोग लाठियाँ लेकर दोनों रास्तों पर पिछली रात से ही खड़े हो गए थे ताकि डंगर आएँ तो उन्हें खदेड़ा जा सके। 'सैरूघास' की जमीनों पर धान की फसल तैयार थी और उसकी रक्षा के लिए वे उत्सुक थे। वे जानते थे कि उन्हें जमीनों से बेदखल तो लोग कर नहीं सकते लेकिन इस झगड़े में उनकी फसल तबाह होने वाली थी और वे इसे हर कीमत पर रोकना चाहते थे।

अमर सुबह तड़के ही घर से निकल कर पश्चिम के रास्ते पर आ गया था और वहाँ हरिजन टोले को समझा रहा था कि वे लाठियों का इस्तेमाल सिर्फ डंगरों को रोकने के लिए करें। तभी गाय, बैलों के रंभाने, भैंसों के रिरियाने की आवाजों के साथ-साथ डंगरों का रेला 'सैरूघास' के तंग रास्ते की तरफ बढ़ने लगा। बरसात के दो महीनों में काम से मुक्त, खूँटों से बँधे और बढ़िया दाने-चारे से हृष्ट-पुष्ट, गदराये हुए डंगर सैर के दिन जब छोड़े जाते हैं तो उनकी मस्ती, उनका उन्माद देखते ही बनता है। सैर के त्यौहार का यही सब से बड़ा आकर्षण होता है। उनके मालिक गर्व से छाती फुलाए उनको हाँकते हुए पीछे-पीछे आते हैं। मस्ती में झूमते हुए ये डंगर बेकाबू होकर जिधर रास्ता मिलता है, उधर दौड़ते हैं और रास्ते में आनेवाली हर चीज को कुचलते हुए निकल जाते हैं।

गाय-बैलों और भैंसों का रेला जब पश्चिम के रास्ते की तरफ बढ़ा तो हरिजन लोगों के टोले ने उन्हें लाठियों से रोकना शुरू किया। पीछे से मालिकों ने डंगरों को लाठियों से पीट कर आगे हाँकने की कोशिश की। दोनों तरफ से लाठियों की चोट खाकर डंगर बिदकने लगते। पीछे से डंगरों का रेला बढ़ता चला आ रहा था और सभी को उस तंग रास्ते की तरफ हाँका जा रहा था। फिर एक जोरदार हल्ले के साथ तंग रास्ते की रक्षा पंक्ति टूट गई और डंगर रास्ते में इधर-उधर भागते लोगों को रौंदते हुए 'सैरूघास' के मैदान की तरफ बढ़ने लगे। उस अंधे रेले में कौन कहाँ गिरा, कौन कहाँ कुचला, इसकी तरफ किसी ने ध्यान नहीं दिया। एक-डेढ़ मिनट में ही सब कुछ हो गया। चार-पाँच सौ डंगर उस तंग रास्ते से हो कर 'सैरूघास' के मैदान में पहुँच गए। रास्ते के बीचों-बीच एक आदमी पड़ा था जिसके कपड़ों और जिस्म पर खुरों के अनगिनत निशान थे। उसको देखते ही इन्सानों के दिल में उठा हैवानियत का तूफान थम गया। अमर को वहाँ कौन नहीं पहचानता था?

हरिजनों और सवर्ण जातियों के लोगों की भीड़ अमर की लाश के आस-पास सिर झुकाए खड़ी थी। भीड़ को धकेलता हुआ एक अनजान, अपरिचित व्यक्ति अंदर आया और अमर के बेजान पैरों पर सिर रखकर बच्चे की तरह रोने लगा। फिर वह उठा। उसने जेब से एक मुड़ा हुआ अखबार निकाला और उसे खोलकर लाश को ढक दिया। अखबार के ऊपर के पृष्ठ पर अमर की डायरी से ली हुई कविता का यह अंश छपा था।

अभी लगे हुए हैं मंदिरों पर ताले
भक्त व्यभिचार में डूबे हुए हैं
पुजारीगण नशे में धुत पड़ा है

लाशों का कफन छीनने वाला
अनुशासनबद्ध मसान में खड़ा है
इधर-उधर उड़ते चमगीदड़ों की चीखों में
तम-पान करते उलूकों के रोने में
डूबी हुई है चिड़ियों की चहक
अभी पर्दा मत उठाओ, कहाँ सवेरा है?
मत जगाओ, सोने दो मुझे
अभी अँधेरा है।

तेरहवीं के दिन मित्रों, परिचितों और रिश्तेदारों की भीड़ से बच कर मुरली छोटे से पुस्तकालय में बैठा अमर की नई डायरी के पन्नों में डूबा हुआ था।

छठी लोकसभा के चुनाव एक भीषण आँधी की तरह आए और लगभग एक सौ वर्ष के वट-वृक्ष को उखाड़ गए। एक चमत्कार हुआ जिसे देखकर दुनिया के लोग भौंचक्के रह गए। "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" को मानने वालों ने कहा, यह भगवान् का चमत्कार था। मेरे मन ने कहा, "यह शैतान की करामात थी। जब-जब दु:शासनों ने द्रौपदी को सरे-आम नंगा किया, जब-जब भस्मासुरों ने शंकर के वरदान का प्रयोग शंकर को ही भस्म करने में किया, तब-तब शैतान ने मानवता की रक्षा की। किंतु बेचारे शैतान के साथ इतिहास ने हमेशा छल किया। श्रेय हमेशा उनको मिला जो अवतार बने और जो द्रौपदी को निर्वसन होते लाचार देखते रहे।

इस भूचाल का सब से दुखद परिणाम यह हुआ कि जेल-यात्रा की हुँडिया भुनाने वालों की एक जमात खत्म नहीं हुई थी कि दूसरी जमात आने वाले अनेक वर्षों के लिए तैयार हो गई और मिट्टी के लौंदों पर सोने का मुलम्मा चढ़ गया।

आपातस्थिति के रहस्योद्घाटन के लिए लेखकों में ऊँचे दामों का सस्ता साहित्य लिखने की होड़ मच गई। पश्चिम की व्यवसाय-प्रधान, नकारात्मक पत्रकारिता का वाहन होने के कारण और घटिया पत्रकारी लेखन से प्रोत्साहित होकर अंग्रेजी इस दौड़ में भी आगे रही। हिंदी के सर्वाधिक लोकप्रिय पत्रों ने अंग्रेजी पत्रों की बासी कहानियाँ छापकर अपनी उद्यमशीलता का परिचय दिया।

किसी ने यह नहीं बताया कि यह तानाशाही, यह आपातस्थिति मानव-अधिकारों और मानव-मूल्यों के साथ यह खुले आम बलात्कार कैसे संभव हुआ जब इस देश में इतने सारे प्रबुद्ध लेखक, पत्रकार, विचारक और नेता थे।

जब कोई शासन जनता के विरुद्ध युद्ध छेड़ देता है तो वह राष्ट्र की परम विपत्ति की घड़ी

होती है। यह कैंसर की स्थिति है, जब शरीर का सारा रक्षात्मक तंत्र विपर्यस्त होकर अपनी ही कोशिकाओं को नष्ट करने लगता है। मैं नहीं जानता कि हमारे देश के विधिवेत्ता आपातस्थिति को इस दृष्टि से देखते हैं या नहीं, उनसे उम्मीद भी नहीं करता क्योंकि इस देश की मनीषा को अंग्रेजी ने डस लिया है और हम विचारों के मामले में इतने पराश्रयी हो चुके हैं कि जब तक अमरीका, इंगलैंड आदि की नजीर नहीं मिल जाती तब तक हम कोई निर्णय नहीं कर पाते।---लेकिन अजूबा यह हुआ कि राष्ट्र में कैंसर पूरी तरह फैल नहीं पाया। राष्ट्र खत्म होने से बच गया। यह अजूबा शायद इसलिए हुआ कि शरीर की सब से बड़ी रक्षक ग्रंथी ने पागल मस्तिष्क का कहना नहीं माना। उस ग्रंथी को मेरा नमस्कार।

राष्ट्र को जिन दु:खदायी परिस्थितियों से इन दिनों गुजरना पड़ा वे भयानक रोग का उग्र रूप थीं और कोई भी रोग एकाएक उग्र रूप धारण नहीं करता है। वह धीरे-धीरे बढ़ता है। बुद्धिमान् लोग रोग का प्रथम लक्षण देखते ही उसके प्रति सतर्क हो जाते हैं और उसके उपचार की व्यवस्था करते हैं। जो बुद्धिमान् नहीं होते वे या तो उसकी अनदेखी करते हैं या उसे देखने के बाद सही उपचार करने के बजाय टोने-टोटकों का सहारा लेते हैं या अपने को ईश्वर के भरोसे छोड़ देते हैं।

शायद इस भयानक रोग का मूल ही ईश्वर रहा हो। गीता ने हमारे दिलों में बिठा दिया कि जब धर्म की हानि हो, दुष्टों का प्रभुत्व हो तो चिंता करने की जरूरत नहीं। ईश्वर अवतार लेकर सब ठीक कर देगा। हमारी यही ईश्वर-निर्भरता कालांतर में शक्तिशाली मनुष्य की दासता के रूप में प्रकट होती है। शुरू में अत्यन्त शक्तिशाली या असाधारण प्रतिभा वाले को अवतार माना जाता है फिर हर शक्तिशाली आदमी (राजा) को ईश्वर का रूप माना जाता है। ईश्वर का मानवीकरण या मानव का ईश्वरीकरण, ईश्वर और मानव दोनों का पतन करता है। ईश्वर के नीचे गिरने से कोई खास नुकसान नहीं होता क्योंकि उसका वैसे ही काल्पनिक अस्तित्व होता है किंतु मानव के पतन से सामाजिक जीवन की तमाम बुराइयां शुरू हो जाती हैं।

आदमी की आजादी, समता और लोकतंत्र की भावना के लिए पहली शर्त है कि सामान्य मनुष्य की शक्तियों और क्षमताओं में हमारी आस्था होनी चाहिए। यदि हम अपनी समस्याओं के समाधान के लिए ईश्वर, अवतार या देवत्व-प्राप्त मानव का मुँह ताकते रहे तो हमारी शक्तियों का क्षय निश्चित होगा। अवतारों, संत-महात्माओं और धर्मगुरुओं के इस देश में यही दुर्घटना हुई। हम अपनी समस्याओं के समाधान के लिए असाधारण व्यक्तियों की तलाश में लगे रहे और व्यक्ति-पूजा हमारे जीवन का अंग बन गई।

मातमपुरसी के लिए निकट-दूर के रिश्तेदारों में रूपा भी अपने को सम्मिलित नहीं कर पा रही थी। वह बड़ी देर से मुरली की तलाश में थी और उससे एकांत में कुछ बातें करना चाह रही थी। वह चुपचाप उस कमरे में आकर मुरली के पीछे खड़ी हो गई थी। मुरली डायरी में खोया हुआ था।

"मास्टर जी, आपसे कुछ बात कहनी थी।" उसने अब साहस बटोर कर कहा।

मुरली ने डायरी से ध्यान हटाए बिना कहा—

"मैं सुन रहा हूँ। कहो।"

रूपा एक क्षण के लिए सहमी, फिर बोली—

"दिवाकर आया है।"

"हाँ, मैं उससे मिल चुका हूँ।"

"वह वापस अपने घर आया है। सब कुछ छोड़कर।"

"हाँ, मैं जान चुका हूँ। उनका फैसला हो गया है।"

"मुझे क्या सलाह देते हो?"

मुरली ने अपनी नजरें फिर डायरी के पन्नों पर गड़ा दीं। वह यूँ ही पन्ने भी पलटने लगा। यह स्पष्ट था कि वह पढ़ नहीं रहा था लेकिन रूपा की तरफ देखने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। वह बोला—

"सलाह मैं नहीं दूँगा। तुम्हें खुद फैसला करना होगा।"

"लेकिन यह फैसला करना मेरे लिए बहुत मुश्किल है।"

"मुश्किल हो या आसान। फैसला तो करना ही पड़ेगा और वह भी तुम्हें।"

रूपा सिर झुकाए खड़ी सोचती रही। फिर बोली—

"तुम्हारे बिना मैं कैसे रहूँगी?"

मुरली के चेहरे पर चमक आ गई—

"ऐसी बात है तो मैं दिवाकर को राजी कर लूँगा। मुझे विश्वास है कि वह मेरी बात नहीं टालेगा।"

रूपा चुप खड़ी रही। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे।

"लेकिन वह बहुत दु:खी है, बहुत मजबूर है। न जाने उसने उन लोगों की कैद में रहकर कितना जहर पिया है। शायद उसे मेरी जरूरत है।"

मुरली ने जैसे उसकी बात सुनी ही नहीं। वह डायरी में खो गया।

तीस करोड़ और तीन आने का समीकरण हल नहीं हुआ। शायद और जटिल हो गया। तैंतीस वर्ष याने एक तिहाई शताब्दी व्यर्थ गई। राष्ट्र के इतिहास में तैंतीस वर्ष कोई मायने रखते हैं। यह कैसी जड़ता है, जो टूटने का क्या, हिलने का नाम नहीं लेती? कौन तोड़ेगा इस जड़ता को। क्या गांधीवाद? वह तो मर चुका है। गांधी जी के जीते-जी आधा मर गया था, जो थोड़ी बहुत सिसकन शेष थी, उसे उसके अनुयायियों ने तीस वर्ष में घोंट दिया। क्या मार्क्सवाद? वह भी तो अब लगभग मर चुका है, अपने बुतपरस्त अनुयायियों के हाथों। कमजोर को हड़पने और शक्तिशाली के आगे माथा टेकने के सिवा उसमें अब क्या रह गया है?

"मेरी बात का जवाब नहीं दिया आपने!" रूपा ने फिर कहा।

मुरली ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। वह रूपा की तरफ देख भी नहीं पा रहा था। उसने मेज की दराज से दवाई की दो शीशियाँ निकालीं और उन्हें रूपा की तरफ बढ़ा दिया। "यह दवाई तुम्हें छः महीने के लिए काफी होगी। डाक्टर ने कहा है एक गोली रोज सुबह

खाना। इसके बाद शायद तुम्हें कोई दवाई नहीं खानी पड़ेगी। लेकिन एक बार अस्पताल में जाकर दिखाना जरूर पड़ेगा।

रूपा के गले में कोई चीज अटक गई।

"तुम चले जाओगे?"

"यहाँ रहकर क्या करूँगा?"

"रमा का क्या होगा? किरण का क्या होगा?"

"मेरा ख्याल है कि रमा में हम सबकी अपेक्षा ज्यादा साहस है। वह अमर की सहचरी रही है। वह अमर की लड़ाई को जारी रखेगी और उसके बाद किरण उसे जारी रखेगी।"

'बीसवीं शती नपुंसकत्व की शती साबित हो रही है। इसने कई जानदार चीजों को नपुंसक बना दिया है। मार्क्सवाद और गांधीवाद दोनों को इसने नपुंसक बना दिया है। मनुष्य की हिंसावृत्ति घटने के बजाय बढ़ी। आदमी-आदमी के बीच फर्क घटने की बजाय बढ़ा। आदमी के द्वारा आदमी का शोषण, शस्त्र-भीति से मानव को भेड़ बनाने का सिलसिला नहीं टूटा।'

"तुम कहाँ जाओगे? क्या करोगे?" रूपा ने प्रश्न किया।

मुरली के पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था। उसे ये सब बातें अब नये सिरे से सोचनी थीं। सागर-तट पर खेलते हुए बच्चे की तरह उसने रेत का एक घरौंदा बनाया था। वह उसे सजाने-सँवारने और उसके बारे में चंद कल्पनाएँ करने ही लगा था कि घरौंदा टूट गया।

'मनुष्य के चेहरे की कालिख को पोतने के लिए, उसे सुन्दर और मानवीय बनाने के लिए, विचारों की लड़ाई लड़ने वाले मनीषियों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और महात्माओं के सारे प्रयत्नों को इस बीसवीं शती ने पुंसत्वहीन कर दिया। विचारों की लड़ाई छोड़ कर टोने-टोटकों और धर्मगुरुओं की ओर हताश मानव को धकेलने वाली इस बेरहम सदी के शिकंजे को कौन तोड़ेगा? भूख, रोग और शोषण के शिकार करोड़ों-करोड़ों मनुष्यों को जीने का अधिकार दिलाने के लिए कौन नये शस्त्र का आविष्कार करेगा?'

"रमा जी और माँ जी अब कैसी हैं?" मुरली ने प्रश्न किया।

"रमा बहुत बुरी तरह से टूट गई है। और माँ जी तो शायद ही ज्यादा दिन....." कहते-कहते रूपा का गला भर आया। मुरली बोला—

"तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेवारी आ गई है। रमा को तुम्हारा और भाभी का बड़ा सहारा होगा।"

रूपा उमड़ते आँसुओं को रोकने की कोशिश करती हुई तेजी से बाहर निकल गई। मुरली डायरी के आखिरी पन्ने पर नजरें गड़ाये रहा।

'कौन जानेगा उस साधक को?
जिसने बोया था बीज
सींचा था पादप को,
सुबह-शाम

हुआ बदनाम।
लोग जानेंगे उन्हें
जो जीवन से भागकर
आत्मसुख में रम गए
और बोधिवट की छाया में
बुद्ध बन गए।'

स्वप्न-भंग

गदियारी गाँव को बैजनाथ के कस्बे से जोड़ने वाली पक्की सड़क पर एक मोटर साइकिल बड़ी तेजी से भागी जा रही थी।

सूरज डूब चुका था लेकिन झुटपुटा नहीं हुआ था। दिन भर दाना-दुनका चुगने के बाद पंछियों के झुंड प्रशिक्षित वायुसेना के विमानों की तरह अनेक प्रकार के पैटर्न बनाते हुए अपने बसेरों की तरफ उड़े जा रहे थे। बांसों के झुरमुट में चिड़ियों का कोलाहल अभी जारी था।

एक दलदली खेत में गर्दन उठाकर सारस-मारसी ने ऊँची आवाज लगाई और कुछ दूर किसी और सारस-सारसी ने उसका जवाब दिया। उसकी आवाजें चारों ओर की पहाड़ियों से टकराकर घाटी में अनेक स्वरों में प्रतिध्वनित हुईं।

सारसों की तीखी और दिल को दहला देने वाली आवाज़ सुनकर झाड़ी के पत्ते खाती बकरी ने अचानक मुँह चलाना बंद कर दिया और मुड़कर अपनी मालकिन की तरफ देखा जो खेत का काम पूरा कर सिर पर घास-फूस भरी टोकरी रखे घर जाने के लिए सड़क की तरफ आ रही थी।

उसकी अवस्था पच्चीस-छब्बीस वर्ष की रही होगी। दुपट्टे से माथे को कसकर बांधने के बाद शेष दुपट्टे को मोड़कर घास की डलिया को सिर पर टिकाने के लिए बिन्ना (कुशन) बनाया गया था। पतली मोहरी की सिलवार अभी पिंडलियों तक ऊपर उठी हुई थी क्योंकि पाँव कीचड़-मिट्टी से सने थे।

सड़क के किनारे-किनारे बहने वाली कुहल (नहर की शाखा) के पास पहुँचकर उसने डलिया सिर से उतारकर जमीन पर रख दी और कुहल के किनारे रखे एक पत्थर पर बैठकर हाथ-पैर धोने लगी।

हाथ-पैर धोने और ऊपर उठी सिलवार को एड़ियों तक खींचने के बाद उसने ठंडे पानी से दो-तीन छपाके मुँह पर मारे और दुपट्टे से मुँह पोंछकर फिर चलने के लिए तैयार हुई कि भड़भड़ाती हुई मोटर साइकिल उसके सामने आ रुकी।

सवार की अवस्था चौंतीस-पैंतीस के आसपास रही होगी। हल्की दाढ़ी-मूंछ जिसे भली प्रकार काटा-तराशा गया था और खादी का पेंट-बुशर्ट पहने यह युवक एक खाता-पीता ही नहीं मौज करता राजनेता भी लगता था।

"सांतो, एक जरूरी काम है, करोगी ?" वह बोला।

"क्या आज फिर कहीं मटरगश्ती पर जाना है ?"

"मटरगश्ती ही सही। तुम नहीं जानती हो हमें क्या-क्या करना पड़ता है ?"

"जानने की जरूरत क्या है ? सारी दुनिया तो जानती है कि ये खद्दरधारी नेता क्या-क्या करते हैं ?"

"सांतो तुम भी सुनी-सुनाई बातों को ले उड़ती हो। ठीक है, मैं खद्दरधारी हूँ, कांग्रेस का छोटा-मोटा नेता हूँ······लेकिन।"

"छोटा नहीं मोटा। ग्राम-प्रधान हो और ब्लाक प्रधान भी। सब जगह तो आपकी जय-जयकार होती है।"

"उससे क्या होता है ? जिन लोगों तक मैं पहुँचना चाहता हूँ, वहाँ तक तो नहीं पहुँच पा रहा हूँ।"

"अरे, कौन लोग हैं वो जिन तक आपकी पहुँच नहीं ?"

"यह बताने की बात नहीं है। खैर, छोड़ो इन बातों को। भैया-भाभी को बताती जाना कि आज मैं घर नहीं आऊँगा ? और हां······रमा जी की तरफ जाओ तो उन्हें अखबार दे देना।"

मोटर साइकिल के आगे बने खाने से उसने "अमर संदेश" की तीन प्रतियाँ निकालीं और सांतों की तरफ बढ़ा दीं। सांतों ने उन्हें मोड़कर अपनी टोकरी में रख लिया। मोटर साइकिल सवार (मुरली) ने डिक्की से तीन पैकेट निकाले और उन्हें डलिया में रखते हुए बोला—

"एक भैया-भाभी को, एक रमाजी को और एक तुम्हारा।"

"मेरा······क्या है इसमें ?"

"मिठाई······?"

"किस चीज की ?"

"आज मुझे जिला पंचायत का प्रधान चुना गया है ?"

"इस अखबार में फोटो भी छपा होगा।"

"नहीं।"

"लेकिन मेरे लिए मिठाई क्यों ?"

"क्यों, तुम्हें बुरी लगती है ?"

"बुरी किसे लगती है ? लेकिन मैं आपकी क्या लगती हूँ।"

"कुछ तो लगती ही होगी।"

"क्या ?"

"हर रिश्ते को नाम देना क्या जरूरी है ?"

"बिना नाम का रिश्ता और कितनों से जोड़ा है ?"

"कह नहीं सकता। सैकड़ों हो सकते हैं। हर रिश्ता अपनी-अपनी जगह है।"

"लीडरी की चस्का लग गया है आपको।"

"कोयले की खान में कालिख से कौन बचा है ?"

"किसने कहा था आपको कोयले की खान में जाने के लिए ?"

"मैंने जो किया, खुद सोचकर किया। इसके लिए मुझे जो बदनामी मिलेगी उसका दोष मैं किसी और को नहीं दूंगा।"

"रमा दीदी, बहुत नाराज हैं आपसे।"

"जरूर होंगी। सभी नाराज हैं। तुम भी तो हो......"

"मैं क्यों नाराज होने लगी ? मेरे लिए आप जैसे पहले थे, वैसे ही अब हो। हाँ, थोड़ी-बहुत खुशी ही हुई है। पहले फटेहाली में थे अब अच्छे खाते-पीते, पहनते हो। पहले पुलिस से बचे-बचे रहते थे अब पुलिस वाले सलाम करते हैं।"

"तुम ठीक कहती हो, लेकिन अपनोंसे कट गया हूं।"

"अपनोंसे कट भी गए तो ज्यादा नुकसान नहीं है। अपनेसे कटे तो गए काम से।"

"मतलब...... ?'

"मतलब मैं नहीं जानती। लेकिन लोग सोचते हैं मुरली जैसा था, वैसा ही रहेगा। वह बदलेगा नहीं।"

"वक्त के साथ बदलना भी तो पड़ता है।"

उसने कहा और पश्चिम के आकाश की तरफ नजर डाली जहां लाल बदलियां काली पड़ने लगी थीं।

"आज जल्दी में हूं फिर कभी इस पर बात करेंगे।" कह कर उसने मोटर साइकिल स्टार्ट की और पीछे की ओर मोड़ दी।

सांतो बड़ी देर तक सड़क पर उड़ती धूल को देखती रही। फिर घास की डलिया सिर पर रख कर घर की तरफ चल दी। बकरी गले में पडी घंटी को छनकाती हुई, उसके पीछे-पीछे ठुमक-ठुमक दौड़ने लगी।

सांतो को लगा कि घंटियों की आवाज़ उसके भीतर के किसी कोने से भी आ रही है। पहले भी जब मुरली से उसकी कुछ देर के लिए मुलाकात होती थी तो इसी तरह उसके भीतर कोई ठुनक-ठुनक कर नाचने लगता था। थोड़ी देर के लिए वह उस संगीत में खो जाती थी लेकिन फिर सब वैसे ही चलने लगता था। घंटिया कहीं दुबक कर मूक हो जाती थी।

नहीं, यह सब अपने आप नहीं होता था। घंटियां अपने आप बजने लगती थीं लेकिन उनका चुप हो जाना अपने आप नहीं होता था। उन्हें सांतो खुद चुपकर देती थी, उनका गला घोंट लेती थी।

कितने साल बीत गए उस घटना को जब हरिजनों की जमीन पर कब्जा करनें के लिए गाँव

के भले मानसों ने डंगर खदेड़ दिए थे और उनके खुरों के नीचे अमर भैया की लाश लहू-लुहान पड़ी थी। जिस किसीने भी वह दृश्य देखा था वह कभी उसे भूल नहीं सकता था। सांतो की हिम्मत नहीं हुई थी कि उस दृश्य को जाकर देखे। लेकिन उसकी सास भीड़ को चीरकर उस जगह पहुँच गई थी। फिर घर आते ही उसने कुहराम मचा दिया था। दोनों हाथों से सिर और छाती को पीटकर वह दहाड़ें मार कर रोई थी। वैसा रोते उसे तब भी किसीने न देखा था जब उसके बेटे की जबरन नसबंदी के बाद मृत्यु हो गई थी। गाँव की गलियों में वह चीखती-चिल्लाती फिरी थी, "ये लोग हमें मार डालेंगे हमारे घरों को फूंक देंगे। हमें जिंदा जला देंगे।" मुरली उसे पकड़कर घर ले आता था और समझा-बुझाकर नींद की गोली खिलाकर सुला देता था। दूसरे दिन वह फिर निकल पड़ती थी गाँव वालों को कोसने, उन्हें नरक की आशीष देने। मुरली को छोड़कर उसके निकट कोई नहीं जाता था। मुरली बच्चे की तरह उसे गोद में उठाकर घर पहुँचा आता था। कभी-कभी उसे रात भर सांतो के घर ही रहना पड़ता था। सांतो सास के चीखने-चिल्लाने से बहुत डर जाती थी। उसे लगता था कि सास ज्यादा दिन नहीं जीएगी। सास अध-पागल थी तब भी उसे उसका सहारा था। उसे लगता था घर में वह बिल्कुल अकेली नहीं है। एक आदमी का घर में होना उसे ढाढस देता था हालांकि वह आदमी उसके लिए बोझ भर था। खुद दूसरों के खेतों में काम करके उसे घर चलाना होता था। अधपगली सास को खिलाना-पिलाना, नहलाना और कभी-कभी उसका मल-मूत्र भी उठाना पड़ता था। फिर भी उसे सास का सहारा था। उसके रहने से उसमें हिम्मत थी। लेकिन जब सास चल बसी तो उसे लगा कि अब वह बिल्कुल अनाथ हो गई है।

जिंदगी में अकेलापन, बेसहारापन और बेमतलबपन किस हद तक तकलीफदेह होता है, इसका अनुमान सांतो को उन्हीं दिनों हुआ। लगता था उसकी जिंदगी को कोई भीतर ही भीतर कुतर रहा है। सुबह होते ही एक खालीपन और सूनेपन का एहसास उसे घेर लेता। अनमने भाव से वह उठती और अपनेको घर के काम-काज में लगाने की कोशिश करती हालांकि घर के काम-काज का कोई मतलब नहीं होता था। किसका घर और किसके लिए काज? जब उसका पति जीवित था तो सुबह तड़के ही उसे उठ जाना पड़ता था। पति को चार मील दूर एक गाँव में पढ़ाने जाना होता था इसलिए सुबह सात बजे तक नाश्ता तैयार करके देना पड़ता था। सास को सुबह-सुबह गरम चाय एक-दो बार देनी पड़ती थी। दमे की तकलीफ सुबह उठते ही बढ़ जाती थी और जब तक एक दो कप गरम चाय के पेट में नहीं जाते थे, सांस संभालना मुश्किल होता था। पानी के लिए गाँव से बाहर बनी बावली में जाना पड़ता था। गाँव में पानी की नाली आ जाने के बाद भी उनके लिए पानी सुलभ नहीं था। गाँव के बीच एक नल था और उस पर सुबह-सुबह बड़ी भीड़ रहती थी। पहले ऊँची जात वालों की औरते अपने घड़े भरती थीं, तब कहीं उनकी बारी आती थी। वक्त बर्बाद करने के बजाय सांतो गाँव के बाहर की बावली से पानी लाना बेहतर समझती थी। इस भाग-दौड़ और व्यस्तता में भी उसे सुख मिलता था। अब वह किसके लिए भाग-दौड़ करे? क्या है उसके करने के लिए?

अमर भैया की अकाल मौत ने बहुतों को झकझोर दिया था। रमा दीदी की हालत बहुत खराब थी। दुध मुँही बच्ची किरण को छाती से लगाए वह घंटों बिसूरा करती थी। अमर की मां लक्ष्मीदेवी जो मंदिर वाले पीपल के पेड़ के गिरने से पहले ही टूट चुकी थी, अब इकलौते बेटे की मौत का सदमा नहीं सह सकी। अमर की तेरहवीं के कुछ दिन बाद ही वह बीमार पड़ गई और आठ-दस दिन में परलोक सिधार गई। रमा दीदी को अब किसी का सहारा नहीं रहा। शायद एक के बाद एक आघात के कारण वह अपने को न सभाल पाती लेकिन किरण ने उसे नये सिरे से जीने के लिए तैयार कर दिया। फिर उसके लिए एक बड़ा कर्म क्षेत्र था, उसका अपना बनाया हुआ और वर्षों की मेहनत से सींचा संवारा हुआ। उसके द्वारा स्थापित सिलाई-बुनाई के केन्द्रों से सैंकड़ों बेसहारा औरतों को रोज़गार मिल रहा था और साथ ही मिल रही थी जीवन की सार्थक अनुभूति। रमा का जीवन अब उसका अपना जीवन नहीं रह गया था। वह दूसरों का, समाज का, हो गया था। विधायक की जिम्मेदारियां भी उसे निभानी थीं। वह इनसे भाग कर अपने सुख-दु:ख तक अपने को सीमित नहीं कर सकती थी। उसे अपने पति की अकाल मृत्यु के आघात को बर्दाशत करते हुए भी अपने पिंजरे से बाहर आना पड़ा। उसके सामने एक साफ लक्ष्य था। उसे अपने पति के अधूरे सपनों को पूरा करना था। किरण उसके सपनों की प्रतीक थी और एक समग्र सामाजिक बदलाव का लक्ष्य सामने था। अपने पति के विचारों और सपनों की घनिष्ठ साक्षी रमा के लिए यह संभव ही नहीं था कि वह कर्म क्षेत्र से भाग कर अपनी ही दुनिया में खो जाती।

मुरली की स्थिति दूसरी थी। अमर उसका गुरु, उसका दोस्त और उसका आदर्श पुरुष था। उसकी मौत ने उसके भीतर एक अंधड़ की स्थिति पैदा कर दी थी। बाहर से उसके व्यवहार में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देता था। रमा, किरण, लक्ष्मीदेवी, सांतो और सांतो की सास इन सब को सदमे से बचाने का दायित्व उसके ऊपर आ पड़ा था। अगर वह अपने भीतर चल रहे अंधड़ को अपने ऊपर हावी होने देता तो कौन उस सारी स्थिति को संभालता। अमर की मृत्यु के बाद दिवाकर के घर लौट आने और रूपा के दिवाकर को अपना लेने की घटना ने मुरली को निराशा के अंधे कुएं में ही धकेल दिया था। लेकिन उसने अपने आपको स्थितियों के बहाव में बह जाने से रोक लिया। इसके लिए उसे बहुत जद्दोजहद करनी पड़ी लेकिन उसने अपने दृढ़ निश्चय से स्थितियों के सारे दबावों को अपने मन पर हावी नहीं होने दिया। अब तक उसका जीवन भावना के वेग में बह जाने वाला रहा था। अब वह एक सुविचारित निर्णय से अपने को अनुशासित करना चाहता था।

स्थिति को सामान्य होते तीन चार महीने गुजर गए। इन तीन चार महीनों में मुरली अजीब पशोपेश में रहा। अमर की तेरहवीं के दिन जब उसकी रूपा से भेंट हुई थी और उसने दिवाकर के साथ रहने की अपनी इच्छा व्यक्त की थी तो मुरली ने सोचा था वह तुरंत गाँव छोड़ कर बंबई चला जाएगा और राजनीतिं तथा मजदूर आंदोलन की अपनी पुरानी दुनिया में डूब जाएगा। लेकिन ज्यों-ज्यों उसके आसपास की स्थितियां बिगड़ती गईं, उसे लगा कि वापस उस

दुनिया में जाना स्थितियों से बचना-भागना होगा। क्या रखा है अब मजदूर आंदोलन में और क्या रखा है उस राजनीति में जो अपने निहित स्वार्थों में कैद होकर अपाहिज हो गई है? क्या इसीलिए जनता पार्टी की सरकार पर उसने सारी बाजी लगा दी थी कि सदियों से गरीब छोटी जातियों का शोषण करने वाले ताकतवर हो जाएं और समाज को फिर उस नरक की तरफ धकेल दें जिसकी सृष्टि मनु और उसके उत्तराधिकारियों ने की थी? क्या मानव-रक्त के प्यासे इन भेड़ियों को खुलकर खेलने की छूट देने के लिए उसके जैसे लोगों का जनता पार्टी से जुड़े रहना उचित है? एक असुर के अत्याचारों से दुखी देवताओं ने जब मिलकर, अपनी शक्तियों को केन्द्रित कर, शक्ति का निर्माण किया था तो क्या उन्होंने सोचा था कि रक्त की प्यासी इस शक्ति को सुस्थिर रूप में लाने की समस्या भी खड़ी होगी? क्या वह शक्ति उनके लिए रक्तपायी असुरों से भी ज्यादा खतरनाक नहीं हो जाती यदि विषपायी स्वयं भूच्युत होकर उसके होश ठिकाने न लाता? अब इस स्थिति में जब जनता पार्टी रक्त की प्यासी चंडी बन गई है, कौन है विषपायी जो अपने को मिटाकर, अपने को धूल में मिलाकर इसके होश ठिकाने लगाए?

और तब मुरली ने निश्चय किया था कि वह चुनाव की राजनीति से कोई संबंध नहीं रखेगा। उसे लगा कि जिस तरह एक अर्से के बाद मजदूर संगठन निहित स्वार्थ बन जाते हैं उसी तरह चुनाव की राजनीति भी निहित स्वार्थों का खेल बन जाती है। कम से कम तब तक चुनाव की राजनीति से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा जब तक जाति-व्यवस्था के कारण सदियों से बना हुआ असंतुलन समाप्त नहीं होता। इसके लिए शोषित जातियों में एक जनांदोलन की जरूरत है। आंदोलन का क्या रूप हो, इस बारे में उसके मन में कुछ तय नहीं था। वह लोगों से विचार-विमर्श करने के बाद कोई रास्ता बनाना चाहता था। इस बीच उसने निश्चय किया कि अपने 'खुफिया अखबार' का नाम बदल कर 'अमर संदेश' करेगा और उसे जनांदोलन का माध्यम बनाएगा।

मुरली के इस फैसले ने सांतो को जीने का नया साहस दिया। वह छठी कक्षा तक पढ़ी थी। उनकी बिरादरी में छठी तक पढ़ी लड़कियां भी अच्छी पढ़ी-लिखी मानी जाती थीं। एक अध्यापक लड़के की मंगेतर होने की वजह से माँ-बाप ने उसे छठी तक पढ़ाया था। पति की मृत्यु के बाद उसके लिए यह पढ़ाई-लिखाई एक दीवार बन गई। पढ़-लिखकर वह दूसरों के खेतों में मजदूरी करने जाए यह बात स्वयम् उसे भी नागवार गुजरती थी और उसके रिश्तेदारों को भी। इसलिए जब एक दिन मुरली ने उसे अपने अखबार में कम्पोजीटर का काम सिखाने का सुझाव दिया तो उसने उसे तुरंत स्वीकार कर लिया। हालांकि इसके लिए उसे साढ़े सात बजे घर से निकल कर नौ बजे तक बैजनाथ पहुँचना होता था और शाम को कभी देर तक भी काम करना पड़ता था लेकिन इस काम में उसका मन लग गया। तीन-चार महीने तो उसे काम सीखने में लग गए किंतु उसके बाद वह मुरली के काम में हाथ बटाने के योग्य हो गई।

आठ पृष्ठों का अखबार सप्ताह में एक बार निकलता था। लिखने का काम शुरू-शुरू में तो खुद मुरली को ही करना पड़ता था। बाद में रमा दीदी और दिवाकर भी उसमें मदद करने

लगे। कीमत एक रुपया रखी गई। एक-दो महीने तो एक हजार प्रतियां बेचने के लिए भी मुरली को जगह-जगह घूमना पड़ता था। अखबार का मुख्य स्वर था खिचड़ी जनता सरकार पर तीखा व्यंग्य जो पूंजीपतियों, साम्प्रदायिक तत्त्वों और जातिवादियों के हाथ का खिलौना बनती जा रही थी। हरिजनों के अधिकारों के लिए अमर के बलिदान की कहानी और उस पर दूर-दूर से मिली प्रतिक्रियाओं ने लोगों का ध्यान अखबार की तरफ खींचा। पिछड़ी जातियों के पढ़े-लिखे युवकों ने इसे अपनी आवाज मानकर अपनाना शुरू किया। ऊँची जातियों ने उसे इस दृष्टि से खरीदना शुरू किया ताकि अपने बचाव में कुछ किया जा सके। छः महीने में अखबार की पांच हजार प्रतियां बिकने लगीं और उसकी गूंज प्रादेशिक एसेंबली में भी सुनाई देने लगी। लोकसभा में एक-दो बार "अमर संदेश" का जिक्र आया। दिल्ली में कंभावला के जाट जब हरिजनों को आपातकाल में बांटी गई जमीनें छीनने के लिए सत्याग्रह कर रहे थे तो "अमर संदेश" के उन लेखों का भी जिक्र किया गया जो अमर के बलिदान के प्रसंग में लिखे गए थे। जनता सरकार की तीखी आलोचना के कारण वह विपक्ष की आवाज़ बन गया। इंदिरा कांग्रेस के पस्त और ध्वस्त कार्यकर्ताओं को इससे बल मिला। उन्होंने इसे हाथों-हाथ उठा लिया हालांकि अखबार में इंदिरा गांधी की प्रशंसा में कभी कुछ नहीं छपा। उनके लिए इतना ही काफी था कि कोई जनता सरकार पर हमला कर रहा है।

जनता सरकार के अंतर्विरोध प्रादेशिक चुनावों से पहले ही प्रकट होने लगे थे। एक तरह से केन्द्र में सरकार बनते ही दरारें पड़नी शुरू हो गई थीं। जयप्रकाश नारायण और आचार्य कृपलानी की मध्यस्थता से चुनाव के बजाय आम राय के रास्ते से मोरारजी भाई को प्रधानमंत्री बनाया गया किंतु प्रधानमंत्री पद की शपथ लेते ही मोरारजी सबको साथ ले चलने के दायित्व को भूल गए। उन्होंने पार्टी के मशविरे की परवाह न करके ऐसे मंत्रिमंडल की घोषणा कर दी जिसमें उनके अपने गुट के सदस्य भारी संख्या में थे। इससे जगजीवन राम बहुत नाराज हुए और उन्होंने मंत्रिपद की शपथ लेने से इन्कार कर दिया। मोरारजी ने अपने बेटे को जिनके खिलाफ भ्रष्टाचार के कई स्कैंडल थे, अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना दिया। जिन्होंने इस कदम का विरोध किया उनके खिलाफ मोरारजी के मन में गाँठ पड़ गई। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से जुड़े गुट ने दोहरी सदस्यता का सवाल उठाने वालों को अपना दुश्मन घोषित कर दिया। प्रादेशिक चुनावों के बाद जब उत्तर प्रदेश, बिहार और हरियाणा में पिछड़ी जातियों के मुख्यमंत्री बन गए तो सवर्ण जातियों की राजनीति करने वाले गुटों ने उनके खिलाफ अभियान छेड़ दिया। मोरारजी स्वयं पिछड़ी जातियों के उत्कर्ष को अपनी गद्दी के लिए खतरा मानते थे इसलिए उन्होंने उन गुटों को आशीर्वाद दिया और पिछड़ी जातियों के तीन मुख्यमंत्री हटाए गए। केंद्र में पिछड़ी जातियों के नेता चरण सिंह और राजनारायण के खिलाफ भी माहौल बनाया जा रहा था। अलग-अलग धड़ों को जोड़कर रखने के बजाय मोरारजी खुद इस धड़ेबाजी में शामिल हो गए। उन्हें पार्टी के चुनाव घोषणापत्र या आर्थिक नीति के किसी मुद्दे पर मंत्रिमंडल में विचार करने की फुर्सत नहीं मिली लेकिन गुटों की जोर आजमाई में कभी इस तरफ कभी उस तरफ झुकने की

भूमिका अपनाते रहे। इन झगड़ों में शासन-व्यवस्था चौपट होने लगी। पार्टी के लिए चंदा जमा करने के नाम पर माफिया गैंग उसी तरह काम करने लगे जैसे पिछली सरकार में करते थे। अधिकारियों के बेमतलब तबादले होने लगे। भूतपूर्व प्रधानमंत्री इंदिरागांधी की गिरफ्तारी और लोकसभा से उसकी सदस्यता को समाप्त करने के मामले इस तरह निपटाए गए कि जनता सरकार अखबारों में उपहास का केंद्र-बिंदु बन गई। जगह-जगह हरिजनों पर होने वाले अत्याचारों की घटनाएं और सड़क चलती महिलाओं के मंगलसूत्र छीनने की घटनाएं अखबारों के पृष्ठ रंगने लगीं। शासनहीनता की इस स्थिति में जब पार्टी के भीतर विरोध की आवाज उठने लगी तो मोरारजी उस आवाज को दबाने के लिए दलबदल विधेयक ले आए। वे अनुशासन के डंडे से सबको अपने वश में रखना चाहते थे लेकिन जब दलबदल विधेयक का विरोध हुआ और उन्हें अपनी गद्दी खतरे में दिखाई दी तो विधेयक को वापस ले लिया। लेकिन इससे गुटों के द्वंद्व और तीव्र हो गए। दाएं बाजू के गुट बाएं बाजू के गुटों के प्रति अधिकाधिक असहिष्णु होते गए और वे उन्हें अपने संख्या-बल से खत्म करने की योजनाएं बनाने लगे। कानून-व्यवस्था, राज-काज, आर्थिक विकास की योजनाएं उपेक्षित होती गईं और प्रमुख होते गए गुटों के अपने-अपने स्वार्थ। बड़े शोर-शराबे के साथ जो गुब्बारा हवा में उड़ाया गया था, अब उसकी हवा निकलने लगी थी और वह अपने पतन की ओर बढ़ रहा था।

एक लंबे अर्से के बाद एक पार्टी के शासन को खत्म करके, आंधी की तरह आया यह बदलाव, इतनी जल्दी टाँय-टाँय फिस्स हो जाएगा, इसकी किसी को कल्पना नहीं थी। लेकिन स्थितियां इसी तरह की बनती जा रही थीं और ये स्थितियां किसी भी नये अखबार के लिए बहुत लाभदायक थीं। कितने ही नये अखबार इस दौरान निकले और बहुत जल्दी ही उनकी स्थिति मजबूत हो गई।

वर्षों से विपक्ष के धुरंधर नेता सत्ता में आकर मूक हो गए थे और कांग्रेस के नेता इतने पिटे थे कि प्रभावकारी विपक्ष की भूमिका अदा करना उनके वश की बात नहीं थी। विपक्ष की इस रिक्तता को अखबारों ने भरना शुरू किया।

'अमर संदेश' ने भी इन स्थितियों का खूब लाभ उठाया। उसने विपक्ष की भूमिका निभानी शुरू की और उसकी लोकप्रियता बढ़ती गई। अब विज्ञापन के मामले में केंद्रीय सरकार या प्रादेशिक सरकार द्वारा उसकी उपेक्षा करना संभव नहीं था। बिक्री के साथ-साथ विज्ञापनों की आय भी बढ़ने लगी। छपाई के लिए नई मशीन खरीदी गई और कम्पोजिंग का विभाग भी बढ़ाया गया। सांतो के साथ रघु, मिक्खू और गरीबू भी प्रेस में काम करने लगे। कुछ पढ़े-लिखे लड़के-लड़कियों को सम्पादकीय विभाग में काम मिल गया। दूर-दराज से समाचार भी आने लगे। टेलीफोन और टेलीप्रिंटर की सेवाएं उपलब्ध हो गईं।

चुनाव में जनता पार्टी की हार और कांग्रेस की जीत ने ऐसी स्थितियां पैदा कीं कि मुरली अनचाही दिशा में बहने लगा। जनता पार्टी की ऊँची जातियों की ओर झुकी नीतियों के विरुद्ध 'अमर संदेश' के माध्यम से मुरली ने एक जेहाद जैसा छेड़ रखा था और उनकी प्रतिक्रिया ऊँची

जातियों द्वारा सताए वर्गों में व्यापक रूप से होने लगी थी। कुछ पढ़े-लिखे युवक भी एक जातिमुक्त समाज के आदर्श की ओर खिंचने लगे थे। कुल मिलाकर 'अमर संदेश' सामाजिक चेतना का पत्र बन गया था। किंतु कांग्रेस को परोक्ष रूप से इसका लाभ मिल रहा था। उपेक्षित वर्गों को लग रहा था कांग्रेस पार्टी उनकी समस्याओं के प्रति कुछ तो सहानुभूति रखती थी। जनता पार्टी की तरह वह उनके प्रति क्रूर नहीं थी। हालांकि यह बात सारे देश की जनता पार्टी पर नहीं घटती थी किंतु प्रांतीय जनता पार्टी की संरचना चूंकि अधिक़तर सवर्ण जातियों में से हुई थी, वहां इस तरह की धारणा उपेक्षित वर्गों में बन गई और उनके वोट अधिकतर कांग्रेस पार्टी को मिले।

कांग्रेस पार्टी की सरकार बनने के बाद मुरली से मिलने के लिए नये चुने गए विधायक और कभी-कभी मंत्री भी आने लगे। कई विधायकों ने अपनी जीत के लिए 'अमर संदेश' और मुरली के प्रति अपना आभार प्रकट किया। वे मुरली के लिए कुछ भी करने को तैयार थे। विज्ञापन तो काफी मिलने ही लगे, समारोहों में भी मुरली को बुलाया जाने लगा। 'अमर संदेश' के दफ्तर का कायापलट हो गया। प्रांत की राजधानी शिमला में भी 'अमर संदेश' का एक दफ्तर खुल गया। शिमला में आना-जाना, मंत्रियों से मिलना मुरली के जीवन का रूटीन बन गया।

मुरली पर कांग्रेस में शामिल होने और किसी उपचुनाव में खड़ा होने के लिए जोर डाला जाने लगा। किंतु मुरली इसके लिए तैयार नहीं था। वह पत्रकारिता के क्षेत्र तक ही अपने को सीमित रखना चाहता था। कांग्रेस की नीतियों से उसे कोई लगाव नहीं था, लेकिन जो आर्थिक लाभ उसे कांग्रेस का दोस्त स्वत: बन जाने से मिलने लगा था, उसकी उसे जरूरत थी। इसलिए वह व्यवहार में लगभग कांग्रेसी ही बन गया।

'अमर संदेश' के दफ्तर के ऊपर उसने अपने रहने के लिए दो कमरे का फ्लैट बनवाया था। अक्सर वह वहीं रहता था। हफ्ते में एकाध बार भाई-भाभी और रमा से मिलने के लिए वह गांव आता था लेकिन गांव के हालचाल से वह सांतो के माध्यम से बराबर अपने को अवगत रखता था। उसकी व्यस्तता पहले भी काफी थी लेकिन नेता बन जाने के बाद तो और भी बढ़ गई थी। अखबार और प्रेस के प्रबंध का काम उसने दिवाकर को सौंप दिया था और खुद वह लोगों से मिलने-जुलने तथा विज्ञापन और प्रेस-सामग्री की व्यवस्था करने में जुटा रहता था।

मुरली की मोटरसाइकिल ऊबड़-खाबड़ सड़क पर बेतहाशा भागी जा रही थी। सांझ की लाली धीरे-धीरे अंधेरे में विलुप्त होने लगी थी। मुरली को यह दृश्य हमेशा उद्विग्न कर देता था। सूरज डूबने के बाद धीरे-धीरे अंधेरे को घिरता देखकर उसे लगता था कि यह अंधेरा ही जीवन की सचाई है, उजाला भ्रम है। मनुष्य अपना सारा जीवन उजाले को पकड़ने, उसे सहेजने में लगा देता है लेकिन उसकी सारी कोशिशों का अंत होता है, अंधेरे में। अंधेरा सब कुछ लील

लेता है। उसके आगे किसी का बश नहीं चलता। जिंदगी के इस बेतुकेपन को आदमी कैसे सहता है, कैसे बर्दाश्त करता है?

अमर की मृत्यु के बाद मुरली के मन में इस तरह के सवाल बार-बार उठने लगे थे। आदमी कुछ लक्ष्यों के लिए सारा जीवन क्यों होम देता है जबकि वह जानता है कि उसका लक्ष्य उसे मिलेगा नहीं। क्या लक्ष्यों की खोज में प्रवृत्त होना एक पागलपन है? क्या लक्ष्यहीन जीवन अपने में पूर्ण नहीं है? ऐसा जीवन जो स्थितियों के साथ समरस होता हुआ शांत, निर्द्वंद्व गति से आगे बढ़ता रहे। मन जिसमें रमे, वहां सब कुछ भूल कर रम गए। मन को जो अच्छा न लगे वहां से दूर रहे। हवा जिस तरफ ले जाए, चले गए। लहर जहां बहा ले जाए, बह गए।

मंध खड्ड के पास पहुँच कर मुरली ने अपनी मोटर साइकिल को खड्ड की तरफ मोड़ा। हालांकि उस जगह अब पुल बन गया था, मुरली को पुराने कंकरीले पाट से खड्ड को पार करना अच्छा लगता था। वहां बहाव एक फुट से ज्यादा गहरा नहीं होता था। लेकिन बहाव काफी तेज होता था और उसे चीरते हुए मोटर साइकिल को पार ले जाना, उसे बहुत अच्छा लगता था। इसके अतिरिक्त खड्ड पार करने के बाद एक सफेद धुली हुई चट्टान पर बैठकर नदी की सनसनाहट को सुनने में भी उसे बड़ी सांत्वना मिलती थी। उसे लगता था कि यह नदी भी चिर व्याकुलता को लिये हुए एक लक्ष्यहीन दिशा की ओर बढ़ी चली जा रही है। उसे पता नहीं कि वह किसी लक्ष्य तक पहुँचेगी या नहीं। रास्ते में ही कोई मरुस्थल उसे सोख लेगा या उसे खेत-कारखानों में जोत दिया जाएगा।

मंध का पुल मुरली के प्रयासों से ही बना था। आपातस्थिति के दौरान भूमिगत जीवन उसने एक साधु के रूप में यहां बिताया था। उसके कहने पर दत्तल और पाहड़ा गांवों के लोगों ने चंदा इकट्ठा किया था और फिर सरकार की मदद से पुल का काम शुरू हुआ था। जब साधु के रूप में मुरली एक दिन अचानक लापता हो गया था तो लोगों ने कुछ दिनों तक उसे चमत्कार माना था लेकिन जल्दी ही लोगों को असलियत का पता चल गया था और उसके बाद मुरली के प्रति लोगों का प्रेम बढ़ गया था। स्वयं मुरली को इस जगह से मोह था। कभी जब उसे समय मिलता था तो रात यहीं किसी के घर डेरा डाल देता था। गांव के लोग रात बारह-एक बजे तक उसे घेरे बैठे रहते थे। अक्सर वह शुकरू के घर ही ठहरता था। शुकरू की पत्नी गुमटी के कारण घर साफ-सुथरा रहता था। आंगन के किनारे-किनारे फूलों की क्यारी थी। बिजली हर घर में पहुँच गई थी। घर के अंदर से तार खींचकर बांस की बल्ली से बल्ब लगा दिया जाता था और सारा आंगन बिजली की रोशनी से धुल जाता था। आंगन में दरियां बिछाकर सभा चलती थी और गांव के लोग मुरली की बातें ऐसे सुनते थे जैसे साधु के भेष में पाकर उसे सुना करते थे।

गुमटी के दोनों लड़के शंभु और बीरू अब स्कूल में जाने लगे थे। शुकरू के साथ खेत में हाथ भी बटाते थे। शुकरू ने स्थिति के साथ समझौता कर लिया था और अब वह पुत्र-कामना से गुमटी का ओझों-चेलों से इलाज कराने का इरादा बिल्कुल छोड़ चुका था। परमेसरी चाची, रामसुरे की बहू को उपदेश देते-देते हार चुकी थी। रामसुरे की बहू ने गुमटी से कुछ भी नहीं

सीखा था और वह रहन-सहन के अपने तौर-तरीकों को नहीं बदल सकी थी। रामसुरे का बेटा छंदों पुलिस में भरती हो गया था। उसने घर में रेडियो लगाया था। वह तो टेलीविजन लगाने की बात भी सोच रहा था लेकिन सोचता था कि टेलीविजन आ गया तो गांव के कई लोगों को बिठाने के लिए साफ-सुथरा घर भी तो होना चाहिए। परमेसरी चाची कहती थी कि अब तो यह काम छंदों की शादी के बाद ही होगा। छंदों की शादी परमेसरी किसी ऐसी लड़की से करना चाहती थी जो गुमटी की तरह घर को साफ-सुथरा रख सके।

जब अंधेरा घना हो गया और मुरली को विश्वास हो गया कि अब दत्तल या पाहड़ा गाँव का कोई व्यक्ति उसे सड़क पर नहीं मिलेगा तो उसने अपनी मोटर साईकिल स्टार्ट की। अब खैरा बीस मिनट का रास्ता था। दिवाकर उस दिन प्रेस में नहीं आया था। मुरली उसीका पता करने वहां जा रहा था। दूसरे दिन सुबह ही उसे शिमला जाना था। उससे पहले वह दिवाकर और रूपा से मिलकर कुछ बातों पर विचार-विमर्श करना चाहता था।

लेकिन खैरा पहुँचने पर मुरली ने देखा कि दिवाकर घर पर नहीं है और रूपा दरवाजे के बाहर अकेली उदास बैठी है। मुरली को देखकर वह झटपट उठी और भीतर जाकर कमरे की बत्ती जलाई। मुरली को देखते ही वह फफक पड़ी। हिचकियों में डूबती आवाज में उसने बताया कि दिवाकर मां जी को लेकर, सुबह से पालंपुर के अस्पताल गए हैं। मां जी की तबीयत बहुत खराब है। कल से उन्हें बहुत तकलीफ है। एक बूंद पानी भी मुँह में नहीं डाला। पेशाब बंद हो गया था और वे बहुत तड़प रही थीं।

मुरली रूपा के दुःख को समझ सकता था। सास-बहू के बीच कुछ वर्षों से सगी बहनों का सा रिश्ता बन गया था। लकवे ने पार्वती देवी को जिंदगी से बिल्कुल निराश कर दिया था उस समय रूपा ने उसे जीने का नया उत्साह दिया था। पान के पत्ते की तरह उसने सास को सम्हाला था। लकवे की वजह से अब भी वह चलने-फिरने से लाचार थी। लेकिन वह धीरे-धीरे लाठी का सहारा लिये टट्टी-पेशाब करने जा सकती थी। पहियों वाली कुर्सी पर बैठकर वह आंगन मे टहल सकती थी। कभी-कभी मंदिर भी हो आती थी। बहू रूपा पर वह अब पूरी तरह निर्भर नहीं थी। अपना छोटा-मोटा काम वह खुद कर लेती थी। कभी-कभी बहू के काम में हाथ बटाने भी लग जाती थी। रूपा कुछ दिन तो उसे काम करने के लिए मना करती रही। फिर उसने देखा कि काम करने में सास को सुख मिलता है तो वह खुद ही छोटे-मोटे कामों के लिएं सास की मिन्नत करने लगी। चूल्हे के पास बैठ कर खाना बनाने का काम अब अक्सर सास ही करती थी। घर के अंदर की झाड़-बुहार का काम भी रूपा ने सास पर छोड़ दिया था। लेकिन वह इस बात का ध्यान रखती थी कि सास को ज्यादा थकान न हो। जो काम सास को सुख दे उसके लिए रूपा उसे प्रोत्साहित करती थी। बाहर का सारा काम रूपा खुद करती थी। टिकली-बिंदली की देखभाल के लिए एक गवाला रख लिया था लेकिन जब तक रूपा खुद उनके चारे-पानी की सारी व्यवस्था नहीं देख लेती, उसे चैन नहीं मिलता था। टिकली अब बूढ़ी हो गई थी। वह अब बहुत थोड़ा दूध देती थी लेकिन बिंदली सुंदर, नखरैल थोर बन गई थी। रूपा के लिए टिकली-बिंदली

परिवार की सदस्य थीं। टिकली का उसे बहुत ज्यादा ध्यान रखना पड़ता था। एक बार गड्ढे में फँस जाने के कारण उसकी टांग की हड्डी टूट गई थी। रूपा ने अलसी-तेल की पट्टी बांधकर कई दिनों में उसे ठीक किया था। टिकली ने बिंदली के बाद एक और कटिया दी थी। उसका नाम रूपा ने चिंदली रखा था। इसे रमा अपनी सहेली नीलू के लिए मांग कर ले गई थी। बिंदली ने कुछ दिन पहले ही एक नन्हीं कटिंया को जन्म दिया था। रूपा ने इसका नाम पारो रखा था।

दिवाकर अस्पताल से अकेला ही लौटा। रूपा को परेशान देखकर उसने आते ही सारी बात समझाई। अम्मां को दो-तीन दिन तक अस्पताल में रहना पड़ेगा। डाक्टर कहते हैं कि गुर्दे के टेस्ट करने पड़ेंगे। पथरी की शिकायत लगती है। लेकिन घबराने की कोई बात नहीं है। वैसे अम्मां की तबीयत अब ठीक है। शाम को थोड़ा खाना भी उन्होंने खाया। रूपा को थोड़ी तसल्ली हुई। वह खाना बनाने लगी। दिवाकर और मुरली आंगन में टहलने लगे। कुछ देर की चुप्पी के बाद दिवाकर बोला—

"डाक्टर कहते हैं, अम्मां को चंडीगढ़ ले जाना पड़ेगा। डायलिसिस के लिए

"कब ले जाने को कह रहे हैं?"

"जितनी जल्दी हो सके। मेरा विचार है कल ही चले चलें तो ठीक रहेगा।"

"रूपा को सारी बात बता देनी चाहिए।"

"मैंने सोचा, अभी घबरा जाएगी। खाना खाने के बाद बता देंगे।"

"क्या हालत ज्यादा खराब है?"

"जल्दी कुछ नहीं हुआ तो बचना मुश्किल है।"

"तो फिर सुबह ही चलना चाहिए। टैक्सी तो पालंपुर में मिल जाएगी न ......"

"बस में ठीक नहीं रहेगा?"

"बस तो अपना वक्त लेगी ...... मुझे कल सुबह शिमला जाना था लेकिन उन्हें फोन कर दूंगा।"

"नहीं-नहीं तुम शिमला जाओ। मां के साथ दो आदमियों की क्या जरूरत ......"

"जरूरत होगी। शिमला जाना बहुत जरूरी भी नहीं है। मुख्यमंत्री और पंचायत मंत्री ने नये प्रधानों से मिलने के लिए मीटिंग बुलाई है।"

"सुना है आज तुम जिला पंचायत के प्रधान बने हो?"

"हाँ ......"

"अब पूरे कांग्रेसी बनने में क्या देर है?"

"पूरे कांग्रेसी तो तब बनेंगे जब कोई मंत्री-फंत्री या किसी कार्पोरेशन के चेयरमैन बनेंगे और दस-बीस करोड़ रुपये की रकम बटोर लेंगे।"

"रास्ते पर चल पड़े हो, मंजिल कभी न कभी मिल ही जाएगी।"

मुरली धीरे से हँस पड़ा। रमा की तरह दिवाकर भी मुरली को गलत रास्ते पर चलने से सावधान करता रहता था। लेकिन मुरली के मन की बात को दोनों नहीं समझ पाते थे।

"आदमी की मंजिल के बारे में कौन क्या कह सकता है?" मुरली बोला।

रूपा ने भीतर से आवाज लगाई 'खाना तैयार है।' दोनों चुपचाप अंदर गए और खाना खाने लगे। दिवाकर ने खाना खाते-खाते बात शुरू की—

"अम्मां को चंडीगढ़ ले जाना पड़ेगा। गुर्दे के टेस्ट वहीं हो सकते हैं?" रूपा भी उनके चेहरों को देखकर समझ गई थी कि दिवाकर ने उसे सब कुछ नहीं बताया। वह बोली, "साफ-साफ क्यों नहीं बताते? क्या बात है?"

"गुर्दे की तकलीफ है। पालंपुर के अस्पताल में टेस्ट नहीं होंगे।" दिवाकर बोला।

"नहीं, आप झूठ बोल रहे हैं... बोलो, क्या मां जी की तबीयत बहुत खराब है?"

"बहुत खराब नहीं है लेकिन टेस्ट तो कराने ही पड़ेंगे...।"

रूपा उठकर बाहर चली गई। दिवाकर को जिस बात का डर था, वही हुआ। रूपा के लिए यह सदमा था। वह उसे बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। थोड़ी देर बार रूपा पल्लू से आंखें मलते हुए वापस आई।

"रमा दीदी को खबर देनी चाहिए...।" रूपा ने कुछ देर बाद सुझाव दिया।

"उसके लिए वक्त नहीं है। पहले अम्मां को चंडीगढ़ ले जाना होगा।"

दिवाकर चाहता था कि रमा को फिलहाल इसकी सूचना न मिले। वैसे रमा के बारे में मुरली और दिवाकर दोनों ही जानते थे कि उसमें कठिन से कठिन आघात को सहने की क्षमता है। अमर की मृत्यु के तुरंत बाद रमा को अपनी सास लक्ष्मी देवी के स्वर्गवास का सदमा सहना पड़ा था। लेकिन उसने अद्भुत साहस के साथ उन सारी स्थितियों को झेला था। दुधमुँही बच्ची किरण को गोद में लिये वह सिलाई-बुनाई के केंद्रों का निरीक्षण करती और साक्षरता केन्द्रों में लड़कियों को पढ़ाती। विधान सभा के सत्रों में भाग लेने के लिए उसे शिमला जाना पड़ता। किरण उसके साथ ही जाती। विधायक निवास में बच्ची की देखभाल के लिए एक आया की व्यवस्था करनी पड़ती थी। वैसे आसपास की कई महिलाएं दिनभर उसके घर पर रहती थीं। किसी न किसी संस्था का काम चलता रहता। महिलाओं के लिए एक मासिक पत्रिका भी निकलने लगी थी। इसी व्यस्तता में उसने निर्दलीय सदस्य के रूप में विधानसभा का दोबारा चुनाव लड़ा था और जीती थी। पति की मृत्यु के बाद धर्म-कर्म, व्रत-उपवास करके विधवा का परंपरागत जीवन बिताने के बजाय वह कर्म के क्षेत्र में पूरी शक्ति से जुट गई थी। इस बात पर संभ्रांत परिवारों में उसपर छींटाकशी भी होती थी लेकिन वह इन सब बातों की परवाह किए बिना अपने रास्ते पर चली जा रही थी।

लेकिन दिवाकर मां की बीमारी की सूचना देकर उसके काम में व्यवधान नहीं डालना चाहता था। उसका विचार था कि फिलहाल इसकी आवश्यकता नहीं है।

दूसरे दिन सुबह मुरली और दिवाकर पालंपुर के लिए चल दिए। रूपा का दिल धड़क रहा था। उसे लग रहा था कि अब सास का मुँह नहीं देख पाएगी। उसने पालंपुर तक जाने की जिद की। बड़ी मुश्किल से समझा-बुझा कर उसे रोका गया। मुरली और दिवाकर के जाने के बाद

उसका किसी काम में जी नहीं लगा। वह बड़ी देर तक टिकली-बिंदली के पास बैठी रही और रोती रही। दोपहर होने को आई तो वह उठी और घर की झाड़-बुहार करने लगी। खाना बनाने का उसका मन नहीं था, भूख भी नहीं थी। तभी उसने देखा कि मुरली की मोटर साईकिल आ रही है। उत्सुकतावश वह उसकी तरफ दौड़ी। मुरली मोटर साईकिल से उतर पड़ा।

"क्या हुआ ?" रूपा ने पूछा।

"मां जी तो अपनी जिद्द पर अड़ गईं। वह किसी भी हालत में चंडीगढ़ के अस्पताल में जाने को तैयार नहीं हुई।"

"फिर...... ?"

"दिवाकर उन्हें टैक्सी में ला रहा है।"

रूपा को न जाने क्यों मुरली की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। उसे लग रहा था कि कुछ और बात है। शायद अस्पताल के डाक्टर सारी उम्मीद छोड़ चुके थे, या ..।" सोचते-सोचते उसका गला रुंध गया। मुरली को वहीं आंगन में छोड़कर वह सड़क की तरफ भागी। कुछ दूर जाने पर ही उसे वे लोग आते दिखाई दिए। दिवाकर मां को पीठ पर उठाकर चला आ रहा था। रूपा दौड़कर दिवाकर के पास पहुँची। दिवाकर ने इशारे से चुप रहने को कहा। न चाहने पर भी रूपा के मुँह से दबी सी चीख निकल गई। दिवाकर बोला–"अरी रो क्यों रही हो ? अम्मा ठीक-ठाक है। नींद का इंजेक्शन दिया है।"

घर आकर मां जी को बिस्तर पर लिटा दिया गया। रूपा ने देखा उसका चेहरा सफेद पड़ गया है। मौत की छाया चेहरे पर दिखाई दे रही थी। रूपा पास खड़ी रोए जा रही थी। दिवाकर ने उसे समझाया– "देखो, ऐसे काम नहीं चलेगा। हिम्मत से काम लो। चलो उठकर चाय बनाओ। भूख भी लग रही है। मां की नींद घंटे-डेढ़ घंटे में टूटेगी। उसे दूध देना है। संतरे भी लाया हूं।"

रूपा अनमने भाव से काम में लग गई। उसने खाना बनाया। मुरली और दिवाकर को पास बैठकर खिलाया। खुद भी दो-तीन ग्रास निगले। बरतन-भांडे साफ करने के बाद वह टिकली-बिंदली के पास गई। सुबह से वे अपनी जगह पर बंधी थीं। वह चाहती थी कि टिकली-बिंदली को नदी के किनारे तक घुमा-फिरा लाए लेकिन मन घर के अंदर टंगा हुआ था जहां मां जी नीद में बेहोश पड़ी थीं। साहस करके उसने टिकली-बिंदली के गले की रस्सियां खोलीं और उन्हें नदी की तरफ हांक ले चली। रास्ते भर उसके सामने रह-रहकर सास का चेहरा घूमता हुआ दिखाई देता रहा। कितनी कमजोर, कितनी लाचार हो गई हैं वह। कई सालों से वह रूपा के लिए ऐसा बोझ बनी हुई थीं लेकिन रूपा को लगता था सास का अपाहिज शरीर भी उसके जीवन का एक हिस्सा था और अगर वह नहीं रही तो जिंदगी कितनी खाली-खाली हो जाएगी। रूपा सास के अत्याचारों को जब वह उसे अपने पति और पुत्र से मिलने नहीं देती थी, बिल्कुल भूल गई थी। उसे तो अब यही याद था कि किस तरह सास ने बाद में उस को अपना प्यार दिया था, बेटी की तरह का प्यार।

टिकली-बिंदली नदी में थोड़ी देर नहाने के बाद किनारे आ गई थीं और हरी घास चरने लगी थीं। रूपा नदी के किनारे बैठ कर विचारों में खोई हुई थी। अचानक किसी ने उसे पुकारा। घूम कर देखा, थोड़ी दूर मुरली था। "क्या बात है?" रूपा ने घबरा कर पूछा।

"खास बात नहीं ..." मुरली बोला, "माँ जाग गई हैं। तुम्हें बुला रही हैं।"

"सब ठीक-ठाक तो है न ...?" रूपा ने फिर सशंकित होकर पूछा।

"हाँ—हाँ कोई ऐसी वैसी बात नहीं है लेकिन घर चलो।"

रूपा ने हाथ में पकड़ी टहनी से टिकली-बिंदली को घर चलने के लिए कहा और दोनों घर की ओर चल दीं। मुरली बोला—"तुम चलो, मैं इन्हें धीरे-धीरे ले आता हूँ।"

रूपा घर पहुँची तो दिवाकर माँ के बिस्तरे के पास बैठा था। रूपा भी चुपचाप पैताने जा कर बैठ गई।

"तुम आ गईं बेटी ...?" पार्वती ने रूपा की तरफ देखकर कहा।

रूपा उठकर सास के करीब आ गई। सास ने उसका हाथ अपने हाथ में लिया और थकी हुई आवाज में बोली—

"बेटी मुझे माफ करना, मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिए हैं ..."

रूपा फफक कर सास के गले लिपट गई। उस के सिर पर धीरे-धीरे हाथ फेरकर पार्वती देवी बोली—

"रो मत, तुम्हारे रोने से मेरा दिल कमजोर होता है। अरी, तुमने तो मुझे जीने का साहस दिया। जब मैं जिंदगी में बिल्कुल ऊब गई थी तो तुमने नई उमंग दी। मिट्टी के लौंदे की तरह मैं पड़ी रहती थी, हिलने-डुलने की सामर्थ नहीं थी, तब तुमने मुझे जीने की ललक दी। हँसने-बोलने लगी, नाराज होने भी लगी। गुस्सा भी करने लगी। किसी के लिए मन में ममता होती है तभी तो यह सब करने का मन होता है। याद कर कितने साल बिताए मैंने उस हालत में। कोई कर सकता है? तुम न होतीं तो क्या मैं जी पाती इतने दिन? अब क्या है? एक दिन सभी को जाना है। हमेशा कौन यहाँ बैठा रहता है? ..."

उसके होंठ सूखने लगे। उसने दिवाकर की तरफ देखकर पानी मांगा। रूपा ने कटोरी में पानी डाला और चम्मच से पिलाने लगी तो पार्वती देवी ने उसे रोक दिया—

"अलमारी के अंदर गंगाजल की बोतल रखी है। उसमें से ले आ पानी।"

रूपा ने चुनरी का पल्ला मुँह में ठूंसकर अपनी हिचकियों को रोका। दौड़कर गंगा जल कटोरी में भर लाई। दो-तीन घूंट पीने के बाद पार्वती देवी बोली—

"यह सब बेकार की बातें हैं। क्या होता है गंगाजल से? लेकिन पुरानी लीक चली आ रही है, आने दो। असली गंगाजल तो मैंने तेरे हाथ से कई साल पिया है। मुझे पापों से मुक्ति तो उसी गंगाजल से मिलेगी। अब तो मुझे किसी क्रिया-कर्म की जरूरत नहीं है।" दिवाकर की तरफ देखकर वह थोड़ी देर चुप रही, फिर बोली—"हरिद्वार जाने की जरूरत नहीं होगी। पिंडदान की भी नहीं। मुझे सब कुछ यहीं मिल गया है। एक बार रवि को देख लेती तो अच्छा होता।"

मुरली टिकली-बिंदली को खूंटे से बांध कर अदर आ गया था। दिवाकर मुरली की तरफ देखकर बोला–

"माँ, रवि को देखना चाहती है।"

"मैं ले आऊँ उसे......?" मुरली ने पूछा।

"मैं गया था, स्कूल के बोर्डिंग हाऊस में। दो-दिन बाद उनकी छुट्टियाँ पड़ने वाली हैं। मैंने इसीलिए उसे मना कर दिया था।"

"मैं एक घंटे में उसे लेकर आ जाऊँगा।"

लेकिन पार्वती देवी ने मना किया, बोली–

"नहीं, उसे लाने की जरूरत नहीं।" फिर रूपा का हाथ खींचकर बोली–

"तुम बैठो...... और जरा मुझे सहारा दो। मैं उठकर बैठना चाहती हूँ।"

रूपा ने हाथ का सहारा देकर उसे उठाया। पीठ के पीछे दो गद्दे रखकर सास को बिठाया और एक बाँह से उसके कंधे को सहारा देकर बैठ गई। कुछ देर सुस्ताने के बाद पार्वती देवी बोली–

"औरत की जान बड़ी कठोर होती है, जोंक की तरह। आसानी से नहीं निकलती। दुनिया में जितने कष्ट औरतों को झेलने पड़ते हैं न उतने मर्दों को झेलने पड़ें तो दो-चार दिन काटना भी मुश्किल हो जाएं। रमा को क्या-क्या नहीं झेलना पड़ रहा है......"

मुरली की तरफ देखकर बोली–

"कैसी है रमा? मिले थे तुम?"

मुरली ने बताया कि वह कुछ दिन पहले गदियारी गया था और रमा ठीक-ठाक है।

"और किरण......?"

"किरण अब नर्सरी स्कूल जाने लगी है......।"

"नटखट है...... बहुत बातें करती हैं न......।"

"नानी को बहुत याद करती है।" मुरली ने बताया।

पार्वती देवी के चेहरे पर फीकी सी मुस्कराहट दिखाई दी। फिर चेहरे पर असहय पीड़ा की रेखाएं उभरीं। उसने हाथ से पीठ के पीछे रखे तकिए को हटाने की कोशिश की। दिवाकर ने पीठ के पीछे से गद्दे हटाए और पार्वती देवी ने धीरे-धीरे रूपा की गोद में सिर टिका दिया। उसने आँखें मूंद लीं। कुछ देर बाद जैसे नींद में ही उसने कुछ बड़बड़ाने की कोशिश की लेकिन गले की घरघराहट के सिवा कुछ समझ में नहीं आया। फिर सारा जोर लगाकर जैसे उसने चीखने के कोशिश की और फिर हमेशा के लिए शांत हो गई।

सांतो 'अमर संदेश' की प्रति देने रमा के घर गई तो देखा वहां महिलाओं की मीटिंग चल

रही है। कमरे में रति, मंगला, किरनी और सुरमा के साथ-साथ मुरली की भाभी नीलू तथा रघु, भिक्खू और गरीबू की नई-नवेली दुल्हनों को देख सांतो दरवाजे के बाहर ही ठिठक गई। रमा की नजर उस पर पड़ी तो वह फौरन उठकर बाहर आई और उसका हाथ पकड़ कर अंदर ले गई। मीटिंग लगभग खत्म हो गई थी, बस चाय का दौर शुरू होने वाला था। एक थाली में नौ गिलास रखे थे। उन्हीं में से सांतो के लिए दसवां गिलास तैयार किया गया। सांतो ने संकोच से कहा–"लगता है मैं गलत वक्त पर आ गई ... आप लोगों की मीटिंग चल रही थी ..."

रमा ने चाय का गिलास उसके हाथ में थमाते हुए कहा–

"इसमें कोई शक नहीं कि गलत वक्त पर आई हो। आज हमसे बच कर नहीं जा पाओगी।"

"मैं तो अखबार देने आई थी ..."

"और यहां मुसीबत में फँस जाओगी क्यों?"

"मैं फसूँ तो कोई बात नहीं, लेकिन आप सब के लिए मुसीवत मैं नहीं बनना चाहती।"

"यह तो हम तय करेंगी", रमा बोली "कि तुम हमारे गले की मुसीबत बनोगी या गले का हार। पहले यह बताओ कि अखबार का काम क्यों छोड़ दिया?"

"बस यूँ ही ..."

"यूँ ही तो कोई काम नहीं किया जाता। कुछ सोच कर ही किया जाता है। क्या मुरली से झगड़ा हो गया?"

"नहीं, झगड़ा क्यों होगा?"

"क्यों नहीं हो सकता झगड़ा? मुरली तुम्हारा बॉस है। वह बड़ा नेता बन गया है। दिमाग खराब होने में क्या देर लगती है?"

"ऐसी कोई बात नहीं है।" सांतो रमा से नजरे नहीं मिला पा रही थी।

"तो फिर काम छोड़ने की क्या वज़ह है? बुरा तो नही था काम। दूसरे के खेतों में दिन भर काम करने के बाद तुम्हें क्या मिलता है? तुमने उस वक्त प्रेस में काम शुरू किया जब आमदनी नहीं के बराबर थी। अब जब अखबार चलने लगा, अच्छी आमदनी होने लगी तो तुमने काम छोड़ दिया। क्या मुरली पैसे देने में आनाकानी करता है?"

"नहीं दीदी, यह बात भी नहीं है। आप तो जानती है उन्हें पैसे से बिल्कल लगाव नहीं। जितना पैसा आता है उतना काम करने वालों में बंट जाता है या प्रेस में लग जाता है। सबकी तनख्वाहें बढ़ा दी हैं उन्होंने ..."

सांतो जो कुछ कह रही थी, उसमें किसी को भी शक शुबह नहीं हो सकता था। "अमर संदेश" की सफलता ने कई घरों को संवार दिया था। रघु, भिक्खू और गरीबू जिन्हें सारे गाँव वालों ने एक समय निखट्टू घोषित कर दिया था, अब गाँव में बहुत सम्मान वाले व्यक्ति माने जाते थे। अच्छे रोजगार ने उनके मन में आत्मविश्वास भर दिया था और उनकी शादी के लिए कई घरों से रिश्ते आने लगे थे। मुरली और रमा की सलाह से तीनों की शादी एक ही दिन बड़े

सीधे-सादे समारोह के साथ हुई थी। बरात घोड़ी, डोली, बैंड-बाजा इन सारे तामझामों से मुक्त एक ही मंडप में सादे ढंग से शादी हुई थी और फिर सारे गाँव वालों को प्रीतिभोज दिया गया था। चूंकि जात-पाँत के भेद के बिना सब लोगों को इस प्रीतिभोज में बुलाया गया था, कुछ कट्टर सनातनी विचारों के लोग इसमें शामिल नहीं हुए थे। लेकिन किसी ने विरोध भी नहीं किया था। जनता सरकार के मुख्यमंत्री सहित चार मंत्री और कई अफसर भी इस शादी में शरीक हुए थे। समचारपत्रों में मुख्यमंत्री के साथ तीनों जोड़ों के चित्र भी छपे थे।

नीलू, सांतों और रमा के बीच चल रहे वार्तालाप को चुपचाप सुन रही थी। सांतों की अंतिम बात पर वह बोली—

"इस मामले में हमारे ललाजी पर (वह मुरली देवर को लला कह कर ही बुलाती थी) कोई अंगुली नहीं उठा सकता। सांतो जो कुछ कह रही है उसके तीन सबूत तो मेरी बगल में हैं।" और उसने रघु की दुल्हन रेवती, भिक्खू की दुलहन माया तथा गरीबू की दुल्हन सरस्वती को औरतों के बीच आगे धकेल दिया। कमरे में सब के जोर-जोर से हँसने की गूँज उठी। तभी दरवाजे पर मुकुल खड़ा दिखाई दिया। उसने किरण को कंधे पर उठा रखा था। उसने बाहर से आवाज लगाई—

"चाची किरण सो गई है। इसे कहाँ सुलाऊँ?"

जब कमरे में महिलाओं की मीटिंग शुरू हुई थी तो रमा ने किरण को नीलू के घर मुकुल से खेलने के लिए भेज दिया था। मुकुल अब हाई स्कूल में जाने लगा था लेकिन किरण को उसे अपना हमजोली मानकर उसके साथ खेलने में मजा आता था। नीलू ने किरण को अपनी गोद में लिया और उसे अंदर के कमरे में सुला आई। फिर खड़े-खड़े रमा से बोली—

"भई मैं तो चलती हूँ। घर में सब काम पड़े होंगे।"

रमा ने कहा—

"क्यों हम सबको बुद्धू बना रही हो।"

"बुद्धू बना रही हूँ?" नीलू के मुँह से निकला और उसके साथ ही एक जोर का ठहाका कमरे में गूंज उठा। नीलू को अपनी गलती का अहसास हुआ। अनजाने में उसके मुँह से पति का नाम निकल गया था। बुद्धू और बुधीसिंह में ज्यादा फर्क नहीं था और इसीलिए कमरे में बैठी सारी महिलाएं खिलखिलाकर हँस दी थीं। केवल रमा चुप थी। जब रमा की समझ में उनके हँसने का कारण आया तो वह बोली—

"अरे पति क्या शैतान होता है जो उसका नाम नही लेना चाहिए?"

सारी औरतें चुप रहीं फिर रति बोली—

"लेकिन दीदी, यह लीक तो चली आ रही है।"

"कोई लीक चली आ रही है क्या इसीलिए वह अच्छी हो जाती है?"

सुरमा बोली—

"मैं जब नई-नई घर आई थी और उन्हें (अपने पति को) नाम लेकर ही बुलाती थी। यहां आकर पता चला कि नाम लेकर नहीं बुलाना चाहिए।"

"यहां भी सबमें यह रिवाज नहीं था। यह रिवाज ऊँचे घरों में था जहाँ औरतें काम-काज के लिए बाहर नहीं निकलती थीं। वो मरदों की गुलाम होती थीं। मरद उन्हें पैरों की जूती समझते थे और वो मरदों को परमेश्वर मानती थीं। मरद-औरत के बीच यह रिश्ता ऊँचे घरों में ही था। लेकिन जहां औरतों को खुद कमाना पड़ता था, जहाँ औरतें अपने पैरों पर खड़ा होती थीं वहाँ मरद-औरत के बीच बराबरी का संबंध होता था। न औरत मरद के चरणों की दासी थी, और न मरद औरत का परमेश्वर। सही रिवाज तो यह होना चाहिए कि मरद और औरत एक दूसरे को बराबर का दोस्त समझें। हमने अच्छे रिवाज को तो छोड़ दिया और औरत की गुलामी की याद दिलाने वाले रिवाज को पकड़ लिया।

"हम लोगों को क्या पता कि क्या चीज अच्छी और क्या बुरी है? हमने कहाँ वेद-शास्तर पढ़े हैं। भले मानसों की देखा-देखी हम भी चलने लगती हैं।"

डूमनूँ की बहू किरनी की इस बात पर रमा हँस पड़ी–

"मैं भी तो यही कह रही हूँ कि हम-दूसरों की देखा-देखी चलने लगते हैं। कभी यह नहीं सोचते कि जो काम हम कर रहे हैं उसकी तुक क्या है? रही भले मानसो की बात तो भई उनमें तो बहुत सा कूड़ा भी जमा हो गया है, तो क्या उस कूड़े को अच्छा मान लेना चाहिए? और ये भले मानस, ये बुरे मानस, ये अंदर के और ये बाहर के, ये भेदभाव भी तो इन्हीं भलेमानसों के किए हुए हैं। आज कौन इन्हें मान सकता है? सदियों की गुलामी ने हमारे समाज में ये बुराइयाँ भरीं कि एक आदमी जन्म लेते ही भलामानस बन जाता है और दूसरा आदमी जन्म के साथ ही बाहर का। हम आज इन सारी पुरानी मान्यताओं के खिलाफ लड़ना चाहते हैं। हम नये सिरे से इस समाज को गढ़ना चाहते हैं जिसमे सब को बराबर के अधिकार हों, सब को बराबर सम्मान मिले। इन पुरानी लीकों को नहीं तोड़ेंगे तो कैसे नया समाज बनेगा?"

उम्दू की बहू मंगला बोली–

"हम इन बातों को क्या समझेंगी दीदी। हम तो इतना जानती हैं कि आप हमें जैसा करने को कहेंगी हम वैसा ही करने की कोशिश करेंगी। रति आपकी सहेली है, कगन बहन है। रति ने हमारी बिरादरी में व्रत-पूजा शुरू की। हम सब भी उसके कहने से व्रत-पूजा करने लगीं। उसने सत्तनारायन की कथा कराई थी, अब हम भी कराने लगी हैं..."

रमा ने बीच में कहा–

"मैं व्रत-पूजा के लिए मना नहीं करती। रति को भी मैंने कभी किसी काम के लिए मना नहीं किया। मैं भी कभी-कभी व्रत-पूजा कर लिया करती थी जब मांजी थीं। उनका मन रखने के लिए मुझे सब करना पड़ता था। लेकिन मेरे कहने का मतलब है कि हम जो भी काम करें उसका मतलब तो हमें समझना चाहिए। पति के लिए व्रत करने से क्या होता है? औरत पति के काम में हाथ बटाए, उसके सुख-दुःख में साझा करे, घर को ठीक ढंग से चलाए, पति की और बच्चों की ठीक तरह से देखभाल करे यह अच्छा है कि व्रत-पूजा करके मान ले कि मेरा काम पूरा हो गया, यह अच्छा है। पति के साथ इस जीवन को अच्छी तरह निभा लें यह अच्छा कि अगले

जीवन के लिए इस जीवन को नर्क बना लें यह अच्छा ? और अगला जीवन है क्या? एक ख्याल ही तो है । किसने देखा है अगला जीवन ?"

रति अभी तक चुपचाप सारी बातचीत सुन रही थी । रमा की बातें सुनने में वह कभी नहीं अघाती थी । कई बार उसकी बातें रति की समझ से बाहर होती थीं, फिर भी वह बिना सवाल किए सुनती रहती थी । बाद में उनपर वह सोचती थी और जो सवाल मन में उठते थे उनकी चर्चा ठीक मौका देखकर करती थी । रमा के जीवन में पति की मृत्यु के बाद उसने काफी बदलाव देखा था । ऊंचे घरों की विधवाओं का रहन-सहन रमा ने नहीं अपनाया था । रति ने इस बारे में लोगों की कानाफूसी सुनी थी । लेकिन रति को रमा दीदी पर अटूट विश्वास था । जब कभी बूढ़ी औरतें रमा के बारे में अंट-शंट बोलने लगती थीं, रति चुपचाप उठकर वहां से चल देती थी । अब डरते-डरते उसने पूछा—

"दीदी, हम जानती हैं आप जो भी कह रही हैं, वह सब की भलाई के लिए हैं । लेकिन लोग अभी इन बातों को समझते नहीं । वो आपके बारे में भी तरह-तरह की बातें करते हैं, तो हमें बहुत बुरा लगता है ।"

"लोगों की जबान को कौन बंद कर सकता है रति । लोग तो मेरे पति के बारे में भी न जाने क्या-क्या कहते थे? लेकिन वे कुछ उसूलों को लेकर चल रहे थे । दूसरों के कहने की उन्होंने परवाह नहीं की । उसूलों के लिए उन्होंने अपनी जान दे दी । उन्होंने हमारे ऊपर कुछ जिम्मेदारियाँ डाली हैं । मेरे ऊपर तो हैं ही, तुम सबके ऊपर भी हैं । उन्होंने जिस सपने की रचना की थी उसे हमें पूरा करना है । एक अच्छे समाज का सपना । क्या वह व्रत-पूजा करने से पूरा होगा । उसके लिए तो रात-दिन मेहनत करनी पड़ेगी, दौड़-भाग करनी पड़ेगी, लड़ाई लड़नी पड़ेगी । समाज की रूढ़ियों से, रीति-रिवाजों से । बदनामी भी झेलनी पड़ेगी । जब उन्होंने बदनामी की कभी परवाह नहीं की तो मैं क्यों करूँ? लोग तो यह चाहते हैं कि मैं उपवास, तीर्थ करके उनकी याद में जीवन बिताऊँ । लेकिन मैं तो यही ठीक समझती हूँ कि उन्होंने जो काम शुरू किया था उसे आगे बढ़ाऊँ । इसके लिए लोग मेरे बारे में तरह-तरह की बातें करते हैं तो मैं उनकी चिंता क्यों करूँ? तुम करोगी तो तुम्हारी भी नहीं करूँगी ।"

किरनी बोली—

"नहीं दीदी, हमारे लिए तो आप देवी हैं…"

"देवी, देवी मत कहो । आदमी को देवी-देवता मत बनाओ । मुझे सहेली मानती रहो इसी में मुझे खुशी होगी । और देखो, मैं कभी तुमपर किसी बात के लिए जोर नहीं डालूँगी । मेरी बातों को चुपचाप मान लो यह भी नहीं चाहती । खुद सोचने की आदत डालो । मेरी कई बातों पर तुम चल भी नहीं सकतीं । लेकिन इतना याद रखो कि औरत की जिंदगी रोने-झींकने के लिए नहीं है । काम करने के लिए है… खैर, छोड़ो इन बातों को । बहुत देर हो गई आज ।"

रमा के साथ सब उठ गईं । नीलू मुकुल का हाथ पकड़ कर जाने लगी तो रमा ने पूछा, "तुम्हारे देवर साहब को तो घर आने की फुर्सत ही नहीं है आजकल । कभी कान खींच दिया करो ।"

नीलू हँस कर बोली—

"उनके कान या तो आप खींच सकती है या उनकी घरवाली जो कभी आएगी नहीं।"

"कुछ कोशिश करो तभी तो आएगी···?"

"माने भी तो······ नाम से बिदकता है जैसे खटमल ने काटा हो।"

"सभी लड़के ऐसा ही करते हैं। यह भी आजकल के लड़कों में एक फैशन है। कोई लड़की तो तलाश करो।"

"हमने कोई लड़की देख ली और उसने मना कर दिया तो···?"

"उसने खुद ही ढूंढ़ रखी होगी, कभी पूछो तो सही।"

"आप ही पूछना···।"

सांतो को रमा ने रोक लिया था। सबके चले जाने के बाद उसने "अमर संदेश" की प्रति खोलकर देखी। सरसरी नजर डालकर उसे एक किनारे रख दिया, फिर सांतों से पूछा— "कहाँ मिले थे नेता जी···?"

"मैं खेत से लौट रही थी तो मोटर साइकिल पर भड़भड़ाते हुए आए और एक मिनट में चल दिए।"

"तुमने पूछा नही कहां जाना है?"

"नहीं···?"

"किस बात पर हो गई तुम्हारी अनबन? मेरी समझ में नहीं आता।"

"कोई अनबन नहीं है दीदी।"

"तो फिर काम क्यों छोड़ दिया?"

"बस, ऐसे ही मन किया।"

रमा कुछ देर तक चुप सातो के चेहरे को देखती रही फिर बोली—"देखो, जहा तक मुझे पता है, मुरली तुम्हें प्यार करता है। तुम जानती हो इस बात को···?"

सांतो चुप रही।

"कभी उसने तुमसे इस तरह की बात की?"

"एक दिन की थी···"

"क्या कहा था?"

"यही कि वह मुझसे शादी करना चाहता है।"

"तो फिर तुमने क्या कहा?"

"यह कैसे हो सकता है दीदी। वो बेसिर-पैर की बातें करते हैं।"

"इसमें बेसिर-पैर की बात क्या हुई? वह तुम्हें प्यार करता है। तुमसे शादी करना चाहता है···"

"लेकिन दीदी जो काम हो नहीं सकता उसकी···"

"क्यों नहीं हो सकता?"

"मैं क्या उनके साथ शादी करने लायक हूँ?"

"क्या तुम बूढ़ी हो गई हो?"

"दीदी, जवान भी तो अब कहाँ हूँ...... और फिर जात-बिरादरी की बात है। कौन मानेगा इस बात को?"

"जात-बिरादरी की बात छोड़ो। मुरली कोई बच्चा नहीं है। वह खुद अपने लिए जिंदगी के फैसले कर सकता है। उसने सारी बातें सोच कर ही तुमसे बात की होगी।

"लेकिन यह सब कैसे होगा दीदी? आप हमारी बिरादरी को जानती नहीं।"

"तुम्हारी बिरादरी क्या कहेगी? कोई नई बात तो नहीं होगी यह तुम्हारी बिरादरी में। तुम लोगों में विधवा-विवाह तो होता ही है।"

"अब वैसी बात नहीं रही है दीदी।"

"कैसी बात?"

"अब हमारे लोगों में ऊँची जातियों की बातों को बहुत माना जाता है।"

"यह तो उल्टी चाल हुई। ऊँची जातियों में इन बुराइयों को खत्म करने की कोशिश हो रही है और तुम लोग उन्हें अपना रहे हो। तुम्हें पता है कि पढ़े-लिखे समाज में अब विधवा विवाह को बुरा नहीं माना जाता......।"

"लेकिन दीदी, गाँवों में तो ऐसा नहीं होना।"

"गाँवों में भी पढ़े-लिखे इसे बुरा नही मानते। जो लोग जहालत मे हैं वही इसे बुरा कहते हैं।" सांतो कुछ देर चुप रही। जमीन पर नजर गड़ा कर कुछ सोचती रही। रमा बोली—

"क्या सोच रही हो?"

"दीदी, एक बात पूछूँ?"

"पूछो।"

"बुरा तो नहीं मानेंगी आप?"

"मैंने कभी तुम्हारी बात का बुरा माना है?"

"आप क्यों नहीं कर लेतीं दूसरी शादी?"

रमा ने सांतो के चेहरे की तरफ देखा। वह नजरें नहीं मिला रही थी। रमा मुस्करा दी—

"मेरी स्थिति और तुम्हारी स्थिति एक जैसी नही है सांतो। मै तुम से कई साल बड़ी हूँ। अपने पति के साथ मैंने चौदह साल बिताए हैं। विवाहित जीवन के जितने सुख हो सकते हैं वे सब मैंने भोगे। मेरी एक बच्ची है। मेरे ऊपर उसे पढ़ाने-लिखाने की जिम्मेदारी है। मुझे अब शादी करने की जरूरत नही है। शादी मेरे रास्ते में रुकावटें ही डालेगी। बच्ची की जिंदगी बरबाद हो जाएगी। जो काम मैंने अपने हाथ में लिये हैं वो सब अस्त व्यस्त हो जायेंगे।"

"लेकिन दीदी, अकेलापन आपको परेशान करता होगा?"

"अकेलापन कहाँ है, मेरे जीवन में। दिन-रात लोग मेरे आस-पास रहते हैं।"

"लेकिन मरद के बिना......"

"मरद के साथ की जरूरत एक उम्र तक होती है। मैं उस उम्र के करीब पहुँच गई हूँ।

फिर इस झंझट में क्यों फसूँ ? अगर मैं कुछ करने लायक न होती, अगर मैं अपना और अपनी बच्ची का पालन-पोषण खुद न कर सकती तो शायद मुझे भी किसीके साथ शादी कर लेनी पड़ती। लेकिन जब मैं अपने पाँवों पर खड़ी हूँ, अपना बोझ खुद उठा सकती हूँ तो मुझे क्या जरूरत है किसीको साथ बंधने की। औरत जब दूसरों पर मोहताज होती है तभी उसपर हर तरह के दबाव पड़ते हैं। उसे मरद का आश्रय ढूंढना पड़ता है या किसी तरह की गुलामी भोगनी पड़ती है या फिर आत्महत्या करनी पड़ती है।''

''तो दीदी, मुझे आप किसीके साथ बँधने के लिए क्यों कह रही हैं?''

''हर शादी गुलामी या बंधन नहीं होती। जब मरद और औरत दोनों को एक-दूसरे की जरूरत हो तो वह गुलामी नहीं होती, वह साथ मिलकर चलने जैसी बात होगी। आपस में दु:ख सुख को बाँटने की बात होगी। दोनों एक दूसरे को प्यार करें, एक-दूसरे पर निर्भर करें, तभी शादी का मतलब होता है। यह बराबरी का रिश्ता है। मैं जानती हूँ मुरली के मन में तुम्हारे लिए बहुत प्यार और आदर है। लेकिन तुम्हारे मन में मुरली के लिए प्यार नहीं है तो शादी मत करो। और प्यार है तो इन्कार मत करो। उससे अच्छा साथी, तुम्हें और नहीं मिलेगा।''

बड़ी देर तक चुप रहने के बाद सांतो बोली–

''लेकिन शादी के बाद पिछले दिनों की याद बनी रहेगी तो......?''

''याद तो आती रहेगी। उसे कोई जबर्दस्ती मिटा भी कैसे सकता है ? जो बीत गया उसकी याद करना कोई गुनाह नहीं लेकिन इस याद के गुलाम बन जाना, उस याद के लिए जीवन का निरादर करना, उससे भागना बुरा है। देखो, हम किसी संबंधी को कितना ही प्यार करते हों, मरने के बाद हमें उसे भूलना पड़ता है। हम अपने हाथों से उसके शरीर को जला डालते हैं या कब्र में दफना देते हैं। देखने में यह क्रूर काम लगता है। लेकिन यह काम करना पड़ता है। कोई भी उस लाश को घर में संजोकर नहीं रखना चाहता। याद तो आती है लेकिन उस याद में कोई सारे काम नहीं छोड़ देता। जिंदगी का रोड़ा नहीं बनना चाहिए उस याद को। इसका कतई यह मतलब नहीं कि हमारे मन में उस व्यक्ति के प्रति आदर नहीं रहा। हमें सच्चाई से नहीं भागना चाहिए। सच्चाई यह है कि जब हमारा कोई प्रिय व्यक्ति मर जाता है, तो वह हमारी जिंदगी से कट जाता है। हमें इस सच्चाई को स्वीकार करना चाहिए। न स्वीकार करने का मतलब होगा ख्वाबों की दुनिया में, खयाली दुनिया में जीना। इस तरह का जीना कोई जीना नहीं है यह आत्महत्या है।''

सांतो के मन में अब भी कई सवाल थे। लेकिन काफी देर हो गई थी। वह घर जाने को तैयार हुई तो रमा बोली–

''कहां जा रही हो ? खाना बनाती हूँ। यहीं खालो। आज रात यहीं सो जाना। मैं तो तुमसे कहना चाह रही थी कि तुम मेरे साथ रहो। मुझे भी घर में अकेलापन लगता है। तुम साथ रहोगी तो हँस-बोल कर वक्त कटेगा। तुम्हें दूसरों के खेतों में मजदूरी करने की भी जरूरत नहीं। पढ़ी-लिखी हो। महिला मंडल का कोई काम संभाल लो। दो महीने बाद शिमला में

महिला मंडलों की तरफ से एक प्रदर्शनी लगने वाली है। उसकी जोर-शोर से तैयारियाँ चल रही हैं। आज की मीटिंग भी इसीलिए बुलाई थी। बहुत काम करने को पड़ा है। तुम मेरे काम में हाथ बटा सकती हो। मुझे कई जगह दौड़-भाग करनी पड़ती है। तुम साथ रहोगी तो मेरा काम हल्का हो जाएगा। जितनी मजदूरी कमाओगी, उतनी आमदनी तो यहां भी हो जाएगी। क्या विचार है?"

सांतो तुरंत कोई उत्तर नहीं दे पाई।

"सोच लो। मैं अभी फैसला करने के लिए तुमसे नहीं कह रही हूँ। वैसे प्रेस का काम तुम्हारे लिए बुरा नहीं है और उसे छोड़ने की कोई वजह भी नहीं है। लेकिन अगर तुम सोचती हो कि मुरली से तुम्हें फिलहाल दूर रहना है तो फिर यहाँ आ जाओ।"

रमा खाना पकाने लगी। सांतो बर्तन साफ करने में उसकी मदद करने लगी। खाना खाने के बाद भी बड़ी देर तक उनके बीच बातें होती रहीं। जब नींद से उनकी पलकें भारी होने लगीं तभी उन्होंने रोशनी बुझाई और सो गईं।

दूसरे दिन रमा को कई सिलाई-बुनाई के केन्द्रों में जाना था। दो जगह महिला मंडलों की बैठकें भी रखी गई थीं। जिनमें शिमला की प्रदर्शनी की तैयारी के संबंध में बातचीत होनी थी।

सुबह किरण को नहला-धुला और गाँव के शिशु केन्द्र में पहुँचाने के बाद रमा नीलू के घर गई। नीलू को उसने बताया कि उसे दिनभर बाहर रहना है इसलिए किरण को शिशु केन्द्र से ले आए और अपने साथ रखे। वहां से घर लौटी तो सांतो ने नाश्ता तैयार कर रखा था और टिफिन के डिब्बे में दोपहर का खाना रख दिया था। रमा ने जीप का मुआयना किया। टंकी में दिन भर के लिए काफी पैट्रोल था। यह जीप रमा ने कुछ दिन पहले ही बैंक से कर्ज लेकर खरीदी थी। विधायक होने की वजह से इसमें कोई दिक्कत नहीं आई थी। जीप वह खुद ही चलाती थी।

सांतो को अपने साथ जीप में बिठाकर वह नौ बजे के करीब घर से निकली। पहला पड़ाव उनका शिकारना के गांव में था जहां बांस की टोकरियों का कारखाना चल रहा था। यहां बंझाड़ों के तीन परिवार थे जो पुश्तैनी धंधे के रूप में बांस की टोकरियाँ, छाबड़ियाँ, सूप, अनाज रखने की पेड़ियां बनाते थे। रमा ने सरकारी दफ्तरों में काम आने वाली रद्दी की टोकरियाँ बनाने के लिए यहाँ सहकारी संस्था बनाई थी। सरकार से कर्ज ले कर बांस की खपच्चियां बनाने और साफ करने की मशीन लगाई गई थी और आस-पास के गाँवों की कई औरतें यहां काम करने लगी थीं। इनमें हर जाति की महिलाएं थी। बंझाड़ों की कला को सीखने में किसीको संकोच नहीं हुआ था। एक प्रशिक्षित व्यक्ति को नये डिजाइन सिखाने के लिए लगाया गया था। प्रत्येक महिला को काम के अनुसार दस से लेकर पंद्रह-सोलह रुपये तक एक दिन में मिल जाते थे। कुछ औरतें सामान घर ले जाकर टोकरियाँ बनाती थीं। रमा ने सरकारी अफसरों और मंत्रियों से बहुत खींच-तान के बाद यह बात मनवाई थी कि सरकारी दफ्तरों में प्लास्टिक की टोकरियों की जगह बाँस की टोकरियां इस्तेमाल की जाएं और ये टोकरियाँ महिला मंडलों से खरीदी जाएं। हर साल तीस हजार टोकरियाँ दस रुपये प्रति टोकरी के हिसाब से सप्लाई करने का जिम्मा रमा ने

राज्य स्वयं सेवी महिला संगठन की अध्यक्ष होने के नाते अपने ऊपर लिया था। हालांकि इस काम में महिला संगठन को कोई विशेष बचत नहीं थी लेकिन इससे विभिन्न केंद्रों में चार सौ के लगभग महिलाएं रोजगार पर लगी हुई थीं।

शिकारना से कुछ और दूर मधौल में दूसरा पड़ाव था जहां अचार, पापड़, बड़ियाँ, मसाले बनाने और इन्हें डिब्बों तथा पैकेटों में बंद करने का काम हो रहा था। लोगों को उम्मीद थी कि शिमला की प्रदर्शनी में काफी माल बिकने की संभावना है क्योंकि पिछले कुछ वर्षों से महिला मंडलों के अचार-मसालों की ख्याति हो चुकी थी और बाहर से आए माल की तुलना में यह सस्ता भी पड़ता था। ठार में स्वेटर-जर्सियों आदि की बुनाई का सहकारी कारखाना चल रहा था और चकोल तथा तथा उस्तेहड़ में सिले-सिलाये कपड़ों की सहकारी समिति काम कर रही थी। स्कूलों की वर्दियाँ तैयार करने का काफी बड़ा ठेका भी राज्य महिला संगठन को मिला था और पाँच सौ के लगभग महिलाओ को इससे रोजगार मिल रहा था।

राज्य महिला संगठन महिलाओं के विभिन्न कार्यकर्त्ताओं की केन्द्रीय संस्था थी। सारे राज्य में उसके अधीन विभिन्न काम-धन्धों के लगभग पाँच सौ केन्द्र या सहकारी समितियाँ चलती थीं जिनमें पच्चीस तीस हजार के लगभग महिलाओं को रोजगार मिल रहा था। उत्पादन की गतिविधियों के अलावा यहां लड़कियों और महिलाओं के लिए साक्षरता की कक्षाएं भी चलती थीं। बच्चें की देखभाल के लिए शिशु केन्द्र और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र भी चल रहे थे। रमा केन्द्रीय संस्था की संस्थापक अध्यक्ष थी लेकिन वह सभी केन्द्रों में जाकर व्यक्तिगत तौर पर सब की समस्याओं से अपने को अवगत रखती थी। लोगों को उसपर पूरा विश्वास था।

केन्द्रीय संगठन की स्थापना के बाद विभिन्न केन्द्रों की गतिविधियों में तालमेल बनाने और तैयार माल को बेचने की भी अच्छी व्यवस्था हो गई थी। विभिन्न स्थानों पर लगने वाले मेलों में महिला संगठन की ओर से बड़ा स्टाल लगाया जाता था जिनमें काफी माल खप जाता था। कई शहरों में बिक्री केन्द्र भी चल रहे थे। सहकारी बैंकों से पूंजी की व्यवस्था करने का काम भी केन्द्रीय संगठन करता था।

दिनभर एक गाँव से दूसरे गाँव में जाने, लोगों से बातें करने और उनकी समस्याओं को निपटाने के बाद शाम को जब रमा और सांतो घर लौटने लगीं तो दोनों थक कर चूर हो गई थीं।

"आज तो किरण बहुत नाराज हो रही होगी मुझ से" रमा ने बात शुरू की, "हर रोज मैं उसे स्कूल में छोड़ने के बाद निकलती थी और दोपहर तक लौट आती थी। लेकिन परसों से विधानसभा सेशन शुरू होने वाला है। इसलिए मैंने सोचा दो दिनों में सारे काम निपटा लूंगी। तुम भी तो आज बहुत थकी होगी ?"

सांतो रमा के बारे में कुछ और ही सोच रही थी। इतना काम कैसे करती हैं रमा दीदी? इतनी शक्ति उनमें कहां से आती है? जिंदगी की इतनी बड़ी चोट खाने के बाद भी वह हारी नहीं। पति का साथ छूटा, सास का साथ छूटा। अब क्या रह गया है उसकी जिंदगी में? किसके लिए वह इतना मर-खप रही है? नन्हीं बच्ची के लिए......? नहीं नहीं, सिर्फ बच्ची की ही चिंता

होती तो इतना मरने-खपने की क्या जरूरत थी? रमा की बात सुनकर वह चौंक पड़ी।

"क्या कहा दीदी आपने?"

"अरे कहाँ खो गई हो? मैंने कहा तुम बहुत थक गई होगी आज।"

सांतो खिलखिलाकर हँस पड़ी—

"मेरी बात छोड़ो दीदी। लेकिन लगता है आप थकना नहीं जानतीं।"

"कैसे?"

"इतनी भाग-दौड़ करने के बाद भी आपके चेहरे पर शिकन नहीं दिखाई देती।"

"तुम्हें क्या पता कितनी थक जाती हूँ मैं शाम को। घर आकर बिल्कुल लेट जाने को जी करता है। लेकिन तब किरण को लगता है मैं नाराज हूँ उससे। पहले भी बहुत थक जाती थी लेकिन तब घर में सास थी। घर का सारा काम वह देखती थीं। मेरे पति भी काम में हाथ बटाते थे। तब थकान महसूस नहीं होती थी। लेकिन अब तो सचमुच थक जाती हूँ।"

सांतो कुछ सोचकर बोली—

"एक बात कहूँ दीदी।"

"बोलो......"

"मैं अब आप के साथ ही रहना चाहती हूँ। और नहीं तो घर के काम में आपका हाथ बटा सकूँ तो मुझे बहुत खुशी होगी।"

"कितने दिन तक?"

"हमेशा के लिए। कम से कम जब तक किरण आपकी देखभाल करने लायक नहीं हो जाती।"

"तुम मुरली से शादी नहीं करोगी?"

"नहीं, मैं सिर्फ आपके पास रहूँगी।"

"तुम्हें मुरली पर तरस नहीं आता?"

"उन पर तरस करने की जरूरत क्या है। उन्हें लड़कियों की क्या कमी है?"

"लेकिन वह तो तुम्हें चाहता है, सिर्फ तुम्हें।"

"आप अपनी तरफ से बात गढ़ रही है दीदी।"

"नहीं री, सच कह रही हूँ। उसने खुद मुझसे कई बार कहा है कि शादी अगर करेगा तो सांतो से।"

"उनकी बात पर यकीन मत करो दीदी।"

"क्यों?"

"आप देख नहीं रही उनकी चाल-ढाल? बड़े नेता बन गए हैं। कल जिला पंचायत के प्रधान बने हैं। कुछ दिनों बाद पता चलेगा मंत्री-फंत्री बन गए हैं। उनके तौर तरीके ही कुछ और होंगे। तब हम लोग कहां उनकी गिनती में आएंगे?"

"अच्छा तो तुम्हारा विचार है कि वह भी आजकल के नेताओं की तरह राजसी ठाटबाट से

रहने लगेगा।"

"वो तो अभी से रहने लगे हैं, बांद में तो पता नहीं क्या-क्या गुल खिलाएंगे।"

जीप घर के पास पहुँची तो नीलू बाहर खड़ी दिखाई दी। किरण को उसने गोद में उठा रखा था। जीप से उतर कर रमा नीलू के पास दौड़ कर गई और किरण को अपनी गोद में उठा लिया। किरण तुनक कर बोली—

"मां, मैं तुमसे नहीं बोलूंगी?"

"नहीं बोलोगी? क्यों?"

"तुम मुझे अकेली छोड़कर क्यों चली गईं?"

"बेटी तुम अकेली कहां थीं? मौसी तो थीं तुम्हारे साथ।"

मौसी तो थीं लेकिन तुम तो नहीं थी।"

"भई, आज मुझे बहुत काम करने थे न, इसलिए इतनी देर हो गई।"

घर के अंदर जाते-जाते नीलू ने बताया कि खैरा से एक आदमी आया था। आपको अभी बुलाया है।"

"क्या बात है?" रमा ने घबरा कर पूछा।

"मांजी नहीं रहीं....." कहते-कहते नीलू की हिचकी बंध गई।

रमा थोड़ी देर के लिए सन्न सी खड़ी रही। फिर किरण का मुँह चूमकर बोली—

"चलो बेटी, तुम्हें जल्दी स तैयार कर दूं। हम तुम्हारे मामा के घर चलेंगे।"

"नानी के पास?" किरण ने भोलेपन से पूछा।

"हाँ।"

और रमा की आंखों से बड़े-बड़े आंसू ढलक पड़े।

मां की अंत्येष्टि में शामिल होने के दूसरे दिन ही रमा को विधान सभा के सत्र में शामिल होने के लिए शिमला जाना पड़ा। किरण की देखभाल के लिए सांतों ने भी साथ चलने की जिद की। सत्र लगभग एक महीने तक चलनेवाला था। महिला केन्द्रों की प्रदर्शनी की व्यवस्था का सारा काम भी शिमला में रह कर ही किया जा सकता था। इसलिए रमा ने महिला केन्द्रो के काम की देख-रेख करने का भार नीलू, रति, किरनी, मंगला और सुरमा आदि पर छोड़ कर किरण के साथ शिमला में ही एक महीना ठहरने की पूरी व्यवस्था कर ली थी। सांतो ने प्रेस का काम छोड़ कर रमा के साथ रहने का अंतिम रूप से फैसला कर लिया था।

विधायक आवास में रमा को दो कमरे का मकान मिला था। मिलने वालों की भीड़ को देखते हुए यह जगह कम पड़ती थी लेकिन रमा को यह जगह पसंद आ गई थी। विधानसभा से काफी निकट होने के अतिरिक्त शिमला के मुख्य बाजार मालरोड से भी अधिक दूर नहीं थी।

बड़ी बात थी उसके आस-पास की दृश्यावली। देवदार के विशाल वृक्षों से घिरा हुआ विधायक आवास पहाड़ की ढलान के ऊपर बना था जहां से ढलान का एक भाग बहुत गहराई तक देखा जा मकता था। दिन भर की व्यस्तता के बाद झुटपुटी शाम को बरामदे में कुर्सी डाल कर बैठने से रमा को यहां एक अपूर्व शांति मिलती थी। देवदार के पेड़ों से टकराने वाली हवाओं का संगीत रमा को प्रकृति के साथ एकाकार कर देता था और उसे लगता था कि अंधेरे में इधर-उधर उड़ने वाले असख्य जुगनुओं और निशा-संगीत का सृजन करनेवाले झिल्ली-झींगुर आदि असंख्य प्राणियों का अस्तित्व उसके अपने अस्तित्व से विशेष भिन्न नहीं है।

उस शाम विधान सभा से लौटकर जब उसने घर में प्रवेश किया तो किरण दौड़कर उससे लिपट गई—

"मां, मां, तुम्हें पता है आज हमारे घर कौन आया है?'

रमा ने किरण को गोद में उठाकर पूछा, "कौन आया है, मुरली चाचा?"

"नहीं..." किरण बोली

"तो फिर कौन? दिवाकर मामा ?"

"नहीं...।"

"अच्छा तुम बताओ।"

"हार मानो।"

"मान ली हार।"

"बिल्ली के बच्चे तीन।"

और वह गोद से उतर कर दूसरे कमरे की ओर भागी तथा तीन नन्हें-नन्हें बिल्ली के बच्चों को गोद में उठा कर ले आई।"

"अरे, इन्हें कौन ले आया?"

"इनकी मां ले आई और यहां छोड़ गई।"

बिल्ली के बच्चे रमा से डर रहे थे लेकिन किरण के पास जाने में उन्हें कोई डर नहीं लग रहा था। लगता था किरण के साथ वे काफी हिल-मिल गए थे। सांतो चाय बना कर ले आई। उसने बताया कि सुबह ही एक बिल्ली इन्हें यहां छोड़ गई थी। तब से इनकी मां का कोई पता नही है।

"तब तो ये भूखे होंगे, दूध-वूध पिलाया इन्हें।" रमा ने पूछा।

"पहले तो ये डरके मारे पास ही नहीं आ रहे थे। अभी थोड़ी देर पहले थोड़ा-थोड़ा दूध पीया है।"

"कोई बात नहीं। बिल्लियां ऐसे ही करती हैं। रात को वह आएगी और इन्हें दूध पिलाएगी।"

किरण ने बिल्ली के तीनों बच्चों के नाम रख दिए अप्पू, कप्पू और कालू। कालू बहुत चचल था और उसके शरीर पर काली धारियां थीं। अप्पू खरगोश की तरह बिल्कुल सफेद था

और कप्पू के शरीर पर सफेद-काले बड़े-बड़े चकत्ते थे। किरण ने उत्सुकता वश पूछा—

"अगर इनकी मां नहीं आई तो⋯?"

"आएगी क्यों नहीं? बिल्ली अपने बच्चों को जगह-जगह ले जाकर छिपाती है। उसे डर होता है कि एक ही जगह रहेंगे तो कोई उन्हें मार डालेगा। कुछ दिन बाद वह यहा से भी इन बच्चों को ले जाएगी, देखना।"

"मैं तो इन्हें नहीं जाने दूंगी।" किरण मचली।

"तुम क्या जबर्दस्ती इन्हें रोक लोगी? इनकी मरजी होगी तो रहेंगे नहीं होगी तो चले जाएंगे। और हम गांव चले जाएंगे तो इनकी देखभाल कौन करेगा?"

"हम इन्हें भी गांव ले जाएंगे।" किरण बोली।

"और इनकी मां⋯?"

दरवाजे के घंटी की आवाज से मां-बेटी के बीच वार्तालाप रुक गया। सांतो ने दरवाजा खोला और मुरली को सामने देखकर खिल उठी—

"दीदी, नेता जी आए हैं।"

रमा कुर्सी से उठकर दरवाजे की तरफ बढ़े इस बीच मुरली अंदर आ चुका था। कुर्सी पर बैठते हुए उसने कहा—

"माफी चाहता हूं। एक जरूरी काम में उलझ गया और इधर आना ही नहीं हुआ।"

रमा पिछले दस दिनों से मुरली की राह देख रही थी। पार्वती देवी की अंत्येष्टि के दूसरे दिन ही मुरली रमा के साथ शिमला चलने वाला था लेकिन उसे "अमर संदेश" के अगले अंक को छपवाने के लिए रुकना पड़ा। अंक निकला तो उसने राज्य सरकार मे एक भयानक विस्फोट पैदा कर दिया। मुख्यमंत्री और उसके बेटों ने जंगल की अंधाधुंध कटाई के ठेकों में बीस करोड़ के लगभग पैसा बनाया था। "अमर संदेश" में आवरण कथा के रूप में चित्रों और दस्तावेजों के साथ उस कांड का पर्दाफाश किया गया था। पिछले चार दिनों से विधान सभा में इस बात को लेकर लगातार हंगामा हो रहा था। विपक्षी दलों ने मुख्यमंत्री के त्यागपत्र की मांग रखी थी और उनकी मांग का समर्थन कई कांग्रेसी सदस्य भी करने लगे थे। मुख्यमंत्री के लोग मुरली से सम्पर्क करने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे थे लेकिन मुरली का किसीको अता-पता नहीं चल रहा था। रमा ने भी इस बीच 'अमर संदेश' के कार्यालय में टेलीफोन से कई बार सम्पर्क किया लेकिन हर बार उसे यही उत्तर मिला कि उसका कुछ पता नही है। दिवाकर ने टेलीफोन पर बताया कि पुलिस ने "अमर संदेश' के दफ्तर में छापा मारा था और प्रेस को बंद करने की धमकी दी थी लेकिन उसके बाद कोई खास गड़बड़ी नहीं हुई है।

रमा ने मुरली के लिए चाय बनाते हुए पूछा—

"इस वक्त कहां से चले आ रहे हो?"

"फिलहाल तो भावी मुख्यमंत्री के बंगले से चला आ रहा हूं।"

"क्या मतलब? मुख्यमंत्री ने त्यागपत्र दे दिया?"

"दिया तो नहीं लेकिन एक दो दिन में दे देगा।"

"तुम्हारा अंदाजा ही है या सचमुच कुछ होने वाला है?"

"जब तक कुछ हो न जाए, तब तक इसे अंदाजा ही कहना चाहिए। लेकिन एक बात तय है कि उसके दिन इने-गिने हैं?

"कांग्रेस विधान मंडलीय पार्टी में उसका साफ बहुमत है।"

"विधानमंडलीय पार्टी के बहुमत को आज कल कौन पूछता है। ये फैसले तो अब प्रधानमंत्री के सचिवालय से होते हैं। वहां अब मुख्यमंत्री का बहुमत नहीं है।"

"तो तुम दिल्ली गए थे?"

"दिल्ली न जाता तो तुरत-फुरत इतना काम होता?"

"क्या उन्होंने मुख्यमंत्री को हटाने का फैसला कर लिया है?"

"फैसला तो उन्होंने बहुत पहले कर लिया था। जब से राजीव गांधी कांग्रेस के महासचिव बने हैं, संजय गांधी के आदमियों को हटा कर कांग्रेस को साफ-सुथरी छवि देने के प्रयास जोरों पर हैं। कई प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों को वे हटाना चाहते हैं। "अमर सदेश" ने तो भूसे के ढेर में चिंगारी डालने का ही काम किया है।"

"लेकिन मुख्यमंत्री भी पक्का घाघ है। इतनी आसानी से कुर्सी छोड़ देगा?"

"घाघ-वाघ कुछ नहीं है। भीतर से सब साले खोखले हैं। अपने बल से कोई नेता बने उसमें तो नैतिक बल होता है। ये तो मिट्टी के खिलौने हैं। किसी ने गढ़ दिए किसी ने लात मार कर तोड़ दिए।"

"विधानसभा में मुख्यमंत्री के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाया जा रहा है।"

"कौन ला रहा है? विपक्षी दल?"

"हां लेकिन सुना कांग्रेस के कई सदस्य भी उनके साथ वोट देंगे।"

"मुझे नहीं लगता कि कांग्रेस हाई कमान ऐसा करने देगी। ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री विधान सभा को भंग करने तथा दोबारा चुनाव कराने की सिफारिश राज्यपाल को कर सकता है।"

"राज्यपाल तो केंद्रीय सरकार का प्रतिनिधि है। जैसा वहां से निर्देश आएगा वैसा करेगा।"

"फिर भी खतरा तो है। संविधान के अंतर्गत राज्यपाल मुख्यमंत्री की सिफारिश को मानने के लिए बाध्य है।"

"कांग्रेस हाई कमान का क्या रुख है?"

"मुख्यमंत्री को किसी प्रदेश का राज्यपाल बना दिया जाएगा और उसकी जगह किसी ऐसे आदमी को मुख्यमंत्री बना दिया जाएगा जिसकी साफ-सुथरी छवि होगी।"

"नये मुख्यमंत्री के बारे में फैसला हो चुका है?"

"लगभग हो चुका है। लेकिन यहां के कांग्रेस विधायकों का रुख जांचने-परखने के लिए

केन्द्र के दो नेता यहां आनेवाले हैं। उसके बाद ही नाम की घोषणा की जाएगी।"

"किसका नाम लिया जा रहा है?"

"राजकुमार वीरदमन का। लोकसभा में चुपचाप बैठने और सरकारी प्रस्तावों पर हाथ उठाने वाले सांसद के रूप में उन्होंने अपनी छवि बनाई है। लोगों का कहना है वह निहायत शरीफ आदमी है। महत्त्वाकांक्षी भी नहीं है। जैसा राजीव कहेंगे वैसा ही करेगा।"

"ये सारे फैसले राजीव की इच्छा से हो रहे हैं या इंदिराजी की इच्छा से।"

"इंदिरा जी संजय के निधन के बाद बहुत टूट गई हैं। किसी भी तरह वह राजीव को सक्रिय राजनीति में लाना चाहती हैं। इसलिए राजीव जो चाहता है, इंदिरा उसका अनुमोदन कर देती हैं। राजीव के आने से संजय के कैंप में आजकल खलबली मची हुई है। वह उनसे एक-एक करके पीछा छुड़ा कर कांग्रेस की छवि सुधारना चाहता है।"

"तुम्हारा क्या विचार है? क्या कांग्रेस दल साफ-सुथरी नीति वाली पार्टी बन जाएगी?"

"राजीव का इरादा तो यही है। कम से कम मुझेतो ऐसा ही लग रहा है। इसीलिए मैंने विधिवत् कांग्रेस की सदस्यता स्वीकार की है। शायद बीड़ के क्षेत्र में मुझे विधायक की सीट का उपचुनाव भी लड़ना पड़े।"

रमा कुछ देर तक चुप रही और मुरली के चेहरे को गौर से देखती रही। बिल्ली का एक बच्चा भाग कर उस कमरे में आ गया। किरण एक बच्चे को गोद मे उठा कर उस के पीछे भागते-भागते आई और मुरली की गोद में बच्चे को फेंककर बोली—

"इसे सम्भालो चाचा जी, मैं इस शरारती को पकड़कर लाती हूं।"

मुरली बिदककर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"क्या मुसीबत है किरण⋯इन्हें कहां से ले आई पकड़कर?"

"चाचा जी, मैं नहीं लाई। अपने-आप आ गए। आज सुबह इनकी मां यहां इन्हें छोड़ गई। तीन हैं तीन, कालू, अप्पू और कप्पू⋯⋯"

"अरे, अप्पू नाम भी यहां खूब चल पड़ा है। एशियाई खेलों का अप्पू इतना पापुलर हो गया है?"

रमा हँस कर बोली—

"जब राजीव टेलीविजन पर दिखाई देता है तो बच्चे उसे भी अप्पू-अप्पू कहने लगते हैं।"

मुरली ने जोर का ठहाका लगाया—

"भई, बच्चों की आँखें भी कमाल की पारखी होती हैं। लगता तो वह ठीक वैसा ही है। चेहरा एक दम ब्लैंक और बात करता है तो लगता है जैसे कान्वेंट स्कूल का बच्चा अपनी टीचर के सामने बड़ी सावधानी से सीखे हुए शब्दों को दुहरा रहा हो।"

"क्या इसीलिए तुम राजीव से बहुत प्रभावित हो?" रमा ने चुटकी ली।

मुरली मुस्करा कर रह गया। सांतो खाना-खाने के लिए बुलाने आई थी। रमा ने उसकी तरफ देखकर कहा—

"सांतो, तुम्हारा अंदाजा ठीक है। अब मुरली सौ फीसदी कांग्रेसी नेता बन गया है। जानती हो, बीड़ से चुनाव लड़ने की तैयारी भी कर रहा है।"

सांतो ने मुरली के तरफ देखा और बोली—

"अभी तो इनकी दौड़ शुरू हुई है। मंजिल न जाने कहां होगी? इतना निश्चित है कि कुछ दिन बाद नेताजी से मुलाकात करने के लिए पहले से वक्त तय करना पड़ेगा। अच्छा, अब खाना खाने चलो। किरण को भी भूख लगी होगी।"

खाना खाने के बाद मुरली जाने को तैयार हुआ। वह पंचायत भवन में ठहरा हुआ था। रमा उससे कुछ और बातें करना चाहती थी। कई दिनों से वह मौके की तलाश में थी। वह चाहती थी कि मुरली उनके साथ ही रहे लेकिन मुरली के लिए पंचायत भवन का कमरा बहुत सुविधाजनक था। बस-अड्डे के साथ होने के कारण सुबह की बस पकड़ने में भी उसे आसानी थी। वह अगले दिन सुबह की बस से ही बैजनाथ लौटना चाहता था। रमा ने घड़ी की तरफ देखकर कहा, "अभी तो नौ ही बजे हैं। थोड़ी देर रुको, तुमसे बहुत बातें करनी हैं।"

"मैंने सोचा, आप दिनभर की थकी होंगी......" मुरली ने कहा।

"दीदी थकना नहीं जानतीं, आप अपनी कहो," सांतो ने मुरली की बात काटी।

"दीदी नहीं थकती लेकिन दीदी की सहेली तो थकती है।"

"मैं तो दिन भर घर पर रहती हूँ, थकूँगी कैसे?"

रमा ने सांतो की ओर देखकर कहा—

"किरण को नींद आ रही होगी, उसे सुला दो। और देखो खिड़की को खुला रखना। बिल्ली अपने बच्चों को ढूंढने आएगी।"

किरण को गोद में उठाकर सांतो दूसरे कमरे में चली गई तो रमा ने कहना शुरू किया-

"तुम जानते हो, सांतो तुमसे किस बात पर नाराज है?"

"मैंने एक दिन कह दिया था कि मैं उससे शादी करना चाहता हूँ। शायद उसे यह बात अच्छी नहीं लगी।"

"अच्छी क्यों नहीं लगी होगी?"

"उसकी अपनी पसंद-नापसंद की बात है। हो सकता है उसे मेरे साथ बंधना पसंद न हो।"

"नहीं, यह बात नहीं है।"

"मैं उससे बारह-तेरह साल बड़ा भी हूँ।"

"उम्र की बात भी वह नहीं सोचती।"

"तो जात-बिरादरी की नुकताचीनी से डरती होगी।"

"नहीं......।"

"फिर......?"

"वह सोचती है कि तुम अपने रास्ते से भटक रहे हो। गलत रास्ते पर जा रहे हो।"

"क्या उसे मेरा कांग्रेस में शामिल होना पसंद नहीं है?"

"मुझे तो ऐसा ही लगता है।"

"और आपको भी तो पसंद नहीं है।"

"सच कहूँ तो मुझे हैरानी हो रही है। क्या सोचकर तुम कांग्रेस में जा रहे हो? क्या इसीलिए कि खूब पैसा बटोरो और राजाओं-नवाबों की तरह शान-ओ-शौकत से जिंदगी बिताओ?"

मुरली रमा के चेहरे की तरफ देखता रहा। रमा का यह रवैया अप्रत्याशित नहीं था। वह जानता था कि एक न एक दिन रमा के सामने इस सवाल का जवाब देना पड़ेगा। लेकिन वह उस लहमे को अधिक से अधिक समय टालना चाहता था। वह खुद भी अपने मन में इस बात को लेकर काफी जूझ चुका था। निर्णय लेने में उसने जल्दबाजी नहीं की थी और न ही आगे पीछे को बातों को सोचे बिना यह निर्णय लिया था।

"क्या तुम सोचते हो कि कांग्रेस में जा कर तुम कुछ कर पाओगे?" रमा ने सवाल किया।

मुरली इसका तुरंत कोई उत्तर नहीं दे सका। कुछ देर सोचने के बाद बोला—

"कांग्रेस से बाहर रह कर भी क्या कर सकता हूँ?"

"अब तक जो कर रहे थे, काफी नहीं है? तुम्हारे पास अच्छा अखबार है, नाम भी है। पैसे की भी कोई कमी नहीं है। सब जगह तुम्हारी इज्जत है।"

"हां,आप कह सकती हैं कि मैं इस समय एक सफल व्यक्ति हू। लेकिन मेरी यह सफलता कांग्रेस के समर्थन के कारण है। कांग्रेस के लोगों ने मुझे अपना समर्थक मान लिया हालांकि मैं जनता पार्टी की तुच्छ राजनीति का विरोध कर रहा था। सवाल यह है कि हमारे जैसे आदमी कहां जाएं? राजनीति के हम कीड़े हैं। राजनीति के बिना जी नहीं सकते। अब तक विरोधी पक्ष की राजनीति करते रहे। अब विरोध पक्ष में भी हमारे जैसे लोगों के लिए जगह नहीं है। जिन बातों के हम ख्वाब देखते रहे, जिन चीजों को साकार करने की उम्मीद लिये हम भूखे पेट और फटीचर हालत में हड़तालें करते रहे, प्रदर्शन करते रहे, जेल जाते रहे और पुलिस की लाठियों के प्रहार झेलते रहे, अब उनके लिए कहां जगह है विरोधी पक्ष मे? यहां तो अब बची हैं जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद की राजनीति। छोटे-छोटे लोग एक-एक पार्टी लिये बैठे हैं पुश्तैनी जागीर बना कर जिनके पास कोई प्रोग्राम नही, भविष्य का कोई सपना नहीं। कोई सवर्ण जातियों के हिंदू राज का सपना देख रहा है, कोई जाट राज का और कोई ठाकुर राज का। हमारा तो कोई संगठन ही नहीं बचा है। कुछ लोग जनता में, कुछ लोकदल में, कुछ कांग्रेस तथा कुछ क्षेत्रीय पार्टियों में चले गए हैं। मूल्यों की राजनीति तो अब कहीं नहीं है लेकिन विपक्षी नेता तो सत्ता की राजनीति भी ठीक ढंग से नहीं चला पा रहे हैं। अब तक का इतिहास बताता है कांग्रेस से टक्कर तभी ली जा सकती है जब सब विरोधी दल मिलकर उसके खिलाफ मोर्चा बनाए। लेकिन यह मोर्चा कभी बनेगा नहीं। विपक्ष का हर घटक समझता है कि देश का नेतृत्व उसके हाथ में आए। सत्ता में साझेदारी का सिद्धांत किसी को मान्य नहीं है। जनता पार्टी टूटी क्योंकि इन घटकों में साझेदारी की भावना नहीं थी। ये गुट एक-दूसरे की जड़ें खोदने का काम करते रहे। जनता टूटने की सारी जिम्मेदारी उन्होंने समाजवादियों पर डाल दी। समाचारपत्रों ने भी

एक स्वर से इस झूठ का प्रचार करना शुरू किया। किसी ने यह नहीं सोचा कि समाजवादियों का जनता पार्टी को तोड़ने से क्या हित हो सकता था। जनता पार्टी बनाने में उन्होंने अपना सर्वस्व दाव पर लगा दिया था। उन्होंने अपने सारे संगठन को, अपनी सारी संस्थाओं को जनता पार्टी में विलीन कर दिया। वे जानते थे कि जनता पार्टी के टूटने का मतलब होगा, समाजवादी आंदोलन का अंत क्योंकि नये सिरे से आंदोलन को खड़ा करना अब बहुत मुश्किल होगा। इसके बावजूद इस झूठ को बार-बार दुहराया गया। लेकिन अब किसी को कोई जवाब नहीं सूझ रहा है कि अब जबकि समाजवादी नहीं हैं, ये लोग एक मंच पर क्यों नहीं आ पा रहे हैं।''

रमा ध्यान से मुरली की बात सुन रही थी। पहले भी उनके बीच विपक्ष के भटकाव को ले कर कई बार बात हो चुकी थी। रमा के लिए भारतीय राजनीति की जटिलताओं को समझ पाना आसान नहीं था। अपने पति से उसने भारतीय राजनीति की सरसरी जानकारी प्राप्त की थी। उसका अधिकांश समय महिलाओं की पारिवारिक और आर्थिक समस्याओं को जानने-समझने में बीता था। इंदिरा गांधी के शासन के दौरान भारत की राजनीति में मूल्य-हीनता की जो लहर चली थी उससे वह अपने पति के माध्यम से ही परिचित हुई थी। उस इतिहास में न तो उसकी विशेष रुचि थी और न पैठ। विपक्ष की राजनीति में भी उसे कभी विशेष दिलचस्पी नहीं रही। लेकिन मुरली के बारे में वह जानती थी कि समाजवादी दल से उसका संबंध रहा है और अब भी है। समाजवादियों के संबंध में रमा की यह धारणा थी कि ये लोग लोकतंत्र के लिए और सामाजिक-आर्थिक बराबरी के लिए लड़ने वाले लोग हैं। सामाजिक-आर्थिक बराबरी का सपना बहुत दूर का सपना है। इस देश में सदियों तक गैर-बराबरी, ऊँच-नीच और स्त्री-पुरुष के भेदभाव को पोषित किया जाता रहा। जिन इनी-गिनी जातियों का समाज पर हमेशा कब्जा रहा उन्हीं के हाथ में आज भी समाज की बागडोर है। वे बराबरी की बात को कैसे सहन करेंगे? इसलिए समाजवादियों को कभी इस देश में विशाल जन-समर्थन नहीं मिल पाएगा। फिर भी उन्होंने लोकतंत्र के मुद्दे को लेकर दो बार कांग्रेस के खिलाफ संयुक्त मोर्चा खड़ा किया और उसे अच्छी सफलता भी मिली। क्या वे एक बार फिर वैसी कोशिश नहीं कर सकते? मुरली से यह सवाल रमा ने एक बार किया था और जवाब में मुरली ने बताया था कि अब कौन करेगा वह काम? 1967 में लोहिया जी थे, 1977 में जयप्रकाश थे। अब कहां हैं उस कोटि के नेता? रमा इस तर्क को स्वीकार करती थी हालांकि उसका मन यह विश्वास करने को तैयार नहीं था कि पचास साल से चला आ रहा कोई आंदोलन अचानक धरती में समा सकता है। इसके अतिरिक्त रमा की समझ में यह बात भी नहीं आती थी कि जो लोग कांग्रेस की खानदान पर निर्भर करनेवाली राजनीति के इतने घोर शत्रु रहे हैं वे उसी पार्टी में शामिल होने का निर्णय कैसे ले सकते हैं।

सांतो कॉफी बनाकर लाई थी। उसने बताया कि किरण बिल्ली के बच्चों को साथ बिस्तर में रख कर ही सोई। अब उसने उन्हें उठाकर कोने में एक कंबल पर डाल दिया है। कॉफी की चुसकी लेकर मुरली ने कहना शुरू किया—

"मेरे लिए कांग्रेस में शामिल होना काजल की कोठरी में प्रवेश करने जैसा है। मैं जानता हूं कि मैं उस पार्टी में जा रहा हूं जिससे मैं सख्त नफरत करता हूं। लेकिन मेरे सामने और कोई चारा नहीं है। मुझे इस समय राजनीति की जरूरत है, सत्ता की जरूरत है और पैसे की भी जरूरत है लेकिन बड़ी बात यह है कि इस समय विपक्ष में जो भी पार्टियां हैं, उनसे कांग्रेस अच्छी है। कम से कम उसके पास राष्ट्रीय दृष्टि तो है। और इस समय कांग्रेस को साफ-सुथरा बनाने का जो अभियान चल रहा है, उसमें काफी संभावनाएं हैं। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि मेरा निर्णय आगे चलकर अच्छा साबित होगा या बुरा। हो सकता है इसके परिणाम बुरे हों लेकिन उन परिणामों के लिए किसी और को जिम्मेदार नहीं ठहराऊंगा। मैं सोच-समझकर निर्णय कर रहा हूं और उसके परिणामों को भुगतने के लिए भी तैयार हूं। इस प्रदेश की स्थिति ऐसी है कि हमारे लिए कांग्रेस के अलावा कोई जगह नहीं है। या तो मैं संन्यास लेकर बैठ जाऊं जो मुझ से होगा नहीं या कांग्रेस में शामिल हो जाऊं। तीसरा रास्ता मुझे इस वक्त नजर नहीं आता।"

कुछ देर कमरे में चुप्पी रही फिर सांतो ने कॉफी के प्याले उठाते हुए कहा- "आप अपने रास्ते पर बेखटके जाइए। हम कौन होते हैं आपको रोकने वाले...."

दरवाजे के बाहर बिल्ली के रोने की आवाज सुनाई दी। शायद वह अपने बच्चों को ढूंढ रही थी। सांतो ने खिड़की के किवाड़ को थोड़ा और खोल दिया। बिल्ली खिड़की के रास्ते अंदर आ गई। सांतो ने कोने से एक बच्चे को उठाकर बिल्ली को दिखाया। बिल्ली अपने बच्चों के पास आ गई और उन्हें चाटने लगी। बच्चे उसके थनों से झूलने लगे। बिल्ली बच्चों को अपनी टांगों के नीचे समेट कर आराम से सो गई। मुरली ने भी रमा और सांतो से विदा ली।

जैसा कि मुरली ने कहा था अगले कुछ महीनों में प्रदेश के राजनीतिक दृश्य में बड़ी तेजी से परिवर्तन हुए। केन्द्रीय सरकार के निर्देश पर मुख्यमंत्री ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और उसे दक्षिण के एक प्रदेश का राज्यपाल बनाकर भेज दिया गया। राजकुमार वीरदमन को प्रदेश कांग्रेस की विधायक पार्टी ने सर्वसम्मति से अपना नेता मान लिया। ये परिवर्तन केन्द्रीय राजनीति में हो रहे परिवर्तनों के ही अनुरूप थे। इसका एक पहलू तो यह था कि संजय के आदमियों को महत्त्वपूर्ण पदों से हटाना और साफ-सुथरी छवि वाले व्यक्तियों को लाना। दूसरा पहलू था ब्राह्मण लाबी के पर काट कर ठाकुर लाबी को सत्ता में अधिक से अधिक हिस्सा देना। यह परिवर्तन कांग्रेस में पहली बार हो रहा था। ब्राह्मण लाबी का वर्चस्व कांग्रेस में शुरू से ही रहा। नेहरू खानदान के राज को ब्राह्मण जाति के राज का पर्याय मानने वाले लोगों की देश में कमी नहीं थी। ब्राह्मण जातियां विशेषकर इसमें गर्व अनुभव करती थीं। हिमाचल प्रदेश में जनता पार्टी के उदय के बाद ब्राह्मण जातियों का झुकाव विपक्ष की ओर हो गया था, इसलिए

कांग्रेस ठाकुरों को फुसलाने के लिए विशेष प्रयत्न कर रही थी। अपदस्थ मुख्यमंत्री भी ठाकुर था लेकिन संजय का आदमी होने के कारण वह कांग्रेस के नये नेतृत्व की आंखों का कांटा बन गया था। उसकी जगह पर ऐसे ठाकुर को लाया गया था जिसमें राजघरानों की संस्कृति और शालीनता थी।

मुरली को बीड़ के उपचुनाव में कांग्रेस के उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया गया। यह ऐसा निर्वाचन क्षेत्र था जिससे कांग्रेस का उम्मीदवार पहले कभी नहीं जीता था। मुरली ने छोटी जातियों के विरुद्ध विपक्ष के रवैये को जोरदार ढंग से मतदाताओं के सामने रखा इसलिए अनुसूचित जातियों और पिछड़ी जातियों के वोट मुरली के पक्ष में भारी संख्या में पड़े। इसके अतिरिक्त एक भ्रष्ट मुख्यमंत्री को हटाने में मुरली के अखबार ने जो भूमिका अदा की थी उसके कारण भी मुरली की लोकप्रियता बढ़ी थी। नये मुख्यमंत्री वीरदमन के साथ व्यक्तिगत संबंध होने के कारण मुरली को मंत्रिमंडल में लिया जाना स्वाभाविक था। मुरली को शिक्षा, युवा एवं महिला कल्याण तथा सहकारिता के विभाग दिए गए।

कार, कोठी, अहलकार, चपरासी-जमादार, बाबू, अफसर, खुशामदी और दलाल किस्म के लोगों से घिरी जिंदगी में मुरली ने किस तरह अपने आपको जल्दी ही खो दिया, यह एक आश्चर्य की बात थी। सुबह आठ बजे से उसकी कोठी पर मिलनेवालों और जरूरतमंदों की भीड़ जुटने लगती थी। किसीको सिफारिश करके, किसीको दिलासा देकर, किसीको सलाह-मशविरा देकर भीड़ को निपटाने में समय कैसे बीत जाता उसे पता भी नहीं चलता। दफ्तर में पहुंचकर मीटिंगें, फाइलें, विधानसभा की बहस और बीच-बीच में लोगों से मुलाकातें। आए दिन राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के दौरे, छोटी-छोटी जनसभाएं और भाषण। इसके अतिरिक्त आए दिन देश की राजधानी दिल्ली की यात्रा, नेताओं से विचार विमर्श और महलों की कुटिल राजनीति की कानाफूसियों का रसास्वादन। मुरली इस अजनबी दुनिया में डूबता हुआ सा दिखाई दिया।

लेकिन जब कभी मुरली इस कोलाहल से दूर अपने को एकांत में पाता तो उसे बहुत ग्लानि होती। उसे लगता वह एक सुनसान जंगल को छोड़कर एक नक्कारखाने में आ गया है जहां किसीको किसीकी आवाज सुनाई नहीं देती। ऐसा मौका कभी-कभार ही आता जब वह अपने पहरेदारों को चकमा देकर कुछ समय के लिए उस बेतुकी दौड़वाली दुनिया से अपनेको बरबस अलग कर लेता। रमा से या भैया-भाभी से मिलने के लिए वह महीने में एक दो बार गदियारी अवश्य जाता। रूपा और दिवाकर के पास भी नियमित रूप से उसका जाना होता था। 'अमर संदेश' के दफ्तर में तो उसे अक्सर जाना पड़ता था हालांकि उसकी सारी व्यवस्था अब दिवाकर ने सम्हाल ली थी और कर्मचारियों की ही एक प्रबंध समिति के अधीन उसका सारा काम चलता था। इन स्थानों में जब भी वह जाता था, मंत्री का चेहरा उतार कर। फिर भी हमेशा यह आसान नहीं होता था। हां, दिल्ली के महानगर में पहुंचकर अपने राजनेता के चोले को उतार फेंकना उसके लिए आसान होता। वहां बहुत कम लोग उसे पहचानते थे। कॉफी हाउस में घंटा डेढ़ घंटा बैठकर बिताना उसे बहुत अच्छा लगता था। कुछ पुराने समाजवादी मित्रों के

अतिरिक्त वहां लेखकों और पत्रकारों से भी खुली बातचीत हो जाती।

सबसे बड़ी कोफ्त उसे समाजवादियों से मिलकर होती थी। अढाई साल के जनता शासन में साझेदारी के दौरान पहली बार सत्ता पक्ष का स्वाद लेने के बाद अब वे बुरी तरह बौखला गए थे। उनके सामने अब कोई भविष्य नहीं था। जो लोग जनता पार्टी में रह गए थे उनका वहां दम घुट रहा था। जो लोकदल में पहुंच गए थे, उनकी स्थिति कुछ बेहतर थी क्योंकि तीन राज्यों में बड़े विपक्षी दल के सदस्य होने के नाते उनकी राजकीय सुविधाओं में विशेष कमी नहीं हुई थी। वे अपनेको अब भी समाजवादी कहते थे यद्यपि उनका समाजवाद कुल मिलाकर पिछड़े वर्गों की राजनीति का पर्याय बन गया था। समाजवादियों का कोई मंच नहीं बचा था, संगठन पूरी तरह समाप्त हो चुका था और समाजवादी इस या उस दल का किनारा पकड़ कर त्रिशंकु की तरह लटक गए थे किंतु समाजवादी और प्रजासमाजवादी अब भी पुराने मतभेदों को नहीं भुला सके थे। हताशा की मानसिकता समाजवादियों में कई आत्मघाती प्रवृत्तियां पैदा कर रही थी। उनका अपनेपर से विश्वास समाप्त हो गया था। वे अपने ही नेताओं को, बिना सोचे-समझे गालियां देने लगे थे, दक्षिण पंथियों और साम्यवादियों के स्वर में स्वर मिलाकर। भाजपाइयों और साम्यवादियों की तरह वे भी पूंजीपति घरानों के समाचारपत्रों के इन निराधार आरोपों को आंख मूंद कर स्वीकार करने लगे थे कि जनता पार्टी को तोड़ने और उनके आगे से लड्डुओं की थाली सरकाने वाले खलनायक उनके अपने नेता ही थे। वे सारी स्थितियों का अध्ययन करने और उनका विश्लेषण करने को तैयार नहीं थे, बस खिसियानी बिल्ली की तरह खंभा नोचने के ही मूड में थे। उनमें न तो कोई नया आंदोलन खड़ा करने का उत्साह बचा था और न वैचारिक सृजन का। भारतीय राजनीति में वे शून्य बन कर रह गए थे।

मुरली को लगता था कि कॉफी हाउस पराजित और पिटे हुए लोगों की शरणस्थली है। यहां आने वाले लेखक अधिकतर साहित्य के क्षेत्र में उपेक्षित लेखक थे। राजनेता राजनीति के क्षेत्र में पिटे हुए थे। और व्यापारी व्यापार के क्षेत्र में पिटे हुए। कॉफी हाउस में सबको अपनी-अपनी भड़ास निकालने का अवसर मिलता था। जो व्यवस्था में कहीं न कहीं जमे हुए थे, उनके लिए मानसिक संतोष और शांति के स्रोत कहीं न कहीं मौजूद थे उन्हें कॉफी हाउस आने की जरूरत नहीं पड़ती थी। कॉफी हाउस देश में व्याप्त असंतोष और छटपटाहट को अभिव्यक्ति देने वाला खुला मंच था। हालांकि उस छटपटाहट में कोई दिशा नहीं थी, अराजकता ही अराजकता दिखाई देती थी तथापि उसमें सृजन के बीज थे। हर लेखक, पत्रकार जो इस शोर-शराबे में अपना गुब्बार निकालने के लिए आता था, मन के किसी कोने में कुछ करने, कुछ रचने की चाह को छिपाए हुए होता था। उसे रसातल की ओर तेजी से जाते इस देश और समाज की चिंता सताती थी। बावजूद इस बात के वह कुछ कर नहीं पाता था और महज अपनी भड़ास निकालकर रह जाता था, वह देश के हालात से चिंतित था। वह गरीब गुरबों की स्थिति पर विचार करता था, आजादी के नाम पर देश में मची लूट-खसोट से दु:खी था, राष्ट्रीय मूल्यों के विघटन और देश की एकता के आसन्न खतरे से परेशान था, वह उन्नत देशों के

आर्थिक और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद से भयभीत था। वह पिटा हुआ आदमी था किंतु सृजन की अनेक संभावनाएं लिये हुए था।

मुरली की स्थिति भी कॉफी हाउस जाने वाले लोगों की तरह थी। हालांकि एक मंत्री के रूप में उसके जीवन की व्यस्तताएं बढ़ गई थीं लेकिन उसे लगता था कि वह मशीन की तरह का जीवन जी रहा है। अपने जीवन के लक्ष्य के संबंध में उसके मन का कुहासा ज्यों का त्यों था। कुछ करने की मन में इच्छा थी लेकिन कुछ सूझ नहीं पाता था। जीवन का सारा उत्साह खत्म होता सा लगता था। पहले जब कभी उसके मन को निराशा घेरने लगती थी तो वह अपने साथी और गुरु अमर के पास पहुंच जाता था और उससे विचार-विमर्श करके उसे एक सकारात्मक लक्ष्य मिल जाता था। अब अपनी बैटरी चार्ज करने के लिए कोई जगह नहीं बची थी। एक दिन अपनी दिल्ली यात्रा के दौरान उसने पुराने समाजवादी नेता, विभुजी से मिलने का निश्चय किया जो दलीय राजनीति से अलग हो कर पूरी तरह लिखने और पढ़ने में व्यस्त हो गए थे। जयप्रकाश नारायण की मृत्यु के बाद समाजवादी आंदोलन को जिंदा रखने की जिम्मेदारी इन्हीं के कंधे पर आई थी। सत्ता, पद और धन की लिप्सा से हमेशा दूर रहने वाले इस व्यक्ति को जनता पार्टी के गैर-समाजवादियों का ही नहीं, समाजवादियों का भी कोपभाजन बनना पड़ा था। उनपर आरोप लगाया गया था कि उन्होंने दोहरी सदस्यता का सवाल उठा कर जनता पार्टी में फूट डलवाई, दल-बदल विधेयक का विरोध करके जनता पार्टी के टूटने की स्थितियां पैदा कीं और जनता पार्टी के टूटने के बाद जैसे और धड़ों ने अपने-अपने संगठन दोबारा खड़े कर लिए, उन्होंने समाजवादी संगठन को पुनर्जीवित करने के बजाय संन्यास ले लिया। हालांकि वे अपनी सफाई में काफी कुछ लिख चुके थे और आने वाली घटनाओं ने यह सिद्ध भी कर दिया कि जिन बातों के लिए उन्हें दोषी ठहराया जाता था, उनके लिए वे दोषी नहीं थे लेकिन लोगों के पूर्वाग्रह अब भी बने हुए थे। 1942 की अगस्त क्रांति, गोवा मुक्ति आंदोलन और बाद में आपात स्थिति के विरोध में चले आंदोलन के यशस्वी सेनानी का स्वास्थ्य काफी खराब था। उनकी एक आंख की रोशनी हैमरेज के कारण चली गई थी। हृदय-रोग इस तरह का था कि उसका आपरेशन भी संभव नहीं था। अनेक वर्षों के श्वास रोग के कारण फेफड़े आपरेशन का दबाव सहने के लायक नहीं थे। वे सिर्फ कमरे में बैठकर लिख-पढ़ सकते थे और इसलिए उन्होंने अपनेको इस काम तक सीमित कर लिया था।

वेस्टर्न कोर्ट के 17 नंबर कमरे के बाहर पहुंच कर मुरली रुक गया। जालीदार दरवाजे से उसने देखा भीतर कोई पत्रकार उनका इंटरव्यू ले रहा था। टेपरिकार्डर छोटी सी मेज पर रखा था और ये कुर्सी पर झुके समझाने की मुद्रा में कुछ बातें कर रहे थे। मुरली बरामदे में ही टहलने लगा और इंटरव्यू खत्म होने की प्रतीक्षा करने लगा। वह पहले भी उनसे कई बार बातचीत कर चुका था और उनके द्वारा लिखे गए लेखों को वह बराबर पढ़ता रहता था। पिछले दो सालों में, दलीय राजनीति से अलग होने के बाद, उन्होंने पांच-छः पुस्तकें लिखी थीं। मुरली जानता था

कि वे आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण और डॉ० लोहिया की परम्परा की अंतिम कड़ी हैं और जनता पार्टी के निर्माण में उनका बहुत बड़ा योगदान था। जयप्रकाश नारायण को आपातकाल विरोधी आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए प्रेरित करने का काम उन्होंने ही किया था। आम सहमति के कार्यक्रमों पर विविध दलों को मिलकर काम करने के लिए एक मंच पर एकत्रित करने की रणनीति पर उन्हें पूरी आशा थी। लेकिन 1975 से ही वे एक पार्टी बनाने के पक्ष में नहीं थे। वे एक मोर्चा बनाने के पक्ष में थे जिसमें सभी राजनैतिक दल अपनी-अपनी पहचान को बनाए रख सकते थे और सत्ता में साझेदारी की भावना से लोकतंत्रीय संस्थाओं तथा नागरिक स्वतंत्रताओं की बहाली के लिए काम कर सकते थे। लेकिन विपक्ष के अन्य घटक एक पार्टी बनाने पर जोर दे रहे थे। विभुजी का कहना था कि एक पार्टी बनाने के लिए सब को अपने-अपने सहायक संगठनों का विलय करना आवश्यक होगा। अगर सब के छात्र-मजदूर संगठन आदि अलग-अलग काम करते रहेंगे तो पार्टी के घटकों में दोहरी निष्ठा बनी रहेगी और सही मायनों में पार्टी एक नहीं होगी। इसलिए दोहरी निष्ठा या दोहरी सदस्यता का सवाल उन्होंने जनता पार्टी को मजबूत बनाने के विचार से ही उठाया था। लेकिन पार्टी के दूसरे घटक शुरू से ही अपनी नीयत में साफ नहीं थे। जनता पार्टी की जीत के बाद उन्हें लगा कि उनके हाथ कुबेर का कोष आ गया है और वे सब अपने-अपने गुट के लिए अधिक से अधिक हथियाने और अपने गुट को मजबूत करने की गंदी राजनीति करने लगे। मोरार जी देसाई ने अपने मरे हुए गुट (संगठन कांग्रेस) को मंत्रिमंडल में सबसे ज्यादा पद दे दिए। सवर्ण जातियों की राजनीति करने वाले जनसंघ के गुट ने पिछड़ी जातियों के नेताओं के खिलाफ षड्यंत्र करने शुरू कर दिए और इसमें उन्हें मोरारजी गुट और ठाकुरों की राजनीति करने वाले चंद्रशेखर गुट का भी समर्थन मिलने लगा। उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा में पिछड़ी जातियों के तीन मुख्यमंत्रियों को इन्होंने षड्यंत्र करके हटाया और केन्द्र में भी पिछड़ी जातियों के नेताओं चरणसिंह और राजनारायण के खिलाफ अभियान छेड़ दिया। सत्ता की साझेदारी के जिस सिद्धांत पर जनता सरकार बनी थी, वह इस गंदी राजनीति के कारण टूट गया। विभुजी ने इसे बचाने का भरसक प्रयत्न किया किंतु लोग सत्ता के मद में अंधे हो चुके थे और विवेक-बुद्धि से काम लेने के मूड में नहीं थे। जनता पार्टी के जिस घटक को सब से ज्यादा समर्थन प्राप्त था उसे जनता पार्टी के अन्य घटकों ने जातीय विद्वेष के कारण अलग कर दिया। इससे जनता पार्टी का टूटना अनिवार्य हो गया। बाद में हुए चुनावों ने यह सिद्ध कर दिया कि जिस घटक को जनता पार्टी से निकाला गया था उसकी ताकत अन्य सभी घटकों की कुल ताकत से कहीं अधिक थी। लेकिन इन आत्मघाती गुटों ने इस सच्चाई को स्वीकार नहीं किया। वे विभुजी को ही दोषी ठहराते रहे क्योंकि उन्होंने मोरारजी के दल-बदल कानून को पास नहीं होने दिया। उनका विचार था कि दल-बदल कानून पास हो जाता तो जनता पार्टी से तिरस्कृत गुट, तिरस्कार को पीकर भी जनता पार्टी में बना रहता और सरकार न टूटती। इसके अतिरिक्त दोहरी सदस्यता के सवाल को लेकर विभुजी को बदनाम करने वाले खुद ही उस सवाल को लेकर आपस में लड़ मरे और अलग-अलग हो गए।

इंटरव्यू लेनेवाला पत्रकार कमरे से बाहर निकला तो मुरली ने कमरे में प्रवेश किया। काफी दिनों बाद मुरली को देखकर विभुजी के चेहरे पर आश्चर्य और प्रसन्नता के भाव प्रकट हुए।

"आओ, आओ। कहो कैसे हो? सुना है मंत्री बन गए हो?"

"जी, बना तो हूं लेकिन...? मुरली कहते-कहते रुक गया।

"लेकिन क्या? मंत्री बनना अच्छा नहीं लगता? आजकल तो सभी मंत्री बनना चाहते हैं।" संकोच से गड़े-गड़े मुरली बोला—

"जी, कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या करें। लगता था बैठे-बैठे दिल दिमाग पर ज़ंग लग जाएगी। हिमाचल में विपक्ष का मतलब है भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की राजनीति। वह हमसे नहीं हो सकती थी..."

"अरे सब ठीक है। कांग्रेस में गए तो कौन सा गुनाह कर दिया। फ्रस्ट्रेशन को पालने से तो बेहतर है कि जहां काम करने का मौका मिले, चले जाओ। सभी पार्टियां एक जैसी हैं। कांग्रेस, जनता, लोकदल इनमें क्या फर्क है? तुम्हारा नया मुख्यमंत्री कैसा आदमी है?"

"वैसे तो ठीकठाक है। लेकिन जनता का आदमी नहीं है।"

"अब जनता के आदमियों की ज़रूरत भी कहां है कांग्रेस को? चुनाव तो एक आदमी के करिश्मे से जीता जाता है। अब जनसमर्थन वाले नेता न कांग्रेस में हैं न विपक्षी दलों में।" विभुजी कुर्सी से उठकर किचन की तरफ बढ़ते हुए बोले—

"काफी पीओगे या चाय?"

"रहने दीजिए, इस वक्त इच्छा नहीं है..."

"अरे इसमें क्या है भई, मुझे भी पीनी है।"

"तो फिर आप बैठिए मुझे बताइए कहां है दूध काफी... मैं बनाता हूं।"

"तुम बैठो, मुझसे बढ़िया कॉफी तुम क्या बनाओगे?"

किचन में जाकर उन्होंने गैस जलाई और केटली में पानी उबलने के लिए चढ़ा दिया। मुरली ने कमरे का मुआयना किया। एक ही कमरा था जिसके आधे हिस्से में पर्दे के पीछे पलंग था। कोने में छोटा सा किचन था और दूसरे कोने में बाथरूम। कमरे में पुस्तकों से भरे पांच शेल्फ थे और फर्श पर भी दीवार के साथ पुस्तकों के ढेर लगे थे। एक छोटी सी मेज पर रिकार्ड प्लेयर पड़ा था और साथ था एक छोटा सा ट्रांजिस्टर। दीवारों पर चार बड़ी-बड़ी कलाकृतियां थीं और दीवार के साथ एक कोने में नागालैंड के मित्रों द्वारा भेंट में दिया गया एक भाला तथा एक टोपी। लिखने की मेज़ पर कागज को पकड़ने वाला गत्ते का एक पैड, स्याही से लिखने वाला पुराने फैशन का एक पैन और काले, लाल, नीले कई रंगों के स्केच पेनों और पेंसिलों से भरी एक गोल लंबोतरी डिबिया। एक कैंची, कागज चिपकाने वाली टेप तथा गोंद की शीशी थी।

कॉफी के दो प्याले दोनों हाथों में उठाकर किचन से आते-आते विभुजी बोले—

"सुना है महिलाओं के लिए बहुत अच्छा काम कर रही हैं रमा जी?"

"जी उन्होंने तो एक मिसाल कायम कर दी है। करीब पच्चीस-तीस हजार महिलाओं को रोजगार मिल रहा है। साक्षरता प्रचार का काम भी अच्छा चल रहा है।" मुरली ने बताया।

"इन रचनात्मक कार्यों का बहुत महत्त्व होता है। आजकल लोग इसका महत्व नहीं समझते। गांधी जी ने इन रचनात्मक कार्यों के माध्यम से ही स्वाधीनता आंदोलन का आधार मजबूत किया था। समाजवादी संगठन में भी सेवादल जैसी संस्थाओं ने जो काम किया, वह आधारभूत काम था। समाज की रूढ़ियों को तोड़ने वाले और अंतर्जातीय विवाह करनेवाले कार्यकर्ता सेवादल जैसी संस्थाओं ने ही तैयार किए हैं।"

"लेकिन विभुजी, ये काम तो अब तभी हो सकते हैं जब हमारा कोई अपना संगठन हो। समाजवादी दल को पुनर्जीवित किया जाए....."

विभु जी बीच में बरस पड़े–

"तुम लोग हवा में महल बनाने की सोचते हो? यह सब बेकार की बातें हैं। समाजवादी दल अब नहीं बन सकता। किसकी रुचि है इसमें? और क्या जरूरत है?"

"सब लोग चाहते हैं कि आप कोशिश करें....."

"नहीं, मेरे बस की बात नहीं है। मैं बहुत भुगत चुका हूं। कौन लोग चाहते हैं? कोई नहीं चाहता। किसीको समाजवाद से गर्ज नहीं है अब। सब एम.एल.ए, एम.पी. बनना चाहते हैं, सत्ता हासिल करना चाहते हैं, पैसा चाहते हैं। कोठी-बंगलों में रहना चाहते हैं।"

"ऐसी बात नहीं है विभुजी, बहुत लोग चाहते हैं....."

"कौन लोग हैं भई, तुम बीस लड़के तो ढूंढ कर लाओ। नहीं मिलेंगे तुम्हें। तुम्हारे पास बांटने के लिए कुछ है तो फौरन मिल जाएंगे, देने के लिए कुछ नहीं है तो कोई नहीं मिलेगा। सब बेकार की बातें हैं। अब वो दिन गए। वह राजनीति अब नहीं हो सकती जब एक जीप से लोकसभा का चुनाव लड़ा जा सकता था। राजनीति अब पैसे का खेल है।"

विभुजी कुछ गुस्से में आकर ऊँची आवाज में बोलने लगते थे तो उनको तकलीफ होती थी। इसलिए मुरली ने आगे जिरह नहीं की। कुछ देर चुप रहने के बाद उसने बात बदली। हिमाचल प्रदेश की राजनीति पर इधर-उधर की बातें और फिर अपने अखबार के संबंध में चर्चा करने के बाद बोला–

"आप तो जानते हैं कि मेरे जैसे बहुत से लोग जब समाजवादी आंदोलन से जुड़े थे तो हमारे सामने एक सपना था। हम सोचते थे कि जातिवाद की भावना धीरे-धीरे ही सही, लोगों में कम होगी। धार्मिक कठमुल्लापन कम होगा। नरक की तरह जिंदगी बिताने वाली आधी जनसंख्या की हालत में सुधार होगा। लेकिन अब देख रहे हैं कि इससे उलट हो रहा है। सबसे बड़ी बात कि देश की एकता को भी खतरा पैदा हो रहा है। क्षेत्रवाद बढ़ता जा रहा है। देश का विघटन करने वाले तत्व जगह-जगह सिर उठा रहे हैं। ये सारी स्थितियां बेचैन तो करती है। क्या करें ऐसी हालत में? जब हम सब चीजों को लाचारी की भावना से देखते हैं और कुछ नहीं कर पाते तो अपने से ही झुंझलाहट होती है....."

"यह झुंझलाहट तो सभीको होती है। हमें क्या नहीं होती? लेकिन इसके लिए अपना सिर फोड़ कर भी क्या होगा? जो जिस हालत में है उसे उसी हालत में काम करना पड़ेगा। काम छोड़कर बैठ जाना ठीक नहीं है।"

उन्होंने रिकार्ड प्लेयर पर कुमारगंधर्व के भजनों का रिकार्ड लगाया। उनका पुराना नौकर शोभन इस बीच कमरे में आ गया था और वह उनकी दवा की गोलियां तथा पानी का गिलास लेकर सामने आ खड़ा हुआ था। दवा लेने के बाद विभुजी कुमार गंधर्व की लय में थोड़ी देर के लिए डूब गए। फिर अचानक उन्होंने पूछा–

"तुम्हारे पास क्या विभाग हैं?"

मुरली ने बताया कि शिक्षा, युवा तथा महिला कल्याण और सहकारिता विभाग हैं।

वे बोले–

"बुरे नहीं हैं। तुम अपने विभाग में ही कोई योजना बनाओ। युवा लड़के-लड़कियों के शिविर आयोजित करो। उन्हें वहां प्रशिक्षण दो। स्वतंत्रता आंदोलन और राष्ट्रीय मूल्यों पर वहां भाषण चर्चाएं कराओ। धार्मिक सहिष्णुता, जात-पांत के संबंध में उदारता, स्त्री-पुरुष समानता, कर्म के प्रति निष्ठा ये सब बातें हैं जो नई पीढ़ी को सिखाई जानी चाहिए। किसी भी पार्टी की सरकार हो यह काम तो कर ही सकती हैं। इस समय हमारे राष्ट्रीय मूल्यों का क्षय हो रहा है। स्कूल-कालेज बच्चों को तैयार कर रहे हैं कैरियर की दौड़ के लिए। एक-दूसरे का गला काटने वाली प्रतियोगिताओं के लिए। नई पीढ़ी को कुछ अच्छे मूल्यों की दीक्षा मिलेगी तो आगे चलकर राजनीति में भी अच्छे मूल्य आएंगे। और कोई रास्ता नहीं है। पार्टियां सब एक जैसी हैं। कांग्रेस की जगह विपक्षी दलों की सरकार बन जाएगी तब भी क्या राजनीति का वर्तमान क्षय रुकेगा? दूसरी पार्टियां कांग्रेस से किस रूप में भिन्न हैं? उन्नीस-बीस का फर्क हो सकता है। कुछ बातों में विपक्षी दल कांग्रेस से भी बदतर हैं। कांग्रेस में जैसा भी हुआ, नेतृत्व परिवर्तन तो होता रहा। उसमें नौजवान पीढ़ी आगे आई। और उसे मौका भी मिला। किसी वक्त समाजवादी पार्टी नौजवानों की पार्टी कही जाती थी। उसके औसत कार्यकर्ता पच्चीस-छब्बीस वर्ष के होते थे। अब नौजवान पीढ़ी को आगे लाने का काम सिर्फ कांग्रेस में हो रहा है। दूसरी पार्टियों के नेता बूढ़े हो गए हैं लेकिन वे नेता का पद नहीं छोड़ना चाहते। साम्यवादी पार्टियों में सबसे कम उम्र के नेता 70 साल के ऊपर के हैं। दूसरी पार्टियों की हालत भी ऐसी ही है। क्या होगा इस बूढ़े नेतृत्व से। यह ठीक है कि कांग्रेस पार्टियों में जो नौजवान तबका आया वह अधिकतर रिफरेफ तबका था लेकिन नौजवान आए तो सही। दूसरी पार्टियां तो नौजवान नेतृत्व तैयार ही नहीं कर रही हैं।"

मुरली ध्यान से उनकी बातें सुन रहा था और उसके मन का कुहासा भी धीरे-धीरे छंटता हुआ लग रहा था। अंधेरे में रोशनी की एक लकीर सी उसे दिखाई देने लगी थी। विभुजी ने रिकार्ड प्लेयर पर देबू के सितार वादन का रिकार्ड लगाया और धीरे-धीरे उसकी लय की लहरें कमरे में उठने लगी थीं। मुरली ने अपनी अंतिम शंका प्रकट की–

"विभु जी, मन में बार-बार प्रश्न उठता है कि क्या समाजवादी आंदोलन, समाजवादी विचारों का अब कोई भविष्य नहीं है?"

"कौन कहता है कि समाजवादी विचार का कोई भविष्य नहीं है इस देश में? पार्टी या संगठन टूट सकते हैं, लेकिन विचार नहीं मरता। विचार तभी मिटता है जब समाज के लिए वह विचार बेकार हो जाता है। समाजवादी विचार की प्रासंगिकता इस देश में खत्म नहीं होगी। जन्म-जाति, लिंग और धन के आधार पर बनी गैर-बराबरी के खिलाफ इस देश को लंबी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। समता की यह कल्पना हमारे लिए बिल्कुल नई है। हमारे इतिहास, हमारी संस्कृति में कभी आदमी-आदमी के बीच बराबरी को स्वीकार नहीं किया गया। ईश्वर की नजरों में सब बराबर है, मरने के बाद सब को बराबर का न्याय मिलेगा, इस तरह की बातें तो की जाती रहीं लेकिन रोजमर्रा की जिंदगी में, व्यवहार में हमने कभी बराबरी को स्वीकार नहीं किया। और तो और शूद्र कही जानेवाली जातियों के खिलाफ हमारे प्राचीन इतिहास में इतना कूड़ा भरा है कि पूर्वाग्रहों को लोगों के दिमाग से निकालने के लिए हमें शायद सदियों तक प्रयत्न करने पड़ेंगे।"

"लेकिन यह तो लंबी योजना हुई, दीर्घकाल की। लोहिया जी के शब्दों में कहूं तो निर्गुण समाजवाद हुआ। सगुण समाजवाद का क्या भविष्य है?"

"समाजवादी सरकार की संभावनाएं भी खत्म नहीं हो गई हैं। आज जितनी भी पार्टियां हैं वे अपनेमें नई ऊर्जा भरने के लिए समाजवादी कार्यक्रम की ओर झुकती हैं। साम्यवादी पार्टियां अब नाम की साम्यवादी रह गई हैं, व्यवहार में वे समाजवादी हैं क्योंकि चुनाव की राजनीति, लोकतंत्री अधिकारों के लिए संघर्ष समाजवादी विचार हैं, साम्यवादी नहीं। भाजपा जैसी दक्षिणपंथी पार्टी भी गांधियन समाजवाद को पार्टी के आधारभूत विचार के रूप में स्वीकार करती है। अन्य पार्टियां तो समाजवादी हैं ही। फिर इस देश की राजनीति में जब भी बड़े परिवर्तन आए हैं उनके पीछे समाजवादियों का हाथ मुख्य रूप से रहा है, चाहे 1967 का परिवर्तन हो या 1977 का। कारण यह है कि समाजवादी सभी वर्गों की सत्ता में साझेदारी के सिद्धांत को मानते रहे हैं। उनमें सिद्धांतों की कट्टरता और गैर-लचीलापन इतना नहीं है जितना कि साम्यवादी पार्टियों या भाजपा जैसी पार्टियों में। दूसरों को साथ लेकर, दूसरों से मिलकर और उनको उनका उचित हिस्सा देते हुए काम करने की भावना सिर्फ समाजवादियों में है। इसलिए इस देश में कांग्रेस के विकल्प के रूप में जब भी कोई समीकरण उभरेगा उसमें समाजवादियों का हाथ रहेगा। पहले भी ऐसा हुआ, आगे भी ऐसा होगा। यह ठीक है कि जब यह समीकरण विफल होता है तो बदनामी समाजवादियों की होती है। आगे बढ़कर काम करने वाले, सृजन करने वाले की हमेशा यही नियति होती है। सफलता का श्रेय दूसरे ले जाते हैं और असफलता के लिए बदनामी उसे मिलती है। इसपर दुखी होने की जरूरत नहीं। यह समाज का दस्तूर है। कुछ करने, कुछ गढ़ने, कुछ सोचने, सपना देखने और उसके लिए जमीन तैयार करने की प्रक्रिया नहीं रुकनी चाहिए। हार के बाद भी नहीं, निराशा के बाद भी नहीं।"

दरवाजे की घंटी बजी। बाहर तीन-चार लोग खड़े थे। शोभन ने दरवाजा खोला। मुरली जब कमरे से बाहर आया तो उसके मन में कई बातें स्पष्ट हो चुकी थीं। निराशा से उत्पन्न अवसाद का बोझ काफी कम हो गया था।

विभुजी से मिलकर शिमला लौटने के बाद मुरली परामर्श के लिए रमा के पास पहुंचा। रमा महिला मंडल की प्रदर्शनी में अत्यंत व्यस्त थी। प्रदर्शनी इस बार बहुत सफल रही थी और इसमें मुरली का सहकारिता मंत्री के रूप में सहयोग रहा था। नये मुख्यमंत्री राजा वीरदमन भी प्रदर्शनी को देख कर प्रभावित हुए थे, विशेष कर यह जान कर महिला कितनी ही औरतों को आत्मनिर्भर जीवन बिताने के लिए तैयार कर रहे थे। उन्होंने महिला मंडल का विस्तार करने और उनका अनुदान बढ़ाने के प्रस्ताव मान लिए थे। महिला मंडलों के अंतर्गत विभिन्न स्थानों पर पांच फैक्टरियां मंजूर की गई थी जो खाद्य पदार्थों को डिब्बों में बंद करके सप्लाई करने का काम करने वाली थीं।

जिस दिन रमा को प्रदर्शनी से फुर्सत मिली, मुरली ने उनके सामने अपनी योजना रखी।

''मैंने मुख्यमंत्री के सामने एक प्रस्ताव रखा है'', मुरली ने कहना शुरु किया, ''मुझे उम्मीद है कि मुख्यमंत्री मान जाएंगे। अपनी छवि को चमकाने के लिए कुछ नया काम राज्य में हो, इसके लिए वे बहुत उत्सुक हैं। लेकिन मुझे लगता है कि योजना का विरोध भी बहुत होगा।''

''योजना क्या है, यह तो बताओ।'' रमा ने पूछा।

''योजना यह है कि प्रदेश के दस स्थानों पर लड़के-लड़कियों के दस शिविर लगाए जाएं। कम-से-कम सात दिन के शिविर हों। एक शिविर में लगभग 500 शिविरार्थी हों। लड़के-लड़कियां एक ही जगह अलग-अलग कमरों या तंबुओं में ठहरें। एक ही लंगर में सबका खाना बने और खाना बनाने का काम भी लड़के-लड़कियां आपस में मिल-बांट लें। आशय यह कि नई पीढ़ी के लड़के-लड़कियां जात-पांत का भेद-भाव किए बिना एक जगह सात दिन रहें, मिलकर काम करें, मिलकर खाएं-पीएं और मिलकर सीखें-सिखाएं। शिविरों में विचार-विमर्श, चर्चाएं भी हों जिससे शिविरार्थियों का ज्ञान बढ़े और उन्हें अपनी बात कहने का मौका मिले। इसके अलावा लड़के-लड़कियां मिलकर सात दिनों में कुछ रचनात्मक कार्य भी करें। जैसे मिट्टी का क्षरण रोकने के लिए पेड़ लगाना, नदी-नालों के किनारों को मजबूत करना या गांव के टूटे-फूटे रास्तों को ठीक करना। प्रत्येक शिविरार्थी को कम से कम पचास रुपये रोज का भत्ता मिलेगा और उनके खाने-पीने की व्यवस्था सरकार की तरफ से होगी।''

''खर्चा कितना होगा?'' रमा ने पूछा।

''यही बीस-पच्चीस लाख।''

"और उपलब्धि क्या होगी?"

"ठोस उपलब्धि तो शायद कुछ भी न हो। हो सकता है कुछ पेड़ लग जाएं, कुछ रास्ते ठीक हो जाएं। लेकिन मैं निर्गुण, निराकार उपलब्धि की उम्मीद लगाए बैठा हूं।"

"वह क्या?"

"कि नई पीढ़ी ऊँच-नीच की कैद से मुक्त हो। वह अपने पिंजरों से बाहर आए। न जाने क्यों, मै जब नई पीढ़ी को देखता हूं तो मुझे दहशत होती है। शहरों की नई पीढ़ी तो सिनेमा-टेलिविजन में प्रस्तुत माडलों के अनुसार ढल चुकी है। गांवों में यह रोग तेजी से फैल रहा है। अच्छा लड़का या लड़की होने का मतलब एक खास ढंग से रहना, एक खास ढंग से हंसना, बोलना और व्यवहार करना। और यह खास ढंग सिखा रही है विज्ञापन कंपनिया, उपभोक्ता माल बेचने वाली और उपभोक्ता संस्कृति का पोषण करने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियां। लगता है नई पीढ़ी की शक्ल में किसी दूर-दराज के कारखाने में कठपुतले और कठपुतलियां गढ़ी जा रही हैं, जो वही बोलती हैं जो उनसे कहलवाया जाता है। बड़ी खतरनाक बात यह है कि नई पीढ़ी में बैकलैश हो रहा है। औरत-मर्द के भेदभाव को खत्म करने के बजाय नई पीढ़ी में इस भेदभाव का रुझान बढ़ रहा है। लड़कों में दाढ़ी-मूछों का फैशन मुझे स्त्री मुक्ति आंदोलन का बैकलैश लगता है गोया आज हर नौजवान पुरुष के रूप में अपनी विशिष्टता का विज्ञापन करना चाहता हो। छुआछूत और ऊँच-नीच की भावना के खिलाफ जो थोड़ा सा माहौल बना था वह भी बिगड़ रहा है। जैसे एक षडयंत्र के तहत इस समाज को पुन: धार्मिक कट्टरवाद और जातिवाद के अंधेरे में धकेला जा रहा है।"

रमा मुरली की बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। सांतो भी चुपचाप मुरली की तरफ टकटकी बांधे देख रही थी। मुरली को जैसे सांतों की उपस्थिति की खबर ही नही थी। सातो इस बात पर हैरान थी कि मंत्री बनने के बाद मुरली ने कभी उसकी तरफ उस नजर से नहीं देखा जिस नजर से वह देखा करता था और जिस नजर से बचने के लिए सातो को हमेशा कुछ रणनीति कुछ युक्ति अपनानी पड़ती थी। उसने कुछ व्यंग्य से मुरली की तरफ देखा और कहा—

"मंत्री जी जिस बात से डर रहे हैं वह क्या सात दिन के खेल-तमाशे से रुक जाएगी?"

मुरली ने सांतों की तरफ देखा। सांतो में सचमुच एक नया निखार आ गया था और मुरली का उसे न देखने की कोशिश करना व्यर्थ था। वह सातो की तरफ देखकर मुस्करा दिया—

"हम जानते हैं कि हमें अपनी मनचाही चीज मिलने वाली नही है लेकिन क्या उसके लिए कोशिश भी न करें?"

"कोशिश करने को मैं मना तो नहीं करती। लेकिन मनचाही चीज के संबध में मन साफ तो होना चाहिए।"

"मन साफ होने का सबूत क्या दूं? रमाजी आप ही कुछ बताओ न।" रमा हंस दी। बोली—

"न मैं तुम्हारी मनचाही चीज के बारे में कुछ कहूंगी और न मन की सफाई के बारे में। मेरी नजर में तुम दोनों बेवकूफ हो। लेकिन जहां तक तुम्हारी शिविर योजना का संबंध है मुझे यह पसंद है। मुझे एक ही संदेह है कि यह सब करोगे कैसे। यह इलाका तो इतना पिछड़ा है कि एक साथ खाने-पीने और रहने की बात से लोग बिदकेंगे।"

मुरली कुछ सोचकर बोला—

"मैं यह काम आपके भरोसे कर रहा हूं। आप कोशिश करें तो काम हो सकता है।"

"मुझे पहले ही कई तरह की बातें सुननी पड़ती हैं।"

"फिर भी आपकी बात लोग मानते हैं। आप कुछ तरीका निकाल सकती हैं।"

"देखो, मेरी समझ में एक बात आती है। अगर लोगों को कुछ रोजगार मिलने की संभावना हो, कुछ आमदनी की उम्मीद हो तो लोग जात-पांत का ज्यादा ख्याल नहीं करते। क्या तुम्हारी योजना से चार-पांच सौ लड़के-लड़कियों को रोजगार मिल सकता है?"

"मेरी तो समझ में नहीं आता कि नियमित रोजगार कैसे मिल सकता है।"

"साल छह महीने के लिए ही सही"।

"लेकिन कैसे? कोई काम तो हो जिस पर लड़के-लड़कियां को लगाया जाए।"

"काम तो हम सोच लेंगे। पैसे की व्यवस्था हो जाएगी?"

"वह भी आसान नहीं है।"

"अपने विभागों की फिजूल खर्ची बंद करा सको तो इसमें कुछ भी मुश्किल नहीं है।"

"खैर, फर्ज करो लड़-झगड़ कर पैसे की व्यवस्था कर भी लूं लेकिन काम क्या होगा?"

"पैसे की व्यवस्था तुम करो, काम का इन्तजाम मैं करूंगी। मेरे मन में कई बार यह विचार उठा है कि जनता के नाम पर सारी सरकार चलती है। जनता के नाम पर मंत्री और अफसर लोग राजाओं नवाबों जैसी ठाठ की जिंदगी बसर करते हैं, लेकिन इनमें से कोई जनता की खोज-खबर नहीं लेता। कोई जनता के पास उसके दुःख-सुख का पता करने के लिए नहीं जाता। पांच साल में एक बार नेता लोग वोट मांगने जरूर जाते हैं लेकिन यह मौका ऐसा होता है कि जनता नेताओं की शक्ल देख लेती है। आजकल मंत्रियों की कोठियों में दर्शनार्थी जनता भी आती है। अक्सर इनमें अपना कुछ काम कराने कोटा, परमिट मांगने वाले या नौकरी-बदली चाहने वाले होते हैं जो बदले में नेताओं के दलाल, मौके-मौके पर उनके लिए लोगों की भीड़ जमा करने वाले बनते हैं। जनता के बारे में उनका ज्ञान उतना ही होता है जितना उन्हें अपने दलालों से मिलता है। मेरा विचार है कि अगर लड़के-लड़कियों की छोटी-छोटी टोलियां गांव-गांव में और घर-घर में जाएं, लोगों से मिलें, बातचीत करें और उनके दुःख-तकलीफों, उनकी समस्याओं की जानकारी हासिल करें, उनको जानकारी दें और उनसे जानकारी लें तो इससे और भले ही कुछ न हो जनता में यह विचार ले आएगा कि किसी ने उसकी सुध-बुध ली। यह काम सरकारी अमला नहीं कर सकता है क्योंकि जैसे ही सरकार बीच में आती है, संबंध में एक दुराव आ जाता है। पता नहीं क्यों इस देश में शासक और जनता के बीच की खाई भरने के

बजाय और चौड़ी होती जा रही है। जो भी सरकार के घेरे में आता है वह आम आदमी स कट जाता है। शायद इसका कारण यह रहा हो कि यहां शासन करने और चलानेवालों की भाषा, वेश-भूषा रहन-सहन सब कुछ जनता से अलग रहा।.....

"मेरे मन में विचार है कि लड़के-लड़कियों की छोटी-छोटी टोलियां हों जिनमें छोटी-बड़ी जातियों के लड़के-लड़कियां मिल कर काम करें। वे अपने-अपने इलाके में घूमें, हर परिवार मे मिलें और उस परिवार की जानकारी अपनी नोटबुक में लिखें। किस परिवार में कितने लोग हैं, कितने बच्चे हैं, वे क्या करते हैं। कौन किस रोजगार में लगा है, किस घर में कोई कमानेवाला नहीं है, किसमें गुजारे का कोई साधन नहीं हैं। मतलब यह है कि लड़के-लड़कियों की यह टोली अपने इलाके के प्रत्येक घर की पूरी जानकारी से लैस हो। फिर ये टोलियां अपने-अपने इलाकाई केन्द्रों में मिलें और अपने अनुभवों का आपस में आदान-प्रदान करें। साल में एक बार सारे प्रदेश की टोलियों का सम्मेलन हो। इकट्ठी की गई जानकारी के आधार पर सर्वे की रिपोर्ट तैयार की जाए और फिर सरकारी अधिकारियों के सामने सुझाव रखें जाएं। हो सकता है कि इसमें कुछ भी न निकले लेकिन युवा पीढ़ी को एक संस्कार तो मिलेगा। लोगों के साथ बराबरी के स्तर पर मिलने, उनके सुख-दुख में साझेदार बनने और एक-दूसरे की मदद करने की भावना तो उनमें आएगी। सरकार चाहे तो इन टोलियों का बहुत अच्छा इस्तेमाल कर सकती है। वह उनकी सर्वे रिपोर्टों से फायदा उठा सकती है, इनके माध्यम से प्रौढ़ साक्षरता का काम या जनचेतना जगाने का काम कर सकती है। यह भी हो सकता है कि ये टोलियां जनता और सरकार के बीच कड़ी के रूप में काम करने लगें। यह भी हो सकता है कि सरकारी तंत्र के समानांतर स्वयंसेवी लोक समितियों के रूप में काम करने लगें। फिलहाल तो मुद्दा इतना ही है कि नई पीढ़ी के लड़के-लड़कियों को लोगों से मिलने और उनकी समस्याओं से परिचित होने का अवसर जुटाया जाए। हर साल करीब पांच-सौ लड़के-लड़कियों का बैच तैयार हो और साल भर के लिए उन्हें छह-सात सौ रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिले।"

मुरली बड़े ध्यान से रमा की बात सुन रहा था। उसे यह जानकर आश्चर्य हो रहा था कि इतनी व्यस्तताओं में रमा को इस तरह के स्वप्न बुनने का समय कब मिलता होगा। मुरली उस स्वप्न की जो छोटी सी झलक पा सका था उससे इतना अनुमान तो वह लगा सकता था कि स्वप्न की सारी रंग-रेखाएं अभी स्पष्ट नहीं हैं। लेकिन इसमें अनंत संभावनाएं हैं। मन ही मन उसने सरसरी तौर से हिसाब लगाया, लगभग 50 लाख हर साल का खर्च है।

वह जाने को तैयार हुआ तो रमा ने उसे पकड़ कर बिठा लिया। बोली—

"इतने दिनों बाद तो आए हो। खाना खाए बगैर नहीं जाना है। किरण भी अब आनेवाली ही होगी। उसका स्कूल 11 बजे बंद होता है। उसे पता चलेगा कि तुम आए थे और बिना मिले चले गए तो बहुत नाराज होगी।"

मुरली को अकेला कमरे में छोड़ कर रमा रसोई में जाकर सांतो का हाथ बटाने लगी।

मुरली के मन में विचारों का एक ज्वार सा उठने लगा। रमा की बातो ने जैसे बिजली के

तार छूने का सा असर किया था। क्या इस प्रयोग के लिए अपने विभाग की फिजूल खर्ची की कटौती करके पचास लाख रुपये की बचत नहीं की जा सकती? वह तुरंत वहांसे निकलकर अपने दफ्तर पहुंचना चाहता था और विभाग की बजट वितरण की फाइलें मंगवा कर उनका मुआयना करना चाहता था और संभावनाओं का पता लगाना चाहता था। उसे लगा कि इस छोटे से प्रयोग के भीतर बहुत कुछ छिपा है। इसका जल्दी फल भले ही कुछ न निकले लेकिन कालांतर में इसका लाभ अवश्य होगा। हर साल पांच सौ युवक-युवतियों को राष्ट्रीय मूल्यों के सस्कार मिलें तो यह सब व्यर्थ नहीं जाएगा। ये युवजन जहां भी जाएंगे, जिन कामों में भी लगेंगे, इन संस्कारों का कुछ न कुछ असर तो उनपर रहेगा और अगर इन युवजनों को आगे करके कोई राजनैतिक संगठन तैयार किया जा सकता है तब तो इस देश की रानीति में अद्भुत रंगत आएगी। धार्मिक कट्टरता से मुक्त, जाति-पाँति के भेद से मुक्त, बराबरी और भाईचारे की भावना को मन में लिये हुए, सादगी और मेहनत से जिंदगी बसर करने की क्षमता को लिये हुए युवजनों के ये दल इस देश में क्या नहीं कर सकते?

उसे विभुजी की बात याद आई। क्या सचमुच दिल्ली जैसे शहर में निःस्वार्थ भाव से काम करने वाले बीस-तीस लड़के-लड़कियां मिलना भी मुश्किल है? सोप-ओपेराओं के रास्ते धनी देशों द्वारा गरीब देशों पर थोपी जा रही भोग-संस्कृति की बाढ़ को रोकने का क्या सचमुच कोई उपाय नहीं है? क्या हम इतने बेबस और लाचार हो गए हैं कि अपने ऊपर थोपे जा रहे विचारों और मूल्यों का प्रतिरोध करने की क्षमता भी हममें नष्ट हो गई है? क्या संस्कृति के इस हमले के प्रतिकार का एकमात्र रास्ता यही है कि हम केंचुए की तरह अपनी कुंडली में सिमट जाएं या कछुए की तरह अपने खोल में छिप जाएं? क्या इस हमले से डरकर धार्मिक कट्टरवाद और आदिम समाज के अंध-विश्वासों में खो जाना ही एकमात्र रास्ता है?

सत्याग्रह, प्रतिकार, विद्रोह, सिविल नाफरमानी गांधी जी के इन शब्दों का मतलब क्या इनना ही था कि विदेशी सत्ता से मुक्ति के लिए इन हथियारों का इस्तेमाल हो? क्या इन हथियारों की हमें नित्य-प्रति के जीवन में आवश्यकता नहीं है? इस जीवन में जहां हमारे प्रत्येक क्षण में कोई षड्यंत्र हस्तक्षेप कर रहा है जो हमें एक पूर्व निश्चित ढंग से सोचने, काम करने, चीजों को पसंद-नापसंद करने के लिए मजबूर कर रहा है, क्या पलायन के सिवा कोई चारा नहीं और सत्याग्रह, प्रतिकार, विद्रोह के जरिये संघर्ष करने की सारी संभावनाएं चुक गई हैं?

मुरली की विचार-तंद्रा को तोड़ा किरण ने। फटाक से दरवाजा खोलकर उसने अपने भारी-भरकम बस्ते को फर्श पर फेंका और दौड़ कर मुरली के गले से लिपट गई।

"चाचाजी, आप इतने दिन आए क्यों नहीं?" किरण ने मुरली की ठोड़ी को अपनी तरफ खीच कर सवाल किया।

"अरे,अभी कुछ दिन पहले ही तो आया था।" मुरली ने सफाई दी।

"कुछ दिन पहले? जानते हैं कितने दिन हुए?"

"कितने?"

"आप ही सोचो। जब पिछली बार आए थे तो अप्पू, कप्पू और कालू इतने-इतने थे?"

"और अब कितने-कितने हैं? मैंने तो देखा ही नहीं उन्हें।"

"देखेंगे कैसे, यहां हों तो?"

"कहां हैं?"

"बड़े हो गए और अपने घर चले गए।"

"तुमने जाने दिया उन्हें? रोका क्यों नहीं?"

"मैं कैसे रोकती? वो अपनी मां के पीछे-पीछे चले गए और फिर लौट कर आए ही नहीं।'

"कोई बात नहीं। अगली बार जब बिल्ली बच्चे देगी तो फिर यहां छोड़ जाएगी।"

किरण को एकदम कुछ याद आया और उसने प्रसंग बदल कर पूछा—

"अच्छा चाचाजी, एक बात पूंछू?"

"पूछो?"

"क्या आप बिल्कुल बुद्धू हैं?"

"किसने कहा मैं बुद्धू हू। तुम्हें क्या मैं बुद्धू लगता हूं?"

"नहीं, मुझे नहीं लगते। तभी तो पूछ रही हूं कि क्या आप बुद्धू हैं?"

"लेकिन यह बात कही किसने?"

सांतो रसोई से भागकर इस क्षण वहां पहुंच गई थी। वह किरण का हाथ पकड़ कर बोली—

"बहुत बातूनी हो गई हो तुम। चलो चलकर हाथ मुंह धो और कपड़े बदलो। खाना तैयार है। तुम्हारे चाचाजी को भी भूख लगी है।"

किरण अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए बोली—

"ठहरो तो, पूछ लेने दो। तुम झूठ-मूठ कहती हो कि तुम्हारे चाचा बुद्धू हैं?"

सांतो गुस्से से आंखें तरेर कर वहां से चल दी। मुरली जोर से हंस पड़ा।

"इसका मतलब तुम्हारी दीदी कहती हैं कि मैं बुद्धू हूं।"

"हां, दीदी बहुत खराब है न……?"

"तुम खराब कहती हो? वह तो एकदम पगली है पगली।"

"नहीं, दीदी बहुत अच्छी है।" किरण को गुस्सा आ गया।

"अच्छा भई, माफ करो। अब तुम्हारी दीदी को कभी पगली नहीं कहूंगा।"

"और दीदी भी आपको बुद्धू नहीं कहेंगी?"

"तुम्हें कैसे पता कि नहीं कहेगी?"

"आमने-सामने बात हो गई न……अब थोड़े ही झूठ बोलेंगी।"

रमा किचन में सारी बातें सुन रही थी और हंसे जा रही थी।

खाना खा चुकने के बाद जब सांतों किरण को लेकर दूसरे कमरे में चली गई तो रमा ने पूछा—

"कल तुम्हारा क्या प्रोग्राम है?"

"कुछ खास नहीं। कोई काम है?"

"है तो सही, लेकिन तुम करोगे?"

"मैंने आपके काम के लिए कब मना किया है?"

"तो फिर कल मैरिज रजिस्ट्रार के यहां चलना है तुम दोनों को।"

मुरली रमा की तरफ देखता रह गया।

"देखते क्या हो? कल चलकर डिकलेरेशन भरो और एक महीने बाद शादी करो।"

मुरली कोई उत्तर नही दे पाया तो रमा ने कहा—

"डरो नहीं, इस बात को लेकर कोई भूचाल नहीं आ जाएगा। तुम्हारी मिनिस्ट्री पर कोइ आच नहीं आएगी।"

मुरली धीरे से मुस्करा दिया।

युवा शिविरों की योजना के लिए धन की व्यवस्था करने में विशेष दिक्कत नहीं आई। कारण यह कि उस साल के स्वीकृत बजट में युवा लड़के-लड़कियों के खेलकूद और भ्रमण कार्यक्रमों के लिए पहले से ही धन की व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक वर्ष के बजट में इस प्रकार के कार्यक्रमों के लिए धन-राशि स्वीकृत होती थी और अक्सर उसका उपयोग किसी बड़े नेता की जंयती मनाने अथवा शासकदल की छवि बनाने के लिए किया जाता था। आमतौर पर यह पैसा शासकदल के निठल्ले कार्यकर्ताओं और दलालों की जेब में जाता था। मुरली को बस एक हजार युवक-युवतियों के देश भ्रमण के पच्चीस दिवसीय कार्यक्रम को और दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम में राष्ट्रीय एकता दौड़ तथा एशियाई खेलों की तैयारी के रूप में सात दिवसीय खेल-कूद एवं सांस्कृतिक प्रोग्राम को काटना पड़ा। दूसरे प्रोग्राम को काटने में काफी समस्या खड़ी हुई। चूंकि यह प्रोग्राम राष्ट्रीय था और इसका संबंध राष्ट्रीय नेताओं की छवि से था, मुख्यमंत्री को लगा कि इस प्रोग्राम को काटना एक तरह से केन्द्रीय नेतृत्व के खिलाफ विद्रोह करना है। लेकिन मुख्यमंत्री के लिए मुरली की बात को काटना भी आसान नहीं था। मुख्यमंत्री जानते थे कि मुरली प्रधानमंत्री सचिवालय की लाबी का आदमी है और मुरली की वजह से ही उनका नाम मुख्यमंत्री पद के उम्मीदवारों की सूची में शामिल किया गया था। सबसे पहले इस बात की सूचना भी उन्हें मुरली से ही मिली थी और तब उन्होंने पहले तो इसे मजाक के रूप में ही लिया था। लेकिन जब उस रात सचमुच उन्हें प्रधानमंत्री सचिवालय से फोन आया तो वे मुरली के प्रति कृतकृत्य हो गए थे। लेकिन राष्ट्रीय एकता की दौड़ और राष्ट्रीय एकता के खेल-कूद और सांस्कृतिक कार्यक्रम में राज्य का प्रतिनिधित्व न हो, यह कैसे हो सकता था? मुरली को इसके लिए वैकल्पिक सुझाव देना पड़ा कि राष्ट्रीय कार्यक्रम में कांग्रेस पार्टी के

कार्यकर्ताओं में से लड़के-लड़कियों का चुनाव हो और उन्हें पार्टी के खर्चे से वहां भेजा जाए। पार्टी के कार्यकर्ता लोगों से चंदा जमा करके यह राशि एकत्रित कर सकते हैं।

तथापि एक साल के लिए पांच सौ युवक-युवतियों को क्षेत्रीय सम्पर्क के काम में लगाने की योजना के लिए धन की व्यवस्था करने की कोई सूरत नजर नहीं आई। मुरली ने अपने विभागों के बजट की सारी मदों का निरीक्षण किया। राज्य स्तर की संगोष्ठियों और सम्मेलनों के लिए दस लाख की राशि स्वीकृत थी। इन सभी सम्मेलनों और संगोष्ठियों को रद्द करना भी आसान नहीं था। अलबत्ता मुरली ने देखा कि ओवरटाइम की मद में उसके सभी विभागों में लगभग एक करोड़ रुपये खर्च होते हैं। अगर ओवर टाइम पर कड़ा प्रतिबंध लगा दिया जाए तो क्षेत्रीय सम्पर्क की योजना के लिए धन-राशि उपलब्ध हो सकती है। लेकिन पता चला कि कुछ विभागों में ओवरटाइम को बंद कर देना और बाकी के विभागों में उसका चलते रहना, व्यावहारिक नहीं होगा। यह मामला जरूर कैबिनेट में जाएगा और वहां इसके लिए कोई तैयार नहीं होगा। इसी तरह सरकारी गाड़ियों पर काफी फिजूलखर्ची हो रही थी लेकिन इसमें भी किसी तरह की कटौती, सभी मंत्रियों की सहमति के बिना नहीं हो सकती थी।

अतः तय हुआ कि पहले शिविरों की योजना पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाए और दूसरे कार्यक्रम के लिए धन-स्रोतों की खोज जारी रखी जाए।

प्रयोग के तौर पर पहला सात दिवसीय शिविर अंदरेटा में करना तय किया गया। उसके लिए भोजन तथा आवास की व्यवस्था की जिम्मेवारी आस-पास के सात-आठ गांवों की महिला संस्थाओं की एक कमेटी पर डाली गई। रूपा को इस कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया। शिविर के सात दिनों में लड़के-लड़कियों को क्या-क्या काम करने हैं और उनमें गांव वालों का सहयोग किस प्रकार प्राप्त करना है इसका फैसला करने की जिम्मेवारी भी इसी समिति को सौंपी गई थी। इसलिए रूपा को समिति की सदस्य महिलाओं के साथ घर-घर जाकर लोगों से बातचीत करनी थी और उनसे नकद, अनाज आदि के रूप में सहायता भी इकट्ठी करनी थी।

एक महीने के अंतराल के बाद दूसरा शिविर गदियारी गांव में होना था। इसकी व्यवस्था रमा की देख-रेख में एक महिला समिति को करनी थी। इस समिति में नीलू भाभी, सांतो, रति, मंगला, किरनी, सुरमा, रेवती, माया और सरस्वती तो थी हीं, आस-पास के गांवों की कुछ और सयानी महिलाओं को भी रखा गया था। अंदरेटा की तुलना में गदियारी के शिविर में ज्यादा कठिनाइयां नजर आ रही थीं। कारण गदियारी बड़ा गांव था और यहां की आबादी में पुरातनपंथी लोगों की तादाद काफी ज्यादा थी। लड़के और लड़कियों का एक स्थान पर सात दिन तक रहने के विचार ने वहां काफी हलचल पैदा की थी और लोगों में कई तरह की बुराइयों की आशंकाएं व्यक्त की जा रही थीं। जो विरोधी राजनैतिक पार्टी कट्टर पुराणपंथी लोगों में लोकप्रिय थी, उसने इन शिविरों के खिलाफ प्रचार करना भी शुरू कर दिया था। किंतु सरकार की तरफ से शिविरों का आयोजन होने के कारण किसी की खुल कर विरोध करने की हिम्मत भी नहीं हो रही थी। इसके अतिरिक्त पढ़े-लिखे तबकों में इसके प्रति उत्साह भी था। "अमर

संदेश" में शिविरों की योजना का व्यापक प्रचार किया गया था और युवक-युवतियों के आवेदनपत्र काफी संख्या में प्राप्त हो चुके थे। पहले दो शिविरों के लिए एक हजार शिविरार्थियों का चयन किया जा चुका था और शेष लोगों को प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया था। अभ्यार्थियों के लिए प्रकाशित सूचनाओं में स्पष्ट कहा गया था कि केवल वही युवक-युवतियां आवेदन करें जो ऊंच-नीच का भेदभाव भूलकर समतामूलक समाज के निर्माण के लिए कुछ काम करने को उत्सुक हैं। शिविर में रहने तथा खाने-पीने की व्यवस्था सरकार की तरफ से होगी और उसके अलावा शिविरार्थियों को यात्रा-व्यय आदि के रूप में कुछ भत्ता भी दिया जाएगा।

प्रमुख विरोधी पार्टी ने पोस्टर और हैंडबिल छपाकर अंदरेटा और गदियारी में वितरित किए थे जिनमें कहा गया था कि लड़के-लड़कियों के शिविर गांवों में भ्रष्टाचार को फैलाने का काम करेंगे और इसीलिए इनका बहिष्कार किया जाए। कानों-कान प्रचार में इसे धर्मभ्रष्ट करने का षड्यंत्र भी बताया जा रहा था।

दोनों शिविरों की महिला समितियों के सदस्यों ने लोगों से सम्पर्क करने के बाद एक सम्मिलित बैठक में तय किया कि किस गांव में क्या-क्या काम होने चाहिए। उन्होंने गांवों के उन रास्तों, सड़कों और पंगडंडियों की सूची बनाई जिनकी मरम्मत शिविर के दिनों में की जा सकती है। पानी की निकासी की व्यवस्था, पीने के पानी की बावलियों और कुंओं की सफाई, आड़दार शौचालयों का निर्माण, कपड़े धोने और नहाने के लिए उचित स्थानों का निर्माण, डंगरों के लिए पानी के तालाब की खुदाई या सफाई, धुंआ रहित चूल्हों का निर्माण, नदी-नालों के किनारे भूमि-क्षरण को रोकने के लिए तेजी से बढ़ने वाले पेड़ों और झाड़ियों का रोपण और जिन क्षेत्रों की वन-सम्पदा नष्ट हो गई है वहां बड़ी तादाद में पेड़ों का रोपण इत्यादि कार्यों की विस्तृत सूची तैयार की गई थी। शिविरों में सरकार के संबंधित विभागों का पूरा सहयोग मिले, इसकी व्यवस्था भी की गई थी। वन विभाग से अधिक से अधिक पौधे और पेड़ों की कलमें तैयार रखने के लिए कहा गया था। सार्वजनिक निर्माण विभाग से सीमेंट, लोहा और दूसरी जरूरी सामग्री की व्यवस्था करने को कहा गया था। शिविरार्थियों का मार्ग-दर्शन करने के लिए विभिन्न सरकारी विभागों के विशेषज्ञों को उपस्थित रहने के आदेश दिए गए थे।

अंदरेटा, द्रमण की पहाड़ी के उत्तरी छोर की तलहटी में बसा हुआ गांव है। गांव बहुत बड़ा नहीं है लेकिन कई कारणों से उसकी ख्याति है। पंजाबी रंगमंच की जननी नोरा रिचर्ड्स और चित्रकार शोभा सिंह ने इसे अपना स्थायी निवास-स्थान बनाकर दूर-दराज के लोगों का ध्यान इसकी तरफ आकृष्ट किया था। गांव के साथ एक नाला बहता था जो गर्मियों में अधिकतर सूखा रहता था लेकिन बरसात के दिनों में आस-पास के खेतों का बहुत नुकसान करता था। हर साल वह किनारों की मिट्टी तोड़कर और गहरा तथा चौड़ा होता जाता था। इसके अतिरिक्त पहाड़ी की ढलान से बरसात में बहनेवाला एक और नाला हर साल मिट्टी-पत्थर बहाकर खेतों में बिछा देता था। द्रमण की पहाड़ी लंबे अर्से से नंगी हो चुकी थी। बड़े पेड़ तो लगभग खत्म ही हो गए थे। छोटी-छोटी कांटेदार झाड़ियां पहाड़ी की ढलान पर अब भी थीं

लेकिन आस-पास के गांवों की ईंधन की जरूरतों को पूरा करने में वे भीतिजी से खत्म होती जा रही थीं।

रूपा ने महिला समिति की सदस्याओं के साथ यहां का मुआयना करने के बाद तय किया था कि सात दिन के शिविर के दौरान दोनों नालों के किनारों पर तेजी से बढ़ने वाले पेड़ों का रोपण करना होगा। नालों पर कुछ-कुछ दूरी पर बंध और ठोकरें बनानी होंगी। इसके अतिरिक्त पहाड़ी पर लगभग दो लाख पेड़ लगाने होंगे। सारी पहाड़ी के डंगरों की चराई तथा ईंधन चोरी करनेवालों से सुरक्षित करना होगा। वन बिभाग ने इन प्रस्तावों को मान लिया था और हर तरह से सहयोग करने का वायदा किया था। गांव के अंदर मुख्य समस्या रास्तों और गलियों की मरम्मत तथा पानी की निकासी की व्यवस्था की थी। रास्ते मिट्टी पत्थर की चिनाई से बने थे जो हर साल बरसात में टूट जाते थे। रास्तों के दोनों किनारों पर बरसाती पानी के बहाव के कारण गहरे नाले बन गए थे और ये हर साल अधिक गहरे और चौड़े होते जाते थे। महिला समिति ने तय किया कि गांव के रास्तों और गलियों को पत्थर और सीमेंट से पक्का बनाया जाए। दोनों ओर बरसाती पानी के बहाव के लिए पक्की नालियां बनाई जाएं और नालों को मिट्टी पत्थर से भर कर किनारे पर पेड़ लगा दिए जाएं। गांव में बच्चों के खेलने के लिए कोई अच्छी जगह नहीं थी इसलिए गांव के बीच एक छोटा सा खेल पार्क बनाने की योजना भी बनी।

लड़के-लड़कियों के ठहरने की व्यवस्था हाई स्कूल की इमारत और पंचायत घर में की गई थी। जगह कम पड़ने की सूरत में तंबुओं में कुछ लोगों को ठहराने का भी प्रबंध था। स्कूल के कम्पाउण्ड में ही शामियानों के नीचे शिविरार्थियों के बौद्धिक सत्रों और भोजन आदि का इंतजाम किया गया था।

शिविर के उद्घाटन के लिए मुख्यमंत्री राजकुमार बीरदमन आने वाले थे। उनके साथ शिक्षा और युवक कल्याण मंत्री मुरली के अतिरिक्त कई और मंत्री, सरकारी अधिकारियों का बड़ा दल उनके प्रचार विभाग के अफसर और जिला स्तर के विभिन्न सरकारी विभागों के अधिकारी भी एकत्रित होने वाले थे। समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया गया था।

अधिकांश शिविरार्थी उद्घाटन के पहले दिन शाम को ही वहां पहुंच गए थे। मुरली, रमा, सांतो, रूपा और दिवाकर भी पहली शाम वहां आ गए थे। रात बड़ी देर तक पंडाल में बैठ कर ही उन्होंने अगले दिन के कार्यक्रम की सारी व्यवस्था पूरी कर ली थी। शिविरार्थियों की मदद से उन्होंने पंडाल को सजाने, स्वागत द्वार बनाने और संदेश वाक्यों और नारों के लिखने का काम पूरा कर लिया

राष्ट्रीयता समाजवाद और लोकतंत्र हमारे राष्ट्रीय मूल्य हैं।

जाति, धर्म और क्षेत्र के तंग दायरे से ऊपर उठ कर ही राष्ट्रीयता की भावना आ सकती है।

समाजवाद का मतलब है आदमी-आदमी के बीच बराबरी का रिश्ता।

जात-पांत के भेद मिटें, गरीब-अमीर का फर्क कम हो तभी समाजवाद आएगा।

लोकतंत्र का अभिप्राय है जनता की इच्छा सब से ऊपर हो।

अपने भविष्य का स्वयं निर्माण करना ही सृजन है।

सरकार जनता की है। जनता जैसे चाहे उससे काम ले सकती है।

इस प्रकार के बोध-वाक्य कपड़े के बैनरों पर लिखे गए और उनसे पंडाल को सजाया गया।

दूसरे दिन उद्घाटन के समय काफी भीड़ जमा हो गई। आस-पास के गांवों के लोग भी तमाशा देखने के लिए आ जुटे। मुख्यमंत्री उस इलाके में पहली बार आए थे और उनका भाषण सुनने की इच्छा कई लोगों में थी। लेकिन सबसे बड़ी जिज्ञासा लोगों के मन में यह जानने की थी कि गांव में होने क्या जा रहा है। अब तक तो लोगों ने यही देखा था सरकारी कर्मचारी जनता को हुक्म देने आते थे। अब सरकार के बड़े-बड़े अफसर, लड़के-लड़कियों की अगुआई में काम करेंगे। अब तक शिविर के संबंध में जो प्रचार हुआ था उसमें इसी बात पर ज्यादा जोर था। मुख्यमंत्री ने अपने उद्घाटन भाषण में इसी थीम को दुहराते हुए कहा—

"लोकतंत्र का मतलब ही है कि जनता मालिक है और सरकार नौकर। लेकिन यह सब सिद्धांत की बातें हैं। व्यवहार में कहीं ऐसा नहीं देखा गया। कुछ सरकारें तो जनता को भेड़-बकरियों का झुंड समझती हैं और उसे डंडे का डर दिखाकर हांकती हैं। कुछ सरकारें दुनिया में ऐसी भी हैं जो जनता को मूली-गाजर समझती हैं और उन्हें अपनी जनता की सामूहिक हत्याएं करने में भी संकोच नहीं होता। लेकिन जो अपने को लोकतंत्री सरकार कहती है, वह भी सही मायनों में लोकतंत्री नहीं होती, अक्सर वह अफसरतंत्री सरकार होती है क्योंकि वह सरकार अफसर लोगों की मरजी से चलती है। शायद हमारी सरकार भी ऐसी ही है। लेकिन हमारी इच्छा है कि हमारी सरकार सही मायनों में जनतंत्री सरकार बने। उसका मार्गदर्शन जनता करे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी इसी तरह की सरकार चाहते थे और इसके लिए उन्होंने ग्राम स्वराज की कल्पना रखी थी। ग्राम स्वराज का मतलब है कि गांव आत्मनिर्भर हों। पं० जवाहरलाल नेहरू की हमेशा यही कोशिश रही कि हमारे गांवों में सच्चा स्वराज आए। हमारी प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और उनके सुपुत्र कांग्रेस के महामंत्री राजीव गांधी का भी यही सपना है। इस सपने को साकार करना नौजवान पीढ़ी के हाथ में है। हमारे शिक्षा और युवक कल्याण मंत्री श्री मुरली ने इस दिशा में पहल की है, मुझे इसकी बहुत प्रसन्नता है। मैं उन्हें बधाई देता हूं और आप सबको भी बधाई देता हूं कि आप में राष्ट्र के नये निर्माण की लगन हैं। यहां आए अपने ग्रामीण भाई-बहनों से भी मेरा अनुरोध है कि यहां अगले छः-सात दिनों में में जो कार्य होगा, उसमें वे इन बच्चों का हाथ बटाएं। जयहिंद।"

इसके बाद शिक्षा और युवक कल्याण मंत्री ने शिविर के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा: "इस शिविर का और जो भी दूसरे शिविर हम करने वाले हैं उनका मुख्य उद्देश्य तो यही है कि देश की नौजवान पीढ़ी, छोटे-बड़े, ऊंच-नीच और स्त्री-पुरुष का भेदभाव भुलाकर एक

साथ मिलकर बैठें, राष्ट्रीय समस्याओं पर सोच-विचार करें और मिलकर निर्माण के कार्यों में हाथ बटाएं। हमारी सबसे बड़ी बुराई जो हमें आगे नहीं बढ़ने दे रही, जात-पांत और धार्मिक भेदभाव की है। यह बुराई हमें किसी भी काम के लिए एकजुट नहीं होने देती। सदियों से यही हाल रहा है हमारा। इसीलिए हमें सदियों तक अनेक कष्ट भोगने पड़े। बाहर से कोई हमलावर आता था तो सब एकजुट होकर उसका मुकाबला नहीं करते थे। दुश्मन से लड़ाई करने का काम सिर्फ एक जाति का होता था और जब वह हार जाती थी तो सारा देश हार जाता था। कुछ जातियों का काम सिर्फ खेतों में अनाज पैदा करना था, कुछ जातियों का काम सिर्फ खाना था और कुछ जातियों का सिर्फ दूसरों की सेवा करना। इस व्यवस्था को बदले बिना न समाजवाद आएगा, न लोकतंत्र मजबूत होगा और न हमारा देश आगे बढ़ेगा। यह शिविर एक छोटा सा प्रयोग है, यह देखने के लिए क्या हमारी नौजवान पीढ़ी में सदियों की इस जड़ता को तोड़ने का हौसला है। अगर यह प्रोग्राम सफल हुआ और नौजवान पीढ़ी का ध्यान हम देश की महत्त्वपूर्ण समस्याओं की तरफ मोड़ सके तो हम कुछ वर्षों में देश का कायापलट कर सकते हैं। इस शिविर के लिए हम लोगों ने जो कार्यक्रम बनाया है, उसमें सुबह-शाम एक-एक घंटे की कक्षाएं होंगी जिसमें इन्हें कछ विद्वानों के विचार सुनने का और उसपर बहस करने का मौका मिलेगा। शेष समय शिविरार्थी मिलकर निर्माण के काम करेंगे और सरकारी विभाग उन्हें सहयोग तथा मार्गदर्शन देंगे।....."

औपचारिक भाषणों के बाद लड़के-लड़कियों ने मिलकर राष्ट्रीय भावनाओं को जगानेवाले सामूहिक गान तथा नृत्य-नाटक आदि कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम पेश किए। अंत में सबने मिलकर जल-पान किया।

मुख्यमंत्री और उनके अफसरों के प्रस्थान के बाद शिविरार्थियों को तीन टोलियों में बांटा गया। पचास लड़के-लड़कियों की एक टोली को गांव में मुख्य नाले पर बांध-ठोकरें बनाने और किनारे पर पेड़ लगाने का काम सौंपा गया। दूसरी पचास की टोली को गांव के रास्तों की मरम्मत करने और जल-निकासी की नालियां बनाने के काम में लगाया गया। शेष चार सौ लड़के-लड़कियां फावड़े-कुदाल उठाकर पहाड़ी पर पेड़ लगाने के काम में जुट गए। तीन घंटे काम करने के बाद सब को उसी स्थान पर भोजन के लिए आना था। और भोजन के बाद एक घंटा विश्राम करने के उपरांत फिर तीन घंटे काम करना था।

परिश्रम के अलग-अलग रूप हैं और उसका स्वाद भी अलग-अलग। एक परिश्रम वह है जो आदमी को किसीकी गुलामी के कारण करना पड़ता है। यह परिश्रम शरीर को तो तोड़ता ही है, आत्मा को भी कुचलता है। दूसरा परिश्रम वह जो किसीकी गुलामी के कारण नहीं, अपनी जरूरतों के कारण करना पड़ता है। यह शरीर को तो तोड़ता है लेकिन आत्मा को बल प्रदान करता है। सारे समाज की जरूरतों के लिए मिलकर किए गए परिश्रम का मजा ही कुछ और होता है। इसमें कार्य करने वाला न जल्दी थकता है और न हिम्मत हारता है। सामूहिक निर्माण-कार्य में लगे युवा लड़के-लड़कियों को भी लग रहा था जैसे वे खेल-कूद के किसी

कार्यक्रम में हिस्सा ले रहे हैं। उन्मुक्त वातावरण में एक-दूसरे के साथ हंसी-मजाक, ठिठोली, चुहलबाजी के बीच गड्ढे खोदने, बड़े-बड़े पत्थर सरकाने-तोड़ने के कठिन काम भी आसानी से किए जा रहे थे। मिट्टी से लथपथ, पसीने से सराबोर चेहरों में नया निखार आ रहा था। थकने के बावजूद थक कर बैठ जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। तीन घंटे के पहले श्रम सत्र के बाद कईयों के हाथ में छाले पड़ गए थे लेकिन उनका उत्साह कम नहीं हुआ।

भोजन के बाद जब दूसरा श्रम-सत्र शुरू हुआ तो एक अनोखा दृश्य उपस्थित हुआ। गांव के लोग भी अपने फावड़े-गैंतियां उठाकर लड़के-लड़कियों के साथ श्रम-दान में हिस्सा लेने के लिए आ गए। औरतों और मरदों की टोलियां लड़के-लड़कियों की टोलियों के साथ मिल कर काम करने लगीं। ऐसा लगने लगा कि किसी बड़े उत्सव में लोग भाग ले रहे हैं। काम के साथ गीतों के मधुर स्वर भी उठने लगे। लोकगीतों में छिपी हुई सपनों की दुनिया, मन की प्यासी आकांक्षाएं, प्रेम और विरह की हूकें, और वे तमाम कोमल भावनाएं जो जिंदगी की कठोरता के साथ निरंतर युद्ध करने के लिए आदमी को बल प्रदान करती हैं, इन ग्रामीण महिलाओं के स्वरों में छन कर वातावरण में बिखरने लगीं।

रूपा और उसकी सहेलियां एक बड़े बर्तन में चाय बनाकर लाई थीं और काम करने वालों को कप में भर-भरकर दे रही थीं। औरतों के साथ स्वर मिलाकर रूपा के होठों से भी बोल निकलने लगे। इसपर एक लड़की ने जो शायद कालेज में पढ़ती थी, उससे पूछ लिया—

"दीदी, आपको आता है यह गाना?"

"रूपा मुस्कराई, बोली—

"आता था, लेकिन सालों से कभी गाया नहीं। ऐसा लग रहा था कि मैं सब भूल गई हूं। लेकिन नहीं। अब लगता है मैं फिर गा सकती हूं।"

"आप हमें यह गाना सिखाएंगी दीदी? शाम को....."

"कोशिश करूंगी। क्या तुम्हें यह गाना बहुत अच्छा लगा?"

"सभी गाने बहुत अच्छे हैं दीदी। मैं चाहती हूं कुछ गाने सीखूं।"

"शाम का वक्त इसी काम के लिए है। हम आपस में मिल बैठेंगे। एक-दूसरे को गाने सिखाएंगे और सीखेंगे। जीभर के बातें भी करेंगे। क्या नाम है तुम्हारा?"

"रजनी.....।"

"अच्छा शाम को करेंगे बातें। बहुत थक गई हो तो थोड़ा बैठकर आराम कर लो।"

"नहीं दीदी, बहुत मजा आ रहा है।"

पास खड़ी दूसरी लड़की ने कहा—

"आज तो मजा आ रहा है। कल देखना क्या हाल होता है?"

रूपा ने उस लड़की के हाथ चाय का प्याला देते हुए कहा—

"तुमसे कोई बेगार थोड़े ही ले रहा है। काम करने का मन नहीं होगा तो न करना।"

"नहीं दीदी, मैं तो रजनी से मजाक कर रही हूं।"

उजाड़ और सुनसान पहाड़ी का जो वातावरण चहल-पहल से भर उठा था, शाम को फिर

सन्नाटे में डूब गया जब लड़के-लड़कियों की टोलियां गैंती-फावड़े कंधों पर लटकाए गांव की तरफ लौट गईं।

दिन भर हंसी खुशी और उत्साह के वातातरण में किसीको थकान महसूस नहीं हुई थी किंतु शाम को अपने कमरों और तंबुओं में आने के बाद प्रायः सबको शरीर टूटता हुआ लगा। जिसको जहां जगह मिली वहीं लेट गया। कुछ लोग पंडाल में बिछी दरियों पर पसर गये। नहाने के लिए गरम पानी तैयार था लेकिन नहा-धोकर कपड़े बदलने की इच्छा नहीं हो रही थी। प्रोग्राम के अनुसार सबको सात बजे तक तैयार होकर भोजन के लिए इकट्ठा होना था। उसके बाद एक घंटे के लिए शिविरार्थी इधर-उधर जा सकते थे और आठ बजे सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए सबको पंडाल में उपस्थित होना था।

उस दिन शिविरार्थियों की देखभाल की सारी जिम्मेवारी रूपा के ऊपर थी। मुरली उद्घाटन समारोह के बाद मुख्यमंत्री के साथ शिमला चले गए थे। वे दूसरे दिन शाम को ही लौटने वाले थे। रमा को गदियारी जाना पड़ा था जहां दूसरे शिविर को लेकर गांव में झगड़ा हो गया था। गांव की कुछ ऊँची जातियां वर्षों से उजाड़ पड़ी मंदिर की जमीन को शिविर को देने के लिए तैयार नहीं थीं लेकिन गांव के दूसरे लोगों का कहना था कि इस जगह शिविर लगेगा तो इस बंजर भूमि का उद्धार भी होगा और सारे गांव को लाभ होगा। सच बात यह थी कुछ ऊँची जातियों ने मंदिर की इस जमीन पर नाजायज कब्जा कर रखा था और वे उसे सारे गांव की सम्पत्ति नहीं बनाना चाहते थे। इसी बात को लेकर दो गुटों में लाठियां चल गई थीं और पुलिस कुछ लोगों को पकड़ कर ले गई थी। रमा की सहेली शांतो भी रमा के साथ गई थी।

रूपा प्रत्येक लड़के-लड़की के पास जाकर उसका हालचाल पूछती। समझाती कि गरम पानी से नहाने के बाद शरीर हल्का हो जाएगा और सारी थकान दूर हो जाएगी। किसीको हथेली में पड़े छालों को देखकर कहती, "ये छाले नहीं हैं, किस्मत के पहाड़ हैं। किसी ज्योतिषी को हाथ दिखाओगे तो वह बताएगा कि इन पहाड़ों का क्या मतलब होता है। यह बुध का पहाड़, यह शुक्र का पहाड़। मतलब यह है कि तुम अपनी किस्मत खुद बना रहे हो।" रजनी का चेहरा थकान से कुम्हला गया था। रूपा उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोली, "तुम्हारी अंगुलियां कलाकार की अगुलियां हैं। चाहो तो बहुत अच्छी चित्रकार, संगीतकार या लेखिका बन सकती हो। जल्दी से तैयार हो जा वरना गीत कैसे सीखोगी?" एक कमरे में छः-सात लड़के दरवाजा आधा बंद करके लड़कियों के बारे में बातें कर रहे थे। रूपा दरवाजे के बाहर रुक कर सुनने लगी। एक लड़का कह रहा था, "टोकरी उठाते-उठाते उस लड़की ने मेरे होठों को छू दिया। बस प्यारे ऐसा लगा कि बिजली का तार छू गया।"

"कौन सी लड़की?"

"अरे वह जिसने हरे रंग का दुपट्टा कमर में बांध रखा था।"

"क्या नाम था…… ?"

"नाम का तो पता नहीं। लेकिन प्यारे नाम में क्या रखा है। उसकी मूरत तो दिल में समा

गई है।"

"दूसरा लड़का बोला, "भई, मैं तो नीली आंखों वाली को अपना दिल लुटा चुका हूं अगर वह कह दे पहाड़ी के ऊपर चढ़ जा और नीचे छलांग लगा तो मैं खुशी-खुशी छलांग लगाऊंगा।"

"रूपा ने दरवाजा खोलकर अंदर प्रवेश किया तो लड़कों की बातें बंद हो गई और सब झेंप गए। रूपा बोली—

"सिर्फ बातों से पेट नहीं भरता। खाना सात बजे तैयार हो जाएगा और सब नहा-धोकर कपड़े बदल लो। आठ बजे सांस्कृतिक कार्यक्रम में सबको हाजिर रहना है। और हां, हरे दुपट्टे वाली लड़की से कौन प्यार करता है?"

लड़के एक-दूसरे के चेहरे देखने लगे। रूपा मुस्करा कर बोली—

"जो भी हो, उसे यहां के कुछ लोकगीत सुनाने होंगे। रजनी को लोकगीत बहुत अच्छे लगते हैं। वह कुछ गीत सीखना चाहती है। लेकिन याद रखना ये जो हूहू हाहा वाले फिल्मी गीत हैं न उनसे उसे सख्त नफरत है। और पहाड़ी से छलांग लगाने की बात क़ौन कर रहा था ? भई, यह तो बहुत कठिन परीक्षा है। आज तो तुम आसान सी परीक्षा देने के लिए तैयार रहना।"

एक लड़का बिस्तर पर लेटा हुआ था। रूपा उसके पास आकर बोली—

"तुम तो एक दिन में ढेर हो गए, बात क्या है?"

"दीदी, सिर में बहुत दर्द हो रहा है", वह बोला

रूपा ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा—

"अरे तुम्हें तो बुखार भी लग रहा है। आओ मेरे साथ, दवाई लो और मेरे कमरे में आराम करो।"

लड़का रूपा के साथ कमरे से बाहर निकला। रूपा जाते-जाते दूसरे लड़कों से बोली, "जल्दी तैयार हो जाओ। खाने के लिए ठीक सात बजे पहुंचना है।"

रूपा के मां जैसे स्नेह से शायद ही कोई प्रभावित हुए बिना रहा। सबको लगा जैसे रूपा दीदी सबको व्यक्तिगत तौर पर जानती हो। एक-एक को पूछ कर उसने खाना खिलाया। कौन कहां से आया है, क्या काम करता है, किसको क्या चीज पसंद है, किसकी क्या समस्याएं हैं, लगता था रूपा दीदी से कुछ नहीं छिपा है।

भोजन के उपरांत शिविरार्थी जब पंडाल में सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए जमा हुए, तो सब में ताजगी नजर आ रही थी। इससे पहले रूपा दीदी ने सबको सूचित कर दिया था कि इस कार्यक्रम में सबको अकेले या ग्रुप में कोई न कोई आइटम पेश करना है। कार्यक्रम का उद्देश्य बताते हुए रूपा दीदी ने शुरू में कहा : इस कार्यक्रम का उद्देश्य यह है कि लड़के और लड़कियों में हमारे यहां एक अजीब तरह की दूरी हो जाती है वह नहीं रहनी चाहिए। मेरा मतलब है कि हमारे समाज में बचपन से लड़के और लड़कियों में ऐसे संस्कार भर दिए जाते हैं कि वे अपने स्त्री या पुरुष होने के प्रति जरूरत से ज्यादा सतर्क हो जाते हैं। लड़कों के मन में अनजाने में यह

विचार बैठ जाता है कि पुरुष होने के नाते समाज में उन्हें कुछ विशेष दर्जा हासिल है और लड़कियों के मन में बैठ जाता है कि स्त्री होने के नाते उनकी स्थिति समाज में नीची ही रहेगी। इसके लिए हमारा धर्म, रस्मोरिवाज, परंपराएं और रूढ़ियां बहुत सी चीजें जिम्मेवार हैं। लेकिन इस तरह के दकियानूसी विचारों को मन में पालकर हम आज एक कदम नहीं चल सकते। हमने समता मूलक समाज बनाने का निश्चय किया है। हमने अपने संविधान में समता मूलक समाज को ही अपना लक्ष्य बनाया है। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है सबको बराबर समझा जाए चाहे वो पुरुष हो या स्त्री, इस जाति में पैदा हुआ हो या उस जाति में। जन्म से न कोई ऊंच होता है और न नीच, न श्रेष्ठ होता है और न हीन। हमारे लिए यह बिल्कुल नई कल्पना है और इसके मुताबिक अपनेको बदलना हमारे लिए मुश्किल जरूर है लेकिन यह निहायत जरूरी भी है। इस तरह के कार्यक्रमों से हमें आपस में स्वस्थ संबंध बनाने में मदद मिलती है।"

इसके बाद शिविरार्थियों ने अपने-अपने आइटम प्रस्तुत किए। हर आइटम को तालियों की गड़गड़ाहट से सराहा गया। जिन्होंने पहले कभी मंच पर आने का साहस नहीं दिखाया था, उनका भी हौसला खुला। जो भी व्यक्ति मंच पर आता था, पहले अपना परिचय देता था और फिर अपनी पसंद का गाना, चुटकला या किस्सा सुनाता था या नृत्य-गान में भाग लेकर सामूहिक मनोरंजन में अपना योग देता था। दो घंटे के इस कार्यक्रम में सबका एक-दूसरे से अच्छा परिचय हो गया। और उनके बीच झिझक तथा संकोच का पर्दा हट गया।

शिविर में पहले दिन सहयोग और सद्भावना का जो वातावरण बना, उसमें अगले छः दिनों में उत्तरोत्तर निखार आता गया। रूपा दीदी के प्रति सब लड़के-लड़कियों में अपार स्नेह था। हर एक की खोज-खबर, हर एक की जरूरत का ध्यान उसे रहता था। किसीका मन उदास हो, किसीकी तबीयत खराब हो, रूपा की नजर में झट आ जाता था और उसके लिए वह तुरंत उपाय करती थी। विशेष बात यह हुई कि आस-पास के गांवों के लोग शिविर के काम में बड़ी दिलचस्पी लेने लगे। अंदरेटा के आस-पास पंचरुखी, घाड़, दत्तल, पाहड़ा, गोपार, पट्टी, राजपुर आदि अनेक गांवों के लोग अंदरेटा आकर देखने लगे कि किस तरह सरकारी अफसर जनता के साथ मिलकर गांव का कायाकल्प कर रहे थे। अंदरेटा की जो समस्याएं थीं वे इन सभी गांवों की समस्याएं भी थीं। वे चाहते थे कि उनके गांवों में भी इस तरह के शिविर लगें और उनमें सरकार का सहयोग मिले। जिस कार्यक्रम को शुरू में ये लोग खेल-कूद या तमाशे की तरह ले रहे थे उसका महत्त्व उनके आगे उत्तरोत्तर स्पष्ट होने लगा।

दूसरे दिन शिविरार्थियों के काम में हाथ बटाने वाले स्त्री-पुरुषों की संख्या बढ़ गई। लोग अपनी इच्छा से साथ देने के लिए आए। रूपा दीदी के सामने कठिनाई उपस्थित हुई कि इतने सारे लोगों के लिए भोजन और जलपान की व्यवस्था कैसे होगी। पहले दिन तो वहां शिविरार्थियों के लिए ही भोजन आदि की व्यवस्था थी। सरकारी अमले का कैंप अलग लगा था और वहां उनकी अपनी व्यवस्था थी। लोगों ने खुद ही रूपा दीदी की समस्या हल कर दी। गांव वालों ने आटा, चावल, दालें और सब्जियां घरों से इकट्ठी कीं और सबके लिए शादी के भोज की

तरह का इंतजाम होने लगा। लोगों ने खाना बनाने, खिलाने का काम भी अपने जिम्मे ले लिया। सरकारी अमले को भी इसमें शामिल किया गया।

सामूहिक निर्माण का यह अनुभव सभी के लिए नया था। एक साथ हजारों हाथ लक्ष्य को पूरा करने में लग जायें तो उस लक्ष्य को प्राप्त करने में क्या संदेह रह जाएगा? शिविर के सातवें दिन अंदरेटा गांव और द्रमण की पहाड़ी का नक्शा ही बदल गया। सारी पहाड़ी पर पेड़ों और तेजी से फैलनेवाली झाड़ियों का रोपण किया जा चुका था। गांव के रास्ते और पानी के निकास की नालियां तैयार थीं। हर साल खेतों की मिट्टी बहा ले जाने वाले नाले के किनारों को लगभग दो मील तक मजबूती से बांध दिया गया था।

अंदरेटा के आस-पास के जिन गांवों के लोग श्रम-दान में भाग लेने के लिए आए थे उन्होंने रूपा दीदी के सामने सुझाव रखा था कि उनके गांवों में भी काम कराए जाएं। इसके लिए प्रत्येक गांव की एक लोक समिति बनाई गई जिसमें अमीर-गरीब सभी तबकों के लोग लिये गये। प्रत्येक गांव में जो-जो काम होना है उसकी सूची बनाई गई और सरकारी अधिकारियों को दी गई। लोक समितियों पर जिम्मेदारी सौंपी गई कि वे इन कामों के लिए सामूहिक श्रम-दान की व्यवस्था करें और सरकारी अधिकारियों से कहा गया कि वे इसके लिए तकनीकी सहायता तथा सीमेंट, स्टील आदि आवश्यक मेटिरियल उपलब्ध कराएं। गांव वालों ने आशंका प्रकट की कि शिविर खत्म होने के बाद सरकारी अफसरों का रवैया फिर वैसा का वैसा हो जाएगा और कोई काम नहीं होगा। रूपा दीदी ने उन्हें समझाया कि ऐसा नहीं होगा। लोक समितियों के कहे अनुसार सरकारी विभागों को काम करना पड़ेगा। अगर वे नहीं करेंगे तो हम भी सरकार के साथ सहयोग नहीं करेंगे। 'हम सरकारी अफसरों को गांव में घुसने नहीं देंगे। हम उनका बहिष्कार करेंगे। सरकारी अफसर इसलिए मनमानी करते हैं क्योंकि जनता का अपना कोई संगठन नहीं है। जब लोक समितियां काम करने लगेंगी तो जैसा हम चाहेंगे वैसा होगा। किसी को हेराफेरी करने का मौका नहीं दिया जाएगा।

शिविर का उद्घाटन हर्षोल्लास के वातावरण में हुआ था किंतु समापन-समारोह घनी उदासी के वातावरण में हुआ। इस बीच देश में कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएं हुईं और मुंरली तथा रमा को विधान सभा के आपातकालीन सत्र के लिए शिमला में रुकना पड़ा। पंजाब में आतंकवादियों ने स्वर्ण मंदिर पर कब्जा कर लिया था, उसे खाली कराने के लिए "आपरेशन ब्लू स्टार" शुरू हो गया था। पड़ोसी राज्यों को सावधान रहने के लिए कहा गया था। चारों तरफ तनाव की स्थिति थी। उधर गदियारी में पुलिस की ज्यादतियों के खिलाफ सत्याग्रह शुरू हुआ था जिसका नेतृत्व रमा की अनुपस्थिति में सांतो कर रही थी। पच्चीस महिलाएं तहसील के मुख्य थाने के बाहर भूख-हड़ताल पर बैठी थीं। धरने के पांचवें दिन वहां पांच-छः सौ आदमियों की भीड़ जुटी थी और उसने थाने पर पथराव किया था। कहा जाता है कि पुलिस कर्मचारियों ने धरने पर बैठी महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार किया था। समापन समारोह में उपस्थित लोगों को अभी सही स्थिति की जानकारी नहीं थी।

समारोह खत्म होने में कुछ देर थी, तब दिवाकर ने पंडाल में प्रवेश किया। उसके साथ बेटा रवि भी था। दिवाकर चुपचाप एक कोने में बैठ गया, उसके चेहरे पर काफी परेशानी थी। रवि की नजर रजनी पर पड़ी तो वह सीधा उसके पास पहुंचा।

"तुम यहां?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"और तुम यहां कैसे?" रजनी ने और भी आश्चर्य से पूछा।

"मैं तो पिताजी के साथ मां को लेने आया हूं।"

"मां को? तुम्हारी मां यहां आई हैं?"

"अरे इस शिविर का सारा काम तो वही देख रही हैं।

"रूपा दीदी?"

"हां।"

रजनी खुशी से उछल पड़ी। फिर गुस्सा दिखाकर बोली—

"तुमने मुझे बताया क्यों नहीं?"

"तुमने पूछा कब? तुमने तो मुझे यह भी नहीं बताया कि तुम शिविर में जा रही हो, वरना मैं भी छुट्टी ले लेता।"

समारोह खत्म होने के बाद रवि रजनी को पकड़कर मां के पास ले गया।

"मां यह रजनी है मेरी क्लासफेलो।" उसने परिचय दिया। रूपा दीदी मुस्करा कर बोली—

"तुम आज परिचय देने आए, जब यह हमें छोड़ कर जा रही है?"

"नहीं दीदी, ऐसा मत कहो, आपने हमें जो प्यार यहां दिया है, उसे कौन भूल सकता है? आपको छोड़कर जाने की इच्छा किसमें होगी?"

रवि ने पिताजी से भी रजनी का परिचय कराया। दिवाकर को भी रजनी से मिलकर प्रसन्नता हुई। रवि को रजनी के साथ सामान बांधने में मदद करने के लिए भेजने के बाद दिवाकर ने रूपा को एंकात में ले जाकर सूचना दी कि सांतो के साथ तीन पुलिस कर्मचारियों ने बलात्कार किया है। सांतो अस्पताल में है और उसकी हालत बड़ी नाजुक है। लोगों की भीड़ ने थाने में आग लगा दी है। पुलिस की गोली से तीन लोग मारे गए हैं और दस पुलिस कर्मचारी भी घायल हुए हैं। रूपा ये सब बातें सुनकर सन्न रह गई।

विधायक रमादेवी के कमरे में ही मैरिज रजिस्ट्रार ने मुरली और सांतो से रजिस्टर पर हस्ताक्षर करा लिए। गवाहों के रूप में रमा तथा मुरली के निजी सचिव अवस्थी ने हस्ताक्षर किए।

सांतो अब भी शॉक की हालत में थी। लेकिन मुरली के भीतर जो एक ज्वालामुखी फटने को तैयार था, उसका अनुमान सिर्फ रमादेवी ही लगा सकती थी। अत्यंत उग्र विद्रोही मुरली जो बचपन से ही प्रतिशोध की भावना पर काबू पाने में असमर्थ था, इस स्थिति में क्या नहीं कर बैठेगा, इसकी चिंता रमा को सताए जा रही थी। पिछली रात उसने एक क्षण के लिए भी पलकें नहीं झपकी थीं। तहसील थाने के तीनों पुलिस कर्मचारियों को मुअत्तिल कर दिया गया था और हिरासत में ले लिया गया था। थाने के इन्चार्ज तथा दस अन्य कर्मचारियों को भी निलंबित कर दिया गया था। हाईकोर्ट के भूतपूर्व जस्टिस का एक सदस्यीय जांच आयोग भी बिठा दिया गया था। लेकिन रमा जानती थी कि यह सब मुरली के भीतर सुलग रही प्रतिशोध की आग को शांत करने के लिए काफी नहीं है।

मुरली ने पिछले दिन ही मुख्यमंत्री को अपना त्यागपत्र दे दिया था। लेकिन मुख्यमंत्री ने त्यागपत्र को मोड़कर अपनी जेब में रख लिया था और कहा था, "अगर त्यागपत्र देने से सारी पुलिस व्यवस्था सुधरती है तो पहले मैं त्यागपत्र दूंगा।" रमा का भी यही कहना था कि त्यागपत्र देने से क्या होगा। लेकिन मुरली को लगता था कि उसके हाथों और पैरों में बेड़ियां पड़ी हुई हैं। जब तक वह इन बेड़ियों को नहीं तोड़ेगा, वह अपने मन के अनुसार नहीं जी पाएगा। वह बदला लेना चाहता था, सांतो के साथ किए गए अत्याचार का बदला। उसके बिना उसे चैन नहीं मिलेगा।

जनता सरकार के दिनों में हरिजनों पर अत्याचार की घटनाएं बढ़ गई थीं। उसका प्रतिकार करने में मुरली को अपने मित्र और गुरु अमर को खोना पड़ा था। उस समय भी उसके मन में प्रतिशोध की ऐसी ही ज्वालाएं उठी थीं। अगर रमा उसे शांत न करती तो उस समय भी वह आतंकवाद और अराजकतावाद के रास्ते पर चल दिया होता। जब कानून व्यवस्था को चलाने वाले खुद अपराधी बन जाएं तो आतंकवाद के सिवा क्या रास्ता बचता है? रमा मुरली की भावनाओं को समझती थी लेकिन उसका कहना था कि आतंकवाद से व्यवस्था सुधर सकती है तो वह उस रास्ते का समर्थन करने को भी तैयार होगी। लेकिन यह हर्गिज मुमकिन नहीं है। व्यवस्था को बदलने के लिए विचारों की लड़ाई को निरंतर जारी रखने के सिवा कोई चारा नहीं। हिंसा से या भय पैदा करके कभी क्रांति नहीं आएगी। इस रास्ते से जहां भी व्यवस्था-परिवर्तन हुआ है उसमें हजारों-लाखों निर्दोष व्यक्तियों की जानें ही गई हैं। असुर रक्तबीज की हत्या से असंख्य रक्तबीज ही पैदा होते हैं। यह दुनिया हिंसा से समाज को बदलने के असंख्य प्रयोग कर चुकी है लेकिन हिंसा की परिणति हमेशा प्रतिहिंसा में हुई है। हथियारों के आविष्कार से सभ्यता को मापना मानव इतिहास की इससे बड़ी विकृति कोई नहीं हो सकती।

मुरली स्वयं भी इसी विचारधारा को मानता रहा था। समाजवादी आंदोलन से उसे यही संस्कार मिले थे। गांधी जी के प्रभाव से समाजवादी नेताओं ने रक्त-क्रांति के सिद्धांत को तिलांजलि देकर शांतिपूर्ण सत्याग्रह, असहयोग, बहिष्कार, सविनय अवज्ञा और 'करो या मरो' के रास्ते को चुना था। लेकिन इस रास्ते पर चलने के लिए यंत्रणाएं सहने की जो क्षमता होनी

चाहिए, मुरली में हमेशा उसकी कमी रही । यह उसका स्वभाव था, उसके सम्पूर्ण अस्तित्व की प्रकृति बन गई थी । लाख कोशिश करने पर भी वह शरीर के उन रक्ताणुओं को शांत नहीं कर पाता था जो उसे प्रतिहिंसा के लिए उकसाते थे ।

कई दिनों तक मुरली रमा के घर से बाहर नहीं निकला । फिर जब सांतों स्वस्थ हुई तो वह पत्नी को लेकर दस-पंद्रह दिनों के लिए एकांत में छुट्टियां बिताने चला गया। कुल्लू घाटी में, मनाली के पास नग्गर गांव में उसने छुट्टियां बिताने का फैसला किया । देवदार के पेड़ों से टकराती सायं सायं करती हवा ने उसे अपने मन के ज्वार पर काबू पाने में मदद की । उसे अपने आपमें सुस्थिर होने के लिए करीब तीन महीने लग गए ।

इस बीच हुई घटनाओं ने भी मुरली को सोचने के लिए बहुत प्रेरित किया । हिंसा और प्रतिशोध को धर्म की विशिष्टता मानने वाले भ्रांत व्यक्तियों ने आतंकवाद का जो वातावरण बनाया था, वह दिन प्रतिदिन भयानक शक्ल लेता जा रहा था और एक दिन जब आतंकवादियों के हाथों से प्रधानमंत्री की हत्या का समाचार आया तो उसे लगा कि हिंसा और प्रतिहिंसा का चक्र अब कहीं रुकने वाला नहीं है ।

प्रधानमंत्री की हत्या से उत्पन्न रोष की लहर से राजधानी दिल्ली में तथा देश के कई अन्य शहरों में भयानक दंगे भड़काए जिनमें असंख्य बेगुनाहों की जनें गईं । इन दंगों के पीछे शासक दल के कुछ नेतओं का हाथ था, यह बात किसी से छिपी नहीं रही । फिर भी कांग्रेस सरकार इन नेताओं को गिरफ्तार करने या इनके खिलाफ जांच कराने से आनाकानी करती रही । मुरली के लिए यह स्थिति असह्य थी और उसे लगता था कि उसके अपने हाथ भी बेगुनाहों के खून से सने हैं । इसके अतिरिक्त जिस तरह प्रधानमंत्री के पुत्र को राष्ट्रपति द्वारा लोकतांत्रिक परंपराओं की अवहेलना करते हुए गद्दी पर बिठा दिया गया था उससे भी मुरली का दम घुटने लगा था । लेकिन रमा अभी उसके त्यागपत्र देने के पक्ष में नहीं थी । उनका कहना था कि केन्द्रीय नेताओं के अपराधों के लिए अपने को दोषी मान लेना मुरली की निरी भावुकता है । जब तक इस व्यवस्था में रहते हुए स्वयं उसे अपराध करने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ता तब तक उसे अपने कर्तव्य का पालन करते रहना चाहिए । यह सारी दुनिया ही अपराधों से सनी है लेकिन अगर हर आदमी यही सोचकर इससे दूर भागने लगे, तो क्या होगा ? गंदगी से डरकर भागना भी एक तरह की कायरता है । कीचड़ में सने बिना कीचड़ साफ कौन कर सकता है ?

इसके अतिरिक्त रमा ने मुरली का ध्यान उन कामों की तरफ दिलाया जो उन्होंने कुछ दिन पहले शुरू किए थे । अंदरेटा के युवा शिविर ने राज्य भर के लोगों में काफी उत्साह पैदा किया था और वे नौ अन्य स्थानों पर होने वाले शिविरों की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे । गदियारी का शिविर अब किसी और स्थान पर किया जाना था । मुरली की दूसरी योजना खटाई में पड़ी थी लेकिन अंदरेटा के शिविर से जो एक नया विचार रूपा दीदी की पहल के कारण सामने आया था, उसमें मुरली और रमा दोनों को बहुत संभावनाएं दीखती थीं । प्रत्येक गांव में जनता को संगठित करके लोक समितियां बनाना और उनके माध्यम से सरकार पर जोर डाल कर गांव की

'सार्वजनिक जरूरतों का पूरा कराना, यह प्रयोग सही मायनों में ग्राम स्तर पर जनता के शासन की शुरूआत है। लोक समितियों के माध्यम से न केवल गांव की सारी योजनाओं को पूरा किया जा सकता है बल्कि सरकारी कर्मचारियों तथा सहकारी संस्थाओं के भ्रष्टाचार और दुकानदारों, व्यापारियों की मुनाफाखोरी और धोखाधड़ी पर भी नियंत्रण रखा जा सकता है। मुरली के सरकार में बने रहने से इस महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया के आगे बढ़ने में मदद मिलेगी। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मुरली ने रमा की सलाह मान ली और जोश में आकर त्यागपत्र देने का विचार फिलहाल दिल से निकाल दिया।

लेकिन इंदिरा गांधी की हत्या के बाद जिस तरह उनके बेटे को दिल्ली के सिंहासन पर बिठा दिया गया था, उससे मुरली का मन आत्म-ग्लानि से भर गया था। रमा की मजबूत युक्तियों के बावजूद वह अपनेको कांग्रेस में इस तरह महसूस करता था गोया वह गंदे नाले में कमर तक डूबा हो और बाहर निकलने के लिए छटपटा रहा हो। राजीव गांधी के प्रधान मंत्री बनते ही मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों ने उन्हें हाथों-हाथ उठा लिया था। दून संस्कृति में सराबोर, होंठो के व्यायाम से अंग्रेजी बोलने वाले और स्वतंत्रता आंदोलन के हैंगओवर से बिल्कुल मुक्त इस नौजवान प्रधानमंत्री में उन्हें अपनी सारी मुरादें पूरी होती दिखाई दीं। वह इंदिरा गांधी की तरह सत्ता के मामले में क्रूर नहीं है, वह समाजवाद जैसे अव्यावहारिक सपनों की बात नहीं करता, वह संजय गांधी के रिफरैफ चेलों को पास नहीं फटकने देता, वह आधुनिकतम टेक्नोलाजी के बल पर इस देश को इक्कसवीं शताब्दी में ले जाने की बात करता है, वह विदेशी कंपनियों, विदेशी विचारों और विदेशी संस्कृति की भीतरी से त्रस्त नहीं है, वह राजनीति के कीचड़ से मुक्त मिस्टर क्लीन है; इत्यादि बातों के कारण बुद्धिजीवी विशेषकर पत्रकार उसकी तरफ खिंचे चले आए। अपनी मां के अंतिम संस्कार उसने जिस तरह हिन्दू रीति के अनुसार शांत मुद्रा में किए थे, उससे महिलाओं की भी उसे व्यापक सहानुभति मिल रही थी। प्रधानमंत्री के पद की शपथ लेने के बाद चौबीस घंटे तक अपने आस-पास होने वाले नरसंहार को रोकने के लिए वे कुछ निर्णय नहीं ले सके, इस बात को भी लोगों ने अनदेखा कर दिया। मुरली को तब लगा था कि यह आदमी किसी भी तरह का निर्णय स्वयं लेने में असमर्थ है। दूसरे जैसे चलाना चाहेंगे, वह चलेगा। राजनीति से बिल्कुल अलग-थलग पड़ा आदमी एकाएक जब इतने बड़े देश का प्रधानमंत्री बन जाएगा, तो राजनीति कहां जाएगी, यह चिंता मुरली को तो सता रही थी लेकिन लगता था कि सारा देश उससे इस मामले में असहमत है।

दिसंबर के अंतिम सप्ताह में हो रहे लोकसभा के चुनावों में मुरली को अपनी मानसिक उलझनों के बावजूद, पूरे मन से जुट जाना पड़ा। इंदिरा गांधी की हत्या से उत्पन्न सहानुभूति की लहर ने कांग्रेस को सब प्रांतों में अभूतपूर्व सफलता दिलाई। हिमाचल प्रदेश में कांग्रेस के सभी उम्मीदवार भारी बहुमत से जीत गए। मुरली ने रमा से कहा था कि वह लोकसभा का चुनाव लड़े लेकिन उसके इन्कार करने पर सांतो को शिमला के रिजर्व चुनाव क्षेत्र से लड़ाया गया वह भी भारी मतों से जीत गई। मुरली को इस बात की बहुत खुशी थी कि सांतो को इससे एक

नई जिंदगी की शुरुआत करने का हौसला मिलेगा। उसे अधिकतर दिल्ली में रहना पड़ेगा, इस बात से सांतो का मन उदास था लेकिन मुरली ने उसे समझाया कि दिल्ली दूर नहीं है और वे सप्तांह में एक दो दिन तो आसानी से साथ बिता सकते हैं।

लोकसभा चुनावों के कुछ समय बाद विधान सभाओं के चुनाव हुए। हालांकि कांग्रेस के पक्ष में बहने वाली सहानुभूति की लहर अब उतनी प्रबल नहीं थी फिर भी हिमाचल प्रदेश में कांग्रेस को भारी सफलता मिली। मुरली ने अपने चुनाव क्षेत्र में पहले से भी ज्यादा वोट प्राप्त किए। रमा का चुनाव तो लगभग इकतरफा ही रहा। मुरली के प्रयत्नों से महिला मंडलों की प्रखर कार्यकर्ता रति, मंगला, किरनी और सुरमा को भी कांग्रेस के टिकट दिला दिए गए थे और ये चारों भी चुनाव जीत गईं। रूपा ने चुनाव लड़ने में कोई रुचि नहीं दिखाई थी। वास्तव में रूपा गांव-गांव की दीदी की अपनी भूमिका में रस लेने लगी थी। अंदरेटा के शिविर की सफलता और उसके परिणाम स्वरूप अंदरेटा के रहन-सहन की स्थितियों में हुए परिवर्तन के कारण रूपा की हर गांव में मांग हो रही थी। लोग रूपा दीदी के पास आते और वहां लोक समिति बनाने के लिए उन्हें तैयार करते। रूपा दिन-रात इसी काम में व्यस्त रहती। गांव-गांव जाकर लोगों की सभाएं करना और उन्हें समझाना कि लोक समितियों से वे क्या काम कर सकते हैं। अनेक गांवों में लोक समितियां बन चुकी थीं। जहां लोक समिति बनती, वहां निजाम जैसे रातों-रात बदल जाता। लोग बिजली का बिल भरने के लिए शहर के बिजली दफ्तर में नहीं जाते। बिजली दफ्तर वाले खुद गांव में जाकर पैसे लेते। खाद के लिए शहर के किसी डिपो में नहीं जाना पड़ता। खादवाले गांव आकर खाद वितरित करते। राशन की दुकानों में चीनी, मिट्टी का तेल आदि जरूरी वस्तुओं के वितरण में किसी को धांधली करने की हिम्मत नहीं होती। लोक समिति के सदस्यों का धरना गांव स्तर के सभी सरकारी कर्मचारियों पर अकुंश था। पंचायत भी उनकी बात को अनसुना नहीं कर सकती थी। लोक समिति गांव के जिन निर्माण कार्यों को हाथ में लेती, उनमें सरकारी विभागों को शामिल होना पड़ता। बजट की कमी का कोई बहाना लोक समिति के आगे नहीं चलता। रूपा दीदी लोगों से कहती थी कि बजट के अनुसार काम नहीं होगा, काम के अनुसार सरकार को बजट बनाना होगा। रूपा दीदी के काम को प्रदेश के राजनेताओं का पूरा समर्थन था क्योंकि उन्हें लग रहा था कि कहीं कुछ हो रहा है, जनता के स्तर पर कुछ उमंग, कुछ हलचल पैदा हो रही है।

सरकारी अधिकारी भी रूपा दीदी की मुहिम का, अनचाहे भाव से ही साथ दे रहे थे। उन्हें पता था कि रूपा दीदी की मुहिम को मुरली जैसे शक्तिशाली मंत्री का आशीर्वाद प्राप्त है। मुख्यमंत्री भी मुरली की हर बात मानते हैं। कैबिनेट के कई मंत्री उनके साथ हैं और फिर रमा के अतिरिक्त रति, मंगला, सुरमा और किरनी के विधान सभा में आ जाने के बाद तो रूपा दीदी की शक्ति और भी बढ़ गई है। लोक समिति की तरफ से सरकारी अधिकारियों को भेजा गया आवेदनपत्र एक तरह से रूपा दीदी का फरमान होता जिसका पालन करना सरकारी अधिकारियों के लिए लाजिमी हो जाता। पुराने ढर्रे पर काम करने वाले कुछ सरकारी कर्मचारी

इससे दुखी थे, उनकी अवैध कमाई बंद हो गई थी, लेकिन् वे कुछ करने की स्थिति में नहीं थे। गांव की जनता की नजरों में यह बदलाव स्पष्ट था और रूपा दीदी उनके लिए रोशनी की नई किरण बन चुकी थी।

लोकसभा के चुनाव और उसके तत्काल बाद विधान सभा के चुनावों में कांग्रेस की भारी सफलता से प्रादेशिक राजनीति में मुरली का स्थान शिखर पर आ गया था। विपक्ष की पराजय का आलम यह था कि उसके नेता की जमानत जब्त हो गई थी। कांग्रेस के पुराने गढ़ ठाकुर जातियों के अलावा पिछड़ी और अनुसूचित जातियों ने एक जुट होकर कांग्रेस का समर्थन किया था। मुख्यमंत्री के अलावा केन्द्रीय नेतृत्व भी इस बात को स्वीकार करता था कि कांग्रेस के इस भारी जन-समर्थन के पीछे मुरली की संगठन क्षमता और रमादेवी का सहयोग है। विधान सभा के नेता पद के लिए मुरली का नाम कई जगहों से आया था, विशेषकर समाचार पत्रों के माध्यम से उसके बारे में अटकलों का बाजार गर्म था। केंद्रीय नेतृत्व का झुकाव भी मुरली के पक्ष में था। लेकिन मुरली ने स्पष्ट बयान दे कर इस अटकलबाजी को खत्म कर दिया था। राजकुमार वीरदमन को इससे प्रसन्नता हुई थी और उन्होंने मुरली के प्रति आभार माना था। उन्होंने मुरली से साफ कहा था कि मुख्यमंत्री पद उनकी तरफ से मिली हुई भेंट है। मुरली ने उनके इस कथन को हँसी में उड़ाकर कहा था, "नहीं मैं अपनी सीमाएं जानता हूं। मैं मुख्यमंत्री बनने के लायक नहीं हूं। सच बात तो यह है कि मैं मंत्री बनने के भी काबिल नहीं हूं। मैं इस राजनीति में मिसफिट हूं। परिस्थितियों ने मुझे इसमें धकेल दिया है। मैं नहीं जानता कि मैं इसमें कितने दिन रहूंगा।"

देश के राजनैतिक वातावरण में एक अजीब परिवर्तन आया था। राजीव गांधी ने न सिर्फ अंग्रेजी पढ़े-लिखे तबके के मन जीत लिए थे, हिन्दु राष्ट्र के सपनों को संजोनेवालों ने भी उसे पलकों पर बिठा लिया था। आते ही उसने दलबदल विधेयक पास कराया था जिसमें विपक्ष के नेताओं ने भी उसकी प्रशंसा के गीत गाए थे। वह सत्ता के दलालों को खत्म करने की बात करता था और अखबार वाले इसको ले कर घोषणा करने लगे थे कि जिस सतयुग की वे प्रतीक्षा कर रहे थे, वह आनेवाला है। रंगीन टेलीविजनों से लाई गई क्रांति अब काफी पीछे छूट गई थी और अब विदेशी कंपनियों को खुली छूट दे कर कम्प्यूटरों की मदद से देश को इक्कीसवीं सदी में ले जाया जा रहा था।

मुरली को इन तमाम हवाई सुधारों से डर लग रहा था। उसे लग रहा था कि विश्व के धनी देशों को मनमानी लूट करने के लिए सामान जुटाए जा रहे हैं। इस देश के समृद्ध मध्यवर्ग को और सुखी और विलासी बनाने के प्रयास में गरीब वर्गों की घोर उपेक्षा होगी। धीरे-धीरे उसके सामने सारी बातें स्पष्ट हो रही थीं। धनी वर्गों और गरीब वर्गों में एक साफ विभाजक रेखा खिंचती जा रही थी। गरीब वर्गों की सेवा-सुविधाओं की उपेक्षा हो रही थी और धनीवर्गों की सेवाएं बढ़ती जा रही थीं। आम लोगों की शिक्षण-संस्थाएं धन और साधनों के अभाव में उजड़ रही थीं। धनी लोगों के लिए खास स्कूलों की समानांतर व्यवस्था काम करने लगी थी।

इतना आकर्षण था इस समानातर व्यवस्था में कि झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले मां-बाप भी अपने बच्चों को शिक्षा की इन महंगी दुकानों में भेजने के लिए पागल हो रहे थे। प्राथमिक शिक्षा सब बच्चों को उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी से सरकार ने हाथ धो लिये थे और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की योजना के अनुसार इस सिद्धांत को मान लिया था कि प्राथमिक शिक्षा या साक्षरता-प्रसार के कार्यक्रमों की कोई जरूरत नहीं है। गांव-गांव में टेलीविज़न पहुंचा कर लोगों को शिक्षित बनाया जा सकता है। दूरदर्शन के लिए बनाई गई एक सलाहकार समिति ने भी इस तरह की सिफारिश की थी। शिक्षा की तरह आम जनता की दूसरी सेवाओं की भी घोर उपेक्षा हो रही थी। सार्वजनिक अस्पतालों में न पर्याप्त डाक्टर नर्सें होती थीं और न दवाइयां। अस्पतालों में सफाई की भी अच्छी व्यवस्था नहीं थी। लेकिन धनी लोगों और मंत्रियों आदि के लिए बढ़िया नर्सिंग होम बनते जा रहे थे। आम लोगों की परिवहन सेवाओं की हालत दिनोंदिन खस्ता होती जा रही थी। लेकिन धनी लोगों के लिए हवाई सेवाओं, राजधानी गाड़ियों आदि में वृद्धि हो रही थी। डाक-तार की व्यवस्था भी धनी लोगों के लिए अलग बन गई थी लेकिन आम जनता की डाक-तार व्यवस्था टूट रही थी। साधारण लोगों की जान-माल की सुरक्षा के लिए बनी पुलिस-व्यवस्था भी बड़े लोगों को सुरक्षा-सुविधा जुटाने में लगी हुई थी और आम आदमी को गुंडों, बदमाशों और दूसरे अपराधी तत्त्वों के रहम पर छोड़ा जा रहा था। न सिर्फ कल्याणकारी राज्य की कल्पना नष्ट हो रही थी, राज्य नाम की संस्था भी तेजी से नष्ट होती जा रही थी। इधर विदेशी कंपनियों के साथ धड़ाधड़ सौदे हो रहे थे जिसमें राजनेताओं से लेकर उनके बिचौलियों तक को लूट करने का सुनहरा मौका मिल रहा था। चुनावों के लिए धन जुटाने के सारे पुराने तरीके बेमतलब हो गए थे और सरकारी सौदों की किकबैक से शासक दल के पास अथाह धन आ रहा था जिसके बल पर सारी लोकतांत्रिक प्रक्रिया को दूषित करने की जोरों से तैयारी हो रही थी। जिन मंत्रियों की पहुँच विदेशी सौदों तक नहीं थी वे देशी सौदों और ठेकों से ही अपनी स्थिति मजबूत करने में लगे थे। हर नेता को अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए अपने समर्थकों को घूस दे कर खुश रखना पड़ता था इसलिए सांसद या विधायक बनते ही लोगों में एकाएक बड़ा परिवर्तन आ जाता था। वे एकदम सड़क से उठ कर महलों में पहुँच जाते थे और उनके रहन-सहन की आदतें भी देखते ही देखते बदल जाती थीं। एक बार जो व्यक्ति विधायक या सांसद बन जाता था, उसके कई पीढ़ियों के पितर तर जाते थे। राजनीति सब से अच्छा धंधा बनता जा रहा था।

मुरली राजनीति के इस रूप को देखकर भयभीत था। लेकिन इससे भागने का उसका फिलहाल कोई इरादा नहीं था।

लेकिन सांतो के लिए राजनीति की यह दुनिया बड़ी मोहक बन गई। सांसद बनने के बाद धीरे-धीरे उसने इस दुनिया को जानना और पहचानना शुरू किया। दिल्ली में सरकारी मकान मिलने के बाद कुछ समय तक तो उसका मन उदास-उदास रहा। मुरली से अलग रहना उसे बिलकुल अच्छा नहीं लगता था। लोकसभा के सत्र के दौरान यह अकेलापन तो उसे सहन करना

ही पड़ता था। सप्ताह के अंतिम दो दिन अक्सर मुरली दिल्ली आ जाता था। लेकिन शेष दिन काटना उसे बहुत दुश्वार नजर आता था। खाना-पकाने के लिए एक नौकरानी वह शिमला से अपने साथ ले आई थी। उसके अलावा घर में बात करने के लिए भी कोई आदमी नहीं होता था। लोकसभा की बहसों में उसे कोई रुचि नहीं थी। दिन भर बैठे-बैठे जम्हाइयां लेने या बाहर जाकर चाय-काफी पीने के सिवा कोई काम नहीं होता था। शाम को घर लौट कर टांगें पसार कर सोने का ही मन होता था। सदन के पटल पर रखे गए कागजपत्रों और सरकारी रिपोर्टों से उसे कुछ लेना-देना नहीं था। डाक से कई अखबार, पत्र पत्रिकाएं और अन्य पठन सामग्री भी आने लगी लेकिन अखबारों की सुर्खियों तथा पत्र-पत्रिकाओं की तसबीरों पर सरसरी नजर डाल कर वह उन्हें रद्दी के ढेर में फेंक देती थी।

कुल मिलाकर शुरू-शुरू के कुछ महीने सांतो ने बहुत बोरियत में काटे। फिर एक दिन उसकी मुलाकात हिमाचल कला-शिल्प भंडार के प्रबंधक मंगतराम शर्मा से हुई। फोन पर बात करने के बाद वह घर आया और कला शिल्प भंडार के नये शोरूम के उद्घाटन के लिए उसने सांतो से अनुरोध किया। सांतो की समझ में नहीं आया कि उद्घाटन के लिए सिर्फ उसे क्यों चुना गया। मंगतराम ने इसका औचित्य बताया। वह बोला—

"हिमाचल का नाम कला और शिल्प के क्षेत्र में दिल्ली में ही नहीं, सारे हिन्दुस्तान में, बल्कि सारी दुनिया में मशहूर है। हिमाचल कला शिल्प-भंडार हिमाचल की संस्था है और आप दिल्ली में हिमाचल की प्रतिनिधि हैं। संसद में प्रतिनिधि होने के नाते ही आप कला-शिल्प भंडार की संरक्षक हैं। हम तो यह चाहते हैं कि आप औपचारिक रूप से इसके साथ जुड़ें ताकि हमें समय-समय पर आपका मार्गदर्शन मिलता रहे।"

"लेकिन मुझे करना क्या होगा?" सांतो की समझ में अब भी कुछ नहीं आ रहा था।

"आपको कुछ नहीं करना पड़ेगा", मंगतराम ने समझाया, "यह अपने पैरों पर खड़ी संस्था है। हमारे पास इसके लिए पूरा स्टाफ है। आप इस संस्था की अवतैनिक अध्यक्ष होंगी। कभी-कभी इसकी मीटिंगों में आपको आना होगा। बदले में संस्था की तरफ से आपको वो सारी सुविधाएं मिलेंगी जो अध्यक्ष को आम तौर पर मिलती हैं।"

अनमने भाव से सांतो ने हामी भर दी और मंगतराम शर्मा खुश होकर चला गया। उद्घाटन के दिन मंगतराम अपनी कार में बिठाकर ले गया और उद्घाटन के बाद उसी चमचमाती नई कार में उन्हें वापस घर पहुंचा गया। विदा लेते समय वह बोला—

"यह कार और यह ड्राइवर आपके पास रहेंगे। संस्था की तरफ से। और कल मैं अपने आदमी भेजकर कुछ फर्नीचर वगैरह भी लगवा दूंगा। हिमाचल कला-शिल्प भंडार की अध्यक्ष खस्ता हाल में रहे, यह नहीं होगा। और भी जिस चीज की आपको जरूरत हो आप बिना संकोच मुझे फोन कर सकती हैं....."

सांतो को मंगतराम का व्यवहार बहुत शिष्ट और नम्र लगा। कला-शिल्प भंडार के नये शोरूम को देखकर वह हतप्रभ रह गई थी। एक तरफ हिमाचल के ग्राम और कुटीर उद्योगों में

बनी कलात्मक वस्तुएं थीं। शाल, दुशाले, स्वैटर, रंग-बिरंगी ऊनी पोशाकें। दूसरी तरफ हिमाचल की पुरानी कलाकृतियों, मूर्तियों की अनुकृतियां थीं। मंगतराम ने बताया कि दुर्लभ कलाकृतियों की अनुकृतियों की विदेशों में बड़ी मांग है। स्वदेश में धनी तबके अपने ड्राइंगरूम को सजाने के लिए बड़ी मात्रा में इन वस्तुओं को खरीदते हैं। सांतो को लगा कि यहां से करोड़ों रुपयों का व्यापार होता होगा। उद्घाटन के अवसर पर आए स्त्री-पुरुषों की भीड़ को देखकर उसने अनुमान लगाया कि मंगतराम दिल्ली की बड़ी हस्ती है। कई मंत्री, जज, वकील, पत्रकार, लेखक और कलाकारों के अलावा वहां कछ फिल्मी सितारे भी मौजूद थे। थोड़ी देर के लिए सांतो को लगा कि वह इन सब का केंद्र-बिन्दु बन गई है और सारी दिल्ली उसके आस-पास मंडरा रही है।

सांतो इस बात से बहुत प्रभावित हुई कि मंगतराम में करोड़पति होने के बाद भी अहंकार नहीं है। वह उसे बहनजी कह कर बुलाता है यहां तक कि उसके पैर भी छूता है। सांतो को इससे बड़ी कोफ्त होती थी लेकिन उसकी पेश नहीं चलती। मंगतराम कहता था कि मुरली जी जैसे इन्सान देश में तो क्या दुनिया में इने-गिने हैं। उनकी धर्मपत्नी होने के नाते उनके आगे सारे हिमाचल को झुकना चाहिए, और फिर वे नारी शक्ति की प्रतीक हैं। दुर्गा भगवती का ही एक रूप हैं जो सब के लिए वंदनीय हैं। मंगतराम ने सांतो को बताया कि वह साल में कम से कम एक बार वैष्णोदेवी, ज्वालाजी, चिंतपुरनी, चामुंडा के दर्शनों के लिए जरूर जाता है। वैसे हिमाचल का कोई मंदिर ऐसा नहीं है जिसके लिए मंगतरास ने कुछ न कुछ दान न दिया हो। कई धर्मशालाएं उसके नाम हैं, कई मंदिरों में सदाव्रत भी चल रहे हैं। धन-दौलत में लोटनेवाला व्यक्ति धर्म के लिए इतना कुछ करे, यह साधारण बात नहीं है।

सांतो के फ्लैट को मंगतराम ने दो-तीन दिन के भीतर ही आधुनिक साज-सज्जा से युक्त कर दिया। नया फर्नीचर, गद्देदार सोफे, पलंग, विदेशी छाप का कलर टी.वी., वीसीआर, रेशमी पर्दे, और प्रसिद्ध चित्रकारों की कलाकृतियां। पेपरवेट से लेकर फूलदान तक सभी वस्तुओं में कला के वैभव के दर्शन होते थे। सांतो को सांसद होने के महत्त्व का पहली बार पता चला।

लेकिन सप्ताह के अंत में जब मुरली दिल्ली आया तो इस सारे परिवर्तन को देख कर दंग रह गया। सांतो ने उसे मंगतराम से हुई मुलाकात का सारा विवरण दिया। मुरली चुपचाप सुनता रहा। उसके चेहरे पर गहरी उदासी की रेखाएं उभरती गईं। सांतो ने मुरली के इस भाव-परिवर्तन की तरफ ध्यान नहीं दिया और उत्साह में बहकर मंगतराम के कला-शिल्प भंडार की मनोहर छटा का वर्णन करती गई। मुरली सांतो की आंखों में तैर रहे सपनों को एक बच्चे की आंखों में तैरनेवाले सपनों की तरह मानकर भी यह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि वह अपने भीतर चल रहे द्वंद्व को किन शब्दों में अभिव्यक्त करे। बीच-बीच में उसने मुस्कराने की कोशिश भी की किंतु वह मुस्कराहट वैसी ही थी जैसे कैमरे के सामने खड़े किए गए बच्चे को किसीके निर्देश पर जबर्दस्ती मुस्कराना पड़ता है।

सांतो अपनी बात कह चुकी तो मुरली कुर्सी से उठकर टहलने लगा। सांतो ने पूछा-

"क्या बात है? तुम बहुत परेशान हो?"

मुरली ने कोई जवाब नहीं दिया।

"सब ठीक-ठाक तो है न....?"

"ठीक है।"

"नहीं कुछ गड़बड़ लगती है। रमा दीदी कैसी हैं?"

"रमा दीदी भी ठीक हैं।"

"रूपा दीदी और दूसरे सब लोग?"

"सब ठीक हैं।"

"तो फिर तुम इतने उदास क्यों हो? क्या मुख्यमंत्री से झगड़ा हुआ?"

मुरली कुर्सी पर आ बैठा और सांतो की आंखों में देखकर बोला—

"सांतो तुमने यह भी सोचा कि मंगतराम यह सब क्यों कर रहा है?"

"हां, मैंने सोचा है और काफी सोच विचार के बाद ही मैंने उसकी बात मानी है।"

"क्या सोचा है?"

"यही कि वह व्यापारी है। मैं एम०पी० हूं। उसे मेरी जरूरत है। वह इसके लिए पैसा खर्च कर सकता है। वह मेरे नाम को, मेरे रुतबे को भुनाना चाहता है और इसकी कीमत दे सकता है। मैं अपने रुतबे की कीमत वसूल करती हू तो इसमें क्या बुराई है?"

"लेकिन तुम्हें जो रुतबा मिला है और जिसकी तुम कीमत वसूल कर रही हो, वह बिकाऊ नहीं है।"

"तुम लोग हवा में उड़ने के आदी हो। इसमें क्या बुराई है? सभी ऐसा कर रहे हैं। एम०पी०, एम०एल०ए०, मंत्री, गर्वनर, जज, वकील, अफसर, चपरासी कौन आज बिकाऊ नहीं है? सबकी अपनी-अपनी हैसियत है और अपनी-अपनी कीमत। जिसके पास पैसा है वह किसीको भी खरीद सकता है। इस देश में कौन दूध धुला है? एक तो नाम बताओ। कौन संत-महात्मा है? रातों रात एम०पी०, एम०एल०ए० भेड़ों के झुंड की तरह बिके, सरकारें बदल गईं। किसको क्या फर्क पड़ा? क्या हमारे ही जिम्मे सारी दुनिया के पाप धोने का ठेका है?"

मुरली शांत भाव से उसकी बातें सुन रहा था। मंगतराम के पिता पंडित संगतराम को मुरली भली प्रकार जानता था। घूस, कर-चोरी और तस्करी में उसने खूब धन कमाया था। उसका बेटा भी उसी रास्ते चल रहा था। यह सब जानते हुए भी मुरली ने सांतो को रोकने की कोशिश नहीं की। सांतो ने अब तक जिस मजबूरी में, जिस अभाव में जिंदगी बिताई है, उसे देखते हुए उसका सुख-सुविधा की जिंदगी की ओर आकृष्ट होना अस्वाभाविक नहीं था। मुरली को लगा कि इस समय सांतो को राजनीति की नैतिकता, अनैतिकता के संबंध में कुछ भी कहना बेकार होगा। राजनीति को धंधा बनाने का काम एक अर्से से चल रहा था। राजनीति में रहकर

जिसने पैसा नहीं बनाया उसके लिए मूर्ख का विशेषण ही प्रसिद्ध है। मुरली को सांतो पर गुस्सा नहीं आ रहा था। उसके मन में एक दर्द की चुभन थी। कई दिनों के भूखे के सामने जब अचानक पकवानों की थाली रख दी जाए तो वह यह सोचने नहीं लगता कि पकवानों में विष मिला होगा। विष की आशंका से उसके आगे से थाली हटाना भी पाप होगा। मुरली की समझ में नहीं आ रहा था कि सांतो को अपनी बात कैसे समझाए। कुछ देर बाद वह बोला—

"ये सारी सुविधाएं तुम्हें तभी तक तो मिलेंगीं जब तक तुम एम०पी० हो। उसके बाद क्या होगा?"

सांतो ने उत्तर दिया—

"जो औरों के साथ होता है वही मेरे साथ होगा। दोबारा एम०पी० बनूं या न बनूं लेकिन उस नरक की जिंदगी में वापस नहीं लौटूंगी। इन पांच सालों में इतना कर लूंगी कि कि किसीका मोहताज न होना पड़े।"

"क्या इस वक्त हम किसीके मोहताज हैं?"

"नहीं मोहताज तो नहीं हैं लेकिन सुखी भी कहां हैं? अपना कहने को एक घर भी तो नहीं है हमारे पास। गांव में तुम्हारे भैया-भाभी का घर वही चालीस-पचास साल पुराना है। उसके कोल-दार सड़ गए हैं, दीवारें गिर रहीं हैं। तुम्हारे मंत्री होने का उन्हें क्या फायदा मिला? सब मंत्री अपने गांव के लिए, अपने रिश्तेदारों के लिए, अपने वोटरों के लिए कुछ न कुछ करते हैं। तुमने तो न अपने गांव के लिए कुछ किया, न अपने सगे भाई के लिए। लेकिन मैंने सोच लिया है। मैं गांव में एक अच्छा घर बनाऊंगी। पक्की ईटों और सीमेंट का। लकड़ी की बल्लियों की जगह लोहे के गर्डर डलवाऊंगी जो कभी गलें-सड़ें नहीं। बांस की छत की जगह लैंटरवाली पक्की छत बनाऊंगी। गांव में सब लोग कच्चे घर की जगह पक्के घर बनवा रहे हैं। लोगों के यहां रंगीन टी०वी० और वीसीआर पहुंच रहे हैं। आप हैं कि कुछ सोचते ही नहीं। मैं तुम्हारी तरह नहीं बन सकती।"

मुरली सांतो की बातें सुनता रहा। सांतो का प्रतिवाद करने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। अंत में वह बोला—

"देखो सांतो, मैं तुम्हें किसी काम से रोकूंगा नहीं। अपने बारे में तुम खुद फैसला ले सकती हो। मैं उसमें दखल नहीं दूंगा। लेकिन इतना जरूर कहूंगा कि इन पैसे वालों से सावधान रहना। ये लोग पैसे के लिए देश को बेच सकत हैं। आदमी को दूध में पड़ी मक्खी की तरह निकाल फेंकना उनके लिए मुश्किल नहीं है।"

उसके बाद मुरली ने इस बारे में कोई बात नहीं की। दोनों के बीच और विषयों पर बातें होती रहीं। रमा दीदी की तबीयत ठीक नहीं चल रही है, इस पर दोनों को चिंता थी। सांतो का सुझाव था कि कुछ दिनों के लिए रमा दीदी दिल्ली आ जाएं और आल इंडिया मेडिकल इन्स्टीच्यूट में उनको दिखाया जाए। लेकिन मुरली का कहना था कि वह किरण को छोड़कर कहीं नहीं जा सकती। वैसे भी उन्हें कोई बड़ी तकलीफ नहीं है। ज्यादा दौड़-भाग करने से उन्हें कष्ट होता

है । ब्लडप्रेशर बढ़ता है । जोड़ों का दर्द भी रहता है । लेकिन ऐसी कोई बात नहीं कि उन्हें यहां लाना पड़े । रमा दीदी ने खुद अपनी भाग-दौड़ कम करने का फैसला कर लिया था । महिला मंडलों के काम से अब वे स्वयं हाथ खींचने लगी थीं । उन्होंने लोगों को बता दिया था कि आनेवाले चुनावों में वे महिला मंडल के किसी पद के लिए खड़ी नहीं होंगी । अनेक महिला कार्यकर्ताओं ने इस पर चिंता व्यक्त की थी किंतु रमा दीदी का कहना था कि एक आदमी के भरोसे संस्थाओं को नहीं छोड़ा जाना चाहिए और संगठन में से ही नये-नये कार्यकर्ता तैयार होने चाहिए । महिला मंडलों की ताकत को देखते हुए उन पर कब्जा करने के लिए बड़े स्तर पर राजनैतिक दाव-पेंच खेले जाने लगे थे । स्वयं मुख्यमंत्री की पत्नी इनमें बहुत रुचि लेने लगी थी । महिला मंडलों की ताकत से चुनी गईं चार विधायक महिलाएं — रति, मंगला, किरनी और सुरमा पर मुख्यमंत्री की पत्नी सरस्वती रानी ने अपना जादू चलाया था और वह उन्हें साथ लेकर गांव-गांव के दौरे करने लगी थीं । रमा दीदी को इस बात की खुशी थी कि महिला मंडल अपने पैरों पर खड़ा है और उनका काम सम्हालने के लिए काफी कार्यकर्ता तैयार हैं ।

मुरली भी प्रदेश की राजनीति की तरफ धीरे-धीरे उदासीन होता जा रहा था । केन्द्र की राजनीति देश को अंधे कुंए में धकेल रही थी । एक व्यक्ति के करिश्मे पर टिकी कांग्रेस पार्टी को चुनावों में जो अभूतपूर्व सफलता मिली थी, इससे कांग्रेस की स्थिति मजबूत होने की बजाय कमजोर हो गई थी । लोगों में कहीं नेतृत्व के प्रति असंतोष न उमड़े और वे बागी न हो जाएं, इस भय से दल-बदल विरोधी विधेयक जल्दी-जल्दी पास कराकर सांसदों तथा विधायकों को पार्टी दादाओं के बंधुआ मजदूर बना दिया गया था । इस कदम से प्रधानमंत्री की स्थिति इतनी मजबूत हो गई थी कि मंत्रिमंडल, संसद,पार्टी आदि के सभी लोकतांत्रिक मंच गैर-जरूरी से हो गए । हर चीज प्रधानमंत्री की इच्छा और पहल पर निर्भर हो गई थी । ये स्थितियां प्रधानमंत्री को सत्ता के मद में उन्मत्त करने का काम कर रही थीं । उन्हें लगने लगा था कि वे अपने कुछ दोस्तों की मदद से देश को एक कंपनी की तरह चला सकते हैं । देश की अत्यंत जटिल समस्याओं को उन्होंने कॉफी के प्याले के साथ हल करने का निर्णय किया । तुरत-फुरत हल खोजे जाने लगे और शोर-शराबे के साथ घोषणाएँ की जाने लगीं कि बीसियों सालों से लटकी समस्याएं समय की एक चौखट में हल कर ली जाएंगी । आसाम, पंजाब, गुजरात आदि की समस्याओं के तुरत-फुरत हल खोजे गए और ऐसा समां बांधा गया गोया छिंगुली का स्पर्श पाकर गोवर्धन पर्वत अपने आप उठकर गोकुल की रक्षा करेगा । समाचारपत्र छिंगुली-स्पर्श के इस चमत्कार का प्रशस्तिगान कर रहे थे । विपक्ष जो गत चुनावों में बुरी तरह पिटा था, सरकार पर किसी तरह का अंकुश लगाने में असमर्थ था । संसद के अधिवेशन इतने फीके पड़ते जा रहे थे कि लोगों ने समाचारपत्रों में संसदीय बहस की खबरों को पढ़ना ही छोड़ दिया था । राष्ट्रपति का पद भी गैर-जरूरी बनता जा रहा था और प्रधानमंत्री राष्ट्रपति से सलाह-मशविरा करने और उन्हें आवश्यक सूचनाएं देने की जरूरत भी नहीं समझने लगे थे ।

एक तरफ कांग्रेस के सर्वोच्च नेतृत्व में सत्ता का घमंड बढ़ता जा रहा था, दूसरी तरफ

असुरक्षा का भय भी बढ़ता जा रहा था। मंत्रिमंडल में जो कोई मंत्री लोकप्रिय होता दीखता उसके तुरंत पर काट दिए जाते। प्रांतों के मुख्यमंत्रियों पर नजर रखी जाने लगी कि कोई इतना शक्तिशाली न हो जाए कि केन्द्रीय नेतृत्व के लिए खतरा बन जाए। इस काम के लिए राज्यपालों का इस्तेमाल किया जाने लगा। राज्यों के मंत्रिमंडलों में भी कुर्सी की इस लड़ाई में अपने सहयोगियों के खिलाफ घिनौने षड्यंत्र चल रहे थे।

मुरली को लगता था कि वह भी इन षड्यंत्रों का शिकार होने वाला है। मुख्यमंत्री राजकुमार वीरदमन उसका अहसानमंद है यह विचार मुख्यमंत्री को भीतर ही भीतर कचोटने लगा है। उपकृत व्यक्ति उपकार करने वाले के रहते शायद अपने को पूर्ण सुरक्षित नहीं समझता। सम्भवतः इसीलिए व्यक्ति उपकार करने वाले का मन ही मन शत्रु बन जाता है। चतुर व्यक्ति ईश्वर का सहारा लेकर उपकार के इस बोझ से मुक्त होने का प्रयास करता है और अपनी सफलता का श्रेय मित्रों के सहयोग को न देकर ईश्वर की कृपा को देता है।

शायद इसी विचार के कारण मुरली सांतो के जीवन में आए परिवर्तन से सशंकित था। लेकिन सांतो के जीवन में पहली बार आए सुख-सुविधा के क्षणों को नहीं छीनना चाहता था। अगर सांतो के सुख और संतोष के लिए मुरली को अपना राजनैतिक जीवन छोड़ना भी पड़ेगा तो भी मुरली को इससे दुख नहीं होगा।

तीन दिन के खराब मौसम के बाद आसमान बिल्कुल साफ हो गया था और धूप निकल आई थी। शिमला से बैजनाथ वाली बस जब दस बजे के लगभग कांगड़ा के अड्डे में लगी तो सवारियां चाय पीने के लिए नीचे उतर गईं। मुकुल भी बस से निकलकर बाहर आया। बस अड्डे में इतनी कीचड़ थी कि जूतों और कपड़ों को गंदा किए बिना किसी चाय की दुकान तक जाना भी संभव नहीं था। और यात्रियों की तरह मुकुल ने न जूतों की परवाह की और न कपड़ों की। एक घंटे बाद वह अपने घर होगा। जिस दिन की वह प्रतीक्षा कर रहा था, वह आ गया था। उसे जूनियर इंजीनियर की नौकरी मिल गई थी और उसकी नियुक्ति भी घर के पास ही हुई थी।

कांगड़ा बस अड्डे के पास खड़े होकर उसने धौलाधार पर नजर दौड़ाई जो विशाल चांदी के पर्दे की तरह दूर तक फैली थी। बर्फ से ढकी धौलाधार को उसने पहले भी कई बार देखा था लेकिन आज उसका सौन्दर्य उसे कुछ निराला ही लग रहा था।

शिमला में वह मुरली चाचा के यहां ठहरा था। दिल्ली से चाची भी आई थी। गई रात बड़ी देर तक दोनों मुकुल से बातें करते रहे थे। रमा ताई और किरण भी वहां आ गई थीं। चाची की योजना थी कि गांव में ऐसा मकान बने जिसमें बड़े शहर के बंगले की सारी सुविधाएं और सजधज हो। मुरली चाचा पुराने मकान को ठीक-ठाक करके साथ में दो नये कमरे जोड़ना चाहते थे। इस बात पर देर तक बहस चलती रही कि गांव के घरों में क्या-क्या सुविधाएं जरूरी हैं।

ईंधन की बढ़ती हुई किल्लत ने नई किस्म के चूल्हों के प्रयोग को बढ़ावा दिया था। लेकिन सरकार द्वारा खूब प्रचार होने के बावजूद धौलाधार चूल्हे लोगों में लोकप्रिय नहीं हुए थे। कुछ लोगों ने मिट्टी के तेल से जलने वाले चूल्हों का इस्तेमाल भी शुरू कर दिया था किंतु ये काफी मंहगे पड़ते थे और मिट्टी का तेल भी आसानी से उपलब्ध नहीं होता था। गैस के सिलिंडर सिर्फ पालंपुर जैसे बड़े कस्बे में उपलब्ध थे। उन्हें उठाकर गांव में लाना हर एक के लिए संभव नहीं था। पेड़ों और वनों की अंधाधुंध कटाई पर सरकार द्वारा कड़ी रोक लगाए जाने से जलावन की समस्या घर-घर में महसूस की जा रही थी लेकिन इस समस्या से निपटने के लिए कोई कारगर योजना सरकार नहीं दे पा रही थी।

सांतो चाची दिल्ली से एक टू-इन-वन ले आई थी। किरण ने उस पर 'ओए' 'ओए' का गाना लगाया था और उसकी धुन पर नाचने लगी थी। गाना खत्म होने के बाद वह मुकुल के पास आकर बोली थी—

"मुकुल भैया, मुकुल भैया। तुम तो अपना घर किसी शहर में बनाना। गांव में बनाया तो मेरी तुम्हारी कुट्टी हो जाएगी।"

"क्यों?" मुकुल ने पूछा, "क्या गाव के घर अच्छे नहीं होते"।

"अच्छे तो होते हैं लेकिन...?

"लेकिन क्या?"

"लैटरीन की मुसीबत होती है।"

किरण की बात पर सब लोग हंस पड़े थे।

कांगड़ा के बस अड्डे पर खड़े-खड़े मुकुल को किरण की वह बात याद आई क्योंकि जिस जगह से वह बर्फ से ढकी धौलाधार की छटा देख रहा था वह मल-मूत्र की दुर्गंध से पटी थी। बस के यात्रियों के लिए आस-पास शौचालय की व्यवस्था नहीं थी। बस के ड्राइवर ने हार्न बजाया तो हड़बड़ाकर यात्री बस की ओर भागे। मुकुल का जूता कीचड़ के गड्ढे में धंस गया। उसके कपड़े भी खराब हो गए। किसी तरह उसने बस पकड़ी। कांगड़ा से कई यात्री बस में चढ़े थे और बस खचाखच भर गई थी।

अपनी सीट पर रवि को बैठा देखकर मुकुल का चेहरा खिल उठा। रवि ने हाथ मिलाया और एक तरफ खिसककर उसे बैठने की जगह दी। रवि की बग़ल में एक लड़की बैठी थी। रवि ने परिचय कराया—

"यह रजनी है। हम दोनों की सगाई होने वाली है।"

"मुकुल ने रजनी को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बोला—

"मेरा नाम मुकुल है। आपके बारे में सुना तो बहुत था लेकिन रवि ने कभी मुलाकात नहीं कराई।"

रवि ने प्रतिवाद किया—

"देखो, यह बात गलत है। मुलाकात के लिए तुम्हारे पास वक्त कहां था? कितनी बार तो मैंने तुम्हें धर्मशाला बुलाया था।"

"चलो मेरा ही कसूर सही।"

"अच्छा यह बताइए, मेरे बारे में आपने कहां सुना और क्या सुना?" रजनी ने प्रश्न किया।

"सुना तो यही कि आप बहुत अच्छी हैं और यह बात रमा ताई, मुरली चाचा और किरण सभी कहते हैं। यानी कुल मिलाकर इस मामले में आम सहमति है।"

रजनी खिलखिलाकर हंस पड़ी, "तो आपने मुझे नेशनल कंसेंसस का मसला बना दिया।"

"क्या करें, आम सहमति के बिना आज कोई भी काम नहीं हो सकता।"

रवि ने बात बदली—

"आ कहां से रहे हो?"

"शिमला गया था, इंटरव्यू के लिए। मेरा जूनियर इंजीनियर के पद पर सलेक्शन हो गया है।"

"कांग्रेच्युलेशन.... यह तो बहुत बढ़िया खबर है।"

"एप्वायटमेंट भी घर के पास हो गई है।"

"फिर तो जश्न मनाया जाना चाहिए।"

"पहले जश्न तुम्हारी सगाई का बाद में मेरी नौकरी का।"

"तो फिर अगले संडे को तुम्हें धर्मशाला आना होगा।"

"धर्मशाला क्यों?"

"बस, रजनी के पिता की इच्छा है कि सगाई और शादी वहीं हो।"

रजनी ने स्पष्ट किया—

"गांवों में कई झंझट करने पड़ते हैं। शहरों में शादियां बड़े आराम से होती हैं।"

रवि ने बताया कि वे अभी घर जा रहे हैं। माता-पिता से सलाह करने। पालपुर उतर कर वे खैरा की बस लेंगे। कल सुबह उन्हें लौट जाना है। रवि की धर्मशाला के सरकारी अस्पताल में नौकरी लग गई है। वहां एक मकान किराए पर ले लिया है, रजनी के घर के पास।

रवि और रजनी पालंपुर उतर गए तो मुकुल न जाने क्यों उदास हो गया। उसके सामने रवि के पिता दिवाकर मामा की छवि उभर आई। "अमर संदेश" के दफ्तर में वह कितनी ही बार उनसे मिला था। उन्हें बात करने की फुर्सत नहीं होती थी। मेज पर कागजों का ढेर पड़ा रहता था। "अमर संदेश" के लिए आए लेखों को पढ़ते-पढ़ते वे इतना खो जाते थे कि पास रखी चाय ठंडी हो जाती थी और सिगरेट ऐशट्रे में रखी-रखी जल जाती थी। फिर भी उनके चेहरे पर कभी तनाव या उदासी के आसार नहीं दीखते थे। शाम देर तक दफ्तर में रुकना पड़ता था लेकिन जैसे भी हो, रात में हर हालत में घर पहुंच जाते थे। शायद उन्हें घर जाकर खाना भी पकाना पड़ता था क्योंकि रूपा दीदी को अब लोगों से फुर्सत नहीं मिलती थी। एक गांव से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में, दिन भर रूपा दीदी की यही चर्या रहती। कहीं मीटिंग-जलसा, कहीं धरना-सत्याग्रह और कहीं सामूहिक निर्माण का काम। रूपा दीदी का नाम हर बच्चे बूढ़े की जबान पर था।

बैजनाथ के बस अड्डे पर उतरकर मुकुल गदियारी जाने वाली बस की प्रतीक्षा करने

लगा। बस अड्डे पर काफी भीड़ थी। अलग-अलग दिशाओं में जानेवाली कई बसों की भीड़ थी। मुकुल को याद आया। कुछ साल पहले यह बस अड्डा नहीं था। आस-पास के गांवों के लिए इक्का-दुक्का बसें थीं। गदियारी के लिए भी सिर्फ एक बस थी। लोग आठ-आठ दस-दस मील का सफर पैदल ही करते थे। घर की जरूरत का सामान बाजार से खरीद कर या तो सिर पर उठाकर ले जाते थे या खच्चर कर लेते थे। अब तो दो किलोमीटर तक जाने के लिए भी लोग बस की इंतजार में वक्त बर्बाद करते हैं। लोगों के रहन-सहन की आदतें भी शहर जैसी हो गई हैं। सूती कपड़े अब दिखाई नहीं देते। टैरीलीन के अलावा विदेशी डिजाइन के सिले-सिलाए कपड़ों का फैशन खूब लोकप्रिय हुआ हैं।

उसे गांव के मशहूर गप्पी घ्रींडू की बात याद आई। एक दिन जीन पहने एक लड़के को देखकर उसने चौराहे पर उसे रोक दिया और बोला, "अरे बाबूजी, यह क्या करते हो? ऐसी भी क्या जल्दी है कि उल्टा पाजामा पहनकर ही घर से निकल पड़े।" लोग उसकी बात सुनकर चलते-चलते रुक गए। जब उन्हें पता चला कि घ्रींडू ने जीन को उल्टा पाजामा कहा है तो सब के हंसते-हंसते पेट में बल पड़ गए।

घ्रींडू में बात कहने की कला है। वह गंभीर से गंभीर बात में बेतुकापन देख सकता है। खुद हंसे बिना वह दूसरों को हंसा सकता है। गप्प की कला घ्रींडू को अपने पिता बसेसर से मिली है। गांव के शादी-ब्याहों में पालकी उठाने या बोझा ले जाने के लिए बसेसर की मांग होती थी लेकिन असल में हर शादी में उसका होना इसलिए जरूरी समझा जाता था कि वह गप्प सुनाकर बरातियों का दिल बहलाए रहता था। बसेसर की मुकुल को याद नहीं है। उसकी कहानियां तो उसने भाई-भाभी से (अपने माता-पिता को वह मुरली की देखा-देखी भाई-भाभी ही कहता है) सुनी थीं। गांव के एक और गप्पी जेठू की भी कई कहानियां उसने सुनी थीं। जेठू के बेटे सीतू में भी थोड़ी सी कला आई थी। सीतू अब रिटायर्ड हौलदार है और गाव में भारतीय जनता पार्टी का नेता भी हो गया हैं। इसलिए दूसरों को हंसाने से ज्यादा वह भाषण देने लगा था। कभी कभार ही वह गप्प सुनाने के मूड में होता था। लेकिन घ्रींडू शुद्ध कलाकार था। बाप की तरह घ्रींडू ने भी कभी ढंग का काम नहीं किया। अपनी जमीन कभी रही नहीं। दूसरों के खेत में मेहनत-मजदूरी और बोझ ढोने का काम ही किया। जो हरिजन परिवार दूसरों की जमीनें बोते थे उनको तो जमीनें मिल गई थीं लेकिन घ्रींडू जैसे लोगों के भाग्य में अब भी बोझ ढोना या छोटी-मोटी मजदूरी करना बदा था। एक बार सड़क के काम में उसे नौकरी मिली। काम में सुस्त और गप्पों में चुस्त होने की वजह से मलखू ओवरसियर उससे तंग आ गया। लेकिन नौकरी लगी थी इलाके के एम०एल०ए० की सिफारिश पर, इसलिए मलखू ने नौकरी से निकालने की बजाय उसे मजदूरों की निगरानी करने वाला मेट बना दिया। जब तक मलखू ओवरसियर रहा घ्रींडू का काम ठीक-ठाक चलता रहा फिर उसकी जगह एक चटक-मटक वाला ओवरसियर आया जो पंजाब या हरियाणा के इलाके का था। हिंदी बोलता था और काम लेने में सख्त था। सुबह मजदूरों के पहुंचने से पहले काम पर हाजिर हो जाता था। पहली ही मुलाकात

में वह घींडू का मुरीद बन गया।

हुआ यह कि घींडू अपनी आदत के मुताबिक काम पर एक घंटा लेट पहुंचा। ओवरसियर ने गुस्से से कहा, "घर जाओ, आज तुम्हारी छुट्टी।"

"छुट्टी करेंगे तो खाएंगे क्या?" घींडू ने पूछा।

"यह कोई आने का वक्त है? क्या बजा है?" ओवरसियर ने पूछा।

"अरे साहब, हम गरीबों के पास कहाँ घड़ी है? हो भी तो किस काम की, सुई दीखती है लेकिन अक्खर कौन पढ़ेगा? चार कोस चलकर आ रहा हूं और आप कहते हैं छुट्टी करो।"

"चार कोस से पैदल आ रहे हो? बस नहीं आती?"

"काहेकी बस साहब। मैं जहां रहता हूं वहा तो बाईसिकल का बच्चा भी नहीं दिखाई देता।"

"तो फिर घर से जल्दी निकलो। दस बजे तक बिस्तर पर सोए रहोगे तो फिर काम पर कैसे आओगे?"

"राम-राम साहब, यह आप क्या कह रहे हैं? उठ तो मैं छः ही बजे जाता हूं। लेकिन मेरी घरवाली ने मेरी लिए ऐसी रजाई बनाई है कि उससे बाहर आने में कम से कम पौने दो घंटे लगते हैं। सिर बाहर निकालता हूं तो टांगें अंदर फंस जाती हैं और टांगें खींचता हू तो सिर कहीं फंस जाता है।"

आसपास खड़े सभी लोग हंसने लगे। ओवरसियर भी अपनी हंसी पर काबू नहीं रख सका। गुस्सा काफूर हो गया। ओवरसियर ने उसे अपना चपरासी बना लिया।

गादियारी की बस अड्डे पर आकर लग गई थी और यात्रियों की भीड़ उस पर टूट पड़ी थी। मुकुल को कोई जल्दी नहीं थी। वह खड़े-खड़े भी सफर कर सकता था। जब सब लोग बस में बैठ गए तो वह धीरे-धीरे चलकर बस के पिछले दरवाजे से अंदर चला गया। सैनिक अधिकारी की वर्दी पहने एक युवक ने अपनी सीट से उठ कर बैठने के लिए कहा। अपने दोस्त दलवीर को देख कर मुकुल का चेहरा खुशी से खिल उठा।

"अरे 'दलवीर' कब आए?"

"बस, अभी आ ही रहा हूं।"

दोनों ने हाथ मिलाया और एक ही सीट पर सट कर बैठ गए।

"मैंने सुना तुम्हारी पोस्टिंग कहीं विदेश में हुई थी।" मुकुल ने पूछा।

"वह तो बहुत पहले की बात है। पांच-छः महीने के लिए गया था। पिछले तीन साल से तो मैं हिन्दुस्तान में ही हूं।"

"तो फिर छुट्टी पर क्यों नहीं आए?"

"जब-जब छुट्टी पर आया तुम्हारे बारे में पूछने पर पता चला कि होस्टेल में हो। अच्छा कहो, क्या खबर है?"

"खबर बढ़िया है। मुझे जूनियर इंजीनियर की नौकरी मिल गई है। पोस्टिंग भी यहीं

होगी।"

"यह तो बहुत खुशी की बात है।"

बस के कई यात्री मुकुल और दलबीर की तरफ देखने लगे थे। दलबीर घीणू के बेटे उम्दू का लड़का था। हरिजन परिवार से होते हुए भी मुकुल के साथ स्कूल के दिनों से ही उसकी गहरी दोस्ती थी। दलबीर बहुत प्रतिभाशाली लड़का था और सेना की खुली प्रतियोगिता में वह सेंकंड लेफ्टिनेंट बन गया था। हरिजन टोले का ही एक और लड़का, डूमंनू का बेटा सतप्रकाश था जो प्रांतीय सिविल सर्विस में आ गया था और आजकल सेक्शन आफिसर के पद पर काम कर रहा था। इधर बांबरी का भाई पूरब कैप्टन के पद से रिटायर हो कर घर आ गया था। हरिजनों के लड़कों की तरक्की से ऊंची जात वालों को खुशी नहीं होती थी। ऊंची जात वालों में यह धारणा बन गई थी कि हरिजनों की सरकार बहुत मदद करती है इसलिए वे ऊपर उठ रहे हैं। इसके मुकाबले में उनकी अपनी हालत बिगड़ती गई है। इसका सारा दोष वे सरकार को देते थे जो उनके विचार से हरिजनों के वोटों के लिए उन्हें सिर पर चढ़ाती है। मुकुल इस तरह के विचारों को निहायत बेवकूफी मानता था। इसीलिए उसे उन हिंदूवादी पार्टियों से नफरत थी जो इस तरह का जहर फैलाने का काम कर रही थीं।

मुकुल जब घर पहुंचा तो उसकी छोटी बहन पारो ही घर पर थी। माता-पिता अभी खेत से नहीं आए थे। मुकुल ने पारो के हाथ मिठाई का डिब्बा देते हुए खुशखबरी सुनाई। इतने में माता-पिता भी खेत से आ गए। मुकुल को नौकरी मिल गई है इस बात से सबको बहुत खुशी हुई। पारो पास-पड़ोस में मिठाई बांटने और खबर सुनाने के लिए चली गई।

मुकुल ने शिमला का सारा हाल-चाल सुनाया। चाचा-चाची, रमा दीदी और किरण सब का कुशल समाचार जानने के बाद मुकुल की मां ने पूछा—

"तुम्हारे चाचा-चाची घर के बारे में भी सोचते हैं या अपनी दुनिया में ही मस्त रहेंगे?"

मुकुल ने बताया कि चाची यहां पक्का मकान बनवाने के लिए कह रही थी लेकिन चाचा कहते हैं इसमें बहुत खर्च आएगा। सिर्फ दो कमरे जोड़ेंगे और पुराने घर की मरम्मत करेंगे।"

मुकुल के पिता बुधीसिंह बोले—

"मुरली ठीक ही तो कहता है। वैसे दो कमरे बनाने की भी जरूरत क्या है? यहां किसीको रहना ही नहीं है तो दो कमरे भी क्यों डलवाएं। जिनको यहां रहना है उनके लिए तो यही काफी है।"

"तो क्या वो यहां नहीं रहेंगे? हमेशा बाहर ही रहेंगे?" नीलू ने सवाल किया और पति के थकान भरे चेहरे पर नजरें गड़ा दीं। नीलू को पति के चेहरे पर कई दिनों से अजीब सी निराशा और थकान दिखाई देने लगी थी। खुद अपनेको भी वह काफी टूटा हुआ महसूस करने लगी थी।

बुधीसिंह बोला, "कौन कहां रहेगा? इसका फैसला हम-तुम नहीं कर सकते। पंछी एक बार पिंजरे से उड़ गया तो दोबारा पिंजरे में क्यों आएगा? उन लोगों की दुनिया अब बदल गई

है। अब वो वापस इस गांव में रहने आएंगे, इस बात की उम्मीद छोड़ दो। देख नहीं रही हो अपनें गांव में कितने घर उजड़ गए हैं। जो नौकरी-चाकरी के लिए बाहर निकल गया उसने वहीं घर बना लिया। आधे से ज्यादा गांव आज खाली है। ठीक भी है। जहा रोजगार वहा घर। जो लोग जमीन के टुकड़े के मोह से बंधे हैं वही गांव में रहेंगे। मुकुल से ही पूछ लो। क्या वह हमेशा इस गांव में रहेगा? अभी तो उसकी नौकरी घर के पास ही होगी। लेकिन कल कहीं उसकी बदली हो गई कहीं दूर तो वह यहां रहेगा? जब तक हम जिंदा हैं तब तक तो थोड़ा-बहुत गांव से नाता रहेगा लेकिन उसके बाद?''

नीलू भी इन बातों को समझती थी। पिछले पंद्रह-बीस वर्षों में उसने अपनी आंखों में गांव के बदलते स्वरूप को देखा था। पुरोहितों के परिवार में एक समय था जब सुबह-शाम खाने के वक्त लंबी पांत लगती थी। एक साथ पचास-साठ जने खाना खाने बैठते थे और दो रसोइये खाना परोसने का काम करते थे। आज उस परिवार में तीन जने हैं। सुधीर सुबह घर से निकलता है। वह बैजनाथ में हलवाई की दुकान चलाता है। शाम को घर लौटता है तो उसकी घरवाली या तो बिस्तर पर पड़ी दर्द-बुखार में कराह रही होती है या चूल्हा झोंकते खासती दिखाई देती है। लड़कियों की शादी के बाद बेहद अकेलापन आ गया है उनमें। एक लड़का है लेकिन कई सालों से उसकी नौकरी नहीं लगी और वह रात को सोने के वक्त ही घर पर आता है।

मियों के टोले के बीस घरों में अब कुल मिलाकर चालीस-पैंतालीस लोग होंगे। सब बूढ़े और अपाहिज जैसे, जिन्हें घर तक चढ़ाई चढ़ने में तीन-चार बार रास्ते में सुस्ताने बैठना पड़ता है। मानसवालन के परिवार ने बहुत पहले टीले का मकान छोड़कर गांव के निचले हिस्से में मकान बना लिया था। मानसवालन के पति को टीले का मकान इसलिए पसद नहीं था कि खड़े क्वालू की चढ़ाई चढ़नी पड़ती थी और उसका दम फूलता था। गांव के निचले हिस्से में मकान बनाने पर बिरादरी वालों ने उसकी बहुत आलोचना की थी। लेकिन उन्हें अपने फैसले पर पश्चात्ताप नहीं हुआ। अब उस घर में मानसवालन मिट्टी के ढेर की तरह अकेली पड़ी रहती है। तीन साल पहले उसके पति का स्वर्गवास हो गया था। दो लड़के शहर मे नौकरी पर हैं। वे अपने बाल-बच्चों के साथ वहीं रहने लगे हैं। कभी-कभार छुट्टिया काटने आते हैं तो थोड़े दिन के लिए चहल-पहल हो जाती है। वैसे मानसवालन अकेली घर में रहती है। पिछले साल उसके आधे शरीर को लकवा मार गया था, तबसे वह घर में अकेली पड़ी रहती है। घिसट-घिसट कर चूल्हा जला कर चाय बना लेती है। घर का बाकी काम पड़ोसी कर देते हैं। बेटों ने उसे अपने साथ ले जाना चाहा लेकिन वह अपनी जिद्द पर अड़ी है। वह परदेस में नहीं मरना चाहती।

मानसवालन किसी दूर के इलाके से ब्याह कर लाई गई थी। किसी बड़े घराने की बेटी थी, मानसवाल घराने की। इसलिए गांव में उसे मानसवालन बहू के नाम से ही पुकारा जाने लगा। गांव की सारी औरतें उससे मिलने, उससे दो-चार बातें करने के लिए उतावली रहती थीं। बहुत सुंदर थी और बहुत मीठा बोलती थी। एक बार जो मानसवालन से मिल लेता, वह उसकी बातें

करता थकता नहीं था। मानसबालन गांव के शादी-ब्याह में किसी के घर जाती तो गांव की सारी लड़कियां और औरतें उसे घेर लेतीं। आज वही मानसबालन दिन भर घर में अकेली पड़ी छटपटाती रहती है और इंतजार करती रहती है कि कब मौत उसके दरवाजे पर दस्तक दे।

रमा और नीलू भाभी से मानसबालन की बहुत दोस्ती थी। रमा ही उसे अस्पताल ले गई थी। और कई दिन तक उसका वहां इलाज कराया था। लेकिन जब अस्पताल में रहने पर भी कोई खास फर्क नहीं पड़ा तो उसके जिद्द करने पर रमा उसे वापस घर ले आई थी। रमा जब गांव में रहती तो मानसबालन के लिए सुबह-शाम खाना वही बनाती। उसकी गैर-हाजिरी में यह काम नीलू भाभी के जिम्मे था।

नागों और नगरकोटिये पंडितों के टोले के घर तो खाली हो गए थे। अधिकतर घरों में ताले लगे रहते थे। कुछ घरों में बाहर से आए लोग किराएदार बनकर रहने लगे थे। इन टोलों के जिन परिवारों की जमीनें थीं उन्होंने जमीनें या तो बेच दी थीं या उन पर काश्तकारों का कब्जा हो गया था। जमीनों के मामले में ऊंची जातियों के मुकाबले में हरिजनों की स्थिति अच्छी हो गई थी। जिन खेतों को हरिजन जोतते-बोते थे उन पर उनको कब्जा मिल गया था। इसके अलावा शामलाती जमीन से हरिजनों को सरकार ने जमीनें बांटी थी। कई हरिजन परिवारों ने उन जमीनों पर जो सड़क के किनारे थीं, दुकानें बना कर उन्हें किराए पर चढ़ा दिया था। पक्की सड़क और बस रूट मिल जाने से इन जमीनों की कीमत भी बढ़ गई थी।

बुधीसिंह की स्थिति भी जमीन के मामले में पहले से बहुत अच्छी थी। जिस जमीन को वह वर्षों से जोतता-बोता था, वह दूर के एक बड़े जागीरदार की थी। अब उस पर बुधीसिंह का अधिकार था। लेकिन बुधीसिंह इस बात से चिंतित था कि जिस तरह खुद न जोत पाने के कारण नागों, पंडितों और अवस्थियों के टोले के कई लोगों को अपनी जमीनें बेचनी पड़ीं, उसी तरह उसे भी अपनी जमीन बेचनी पड़ेगी। हरिजन परिवारों में एक लड़का नौकरी पर जाता है और बाकी खेत में काम करते हैं। इसीलिए उन्हें अपनी जमीनें बेचने की नौबत नहीं आती। लेकिन जिन घरों के लड़के पढ़-लिख जाते हैं उन्हें अपनी जमीनों से हाथ धोना ही पड़ता है। क्योंकि पढ़े-लिखे लड़के खेतों में काम करना नहीं चाहते। वे सफेदपोश नौकरियां ढूंढ़ते हैं। जिन्हें नौकरियां मिल जाती हैं वे वहीं जम जाते हैं और जिन्हें नौकरियां नहीं मिलतीं वे गुंडागर्दी या पालिटिक्स में हाथ साफ करने लगते हैं।

मुकुल गांव के पुराने इतिहास से परिचित नहीं था। कभी-कभी जब घर के लोगों के बीच या गांव के बड़े-बूढ़ों के बीच पुराने दिनों की बातें छिड़तीं तो उसे उनकी बातों में मजा आता था। उसे वे सब बातें परियों की कहानी की तरह अजीबो-गरीब लगती थीं। इस गांव को कभी राजधानी कहा जाता था। मियां घुमनचंद और पुरोहित दयाराम के राजसी ठाठ-बाट की कहानियां बड़े-बूढ़ों की जबान पर अब भी थीं। आचार्यों के टोले की कहानियों में शिवदयालु की बहादुरी और उसके भाई की अलमस्त जिंदगी के किस्से अब भी सुने-सुनाये जाते थे। लेकिन मुकुल के लिए ये सब किस्से-कहानियों की बातें थीं। उसने जब से होश संभाला था तब से लेकर

आज तक गांव में जो परिवर्तन आए थे उनमें उसे कुछ विशेष नहीं लगता था। जो भी परिवर्तन हुए बड़े सहज ढंग से हुए थे कपड़ों के बदलते फैशन की तरह। किसीने सोच-विचार करके परिवर्तन लाने का कोई काम किया हो, ऐसा उसे नहीं लगा। उसने इसके लिए कोई आंदोलन होते भी नहीं देखा। इतना तो वह जानता था कि कांग्रेस सरकार ने हरिजनों को जमीनें दी थीं, घर बनाने के लिए। फिर जब जनता सरकार आई थी तो कुछ लोगों ने उन जमीनों को हरिजनों से छीनने की कोशिश की थी। लेकिन वे कामयाब नहीं हुए। अमर मौसा की मृत्यु उन्हीं दिनों हरिजनों और सवर्णों में बीच-बचाव करते हो गई थी। इसके बाद हरिजनों और सवर्णों में तनाव की स्थिति तो कई दिनों तक बनी रही लेकिन कोई दंगा-फसाद नहीं हुआ था।

हरिजनों के कुछ परिवारों की स्थिति निश्चय ही ऊंची जातियों के कई घरों की तुलना में बेहतर है और इसकी वजह से कई लोगों में ईर्ष्या के भाव भी जगे हैं। लेकिन अधिकांश हरिजन परिवारों की स्थिति वैसी ही है जैसी कई साल पहले बचपन में उसने देखी थी। मुकुल के घर टेलीविजन पर रामायण देखने के लिए हरिजन टोले से जो लोग आते थे उनके शरीर से इतनी बदबू निकलती थी कि कमरे में बैठना मुश्किल हो जाता था। मुकुल को इससे कुछ चिढ़ जरूर होती थी लेकिन उसके मन में हमेशा यह सवाल उठता कि उनकी मजबूरी क्या है? क्या वे इतने गरीब हैं कि नहाना और साफ-सुथरे कपड़े पहनना भी उन्हें नसीब नहीं है या वे अपनी आदतों को नहीं बदलना चाहते? क्या साधन होते हुए भी कोई इस तरह की जिंदगी जीना चाहेगा?

मुकुल को इन सब बातों पर गंभीरता से सोच-विचार करने का कभी मौका नहीं मिला। स्कूल जीवन से लेकर अब तक न तो उसने कभी भेदभाव बरता और न इस समस्या को शिद्दत से महसूस किया। चुनाव के दिनों में जरूर हरिजन टोले और सवर्ण टोले के विरोध मुखर हो कर सामने आते थे। हरिजन टोले के वोट हमेशा कांग्रेस को जाते थे और सवर्णों के टोले में कांग्रेस विरोधी हिंदूवादी पार्टी का ज़ोर होता था। उन दिनों में गांव जरूर दो हिस्सों में बंटा हुआ दिखाई देता था और कुछ कड़ुवाहट भी पैदा होती थी। अगर कांग्रेस जीतती तो हरिजन टोले में रात भर ढोल बजाने के साथ नाच-गान होता था और दूसरी पार्टी जीतती तो सवर्णों के टोले में रौनक होती थी। लेकिन चुनाव के बाद सब सामान्य हो जाता था।

मुकुल जानता था कि दलवीर, सतप्रकाश और पूरब के हरिजन परिवार गांव वालों की आंखों में चुभते थे। पिछले चुनावों में पूरब की पत्नी रति, सतप्रकाश की मां किरनी और दलवीर की मां मंगला के विधायक चुने जाने के बाद इन घरों का रुतबा और बढ़ गया था। सुरमा को मिलाकर गदियारी गांव के हरिजन टोले की चार विधायक अलग-अलग स्थानों से चुनी गई थीं। इनकी वजह से यहां के हरिजन टोले में बिजली-पानी और सफाई की अच्छी व्यवस्था हो गई थी। लेकिन अधिकांश हरिजन परिवारों की रहन-सहन की आदतों में कोई तबदीली नहीं आई थी। हां, हरिजन अब सवर्णों के आगे सिर उठा कर बात करने लगे थे और उनमें कुछ आत्म-गौरव की भावना आने लगी थी। मुकुल की दृष्टि में यह सब सहज और स्वाभाविक था और उसे इस बात की खुशी थी कि लोगों में अपने को छोटा और जलील समझने की प्रवृत्ति खत्म

हो रही है।

इसीलिए जब दलवीर ने अपने बेटे का मुंडन बड़ी धूमधाम से करने का निश्चय किया तो मुकुल ने तुंरत उसका समर्थन किया और इसमें शामिल होने का वायदा भी किया।

दलवीर ने बेटे के. मुंडन पर सारे गांव को न्यौता दिया। रसोई की व्यवस्था अलग शामियाना लगा कर हलवाइयों से करवाई गई थी। कई तरह की दाल-सब्जियां, पुलाव, हलुवा, पूरी, पापड़, अचार याने वे सारी चीजें जो शहर की शादियों में आम तौर पर बनती थीं। खाने का प्रबंध भी अलग-अलग जगह किया गया था। गांव के कई लोग प्रीतिभोज में शामिल हुए। कुछ लोगों ने नाक-भों भी सिकोड़ी लेकिन पढ़े-लिखे नौजवानों ने इसमें खुल कर हिस्सा लिया। दलवीर ने शहरी बैंड के अलावा गांव के मशहूर शहनाई वादकवंधु रतनू और शंभू को भी बुलाया था। रात भर नाचने-गाने की व्यवस्था थी और उसके लिए चालीस बोतलें शराब की भी मंगवाई गई थी। मुकुल को यह सब पसंद नहीं था लेकिन उसने विरोध भी नहीं किया क्योंकि शादी-ब्याह और इसी तरह के दूसरे उत्सवों में शराब और नाचना-गाना अब सामान्य बात हो गई थी। पहले हरिजनों के घर शादी-ब्याह पर कृष्णलीला का स्वांग होता था जिसे भगत कहते थे। उसे देखने के लिए भी गांव वाले छुआछूत का विचार छोड़ कर जाते थे और रात भर बैठे रहते थे। अब भगत कराने का रिवाज बहुत कम हो गया है। अब शराब पीकर बैंडबाजे की फिल्मी धुनों पर नाचने का फैशन बहुत लोकप्रिय हुआ है। मुकुल के लिए अपने दोस्त की खुशी में शामिल होना बहुत जरूरी था लेकिन मन ही मन उसे इस दिखावे और फिजूलखर्ची पर चिढ़ हुई।

इस लिहाज से मुकुल छज्जू का बहुत प्रशंसक था। लहनू का इकलौता बेटा छज्जू दिल्ली में टैक्सी यूनियन का नेता था और उसे कामरेड छबीलदास के नाम से दिल्ली का हर टैक्सीवाला जानता था। बचपन में मियां यशवंतचंद के थप्पड़ से उसके कान का पर्दा फट गया था और वह बहरा हो गया था। उसके पिता को भी यशवंतचंद ने बहुत मारा था। छज्जू ने इसके लिए यशवंतचंद को कभी माफ नहीं किया। कामरेड बनने के बाद उसने यशवंतचंद पर कई मुकदमे ठोंके और बुढ़ापे में उसे कचहरियों के इतने चक्कर कटवाए कि अंत में यशवंतचंद को उससे हाथ जोड़कर माफी मांगनी पड़ी। कुछ वर्ष पहले पिता लहनू की मृत्यु के बाद छबीलदास ने जमीन बेच कर दिल्ली में ही स्थायी घर बना लिया था। कामरेड छबीलदास शादी-ब्याहों में पैसा बर्बाद करने के सख्त खिलाफ था। उसने अपनी शादी बिरादरी की एक गरीब लड़की से मैरिज रजिस्ट्रार के दफ्तर में जाकर की थी। न लड़की वालों से कुछ लिया था और न कोई दिखावा किया था।

मुकुल, छज्जू, सतप्रकाश, दलवीर, गंदियारी गांव के नई पीढ़ी के युवकों के नेता थे। दूसरे युवक जो अभी या तो पढ़ रहे थे या नौकरी की प्रतीक्षा में थे, उनको अपना आदर्श मानते थे। मुकुल का स्थान इन सबसे ऊपर था क्योंकि वह मुरली का भतीजा था और मुरली सबके लिए भगतसिंह तथा सुभाषचंद्र बोस की तरह का असाधारण 'हीरो' था।

दिवाकर ने मेज पर पड़े कागजों के ढेर को समेट कर एक तरफ रखा और फिर सामने बैठे तीन युवकों की तरफ देखा। उन्होंने कहना शुरू किया–

"मैंने आप लोगों को आज इसलिए बुलाया है कि मैं कुछ दिनों के लिए लंबी छुट्टी पर जाना चाहता हूं। हो सकता है यह लंबी छुट्टी रिटायरमेंट से पहले की छुट्टी बन जाए।...."

रघुनाथ ने बीच में ही बोलना शुरू किया, "नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। आप लंबी छुट्टी जाइए लेकिन रिटायरमेंट की बात मत कीजिए।"

दिवाकर ने अपनी बात जारी रखी–

"आप लोगों पर 'अमर संदेश' को चलाने की जिम्मेवारी है। आप लोग जानते हैं कि इस पत्रिका ने हम लोगों को, हम सब को जीने का सहारा दिया है। जीमे का सहारा ही नहीं, उसके अलावा भी बहुत कुछ दिया है। हमें आत्मबल दिया है, जिंदगी की लड़ाई लड़ने का हौसला दिया है। यह पत्रिका हम सब की मां है। इसने अपने आंचल की छाया देकर हमें टूटने से बचाया है। शायद आपके बारे में यह पूरी तरह सही न हो लेकिन अपने बारे में तो मैं कह ही सकता हूं कि इसका सहारा न मिला होता तो मैं आत्म-हत्या के रास्ते पर चला गया होता।"

रघुनाथ, भीखमराम और गरीबचंद तीनों दिवाकर के साथ ही इस पत्रिका के साथ जुड़े थे। पिछले 11 वर्षों में इस पत्रिका ने उन्हें आत्मबल, आत्म-सम्मान और एक रोजगार दिया है। ग्यारह वर्ष पहले जिन लोगों की नजरों में वे निकम्मे और आवारा थे आज वे उनका नाम बड़े आदर से लेते थे। इस पत्रिका से जुड़ा होने के कारण गांव में ही नहीं, सारे प्रदेश में उन्हें सम्मान मिलता था। रघुनाथ संपादकीय विभाग का सारा काम देखते थे। भीखमराम प्रेस, छपाई और वितरण का प्रबंध देखते थे और गरीबचंद के जिम्मे विज्ञापन इकट्ठे करना और आमदनी खर्च के हिसाब-किताब का काम था। अपने-अपने विभागों में तीनों ने महारत हासिल कर ली थी। फिर भी दिवाकर उनके लिए पिता के समान था जिसके मार्गदर्शन की उन्हें हमेशा जरूरत रहती थी। जब से मुरली ने पत्रिका के काम से हाथ खींच लिया था, दिवाकर ही पत्रिका के संबंध में महत्वपूर्ण फैसले लेते थे। रघुनाथ, भीखमराम और गरीबचंद को सिर्फ उन फैसलों के अनुसार काम करना होता था। पत्रिका में संस्थापक के रूप में मुरली का और संपादक के रूप में दिवाकर का नाम जाता था। रघुनाथ, भीखम और गरीबचंद का विचार था कि यह व्यवस्था आगे भी चलती रहे। वे पत्रिका की सारी जिम्मेवारी उठाएंगे और उसे किसी भी हालत में बंद नहीं होने देंगे। लेकिन दिवाकर और मुरली का इसके साथ जुड़े रहना जरूरी है। उनके बिना इसकी कोई साख नहीं रहेगी। दिवाकर भी इन बातों को समझ रहा था लेकिन उसकी अपनी मजबूरियां थीं। उसका सारा उत्साह मर गया था।

अंत में इस सारे मसले को मुरली पर छोड़ देने का फैसला हुआ और मीटिंग समाप्त हो गई।

दिवाकर ने कुछ दिन पहले मुरली से भी इस संबंध में चर्चा की थी। लेकिन मुरली ने बात को हंस कर टाल दिया था। मुरली जानता था कि दिवाकर किसी व्यक्तिगत परेशानी के दबाव में आकर ही यह बात कह रहा है। परेशानी क्या है, इसे मुरली नहीं समझ पर रहा था।

दिवाकर बड़ी देर तक कुर्सी पर गुमसुम बैठा रहा। फिर उसने मेज की दराज से एक लिफाफा निकाला। लिफाफे में शादी का निमंत्रण-पत्र था, रवि और रजनी की शादी का। तीन दिन बाद सोमवार को उनकी धर्मशाला में शादी हो रही थी।

रजनी के पिता ज्ञानचंद वर्मा धर्मशाला के नामी वकील थे। अच्छी प्रैक्टिस भी थी और जमीन-जायदाद भी काफी थी। रजनी उनकी इकलौती लड़की थी। रवि और रजनी का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण कालेज के दिनों से था। ज्ञानचंद वर्मा उदार विचारों के व्यक्ति थे और जात-पांत में उनका विश्वास नहीं था। रवि के साथ अपनी बेटी के अंतर्जातीय विवाह से उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। आपत्ति दिवाकर और रूपा को भी नहीं थी। उनका विचार था कि लड़का-लड़की यदि एक-दूसरे को पसंद करते हैं तो कोई दूसरी बात आड़े नहीं आनी चाहिए। इसलिए उन्होंने भी इस रिश्ते के प्रति प्रसन्नता प्रकट की थी।

लेकिन ज्ञानचंद वर्मा को जब पूछताछ करने पर पता चला कि रवि की मां रूपा एक हरिजन परिवार की थी, तो उन्हें जैसे सांप सूंघ गया। उदार विचारों के पढ़े-लिखे आर्यसमाजी होते हुए भी दिल के किसी कोने में दुबके बैठे उनके जातीय संस्कार जाग उठे। उन्होंने रजनी को समझाने की कोशिश की लेकिन रजनी उनकी बात मानने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हुई। तब उन्होंने शर्त लगाई कि शादी धर्मशाला में ही रजिस्ट्रार के दफ्तर में होगी।

रवि ने एक दिन रजनी के साथ घर आकर माता-पिता से इस बारे में बात की। तब तक दिवाकर को रजनी के पिता के असली धर्म-संकट का पता चल चुका था ; क्योंकि जिस व्यक्ति से उन्होंने रूपा के कुलशील के संबंध में जानकारी प्राप्त की थी उसने दिवाकर को सब कुछ बता दिया था। लेकिन दिवाकर को उम्मीद थी कि रवि अपनी मां का अपमान करने वाले इस तरह प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेगा। दिवाकर ने रवि और रजनी की बातें सुनने के पश्चात् कहा—

"देखो रवि, तुम अब नाबालिग नहीं हो और न ही मां-बाप के ऊपर आश्रित हो। अपनी जिंदगी के अहम फैसले तुम्हें ही लेने हैं। हमें खुशी है कि तुम अपने पैरों पर खड़े हो गए हो और अपने बारे में खुद फैसला कर सकते हो। इसलिए तुम्हारी इच्छा और तुम्हारे इरादे में हम किसी भी तरह रोड़ा नहीं अटकाएंगे। घर से दूर, सगे-संबंधियों से दूर रजिस्ट्रार के दफ्तर में शादी करने पर भी हमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। लेकिन जिस विचार से रजनी के पिता इस रीति से शादी करना चाहते हैं, वह विचार इतना छोटा है कि हमारे लिए इस शादी में शामिल होना मुमकिन नहीं होगा।"

रवि और रजनी दोनों के चेहरे फक पड़ गए। वे जिस बात को छिपाने की अब तक कोशिश कर रहे थे, वह प्रकट हो चुकी थी।

थोड़ी देर तक रवि से कोई जवाब नहीं बन पड़ा। फिर बोला—

"आप जानते हैं मैं रजनी से प्यार करता हूं और रजनी भी मुझे प्यार करती है। हम

एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है", दिवाकर ने कहा, "प्यार जिंदगी में सब से बड़ा मूल्य है। प्यार से बढ़कर कोई चीज नहीं और जिससे प्यार किया जाता है उसके लिए आदमी बड़ी से बड़ी कुर्बानी भी देता है। लेकिन प्यार सिर्फ पति-पत्नी का ही नहीं होता, मां-बेटे और पिता-पुत्र का भी होता है। प्यार तुम्हारी मां ने भी तुमसे किया है। तुम्हें नौ महीने कोख में पाला है। दुनिया भर की तकलीफें तुम्हारे लिए सही हैं। मैं जानता हूं मेरा तुम्हारे ऊपर उतना अधिकार नहीं है। लेकिन तुम्हारी मां ने जो त्याग-तपस्या तुम्हारे लिए की है उसका मूल्य तो कोई आंक ही नहीं सकता...."

रूपा ने दिवाकर को टोक कर कहा, "नहीं, यह बात नहीं है। आप गलत कह रहे हैं। मैंने इसके लिए कोई त्याग-तपस्या नहीं की। मैंने वही किया जो हर मां को करना पड़ता है। यह मां की मजबूरी होती है। इसके बदले मां को किसी चीज की इच्छा नहीं करनी चाहिए।"

दिवाकर को गुस्सा आ गया, बोला, "हमने कहां किसीसे कुछ मांगा है? हमने तो यह उम्मीद भी मन में नहीं पाली कि लड़का बड़ा होकर हमारी देखभाल करेगा, हमारी सेवा करेगा। आज की शिक्षा लड़के-लड़कियों में जिस तरह के मूल्य भर रही है उसे देखते हुए इस तरह की उम्मीद कोई बेवकूफ ही कर सकता है। लेकिन मां के अहसानों के बदले अगर बेटा उसका अपमान करे तो उस बेटे से हमारा क्या रिश्ता हो सकता है?"

दिवाकर का चेहरा तमतमा गया था। वह कमरे से उठ कर बाहर चला गया। रवि और रजनी चुपचाप रूपा की ओर देखते रहे। रूपा मुस्करा कर बोली—

"उनके गुस्से का खयाल मत करो। अभी तूफान आया है, अभी उतर जाएगा।"

दूसरे दिन सुबह ही रवि और रजनी चले गए। रूपा भी रोज की तरह सुबह ही घर से निकल गई। दिवाकर बिस्तर में ही पड़ा था। उसकी इच्छा हो रही थी कि इसी तरह दिनभर पड़ा रहे। उठकर हाथ-मुंह धोने और चाय का कप अपने लिए बनाने का मन भी नहीं हो रहा था। शायद रात भर उसे नींद भी नहीं आई थी। तीस-बत्तीस वर्षों से बेटे को लेकर जिन ख्वाबों में वह जी रहा था, अचानक वे सारे ख्वाब चकनाचूर हो गए थे। समाज के प्रति अधिक स्वस्थ, अधिक तर्क-संगत रवैया अपनाने की जो आशा वह नई पीढ़ी से कर रहा था, वह धूल-धूसरित हो गई थी। उसके मन मे सिर्फ उदासी ही नहीं, घृणा भी भरती जा रही थी।

अपनी जिंदगी के अनेक भटकावों से गुजरने के बाद दिवाकर ने रूपा की शरण में लौट कर एक अपूर्व सुख और शांति का अनुभव किया था। रूपा के त्याग ने और मां तथा बेटे के प्रति उसके प्यार ने दिवाकर के मन में उसके प्रति ऐसी श्रद्धा भर दी थी जो शायद किसी भक्त के मन में भगवान् के प्रति भी नहीं होगी। रूपा के व्यवहार ने न सिर्फ अपनी सास को पत्थर से मोम बना दिया था और मरने से पहले उसे स्वर्ग-प्राप्ति का सा सुख दिया था बल्कि सदियों से अंधविश्वास और जहालत में पड़े हुए गांव के लोगों को भी नया प्रकाश दिया था। उसने कभी अपने अतीत को नहीं छिपाया, कभी उससे भागने की कोशिश नहीं की। न ही उसने अपने अतीत को अपने रास्ते का रोड़ा बनने दिया। कई महीनों तक मौत से जूझते हुए भी उसने मौत

के आगे हथियार नहीं डाले। न उसने गरीबी के आगे समर्पण किया, न मजबूरी के आगे न जन्मना हीनता के आगे। आज भी वह एक असंभव काम में लगी हुई है। ऐसा काम जिसकी सफलता की कोई संभावना नहीं। जिसमें दिवाकर जानता है कि निराशा ही हाथ लगनी है। लेकिन उसने अपनेको इस असंभव काम में दिन-रात लगा रखा है। न तो उसे अपने स्वास्थ्य की परवाह है और न किसी प्रकार के प्रतिदान की इच्छा। उसे सड़ियल तबियत के लोगों की छींटा-कशी का शिकार भी बनना पड़ा। जातीय दंभ से ग्रसित लोगों से अपमान भी सहना पड़ा। लेकिन उसकी लगन में कोई कमी नहीं आई, उसकी निष्ठा में कोई शिथिलता नहीं आई। उसने अपने प्यार से लोगों के दिलों को जीता। उसने लोगों के अंदर सोई हुई शक्ति को जगाया, उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ना सिखाया, उन्हें सिर ऊंचा करके चलने की प्रेरणा दी। इस ज्योति-शिखा का कोई अपमान करे, उसका अपना ही बेटा उसके वजूद से अपनेको अपमानित माने, दिवाकर के लिए इस बात को स्वीकार करना जिंदगी का सबसे कड़ुआ घूंट पीने के समान था।

उसके भीतर धुंआ भरता जा रहा था। जलते कूड़े के ढेर से निकलने वाला धुंआ जिसमें सांस लेना भी मुश्किल होता है। यह धुंआ उसके दिल-दिमाग पर छाता चला जा रहा था। वह उस प्रसंग को अपनी स्मृति से झटक देना चाहता था लेकिन जितना ही वह उसे भूलने की कोशिश करता था, उतनी ही शिद्दत के साथ वह याद उसे घेर लेती थी और वह अपने दिल से सवाल करने लगता था— रवि ने ऐसा क्यों किया? रवि ने ऐसा क्यों किया? क्या वह रजनी को इतना चाहता था कि उसके पिता द्वारा रखी गई अपमानजनक शर्त को इस डर से स्वीकार कर लिया कि कहीं रजनी को उसे न खोना पड़े? शायद यही कारण हो। रजनी उसकी कमजोरी हो। क्या रवि ने रजनी के पिता का मन रखने के लिए अपनी इच्छा के विरुद्ध यह फैसला किया? क्या रजनी की भी यही इच्छा थी और वह रवि को अपनी मां से नाता तोड़ लेने के लिए मजबूर कर रही है? अंदरेटा के शिविर में रजनी के व्यवहार ने रूपा को वश में कर लिया था और रूपा उसकी प्रशंसा करते थकती नहीं थी। क्या नई पीढ़ी में समाज के उदार मूल्यों के खिलाफ बैकलैश हो रहा था? क्या रवि का वर्तमान रवैया अनेक वर्षों की संचित घृणा की अभिव्यक्ति है? क्या उसने कभी अपनी मां से प्यार नहीं किया? क्या होश संभालने के बाद से लेकर उसने अपनी मां को घृणा से, सिर्फ घृणा से देखा है?

एक के एक बाद एक सवालों का तांता जो उसे पलभर के लिए भी चैन लेने नहीं दे रहा था। बिस्तर से उठ कर कमरे में और आंगन में अधपागलों की तरह चक्कर लगाते न जाने कितना समय बीत गया। वह यह भी भूल गया कि उसे नहा-धोकर तैयार होना है और दफ्तर पहुंचना है। किसी तरह मन को चैन नहीं मिला तो दिवाकर कागज-कलम लेकर पत्र लिखने बैठा।

रवि के जन्म से लेकर अब तक दिवाकर के मन में जितनी कोमल भावनाएं, जितने रंगीन सपने थे उन सबका वर्णन करने में कई पन्ने भर गए। अनेक वर्षों की यादें जिनमें प्यार और

ममता के मोती पिरोए थे, जिन्होंने सदाबहार फूलों की तरह उसके जीवन में तरह-तरह के रंग भरे थे और फिर रवि की मां द्वारा उठाए कष्टों और भोगी गई यातनाओं की कहानी कहने के बाद पत्र में रवि से अनुनय के शब्दों में कहा गया था कि वह खून के इस पवित्र रिश्ते को भावना में बह कर न तोड़े। उन्होंने लिखा: रजनी को तुमने पसंद किया है, उससे कहीं ज्यादा तुम्हारी मां ने उसे पसंद किया है। उसे खुशी है कि तुम अपनी पसंद की लड़की से शादी कर रहे हो। मां-बाप के लिए इससे ज्यादा खुशी की बात और क्या हो सकती है कि बेटे को मन-पसंद पत्नी मिले और उसका जीवन खुशियों से भरा रहे। लेकिन यह काम अपनी मां के प्रति सम्मान जताते हुए भी तो किया जा सकता है। पत्र का समापन करते हुए अंत में दिवाकर ने लिखा: मैं अब भी विश्वास करने को तैयार नहीं हूं कि तुम्हारे मन में अपनी मां के प्रति नफरत है। मैं इस संबंध में तुमसे आश्वासन पाना चाहता हूं। आशा है तुम पत्र लिखकर मेरे विश्वास को टूटने से बचाओगे।

तुम्हारा
दिवाकर

पत्र समाप्त करने के बाद दिवाकर ने उसे दुबारा-तिबारा पढ़ा और फिर लिफाफे में बंद करके उसे जेब में रख लिया। इसके बाद जल्दी-जल्दी हाथ-मुंह धोकर कपड़े बदले और घर से निकल पड़ा। लैटर बाक्स में पत्र डालने के बाद उसका मन हल्का हो गया। उसे लगा कि मन से बहुत बड़ा बोझ उतर गया है। घड़ी देखी तो तीन बज चुके थे। अब दफ्तर जाना बेकार है, यही सोच कर उसके कदम घर की तरफ मुड़ गए।

रवि के उत्तर की प्रतीक्षा करते सात दिन दिवाकर ने जैसे-तैसे बिताए। डाकिया अमर संदेश' की डाक लेकर सुबह दस बजे के करीब आता था। दिवाकर सारे काम-काज छोड़कर साढ़े दस बजे से पहले-पहले दफ्तर में हर हालत में पहुंच जाता। हर रोज डाक के बंडल को खोलते और एक-एक करके पत्रों के पते पर नजर डालते समय उसका दिल धड़कने लगता था और कभी-कभी हाथ भी कांपने लगते। जब उसे मनचाहा पत्र न मिलता तो डाक को एक तरफ करके सोच की मुद्रा में कुछ समय तक गुम-सुम बैठा रहता। शायद रवि ने घर के पते पर पत्र लिखा हो, यह सोचकर दफ्तर से चार बजे ही उठकर चल देता। मोटर साइकल पर घर पहुंचने में उसे एक घंटा लग जाता था। तेज गति से मोटर साइकल चलाते हुए उसका मन रवि के काल्पनिक पत्र की इबारत पढ़ रहा होता और कभी रवि की क्षमा-याचना के काल्पनिक शब्द पढ़कर उसकी आंखें भर आतीं और कभी किसी अप्रिय उत्तर की कल्पना से उसका मन उदास हो जाता। दफ्तर के काम में उसका जी नहीं लगता और घर में पहुंच कर भी उखड़ा-उखड़ा रहता। रूपा दिन भर भाग-दौड़ करने के कारण बहुत थकी हुई घर लौटती। दिवाकर उसके लिए रोज की तरह चाय बनाकर लाता। लेकिन रूपा उसके चेहरे पर एक नजर डालते हुए भांप लेती कि रवि का पत्र नहीं आया है। रूपा को भी रवि के पत्र का बहुत इंतजार था और वह मन ही मन रवि की तरफ से मनपसंद उत्तर की कल्पना करती थी। लेकिन रूपा को दिवाकर जितनी आशा नहीं थी। उसने समझ लिया था कि वह प्यार की बाजी हार चुकी है और अगर कुछ और

परिणाम सामने आता है तो वह चमत्कार जैसी बात ही होगी। लेकिन दिवाकर के चेहरे को देखना रूपा को बहुत कष्टदायक लगता। कट कर गिरने से पहले बूढ़ा पेड़ जिस तरह अपना संतुलन खोकर डगमगाने लगता है, कुछ उसी तरह की दशा उसे दिवाकर की लगती थी। वह जानबूझ दिवाकर से रवि के पत्र के बारे में कोई बात नहीं करती। बात करने के जरूरत भी नहीं महसूस होती क्योंकि दिवाकर के चेहरे पर सब कुछ लिखा होता था।

रूपा जानती थी कि दिवाकर रवि को कितना प्यार करता है। उसे बंबई के दिन याद हैं जब रवि का जन्म हुआ था दिवाकर ने सारी रात सेंट जार्ज अस्पताल के बाहर लॉन में बैठ कर बिताई थी। रात साढ़े नौ बजे प्रसव-पीड़ा शुरू होने पर वह रूपा को टैक्सी में डाल कर पच्चीस किलोमीटर दूर सेंट जार्ज अस्पताल में ले आया था। रूपा को दाखिल कराने के बाद नर्स ने कहा था कि वह अब घर जा सकता है और सुबह सात बजे आकर पता कर सकता है। लेकिन वह घर नहीं गया। उसे लगा कि रात को किसी वक्त कहीं कोई जरूरत पड़ी तो उसे पास ही रहना चाहिए। डिलवरी वार्ड में रात के समय किसीको रुकने नहीं दिया जाता था, इसलिए दिवाकर को रात लॉन में बैठे-बैठे काटनी पड़ी। सुबह सात बजे जब वार्ड में पता करने गया तो उसका दिल धुक-धुक कर रहा था। नर्स से पूछते समय उसका गला सूख गया। ठीक से आवाज नहीं निकल पाई। नर्स ने गुस्से में आकर जोर से नाम बताने को कहा था तब कहीं उसके मुंह से रूपा का नाम निकला था। सात नंबर बिस्तर की तरफ इशारा करके नर्स ने कहा था "जाकर मिल सकते हो, तुम्हारे लड़का हुआ है।" खुशी के मारे नर्स का हाथ पकड़कर दिवाकर ने कहा था "थैंक यू सिस्टर, थैंक यू थैंक यू" नर्स उसकी हालत देख कर हंस पड़ी थी। बाद में नर्स ने रूपा को बताया था, "तुम्हारा मर्द तुम्हें बहुत प्यार करता है।" लेकिन रूपा जानती थी कि दिवाकर का हृदय सिर्फ उसके प्यार से नहीं छलछला रहा था, अपनी पहली संतान से मिलने की व्याकुलता भी उसमें शामिल थी।

घर में रवि की देख-भाल में कोई कमी न रहे इसलिए दिवाकर छोटे बच्चों की देखभाल के संबंध में कई पुस्तकें बाजार से खरीद कर ले आया। पुस्तकों से निर्देश लेकर उसने रवि की देखभाल का काम खुद अपने हाथों में ले लिया। बच्चे को नहलाने-सुलाने से लेकर दूध पिलाने और खुली हवा में घुमाने तक के सारे कामों का एक चार्ट बनाया गया और उसके अनुसार वैज्ञानिक ढंग से उसकी देखभाल होने लगी। निर्धारित कार्यक्रम से जरा इधर-उधर हो जाता तो दिवाकर रूपा को गुस्सा करने लगता। रवि का पालन-पोषण विशेषज्ञों की राय के अनुसार हो, यह दिवाकर की सनक बन गई जिसको लेकर रूपा और मुरली (मास्टर जी) उसका मजाक भी उड़ाते थे। रवि का लगाव भी मां से अधिक बाप से हुआ और दिवाकर को देखते ही रवि मां की गोद छोड़कर उसके पास आने के लिए हाथ-पैर मारने लगता था। जब रवि चलने-फिरने लगा तो हमेशा बाप के साथ बाहर घूमने जाने के लिए मचलने लगा। दिवाकर काम पर जाने लगता तो रवि साथ चलने के लिए तैयार हो जाता। नर्सरी स्कूल में दाखिल कराने के लिए दिवाकर ही उसे अपने साथ ले गया लेकिन जब दिवाकर उसे और बच्चों के साथ बिठाकर घर लौटने लगा

तो रवि भी साथ चलने की जिद्द करने लगा। रूपा अक्सर शिकायत करती, 'तुम्हारा प्यार इसकी आदतें बिगाड़ देगा'। दिवाकर हंस कर कहता, 'मैं रवि का पिता हूं और मुझे उसकी आदतें बिगाड़ने का भी हक होना चाहिए।'

गर्दिश के उन दिनों को छोड़कर जब दिवाकर नौकरी की तलाश में कुछ गलत रास्तों में भटक गया दिवाकर ने रवि को शायद कुछ क्षण के लिए भी अपने ख्यालों से दूर नहीं किया। रवि को कभी सर्दी जुकाम हो जाता तो दिवाकर रात को सो नहीं पाता। बीच-बीच में उठ कर वह रवि के बिस्तर के पास जाकर देखने लगता कि उसे सांस लेने में तकलीफ तो नहीं हो रही है।

रूपा जानती थी कि बंबई से घर आने के बाद रवि दादी का लाडला हो गया था। उन दिनों लंबे समय तक दिवाकर की घर से अनुपस्थिति का रवि के मन पर क्या असर पड़ा था, इसका अनुमान रूपा को नहीं था लेकिन स्वयम् उसने यह महसूस किया था कि रवि को अपनी मां से विशेष लगाव नही रह गया था। दादी ने उसे मां से अलग रखने की पूरी कोशिश की थी और इसमें वह कामयाब भी हुई थी। लेकिन पिता के प्रति उसके मन में कितना परिवर्तन आया था, इसके बारे में कहना बहुत मुश्किल था। दिवाकर के लौट कर घर आने के बाद रवि के साथ उसके संबंधों में कभी तनाव नहीं दिखाई दिया। बाप-बेटे में अधिक बातचीत नहीं होती थी लेकिन उनके बीच किसी तरह का अविश्वास भी नहीं था। एक अवस्था में जब बच्चा घर की सीमित दुनिया से निकलकर बाहर की दुनिया में अपनेको एडजस्ट करने लगता है तो उसमें गैंग-स्पिरिट पैदा होती है। उसमें घर के व्यक्तियों से ज्यादा अपने दोस्तों के प्रति निष्ठा पैदा होती है और दोस्तों की पसंद-नापसंद घरवालों की पसंद-नापसंद से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। दिवाकर जानता था कि यह सब बच्चों के विकास में सहज स्थिति है। कालेज जाने के बाद रवि में कुछ नुमांयां परिवर्तन दिखाई देने लगे थे। उसका झुकाव उन मूल्यों की तरफ होना स्वाभाविक था जो फिल्म-टेलिविजन द्वारा प्रचारित किए जा रहे थे और जो नई पीढ़ी के लिए नया धर्म बनते जा रहे थे। दिवाकर को कभी-कभी रवि के इस झुकाव को देखकर चिंता होती थी लेकिन वह यह सोचकर मन को समझा लेता था कि नई और पुरानी पीढ़ी के बीच अंतर भी अवश्यभांवी है। दिवाकर को विश्वास था कि पीढ़ियों के इस अंतर के बावजूद रवि के मन में वे संस्कार बने रहेंगे जो बचपन में उसे घर के वातावरण में सहज रूप से प्राप्त हुए थे।

रवि के उत्तर की लंबी प्रतीक्षा ने दिवाकर को बहुत उद्विग्न बना दिया था लेकिन जब एक दिन उत्तर मिल गया तो दिवाकर की सारी आशाएं चकनाचूर हो गईं। लिखा था—

पूज्य पिताजी,

आपका पत्र मिला। यह जानकर हैरानी हुई कि एक वयोवृद्ध पत्रकार और बुद्धिजीवी जो उम्र भर दूसरों को सच्चाई का सामना करने का उपदेश देता रहा, खुद सच्चाई से भागता है और सस्ती भावुकता में बहकर बातें करता है। जातिगत विभाजन और उससे उपजी मानसिकता हमारे जीवन की सच्चाई हैं। हम अपने आदर्शों की बहक में इसकी अनदेखी कर सकते हैं, (मैं भी कभी इस बहक में बह गया था) लेकिन इससे यह वास्तविकता मिट नहीं जाती। रजनी के

पिता उदार विचारों के हैं और समाज में ऊंच-नीच के भेद को मिटाने के लिए उन्होंने कम काम नहीं किया। वे शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और समाज सुधार की अनेक संस्थाओं से जुड़े हैं। लेकिन आंखिर वे इन्सान हैं, देवता नहीं और वे उसी समाज का हिस्सा हैं जो जातिगत पूर्वाग्रहों से ग्रसित हैं। उन्हें इसी समाज में रहना है। अगर वे अपने मिलने-जुलने वालों और रिश्तेदारों की भावनाओं का ख्याल करके शादी के लिए कुछ शर्तें लगाते हैं तो उसके लिए इतना भावुक होने की क्या जरूरत है?

शादी लड़के-लड़की के जीवन का महत्त्वपूर्ण निर्णय है। इसमें अमूर्त आदर्शों या सौदेबाजी का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। आम हिन्दुस्तानी परिवार की मानसिकता यही रहती है कि बेटे की सेक्स-भूख की तृप्ति के लिए किसी लड़की को ब्याह कर लाया जाए और उसे दुधारु गाय की तरह इस्तेमाल किया जाए। बेटे को पालने-पोसने के लिए मां-बाप ने जो कष्ट उठाए हैं उसकी भरपाई लड़की से कराई जाए। कुछ भरपाई दहेज के रूप में कराते हैं और कुछ जो आदर्शवादी मुखौटा पहने रहते हैं, सास-ससुर तथा अन्य संबंधियों की सेवा-सुश्रूषा के रूप में इसकी वसूली करते हैं। दोनों में ज्यादा फर्क नहीं है। मैंने उम्मीद की थी कि आप इस मानसिकता से मुक्त होंगे लेकिन मुझे यह जानकर दु:ख हुआ है कि आप भी इसी मानसिकता का शिकार हैं।

निश्चय ही मां ने अपने जीवन में बहुत कष्ट उठाए हैं। लेकिन उनके लिए कौन ज़िम्मेदार है? आप या मैं? जहां तक मुझे याद है, मेरे लिए मां से ज्यादा कष्ट मेरी दादी ने उठाए हैं। और फिर कष्ट किसको नहीं उठाने पड़े हैं? क्या आप समझते हैं कि मैं कम यातना से गुजरा हूं? जिस बच्चे का बाप घर से भाग कर कहीं लापता हो गया हो और जिसकी मां को घर में चौके-चूल्हे से अलग रखा जाता हो तथा पीतल की थाली में अलग खाना परोसा जाता हो, उसे स्कूल के अपने दोस्तों के बीच क्या-क्या सुनना पड़ा होगा और क्या-क्या सहना पड़ा होगा, क्या इसका अनुमान आप लगा सकते हैं? रजनी के प्यार ने मुझे पहली बार अहसास कराया कि मैं दूसरों की नजरों में स्वीकार्य हो सकता हूं। क्या मुझे अपने अतीत से पीछा छुड़ाकर जीवन के सुखद क्षणों को सहेजने का अधिकार नहीं है?

नई पीढ़ी में आप जिसे बैकलैश कह रहे हैं वह व्यक्ति-स्वतंत्रता पर समाज द्वारा लगाई गई पाबंदियों के खिलाफत बगावत भी हो सकती है। आपकी पीढ़ी का आदर्श रहा है कि व्यक्ति अपनी पहचान को समाज में विलीन कर दे। हमारी पीढ़ी किसी भी हालत में अपनी पहचान को खोना नहीं चाहती। इसके लिए यदि किसी व्यक्ति, संस्था अथवा आदर्श के रिश्तों को तोड़ना पड़ता है तो वह भी गलत नहीं है। हर आदमी को अपने हिस्से के सुख के क्षणों को भोगने का अधिकार होना चाहिए और किसी भावुकता में इन क्षणों को बलि नहीं चढ़ाया जाना चाहिए।

पत्र के साथ शादी का निमत्रंण पत्र भेज रहा हूं। मां तो इस देश का कायाकल्प करने के महान् कार्य में व्यस्त होंगी, उनके काम में मैं बाधा भी नहीं बनना चाहता लेकिन आप अगर समय निकालकर शादी के मौके पर उपस्थित हो सकें तो मुझे खुशी होगी।

आपका,

रवि

दिवाकर ने रवि के पत्र को टुकड़े-टुकड़े करके रद्दी की टोकरी में फेंक दिया और शादी के निमत्रंण-पत्र को सम्हाल कर जेब में रख लिया। उस दिन रूपा के पूछने पर दिवाकर ने पत्र का कोई जिक्र नहीं किया, सिर्फ छपा हुआ निमंत्रण-पत्र उसे दिखा दिया। रूपा ने कुछ उदासी के स्वर में कहा, "आप हो आना, नहीं तो उन्हें बुरा लगेगा।" दिवाकर ने उत्तर में इतना ही कहा, "देखूंगा।"

किरण की नजरें मां के चेहरे पर गड़ी थीं। थोड़ा सा सूप लेने के बाद रमा ने किरण की तरफ देखा और बोली—

"तुमने इतना सारा नाश्ता बना दिया कि देखकर मन बैठा जा रहा है। कौन खाएगा इसे?

किरण ने टोस्ट आगे बढ़ाते हुए कहा—

"कहां ज्यादा है? दो टोस्ट और दूध, बस। इतना सा नाश्ता भी नहीं करोगी तो कैसे चलने-फिरने लगोगी? आज दस दिन हो गए हैं बिस्तर पर पड़े-पड़े?"

"अरी पगली, कभी तो आदमी को आराम की जरूरत होती है। इतने दिन दौड़-भाग कर ली, यह क्या कम है?"

"दौड़-भाग करने को कौन कहता है? खुद ही तुमने इतने सारे झंझट पाल रखे हैं। कभी महिला-मंडल, कभी सिलाई-बुनाई केन्द्र, कभी विधान सभा के चुनाव। क्या जरूरत है इन सब की? मैंने कितनी बार कहा चाची के यहां दिल्ली चलो। वहां किसी अच्छे अस्पताल में सारा चैकअप करा लेते हैं। हर तीसरे-चौथे दिन तुम्हें बुखार हो जाता है। आराम करती नहीं। खाना ढंग से नहीं खातीं। इस तरह कैसे काम चलेगा?"

रमा ने बेटी के चेहरे पर प्रकट हुए ममता मिश्रित गुस्से को देखा। मन ही मन उसे संतोष हुआ कि किरण उसके लिए सहारा बनती जा रही है। अभी उसे बारहवां साल लगा था। आठवीं की बोर्ड परीक्षा में उसे इस साल बैठना है। लेकिन उसके मन में मां का कितना ख्याल है। रमा को इस बात का दुःख भी होता था कि जिस उम्र में किरण को बेफिक्र होकर हंसी-खुशी और किलकारियों से भरे बचपन में खो जाना चाहिए था, उस में वह मा के स्वास्थ्य को लेकर चिंतित है। वह जिम्मेवार नर्स की तरह उसके आराम और खाने-पीने की चिंता में गंभीर बनी हुई है। अब तक रमा को लगता था कि वह किरण के लिए जी रही है किंतु अब रमा को लगा कि किरण उसके लिए जी रही है। इस स्थिति से उसे दुख भी था और प्रसन्नता भी। उसने बेटी की तरफ मुस्करा कर देखा—

"अब तुम जिस तरह से कहोगी मैं वैसे ही चलूंगी। महिला मंडल तो मैंने छोड़ ही दिया है। दूसरे काम भी अब और लोगों ने सम्हाल लिए हैं। अब मेरे पास काम ही क्या बचा है? विधान सभा का काम है, थोड़ा बहुत करना ही पड़ेगा। जब तक विधान सभा की मेम्बर हूं करूंगी, उसके बाद उससे भी छुट्टी। अब की बार चुनाव भी नहीं लड़ूंगी। अब तो खुश हो?"

किरण का ध्यान मां के सामने रखे नाश्ते पर था। अभी मुश्किल से एक टोस्ट खाया था मां ने। उसके चेहरे की थकान देखकर किरण काफी परेशान थी।

"लेकिन मैंने यह कब कहा कि सारे काम छोड़ दो? मैं तो सिर्फ यह कह रही हूं कि ज्यादा मरने-खपने की जरूरत नहीं है। किसके लिए इतना सब? हम दो जनें हैं, कितना कुछ चाहिए हम दो जनों को?"

रमा सब कुछ चुपचाप सुनती रही फिर बोली—

"बेटी, आदमी सिर्फ अपने पेट के लिए नहीं काम करता। काम तो उसे करना ही पड़ता है तब तक जब तक उसके हाथ-पैर चलते रहें। तुम्हारे पिता क्या पेट के लिए काम करते रहे?"

"यह तो ठीक है मां, लेकिन मैं तो यह कह रही हूं कि इन सारे कामों का, जो पेट के लिए नहीं हैं, फायदा क्या है? पिताजी ने जो किया उसका क्या फायदा हुआ और तुमने जो किया उसका क्या फायदा हुआ?"

"फायदा जरूर होता है भले ही हमें दिखाई न दे।"

"लेकिन तुम्हें क्या मिला? तुमने दूसरों के लिए इतना कुछ किया, उन्होंने तुम्हारे साथ क्या किया? कोई तुम्हारी खोज-खबर लेने तक तो आया नहीं।"

किरण की बात में सच्चाई थी। पिछले दस दिनों से रमा से मिलने कोई नहीं आया था। कारण रमा जानती थी। महिला-मंडलों के चुनाव हो रहे थे और रति, मंगला, किरनी, सुरमा सभी उसमें व्यस्त थीं। मुख्यमंत्री की पत्नी सरस्वती रानी उनको अपने साथ लेकर तूफानी दौरे कर रही थीं। सरस्वती रानी सिर्फ नाम की रानी नहीं थी, वह असली रानी भी थी। राजा-रानी की मोहक दुनिया में रहनेवाली जनता के लिए वह एक अजूबा भी थी। और फिर मुख्यमंत्री की पत्नी होने की गरिमा भी उसमें थी। उसने सारे महिला-मंडलों और उनके द्वारा चलाई जा रही गतिविधियों को अपने संरक्षण में ले लिया था। रमा के मैदान से हट जाने के बाद उसका काम सरल हो गया था।

मुरली सरकारी प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में 15 दिन की विदेश-यात्रा पर गया था। जाने से पहले मुरली ने रमा से कहा था कि वे महिला-मंडलों से फिलहाल संबंध न तोड़ें। उसे भनक लग गई थी कि महिला-मंडलों पर कब्जा करने के लिए ऊंचे स्तर पर रणनीति बन रही थी। लेकिन रमा ने मुरली की बात से सहमत होते हुए भी अपना इरादा स्पष्ट कर दिया था।

रमा ने अपने स्वास्थ्य को ही इसकी वजह बताया था। किंतु उसके मन में कुछ और बातें भी थीं। किरण की पढ़ाई-लिखाई की तरफ ध्यान देने के लिए उसे पर्याप्त समय नहीं मिल पाता था। रमा को लगता था कि एक मां के नाते किरण के लिए उसे जो कुछ करना चाहिए, उसे वह नहीं कर पा रही है। किंतु इसके अलावा भी रमा के मन में एक व्यर्थता-बोध भरता जा रहा था। उन्हें लग रहा था कि महिला-मंडलों का काम भी एक रूटीन की तरह जिंदगी को बांधे जा रहा था। ऐसा लगने लगा था कि रुटीन की चक्की में दिन-रात पिसते जाना ही जैसे जिंदगी है। रमा चाहती थी कि महिला मंडलों में आनेवाली महिलाओं में सिर्फ कुछ पैसा कमाने की इच्छा ही

न जगे । उनकी सोच में भी कुछ परिवर्तन आए और समाज में कुछ नई हलचल पैदा हो । लेकिन रमा ने देखा कि महिलाओं को और किसी काम में रुचि नहीं है । पढ़ने-लिखने की बात तो दूर, जादू-टोने के अंधविश्वासों को छोड़ने के लिए औरतें तैयार नहीं हैं । जात-पांत के आधार पर भी महिला-मंडलों में गुटबाजी होने लगी थी ।

रमा ने मन में निश्चय कर रखा था कि महिला-मंडलों के रुटीन से अपनेको मुक्त करके वह रूपा दीदी के काम में हाथ बंटाएगी । लोक समितियों का आंदोलन तेजी से फैल रहा था लेकिन उसमें कई बाधाएं थीं । रूपा दीदी के आंदोलन से जुड़ने के लिए ऊंची जातियों के स्त्री-पुरुष अभी काफी संख्या में आगे नहीं आ रहे थे । लोगों को लग रहा था कि यह छोटी जातियों का आंदोलन है । ऊंची जातियों की राजनीति करने वाले राजनैतिक दल ने इसके खिलाफ बाकायदा अभियान भी शुरू कर दिया था । जब सरकारी कर्मचारियों की धांधली के खिलाफ कहीं प्रदर्शन होता तो उसमें ज्यादा तादाद छोटी और मध्यम जातियों की महिलाओं की ही होती । विरोधी राजनैतिक पार्टी ने रूपा दीदी के आंदोलन का नाम घाघरा आंदोलन याने घघरे वाली महिलाओं का आंदोलन रख दिया था । इन प्रदर्शनों के मौके पर अभी दंगे-फिसाद तो नहीं हुए थे किंतु बहुत घटिया किस्म की नारेबाजी कई जगह हुई थी ।

लेकिन जब-जब किसी गांव में रचनात्मक कार्यों को सामूहिक रूप से सम्पन्न करने का अभियान चलाया जाता था तो लोगों में असीम उत्साह दिखाई देता था । उन दिनों गांव में एक उत्सव का सा वातावरण बन जाता था । लोग अपने-अपने घरों से आटा, दाल, चावल आदि ला कर जमा करते थे । लंगर लगता था । लोग एक पांत में बैठकर खाना खाते थे, गोया कोई यज्ञ हो रहा हो । कट्टर पुराणपंथी लोगों को छोड़कर बाकी सब लोग सामूहिक श्रम और प्रीतिभोज में शामिल होते थे । जिन कामों के लिए गांव के लोग बरसों से सरकारी अधिकारियों पर आस लगाए बैठे होते थे वे काम कुछ दिनों में सम्पन्न हो जाते थे । गांव के रख-रखाव की जिम्मेवारी स्वयं युवक अपने ऊपर लेते थे । कई जरूरतमंद युवकों को रोजगार भी मिल जाता था । एक शिविर की सफलता देख कर आस-पास के गांवों में भी इसी तरह के शिविर आयोजित करने का उत्साह पैदा होता । रूपा दीदी को एक शिविर खत्म होने के बाद दूसरे शिविर के काम में जुट जाना पड़ता ।

रमा लोक समितियों के काम में जितना संभव होता हाथ बंटाती थी लेकिन उसके पास महिला मंडलों का ही इतना काम होता था कि वह जितना चाहती थी उतना सहयोग इस काम में नहीं दे पाती थी । वह चाहती थी कि इन निर्माण कार्यों की एक विधिवत् रिपोर्ट बने, उसका प्रचार हो । काम के साथ-साथ एक वैचारिक आंदोलन भी आगे बढ़े । रमा इस काम के लिए एक समाचार बुलेटिन निकालना चाहती थी और सारे आंदोलन को एक सुचारू रूप देना चाहती थी । इस संबंध में मुरली से भी उसकी विस्तार से बात हुई थी और दोनों की राय थी कि बुलेटिन निकाला जाना चाहिए । मुरली को इसमें एक बड़ी कमी खटकती थी कि सरकार के किसी गलत काम का विरोध करने के लिए जब मोर्चा बनता था तो उसमें भाग लेने से लोग डरते थे । सहयोग करने में तो लोग उत्सव की तरह शामिल हो जाते थे लेकिन विरोध के समय उन्हें

लगता था कि कहीं कुछ गलत हो रहा था। शायद लोगों के मन में बैठा सरकार और पुलिस का डर उन्हें विरोध के काम से रोकता था। मुरली और रमा दोनों का विचार था कि लोगों के मन से इस डर को दूर किए बिना यह आंदोलन अधूरा ही रहेगा।

लेकिन रमा के मन की सारी कल्पनाएं, सारी योजनाएं, उसके गिरते स्वास्थ्य के कारण पूरी होती नजर नहीं आ रही थीं।

रमा ने दो-तीन डाक्टरों को दिखाया भी था लेकिन उन्हें कोई विशेष कारण दिखाई नहीं दिया। सामान्य कमजोरी के अलावा कोई और कारण वे नहीं बता सके। उन्होंने चंडीगढ़ या दिल्ली के अस्पताल में चैकअप कराने की सलाह दी लेकिन रमा ने इस झंझट में पड़ने की जरूरत नहीं समझी। किरण को अकेला छोड़कर कहीं जाना उनके लिए संभव भी नहीं था और इसे वे बहुत जरूरी भी नहीं समझती थीं।

किंतु पिछले आठ-दस दिनों से वह जिस तरह बिस्तर पर अशक्त पड़ी रहीं और किरण को उसकी सेवा-टहल में लगना पड़ा, उससे उन्हें पहली बार महसूस हुआ कि इस तरह काम नहीं चलेगा। किरण की पढ़ाई का नुकसान तो होगा ही, उस पर काम का बोझ भी पड़ेगा। उन्होंने निश्चय किया कि मुरली के विदेश से लौटने पर दिल्ली के आल इंडिया मेडिकल इन्टीच्यूट में चेकअप कराने जाएंगी।

शाम को रूपा दीदी आई। साथ में दिवाकर भी थे। दिवाकर मामा के साथ किरण की खूब पटरी बैठती थी। रूपा का हालचाल पूछने के बाद दिवाकर को किरण ने हुक्म सुनाया कि उन्हें किरण को बाजार में घुमाने ले जाना है। रमा बोली, "कल जाना घूमने। आज तुम्हारे मामा थके होंगे। आराम करने दो।"

"कैसी थकान? किरण के साथ घूमने से तो मेरी सारी थकान मिट जाएगी। चलो किरण, अभी जाएंगे और दो घंटे से पहले नहीं लौटेंगे। कहां-कहां घुमाओगी?"

"माल रोड, लक्कड़ बाजार, लोअर शिमला ...."

"फिल्म दिखाओगी?"

"फिल्म शो तो शुरू हो गया होगा। कल सही।"

रूपा और रमा घर में अकेली रह गईं तो रमा बोली—

"किरण को देखकर बड़ा तरस आता है। अपने पर गुस्सा भी आता है। बीमार पड़ती हूं तो किरण को ही काम का सारा बोझ उठाना पड़ता है।"

"कोई बात नहीं दीदी। किरण बड़ी समझदार लड़की है। अपनी मां की सेवा करने में उसे खुशी मिलती है। लड़कों में वह बात नहीं होती जो लड़कियों में होती है।"

"वह तो ठीक है लेकिन अभी उसकी उम्र ही क्या है। बेचारी स्कूल का काम भी नहीं कर पाती"

"कुछ दिन हमारे साथ क्यों नहीं चले चलती दीदी? किरण भी घूम-फिर आएगी।"

"उसकी छुट्टियां होंगी तो आऊंगी। इस साल उसकी बोर्ड की परीक्षा है। वैसे अब मैं ठीक हूं।"

रवि की शादी से रूपा को भी कम सदमा नहीं लगा था। लेकिन उसने उस घटना को एक बुरे स्वप्न की तरह भुला दिया था। रमा जानती थी कि रूपा बड़े से बड़े सदमे को सह सकती है। किन्तु दिवाकर अपने बेटे के व्यवहार से हिल गया था। शादी का निमंत्रण पत्र रमा को भी मिला था लेकिन वह धर्मशाला जा नहीं सकी थी। कुछ दिन बाद जब वह दिवाकर और रूपा से मिलने खैरा गई थी तो दिवाकर की हालत देखकर उसे बड़ी चिंता हुई थी। दिवाकर ने आफिस जाना बंद कर दिया था। वह घर से बाहर ही नहीं निकलता था। रूपा के लिए चाय-नाश्ता बनाना, फिर उसे अपनी मोटर-साइकल पर बिठा कर उस गांव में छोड़ आना जहां काम चल रहा हो, दोपहर को उसके लिए खाना पहुंचाना और शाम को उसे अपने साथ ले आना, यह उसकी दिनचर्या बन गई थी। रूपा विरोध करती। लोग मजाक उड़ाते कि दिवाकर जोरू का गुलाम बन गया है। लेकिन दिवाकर पर इसका कोई असर नहीं होता। वह लोगों की बात एक कान से सुनता दूसरे कान से निकाल देता। किसी को जवाब नहीं देता। अलबत्ता रूपा जब नारजगी प्रकट करती तो वह कहता—

"दुनिया जाए भाड़ में। मुझे जो अच्छा लगेगा मैं वही करूंगा।"

रमा ने दिवाकर को समझाया था कि उसे 'अमर संदेश' का काम नहीं छोड़ना चाहिए। पत्रिका बंद होने से कई लोग बेरोजगार होंगे। मुरली ने यह काम दिवाकर के ऊपर छोड़ा है, उसे बीच मंझदार में छोड़ना ठीक नहीं होगा। जब तक मुरली खुद इस काम को नहीं सम्हाल लेता दिवाकर को उसे चलाते रहना पड़ेगा।

दिवाकर के मन में मानवीय संबंधों के प्रति ही एक वितृष्णा भर गई थी। रमा से बात करते-करते वह फूट पड़ा था—

"तुम नहीं जानती रमा, उस गधे के बच्चे ने मुझे पत्र में क्या लिखा है। अगर उस वक्त वह मेरे सामने होता तो मैं न जाने क्या कर देता। मैंने उस पत्र को अपने पास रखना भी गुनाह समझा। मुझे लगा कि मेरे हाथ में एक घिनौनी, लिजलिजी चीज आ गई है। मैंने उसे तुरंत फाड़ दिया। मैं नहीं चाहता था कि रूपा के हाथ में वह पत्र जाता।"

रमा उसकी बातें ध्यान से सुनती रही। जब उसने मन का सारा गुब्बार निकाल लिया तो बोली—

"भैया, इन सब बातों को उस माहौल के संदर्भ में देखो जिस में आजकल के बच्चे पल रहे हैं। सिनेमा, टेलिविजन और किस्से-कहानियों से उन्हें क्या संस्कार मिल रहे हैं? संस्कृति के नाम पर उन्हें मिलने वाली हर चीज सिर्फ भावनाओं को भड़काती है। प्रेम, घृणा और हिंसा का खाद्य उन्हें दिन-रात मिलता है। भावनाओं पर संयम करने, विचार से किसी निष्कर्ष पर पहुंचने का उन्हें प्रशिक्षण ही कहां मिलता है? आदमी को इस संस्कृति ने संवेगों का दास बना दिया है। फिल्म, टेलिविजन से हटकर जो साहित्य आ रहा है उसमें भी भावनाओं से खिलवाड़ करने पर ही ज्यादा जोर होता है। साहित्य को भावनाओं का विषय हमारे यहां हमेशा माना जाता रहा और जो साहित्य भावनाओं को जितनी उग्रता की सीमा तक ले जा सकता है उसे

उतना ही ऊंचा साहित्य माना जाता है। अगर बच्चे कच्ची उम्र में उसी तरह से व्यवहार करें जैसा वे फिल्मों वगैरह में देखते हैं तो इसमें सारा कसूर इन बच्चों का ही नहीं है, इस पूरी संस्कृति का भी है जो भावनाओं पर संयम करने और बुद्धि विवेक से काम लेने का प्रशिक्षण ही बच्चों को नहीं देती।"

"लेकिन रवि बच्चा तो नहीं है", दिवाकर ने गुस्से मे कहा था।

रमा बोली—

"बचपन का संबंध सिर्फ उम्र से नहीं होता। उसका ज्यादा संबंध समझ से होता है। विवेक से होता है। जब तक आदमी भावनाओं में बहकर काम करता रहता है, तब तक उसमें विवेक जागृत नहीं होता और जब तक विवेक जाग्रत नहीं होता तब तक आदमी बच्चा ही रहता है। यह पीढ़ी ही ऐसी है जो दाढ़ी-मूंछ पालकर जल्दी से जल्दी अपने बालिग होने का प्रदर्शन करती हैं लेकिन भीतर से वह बच्चे की ही स्थिति में रहती है। उन्हें बालिग बनने का मौका ही नहीं मिलता है। मिलता है तो बहुत बाद में जाकर जब उन्हें जीवन की वास्तविकता से पाला पड़ता है।"

इस घटना ने रमा को भी बहुत सोचने का मौका दिया था। वर्तमान राजनीति का संस्कृति से कोई सरोकार नहीं है। तमाम योजनाएं इसलिए बनती हैं कि आदमी आर्थिक प्राणी के रूप में विकास करे। उसे ऐसी शिक्षा दी जाती है जो उसे रोजगार के बाजार में एक अच्छी पण्य वस्तु के रूप में तैयार करे। उसे बढ़िया मशीन या कंम्प्यूटर बनाया जाता है। उस में अधिक से अधिक डाटा भर दिया जाता है ताकि बटन दबाते ही वह सारी जानकारी उगल दें। लेकिन उसे संवेगों को संयमित करने और बुद्धि-विवेक का प्रयोग करने का प्रशिक्षण कहां दिया जाता है? न शिक्षा यह काम कर रही है और न संस्कृति। क्या यह हमारे जीवन की विवशता है या टेक्नोलॉजी को नियंत्रित करने वाले लोगों का षड्यंत्र है? क्या यह पश्चिमी सभ्यता की बाढ़ में बह जाने का नतीजा है? यह सभ्यता जिसके लिए आर्थिक स्तर, रहन-सहन का स्तर ही मनुष्यता का मापदंड है, क्या यह मनुष्य की नियति है? क्या आदमी एक संवेगशील पशु बनकर जीने के लिए अभिशप्त है?

रमा की राजनीति में कभी रुचि नहीं रही। लेकिन उसे हमेशा यह अहसास होता था कि हमने महात्मा गांधी के रास्ते पर न चलकर पश्चिमी सभ्यता को, मशीनों की सभ्यता को अपना कर भूल की है। यह सभ्यता आदमी नहीं बनाती, बना ही नहीं सकती। यह केवल मशीनों के लिए कलपुर्जे बना सकती है। यह यंत्र-मानव और यंत्र-दानव ही बना सकती है।

रमा जानती थी कि रूपा को भी रवि के व्यवहार से कम दुःख नहीं हुआ था। लेकिन रूपा की ज्यादा चिंता दिवाकर को लेकर थी। उसने तो अपने सुख दुःख को बाहर के कामों में डूब कर भुला दिया था। लेकिन जब कभी उसे दिवाकर की आंखों में डूब कर देखने का मौका मिलता तो उनकी गहरी उदासी उससे छिपती नहीं थी।

"भैया का दिल काम में लगता है?"

रमा के प्रश्न का उत्तर रूपा तुरंत नहीं दे सकी। कुछ देर सोचती रही, फिर बोली—

"आदमी के दिल का पता लगाना कितना मुश्किल होता है दीदी। हम खुद अपने बारे में नहीं कह सकते कि हमारे दिल में क्या चल रहा है तो दूसरों के बारे में कितना जान सकते हैं? उनके बारे में सोचती हूं तो लगता है कि उनके मन से वह घटना एक क्षण के लिए भी दूर नहीं हो पाती। वैसे वे रोज काम पर जाते हैं। घर में होते हैं तो उस प्रसंग को छेड़ते ही नहीं। मुझे विश्वास दिलाने की कोशिश करते हैं कि उस प्रसंग को वे भूल गए हैं। लेकिन मुझे लगता है कि उनके दिल में वह बात हमेशा सुलगती रहती है, राख के नीचे दबी आग की तरह। कभी-कभी नींद में बड़बड़ाते हैं। रात को कभी-कभी जाग जाते हैं तो कमरे में चक्कर लगाने लगते हैं। उनका जिस्म कांपने लगता है। मुझे लगता है वे उस प्रसंग को जबर्दस्ती दबाने की जितनी कोशिश करते हैं, उतने ही जोर से वह उन पर हावी होता है। कभी-कभी सोचती हूं हम कुछ दिनों के लिए कहीं दूर चले जाएं।"

"इसमें दिक्कत क्या है। महीने-डेढ महीने के लिए कहीं चले जाओ।"

"इसके लिए भी तो राजी नहीं होते।"

"क्या कहते हैं?"

"कहते हैं, यहां मेरी सख्त जरूरत है। गांव वालों को इस समय एक नई उम्मीद मिली है। लोकसमितियो का काम बंद नहीं होना चाहिए।"

रमा ने लंबी सांस लेकर कहा—

"यही तो जिंदगी की ट्रेजडी है। हम यह भ्रम पाल लेते हैं कि समाज को हमारी सख्त जरूरत है। हमारे बगैर समाज का काम रुक जाएगा। लेकिन समाज को हमारी तभी तक जरूरत होती है जब तक हम उसके लिए उपयोगी होते हैं। हम भीतर की उपेक्षा करके बाहर का निर्माण करने जाते हैं। इस प्रकार जो भीतर का संसार टूटता है, उसकी चिंता समाज को नहीं होती। बल्कि वह तो यह उम्मीद करता है कि सामाजिक क्षेत्र में आया व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन को भूल ही जाए। वह व्यक्ति का गला घोंटकर सौ फीसदी सामाजिक हो जाए। ऐसा कोई हो तो नहीं पाता लेकिन जो होने का दिखावा करता है, वह महान् कहलाता है। इसके विपरीत जिसका सरोकार भीतरी जीवन से होता है, जैसे साहित्यकार, कलाकार उससे उम्मीद की जाती है कि वह बाहरी दुनिया से जितना निरस्संग रहेगा वह उतना ही महान् होगा। हम बाहर को संवारने जाते हैं तो भीतर उजाड़ बनता है और भीतर को संवारने जाते हैं तो बाहर उजाड़ बनने लगता है। लगता है आदमी को इस ट्रेजडी से कभी मुक्ति नहीं मिलेगी।"

रूपा ध्यान से रमा की बातों को सुनती रही। वह ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी। बम्बई में मुरली की सायं पाठशाला में उसने जो कुछ सीखा था वहीं तक उसकी शिक्षा सीमित थी। लेकिन जिंदगी ने उसे बहुत कुछ सिखाया था, और इसमें एक बात यह भी थी कि जिंदगी में ऐसा लमहा नहीं आता जब आदमी को सुख ही सुख मिले, दुःख का बोध ही न रहे। ऐसी स्थिति जिंदगी में कभी नहीं आएगी।

वह मुस्करा कर बोली—

"मुरली की बातें सुनती थी तो लगता था कि आदमी बहुत जल्दी ही अपने लिए एक स्वर्ग बनाने जा रहा है जिसमें सुख ही सुख है, दुःख का लेशमात्र भी नहीं।"

रमा ने उसकी हां में हां मिलाते हुए कहा—

"मुरली की बातों से मैं भी बहुत प्रभावित होती थी। किरण के पिता के मन में भी बड़ी आस्था थी कि मनुष्य चाहे तो इस संसार को स्वर्ग बना सकता है। एक आदर्श व्यवस्था की खोज, एक सपने की तलाश करते जाने में उन्हें अपने जीवन की सार्थकता दिखाई देती थी। मुझे लगता है कि हर धर्म, हर दर्शन, हर विचारधारा आदमी को एक छलावा देती है। वह किसी न किसी बैकुंठ की रचना करती है। लेकिन जिंदगी में बैकुंठ कहीं होता ही नहीं। जिंदगी की सच्चाई मुझे लगता है, यही है कि आदमी कभी अपने मन को टूटने से बचाता है, कभी संसार को और इसी क्रिया में उसकी जिंदगी खत्म हो जाती है।"

किरण और दिवाकर बाजार से लदे हुए लौटे। दिवाकर के दोनों कंधों पर एक-एक झोला लटक रहा था और हाथ में भी कई पैकेट थे। किरण के हाथ में कापियां, किताबें और पेन के अलावा हार्लिक की एक बड़ी शीशी थी। आते ही वह बोली—

"मां, सुबह-शाम हार्लिक लो और कपिलदेव की तरह शक्तिशाली हो जाओ।" उसकी बात पर कमरे में ठहाका लगा।

कापियों और किताबों को एक तरफ पटक कर किरण ने झोले से फूलों का एक गुच्छा निकाला और साथ ही नया फूलदान भी। फूलदान में फूलों का गुच्छा सजाने के बाद किरण ने उसे मां के सिरहाने के पास पड़ी मेज पर रख दिया। फिर झोले में हाथ डालकर दो फूलों के गजरे निकाले। एक मां के लिए और दूसरा मामी के लिए। मामी का गजरा जूड़े में बांधती बोली, "मामी क्या सचमुच आपको मोतिये के फूलों से एलर्जी होती है?"

"किसने कहा?" रूपा ने प्रश्न किया।

"मामा जी ने...."

"उनसे पूछो कभी गजरा लाकर दिया भी?"

किरण ने दिवाकर की तरफ देखा और कहा—

"क्यों मामा जी? पकड़े गए न! अब लाइए मेरी चाकलेट।"

"अच्छा भई हम हारे तुम जीतीं। यह रही तुम्हारी चाकलेट।"

दिवाकर ने टेलिविजन का बटन दबाया। स्थानीय खबरें आ रही थीं। सरस्वती रानी महिला मंडल की अध्यक्ष सर्वसम्मति से चुन ली गई थीं। उनके विरुद्ध खड़ी एकमात्र उम्मीदवार ने चुनाव से पहले अपना नाम वापस ले लिया था। महिला मंडल की शाखाओं पर भी सरस्वती रानी के उम्मीदवार विजयी हुए थे। समाचारों में कहा गया कि रमा देवी अस्वस्थ होने के कारण चुनाव से अलग रहीं।

समाचारों में सरस्वती देवी द्वारा प्रेस संवाददाताओं से की गई भेंट वार्ता का विवरण भी दिया

गया था। उन्होंने कहा कि महिला मंडलों के कामों में अधिक कुशलता लाई जाएगी और इस बात की कोशिश की जाएगी कि महिला केन्द्रों में तैयार माल का राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार किया जाए। इस संदर्भ में सरस्वती रानी ने समाचार पत्रों को बताया कि हिमाचल की शिल्प वस्तुओं तथा कलापूर्ण वस्तुओं का विदेशों को निर्यात करने के लिए इस क्षेत्र के प्रसिद्ध विक्रेताओं से सहायता ली जाएगी। उन्होंने बताया कि हिमाचल कला-शिल्प भंडार नाम की ख्याति-प्राप्त संस्था ने इस काम में पूरा सहयोग देने की पेशकश भी की है।"

समाचारों में यह भी कहा गया कि दिल्ली की राजनीति में एक बड़ी घटना हुई है। कांग्रेस के कुछ सदस्यों ने नेतृत्व से असंतुष्ट हो कर जन मोर्चा बनाया है। जन मोर्चा के नेताओं का कहना है कि वे कांग्रेस को नहीं छोड़ रहे हैं, उनके नेतृत्व से भी मतभेद नहीं है। जनमोर्चा का उद्देश्य भ्रष्टाचार के अपराधी कुछ व्यक्तियों को जनता के सामने लाना और कांग्रेस को एक स्वच्छ राजनैतिक दल बनाना है।

समाचार खत्म हुए तो रमा ने टिप्पणी की—

"एक मिस्टर क्लीन से जी भर गया। अब दूसरे मिस्टर क्लीन की खोज हो रही है। इन अखबार वालों का यह शग़ल हो गया है।

दिवाकर ने जोड़ा—

"असली खेल तो पूंजीपति घरानों का है। अखबार वाले तो उनके मोहरे हैं!"

"लेकिन उनको अपनी औकात का भान कहां है? समझते हैं कि वो किंगमेकर हैं जबकि हैं वो पेट से बोलने वाले गुड्डे।"

बीच में किरण बोल उठी—

"मामा, मामा! मेरे पास भी पेट से बोलने वाले दो गुड्डे हैं। पेट दबाओ तो चीं-चीं करते है।

कमरा हंसी से गूंज उठा।

मुरली ने विधायकों के प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में पूर्वी युरोप के देशों का दौरा किया। पंद्रह दिनों के इस दौरे में उसका परिचय उस आंधी से हुआ जिसका बगूला मास्को से उठा था और अब उसने सारे पूर्वी यूरोप को अपनी लपेट में ले लिया था। पेरेस्त्रोइका और ग्लासनोस्त के शब्द सारी दुनिया में लोकप्रिय हो चले थे। तीसरी दुनिया के जिन गरीब देशों ने

मार्क्स, ऐंगल्स और लेनिन-स्तालिन आदि को नये मसीहा मानकर एक नई तरह के स्वर्ग को धरती पर लाने का सपना देखा था, वे उस आंधी से भौंचक्के थे। उनकी देव प्रतिमाएं एक-एक करके चटक रही थीं। इन प्रतिमाओं में जिस ठोसपन का विश्वास मन में लिये वे जी रहे थे, उसमें खोखलापन पाकर उनकी आशाएँ धाराशायी हो रहीं थीं। अपने भगवान् की लाश को अपनी आंखों से देखने का साहस उनमें नहीं था, इसलिए वे उस लाश को दिव्य समाधि मानकर अपने दिल को बहलाने की कोशिश कर रहे थे कि यह सब हवा का अस्थायी झोंका है, बहुत जल्दी ही यह गुजर जाएगा और ताबूत में पड़ी हुई भगवान् की लाश फिर जिंदा हो जाएगी।

न जाने कब से आदमी अपनेको इसी तरह एक छलावे में रखता आया है। शायद छलावा उसके लिए जरूरी है। शायद वह इसके बिना जी ही नहीं सकता। अपने लिए एक अदद् भगवान, एक आदर्श, एक सपने की कल्पना करके सारा जीवन उसकी खोज में लगा देता है। साये से खेलते, डरते और लड़ते बच्चे की तरह।

मुरली स्वयम् इस फिनामिना को समझ नहीं पाया था। हालांकि समाजवादी आंदोलन में रहते हुए मार्क्स, लेनिन, स्तालिन के सिद्धांतों को परम सत्य मानने जैसा दुराग्रह उसने कभी मन में नहीं पाला था, मन में आस्था बनी हुई थी कि मानव समाज का एक ऐसा ढांचा तैयार किया जा सकता है जिसमें आदमी को शोषण का शिकार न होना पड़े, जिसमें हर मनुष्य को बराबरी का दर्जा हासिल हो और जिसमें हर व्यक्ति को अपना भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास करने का अवसर मिले। क्या साम्यवाद की असफलता का अर्थ यह है कि इस तरह का सपना देखना ही गलत है?

लेकिन सपनों के बिना आदमी जी कैसे सकता है? एक मंजिल की कल्पना किए बिना उसकी यात्रा का क्या प्रयोजन है? आखिर आदमी सपना देखता क्यों है? क्या सपना देखना और लक्ष्य निर्धारित करना एक ही बात नहीं है? क्या सपना एक दूरगामी लक्ष्य नहीं है? अगर है तो सपना देखने में क्या बुराई है? दूरगामी लक्ष्य के बिना जिंदगी का क्या अर्थ रह जाता है? तात्कालिक लक्ष्य और दूरगामी लक्ष्य में परस्पर विरोध कहां है?

शायद मनुष्य ने तात्कालिक लक्ष्य से दूरगामी लक्ष्य को बिल्कुल दूर, बिल्कुल अलग-थलग रखकर गलती की है। इन्हें एक दूसरे के विलोम मानकर हमने अपनी हताशाओं को खुद ही आमंत्रित किया। ब्रह्म और माया, प्रकृति और पुरुष, मैटर और स्पिरिट, विचार और पदार्थ इन संकल्पनाओं को पूर्णतः स्वतंत्र और पृथक मानकर हम ऐसे लक्ष्य के पीछे भागने को विवश होते हैं जिनका प्राप्त होना असंभव है। हम ऐसे स्वर्ग के मोह में बंधे रहते हैं जिसका अस्तित्व ही नहीं होता। इस मोह में बंध कर हम तात्कालिक समस्याओं से उदासीन ही नहीं होते बल्कि उन्हें दूरगामी लाभ के आधार पर उचित भी मानने लगते हैं। हम वर्तमान भूख का दूरगामी स्वर्ग से, वर्तमान हिंसा का दूरगामी लोकतंत्र से, वर्तमान गुलामी का दूरगामी स्वतंत्रता से, वर्तमान दुःख का दूरगामी सुख से औचित्य सिद्ध करने लगते हैं। आदमी को इन झूठे दिलासों से छलने का सिलसिला अनंत काल से चल रहा है।

क्या दुनिया के तमाम दार्शनिकों ने आदमी को एक छलावे की तरफ ले जाने का प्रयत्न किया है? आदर्शवादी दार्शनिकों के लिए एक स्वर्ग की कल्पना करना जरूरी हो सकता है किंतु यथार्थवादी दार्शनिकों के लिए भी ऐसा करना क्यों जरूरी हुआ? क्या मार्क्स और ऐंगल्स का दर्शन यथार्थवादी था या आदर्शवादी? क्या भौतिकवादी दर्शन भी आदर्शवादी हो सकता है? मार्क्स का वर्ग रहित समाज का आदर्श हीगेल के मूर्त निरपेक्ष के आदर्श से कहां भिन्न था?

ये सारे प्रश्न एकबारगी हवा में उछलने लगे थे। मुरली के मन को भी इन प्रश्नों ने परेशान किया था। पूर्वी देशों के माहौल से उसने अनुमान लगाया था साम्यवाद की बंद कोठरी से निकलकर खुली हवा में सांस लेने का सुख कितना मोहक है। लोग शरणार्थी का जीवन जीने का खतरा मोल ले कर भी दीवार को फांद कर उस तरफ जाने के लिए उतावले थे।

शायद एक आदर्श की कल्पना, एक दूरगामी लक्ष्य को निर्धारित करना गलत नहीं है, गलत है उस आदर्श को तात्कालिक जीवन से बिल्कुल अलग मानना और उस तक पहुंचने की उतावली। हम एक झटके में उस आदर्श तक पहुंचना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि जिस पेड़ को हम लगा रहे हैं उसके फल भी हमें खाने को मिल जाएं। इसीलिए हम उस लक्ष्य के मार्ग की बाधाओं के प्रति असहिष्णु हो कर उन्हें हिंसात्मक तरीके से हटाना चाहते हैं। हम इसी शरीर से स्वर्ग को भोगना चाहते हैं और इसी चाह में बड़े से बड़ा कुकर्म करने से भी नहीं चूकते। शायद दुनिया के हर आदर्शवादी दर्शन का इतिहास इसीलिए खून से लथपथ है। शुद्ध रूप से यथार्थवादी दर्शन निराशा का दर्शन ही हो सकता हैं क्योंकि यथार्थ जीवन किसी भी मंजिल तक नहीं पहुंच पाता। मंजिल से पहले ही उसका समाप्त हो जाना तय है। मंजिल उसके सामने भी होती है किंतु उस मंज़िल तक पहुंचने की जिद्द उसकी नहीं होती। शायद यथार्थवादी के मन में मंजिल का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता, उसकी मंजिल यात्रा के साथ-साथ पीछे सरकती जाती है और जीवन का अंतिम सत्य मंजिल नहीं, यात्रा बन जाती है— एक ऐसी यात्रा जिसमें मंजिल के न मिलने की निराशा तो रहती है लेकिन मंजिल को खोजने का उत्साह कभी कम नहीं होता।

मुरली को इस बात की प्रसन्नता भी थी कि रूस और पूर्वी युरोप की जनता साम्यवाद को छोड़कर समाजवाद शब्द को अपना रही है। न केवल वहां के राजनैतिक दलों ने अपने नाम और संविधानों में तदनुरूप परिवर्तन कर लिये हैं, बल्कि 1919 से पहले की समाजवादी एकता की भावना को दोबारा जिंदा किया जा रहा है। भारत के समाजवादी नेता साम्यवाद की जिन त्रुटियों की तरफ शुरू से ही इशारा करते रहे थे, उन त्रुटियों को साम्यवादी शासन अब खुद स्वीकार कर रहे हैं और छोड़ रहे हैं। पूंजीवादी देश केवल स्वतंत्रता को लेकर चल रहे थे और साम्यवादी केवल समता को लेकर। उनकी समता की कल्पना भी अत्यंत सीमित थी और वे आर्थिक समता के अलावा किसी और प्रकार की समता को स्वीकार नहीं करते थे। भारत के समाजवादी चिंतक स्वतंत्रता और समता दोनों को साथ लेकर चलते रहने की बात कहते रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समाज और प्रत्येक राष्ट्र के स्वतंत्रता और समता के अधिकार को सुरक्षित करते हुए

विश्व-बंधुत्व की स्थिति ही इन समाजवादी चिंतकों का काम्य रही है। इतिहास के कड़वे-तीखे अनुभवों ने मानव जाति को उसी मार्ग पर ला खड़ा किया है।

विदेश यात्रा से लौटने पर मुरली को देश में बन रही नई स्थितियों में उलझना पड़ा। बोफोर्स और फेयरफेक्स के घोटालों ने केन्द्र की राजनीति में एक बवंडर खड़ा कर दिया था। कांग्रेस के कुछ सांसदों ने पार्टी के अंदर ही एक अलग मोर्चा बना लिया था। दलबदल कानून की मार से बचने के लिए ऐसे-ऐसे तरीके खोज लिए गये थे कि यह कानून एक मजाक ब कर रह गया था। कुछ दिन पहले जो पत्रकार और बुद्धिजीवी राजीव गांधी को इक्कीसवीं श ाब्दी का मसीहा घोषित कर रहे थे, वे अब विश्वनाथ प्रताप सिंह को मिस्टर क्लीन घोषित कर रहे थे। सरकारों को बनाने और तोड़ने की शक्ति का दावा करने वाले समाचारपत्रों ने विश्वनाथ प्रताप को विपक्षी राजनीति का केन्द्र बनाकर कांग्रेस की सत्ता उखाड़ फेंकने का जबर्दस्त अभियान छेड़ दिया था। इस अभियान में वे विपक्ष के सभी वरिष्ठ नेताओं की छवि को मैला करने और विश्वनाथ प्रताप सिंह की कमजोरियों को भी महान् गुणों के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। संवैधानिक तिकड़मों से कांग्रेस सरकार को गिराने के असफल प्रयत्नों के बाद वे गैर-कांग्रेसवाद के पुराने रास्ते की वकालत करने लगें थे लेकिन बिना किसी रचनात्मक कार्यक्रम के। बोफोर्स का ढोल पीटने के अलावा उनके पास कोई प्रोग्राम नहीं था जिसपर सारा विपक्ष एक हो सकता था।

मुरली जानता था कि डॉ० लोहिया का गैर-कांग्रेसवाद हवा में नहीं लटका था। उसकी जड़ें जमीन में थीं। उसका एक स्पष्ट कार्यक्रम था और उस कार्यक्रम को तुरंत लागू करने का निश्चय था। किंतु डॉ० लोहिया के निधन के बाद जिस गैर-कांग्रेसवाद को अपनाया गया उसमें कांग्रेस को कुर्सी से हटाने के अतिरिक्त कोई ठोस कार्यक्रम नहीं रहा। इसीलिए तो गैर-कांग्रेसवाद असफल होता रहा है और उसमें से साम्प्रदायिक और जातिवादी ताकतों के रूप में भस्मासुर पैदा होते रहे। गैर-कांग्रेसवाद की वर्तमान लहर का हश्र भी कुछ इसी प्रकार का होगा, मुलरी को इसका पूरा अहसास था। इसका सबसे बुरा परिणाम हिमाचल प्रदेश होनेवाला था क्योंकि वहां कांग्रेस के विकल्प के रूप में केवल साम्प्रदायिक शक्तियां ही थीं।

इन सब बातों के मद्देनजर मुरली के मन में राजनैतिक दृश्य में हो रहे इन नये परिवर्तनों के प्रति कोई विशेष उत्साह नहीं था। कांग्रेस के प्रति भी उसके मन में कभी कोई विशेष लगाव नहीं रहा। वह स्थितियों से बाध्य होकर कांग्रेस में आया था और राजीव गांधी के प्रधानमंत्री बनते ही उसका कांग्रेस से मोह भंग हो गया था। उसने कई बार इसे छोड़ने का इरादा भी किया था लेकिन कुछ विवशताओं ने उसे इससे रोक दिया था। राजीव गांधी की सरकार जिस तरह उधार टेक्नोलाजी से क्रांति लाने की कोशिश कर रही थी, उसके फूहड़पन से मुरली के मन में गुस्सा भी था किंतु वह एक अनाड़ी को रातों-रात एक दिव्य पुरुष बनाने के खेल के भी सख्त खिलाफ था। समाचारपत्रों और बुद्धिजीवियों का एक वर्ग इसी खेल में लगा हुआ था। नित नये सूत्रों का निर्माण और विध्वंस करनेवाले इन बुद्धिजीवियों के बारे में मुरली के मन

में कोई भ्रम नहीं था। वह मानता था कि ये तथाकथित बुद्धिजीवी हमेशा जनता से कटे रहे। वे हर तरह के निजाम में सुखी रहते हैं। इन्हें अंग्रेजों के राज से भी कोई तकलीफ नहीं थी। इनको जो थोड़ा बहुत कष्ट रहा वह मात्र बौद्धिक रहा। इन्हें कभी भूख की यातना नहीं सहनी पड़ी, कभी पैशाची शक्तियों से सामना नहीं करना पड़ा। उनका कष्ट इतना ही रहा कि उन्हें इंगलैंड, अमरीका आदि देशों के बुद्धिजीवियों की नजर में ऊंचा रुतबा मिल जाए, भले ही यहां की जनता भूखी-नंगी रहे और कीड़े-मकोड़े की तरह जीती-मरती रहे।

राजीव गांधी के गद्दी पर बैठने के बाद जो समाचारपत्र हर्षोन्माद का वातावरण तैयार करने लगे थे वही अब राजीव गांधी को गद्दी से हटाने के लिए जमीन-आसमान एक कर रहे थे। बोफोर्स तोपों और पनडुब्बियों के सौदे में राजीव गांधी और उसकी मित्र-मंडली द्वारा कमीशन खाए जाने की सच्ची-झूठी खबरों को वे मिर्च-मसाला लगाकर देने लगे थे। हर रोज कोई नया धमाका होता था। खोजी पत्रकार, सरकारी दफ्तरों से पूरी की पूरी फाइल की नकल करके ले आते थे और उसे अखबार में छाप कर जनता की नजर में लोकतंत्र के महान मसीहा बन जाते थे। ठक्कर आयोग की रिपोर्ट, स्वीडिश रेडियो की रिपोर्ट, भूतपूर्व सैनिक अधिकारी का बयान, महानियंत्रक और लेखा-परीक्षा की रिपोर्ट इन तमाम सनसनीखेज खबरों ने कांग्रेस के खिलाफ वातावरण तैयार कर दिया और इसके कारण कांग्रेस के अंदर हड़कंप मच गया। केन्द्र के साथ-साथ प्रदेशों की राजनीति में सुगबुगाहट होने लगी थी और भयभीत कांग्रेसी अपने आस-पास नये समीकरण खोजने लगे थे।

मुरली इन सब परिवर्तनों को निस्संग भाव से देख रहा था। उसकी रुचि न कांग्रेस में थी और न कांग्रेस के विकल्प में बन रहे नये समीकरण में। हिमाचल प्रदेश के कांग्रेसी मंत्रिमंडल के एक वरिष्ठ सदस्य के नाते कांग्रेस की नीतियों का समर्थन करना उसके लिए जरूरी होता था किंतु मन अपने काम में नहीं लगता था।

महिला मंडलों पर राजकुमार वीरदमन की पत्नी सरस्वती रानी का कब्जा हो जाने के बाद मुख्यमंत्री का आत्मविश्वास मजबूत हुआ था। केन्द्र की गद्दी पर एक भूतपूर्व राजा के विराजमान होने की संभावना ने उनके मन को केन्द्र की नीति से थोड़ा मुक्त किया था और वे अपने सहयोगियों को यह जताने के लिए उत्सुक थे कि वे किसी केन्द्रीय नेता की मेहरबानी से मुख्यमंत्री नहीं बने हैं बल्कि अपने बलबूते पर प्रदेश के नेता हैं।

इन्ही दिनों दिल्ली के एक समाचारपत्र में हिमाचल से संबंधित एक खबर छपी। और दिन होते तो इस खबर की तरफ किसी का ध्यान भी नहीं जाता। किंतु नित नये घोटालों के चटखारेदार वातावरण में इस खबर ने भी लोगों का ध्यान खींचा।

खबर हिमाचल कला-शिल्प भंडार द्वारा चोरी-छिपे दुर्लभ कलाकृतियों के निर्यात की थी। इस संस्था को हिमाचल सरकार से प्रदेश के शिल्प-उत्पादों को निर्यात करने का लाइसेंस मिला था किंतु माल की पेटियों में दुर्लभ मूर्तियां निर्यात की जा रही थीं। हिमाचल प्रदेश के अनेक प्राचीन और ऐतिहासिक मंदिरों से इन मूर्तियां को चोरी करके लाया जाता था। इन्हें

दिल्ली में हिमाचल कला शिल्प भंडार के मालिक के महरौली स्थित फार्म में जमीन में गाड़ कर रखा जाता था और उपयुक्त अवसर पर उन्हें शिल्प वस्तुओं की पेटियों में बंद कर के बाहर भेजा जाता था। खबर में नमक-मिर्च का तत्व जोड़ने के लिए संवाददाता ने कई राजनेताओं को तस्करी के इस मामले से जोड़ा था। समाचारपत्र ने लिखा था कि हिमाचल कला शिल्प भंडार की अध्यक्ष कांग्रेस पार्टी की एक सांसद सांतोदेवी हैं जो हिमाचल सरकार के एक वरिष्ठ और चर्चित मंत्री श्री मुरली की धर्मपत्नी हैं। स्मरणीय है कि यह मंत्री किसी समय जुझारू पत्रकार एवं समाजवादी नेता के रूप में विख्यात रहे और हिमाचल सरकार में उनका रुतबा अब भी मुख्यमंत्री के बाद दूसरे नंबर पर माना जाता है। इस तस्करी कांड के साथ एक और प्रखर महिला राजनेता रमादेवी का नाम भी जुड़ता है जो हिमाचल प्रदेश में महिला मंडलों के अंतर्गत हो रहे शिल्प-वस्तुओं के उत्पादन में जुड़ी रही हैं। हिमाचल की कलापूर्ण वस्तुओं को उच्च स्तर पर पहुंचाने में रमादेवी का बड़ा हाथ रहा है। हालांकि वे निर्दलीय सदस्य के रूप में चुनाव लड़ती और जीतती रही है, कांग्रेस पार्टी को उनका बड़ा समर्थन रहा है। पिछले चुनावों में महिला मंडलों की ताकत से उन्होंने चार महिलाओं को कांग्रेस के टिकट पर विधायक के रूप में जितवाया था। बताया जाता है कि हिमाचल कला-शिल्प भंडार के प्रबंधक, जो वास्तव में इस फर्म के मालिक हैं, श्री मंगतराम शर्मा, रमादेवी के नजदीकी रिश्तेदार हैं और उन्हीकी बदौलत श्री शर्मा को हिमाचल के कला-शिल्प उत्पादों के निर्यात करने का लाइसेंस मिला था।

मुरली ने कुछ समय से समाचारपत्रों के प्रति भी एक विरक्ति का रवैया अपना लिया था। दिल्ली से छपनेवाले कुछ पत्रों को जिन्होंने सनसनीखेज खबरों को ही पत्रकारिता का धर्म मान लिया था, उसने पढ़ना छोड़ ही दिया था। इसीलिए जब अचानक मुख्यमंत्री ने उसे फोन करके अपने दफ्तर में बुलाया तो उसने यही सोचा कि कोई पेचीदा मसला मुख्यमंत्री के सामने उपस्थित हुआ है।

मुख्यमंत्री के दफ्तर में जब मुरली ने प्रवेश किया तो मुख्यमंत्री सामने खड़े अपने निजी सचिव से कुछ बातें कर रहे थे। मुरली की तरफ उन्होंने ध्यान नहीं दिया। मुरली उनकी मेज के सामने कुर्सी के पास जाकर खड़ा हुआ तब भी मुख्यमंत्री निजी सचिव को कुछ समझाते रहे। फिर अचानक मुरली की तरफ हाथ बढ़ा कर बोले—

"अरे, आप बैठिए न....."

सचिव के बाहर जाने पर मुख्यमंत्री ने उनकी तरफ मुस्करा कर देखा।

"इधर कई दिनों से आपसे मुलाकात नहीं हुई। तबीयत तो ठीक है न ..?"

मुरली ने नजरों ही नजरों में मुख्यमंत्री को तोला—

"तबीयत ठीक है। लेकिन आपने भी तो कभी याद नहीं किया। इधर कई दिनों से मंत्रिमंडल की बैठक भी नहीं हुई।"

"हां, मैं भी इधर कुछ व्यस्त रहा। सेंटर में बहुत गड़बड़ हो रही है। यह अखबार वालों ने तो नाक में दम कर रखा है।"

"यह तो इनका धंधा है। सरकार इन्हें मौका देती है तो वे इसका फायदा क्यों न उठाएं? इनको हर रोज चटाखेदार खबर चाहिए और चटाखेदार खबर इन्हें मिलती है। लोगों को इन अखबारों ने सनसनीखेज खबरों का नशाई बना दिया है। उन्हें भी हर रोज इसी तरह की खबरें चाहिए। मैंने तो इन अखबारों को पढ़ना ही छोड़ दिया है।"

"लेकिन हमारे आपके छोड़ देने से क्या होता है? जनता तो पढ़ती है और हम बदनाम होते हैं। लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि यह खबर अखबार वालों को दी किसने?"

मुरली थोड़ा चौंका।

"कौन सी खबर?" उसने पूछा।

"आपने नहीं देखा?"

"नहीं....."

"मेरे पास अभी-अभी यह कतरन आई है।"

उन्होंने लोक सम्पर्क विभाग द्वारा भेजी गई कतरनों का गुच्छा मोड़कर उनके आगे बढ़ा दिया। मुरली ने एक सांस में सारा समाचार पढ़ लिया। कतरनों का गुच्छा वापस करते हुए वह बोला—

"किसीने तो दी होगी यह खबर अखबार वालों को?"

मुख्यमंत्री की मुद्रा गंभीर हो गई—

"सवाल तो यह है कि किसने दी और इसमें कितनी सच्चाई है?"

मुरली कुछ देर चुप रहा। उसने मुख्यमंत्री की नजरों से नजरें मिलाने की कोशिश की लेकिन मुख्यमंत्री ने नजरें हटा लीं और सामने पड़े कतरनों के गुच्छे को संभालकर ट्रे में रखने लगे। मुरली बोला—

"देखिए साहब, खबर में सच्चाई तो होगी। पुलिस ने पेटियां जब्त की हैं और मंगतराम शर्मा के फार्म में छापा मार कर जमीन में गड़ी मूर्तियां भी बरामद की है। यह भी सच है कि मेरी पत्नी हिमाचल कला शिल्प भंडार की अवैतनिक अध्यक्ष हैं। लेकिन मैं यह नहीं जानता मुझे और रमादेवी को इस मामले में क्यों लपेटा गया? मेरा लपेटा जाना तो एक तरह से सही भी हो सकता है क्योंकि सांतो मेरी पत्नी है। लेकिन रमादेवी के ऊपर कीचड़ उछालने का काम जिस व्यक्ति के भी कहने पर हुआ है उसका मैं पता लगाए बिना नहीं रहूंगा। किसीने निहायत टुच्ची किस्म की राजनीति खेली है।"

"मैं आपकी बात से बिल्कुल सहमत हूं", मुख्यमंत्री ने बीच में ही बोलना शुरू किया, "इस बात का पता लगाया जाना चाहिए कि यह स्टोरी किसने प्लांट की है। मुझे लगता है कि जो शरारती तत्व केन्द्र में गड़बड़ी कर रहे हैं वह यहां भी कारस्तानियां कर रहे हैं। उनका मकसद है हिमाचल सरकार को बदनाम करना, सारे मंत्रिमंडल को बदनाम करना। यह सिर्फ रमादेवी का मामला नहीं है यह सारी सरकार का मामला है।"

"मैं जानता हूं और इसलिए मैं मंत्रिपरिषद से त्यागपत्र दे रहा हूं।

मुरली उठने को तैयार हुआ लेकिन मुख्यमंत्री ने रोका–

"आप बहुत जल्दी तैश में आ जाते हैं। बैठिए। ऐसे मामलों में गरम मिमाज़ी अच्छी नहीं होती। राजनीति में इस तरह की बातें तो होती ही रहती हैं। त्यागपत्र देना इसका हल नहीं है।"

लेकिन मुरली ने मन में फैसला कर लिया था। अब वह त्यागपत्र से अगले कदम के बारे में सोच रहा था। मुख्यमंत्री ने कहा–

"मैं कल ही अखबार के लिए रिज्वाइंडर भिजवाता हूं।"

"उसकी जरूरत नहीं है", मुरली बोला, "रिज्वाइंडर से लोगों को और खबरें गढ़ने का मौका मिलेगा। अगर रिज्वाइंडर किसी को देना चाहिए तो मुझे या रमादेवी को देना चाहिए।"

"तो फिर इस मामले को रफा-दफा कीजिए और आगे के लिए सावधानी बरतिए।"

मुरली की नसें तन गईं। मुख्यमंत्री की तरफ पैनी नजरों से देखकर उसने कहा–

"क्या आप यह कहना चाहते हैं कि हमने गलती की है और आगे के लिए हमें सावधान रहना चाहिए?"

"मेरा यह मतलब हरगिज नहीं था। आप अपनी तरफ से बहुत सी बातें फर्ज़ कर लेते हैं।"

"तो फिर आपका क्या मतलब था?"

"कभी-कभी अनजाने में आदमी से गलती हो जाती है।"

"गलती तो गलती है। जाने में हो या अनजाने में। लेकिन यह गलती किसने की, इसके पीछे कौन है, इसका पता लगाया जाना जरूरी है और इसलिए मैं मंत्रिपरिषद के बोझ से मुक्त होना चाहता हूं। जाते ही मैं आपको अपना त्यागपत्र भेज दूंगा।"

"आप फिर वही बात कर रहे हैं। मैंने कहा न, त्यागपत्र देने की कोई जरूरत नहीं।"

"आप जरूरत न समझें लेकिन मैं समझता हूं। मैं अपनी खोई हुई आजादी हासिल करना चाहता हूं।"

"मैं आपका त्यागपत्र मंजूर नहीं करूंगा।"

"आप करें या न करें, मुझे इस बात से गर्ज नहीं। मैं आपके मंत्रिमंडल का सदस्य आज से नहीं रहूंगा।"

मुरली यह कहकर उठ गया। मुख्यमंत्री भी अपनी कुर्सी से उठ खड़े हुए।

"देखिए, मैं नहीं चाहता कि इस मामले को लेकर यहां भी संकट खड़ा हो जाए।"

"संकट क्यों खड़ा होगा? मैं जा रहा हूं और कोई तो मेरे साथ नहीं जा रहा।"

मुख्यमंत्री मुरली को छोड़ने दरवाजे तक आए। शायद जो कुछ हुआ वह उनकी कल्पना के विपरीत था। वे यह भी नहीं समझ पा रहे थे कि इस संवाद का समापन कैसे किया जाए।

मुख्यमंत्री के दफ्तर से निकलकर मुरली सीधे अपने कमरे में आया। लैटरहैड निकाल कर उस पर दो लाइनों का त्यागपत्र लिखा और निजी सचिव के हाथ में देते हुए बोला–

"इसे अभी मुख्यमंत्री के यहां पहुंचा दो और मेज पर जो कागजात पड़े हैं उन्हें सम्हालकर अपने पास रख लो।"

निजी सचिव अवस्थी हक्काबक्का होकर मुरली की तरफ देखता रहा। मुरली बोला—

"आज शाम मैं दिल्ली जा रहा हूं। जरूरत पड़े तो वहां फोन कर लेना। मकान की चाबियां चौकीदार के पास रहेंगी। जो मांगने आए उसे सम्हाल देना।"

मुरली सचिवालय से सीधे रमादेवी के निवास पर पहुंचा। किरण ने दरवाजा खोला। रमा आराम कुर्सी पर बैठी अखबार देख रही थी। किरण की चुटिया खींच कर मुरली बोला—

"तुम घर में ही हो? स्कूल नहीं गई?"

"क्या चाचाजी, छोड़िए न", चुटिया छुड़ाते हुए किरण बोली, "आप तो न जाने किस दुनिया में रहते हैं।"

"क्यों.....?"

"आपको इतना भी पता नहीं कि आज कल स्कूल की छुट्टियां हैं।"

"अरे, किस बात की छुट्टियां?"

"परीक्षा की तैयारी की, और किसकी?"

"यह बात है। भई हमें कौन सी परीक्षा देनी है जो छुट्टियों की याद रहती।"

"लेकिन आप लोगों की छुट्टियां तो कभी होती नहीं। नहीं तो कहीं घूमने जाते।"

"आज से हमारी भी छुट्टियां हैं।"

"सच.....? तो ले चलिए हमें कहीं। चलो, दिल्ली चलते हैं। मां का चैकअप भी करा लेंगे।"

"कोई बात नहीं। अपनी मां को तैयार कर लो। आज ही चलते हैं।"

"मां को समझाना मेरे बस की बात नहीं है। आप ही समझाओ।"

रमा के पास कुर्सी खींचकर बैठते हुए मुरली बोला—

"इस कम्बख्त मंत्रीगीरी से तो पिंड छूटा।"

"क्या हुआ? अखबारी धमाके ने हिला दिया सरकार को?" रमा ने मुस्करा कर पूछा।

"यह राजनीति बहुत टुच्ची हो गई है रमा जी", उसने गुस्से में कहना शुरू किया, "अखबार तो घटिया स्तर पर आ ही गए हैं लेकिन राजनीति तो कुत्ती चीज हो गई है।"

"अरे भई, गुस्सा क्यों करते हो?" न राजनीति टुच्ची होती है और न पत्रकारिता घटिया होती है। घटिया और टुच्चा तो सिर्फ आदमी होता है। खैर छोड़ो। यह बताओ हुआ क्या?"

"मुख्यमंत्री ने बुलाया था। खबर के सिलसिले में। मैंने अपना त्यागपत्र उन्हें भिजवा दिया है।"

"आपको त्यागपत्र देने की क्या जरूरत थी?"

"मुझे तो वैसे भी देना था। अच्छा हुआ बहाना मिल गया।"

"अब क्या करोगे?"

"पहले तो दिल्ली आकर पता करूंगा कि इस ख़बर के पीछे कौन-कौन लोग हैं?"

"इससे क्या होगा?"

"मन की तसल्ली के लिए ही सही। मुझे लगता है इसके पीछे कोई गहरी साजिश है।"

"आपका मतलब मुख्यमंत्री का भी इसमें हाथ है?"

"मुख्यमंत्री का हाथ तो क्या होगा? इससे उसकी छवि भी तो खराब होती है। लेकिन कुछ कहना मुश्किल है। इससे उसका स्वार्थ भी हल हुआ।"

"क्या।"

"मंत्रिमंडल में मेरी अनुपस्थिति के कारण उसमें जो हीन भावना जैसी कोई चीज थी उससे मुक्ति मिल गई।"

"और सरस्वती रानी का एकछत्र साम्राज्य बन गया। साम्राज्य तो पहले ही बन गया था। फिर भी उसे डर रहा होगा कि रमा दोबारा न आ जाए।"

"सैंटर की सरकार डगमगा रही है। सुनते हैं जल्दी ही लोकसभा के चुनाव कराए जाएंगे। प्रदेशों के सूबेदार अपनी-अपनी स्थिति मजबूत करने में लगे हैं। सरस्वती रानी का अभियान भी इसका एक हिस्सा हो सकता है। लेकिन मुझे लगता है कि इस शरारत के पीछे और भी हैं।"

"कौन?"

"अभी कहना मुश्किल है। ध्यान देने वाली बात यह है कि जिसने भी यह खबर दी है उसका उद्देश्य रहा है जैसे भी हो, खींच-तानकर समाजवादियों को बदनाम किया जाए। वैसे यह रवैया इस समय सारे इलीट प्रेस का है। जिन लोगों ने कांग्रेस हुकूमत के खिलाफ जेहाद छेड़ रखा है वे यह भी जानते हैं कांग्रेस की जगह अगर कोई सरकार लेती है तो उसमें समाजवादी नहीं होने चाहिए। पिछड़ी जातियों के नेता उन्हें वैसे ही फूटी आंख नहीं सुहाते। ये लोग कांग्रेस का विकल्प सिर्फ भाजपा को बनाना चाहते हैं। बात यह है कि प्रेस पर सवर्ण जातियों के इलीट तबके का कब्ज़ा है और वे इसी तबके की सरकार देखना चाहते हैं। भाजपा उनके लिए आदर्श पार्टी है। अगर समाजवादी और पिछड़ी जातियों के नेता बदनाम हो जाएं तो भाजपा के लिए मैदान खाली हो जाता है।"

रमादेवी को इस राजनैतिक दाव-पेच में ज्यादा रुचि नहीं थी। उन्होंने मुरली को समझाया कि इस पचड़े में पड़ना वक्त बरबाद करना होगा। हमने तो वैसे ही मैदान खाली कर दिया है। लेकिन मुरली का कहना था कि इस खबर का प्रतिवाद तो जरूर करना चाहिए। चुप रह कर हम पत्रकारों के घटियापन को शह ही देंगे।

मुरली ने रमा से कहा कि वह भी दिल्ली चलें। किसी अच्छे डाक्टर से सलाह-मशिवरा हो जाएगा। लेकिन रमा का कहना था कि अब वे ठीक हैं। किसी को दिखाने की ज़रूरत नहीं है।

किरण उन्हें चाय देने के बाद अपने कमरे में पढ़ रही थी। मां की बात सुनकर वह बाहर निकली ओर बोली—

"नहीं चाचा जी, मां की सेहत अभी ठीक नहीं है। कमजोरी बहुत है, खाना बहुत कम

खाती हैं। उन्हें किसी डाक्टर को दिखाइए।"

मुरली ने रमा की तरफ देखा। रमा मुस्करा कर बोली, "किरण पगली है। उसे मेरा बहुत खयाल है।"

"हां, हां! मैं पगली हूं, पगली हूं, पगली हूं", कहती किरण पैर पटकती हुई अपने कमरे में चली गई। मुरली उसके पीछे-पीछे कमरे में गया। किरण मुंह ढक कर रो रही थी। मुरली ने उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा—

"तुम फिक्र मत करो। मैं इसी हफ्ते सारा बंदोबस्त करूंगा।"

किरण का सुबकना कम हुआ तो मुरली धीरे-धीरे कमरे से बाहर आ गया।

सांतो को मूर्तियों की तस्करी की खबर ने झकझोर दिया था। हिमाचल कला-शिल्प भंडार के अध्यक्ष के रूप में प्राप्त सुविधाओं के खो जाने की उसे इतनी चिंता नहीं थी जितनी मुरली और रमादेवी के ऊपर लगाए गए आरोपों की थी। खबर जिस दिन छपी उससे पिछली शाम को आठ बजे के लगभग किसी ने अखबार के दफ्तर से फोन करके उससे पूछा था कि हिमाचल कला-शिल्प भंडार के संबंध में इस-इस तरह की खबरें उन्हें मिली हैं और इस संबंध में वे कुछ कहना चाहती हैं तो उनका बयान छापा जा सकता है। सांतो एक क्षण के लिए हतप्रभ रह गई। फिर उन्होंने कहा कि वे हिमाचल कला-शिल्प भंडार की अवैतनिक अध्यक्ष हैं लेकिन इस संस्था की गतिविधियों के बारे में उसे ज्यादा जानकारी नहीं है। मुरली और रमादेवी के बारे में पूछे जाने पर उसने बताया कि इन लोगों पर कीचड़ उछालने का काम जिस किसी ने भी किया है, वह एक गंदी राजनैतिक हरकत है।

रात भर उसे नींद नहीं आई। सुबह उठते ही अखबार में छपी खबर पढ़ी तो उसका मन रोने को हुआ। मुरली की बातें उसे रह-रहकर याद आने लगीं। मंगतराम शर्मा ने उसे अकारण अध्यक्ष नहीं बनाया था। वह उसको अपने गंदे काम में इस्तेमाल करना चाहता था। लेकिन रमादेवी को क्यों लपेटा गया? किसने यह खबर दी?

उसे याद आया कि अखबार का एक संवाददाता, एक दिन उससे मिलने आया था और वह बड़ी देर तक कांग्रेस पार्टी के अंदर चल रहे विद्रोह के बारे में उसकी राय पूछता रहा था। सांतो देवी अखबारों में छप रहे नित नए घोटालों से काफी प्रभावित थी और उसने कहा था कि इन खबरों की वजह से कांग्रेस के कई लोग जनमोर्चा में शामिल होने के लिए तैयार बैठे हैं। लेकिन इस बात का तस्करी की खबर से क्या संबंध है, यह समझ पाना सांतो के लिए मुश्किल था।

जबसे वह हिमाचल कला-शिल्प भंडार की अध्यक्ष बनी थीं, लोधी गार्डन के एक कोने में सड़क के किनारे का उनका फ्लैट लोगों की आवाजाही से काफी गुंजार हो गया था। उस कालोनी में कई सांसदों के फ्लैट थे और साथ वाली सड़क पर कुछ मंत्रियों की कोठियां भी थीं। लेकिन 14 नंबर के सांतो के फ्लैट में जो गहमागहमी दिखाई देती थी, वह कहीं नहीं थी। सुबह

से ही मिलने वालों का तांता लग जाता था। कला-शिल्प भंडार में नौकरी का आकर्षण बहुत से युवक और युवतियों को खींच कर वहां ले आता था। जैसे ही वे अपने कमरे से निकलतीं, दर्शनार्थी बड़े श्रद्धाभाव से नमस्कार की मुद्रा में खड़े हो जाते। कुछ लोग पैर छूने से भी बाज नहीं आते हालांकि सांतो कई बार सबके सामने कह चुकी थी कि उसे पैर छुआई बिल्कुल पसंद नहीं है। राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करने को आतुर कुछ युवक भी आते थे और गप्पबाजी करते थे कि किस नेता के यहां क्या दाल पक रही है। धोबी से धुली कल्फ लगी खद्दर की पोशाक में कुछ युवक तो अच्छे खाते-पीते घरों के लगते थे और अपनी कार में बैठ कर आते थे। उनके पास दिल्ली की राजनीति के हर क्षण बदलते तथ्य की पूरी जानकारी होती थी। इनमें से कुछ जनमोर्चा के समर्थक होते थे, कुछ कांग्रेस के और कुछ विपक्ष की दूसरी पार्टियों के। तस्करी की खबर छपने के दिन उससे मिलने कोई नहीं आया।

अगले दिन सुबह ही मुरली आ गया। सांतो की मुरझाई हुई सूरत देख कर ही मुरली ने भांप लिया कि वह पश्चात्ताप में है। उसने छूटते ही कहा—

"क्या रोनी सूरत बना रखी है? तुम हिमाचल कला-शिल्प भंडार की अध्यक्ष हो इसका मतलब यह तो नहीं तस्करी में तुम्हारा हाथ है।"

सांतो को इससे बहुत बल मिला। लेकिन उसका धैर्य टूट गया और वह मुरली से लिपट कर रो पड़ी। मुरली ने उसके चेहरे को धीरे-धीरे उठाया और उसकी दोनों आंखों को अपने होंठों से स्पर्श करते हुए बोला—

"हर घटना के अच्छे और बुरे पहलू हो सकते हैं। इस घटना का अच्छा पहलू यह है कि इससे मुझे मंत्री पद से त्यागपत्र देने का बहाना मिल गया।"

"क्या आपने.....?"

"हां, मैं अब मंत्री नहीं हूं। मैं आजाद प्राणी हूं।"

"यह सब मेरी वजह से हुआ न....."

"अगर यह तुम्हारी वजह से हुआ तो मुझे तुम्हारा भी शुक्रिया अदा करना चाहिए।"

"तुम्हें मजाक करने का पूरा हक है।"

"मैं मजाक नहीं कर रहा हूं।"

"लेकिन मैं जानती हूं इसमें मेरा ही ज्यादा कसूर है। मैंने तुम्हारी बात मानी होती तो हम इस चक्कर में न फंसते।"

मुरली ने मुस्करा कर उसकी ओर देखा। धीरे-धीरे उसके बालों की लट को खींचकर बोला—

"तुम्हारे चेहरे पर उदासी मुझसे नहीं देखी जाती। उस दिन भी जब तुम मंगतराम शर्मा की तारीफ के पुल बांध रही थी, मैंने इसीलिए तुम पर जोर नहीं डाला कि तुम्हारे मन को ठेस लगती और तुम उदास हो जाती। तुम्हारी गलती सिर्फ इतनी ही है कि तुम आम राजनेताओं की तरह मुफ्त में मिली सुविधाओं के जाल में फंस गई। इस जाल से बचना हर एक के लिए संभव नहीं है। मैं इसके लिए तुम्हें ज्यादा दोष नहीं देता हूं। अलबत्ता, मुझे इस बात की खुशी है कि

बहुत जल्दी ही तुम उस जाल से मुक्त हो गई। जहां तक मेरी बात है मैं कह ही चुका हूं कि मुझे मंत्री-पद छोड़कर खुशी ही हुई है। मेरा वहां दम घुट रहा था।"

"लेकिन रमा दीदी पर तो नाहक कीचड़ उछाला गया है।"

"हां, यह किसीने बहुत नीच काम किया है और मुझे इसका पता लगाना है कि यह काम किसने किया। वैसे रमाजी पर इसका कोई असर नहीं हुआ है। उन्होंने मुस्कार कर इस घटना को रफा-दफा कर दिया है।"

"उनकी तबीयत कैसी है?"

"तबीयत मुझे लगता है, ठीक नहीं है। किरण बहुत चिंतित है।"

"उन्हें यहां ले आते।"

"अभी तो रमाजी तैयार नहीं हैं। शायद उन्हें किरण की परीक्षा की चिंता है। अगले हफ्ते उसकी परीक्षाएं शुरु होने वाली हैं। तब तक वे शिमला छोड़कर बाहर नहीं जाना चाहतीं। लेकिन उसके बाद उन्हें आल इंडिया मेडिकल इन्स्टीच्यूट में दिखाना पड़ेगा। कोई जान-पहचान है?"

"जान-पहचान की क्या जरूरत है? वैसे स्वास्थ्य मंत्री से फोन कराकर कमरा बुक करा लूंगी।"

"किरण बहुत समझदार लड़की है। मां की देखभाल वो ऐसे करती है गोया रमाजी बच्ची हों और वह उनकी दादी।"

जब तक खाना तैयार हो, मुरली ने सांतो से हिमाचल कला-शिल्प भंडार के संबंध में कुछ आवश्यक जानकारी ले ली। उसने यह भी जान लिया कि किस-किस अखबार के संवाददाता उसके यहां आते थे और सांतो ने कब किसको क्या बात कही थी।

शाम को साढ़े चार बजे वह प्रेस क्लब पहुंचा। इधर-उधर नजर दौड़ाने पर उसे कोई परिचित नजर नहीं आया। फिर अचानक उसने थुलथुल शरीर वाली एक सुंदर महिला को क्लब में घुसते देखा। वह सीधे मुरली के पास आई और पीठ पर मुक्का जमाते हुए बोली—

"हाय!"

"हाय।" मुरली ने भी उसी अदा में मशीनी ढंग से जवाब दिया किंतु उसे मीनाक्षी को पहचानने में कुछ देर हुई।"

"यूं आंखें फाड़ कर क्या देख रहे हो? मैं मीनाक्षी हूँ।"

"ओह, मीनाक्षी......लेकिन तुम यहां और इस रूप मे?"

"हाँ, मैं यहां। इसमें हैरानी की क्या बात है? मैं भारत की नागरिक हूं, और कहीं भी आ जा सकती हूँ। अरे यार, हमने शादी बना ली, दो बच्चे हो गए। अब स्लिम बने रहने का क्या तुक था? सो बेरोकटोक खाती गई और मोटी होती गई।

दोनो कोने की मेज पर जा बैठे। मीनाक्षी ने ठंडा बीयर लाने के लिए बैरे को कहा, और फिर मुरली से मुखातिब हुई—

"भई, तुम डाल-डाल मैं पात-पात। मैंने सुना तुम बंबई से भाग गए। हम भी तुम्हारी

तलाश में दिल्ली आ गए। यहा आकर पता चला कि तुम हिमाचल प्रदेश में मिनिस्टर बन गए हो।''

''ठीक ही सुना लेकिन अब मिनिस्टर नहीं हूं।''

''क्या मतलब? मूर्तियों की स्मगलिंग के मामले में.......''

''हाँ, उसी मामले में मैंने कल त्यागपत्र दे दिया है।''

''यू आर इडियट मिस्टर मुरली।''

''क्यों?''

''तुम्हारी पत्नी कला-शिल्प भंडार की चेयरमैन है इससे तुम्हारे ऊपर कहां आरोप लगता है।''

''दिस इज वेल्यूबेसड् पॉलिटिक्स.......''

दोनों ठहाका मार कर हँस पड़े।

कुछ देर बाद मुरली ने कहा—

''लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि यह स्कूप मारा किसने?''

मीनाक्षी ने मुरली को ध्यान से देखा, फिर बोली—

''तुम इसे स्कूप कहते हो?''

''स्कूप नहीं तो और क्या है?''

''तुम या तो खुद बनने की कोशिश कर रहे हो या मुझे बनाने की कोशिश कर रहे हो।''

''ईमानदारी से कहता हूँ मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता।''

इतने में बैरा बीयर के दो जग मेज पर रख गया था। मीनाक्षी ने बीयर का घूंट भर कर कहा—

''मंगतराम का यह धंधा बहुत पुराना है। इससे पहले भी उसके फार्म पर छापे पड़ चुके हैं। पुलिस को जब भी उससे पैसा ऐंठना होता है वह उसके फार्म पर छापा मारती है। इसमें कोई नई बात नहीं है। नई बात सिर्फ यह है कि आपकी श्रीमती के मकान में, राजनैतिक सरगरमियां बढ़ गई थीं। कांग्रेसी नेताओं को इससे परेशानी हुई। उन्होंने तुम्हारे मुख्यमंत्री से मशविरा किया और मुख्यमंत्री ने केन्द्रीय नेताओं की नजर में अपना सिक्का जमाने और उन्हें बदनाम करने केलिए एक कहानी गढ़ी। इसमें रमा देवी को इसलिए लपेटा गया कि वे भी हिमाचल प्रदेश में मुख्यमंत्री की शक्ति को चुनौती दे सकती थीं। कांग्रेस में आपकी श्रीमती को सबक सिखाने के लिए छापा डलवाया और मुख्यमंत्री ने अपने विरोधियों का सफाया कराने के लिए खबर प्लांट की।''

मुरली को जिस बात का शुबह था, वह सच निकली। लेकिन मीनाक्षी को इन सब बातों का कैसे पता चला? मीनाक्षी ने उसकी शंका का समाधान किया।

''मैं आजकल ए.आई.सी.सी. को कवर कर रही हूँ। मुख्यमंत्री का विशेष संदेश लेकर जो व्यक्ति आया था, मैं उससे मिली थी।''

"तो फिर यह स्टोरी भी आपने ही दी होगी।"

"देखो, मैं तुम्हें बता चुकी हूं, मैं अपने अखबार के लिए काम करती हूं।"

"लेकिन यह स्टोरी गई तो ए.आई.सी.सी. से......"

"गई ए.आई.सी.सी. से लेकिन छपी ऐसे अखबार में जिसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग भरे हुए हैं। हिमाचल प्रदेश कांग्रेस का विकल्प केवल भाजपा है और समाजवादी उसकी नजरों में सबसे बड़ा कांटा है।"

"तुम्हारा मतलब इसमें वर्तमान मुख्यमंत्री और भावी मुख्यमंत्री दोनों का हाथ है।"

"इट इज ज्वांइट एंटरप्रीनरशिप मिस्टर मुरली।"

और मीनाक्षी ठहाका मार कर हँस पड़ी।

"और मूल्याश्रित पत्रकारिता भी......" मुरली ने व्यंग्य से कहा।

"पत्रकारिता पत्रकारिता है। वह मूल्यों के चक्कर नहीं पड़ती।"

"मूल्य वसूलती तो है।"

"कोई देने को तैयार हो तो क्यों न वसूलें?"

"तुम्हें क्या मिला?"

"दिस इज नन ऑफ योर बिजनेस......"

"मैं प्रेस कमीशन को लिख रहा है।"

"शौक से लिखो। मेरा कहीं नाम नहीं आता। मैंने उन्हें साफ बता दिया था कि वे अपनी रिस्क पर इसका इस्तेमाल कर सकते हैं।"

मुरली प्रेस क्लब से बाहर निकला तो उसके मुंह में ही नहीं, दिल में भी कसैलापन भर गया था। वहां से पैदल चलकर वह कॉफी हाऊस में आया। यहां उसे एक भी परिचित चेहरा नहीं दिखाई पड़ा। खुली छत के एक किनारे पर सटोरियों का जमघट था जो एक मेज़ पर रखे ट्रांजिस्टर पर झुके हुए थे। शायद किसी मैच की कमेंटरी आ रही थी और उस पर बाजी लगी हुई थी। टैरेस का एक चक्कर लगाने के बाद वह नीचे उतर आया और फिर सड़क पार करके कॉफी होम में घुस गया।

यह नया कॉफी हाऊस जिसे कॉफी होम का नाम दिया गया था, हाल ही में दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद जगप्रवेश चन्द्र ने बनवाया था। जगप्रवेश चन्द्र खुद कॉफी हाऊस में नियमित बैठने वालों में थे। जनपथ के कॉफी हाऊस में कीमतें बढ़ाने के विरोध में शौकीन लोगों ने एक टेंट में वर्षों तक सहकारी कॉफी हाऊस चलाया था। इमरजेंसी के दिनों में उस कॉफी हाऊस को भी तोड़ दिया गया था और जमीनदोज मार्केट बन गई थी। फिर मोहनसिंह पलेस की बिल्डिंग में उस कॉफी हाऊस के लिए जगह मिली थी और यहां अब भी कॉफी हाऊस चल रहा था। लेकिन दिल्ली जैसे महानगर में यह कॉफी हाऊस छोटा पड़ता था। जगप्रवेश चन्द्र ने दिल्ली में कई कॉफी हाऊस खोलने की योजना बनाई थी उसी के अंग के रूप में यह कॉफी होम बना था।

मुरली यहां का माहौल देखकर घबरा गया। खूब भीड़, खूब शोर-शराबा, खूब आमदोरफ्त लेकिन वह बात नहीं जो एक कॉफी हाउस में होनी चाहिए। बहस-मुबाहिसा, तकरार, विचारों का टकराव, इन सबके लिए माहौल नहीं था।

कॉफी होम से वह सीधा घर आया। सांतो को उसने मीनाक्षी से मिली सारी जानकारी दी तो सांतो बोली—

"अब हमें क्या करना चाहिए।"

"कुछ नहीं, भूल जाओ, सारे प्रसंग को।"

"क्या अखबार वाले भूलने देंगे?"

"अखबार वालों के लिए अब बहुत अच्छा मसाला तैयार हो रहा है। इस छोटे से प्रसंग में उनकी रुचि अपने-आप खत्म हो जाएगी।"

"क्या मामला तैयार हो रहा है?"

"यही, कांग्रेस के विरोध में सभी विपक्षी दलों की एक पार्टी। जल्दी ही चुनाव होंगे।"

"राजीव चुनाव करा रहे हैं?"

"चुनाव उन्हें कराने ही हैं, दो महीने पहले करा लेंगे जिससे विरोधी दलों को ज्यादा वक्त न मिले।"

"जीतेगा कौन?"

"अभी क्या कह सकते हैं? लेकिन माहौल तो कांग्रेस के खिलाफ जा रहा है। अगर विपक्षी दल मिलकर चुनाव लड़ें और तिकोने संघर्ष नहीं हुए तो कांग्रेस की हार निश्चित है। लेकिन यह जरूरी नहीं कि विपक्षी दलों में समझौता हो ही जाए।"

"आप कांग्रेस छोड़ रहे हैं?"

"छोड़ूं या न छोड़ूं, एक ही बात है। मुझे चुनाव भी नहीं लड़ना है और राजनीति में भी नहीं रहना है।"

"क्या मतलब"

"मतलब, कुछ दिनों के लिए संन्यास। अभी तत्काल तो मुझे रमा जी को कहीं दिखाना है। उन्होंने इन कामों में अपनी सेहत बरबाद कर ली है। उन्हें आराम की सख्त जरूरत है। महिला-मंडलों का काम उन्होंने छोड़ ही दिया है। अबकी बार चुनाव भी नहीं लड़ेंगी।"

सांतो की समझ में नहीं आया। अचानक सब कुछ कैसे छूट जाएगा? इतने वर्ष जिस काम में अपना जीवन लगाए रखा, उसे यूं कोई कैसे छोड़ सकता है? रमा दीदी की बात तो समझ आ सकती है। कई दिनों से उनकी सेहत ठीक नहीं चल रही है। कुछ दिन आराम करें तो ठीक ही होगा। लेकिन मुरली की हालत तो राजनीति से बाहर वैसी ही होगी जैसी मछली की पानी के बाहर। सांतो यह मानने के लिए तैयार नहीं थी कि मुरली सचमुच राजनीति से संन्यास लेगा। उसे लगा कि मुरली के मन में कुछ और ही पक रहा है। सांतो, को इमरजैंसी के दिनों में मुरली का साधु वेष अच्छी तरह याद था। लेकिन उसने इस मामले में मुरली को ज्यादा कुरेदना उचित

नहीं समझा। उसने भविष्य के बारे में मुरली से जानना चाहा।

"मीनाक्षी ने जो बताया अगर वह सही है तो पार्टी मुझे टिकट नहीं देगी।"

"पार्टी तुम्हारा टिकट नहीं काट सकती। काटेगी तो नई पार्टी की तरफ से तुम्हें टिकट मिल जाएगा। लेकिन तुम्हारी मरजी है, चुनाव लड़ने की?"

"मरजी तो है टिकट मिला तो......"

"टिकट मिलेगा और जीतना भी तुम्हारे लिए मुश्किल नहीं है। लेकिन चुनाव लड़ना बेकार होगा।"

"क्यों?"

"इस चुनाव के बाद असली लड़ाई संसद में नहीं, संसद से बाहर होगी।"

"कैसे?"

"मेरा अनुमान है। हो सकता है मेरा अनुमान गलत हो।"

"इस अनुमान की वजह भी तो होगी।"

"जो भी सरकार बनेगी वह जनता की समस्याओं का सामना नहीं कर पाएगी। समस्याएं बहुत बड़ी हैं और उनका समाधान कुछ असाधारण तरीके से ही हो सकता है। मुझे ऐसी कोई पार्टी या कोई नेता नहीं दिखाई देता जो असाधारण कदम उठाने का जोखिम ले सके। मिखाईल गोर्बाचौफ की तरह कोई आदमी जो घर फूंक तमाशा देखने को तैयार हो। जो कुर्सी का मोह छोड़कर काम करेगा वही हमारे देश की समस्याओं को हल कर सकेगा।"

"मैं तो एक स्वार्थ के लिए चुनाव लड़ना चाहती हूं।"

"क्या?"

"मेरे पास दिल्ली में मकान हो। ताकि रमा दीदी यहां रह सकें और मैं उनकी देखभाल कर सकूं।"

"स्वार्थ तो मेरा भी है।"

"वह क्या?"

"जब हमारा पहला बच्चा हो तो हम इतनी मजबूर हालत में न हों कि जो बहुत जरूरी है वह भी न कर पाएं।"

सांतो शरमा गई।

जिस दिन किरण की बोर्ड की परीक्षा का आखिरी पर्चा था, उस दिन मुरली पूरी तैयारी के साथ रमादेवी के घर पहुंच गया था। आल इंडिया मेडिकल इंस्टीच्यूट में डॉ० कृष्ण कुमार से बातचीत करके उसने रमादेवी के लिए अलग कमरे की व्यवस्था कर रखी थी।

डॉ० कृष्ण कुमार से स्वास्थ्य मंत्री के सचिव ने उसकी मुलाकात कराई। रमादेवी का परिचय देते हुए जब उन्होंने अमर का नाम लिया तो डॉ० कृष्ण कुमार बहुत ज्यादा भावुक हो

गए। उनकी आंखों में आंसुओं का सैलाब उमड़ने लगा और उसे दबाने के लिए वे मन की पूरी ताकत लगाने लगे। लेकिन मन उन पर काबू पाने में असमर्थ रहा तो वे 'एक्सक्यूज़ मी' कह कर उठ गए। बाथरूम में जाकर उन्होंने हाथ-मुंह धोएं और फिर मन का बोझ हल्का करने के बाद वापस आए।

मुरली ने उनके चेहरे को गौर से देखा। वे अब भी मुरली से नज़र मिलाने से कतरा रहे थे। फिर बोले—

"मैं ज़रा इमोशनल हो गया था। लेकिन मानव-शरीर की चीड़-फाड़ के धंधें से जुड़ा होने के बावजूद मुझे इमोशनल होने का हक है। आप शायद नहीं जानते कि अमर हाई स्कूल में मेरा दोस्त था। दोस्त नहीं कह सकता, वे मुझसे एक साल सीनियर थे और हम उनसे थोड़ा डरे-डरे बात करते थे। शायद वह डर नहीं, आदर की भावना थी। उनके सहपाठी हों या पिछली कक्षा वाले सभी के मन में उनके प्रति बहुत आदर था। इसे आदर कहना भी गलत होगा क्योंकि आदर तो हम कुछ अध्यापकों का करते थे। अमर के साथ तो सिर्फ दोस्ती ही हमारी हो सकती थी। फिर भी वह दोस्ती कुछ अलग किस्म की थी। हममें से हर एक लड़का उनके पास जाना चाहता, उनसे बातें करने चाहता था। लेकिन उनसे बातें करते हुए हम सतर्क रहते थे कि कोई ऐसा-वैसा शब्द मुंह से न निकल जाएं कि उनको बुरा लगे।......"

कुछ देर रुकने के बाद डॉ. कृष्णकुमार ने बोलना शुरू किया—

"मुझे स्कूल छोड़े करीब पैंतीस बरस हो गए हैं। इस बीच कई बार उनकी याद आई। उनसे मिलने की इच्छा हुई। मंडी के विजय हाई स्कूल में जब हम पढ़ते थे तो अमर बोर्डिंग हाऊस में रहते थे। उनका घर किसी गांव में था और वह गांव कहां था, यह सब जानने की हम लोगों ने तब ज़रूरत ही नहीं समझी। वे मेरे घर कई बार ज़रूर आए। लेकिन हाई स्कूल परीक्षा देने के बाद कभी स्कूल नहीं आए। हाई स्कूल की परीक्षा में उनके रिकार्ड को आज तक कोई लड़का तोड़ सका। कई सालों तक वे हम लोगों के बीच किस्से-कहानी के पात्र की तरह याद किए जाते रहे। उनके बारे में कई कहानियां हमारे बीच सुनी-सुनाई जाती रहीं। मैं स्कूल छोड़ने के बाद डाक्टरी की लाइन में चला गया। उनके बारे में इतना सुना कि बी.ए. करने के बाद वे अपने गांव में ही रहने लगे हैं। लेकिन कई बार चाहने पर भी मुझे उनसे मिलने का मौका नहीं मिला। फिर एक दिन मुझे छः-सात लाइनों का एक पत्र मिला। लिखा था: "अगर आपके आद्यक्षर के.के. से कृष्ण कुमार बनता है और आप विजय हाई स्कूल के छात्र रहे हैं तो मैं आप से कभी मिलना चाहता हूं। अखबार में चित्र देखकर शुबह हुआ तो पत्र लिख रहा हूं। अपने बचपन के दोस्त का इतने दिन बाद मिलना कितना सुखद होता है, मैं इसे स्वयं अनुभव करना चाहता हूं।"

उस पत्र का मैंने तुरंत जवाब दिया और कहा कि मैं भी मिलने के लिए उत्सुक हूं और अगर आप दिल्ली आ रहे हों तो लिखिए अन्यथा मैं आपके घर आ जाऊंगा। "लेकिन मुलाकात से पहले ही समाचारपत्रों से पता चला कि उनकी दर्दनाक तरीके से मृत्यु हो गई।"

मुरली ने देखा डा. कृष्णकुमार में प्रौढ़ावस्था के बावजूद बच्चे का सरलपन था। उनकी

देख-रेख में रमादेवी की जांच और इलाज हो, मुरली को इस बात पर प्रसन्नता थी। उसकी परेशानी काफी हद तक दूर हो गई थी।

रात की डीलेक्स बस से सब लोग दिल्ली केलिए रवाना हुए। रमा की इच्छा नहीं थी किंतु किरण को थोड़ा घूमने-फिरने का वक्त मिल जाएगा।

सुबह सात बजे वे लोधी गार्डन में सांतो के फ्लैट में पहुंच गए। सांतो ने रमा के लिए अलग कमरा ठीक कर रखा था, जिसकी खिड़कियां एक छोटे से लॉन में खुलती थी। लॉन में करील की एक घनी झाड़ी और अमरूद के दो-तीन पेड़ थे। चिड़ियों की चहक से लॉन गुंजार रहता था। सड़क पार करते ही लोधी गार्डन में दाखिल हुआ जा सकता था। पुराने मकबरों के साथ-साथ प्राकृतिक पेड़ों और झाड़ियों के कारण लोधी गार्डन की प्राकृतिक छटा काफी कुछ बची हुई थी। रमादेवी के सुबह-शाम घूमने के लिए यह आदर्श जगह थी।

दस बजे डा. कृष्णकुमार के साथ मुलाकात का समय निश्चित था। डा. कृष्णकुमार अपने कमरे में उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। रमादेवी के कमरे में प्रवेश करते ही डाक्टर ने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया। उन्हें कुर्सी पर बिठाकर उन्होंने किरण की तरफ देखकर मुरली से पूछा, "यह किरण है न......"

"हां...... । मुरली ने मुस्करा कर उत्तर दिया।

किरण ने भी उन्हें नमस्कार किया, मन ही मन यह सोचकर कि मुरली चाचा ने हम सबके बारे में डाक्टर साहब को सब कुछ बता दिया होगा।

डाक्टर ने रमादेवी से स्वास्थ्य के संबंध में सामान्य पूछ-ताछ की और बताया कि 312 नंबर कमरा उनके लिए ठीक कर दिया गया है। इनकी देखभाल के लिए जो यहां ठहरना चाहें उनके लिए भी व्यवस्था है।

दफ्तर का चपरासी कॉफी ले आया था। डा. कृष्णकुमार ने अपनी मेज की दराज से फ्रेम में जड़ी एक तसवीर निकाली और रमादेवी की ओर बढ़ा कर कहा--

"यह मेरी और अमर की बचपन की तसवीर है, जब हम दोनों हाईस्कूल में पड़ते थे।"

रमादेवी तस्वीर को गौर से देखती रहीं। उनकी आंखें डबडबा आईं। किरण ने तसवीर को अपने हाथ में लिया और ध्यान से देखने के बाद बोली--

"इसमें तो बताना ही मुश्किल है कि मेरे पापा कौन हैं"

सब हंस पड़े। डॉक्टर ने कहा--

"मेरी बेटी भी यही कहती है। हम दोनों की शक्ल बचपन में बहुत मिलती थी। हमारे दोस्त मजाक भी उड़ाते थे कि हम दोनों जुड़वां भाई हैं।"

खुद मुरली को भी तसवीर देखकर हैरानी हो रही थी।

"बड़ा होने पर आदमी की शक्ल कितनी बदल जाती है?" उसने कहा।

"शक्ल ही नहीं, पूरे का पूरा आदमी बदल जाता है। शायद इसीलिए आदमी को अपने बचपन की याद बड़ी प्यारी लगती है। मैंने इस तसवीर को बहुत सम्हाल कर रखा था", डाक्टर ने कहा।

"आप इस फोटो को हमें दे सकते हैं ? हम इसकी कापी बनाकर अपने पास रखेंगे और यह आपको लौटा देंगे।"

किरण की इस बात पर डाक्टर ने फोटो उसके हाथ में देते हुए कहा–

"यह तुम्हारे लिए ही है। मैंने इसकी कापी करवा कर अपने पास रख ली है, यह देखो।" और उन्होंने दराज से दूसरा फोटो निकाल कर दिखा दिया–

"लेकिन एक शर्त है।"

"क्या?"

"जब तुम्हारी मां ठीक हो जाएंगीं तो आप सब लोग हमारे घर आएंगे और तब मैं सबकी एक तसवीर खींचूंगा। मेरी बेटी माधुरी भी तुम्हारे बराबर है। उसने आठवीं की परीक्षा दी है।"

"मैंने भी आठवीं की परीक्षा दी है। कल ही तो आखिरी पर्चा हुआ।"

"चलिए, मैं आपको कमरा दिखा देता हूं......" कह कर डाक्टर कृष्णकुमार उठ गए। रमा उठते-उठते बोली–

"सुना है आपके यहां गिनीपिग बनाया जाता है।"

डाक्टर हंस दिए–

"ऐसी बात तो नहीं है, लेकिन हमारी कोशिश होती है कि रोग का पता लगाने में कोई कसर न उठा रखी जाए। टेस्ट तो करने ही पड़ते हैं।"

रमादेवी को जो कमरा दिया गया था, वह तीसरी मंजिल के दक्षिणी सिरे पर था। कोने में पड़ता था और उसकी खिड़की पीपल के एक घने पेड़ पर खुलती थी। सीमेंट और कंक्रीट के इस विशालकाय अस्पताल के प्रांगण में यही एक मात्र पेड़ बचा था। रमा उस पेड़ को देख कर प्रसन्न हुई। अपने चारों ओर पत्थर, सीमेंट और लोहे-इस्पात के जंगल को देखकर उसका मन घबराने लगा था।

पांच दिन तक एक रुटीन की तरह सब काम चलता रहा। समय पर डॉक्टर आते और कुछ पूछ-ताछ करते। समय पर नर्सें आतीं और टेम्परेचर आदि देखकर चार्ट पर नोट कर जातीं। निश्चित समय पर कुछ दवाई दी जाती। खून, पेशाब आदि के सेम्पल लिए जाते।

सांतो और किरण हमेशा रमादेवी की देखभाल के लिए कमरे में रहतीं। मुरली सुबह-शाम देखने आता। विशेष कर उस समय जब डाक्टर कृष्णकुमार के आने का समय होता। डाक्टर के साथ-साथ वह भी कमरे से निकल जाता। दोनों के बीच क्या बातें होतीं, रमादेवी, सांतो या किरण किसी के लिए उनका अनुमान लगाना संभव नहीं था। उनके पूछने पर केवल इतना ही कहा जाता था कि अभी टेस्ट हो रहे हैं। उनकी रिपोर्ट आने पर ही कुछ कहा जा सकता है। नर्सों से पूछना तो बेकार ही था। उनका बँधा-बँधाया उत्तर था, "सब ठीक है बाबा, तुम क्यों परेशान होता है?"

सातवें दिन डॉ. कृष्णकुमार ने मुरली को अपने कमरे में बुलाया। मुरली ने देखा डाक्टर

का चेहरा गंभीर था। मुरली की नजरों से बचते हुए डाक्टर ने कहा—

"रमादेवी को बंबई के टाटा अस्पताल में ले जाना पड़ेगा।"

"क्या...?" मुरली घबराहट में आधा सवाल ही कर सका।

"हां, उन्हें कैंसर है। जिगर का कैंसर, और यह लगभग लाइलाज है फिर भी टाटा अस्पताल में दिखाना ठीक रहेगा।"

थोड़ी देर के लिए मुरली स्तब्ध रह गया।

"लेकिन यह कैसे हो सकता है?" मुरली को अब भी उनकी बात पर विश्वास नहीं हो रहा था।

"मैं यह सच्चाई आपको बता सकता हूं। रमादेवी से कहने का साहस मुझमें नहीं है।"

"क्या उनको बताना जरूरी है?"

"अगर आप बिना बताए काम चला सकते हैं तो मुझे कोई एतराज नहीं।"

इस अप्रत्याशित स्थिति का सामना करने के लिए मुरली तैयार नहीं था। वह कुछ उत्तर नहीं दे सका। रमादेवी का चेहरा उसके सामने घूम गया। किरण को वह क्या कह कर समझाएगा।

"आप जसलोक अस्पताल में जाना चाहें तो वहां के लिए भी व्यवस्था कर सकता हूं। उनकी देखभाल वहां ज्यादा अच्छी होगी। खर्च का भी इतना प्राब्लेम नहीं होगा। सरकार की तरफ से व्यवस्था हो सकती है।"

"जसलोक में तो रमादेवी जाना भी नहीं चाहेंगी।"

"क्यों?"

"वे तो यहां आने के लिए भी मुश्किल से तैयार हुई थीं।"

"वजह?"

"कहती हैं ये बड़े लोगों के अस्पताल हैं। वी.आई.पी. अस्पताल। उनका कहना है कि आम लोगों के अस्पतालों की हालत इसलिए खराब है कि बड़े लोगों को इनकी जरूरत नहीं है। उन्होंने अपने लिए अलग अस्पताल बना लिए हैं।"

"उनका कहना शायद गलत नहीं है। लेकिन टाटा का अस्पताल तो सार्वजनिक अस्पताल है।"

"मुझे नहीं लगता कि रमादेवी वहां जाने को भी तैयार होंगी।"

मुरली कुर्सी से उठकर बाहर जाने लगा तो उसके कदम उठ नहीं रहे थे। डाक्टर कृष्णकुमार उसे बरामदे तक छोड़ने आए।

डाक्टर से विदा लेने के बाद मुरली रमादेवी के कमरे की तरफ नहीं गया। वह बाईं ओर घूमकर बरामदे में चलने लगा। लोग तेज कदमों से आ-जा रहे थे। मुरली धीरे-धीरे कुछ सोचता-सोचता बरामदे के सिरे पर आकर लिफ्ट के सामने खड़ा हो गया। लिफ्ट लोगों को भर-भर कर ऊपर-नीचे आ जा रही थी। बड़ी देर बाद एक रुकी तो मुरली उसमें घुस गया।

निचली मंजिल पर पहुंचकर वह सोचने लगा कि कहां जाए। फिर उसके कदम कैफेटेरिया की तरफ मुड़ गए।

एक मेज पर बैठकर उसने एक के बाद एक तीन प्याले कॉफी के पिए। लेकिन वह किसी निश्चय पर नहीं पहुंच पाया। अंत में उसने दिल को मजबूत किया और रमादेवी के कमरे की तरफ चल पड़ा।

मुरली ने अपने को काफी सहज बनाने की कोशिश की। कमरे में दाखिल होते ही उसने किरण की चुटिया खींची और पूछा—

"क्यों, खाना खा लिया?"

"हमने तो खा लिया लेकिन मां को आप खिलाइए", किरण बोली।

"इन्होंने क्यों नहीं खाया?"

"आप ही पूछिए।"

मुरली रमा की तरफ मुड़ा तो रमा मुस्करा दी, बोली—

"थोड़ा सा खा लिया। काफी है। डाक्टर साहब मिले थे?"

"हां, वहीं से आ रहा हूं।"

"क्या कहा उन्होंने? कब तक मुझे इस जेलखाने में रखेंगे?"

"आप चाहें तो हम आज ही घर जा सकते हैं।"

"क्या सच......?" किरण बोली।

"तो फिर बांधो सामान", रमा की प्रतिक्रिया थी।

"डाक्टर साहब शाम को आएंगे। तभी डिस्चार्ज पेपर बनेंगे।"

"क्या कहा उन्होंने?"

"कहा तो कुछ खास नहीं। जिगर की कमजोरी है। हवा पानी बदलने के लिए कह रहे हैं।"

"हवा पानी तो अपने गांव का सबसे अच्छा है।"

"वे बंबई जाने को कह रहे थे।"

"बंबई का हवा पानी बहुत अच्छा है?"

मुरली से कुछ जवाब नहीं बन पड़ा। रमा फीकी हंसी हंस दी।

"उन्होंने बंबई में कुछ और इन्वेस्टीगेशन कराने को कहा है।"

रमा कुछ नहीं बोलीं। उन्होंने करवट बदल ली और सोने का प्रयत्न करने लगीं। मुरली ने पहले सांतो की ओर देखा, फिर किरण की ओर। दोनों की नजरें उससे कई सवाल पूछ रही थीं।

शाम को डाक्टर कृष्णकुमार आए तो रमादेवी काफी ताजा और प्रसन्न दिख रही थीं। वह बिस्तर पर तकिये का सहारा लेकर बैठी थीं और एक पत्रिका के पन्ने पलट रही थीं। कमरे में मुरली, सांतो और किरण सब मौजूद थे। उन्होंने अपना सामान झोलों में डाल लिया था और

घर जाने की पूरी तैयारी कर रखी थी।

डाक्टर ने रमादेवी को नमस्कार किया और कहा—

"आज तो आप बहुत 'फ्रेश' लग रही हैं।"

रमा मुस्करा कर बोली—

"जेलखाने से छूट रही हूं। फ्रेश तो लगना ही चाहिए।"

"बहुत अच्छी बात है।" फिर किरण की तरफ देख कर बोले—

"हमारे घर कब चलना है? तुम्हारा वायदा है न·····?"

"वायदा है। आप जब कहें चल पड़ेंगे। लेकिन पहले यह बताइए, मेरी मां अब बिल्कुल ठीक हैं न·····"

"बिल्कुल ठीक हैं।"

रमा हंस पड़ीं।

"क्या बात है?" डाक्टर ने चौंक कर पूछा। रमा बोली—

"मैं उम्मीद कर रही थी, आप यही बोलेंगे। बहुत सी बातें हम आदतन कह देते हैं। हर डाक्टर अपने पेशेंट को दिलासा देने के लिए यही कहता है।"

फिर मुरली की तरफ देखकर बोली—

"तुम्हें याद है न····· डाक्टर लोहिया को भी उनके डाक्टरों ने यही कहा था और लोहियाजी ने उसके जवाब में कहा था कि राजनेताओं की तरह डाक्टरों को भी झूठ बोलना पड़ता है।"

डाक्टर कृष्णकुमार ने मुरली की तरफ देखा। मुरली बुत बना बैठा था। डाक्टर ने अनुमान लगा लिया कि रमादेवी को सब कुछ मालूम हो गया है। फिर भी डाक्टर में साफ-साफ बताने की हिम्मत नहीं हुई। उसने किरण को अपने पास खींच कर प्यार किया और कहा—

"तुम बहुत बहादुर लड़की हो किरण। तुमने अपनी मां की बहुत सेवा की। तुमसे झूठ नहीं बोलूंगा। तुम्हारी मां अभी ठीक नहीं है। तुम्हें इसकी और भी मन लगाकर देखभाल करनी पड़ेगी।"

"मेरी मां कब ठीक होगी?" किरण ने सीधा सवाल किया।

रमादेवी ने सांतो की तरफ देख कर कहा—

"किरण को लेकर थोड़ा घूम-फिर आओ।"

"नहीं, मैं अभी यहीं रहूंगी।" किरण अड़ गई।

"अभी डाक्टर साहब को काम करने दो। घूम कर आओ। मैं सब बता दूंगी।" रमा के कहने पर किरण चुपचाप उठकर सांतो के साथ बाहर चल दी। उसका चेहरा रुँआसा हो गया था। सांतो की आंखें भी भर आई थीं। किरण के जाने के बाद रमा ने डाक्टर की तरफ देखा—

"आप मेरे पति को अच्छी तरह जानते थे न·····?"

"यह कहना तो मुश्किल है", डाक्टर ने सफाई दी, "हमने दो साल साथ बिताए। बचपन के दिन थे। इतनी समझ कहां थी? फिर भी इतना तो कह ही सकता हूं कि बचपन के उनके

स्वभाव की मुझे अच्छी जानकारी थी।"

"तो फिर इतना और समझ लीजिए कि उनके स्वभाव की कुछ बातें मुझमें भी हैं। पूरी तो नहीं लेकिन इतने साल साथ रहते-रहते कुछ बातें तो मुझमें आनी ही थीं।"

"यह तो मुझे भी लग रहा है।"

"तो फिर बताइए कि मेरे पास और कितने दिन हैं?"

डाक्टर कृष्णकुमार ने सिर झुका लिया।

"मुझे कई दिनों से लग रहा था कि कोई खासी गड़बड़ी है। शिमला के एक डाक्टर ने मुझे बताया भी था कि यह कैंसर हो सकता है। इसीलिए तो यहां आने को भी मेरा मन नहीं था। जब किरण और मुरली ने बहुत जोर डाला तो आ गई। सोचा शक को लेकर जीने से क्या फायदा? जितना भी जीना है सचाई का पता लगा कर क्यों न जिया जाए? आप सोचते होंगे मैं कैंसर का नाम सुन कर डर जाऊंगी। नहीं, मुझे खुशी होगी। किरण के पिता कहा करते थे आदमी अगर इस तरह जी सकता है कि मौत उसके लिए भयानक न रह जाए तो समझो उसका जीवन सफल रहा। मुझे यह प्रयोग करने का मौका मिल रहा है, इसलिए मुझे खुशी है। देखना चाहती हूं कि मौत का इंतजार करते-करते आदमी किस तरह मुस्करा कर जी सकता है। क्या यह अनोखा अनुभव नहीं होगा?"

डॉ. कृष्णकुमार कुर्सी से पीठ टिका कर रमादेवी की बात सुन रहे थे। अपने डाक्टरी जीवन में उन्हें ऐसा अनुभव नहीं मिला था। रमादेवी ने कहा—

"मैं चाहती हूं कि आप मुझे साफ-साफ बताएं कि मैं ज्यादा से ज्यादा कितने दिन जी सकती हूं, ताकि मैं उसी के अनुसार अपना प्लान बनाऊं। जिंदगी की योजनाबद्ध प्लानिंग···क्यों देवर जी, यही कहेंगे न अर्थशास्त्र की भाषा में?"

मुरली का गला सूख गया था। उसके मुंह से कोई शब्द नहीं निकला।

डाक्टर कृष्णकुमार ने कहा—

"देखिए रमा जी, डाक्टर इस तरह की भविष्यवाणी नहीं कर सकता। जहां तक हमारी समझ होती है हम वहीं तक कुछ कह सकते हैं। मैंने मुरली जी को सुबह बता दिया था कि आपको जिगर का कैंसर है और इलाज असंभव है। लेकिन इस जिंदगी में कई बार ऐसा होता है कि जिसे हम असंभव मान कर चलते हैं, वह संभव हो जाता है। कुछ लोग इसे भगवान का चमत्कार कह सकते हैं। हम कहते हैं कि प्रकृति में ही हजारों बातें ऐसी हैं जो हमारी समझ से परे हैं। कुछ ऐसी घटनाएं हुई भी हैं कि लाइलाज बीमारी किसी चमत्कारी नुस्खे से ठीक हो गई। कैंसर के बारे में भी कुछ लोग इस तरह के दावे करते हैं। लेकिन हम लोगों की अपनी सीमाएं हैं। आज हमारे पास कैंसर का इलाज नहीं है, हमें कहना पड़ता है कि यह लाइलाज है। हो सकता है साल दो साल बाद इसकी कोई औषधि बन जाए। अभी तो हम इतना ही कह सकते हैं कि रोगी को कम से कम पीड़ा और ज्यादा से ज्यादा आराम मिले। इसीलिए मैंने मुरली जी से कहा था कि आप बंबई चले जाएं तो बेहतर होगा।"

रमादेवी ध्यान से डाक्टर की बातें सुन रही थीं। वह बोलीं—

"बंबई जाकर क्या करेंगे? गांव में अपने दोस्तों, रिश्तेदारों के बीच आखिरी दिन गुजारने में भी मजा है। चलो, पांच-छः महीने तो हैं न मेरे खाते में...?"

"छः महीने की प्लानिंग आप आराम से कर सकती हैं।" कह कर डाक्टर कृष्णकुमार उठ गए। मुड़ कर मुरली को देखा और उन्हें साथ आने का इशारा किया। जेब से रूमाल निकालकर उन्होंने आंखों में उमड़ते हुए आंसू सुखा लिए।

रमादेवी कमरे में अकेली रह गई तो डाक्टर कृष्णकुमार की दी हुई तस्वीर को हाथ में लेकर ध्यान से देखने लगी। चित्र देखते-देखते वह स्वयं भी बहुत पीछे अपने बचपन में लौटने लगीं। जब वे स्कूल में पढ़ते थे तो कभी-कभी दिवाकर के साथ घर आते थे। इसलिए चित्र के चेहरे को पहचानने में वह गलती नहीं कर सकती थी। सचमुच उनका चेहरा मासूम बच्चे का चेहरा लगता था। कौन जानता था कि इस चेहरे वाला व्यक्ति एक दिन मौत के सामने चट्टान की तरह अडिग खड़ा रहने वाला व्यक्ति बन जाएगा। बचपन की मंगेतर होने के कारण वह उनके सामने नहीं आती थी। सहेलियां उनका नाम लेकर उससे छेड़खानी करती थीं। एक बार तो सहेलियों ने किसी बहाने उन्हें बुलाकर रमा को खींच कर उनके सामने खड़ा कर दिया था। रमा उस घटना से पसीना-पसीना हो गई थी। अमर भी शरम से पानी-पानी हो गया था।

बचपन की उन स्मृतियों के ताजा होने पर रमा के होठों पर हल्की सी मुस्कान बिखर गई। उन्होंने चित्र को अपने पल्लू से पोंछ कर झोले में रख लिया। फिर वह धीरे-धीरे चलकर खिड़की के पास आ गई। खिड़की खोल कर बाहर झांका तो पीपल के पेड़ पर सैकड़ों कौवों को इकट्ठा देख कर उसका कुतूहल जागा। कौवों ने काँव-काँव से आसमान सिर पर उठा रखा था। रमा ने खिड़की के बाहर सिर निकालकर नीचे देखा। नीचे एक कौवा मरा पड़ा था। कौवे अपने एक साथी की मौत का शोक मनाने के लिए इकट्ठे हुए थे। रमा बड़ी देर तक खिड़की पर झुकी उस दृश्य में खोई रही। जब सांतो और किरण ने कमरे में प्रवेश किया तो उसने धीरे-धीरे खिड़की बंद कर दी और वापस आ गई।

"बाहर क्या देख रही थी मां...?" किरण ने सवाल किया।

"कुछ नहीं... बाहर कौवे शोर मचा रहे थे।" रमा ने उदासी को छिपाते हुए कहा।

"क्या कहा डाक्टर ने? हम घर जाएं न?"

"हां, घर ही जाएंगे। तुम्हारे चाचा पर्ची बनवा कर ले आएं फिर चलेंगे।"

"कहां जाएंगे?"

"अपने घर...गाँव में। अपने लोगों के बीच..."

मुरली जब कमरे में आया तो किरण रमा के बाल ठीक कर रही थी। वह बाहर से फूलों का एक गजरा ले आई थी। रमा के मना करने पर भी उसने गजरा उसके बालों में लगा दिया।

सामान उठाकर सब लिफ्ट के रास्ते नीचे आए। बाहर डाक्टर कृष्णकुमार अपनी कार में उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। किरण को देखकर बोले—

"वायदे के मुताबिक पहले हमारे घर। फिर मैं आपको लोधी गार्डन छोड़ आऊंगा।"

रमा, सांतो और किरण पिछली सीट पर बैठ गईं। मुरली डाक्टर के साथ आगे बैठा। कार अस्पताल के गेट से निकल कर ट्रैफिक के जंगल में खो गई।

मुरली के मंत्रिपद से त्यागपत्र देने के बाद मुख्यमंत्री राजकुमार वीरदमन की बहुत सी मुश्किलें आसान हो गई थीं। न सिर्फ हिमाचल के मंत्रिमंडल में उनकी स्थिति 'रीयल बॉस' की हो गई, पार्टी संगठन पर भी उनका पूरा कब्जा हो गया। उनकी पत्नी सरस्वती रानी के महिला मंडल का अध्यक्ष बन जाने के बाद आगामी चुनावों में भी उनकी स्थिति मजबूत हो गई।

लेकिन सबसे बड़ा फायदा उनको यह हुआ कि उनकी बहुत दिनों से लटकी ड्रीमलैंड योजना की सारी बाधाए दूर हो गईं। मुरली इस योजना के सख्त खिलाफ था और उनका रुख देखते हुए मुख्यमत्री उस योजना को आगे बढ़ाने में असमर्थ थे हालांकि कई केन्द्रीय और प्रांतीय नेताओं द्वारा उसे कार्यान्वित करने के लिए जोर डाला जा रहा था।

प्रधानमंत्री के कुछ नजदीकी दोस्त जो अनिवासी भारतीयों के धन और प्रतिभा का भारत के विकास में सदुपयोग करने को बहुत उत्सुक थे, इस योजना के प्रायोजक थे।

योजना थी तीस हजार एकड़ के क्षेत्र में एक ऐसा 'ड्रीमलैंड' बने जिसे देख कर लोग अनायास बोल उठें 'यही स्वर्ग है, यही स्वर्ग है।' योजना के पीछे यह विचार काम कर रहा था कि पर्यटकों के आकर्षण के रूप में कश्मीर का महत्व दिन प्रति दिन घट रहा था, इसलिए विदेशी मुद्रा का अर्जन करनेवाले इस महत्वपूर्ण उद्योग को जिंदा रखने के लिए एक वैकल्पिक पर्यटन स्थल का विकास करना जरूरी है। इसके लिए मंध और न्यूगल खड्डों के बीच की तीस किलोमीटर पट्टी जो खैरा से लेकर बंदला तक जाती थी और फिर बंदले के आस-पास की अनेक पहाड़ियों और धौलाधार का एक बड़ा हिस्सा चुना गया था। इस क्षेत्र में आनेवाले लगभग तीन सौ गांवों को दूसरी जगह बसाने की योजना थी और फिर इस इलाके की घेराबंदी करके इसे केवल सैलानियों के लिए सुरक्षित किया जाना था। अन्य लोगों को इसमें दाखिल होने के लिए विशेष पास देने की सुविधा दी जानी थी। स्कूल के बच्चों के लिए भी यहां भ्रमण की सुविधा मिलनेवाली थी।

देश-विदेश में प्रसिद्ध वास्तुकलाविद डॉ. माइकेल पटेल ने इसका जो नक्शा तैयार किया था उसके अनुसार ड्रीमलैंड में विश्राम और मनोरंजन की वे तमाम सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी थीं जो दुनिया के किसी भी मानव-निर्मित स्वर्ग पर उपलब्ध होती थीं। मैदानी पट्टी में गोल्फ खेलने के मैदान, घुड़दौड़ के मैदान, क्रिकेट के मैदान और कारों की दौड़ के लिए, विशाल, चौड़ी, टेढ़ी-मेढ़ी सड़क की व्यवस्था थी। पहाड़ी इलाके में बरफ के खेलों के लिए पूरा इंतजाम था जैसे बरफ की हाकी, स्कीइंग आदि। मध और न्यूगल खड्डों पर बांध बनाकर विशाल

तरणताल बनाए जाने थे जहां पर्यटक अपने-अपने मनपसंद पानी के खेलों का मनोरंजन प्राप्त कर सकें। यहां किश्तियों की दौड़ की भी व्यवस्था होनी थी। इस क्षेत्र की वन्य-छटा में निखार लाने के लिए कुछ पुराने ऊबड़-खाबड़ जंगलों को काट कर संतरी की तरह सीधे खड़े होने वाले पेड़ लगाए जाने थे। फूलों की एक घाटी विकसित की जानी थी जो मुगल गार्डन और शालीमार गार्डन को भी मात करे।

सैलानियों को यहां किसी किस्म की असुविधा न हो, इसलिए यहां पांच सितारा होटलों, आरामदेह बंगलों और कुटीरों का निर्माण भी होना था। भारतीय संस्कृति से सीधे सम्पर्क करने के इच्छुक विदेशी पर्यटकों के लिए यहां कुछ प्राचीन आश्रमों जैसे स्थान भी बनाए जाने थे। पर्यटकों की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यहां तरह-तरह के उद्योगों की स्थापना की भी व्यवस्था थी। आशय यह था यहां आकर ठहरने वाले सैलानियों को किसी भी चीज के लिए बाहर की सप्लाई पर निर्भर न करना पड़े। यहां के मीठे जल और शुद्ध मिट्टी की पहचान करके एक उद्योगपति ने यहां बढ़िया शराब बनाने का कारखाना खोलने की अनुमति भी प्राप्त कर ली थी। स्कॉटलैंड की मिट्टी और पानी का परीक्षण करने के बाद वह इस नतीजे पर पहुंचा था कि यहां बनी शराब में वह स्वाद हो सकता है जो असली स्कॉच व्हिस्की में होता है।

दिल्ली, बंबई, कलकत्ता आदि बड़े शहरों में उद्योगपतियों और भवन-निर्माताओं में ड्रीमलैंड का अधिक से अधिक हिस्सा हथियाने की होड़ शुरू हो गई थी। प्रदेश के धनपतियों और राजनेताओं को यह चिंता होने लगी थी कि ड्रीमलैंड बाहर के लोगों के कब्जे में आ जाएगा और उन्हें इसमें हिस्सा नहीं मिलेगा। वे सरकार पर जोर डाल रहे थे कि ड्रीमलैंड में प्रदेश का कोटा निश्चित किया जाए। कुछ लोगों ने इस योजना की पहली भनक मिलते ही इस क्षेत्र में जगह खरीदकर आलीशान मकान, दुकानें आदि बनवानी शुरू कर दी थीं। एक राजनेता ने बढ़िया स्थान पर एक पांच सितारा होटल बना लिया था। एक अन्य ने पचास मारुति गाडियां खरीद कर टैक्सी-सेवा शुरू कर दी थी।

परमाणु बमों, हाइड्रोजन बमों और टेक्नोलाजी के आतंक से पीड़ित लोगों को मानसिक शांति उपलब्ध कराने के लिए एक विश्व-प्रसिद्ध योगी को यहां ध्यान केन्द्र और योगा केन्द्र खोलने की अनुमति मिल गई थी। उसने नियत स्थान पर आध्यात्मिक विश्वविद्यालय का निर्माण करना शुरू कर दिया था। तीस एकड़ का क्षेत्र एक आदर्श विश्व शिक्षा केन्द्र के लिए निश्चित किया गया था जहां ऐसा पब्लिक स्कूल बनना था जिस में इंग्लैंड, अमरीका और कनाडा की सारी शिक्षा-सुविधाएं उपलब्ध हों और जहां केवल विदेशी अध्यापिकाएं ही बच्चों को पढ़ाने का काम करें। यह विद्यालय मुख्य रूप से विदेशों में रह रहे भारतीयों के बच्चों के लिए था। इन विदेश स्थित भारतीयों के मन में अपनी संस्कृति से कट जाने का जो डर था उसके निवारण के लिए यह व्यवस्था की जा रही थी। उनके बच्चों को भारतीय संस्कृति मिले और उनकी अस्मिता खत्म न हो जाए, इस उद्देश्य से बनने वाले इस स्कूल के लिए धन की सारी व्यवस्था भी विदेशों में बसे कुछ भारतीय करने को तैयार थे। किंतु इस आदर्श शिक्षण संस्था का लाभ देश के लोगों को भी मिले इसलिए यहां देश-वासियों के लिए भी कोटा निश्चित किया गया था।

मंत्रिमंडल की एक बैठक में जब इस योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की गई तो मुरली ने छूटते ही कहा था: "यह योजना कुछ सिरफिरे लोगों की है। ये लोग भारत में दून संस्कृति के कुछ द्वीप बनाना चाहते हैं ताकि सारा देश कुछ मुट्ठी भर लोगों का गुलाम बना रहे। ये लोग कीचड़ में कमल उगाकर उसमें अपनी विष्णु-शैया बनाना चाहते हैं। इस देश में यह नहीं चलेगा।"

मुरली की तीव्र प्रतिक्रिया देखकर मुख्यमंत्री ने उस प्रस्ताव पर विशेष जोर नहीं दिया था। इतना ही कहा था: "इस योजना को केन्द्र के कई नेताओं का समर्थन प्राप्त है। लेकिन मैं समझता हूं इसमें बहुत सोच-विचार की जरूरत है। अभी इसमें जल्दी करने की जरूरत नहीं है।"

मुरली के त्यागपत्र के बाद इस योजना को मंत्रिमंडल की मंजूरी मिल गई। तर्क यह था कि इसमें सारी पूंजी बाहर से आएगी और हिमाचल प्रदेश को इससे आर्थिक लाभ होगा।

केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति पहले ही मिल चुकी थी। प्रदेश सरकार की हरी झंडी मिल जाने के बाद ड्रीमलैंड का काम बड़ी तेज रफ्तार से आगे बढ़ने लगा। पूरे हिमाचल प्रदेश में जितना लोहा-सीमेंट लगता था उससे दुगुना इस योजना के लिए मिल गया। रातों-रात गगनचुंबी इमारतें खड़ी कर देने में माहिर भवन निर्माता उत्साह से काम करने लगे। सरकारी विभागों को निर्देश दिए गए थे कि ड्रीमलैंड से संबंधित किसी भी कागज को निपटाने में देरी न हो। इसे प्राथमिकता के आधार पर तुरंत निपटाया जाए। सारे रुटीन तोड़कर यह काम किया जाए। इंजीनियरों, ठेकेदारों की लाटरी खुल गई थी। आस-पास के गांवों के लोगों को अच्छी मजदूरी का काम मिल गया। जिन लोगों को खेतों में काम करके सिर्फ साल भर के लिए अनाज हासिल होता था, वह भी मुश्किल से, उनके लिए ड्रीमलैंड वरदान बन गया। सुबह-शाम मजदूरी करके वे अतिरिक्त नकद पैसा कमा सकते थे।

ड्रीमलैंड की चपेट में जो गाँव आते थे वहां के लोगों में अलग-अलग प्रतिक्रियाएं थी। कुछ लोग जमीनों का अच्छा मुआवजा मिलने की खुशी में खुश थे। जिन लोगों के कोई रिश्तेदार दिल्ली जैसे बड़े शहरों में रहते थे, उन्हें यह उम्मीद थी कि जिस तरह इन शहरों के आस-पास रहनेवाले किसान रातों-रात लखपति-करोड़पति बन गए, उसी तरह वे भी बनने वाले हैं। लेकिन अधिकांश गरीब लोगों को जिनके पास लंबी-चौड़ी जमीन नही थी, अपने पुरखों की धरती से अलग होने के चिंता सता रही थी।

रूपादेवी की सभाओ में अब चर्चा का सबसे बड़ा मसला यही था। जिन गावो में पिछले दिनो लोक समितियों के प्रयास से कई अच्छे काम हुए थे, वे ड्रीमलैंड बनने का मुखर विरोध करने लगे थे। रूपादेवी के नेतृत्व में महिलाओं, पुरुषों की जगह-जगह रैलियां हो रही थी। प्रदेश की राजधानी में दो बार प्रदर्शन हो चुके थे। मुख्यमंत्री जी ने आश्वासन दिया था कि जो लोग विस्थापित होंगे उन्हें बसाने और उनके लिए रोजगार मुहैया करने की सारी जिम्मेदार सरकार लेगी। लोगों को इससे संतोष नहीं था और वे धरने, प्रदर्शन, सत्याग्रह, रैलियों आदि के रास्ते अपना विरोध जता रहे थे।

उधर सरकार ने इसे प्रतिष्ठा का विषय बना लिया था। निकट भविष्य में चुनावों को ध्यान में रखते हुए वह इस काम को जल्दी से जल्दी पूरा कर लेना चाहती थी। सरकार द्वारा किए जा रहे चुनावी वायदों में हिमाचल को देश का सर्वश्रेष्ठ पर्यटन केन्द्र बनाना भी शामिल था। यह वायदा सिर्फ शासक पक्ष का नहीं, विपक्ष के मुख्य दलों का भी था। हिमाचल प्रदेश को सपनों का देश बनाने के लिए विपक्ष, पक्ष से ज्यादा उत्साह दिखा रहा था।

अक्तूबर के मध्य में जब लोकसभा भंग करने और आम चुनाव कराने की घोषणा हुई, तब तक ड्रीमलैंड के निर्माण का काम तेजी से होने लगा था। ड्रीमलैंड के पूरे क्षेत्र की कंटीले तारों से हदबंदी कर दी गई थी, हालांकि वहां की आबादी कुछ लोगों को छोड़कर, अभी अपने-अपने घरों में थी। सरकार उन्हें समझाने-बुझाने और लोभ-लालच से फुसलाने में लगी थी। इसके साथ सड़कें बनाने, बिल्डिंगें बांधने, पांच सितारा होटल और क्लब बनाने का काम तेजी से चल रहा था। ड्रीमलैंड की पूरी परिधि में कंटीले तारों की अस्थायी व्यवस्था की जगह एक सुंदर मजबूत दीवार बनने वाली थी जिसमें कुछ-कुछ दूरी पर मुख्य द्वार बनने थे। ये द्वार ड्रीमलैंड का मुख्य आकर्षण होंगे क्योंकि यहां संगमरमर के बड़े-बड़े पट्टों पर वेद-पुराण, कुरान, बाइबिल, गुरुग्रंथ साहब और अन्य धर्मों के उपदेश जो धर्मनिरपेक्ष, सामासिक संस्कृति को सुदृढ़ करने वाले हों, लिखे जाएंगे। इन्हें हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी में भी लिखा जाएगा ताकि विदेशी आगंतुक भारतीय संस्कृति की शानदार विरासत से परिचित हो सकें। ड्रीमलैंड के स्वप्नदर्शियों को उम्मीद थी कि यह दीवार भी चीन की दीवार की तरह विश्व की अद्भुत वस्तुओं में गिनी जाएगी।

चुनाव की घोषणा ने देश में एक उन्माद की स्थिति पैदा कर दी थी। बोफोर्स और पनडुब्बियों के घोटालों में घिरी राजीव गांधी की सरकार की छवि एकदम खराब हो गई थी। विपक्ष के सभी दलों ने जैसे-तैसे जनता दल के नाम से एक मध्यमार्गी पार्टी बना डाली थी और धुर दक्षिणपंथी तथा धुरवामपंथी साथ-साथ खड़े होकर चुनाव की पूरी तैयारी कर रहे थे। कांग्रेस के उम्मीदवार के खिलाफ विपक्ष का एक ही उम्मीदवार खड़ा हो, तिकोने संघर्ष न हों, इस बात के लिए जी-तोड़ कोशिश जारी थीं। मध्यवर्गीय जातियों के जिन बुद्धिजीवियों और पत्रकारों ने पांच साल पहले राजीव गांधी को सपनों का राजकुमार बना कर पलकों पर बिठा लिया था, वे विश्वनाथ प्रताप सिंह को नया राजकुमार बना कर जनता के सामने पेश कर रहे थे और उनके रास्ते में आने वाले तमाम दूसरे व्यक्तियों के चेहरे अपनी कलम की स्याही से पोतने लगे थे। वे अपनी नैतिक शक्ति से, अपनी ब्रह्म शक्ति से साग-बाघ और बकरी को एक टोकरी में रख कर नदी पार कराने और त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग पहुंचाने का हौसला व्यक्त कर रहे थे। चुनाव के अखाड़े में कदम रखने के डर से जिनके अंत:वस्त्र भीग जाते थे और जो बिना चुनाव लड़े पिछले दरवाजे से उच्च सदन में प्रवेश पाने के लिए तरह-तरह की जुगत भिड़ाते रहते थे, वे पुराने पहलवानों को अपना पट्ठा बनाकर जनता के सामने पेश कर रहे थे। वे देश को एक नए स्वर्ग की ओर धकेलने के उद्देश्य से लोगों के दिमाग धोने की अपनी पूरी शक्ति का इस्तेमाल कर रहे थे।

वही गैर-कांग्रेसवाद जिस के प्रणेता को ये बुद्धिजीवी पिछले तीस सालों से असंख्य गालियां दे चुके थे, अब इन लोगों के लिए अचूक मंत्र बन गया था हालांकि गैर-कांग्रेसवाद के पीछे जो विचार था उसे न तो वे समझते थे और न मानते थे। वोटों के घटा-जोड़ का मोटा सा हिसाब ही उनकी समझ में आता था। इसके लिए विचारों की जो उदारता, सहिष्णुता और नम्यता आवश्यक थी उसके वे सख्त खिलाफ थे। अपने जातिगत और वर्गगत पूर्वाग्रहों से बाहर निकलने को वे तैयार नहीं थे और इसलिए वे मानते थे कि समाज की नैतिकता बनाए रखने का भार उनके कंधों पर है और जो उनकी बात नहीं मानेंगे उन्हें वे काला मुंह करके राजनीति से बाहर खदेड़ देंगे। यह एक नई किस्म का आंतकवाद था, जो गोलियों का इस्तेमाल करने के स्थान पर कलम का इस्तेमाल कर रहा था। यह बौद्धिक और नैतिक आंतकवाद था।

और इस आंतकवाद को जो चला रहे थे वे कभी अपने को गांधी, विनोबा और जयप्रकाश की विरासत का बोझ उठानेवाले कह रहे थे और कभी चाणक्य की भूमिका अदा करते हुए किसी चंद्रगुप्त को मोहरा बना कर अपने जातीय दंभ का प्रतिशोध कर रहे थे। किंतु वास्तव में वे व्यापारी कंपनियों की लड़ाई को नैतिक मुखौटा पहन कर लड़ रहे थे।

आम जनता में चुनावों को लेकर जो उत्साह उमड़ा था उसमें हवाई नैतिकता नहीं थी जिसका प्रचार पत्रकार और बुद्धिजीवी कर रहे थे। वह वंशवादी शासन को खत्म करने के साथ सदियों से चले आ रहे कुछ जातियों के कुलीनतंत्र को तोड़ने के लिए भी व्याकुल थी। विशेषकर वह जनता जिसे जाति-व्यवस्था के कारण हमेशा सत्ता से दूर रखा गया था, अब पूरे जोश के साथ सत्ता पर कब्जा करने को अग्रसर थी। विशिष्ट वर्गों के पत्रकारों और बुद्धिजीवियों के लिए जनता की इस आकांक्षा को समझना आसान नहीं था। वस्तुतः यह चुनाव सवर्ण जातियों, पिछड़ी जातियों और दलित जातियों के बीच सत्ता की होड़ का प्रतीक था। चूंकि इस होड़ के लिए बंशवादी कांग्रेस शासन को खत्म करना पहली शर्त थी इसलिए कांग्रेस के विरुद्ध परस्पर होड़ करनेवाले समूह भी एकजुट थे और ऐसा लग रहा था कि जनता बुद्धिजीवियों द्वारा प्रचारित मूल्याश्रित राजनीति की ओर आकृष्ट हो रही है।

लोकसभा के चुनावों के जो परिणाम आए उन्होंने एक अजीब तस्वीर पेश की। कांग्रेस उत्तर भारत से उखड़ गई लेकिन दक्षिण भारत में जहां मूल्याश्रित राजनीति का प्रचार करनेवाले अखबार सबसे ज्यादा छपते और बिकते थे, वहां कांग्रेस ने विपक्षी दलों को ध्वस्त कर दिया। उत्तर, मध्य, पश्चिम और पूर्व भारत में सत्ता का बटवारा सवर्ण जातियों, मध्यवर्ती पिछड़ी जातियों और वामपंथी क्षेत्रीय दलों में हुआ। केन्द्रीय सत्ता मध्यवर्ती जातियों के कब्जे में आई और वामपंथी तथा दक्षिणपंथी पार्टियों को उसे बाहर से समर्थन देना पड़ा। पत्रकारों को गलतफहमी हो गई कि उन्होंने ही कांग्रेस को विस्थापित करके नई सरकार को बनाया है, इसलिए वे नई सरकार पर हुक्म चलाने लगे। उन्होंने अपनी पसंद के नेता को जिसे उन्होंने नवीन नंबर दो बनाकर पेश किया था, प्रधानमंत्री बनाने के लिए एक कुत्सित षडयंत्र का भी समर्थन किया। एक प्रतिस्पर्धी नेता को हटाने के लिए जो घटिया नाटक खेला गया उसे भी इन

पत्रकारों ने नैतिकता की कसौटी पर खरा पाया। इसके बाद दूसरे प्रतिस्पर्धी नेता को, जिसके कंधे पर बंदूक रखकर पहले प्रतिस्पर्धी को निशाना बनाया गया था, खलनायक बनाने का अभियान छेड़ दिया गया। राजनीति का एक नया दौर शुरू हुआ जिसमें देश के भविष्य को संसद में नहीं, समाचारपत्रों के दफ्तरों में तय किया जाने लगा। संकल्पहीन नेतृत्व ने संकल्प के अपने अधिकार कुछ पत्रकारों और बुद्धिजीवियों को सौंप दिए। राज्य शक्ति का संचालन करनेवाली एक नई पादरी-पुरोहित शक्ति का उदय हुआ।

देशव्यापी राजनैतिक परिवर्तनों का प्रभाव हिमाचल की प्रादेशिक राजनीति पर पड़ना भी स्वाभाविक था। सांतो देवी को छोड़कर जो जनता दल के टिकट पर चुनाव लड़ी थीं, बाकी सभी लोकसभा सीटें भारतीय जनता पार्टी को मिलीं। प्रादेशिक सत्ता का फैसला तो निकट भविष्य में विधानसभा चुनावों में होने वाला था किंतु मुख्यमंत्री राजकुमार वीरदमन की क्षमता पर बड़ा सवालिया निशान लग गया था। उसे मुरली और रमादेवी दोनों का अभाव बुरी तरह खटकने लगा था। उन्होंने सुलह के इरादे से मुरली से संपर्क स्थापित करने कर प्रयास किया किंतु मुरली राजनीति से बिल्कुल विरक्त था और इस विषय पर कोई बात करने को तैयार नहीं था।

रमादेवी और किरण के साथ दिल्ली से लौटने के बाद मुरली ने गदियारी में ही रहने का निश्चय किया था। रमादेवी के घर को ठीक-ठाक करके उसमें एक कमरा जोड़ा गया था। अपने भाई के घर को भी उसने ठीक-ठाक करके अपने लिए दो कमरे जोड़े थे। उसका अधिकांश समय अब रमादेवी की सेवा-टहल में बीतता जिसमें नीलू भाभी का भी विशेष योगदान रहता। मुरली रमादेवी को नई-नई पुस्तकें और पत्रिकाएं पढ़ कर सुनाता और दोनों के बीच वर्तमान राजनीति तथा अन्य विषयों पर चर्चा चलती रहती।

रमादेवी के स्वास्थ्य में कोई विशेष सुधार तो नहीं था लेकिन वे प्रसन्नचित रहने लगी थीं। नवीं लोकसभा का सदस्य बनने के बाद सांतो की व्यस्तता बढ़ गई थी। उसे उपमंत्री बना दिया गया था क्योंकि हिमाचल प्रदेश से जनता दल की वह एकमात्र प्रतिनिधि थी। जब कभी नीलू भाभी को खेत के कामों से फुर्सत होती या सांतो घर आती तो मुरली को घूमने-फिरने का समय मिल जाता था और तब वह रूपादेवी के लोक समितियों के आंदोलन में यथाशक्ति हाथ बटाता था। इस काम में उसे गांव-गांव जाकर छोटी-छोटी सभाओं में बोलना पड़ता था। ड्रीमलैंड के संबंध में लोग मुरली के विचारों से भली-भांति परिचित थे। 'अमर संदेश' के माध्यम से भी ड्रीमलैंड के खिलाफ जोरदार प्रचार किया जा रहा था। मुरली के विचारों को सुनने के लिए लोग बड़े उत्साह से उनकी सभाओं की प्रतीक्षा करते थे।

कुछ लोगों का विचार था केन्द्र में जनता दल की सरकार बन जाने के बाद ड्रीमलैंड की योजना खटाई में पड़ जाएगी। मुरली की राय इसके विपरीत थी। उसका कहना था कि जनता दल सरकार में भी जो तत्व प्रबल हैं वे भी खास और आम जनता के लिए अलग-अलग प्रकार की व्यवस्था बनाने के पक्ष में हैं अत: गरीबी के महामरूस्थल के बीच अमीरी का नखलिस्तान बनाने में उन्हें कोई परेशानी नहीं होगी। इसके विरुद्ध जनता द्वारा संघर्ष चलाए जाने के सिवा कोई

चारा नहीं है और संघर्ष का एकमात्र रास्ता है लोक समितियों का जिसका नेतृत्व रूपादेवी कर रही हैं।

किरण के चौदहवें जन्म दिन पर सभी सगे-संबंधियों और मिलने-जुलने वालों का बुलाने का फैसला स्वयं रमादेवी ने किया था। एक तरह से यह रमा की जिद्द थी। जन्म दिन के अवसर पर इस तरह का तामझाम पहले कभी नहीं किया गया था। लेकिन रमा की इच्छा थी, इसलिए मुरली को दौड़-भाग करके दो तीन दिन में ही सारी व्यवस्था करनी पड़ी।

दिवाकर और रूपा पिछली शाम को ही पहुँच गये थे। सांतों अपने दो महीने के बेटे बबलू के साथ आजकल गांव में ही थी। रवि और रजनी को बुलाने के लिए आदमी भेजा गया था लेकिन अभी तक वे पहुंचे नहीं थे। गाँव के सभी टोलों को न्यौता गया था। दोपहर के समय प्रीतिभोज की व्यवस्था की गई थी और सुबह से ही उसकी तैयारी होने लगी थी।

डॉ. कृष्णकुमार ने रमा देवी को छः महीने की प्लानिंग का जो समय दिया था उसे बीते पांच महीने होने वाले थे। दिल्ली से लौटने के बाद रमादेवी ने अपने को ऐसे कामों में व्यस्त कर लिया था जिनमें शारीरिक श्रम की अधिक आवश्यकता नहीं थी। अपने पति के पुस्तक संग्रहालय के लिए उन्होंने कांच के शीशों वाली आठ आलमारियां खरीदी थीं। एक-एक पुस्तक को झाड़-पोंछ कर इन अलमारियों में सजाने का काम स्वयं रमा ने किया था। इसके अतिरिक्त पति की हाथ से लिखी कुछ पांडुलिपियां थीं, उन्हें सुरक्षित करने का काम भी उन्हें स्वयं ही करना पड़ा। मुरली इस काम में उनका बीच-बीच में हाथ बंटाता रहा। किरण मां को यह काम करने से रोकती थी। लेकिन रमा का कहना था कि इस काम में ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती। रमादेवी की दूसरी व्यस्तता थी घर के साथ लगी हुई क्यारी में फूलों और साग-सब्जियों को उगाना। किताबों की झाड़पोंछ से थक जाती तो खुरपी हाथ में लेकर क्यारी में पहुँच जाती। वह क्यारी के एक-एक पौधे को पहचानती थी। किस पौधे में निखार आया, किसमें फूल-पत्तियां निकलीं, किसने कुम्हलाना शुरू किया, इसका वह बड़ी बारीकी से अध्ययन करती थी। वक्त पर पानी-खाद देना, खरपतवार को निकालना, कोई पौधा सूख रहा है तो उसके कारणों का पता लगा कर उसका उपचार करना, इस काम में रमा देवी गहरी रुचि लेने लगीं। कुछ नागफनी और सरू जाति के पौधे शहर की नर्सरी से मंगा कर लगाए गए थे।

टिकली की तीसरी पीढ़ी की कटियां पारो को रमा ने रूपा से मांग लिया था। लेकिन यह कटिया भी नीलू भाभी के ही जिम्मे छोड़ दी गई थी। टिकली की दूसरी बेटी चिंदली के अचानक मर जाने के बाद नीलू बहुत उदास रहने लगी थी तो रमा पारो को उसके घर छोड़ आई थी और मजाक में कहा, "यह तुम्हारी दूसरी बेटी है। नाम इसका भी पारो ही है।" पारो को आटा, चावल का पानी वगैरह देना और खुद सामने बैठ कर उसे पीता देखना भी रमा को बहुत अच्छा लगता। नीलू ने कई बार कहा कि परात उठाकर इतनी दूर न आया करें लेकिन रमा को इस

काम में जरा भी कष्ट नहीं होता था। फिर भी किरण के कहने पर नीलू भाभी पारो को उनके आंगन में ही बांधने लगी थी।

रमा देवी काम करते-करते थक जातीं तो बरामदे में कुर्सी डालकर आस-पास के पेड़ों पर पंछियों की चहचाहट में डूब जातीं। घर के आंगन में उड़ने-फुदकने वाली चिड़ियों और पहाड़ी मैनाओं को तो जैसे रमादेवी अलग-अलग पहचान सकती थी। एक चिड़िया, जिसकी एक टांग न जाने कैसे सूख गई थी, रोज़ कपड़े सुखाने की रस्सी पर आकर बैठती थी। आंगन के कोने में रखे, कटोरे से पानी पीने के लिए जब कई चिड़ियां वहां आतीं तो यह लंगड़ी चिड़िया दूर से उन्हें देखती रहती। चिड़ियों के उड़ जाने के बाद ही वह कटोरे के पास आकर पानी पीती। पहाड़ी मैनाओं में एक मां के साथ दो बेटियां भी आती थीं। ये दोनों नन्हीं मैनाएं अपनी मां के आस-पास ही रहती थीं।

अपने आस-पास के जीव जंतु संसार की हर नई घटना, हर नया परिवर्तन रमा देवी मे कुतूहल और आश्चर्य की भावना भर देता। किसी फूल के पौधे में नई कली खिलती तो रमा को जैसे कोई दुर्लभ चीज़ मिल जाती। गुड़हल के लाल फूल एक दिन पूरी चटक के साथ खिलते लेकिन दूसरे दिन उनकी पंखुड़ियां सिकुड़ने लगतीं फिर तीन चार दिन बाद वे टूटकर नीचे गिर पड़ते। चम्पा की डाल एक बार फूलों से लद जाती तो कई दिनों तक उनकी ताज़गी बनी रहती। मालती तो एक दिन खिलती और दूसरे दिन उसके नीचे फूलों की दरी बिछ जाती। गेंदे के आठ-दस पौधे साथ-साथ थे। उन पर एक साथ फूल खिले तो सारी बगिया में रौनक आ गई।

आने-जाने वालों के मन उन फूलों को देखकर ललचाने लगते थे। एक दिन रमा ने देखा कोई सारे फूल तोड़ कर ले गया है। उस दिन वह उदास रही। दो दिन बाद फिर उनपर फूल आए तो वह खुश हो गई। लेकिन अगले दिन देखा उन्हें फिर कोई तोड़कर ले गया है। परेशान हो कर रमा ने पहरा देना शुरू किया तो पता चला कि पास-पड़ौस की लड़कियां गौरी पूजा के लिए सुबह तड़के फूल चुनने निकलती हैं, उन्हीं का काम है। रमा को अपना बचपन याद आ गया कि किस तरह गौरी पूजा के दिनों में वह पास-पड़ौस की बगीचियों से फूल चुनने अपनी सहेलियों के साथ जाया करती थी। उसने लड़कियों को बुला कर कहा कि इस बार शंकर गौरी के ब्याह की सारी व्यवस्था मैं करूंगी। अगले पांच छः दिन रमा देवी ने शंकर गौरी के ब्याह की तैयारी में लगाए। रोज सुबह लड़कियां फूलों की टोकरियां भर कर उनके घर में बनी गौरी शंकर की मिट्टी की मूर्तियों पर फूल चढ़ाने आतीं तो रमा उनके साथ गाने लगती—

"फुल्लां छुंगी मैं जे आई, मैं जे आई
दित्तिया परौली घुआड़ माए
बाड़िया फुल्ल गुलाबां दे......

रमा देवी लड़कियों के इस खेल में इतनी डूब गई कि कन्या दान के समय उसकी हिचकी बंध गई। उसे लगा कि वह अपनी बेटी किरण को विदा कर रही है।

एक दिन देखा कि सरू का पेड़ जो काफी बड़ा हो गया था, अचानक मुरझाने लगा है। धीरे-धीरे उसकी डिजाइनदार पत्तियां सूखकर नीचे गिरने लगीं। रमादेवी को उस पौधे के

सूखने का बहुत दुःख हुआ। उस रात उन्हें नींद भी नहीं आई। बार-बार उनका ध्यान उस पौधे की ओर जाता था। अगले दो तीन दिनों में उसकी डालें सूख गईं। रमादेवी ने खुरपी लेकर उसके आस-पास की मिट्टी खोदी। मिट्टी के अंदर खाद में लिपटे केंचुओं के गुच्छों को देखकर उन्हें बहुत हैरानी हुई। क्या इन केंचुओं की वजह से पौधा सूख रहा है? उन्होंने सारी मिट्टी निकाल कर दूर फेंक दी और खेत की ताजा मिट्टी वहां भर दी। धीरे-धीरे पौधा फिर हरियाली पकड़ने लगा। रमा को इससे बहुत प्रसन्नता हुई।

सुबह से ही घर में चहल-पहल थी। आंगन के एक कोने में छप्पर डाल कर बड़ी-बड़ी देगचियों और चरोंटयो में खाना बन रहा था। खाने में क्या-क्या बनेगा, इसका फैसला खुद रमादेवी ने मुरली से सलाह मशविरा करके किया था। उड़द, चने और मूंग की दालें पालक का साग, दमगोभी, मुकुंदबड़ी, सेवियों की कढ़ी और चने का खट्टा। तीन तरह के पुलाव। किरण ने सुझाव दिया था कि मां को राई के छोंक वाला रायता बहुत अच्छा लगता है, तो उसे भी शामिल कर लिया था। रमा इस पर धीरे से मुस्करा दी थी। मुरली जानता था कि रमा को खाने में खट्टा-मीठा-तीखा किसी भी तरह का स्वाद नहीं आता था। फिर भी किरण का मन रखने के लिए उसकी बनाई हुई हर चीज को बड़े स्वाद के साथ खाती थी और स्वाद की तारीफ भी करती थी।

पिछले दिन ही रमादेवी ने गांव की अपनी सहेलियों को गाने के लिए निमंत्रण भेज दिया था। गानेवालियों में गांव के सभी बूढ़ी-जवान औरतें और लड़कियां आईं थीं। उनको भीगे चने और गुड़ बांटने का काम किरण के जिम्मे था और मुकुल की बहन पारो उसमें हाथ बंटा रही थी। रति, सुरमा, मंगला और किरनी भी औरतों के समूह में एक तरफ बैठी थीं। रमा उनके पास आकर बैठीं और बोलीं, "इन चुनावों में जो कुछ हुआ उस पर बहुत मत सोचो। यह तो एक हवा थी। आने वाले सालों में तुम्हें बहुत काम करना है। उसकी तैयारी करो।"

विधान सभा के चुनावों में रमा की ये चारों सहेलियां जो कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ी थीं, हार गई थीं। भारतीय जनता पार्टी को मिले भारी बहुमत ने हरिजन बस्तियों में एक गहरी उदासी भर दी थी। उनके मन में भय भी बढ़ने लगा था। रमा और मुरली ने जो इन चुनावों से बिल्कुल अलग-थलग रहे थे इन्हें समझाने की कोशिश की थी कि डरने की कोई बात नहीं है। अब पहले जैसी बात नहीं रह गई है। कोई भी सरकार जो हरिजनों और कमजोर वर्गों पर अत्याचार को प्रोत्साहन देगी ज्यादा दिन नहीं टिकेगी।

औरतों के गीतों में अधिकतर भजन थे। उनमें अधिकतर फिल्मी तर्जों पर चले नये भजन थे। पुराने गीत गानेवाली अब गांव में कुछ ही औरतें थीं। इनमें रघू की पत्नी रेवती सब से आगे थी। लगता था उसे अपनी ददेस (सास की सास, दुर्गू की मौसी) की सारी कला विरासत में मिल गई थी। रमा के जोर डालने पर रेवती ने कौशल्या वियोग की वह बारहमाही गाई जो रमा को बहुत अच्छी लगती थी। बहुत मधुर स्वर में रेवती गाने लगी—

"चैत महीने जन्मे राम
हाथी ते घोड़े करावां मैं दान

गज मोतियां दे······ हाय रामा गज मोतियां दे
चौक पराऊं
सोने का कलश जड़ावां मैं आंगना······ बैरिनी······
फिट री तुम नार······ बैरिनी!
बन्ने बालक मेरो······ फिट री तुम नार !

रमा की आंखें भर आईं। उसने रेवती को खींच कर गले से लगा लिया।

मुकुल दो दिनों से जिद्द कर रहा था कि किरण के जन्म दिन की पार्टी में लड़कों की डांस पार्टी को भी बुलाया जाना चाहिए। मुरली का कहना था कि डांस के लिए कोई शराब पी कर आया तो कान पकड़कर निकाल दूंगा। मुकुल को यह शर्त मंजूर थी लेकिन शहनाई बजाने वाले शंभू और रतनू को शरब की एक बोतल तो देनी ही पड़ेगी। भले ही यहां शराब पीने की मनाही कर दी जाए।

मुकुल ने अपने सभी साथियों को बुलाया था। संयोग से दलवीर भी इन दिनों छुट्टी आया था। फिल्मी गानों पर लड़कों का नाच हर उत्सव का अंग बन चुका था। मुरली इसमें कुछ नहीं कर सकता था। रमा को बचपन का एक दृश्य याद आया। गद्दियों की शादी में शहनाई और नगाड़े पर उसने बीस-पच्चीस लोगों को घेरा बांध कर नाचते देखा था। गीत का एक ही बोल बार-बार गाया जा रहा था, "झांझर घट गई वो, घट गई भाई सनियार, झांझर घट गई..."

रमा ने रतनूं से पूछा कि उसे "झाझर घट गई" का गाना आता है। रतनूं ने कहा, "हाँ, लेकिन घर से नगाड़ा लाना पड़ेगा।" शंभू दौड़कर अपने घर से नगाड़ा ले आया। शंभू ने नगाड़ा संभाला और रतनूं ने शहनाई पर गाना बजाना शुरू किया। देखते ही देखते आंगन में लड़कों के साथ अधेड़ और बूढ़े भी नाचने लगे और भीतर बैठी औरतें "झांझर घट गई.." को झूमझूम कर गाने लगीं। करीब एक घंटे तक ऐसा समां बंधा कि रमा को लगा कि वह एक अजीब दुनिया में पहुँच गई है।

गाने-नाचने के कार्यक्रम के बाद मेहमानों को खाना परोसा गया। आंगन में दरियां बिछाकर एक साथ लगभग सौ व्यक्तियों को खाना खिलाया जा सकता था। तीन पैंठों में सब मेहमान खाना खा चुके तो रमा को अपूर्व तृप्ति का अहसास हुआ।

इस पूरे कार्यक्रम में तीन बज गए। गाव के लोग चले गए। अब घर के लोग ही रह गए। किरण अपनी सहेलियों के साथ गांव के पास लगा शीतला माता का मेला देखने चली गई। मुरली और सांतों को भी मेला देखने जाना था। तैयारी करने के लिए वह भी अपने घर गया।

रमा बहुत थक गई थी। सुबह से उन्होंने थोड़ी देर के लिए भी विश्राम नहीं किया था। उनके चेहरे को देखकर कोई भी बता सकता था कि वह कितनी थक गई हैं। वह बिस्तर पर तकिए का सहारा लेकर बैठ गईं। रूपा ने पास आकर कहा "दीदी, आज तो आप बहुत थक गईं। आप लेट जाओ, मैं आपके पैर दबाती हूँ।" रमा ने रूपा को पकड़ कर पास बिठाया और बोली— "भाभी, पैर तो मुझे तुम्हारे दबाने चाहिए। कितने दिनों से मन में लालसा थी कि कुछ

दिन तुम्हारे पास रहकर काम में हाथ बटाऊं। लेकिन क्या करूं यह मेरा शरीर अब साथ नहीं देता।"

रूपा ने रमा के दोनों हाथ अपनी गोद में रख लिए,-"दीदी आपने जो किया है उसे और कौन कर सकता था? आपने जो दीया जलाया है। हम तो उस में तेल डालने और उसे बुझने से बचाने का काम कर रही हैं।"

"और बत्ती बनकर खुद जल भी तो रही हो।"

"नहीं दीदी बत्ती का काम तो आपने ही किया है। देखो न क्या हालत बना ली अपनी।"

कहते-कहते रूपा की आंखों से बड़े-बड़े आंसू टपक कर रमा के हाथ पर आ गिरे। रमा ने अपने हाथों से उसके आंसुओं को पोंछते हुए कहा,– "भाभी, तुम नहीं जानतीं, तुम क्या हो और तुमने क्या किया है? मैं ज्यादा घूम फिर तो नहीं सकती लेकिन मैं लोगों की बातें सुनती हूं और लोग जो तुम्हारे बारे में कहते-सोचते हैं, उसे जानती हूं। तुमने तो लगता है गांव के लोगों पर जादू कर दिया है। मैं तो कभी सोच भी नहीं सकती थी कि गांव के लोग इस तरह अपने अधिकारों के लिए उठ खड़े होंगे और मोर्चा लेंगे। सुना है ड्रीमलैंड की स्कीम को पूरा करने के लिए नई सरकार भी बहुत उत्सुक है। सत्ता के नशे में वह कुछ भी कर सकती है। गांव वालों को वहां से निकालने के लिए वह लाठी-गोली का रास्ता अपनाने से भी नहीं हिचकेगी।"

"मुझे भी ऐसा ही लगता है दीदी। लेकिन लोग मरने के लिए तैयार हैं।"

"तभी तो कहती हूं कि तुमने जो काम किया वह एक अनूठी मिसाल है। अखबारों वाले तुम्हारे आंदोलन में महात्मा गांधी के आंदोलन की झलक देखने लगे हैं। कल मुरली देवर बता रहे थे कि नई सरकार के मंत्रिमंडल ने फैसला कर लिया है कि लोगों को घर खाली करके बाहर जाने के लिए दो महीने का नोटिस दिया जाएगा, उसके बाद सारे घरों पर बुलडोज़र चला दिया जाएगा।"

सोच में कुछ देर चुप रहने के बाद रूपा बोली–

"दीदी, यह सरकार कुछ भी कर सकती है। यह तमाम मस्जिदों को गिरा सकती है, मुसलमानों और हरिजनों का कत्लेआम कर सकती है। ड्रीमलैंड इसके लिए प्रतिष्ठा का सवाल है। कई मंत्रियों के यहां होटल और दुकानें बन रही हैं। मुख्यमंत्री ने पांच सितारा होटल बना रखा है। ड्रीमलैंड के लिए वे हजार-दो-हजार लोगों को गोलियों से भूनने से नहीं चूकेंगे। लोग इन बातों को समझते हैं। फिर भी उनका इरादा पक्का है, खासकर गरीब लोगों का। ये लोग अपने घरों और अपनी छोटी-छोटी जमीन-जायदाद के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने को तैयार हैं।"

रमा देवी ने रूपा को ध्यान से देखा। उसके चेहरे पर झुर्रियां आने लगी थीं। बाल आधे सफेद हो गए थे। लेकिन उसके चेहरे पर तेज था, उसकी आंखों में चमक थी।

रमा देवी ने थोड़ी देर के लिए आंखें मूंद लीं। फिर धीरे-धीरे टांगें पसार कर पलंग पर लेटते हुए बोली–

"किरण के पिता आज होते तो भाभी, तुम्हारे काम को देखकर उन्हें बहुत प्रसन्नता होती।"

किरण के पिता की याद ताजा होते ही दोनों की आंखें भर आईं। रूपा बोली,–"दीदी, उनकी जलाई हुई मशाल ही तो हम सबको रास्ता दिखा रही हैं।"

"भैया कहां हैं?" रमा ने अचानक प्रसग बदला।

"मास्टर जी के साथ गए थे...... वहीं होंगे।"

रमा मुरली के लिए मास्टर का संबोधन सुनकर हँस पड़ी।

"तुम्हारे लिए मुरली अब भी बंबई का मास्टर है?"

"आदत हो गई है दीदी। बंबई वाले दिन भूलते नहीं।"

"भैया अब कैसे हैं? उनका गुस्सा उतरा नहीं?"

"उनका गुस्सा तो उतर गया है कि लेकिन उनके बेटे की अकड़ ज्यों की त्यों है। देखा न! आदमी भेजने पर भी नहीं आया।"

"भाभी-इन बातों को भूल जाओ। मां-बाप का फर्ज होता है बच्चों को पढ़ाना-लिखाना और अपने पैरों पर खड़ा करना। तुम लोगों ने अपना फर्ज पूरा कर दिया। अब वह जैसे रहना चाहे, रहे। जिस माहौल में हम जी रहे हैं उसमें हम विदेशों के तौर-तरीके से बच नहीं सकते जहा शादी होन स पहले ही लड़के अलग घर बसा लेते है। यह ता शुक्र है कि लड़कियों पर उस संस्कृति का अभी ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ा है। हमें मन मार कर इन सब बातों को स्वीकार करना पड़ेगा।"

मुरली और दिवाकर के कमरे में आने से बातों मे व्यवधान पड़ा। मुरली यह कहने आया था कि सब लोग मेला देखने चलें। लेकिन रमादेवी ने साफ मना किया, बोलीं–

"मेरी तो हिम्मत नहीं है। बहुत थक गई हूं। तुम सब जाओ, मैं थोड़ी देर आराम करूंगी।"

रूपा ने कहा, "मैं भी दीदी के पास रहूँगी।"

"नहीं," रमा ने प्रतिवाद किया, "भाभी, तुम भी हो आओ। कई सालों से तुमने यह मेला नहीं देखा। आज आखिरी दिन है। सांतो भी जा रही है न?"

"हाँ सांतो भी जा रही है लेकिन वह कहती है कोई साथ होगा तो जाऊंगी।"

"फिर तो भाभी तुम्हें जाना ही पड़ेगा। घंटे-डेढ़ घंटे की तो बात है। मैं तब तक झपकी ले लेती हूं।"

अनचाहे भाव से रूपा को तैयार होना पड़ा। जाते-जाते रमा ने उसे बुला कर कहा–

"कुम्हारों की दुकानें लगती हैं वहां। दो मटके ले आना। एक छोटा और एक बड़ा।"

"मटकों का क्या करोगी दीदी?"

"पड़े रहेंगे। अगले साल गौरी शंकर का ब्याह होगा तो गांव की लड़कियों के काम आएंगे।"

मुरली ने लंबी सांस लेकर कहा—

"शुक्र है। मैं तो डर गया था कि आप जल्दी ही किरण के हाथ पीले करने की बात तो नहीं सोचने लगीं।"

रमा ने मुस्कराकर कहा—

"किरण की चिंता करने की मुझे क्या जरूरत है। उसकी चिंता तो अब मामा को करनी पड़ेगी.।"

दिवाकर बीच में बोला—

"मामा तो करेगा ही लेकिन चाचा को क्या सारी जिम्मेवारियों से बरी कर रही हो?"

मुस्करा कर रमा ने मुरली को देखा—

"चाचा भरोसे का आदमी नहीं है। वह अपनी जिम्मेवारी निभा ले वही काफी है।"

"क्या आप मुझे इतना ही गया-बीता समझती हैं?" मुरली ने पूछा।

"गए-बीते तो तुम नहीं हो, लेकिन घर-गृहस्थी की जिम्मेवारी, बच्चों की जिम्मेवारी तुम्हारे बस की नहीं है। कुछ पता है तुम्हारे अंदर बैठा विप्लवी कब जाग जाएगा? नहीं भैया, किरण की जिम्मेवारी तुम्हें और रूपा भाभी को ही लेनी पड़ेगी।"

रूपा, दिवाकर और मुरली के जाने के बाद रमा पलंग पर सीधे लेट गई। अपने दोनों हाथों को मिला कर गर्दन के नीचे रख लिया और आंखें मूंद करके नींद लेने की कोशिश करने लगी।

लेकिन रमा देवी की आंखों में नींद नहीं थी। एक असह्य पीड़ा उसकी चेतना पर हावी होती जा रही थी। पिछले कई दिनों से उसे पेट में बहुत तेज दर्द उठता था और बहुत शक्तिशाली पीड़ा-नाशक दवाओं के बल पर वह उसे झेलती रही थी। आज दिन में भी वह दो बार दवा ले चुकी थी। लेकिन उससे कोई विशेष फर्क नहीं पड़ा था। उसकी इच्छा हुई कि वह बिस्तर से उठकर अलमारी में रखी दवा की गोलियां खाले। लेकिन उसे लगा कि शरीर निढाल होता जा रहा है, उसमें बिस्तर से उठने की ताकत भी नहीं है। ऐसा लगा कि कोई उसके शरीर को गीले कपड़े की तरह निचोड़कर मारा रस निकाल रहा है और उसका शरीर रूई की तरह हलका हो रहा है जो कभी भी हवा में उड़ सकता है। उसकी इच्छा हुई कि कोई उसके शरीर को जोर-जोर से दबाए, या भारी वजन उसके ऊपर रखे। लेकिन वह अपनी स्थितियो के प्रति पूरी तरह सचेत थी। वह उस एहसास को अपनी चेतना पर हावी नहीं होने देना चाहती थी। यह जानते हुए कि घर में कोई नहीं है और आस-पास भी कोई नहीं है जिसे वह आवाज देकर बुला सकती है, अपने शरीर को हरकत में लाने के लिए उसे ही कुछ करना पड़ेगा। धीरे-धीरे वह अपने जिस्म के निचले भाग को बिस्तर से घसीट कर पलंग के नीचे ले आई। फर्श पर पैर पड़ने के बाद वह धीरे-धीरे खड़ी हुई। अपने हाथों और पैरों को एक दो बार झटकने के बाद उसे लगा कि जिस्म में जान लौट आई है। अलमारी के पास जा कर उसने दवा की दो गोलियां निकालीं और उन्हें पानी के साथ गले के नीचे उतार लिया। थोड़ी देर वह कमरे में खड़ी-खड़ी कुछ सोचती रही। उसके माथे से पसीने की धार टपकने लगी थी। कपड़े भी पसीने से भीग गए थे।

हिम्मत करके वह कमरे से बाहर आई। ताजी हवा का स्पर्श उसे अच्छा लगा। उसके पैर फूलों और साग-सब्जियों की क्यारी की तरफ मुड़ गए। गुड़हल के पेड़ में हरी पत्तियों और लालफूलों के बीच होड़ हो रही थी। चंपा की डालियों की सफेद फूलों की पंखड़ियां जैसे अपनी कोमल बाहें पसारे उसे अपने पास बुला रही थीं। सरू का पेड़ हरी पत्तियों को पाकर फिर इठलाता हुआ दीखने लगा था। सूरजमुखी के फूलों ने अपना मुँह पश्चिम की ओर मोड़ लिया था। गेंदे के पौधों ने लाल-पीले फूलों की छतरी तान रखी थी। लंगड़ी चिड़िया कटोरे के पास आकर पानी पीने लगी थी। हरे रंग की नन्हीं सी चिड़िया फुदक कर गुड़हल के फूलों का रस पी रही थी। तीन तितलियां एक दूसरे के पीछे भागती हुईं रमा के गिर्द चक्कर लगा रही थीं।

आंगन के दूसरे छोर पर बंधी पारो रंभाई। रमा को पारो की आवाज में हमेशा आदमी की आवाज सुनाई देती थी। वह रंभाती थी तो उसे लगता था कि वह बड़े रुआँसे स्वर में "मा" कह कर बुला रही है। रमा ने पारो की तरफ देखा तो पारो रस्सी तोड़कर उसके पास आने की कोशिश करने लगी। रमा ने कमरे में जाकर परात मे आटा लिया और उसमे गुड़-खली डालकर उसे पारो के पास ले आई। पारो अपनी नन्हीं कोमल जीभ से रमा के हाथों को चाटने लगी और फिर वह परात में रखे आटे-गुड़ को खाने लगी। रमा वहीं पारो के पास खड़ी-खड़ी उसे देखती रही। फिर अचानक धड़ाम से गिर पड़ी।

कुछ दूर जोर की चीख सुनाई दी "भाभी....."। रमा ने चीख सुनी। लेकिन न तो वह उठ पा रही थी और न उसके मुँह से आवाज निकल रही थी। नीलू दौड़ कर आई। उसने रमा का सिर अपनी हथेली पर टिकाकर, पूछा, "भाभी, क्या हुआ भाभी..... भाभी कुछ बोलो न.....।"

नीलू की आंखों से आंसू झरझर कर गिर रहे थे। रमा ने खाली-खाली नजरों से नीलू की तरफ देखा। पारो परात का आटा गुड़ खा चुकने के बाद रमा के चेहरे माथे को चाटने लगी थी। नीलू ने रमा को सहारा देकर खड़ा किया और फिर लगभग खींच कर उसे कमरे में ले आई। बिस्तर पर लिटाने क बाद नीलू ने रमा को पानी दिया। रमा ने दो घूंट पी लिए फिर गिलास हटा दिया।

"भाभी तुम ठहरो, मैं डाक्टर को बुला लाती हूँ," और नीलू हिचकियां भरती हुई पागलों की तरह दौड़ कर बाहर निकल गई। रमा ने उसे जाते देखा फिर उसकी नजरें छत पर गड़ गईं। उसे लगा छत घूम रही है, कमरा भी घूम रहा है और वह भी जैसे नदी के भंवर में डूबती जा रही है, किसी गहरे अंधकार में...

नीलू जब कमरे में डाक्टर के साथ आई तो देखा रमा की आंखें बंद हैं और होठों पर एक हल्की सी मुस्कान की रेखा उभर आई है, मानो वह गहरी नींद में कोई मीठा सपना देख रही हो।

डाक्टर ने उसकी कलाई उठा कर नब्ज देखी। फिर स्टेथेस्कोप से दिल की धड़कन को सुनना चाहा लेकिन धड़कन बंद हो चुकी थी। डाक्टर ने चादर से रमादेवी का मुँह ढक दिया। नीलू धाड़ मार कर रो पड़ी।

मुरली, दिबाकर, रूपा और किरण मेले से लौटे तो कमरा मरदों और औरतों से भरा हुआ

था। रूपा उस दृश्य को देखकर अपने को संभाल नहीं सकी। वह रमा से लिपट कर रोने लगी। किरण मां के सिरहाने खड़ी सुबक-सुबक कर रोने लगी। दिवाकर दो कोरे मटके हाथ में उठाए दरवाजे पर खड़ा था। उसे हतप्रभ देखकर मुरली ने कहा, "मटके बाहर रख दो। कल इनकी जरूरत पड़ेगी।"

अगले दिन रमादेवी के दाह-संस्कार में शामिल होने के लिए महाकाल के श्मशान में इतनी भीड़ जमा हुई जितनी कभी निर्जला एकादशी के मेले में भी लोगों ने वहां नहीं देखी थी। इस भीड़ में महिलाओं की संख्या सब से अधिक थी जो समाज की परंपरा तोड़ पहली बार श्मशान भूमि में आई थीं।

रमा देवी की लंबी बीमारी ने मुरली को एक तरह से निष्क्रिय कर दिया था। उनके निधन ने मुरली को जैसे चाबुक मार कर जगा दिया। कुछ दिन बहुत बेचैनी में बीते। किरण को दिवाकर और रूपा अपने साथ ले गए थे। सांतों बबलू को लेकर दिल्ली चली गई थी और उसके साथ नीलू भाभी को कुछ दिनों के लिए भेज दिया गया था।

प्रदेश सरकार ने ड्रीमलैंड के तीन सौ गांवों को दो महीने का नोटिस दे दिया था। ड्रीमलैंड के लोग अब भी सत्याग्रह के रास्ते से सरकार की योजना का विरोध कर रहे थे। रूपा के नेतृत्व में कई महिलाएं और पुरुष कई बार गिरफ्तारियां दे चुके थे। पुलिस उन्हें एक दिन पकड़कर दूसरे दिन छोड़ देती थी और लोग पुलिस की हिरासत से बाहर आकर फिर धरने पर बैठ जाते थे।

ड्रीमलैंड से बाहर के गांवों में इन सारी हरकतों को चूहे-बिल्ली के खेल की तरह लिया जा रहा था। लोगों के लिए यह आंदोलन मनोरंजन का विषय बना हुआ था। सरकार की तरफ से जोरदार प्रचार किया जा रहा था कि यह आंदोलन कुछ गुमराह लोगों का व्यर्थ प्रयास है। सरकार लोगों को प्रलोभन दिए जा रही थी और प्रचार कर रही थी कि ड्रीमलैंड बनने से हिमाचल प्रदेश विश्व का आकर्षण-केन्द्र बन जाएगा और यहां के लोगों को इससे अपार लाभ होगा।

मुरली ने निश्चय किया कि इस जुल्म के खिलाफ लोगों को तैयार करना है। सब से पहले 'अमर संदेश' के दफ्तर में जाकर उसने दिवाकर और स्टाफ के सब लोगों से सलाह मशविरा किया। योजना बनी की 'अमर संदेश' के अगले चार अंकों में ड्रीमलैंड के सवाल को जोरदार ढंग से उठाया जाए। चारों अंकों की सामग्री संकलित करने के लिए मुरली ने स्टाफ के संवाददाताओं को निर्देश दिए। एक पूरी सूची बनाई जाए जिसमें यह दिखाया गया हो कि किस मंत्री या पूंजीपति की ड्रीमलैंड में क्या सम्पत्ति है? न्यूगल और मंध खड्डों का पानी ड्रीमलैंड के लिए रुक जाने से किन-किन गांवों में पानी का अकाल पड़ेगा? तीन संवाददाताओं को ड्रीमलैंड के उत्तरी सिरे के आस-पास बसे गद्दियों के गांवों को कवर करने के लिए नियुक्त किया गया। धौलाधार की पूरी

पहाड़ी पर ड्रीमलैंड वालों का कब्जा हो जाने से उनकी भेड़-बकरियां कहां जाएगी? उनके घरों के लिए इंधन कहां से आएगा? संवाददाताओं से कहा गया कि वे गांव के स्त्री-पुरुषों के इंटरव्यू लें, उनके चित्र भी लें। उनके मन में क्या डर है, क्या शंकाएं हैं, इनका ब्यौरा इकट्ठा करें। वे सरकार के इस कदम का विरोध क्यों नहीं कर रहे हैं, यह जानने का प्रयत्न करें। ड्रीमलैंड के आस-पास बसे लगभग चार सौ गांवों और ड्रीमलैंड के अंदर बसे तीन सौ गांवों का सर्वेक्षण करने की पूरी योजना तैयार की गई और उस काम के लिए संवाददाता नियुक्त किए गए। यह भी तय हुआ कि इस काम में स्कूल-कालेज से निकले नौजवान लड़के-लड़कियों की मदद ली जाए और उन्हें उचित पारिश्रमिक देने की व्यवस्था की जाए।

सारी योजना बनाने के बाद मुरली कागज का एक रीम और बालपैनों का डिब्बा लेकर कमरे में बंद हो गया। दिवाकर से उसने कहा कि कोई मिलने आए तो मना कर दें।

पहला लेख उसने शुरू किया। शीर्षक दिया 'ड्रीमलैंड एक शैतानी योजना है'। इस लेख में कहा गया कि जिन लोगों ने योजना बनाई है उनके असली इरादे क्या हैं? मुरली ने बताया कि इस योजना को बनाने वाले विदेशों में रह रहे भारतीय हैं जिन्होंने गलत तरीके अपनाकर वहां अवैध धन जमा किया है। इनमें कई व्यापारी कंपनियों के ही अपने एजेंट हैं जो विदेशी मुद्रा की चोरी करने के लिए वहां नियुक्त किए गए हैं। माल की कीमत से कम मूल्य के बीजक पर निर्यात और माल की कीमत से कई गुणा ज्यादा मूल्य के बीजक पर आयात करके ये कंपनियां विदेशी मुद्रा की चोरी करती हैं और चोरी से कमाए हुए धन को स्विस बैंकों में जमा करती हैं। विदेशों में काम करने वाले इंजीनियर, डाक्टर और अन्य पेशेवर वर्गों के लोग भी अपनी बचतों को भारत भेजने के लिए हवाला कंपनियों की मदद लेते हैं जो एक तरह की तस्करी का ही धंधा है। कई राजनेताओं ने भी तस्कर एजेंटों के माध्यम से घूस में मिला अपना धन बाहर जमा कर रखा है। इस तरह तस्करी के धंधे से जो विशाल पूंजी विदेशों में जमा होती है उसे भारत में लाने के लिए भारत सरकार विदेश-स्थित भारतीयों को बड़ी-बड़ी रियायतें देती है। ड्रीमलैंड इन्हीं रियायतों का फल है। यह गंदे धन से बनने वाली गंदी योजना है जिससे देश में ऐय्याशी का एक द्वीप बनेगा और यहां की गरीब जनता छोटी-छोटी जरूरतों से भी महरूम रह जाएगी।

दूसरे लेख का शीर्षक मुरली ने रखा 'ड्रीमलैंड कमल संस्कृति का प्रतीक'। इस लेख में कहा गया कि दुनिया में हमेशा ही कुछ लोग कीचड़ में कमल उगाकर उसमें शेष-शैया बनाना चाहते हैं और लक्ष्मी का भोग करना चाहते हैं। उनके सपनों का वैकुंठ यही है कि उनके आस-पास कीचड़ का महासागर बना रहे और वे उससे निर्लिप्त रह कर सुख-भोग करते रहें। इन लोगों की तादाद कुल आबादी में एक डेढ़ प्रतिशत से ज्यादा नहीं होती लेकिन वे सारे समाज को अपनी मुट्ठी में कैद रखते हैं। यही कानून बनाते हैं, यही लागू करते हैं। इनके कानून उनके अपने हितों की रक्षा के लिए होते हैं और इनका उल्लंघन करने वालों को सख्त सजाएं देने का काम भी इन्हीं लोगों के हाथ में रहता है। यही सरकारें बनाते हैं, यही अदालतों में बैठकर फैसले करते हैं, यही अखबार चला कर दिन-रात साधारण जनता के दिमागों को धोने का काम करते हैं।" भूख, गरीबी और लाचारी के सताए लोग इनके ऐशो आराम में खलल न डालें इसके लिए

इन्होंने पुलिस और अर्ध सेनाएं बनाई हैं और उनके हाथ में लाठियां, बंदूकें देकर इस तरह तैयार किया है कि इशारा पाते ही यह खलल डालने वालों के सिर फोड़ दें या गोलियों से भून दें। इनके अखबार और प्रचार माध्यम जिस नैतिकता का उपदेश देते हैं, वह इन लोगों के हित और अहित से जुड़ी हुई है। वे प्रचार माध्यमों का शंख बजा कर अपनी इस नैतिकता का प्रचार करते हैं और कान में फूंक भर कर अफवाहें फैलातें हैं। उनके हाथ में सारे समाज के कार्य-कलापों का चक्र रहता है। विरोध करने वालों को डराने-धमकाने और मारने के लिए उनकी गदा हमेशा तैयार रहती है और बाहर से सुंदर सौम्य दीखने वाला कमल उनकी संस्कृति का प्रतीक होता है।

तीसरे लेख का शीर्षक था 'ड्रीमलैंड: इस समानांतर व्यवस्था को ध्वस्त करना होगा'। इस लेख में मुरली ने बताया कि किस तरह देश में आजादी के बाद राष्ट्र के भीतर एक लघु राष्ट्र बन गया है और उसने सारी सुविधाओं को अपने लिए हथिया लिया है।

इसमें कहा गया, समाज के एक छोटे से वर्ग ने जो हमेशा समाज पर शासन करता रहा, किस तरह अपने लिए एक अलग हिन्दुस्तान बना लिया है। उसने अपने बच्चों के लिए ऊंची किस्म के पब्लिक स्कूल बनाए हैं और आम जनता के लिए जो स्कूल बनाए हैं उनमें न सिर पर छत है और न नीचे बैठने के लिए टाट-पट्टियां। उनके अस्पताल अलग हैं जिनमें राजमहलों जैसे सुविधाएं है जबकि आम जनता के लिए बने अस्पतालों में न डाक्टर-नर्सें पर्याप्त संख्या में हैं, न दवाएं। साफ-सफाई की भी अच्छी व्यवस्था नहीं है।

आम जनता के सफर के लिए उन्होंने टूटी-फूटी बसें और छकड़ा गाड़ियां रखी हैं जिनमें आदमी तो क्या जानवर भी सफर करने से डरें। लेकिन अपने लिए उन्होंने तरह-तरह की आरामदेह कारें, एयरकंडीशन रेलगाड़ियां, हवाई जहाजों की भरपूर व्यवस्था की है। आम लोगों को झोंपड़ी बनाने के जगह नहीं मिलती लेकिन उनके अपने आराम के लिए लाखों एकड़ भूमि को रोंद कर उस पर पान्च सितारा होटल, विलास नगरियां, पिकनिक स्पॉट, खेल के मैदान बना दिए जाते हैं। इस छोटे से समूह ने हर क्षेत्र में आम जनता की कीमत पर अपने लिए स्वर्ग बना लिए हैं।

ड्रीमलैंड गैर बराबरी और भेदभाव को मजबूत करने वाला शैतान का स्वर्ग है। इसे ध्वस्त करना जरूरी है। इसके लिए आम जनता को एक निर्णायक लड़ाई के लिए तैयार होना पड़ेगा। यह लड़ाई हथियारों की लड़ाई नहीं होगी। यह वही लड़ाई होगी। जिसकी शिक्षा हमें आजादी के आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी ने दी थी। अहिंसात्मक लड़ाई का यह अंतिम चरण होगा। इसका नारा होगा 'करो या मरो' और इसका बोध-वाक्य होगा 'हत्या, न चोट'।

चौथे लेख में मुरली ने आने वाले समय के संबंध में अपनी व्यक्तिगत धारणाओं को विस्तार से स्पष्ट किया। इस लेख को लिखने के बाद मुरली ने एक लिफाफे में बंद कर दिया और लिफाफे के ऊपर लिखा, 'इस लिफाफे को चौथा अंक छपने के समय ही खोलें।'

दो दिन के बाद मुरली कमरे से निकला तो उसके कपड़े अस्तव्यस्त थे, बाल बिखरे हुए थे' दाढ़ी बढ़ी हुई थी और आंखें लाल थीं। लिखे हुए कागज और बंद लिफाफा हाथ में लेकर वह

दिवाकर के कमरे में दाखिल हुआ तो उसका सामना किरण से हुआ।

"नमस्कार चाचा जी, तो आप कुंभकर्ण की नींद सो रहे थे?" किरण ने व्यंग्य किया।

"किसने कहा मैं कुंभकर्ण की नींद सो रहा था?"

"मामा जी कह रहे थे आप बहुत थके हैं, दो दिन से पहले नहीं निकलेंगे।"

"तुम कबसे ये यहां बैठी हो?

"मैं तो सुबह आई थी और तबसे दरवाजा खुलने का इंतजार कर रही हूं।"

"और तुम्हारे मामा कहाँ हैं?"

"बाजार गए हैं कुछ खाने-पीने का सामान लेने। आपने दो दिन से कुछ नहीं खाया न?"

"यह सब तुम्हारी ही चालाकी है। तुम्हें कैसे पता चला कि मैं अभी कमरे से बाहर आने वाला हूं।"

किरण ने हाथ पकड़ कर मुरली को कुर्सी पर बिठाया। उनके हाथ से कागज ले कर उन्हें पेपरवेट से दबा दिया। फिर बोली—

"आप जिस कमरे में बैठे लिख रहे थे उसके ऊपर एक छोटा सा रोशनदान है। मैं वहां चढ़कर आपको देख रही थी।"

मुरली ने किरण के सिर को अपनी दोनों हथेलियों के बीच लिया और उसका माथा चूम लिया। फिर बोला—

"किरण मुझे तुमपर बहुत नाज है। हम सबकी उम्मीदें तुम्हारे ऊपर टिकी हैं। तुम्हें अपने पिता की याद नहीं होगी। लेकिन अपनी मां को तो तुमने अच्छी तरह देखा और समझा है। समझा है न...?

"मैंने मां को समझने की पूरी कोशिश की है।"

"रूपा मामी और दिवाकर मामा को भी..."

"उन्हें अब समझने की कोशिश करूंगी। लेकिन मैंने आपको नहीं समझा।"

"अरे, मुझमें समझने के लिए क्या है?"

"तो फिर मैं कहूंगी कि आपने मुझे समझने की कोशिश नही की।"

"क्या कहती हो किरण? मैं तुमपर इतना भरोसा करता हूं।"

"नहीं चाचा जी आप झूठ बोलते हैं। आप मुझपर भरोसा नहीं करते। आप समझते हैं मैं अभी दूध पीती बच्ची हूं।"

"नहीं किरण मैं सच कहता हूं। यह बात नहीं है।"

"तो फिर आप मुझे अपने काम में हाथ बटाने लायक क्यों नहीं समझते?"

मुरली से कोई जवाब नहीं बन पड़ा। उसका गला भर आया। इच्छा हुई कि किरण को भींचकर छाती से लगा ले। मुश्किल से उसने अपने उद्वेग पर काबू पाया।

"किरण बेटी, अब तुम्हारे ही ऊपर सारी जिम्मेवारी आनेवाली है। हमने तो अपनी

लड़ाई लड़ ली। तुम्हारे पिता ने, तुम्हारी माँ ने। वे दोनों अपना फर्ज निभा कर चले गए। तुम्हारे मम्मा-मामी अभी मोर्चे पर डटे हैं। मैं भी इस मोर्चे का सिपाही हूँ। पता नहीं हमें सफलता मिलेगी या नहीं। लड़ाई तो चलती रहेगी। हमारे बाद तुम्हें ही मोर्चा संभालना है।"

"यही बात है तो कल से आप जहां भी जाएंगे, मैं आपके साथ चलूंगी।"

दिवाकर ने कमरे में प्रवेश किया। उनके हाथ में कई लिफाफे थे। रोटी, सब्जी, अचार सलाद और फल के लिफाफों को सम्हाल कर किरण ने एक बड़ा अखबार मेज पर बिछा दिया और खाना लगा दिया।

खाना खाते हुए दिवाकर ने कहा—

"भई, इस किरण को समझाओ वह मामी के साथ धरने पर बैठने के लिए जिद्द कर रही है।"

मुरली ने किरण की ओर देखा। किरण ने इशारे से कहा वायदा करो।

"मैंने किरण से वायदा किया है कि मैं इसे अपने साथ ले जाया करूंगा। मैं इसे सब जगह घुमाऊंगा लेकिन सिर्फ स्कूल की छुट्टियों के दिनों में।"

किरण का चेहरा खिल उठा। बोली, "कल और परसों मेरी छुट्टी है।"

मुरली ने पहली मीटिंग के लिए दत्तल को चुना था। मंध के इस पार और ड्रीमलैंड की सीमा के साथ लगे इस गांव से मुरली का विशेष लगाव था। आपातकाल के दिनों में साधु के भेष में उसने इसी गांव में अलख जगाया था और लोगों को जालिम सरकार के खिलाफ उठने का संदेश दिया था।

मुरली उसी शाम दत्तल पहुँच कर कुछ लोगों से सलाह मशविरा करना चाहता था। किरण को पीछे बिठाकर मुरली अपनी मोटर साइकिल पर निकला तो दिन डूबने में कुछ ही देर थी। घना अंधेरा होने से पहले-पहले वह दत्तल पहुँच जाना चाहता था, इसलिए मोटर साइकिल को उसने पूरी स्पीड पर छोड़ दिया। किरण के बाल तेज हवा में उड़े जा रहे थे. कपड़े भी लगता था फट जाएंगे। लेकिन किरण को बहुत मजा आ रहा था। सड़क कहीं-कहीं बारिश के पानी से टूट गई थी। ऐसी जगह मोटर साईकिल जोर से उछलती थी। औवा खड्ड का पुल पिछली बरसात की बाढ़ में टूट गया था, उसकी अभी मरम्मत चल रही थी। बसों और मोटर साईकिलों को खड्ड के चौड़े पाट में पानी से होकर गुजरना पड़ता था। किरण के लिए यह अनुभव रोमांचित कर देने वाला था। एक जगह बस कीचड़ में फंस गई थी और बस के सारे यात्री धक्का मार कर उसे कीचड़ के गड्ढे से निकालने की कोशिश कर रहे थे। मुरली ने भी अपनी मोटर साईकिल रोकी। किरण और मुरली दोनों ने यात्रियों में शामिल होकर बस को निकालने की कोशिश की। बस का पहिया कीचड़ से निकल गया तो सब लोग खुशी से चिल्ला पड़े।

अंदरेटा के पास आकर मुरली ने मोटर साईकिल रोकी और किरण से कहा, "चलो, तुम्हें मछलियों का कुंड दिखाऊं। यह मछियाल है और यहां हजारों मछलियां हैं। इन्हें पकड़ने की मनाही है। लोग इन्हें आटा खिलाते हैं। हर साल यहां मेला भी लगता है।"

सड़क से थोड़ी दूरी पर ही मछियाल कुंड था। किरण मछलियों को देखते-देखते इतनी

विभोर हो गई कि उठने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। मुरली बोला—

"अब चलो, अंधेरा होनेवाला है। अभी दूर जाना है।"

दत्तल पहुँचते-पहुँचते अंधेरा घिर आया था। मुरली ने गांव के बाहर उस जगह अपनी मोटर साइकिल रोकी।जहां किसी वक्त उसने साधु बन कर धूनी रमाई थी। मंदिर और उसके आस-पास के छोटे से मैदान को छोड़ कर शेष सारी खाली जगह पर छोटे-छोटे मकान बन गए थे। मुरली ने अनुमान लगाया कि ये हरिजनों और दूसरे गरीब लोगों के मकान होंगे जिन्हें शामलात से बसने के लिए जमीनें दी गई थीं। गांव की गलियों और सड़कों पर तो अंधेरा था लेकिन लोगों के घरों से रोशनियां झांक रही थीं जिसका अर्थ था कि सारे गांव में बिजली आ गई है। कई घरों के ऊपर टेलीविजन के एंटीना भी दिखाई दे रहे थे।

शुकरू के घर के आंगन में मोटर साइकिल को खड़ा करके मुरली ने चारों तरफ नजर डाली। दरवाजा बंद था लेकिन झिरी में से रोशनी आ रही थी। कोठे की खिड़कियां खुली थीं। आंगन काफी लंबा-चौड़ा और साफ-सुथरा था। आंगन से कुछ हटकर खूंटे से बंधी भैंस खड़ी थी जो पास बंधी कटिया को चाट रही थी। साथ ही फूलों की एक क्यारी थी।

मुरली ने दरवाजे की कुंडी खटखटाई। एक सुंदर नई-नवेली दुल्हन ने दरवाजा खोला। एक अपरिचित आदमी को देखकर वह झटपट पीछे हटी और घूंघट को थोड़ा और नीचे खींच लिया। मुरली ने देखा कमरे मे सात-आठ आदमी बैठे हैं जिनमें बच्चे और औरतें भी हैं। टेलीविजन पर चित्रहार दिखाया जा रहा था।

इससे पहले कि मुरली किसी परिचित का नाम लेता, झुकी हुई कमर वाली एक बुढ़िया लाठी का सहारा ले कर उठी और तेज-तर्रार आवाज में बोली—

"अरे दाढ़ी जलो, बंद करो यह नाचकूद। देखो, हमारे घर बाबा आए हैं।" चित्रहार देख रहे लोगों में खलबली सी मची। औरतें उठकर साथ वाले कमरे की ओर चल दीं। नौजवान भी उठ खड़े हुए। शायद चित्रहार का आखिरी गाना चल रहा था। बच्चे टेलीविज़न पर नजरें गड़ाए बैठे रहे। एक कोने से एक बूढ़ा आदमी सरकते-सरकते आगे आया और उसने मुरली के पैरों पर सिर रख दिया। मुरली को पहचानने में देर नहीं लगी। शुकरू को दोनों हाथों से पकड़ कर उठाते हुए मुरली बोला—

"यह अच्छी बात नहीं है। मैं अब जोगी नहीं भोगी हूँ।"

फिर झुकी कमर वाली बुढ़िया की तरफ देखकर बोला—

"परमेसरी चाची, इन्हें समझाओ न।"

"इसे तो अब ऊपर वाला ही समझाएगा," परमेसरी चाची ने उसी पुराने तीखे लहजे में कहा, "अब तो बाबा इसको आशीर्वाद दो कि वह जल्दी से जल्दी इसे अपने पास बुला ले।"

"ऐसी कड़वी बात क्यों कर रही हो चाची?"

"कड़वी है लेकिन अच्छी है। अपने लिए भी मैं भगवान से यही मांगती हूं कि जल्दी मुझे उठा ले। अब जीने में क्या रखा है? बुढ़ापे का बोझ गले की फांस बन जाता है।"

इतने में गुमटी ट्रंक से नई दरी निकाल कर ले आई, बोली—

"चाची, अपना राग छेड़े जाओगी या मेहमानों को बैठने के लिए भी कहोगी?"

कमरे में दरी बिछ गई। मुरली दीवार के सहारे तकिया लगाकर बैठ गया। किरण उसके पास सहमी-सहमी सी बैठी। गुमटी ने मुरली के पैर छुए और फिर उसकी दोनों बहुओं ने भी बारी-बारी पैरों के पास माथा टेका। परमेसरी ने परिचय कराया–

"यह छोटी बहू, वीरू की घरवाली और वह बड़ी, शंभू की घरवाली है।"

फिर वीरू और शंभू की तरफ देख कर बोली–

"अरे तुम क्या डींगर बने खड़े हो, पैर छुओ।"

शंभू और वीरू ने भी पैर छू लिए तो परेसरी बोली–

"बाबा, यह बिटिया रानी कौन है? रमा देई की बिटिया तो नहीं?"

मुरली को परमेसरी चाची की अनुमान-शक्ति पर आश्चर्य हुआ।

"आपने ठीक पहचाना चाची। यह रमा जी की बिटिया है किरण। जिद्द करने लगी कि मैं भी चलूंगी।"

"अच्छा किया बाबा। अब आप ही इस की मां हैं और आप ही बाप। एक निशानी बची है उस घर की···" कहते-कहते परमेसरी का गला भर आया। मुरली ने प्रसंग बदलते हुए कहा–

"छंदो कहां है आज कल?"

परमेसरी तुनक कर बोली–

"जाने कहां है? बड़ा थानेदार बन गया है। अपनी घरवाली और बाल बच्चों को साथ लेकर चला गया। सुना, चंबा में है। पर लग गए न··· तो मां बाप को अकेला छोड़ कर चला गया। बुढ़ापे में आस होती है सबको कि कोई पूछने वाला होगा। और किस लिए पालते हैं बेटों को, पूजने के लिए? जमाई जी का हाल देखो। एक ही लड़का। पढ़ाया-लिखाया। डाक्टर बनाया और वह बाप की छाती पर पैर रख कर चला गया। ऐसे बेटों से तो बेटियां भलीं। मा-बाप की याद तो नहीं भूलतीं। दूसरा भी फौज में है। अभी ब्याह नहीं हुआ इसलिए मां-बाप की खोज-खबर लेता रहता है। ब्याह के बाद क्या करेगा, भगवान् जाने।"

मुरली को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि परमेसरी चाची पर बुढ़ापे ने कोई असर नहीं डाला है। शरीर अशक्त जरूर हुआ है लेकिन वाक्‌शक्ति भी वही और मिजाज भी वही। लेकिन शुकरू अभी तक एक कोने में दुबका बैठा था। मुरली ने उसकी तरफ देखकर पूछा–

"आप तो कुछ बोल ही नहीं रहे हैं?"

परमेसरी चाची ने उसकी तरफ से जवाब दिया–

"इस बेचारे से क्या पूछते हो बाबा। दो साल हुए जबान बंद हो गई। एक तरफ लकवा मार गया था। बेटी ने अस्पताल में इलाज कराया अब घिसटते-घिसटते चलने लगा है। यह तो भगवान् का शुक्र है और आप जैसे लोगों की किरपा कि बेटे अच्छे निकले। दो टोपे की जमीन कमाते हैं। घर में सब कुछ है। बिरादरी में इज्जत बनी हुई है। बाप का बड़ा खयाल रखते हैं।"

मुरली ने देखा गुमटी की उम्र ढल गई थी। चेहरे पर दो लंबी झुर्रियां नुमायां हो गई थीं।

बाल आधे पक गए थे। कानों के छेद बालियों के बोझ से लंबे हो गए थे। लेकिन उसके चेहरे की सौम्यता बढ़ गई थी। नाक में चांदी की बड़ी नथ की जगह अब सोने की छोटी सी बुंदिया थी। उसकी दोनों बहुओं में चलने, उठने-बैठने और कपड़े पहनने का एक सलीका था। सारे घर को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह हरिजनों का घर था।

लेकिन परमेसरी चाची वैसी ही थी। सिलवार का एक पौंचा ऊपर एक नीचे था। कुरती पर तीन पैबंद तो साफ दिखाई दे रहे थे।

"रामसुरा कहाँ है?" मुरली ने पूछा।

"दोनों गए हैं बेटे बहू के पास। उनके पोता हुआ है। कहने लगे पोते का मुह जरूर देखेंगे। मैंने कहा बेटे से जी नहीं भरा? बोले, बेटा अपनी जगह, पोता अपनी जगह। देखें कल तक क्या मुँह लेकर आते हैं।"

गुमटी की दोनो बहुओ ने खाना तैयार कर दिया तो वीरू परात में गरम पानी डाल कर पैर धुलाने के लिए ले आया। मुरली ने कहा मैं किसीसे पैर नही धुलाता, अपने-आप धोऊगा। लेकिन वीरू के आगे पेश नहीं चली। शंभू पास हाथ धुलाने के लिए ठंडे पानी की गड़वी लेकर खड़ा था। वीरू पैर मलने लगा तो मुरली ने बात छेड़ी—

"भई यह बताओ, ड्रीमलैंड के बारे में क्या चल रहा है यहां?"

मुरली के प्रश्न का उत्तर शंभू ने दिया—

"लोग कहते हैं सरकार जो चाहेगी वही होगा। सरकार को कौन रोक सकता है?"

मुरली ने शंभू को गौर से देखा। भरा-पूरा गबरू जवान हो गया था। बड़ी-बड़ी मूछें, चौड़ी छाती और गोल कलाइयों ने उसे रौबीले थानेदार का रूप दिया था। वीरू उसकी तुलना में छरहरे जिस्म का फुर्तीला नौजवान लगता था।

"रूपादेवी के धरने का कोई असर नहीं है गांव में?"

"असर क्यों नहीं है," अब की वीरू ने जवाब दिया, "रूपा बहन के लिए यह गांव जान देने को तैयार है। लोग कहते हैं यह हमारे गांव की इज्जत का सवाल है। गांव की पंद्रह-बीस औरतें रोज धरने पर जाती हैं। कई लोग गिरफ्तारियां दे चुके हैं। बीस गांवो ने मिलकर एक कमेटी बनाई है। वह चंदा जमा करती है और धरना देने वालों की रोटी-पानी का इतजार करती है।"

"यह सब तो है," शंभू बोला, "लेकिन कोई सरकार से कितने दिन लड़ेगा। पुलिस रोज कुछ लोगों को पकड़ती है, अगले दिन छोड़ देती है। डराने-धमकाने का काम कर रही है। गांव में ही कई लोग हैं जो कहते हैं बुलडोज़र चलेगा। लोगों को गोलियां से भून दिया जाएगा।" वीरू परात का पानी बाहर फेंक कर आया तो बोला—

"ऐसे ही गोलियों से भून दिया जाएगा? देख लेना, गोली का जवाब गोली से दिया जाएगा....."

इस बीच किरण उठकर दूसरे कमरे में चली गई थी और गुमटी तथा उसकी बहुओं के साथ खाना लगाने में मदद कर रही थी। किरण बहुत जल्दी ही सब से हिलमिल गई। गुमटी को

उसने नानी और उसकी बहुओं को मामी कह कर पुकारा तो सब गद्गद हो गईं। वीरू की बहू किरण जितनी ही लगती थी। उसके साथ तो किरण का बहनापा सा हो गया।

खाना खाते-खाते मुरली ने बताया कि वह यहां एक मीटिंग करना चाहता है। ड्रीमलैंड के संबंध में बहुत सी बातों को लोग नहीं जानते। उन्हें सब बातें बताना जरूरी है। अगर हर गांव के बीस लोग भी इसका विरोध करने को तैयार हों तो हम ड्रीमलैंड वालों का यहां से बोरिया बिस्तर बांध देंगे।"

शंभू और वीरू ने अनुमान लगाया कि सुबह होते ही कुछ लोगों को सूचना देने के लिए भेज दिया जाए तो कल शाम मंदिर वाले चौगान में एक अच्छी सभा हो सकती है। सब नहीं तो पन्द्रह-सोलह गांवों के लोग तो आ ही सकते हैं।

ड्रीमलैंड ने सारे इलाके में सुगबुगाहट तो पैदा कर ही रखी थी। मुरली का नाम जुड़ जाने से उस आंदोलन को एक नया आयाम मिला। मुरली इस इलाके में कई किस्से-कहानियों का नायक बन चुका था। इसलिए सभा की खबर फैलने में देरी नहीं लगी। वीरू और शंभू ने सुबह तड़के से अपना काम शुरू किया। जिस गांव में सूचना पहुंचती वहां नौजवान लड़के सारे गाँव का फेरा लगाते और सभा की सूचना देते। दोपहर तक लगभग सभी पच्चीस गांवों में ढोल बज चुका था। ड्रीमलैंड की सीमा के अंदर आनेवाले कई गांवों में भी ढोलची ने मुनादी कर दी थी।

शाम चार बजे से ही मंदिर के मैदान में लोग इकट्ठे होने लगे। भिन्न-भिन्न दिशाओं से ढोल पर नाचती और 'सरकार मुर्दाबाद,' 'ड्रीमलैंड हाय हाय' के नारे लगाती टोलियां जमा होने लगीं। पांच बजे तक मैदान खचाखच भर गया। कुछ लोग आस-पास के घरों की छतों पर और कुछ पास के पेड़ों पर चढ़ गए। लगभग पांच हजार आदमियों का जमावड़ा हो गया। इनमें महिलाओं और बच्चों की भी काफी तादाद थी।

मुरली ने मेज पर खड़े होकर लोगों को संबोधित किया—

"प्यारे भाइयो, बहनों और बच्चो,

आप सब जान ही चुके होंगे कि हम यहां क्यों इकट्ठे हुए हैं। मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि इस ड्रीमलैंड की योजना के पीछे कौन लोग हैं और उनका मकसद क्या है। यह योजना दिल्ली के सिंहासन के आस-पास जुटे उन लोगों के दिमाग की उपज है जो इस देश को पिछले चालीस सालों से लूट रहे हैं। कौन हैं ये लोग? इनकी पहचान बहुत जरूरी है। ये वही लोग हैं जो अंग्रेजों के राज के समय गोरों को माई-बाप कहते थे, उनके तलवे चाटते थे और बदले में जमींदारियां, मनसबदारियां, रायबहादुरी वगैरह की उपाधियां हासिल करते थे। उस समय इन लोगों का काम था गोरों के पैर चूमना और अपने गरीब भाइयों को लात मारना। महात्मा गांधी जैसे हमारे बड़े नेताओं को ये लोग गालियां देते थे।

जब हमारा देश आजाद हुआ तो इन लोगों ने रातों-रात भेड़िये की खाल उतार कर भेड़ की खाल ओढ़ ली। ये लोग आजाद भारत की सरकार के फरमाबरदार ही नहीं, उसके सलाहकार भी बन गए। विदेशी भाषा, विदेशी विचार और विदेशी रहन-सहन वाले इन लोगों

ने अपने देश के नेताओं को वश में कर लिया और उन्हें यकीन दिला दिया कि वे उनके बताए तरीकों से राज करेंगे तभी आजादी बनी रहेगी। नतीजा यह हुआ कि देश पर इन्हीं लोगों का कब्जा हो गया। इन लोगों ने ऐसी योजनाएं बनाईं जिनसे देश की सारी सम्पत्ति इस छोटे से वर्ग के हाथों में सिमटती गई और आम जनता की हालत दिन प्रतिदिन बिगड़ती गई। आज हालत यह है कि लगभग पैंतालीस करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं याने इन लोगों की कम से कम जरूरतें भी पूरी नहीं होतीं। इनमें भी लगभग बीस करोड़ लोग तो ऐसे हैं जिनकी हालत जानवरों से भी बुरी है। जो लोग गरीबी की रेखा से ऊपर हैं उनमें भी अधिकतर ऐसे हैं जो जैसे-तैसे गुजारा कर लेते हैं। सुखी उन्हें भी नहीं कहा जा सकता। सुखी केवल वे लोग हैं जो कभी अंग्रेजों के पिट्ठू थे और अब आजाद हिन्दुस्तान के मालिक बन गए हैं। इन्होंने अपने लिए अलग शिक्षा-व्यवस्था, अलग स्वास्थ्य-व्यवस्था, अलग यात्रा-सुविधाएं, अलग डाक प्रणाली, अलग वितरण-प्रणाली बना ली। आम लोगों के लिए इन्होंने घटिया स्कूल, घटिया अस्पताल, घटिया बसें और रेलगाड़ियां दी हैं।

इन लोगों ने चोरी, घूस, तस्करी और बेईमानी से जो बेहिसाब दौलत अपने पास जमा की है उससे वे अपने लिए ऐय्याशी के स्वर्ग बनाते हैं, पांच सितारा स्वर्ग। ड्रीमलैंड इसी तरह का पाप की कमाई का स्वर्ग है। व्यापारियों, अफसरों, मंत्रियों और दूसरे राजनेताओं ने जो चोरी का पैसा विदेशी बैंकों में जमा किया है, उससे यह ड्रीमलैंड बन रहा है। हमारे देश के बड़े नेताओं ने चाहा था कि देश में ज्यादा से ज्यादा बराबरी आए। ऊँच-नीच का भेद मिटे, गरीब-अमीर का फासला कम हो। कोई इतना गरीब न हो कि रोज़ी-रोटी का मोहताज रहे और कोई इतना अमीर न हो कि हजारों-लाखों का हिस्सा मार ले। लेकिन इस देश में जो हुआ वह ठीक इससे उल्टा था। इस ड्रीमलैंड को जितनी बिजली, जितना लोहा-इस्पात-सीमेंट, जितना पानी मिलेगा उतना सारे हिमाचल प्रदेश को नहीं मिलता। और यह ड्रीमलैंड अकेला नहीं है। उन्होंने इसी तरह के कई ड्रीमलैंड जगह-जगह स्थापित किए हैं और कर रहे हैं। अपने लिए एक छोटा सा स्वर्ग बनाने की खातिर ये लोग हजारों एकड़ भूमि को बर्बाद कर देते हैं, लाखों लोगों को बेघर कर देते हैं, उनकी रोजी-रोटी छीन लेते हैं। शहरों में भी जैसे-जैसे ड्रीमलैंड बन रहे हैं वैसे-वैसे झोंपड़ियों का जाल फैलता है और फुटपाथ पर सोने और मरने वालों की तादाद बढ़ती है। गांवों में जब ड्रीमलैंड बनते हैं तो खेती पर जीने वाले लोगों पर कहर टूटता है और जंगलों-पहाड़ों में वाले आदिवासी भाइयों की जिंदगी नरक बन जाती है।

सवाल उठता है कि हम क्या कर सकते हैं? क्या हम सरकार का विरोध कर सकते हैं? आप सब जानते हैं कि ड्रीमलैंड के अंदर आने वाले गांवों में पिछले दो महीनों से रूपादेवी के नेतृत्व में आंदोलन चल रहा है। सरकार कहती है कि वह बुलडोजर चलाएगी। हम कहते हैं कि सरकार जनता की बनाई हुई है। वह जनता की नौकर है। अगर सरकार जनता के हितों के खिलाफ काम करती है तो जनता को पूरा अधिकार है कि सरकार के खिलाफ कार्रवाई करे और उसे हटाए। आप कहेंगे कि सरकार के पास तोप-बंदूक की ताकत है, हम उसका मुकाबला कैसे

करेंगे ? मैं कहना चाहता हूँ कि अंग्रेजों के पास भी तोप-बंदूक की ताकत थी फिर भी महात्मा गांधी के आंदोलन की जीत हुई। रूपादेवी महात्मा गांधी और दूसरे आजादी के नेताओं के बताए हुए रास्ते पर चल रही हैं। हम भी उस रास्ते पर चल कर ड्रीमलैंड को ध्वस्त करेंगे। महात्मा गांधी ने आखिरी लड़ाई का नारा दिया था, 'करो या मरो'। हमारा भी आखिरी नारा होगा 'करो या मरो।' इसके साथ ही 1942 की क्रांति का दूसरा नारा था 'न हत्या न चोट'। हम भी कहेंगे 'न हत्या न चोट'। हमारे हथियार होंगे गैंती, फावड़ा, झब्बल और घन और ये हथियार किसी आदमी पर नहीं चलेंगे, भले ही वह आदमी हम पर गोली चलाए। ये हथियार होंगे ड्रीमलैंड की सड़कों इमारतों, दीवारों को तोड़ने के लिए ताकि ड्रीमलैंड का कोई निशान न बचे। जाहिर है इसके लिए कुछ लोगों को पुलिस की गोलियां छाती पर झेलने आगे आना पड़ेगा। इनमें सब से आगे मैं रहूंगा। मैं जानना चाहता हूँ कि आप लोगों में से कितने लोग मेरा साथ दे सकते हैं?"

सभा में कुछ देर के लिए सन्नाटा छा गया। फिर भीड़ के बीच से एक छरहरे जिस्मवाला युवक उठा और बोला, "मैं आपके साथ हूँ।" सब की नजरें वीरू की तरफ घूम गईं। इतने में मंच के पास बैठी किरण मेज पर चढ़ कर चिल्लाई, "मैं भी आपके साथ हूँ।"

इसके बाद कोई आगे नहीं आया। भीड़ में घुसर-पुसर होने लगी। कुछ लोग खिसक कर जाने लगे। मुरली ने ऊंची आवाज में कहा: "मैं नाउम्मीद होना नहीं जानता। आज दो हैं तो कल दो हजार भी जरूर होंगे। जब महाभारत शुरू होगा तो कोई दूर खड़ा तमाशा नहीं देख सकेगा। उसे लड़ाई में शामिल होना ही पड़ेगा।"

भीड़ तितर-बितर होने लगी तो मुरली ने वीरू के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "हम लोग चलेंगे। किरण के मामा-मामी हमारी राह देख रहे होंगे। तुम लोगों से मिलते रहना। कल से मेरा प्रोग्राम इसी तरह की छोटी-छोटी सभाएं करना होगा। वक्त कम है। एक महीने में जितना होगा करेंगे। मुझे उम्मीद है हम अपने काम में सफल होंगे।"

दत्तल से खैरा आधे घंटे का रास्ता था। मुरली को कोई जल्दी नहीं थी। शुकरू के घर जाकर उन्होंने सब से विदा ली। गुमटी ने चलते वक्त किरण को पांच रुपये दिये। एक पोटली में गेहूं का सीरा दिया और कहा "अपनी मामी से कहना, तुम्हें सब बहुत याद करते हैं।"

अगले दो दिनों में दत्तल की सभा की गूंज ड्रीमलैंड के भीतर और बाहर के सात-आंठ सौ गांवों में फैल गई। 'अमर संदेश' के पहले ड्रीमलैंड विशेषांक की 10 हजार प्रतियां हाथों हाथ बिकीं। इसमें दत्तल की सभा की रिपोर्ट भी थी। ढोल की ताल पर नाचते और नारे लगाते नौजवानों की टोलियां गांव-गांव घूमने लगीं। दीवारों पर मोटे अक्षरों में जगह-जगह यह नारा लिखा दिखाई देने लगा—

"एक इरादा एक लगन, गैंती, फावड़ा, झब्बल घन।" 'करो या मरो' के निर्णायक सत्याग्रह

के लिए एक मई का दिन निश्चित किया गया था।

मुरली को जिस गांव में सभा करनी होती वहां एक दिन पहले सूचना भेज दी जाती। लोग घरों में ताले लगाकर बाल-बच्चों सहित सभा-स्थल पर जमा हो जाते। गैंती, फावड़ा, झब्बल और घन इन चार चीज़ों की मांग बढ़ने लगीं। किसी गांव में ये चार-चीजें काफी संख्या में नहीं मिलीं तो लोगों ने चंदा जमा करके लोहारों से बनवाईं या बाजार से खरीदीं। सत्याग्रह में शामिल होने वाले लोगों की सूची लंबी होने लगी।

ढोल की आवाज से सुबह होती और उस आवाज के बंद हो जाने पर रात होती। धौलाधार की पहाड़ियों पर बसे गद्दियों के गांवों में ढोल के साथ टमक की आवाज भी गूंजने लगी। टमक बजाने और उस ताल पर झूमझूम कर नाचने का शौक गद्दियों में जन्मजात होता था। मेले के मौकों पर ही उनकी यह ख्वाहिश पूरी होती थी। ड्रीमलैंड के आंदोलन ने जगह-जगह टमक (दो खूंटों पर बांधे जाने वाले बड़े धौंसे) गाड़े गए और उन्हें ढोल के साथ बजाया जाने लगा। ऐसा लगता था ड्रीमलैंड के चारों ओर अनेक मेलों के खूंटे गड़े हैं। सुबह से शाम तक आवाज गूंजती—

ढैं चू चू, ढैं चू चू, ढैं चू चू
तुड़यां त तुड़ी झड्डां
तुड़ियां त तुड़ी झड्डां
तुड़ियां त तुड़ी झड्डां

जैसे-जैसे एक मई का दिन निकट आता, माहौल गरम होता गया। दिल्ली की संसद में भी इसकी गूंज उठी और शहरों के बड़े अखबार जो अब तक राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार में किसी को उठाने और किसीको गिराने का खेल-खेलने में लगे थे, अचानक बिदक पड़े। इन अखबारों को चलाने वाले जिस वर्ग के प्रतिनिधि थे उस वर्ग की आकांक्षाओं का प्रतीक ड्रीमलैंड था। एक संभ्रात वैकुण्ठी संस्कृति जो भारत को अमरीका, इंगलैंड और फ्रांस बनाना चाहती थी, उजड्ड-गंवार संस्कृति से पराजित होने जा रही थी। उन्होंने अपनी विषभरी लेखनी से गंवार संस्कृति के उस आंदोलन पर हमला बोला। उन्होंने गांधीवादी, सर्वोदयवादी और हिन्दू राष्ट्रवादी नैतिकता के नाम पर एक मई को होने वाले सत्याग्रह की भर्त्सना की। कुछ लोगों ने लोकतंत्र और मानव अधिकारों के लिए इसे खतरनाक बताया। उन्होंने तर्क दिया कि ड्रीमलैंड में कई सौ करोड़ की पूंजी लगी या लगने वाली है। यह राष्ट्रीय सम्पत्ति है और इसे नष्ट करने का जो इरादा कर रहे हैं वे राष्ट्र-द्रोही हैं।

अंग्रेजी पत्रकारों ने विशेष रूप से अपना गुस्सा खुल कर उगला। उन्होंने कहा कि ड्रीमलैंड के विरोधियों ने इसे विदेशी भाषा, विदेशी विचार और विदेशी संस्कृति का प्रतीक कहा है जो निहायत आपत्तिजनक है। अंग्रेजी भाषा की वजह से यह देश एक है, अंग्रेजी शिक्षा से मिले विचारों की वजह से इस देश को विश्व की बिरादरी में सम्मान का दर्जा मिला हुआ है। अगर

अंग्रेजी खत्म हुई तो यह देश टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा और अठारहवीं शताब्दी में चला जाएगा। एक अंग्रेजी अखबार के सम्पादक ने ड्रीमलैंड पर दस हजार शब्दों का एक हस्ताक्षरित लेख लिख दिया जिसमें बताया गया कि यह योजना जो पिछली सरकार के समय बनी थी, वर्तमान सरकार के लिए भी क्यों लाभदायक है। उसने इस महान योजना का विरोध करने वाले मुरली के बारे में जैसे सी०बी०आई० की फाईल चुराकर उसे कालक्रमानुसार भी छाप दिया। हर रोज एक व्यंग्य लेख लिखने वाले एक पत्रकार ने ड्रीम देखने वालों के मुकाबले में खड़े ड्रम पीटने वालों का उपहास करते हुए चोटी में गांठ बांध कर कसम खाई कि ड्रम संस्कृति की जड़ों में मट्ठा डाले बिना वे गांठ नहीं खोलेंगे। सांगरूप के शौकीन एक सम्पादक ने ढोल पीटने और राष्ट्र-राज्य के विखंडित होने के बीच सहसबंध की खोज करके उसे राष्ट्र की सभी वर्तमान समस्याओं के ऊपर प्रयोग करके दिखा दिया। कुछ प्रगतिशील पत्रकारों ने इसे विकास और प्रगति से भयभीत मानसिकता की संज्ञा दी तो कुछ ने इसे राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार को गिराने के लिए कांग्रेसियों की चाल बताया। पत्रकारों के दबाव के आगे घुटने टेकने वाले प्रधानमंत्री ने धमकी दी कि ड्रीमलैंड के विरोध को सख्ती से कुचल दिया जाएगा किंतु जब उनके वक्तव्य के विरोध में मंत्रिमंडल के कुछ सदस्यों ने त्यागपत्र देने की धमकी दी तो प्रधानमंत्री ने पैंतरा बदला और कहा कि यह प्रादेशिक सरकार का मसला है हम इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इसपर गांधीवादी अर्थशास्त्री और एक मानवाधिकारवादी समाजशास्त्री गांधी की समाधि पर अनशन पर बैठ गए। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को बाहर से टेका देने वाले एक दक्षिणपंथी दल ने 'मोर्चा सरकार मुर्दाबाद' के नारे लगाते हुए बोट क्लब में एक विशाल रैली का आयोजन किया और इसमें भाषण देते हुए दल के शीर्षस्थ नेताओं ने सरकार से आग्रह किया कि वह ड्रीमलैंड की रक्षा के लिए सेना तैनात करे। आखिर प्रधानमंत्री चुपचाप विदेश दौरे पर निकल गए और ड्रीमलैंड को लेकर चल रही सारी सरगर्मियां एकाएक ठंडी पड़ गईं।

लेकिन ड्रीमलैंड और उसके आस-पास के ग्रामवासियों पर इन घटनाओं का कोई असर नहीं हुआ। उनका उत्साह कम पड़ने के बजाय बढ़ता गया। उनका आंदोलन दूर-दूर के गांवों में फैलता गया और वहां के कई आदमी गैंती फावड़ा, सब्बल, घन के साथ एक मई को खैरा में इकट्ठा होने की तैयारी करने लगे।

दिल्ली के अखबारों से प्रभावित होकर और अपनी पार्टी के निर्देशों का पालन करते हुए प्रदेश के मंत्रिमंडल ने फैसला किया कि ड्रीमलैंड के संभ्रांत नागरिकों की जान-माल की रक्षा के लिए और विघटनकारी तत्त्वों के नापाक इरादों को विफल करने के लिए एहतियात के तौर पर मुरली और रूपादेवी को गिरफ्तार करके नजरबंद रखा जाए। दूसरे दिन धरने में बैठी रूपादेवी को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और उन्हें पुलिस की जीप में बिठाकर अज्ञात स्थान में ले जाया गया। जब धरने में बैठी अन्य महिलाओं और पुरुषों ने इसका विरोध किया तो पुलिस ने लाठीचार्ज करके प्रदर्शनकारियों को तितर-बितर कर दिया। सशस्त्र पुलिस के लगभग तीन सौ कर्मचारी ड्रीमलैंड में तैनात किए गए जो ड्रीमलैंड की सड़कों पर राइफलें हाथ में लेकर गश्त

लगाने लगे।

लेकिन मुरली को गिरफ्तार करने में पुलिस कामयाब नहीं हुई। क्योंकि मुरली भनक मिलते ही भूमिगत हो गया था। पुलिस गांव-गांव में उसकी तलाश के लिए घूमी लेकिन मुरली का पता नहीं चला।

अब गांव की गलियों में ढोल बजाते-नाचते नौजवानों के जुलूस निकलने तो बंद हो गए लेकिन धौलाधार की ढलानों पर बसे गद्दियों के गांवों से ढोल के साथ टमक का मादक संगीत सुनाई देता रहा।

'अमर संदेश' का तीसरा अंक छप कर आया तो लोगों ने देखा कि उसके मुख पृष्ठ पर पहले दो अंकों की तरह ही मुरली के हस्ताक्षरों के साथ लेख छपा था। इससे पूर्व लोगों में तरह-तरह की आशंकाएं व्यक्त की जा रही थीं। कुछ लोगों का कहना था कि मुरली को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है और वह उसे ढूंढने का सिर्फ नाटक कर रही है। कुछ कह रहे थे कि पुलिस ने मुरली को खत्म कर दिया है। सांतो ने लोकसभा में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव रखकर सरकार को बयान देने के लिए बाध्य किया तो सरकार ने बताया कि प्रदेश सरकार ने मुरली के खिलाफ वारंट जारी किए हैं लेकिन वह भूमिगत है और अभी पकड़ा नहीं गया है।

पुलिस की दहशत के कारण ड्रीमलैंड के निर्माण-कार्य ठप्प पड़ गए। मजदूर डर के मारे काम पर आने के लिए तैयार नहीं थे। चारों ओर रक्षक दीवार अभी मुश्किल से एक-एक फुट ऊंची बनी थी। अलबत्ता वी०आई०पी० नर्सिंग होम, वी०आई०पी० पब्लिक स्कूल और वी०आई०पी० सुपर मार्केट की बिल्डिंगें बन कर तैयार हो गई थीं। उनमें प्लस्तर, लकड़ी, कांच का काम होना शेष था। एक राजनेता का पांच सितारा होटल पहले से बना था और उसे ड्रीमलैंड प्राधिकरण का विधिवत् लाइसेंस मिल गया था लेकिन अनेक सुविधाओं के अभाव में अभी उसका इस्तेमाल नहीं होने लगा था। न्यूगल और मंध खड्डों के बांध बन चुके थे और उन खड्डों का पानी दो बड़े जलाशयों में जमा हो गया था। नीचे के इलाकों में इन खड्डों का पानी लगभग सूख गया था और ढोर डंगरों के लिए भी पानी की किल्लत हो गई थी।

30 अप्रैल के दिन धौलाधार की पहाड़ियों से ढोल और टमक की आवाज आनी बंद हो गई। लोगों के कान इस आवाज के इतने अभ्यस्त हो गए थे कि अब लगा चारों ओर गहरा सन्नाटा छा गया है। लोग दम साधे अपने-अपने घरों में बैठे रहे। कोई काम पर नहीं गया। ऐसा लगा कि ड्रीमलैंड के भीतर और बाहर चारों ओर मुर्दनी छा गई है।

लेकिन जैसे ही 30 अप्रैल की रात हुई, धौलाधार के जंगलों में अनेक रोशनियां चलती-फिरती दिखाई देने लगीं। ऐसा लगा कि इन पर्वतीय इलाकों में सदियों से सोई प्रेतात्माएं जाग गई हों। जलती हुई लकड़ी हाथ में लेकर नाच करने वाली 'जलधर' प्रेतात्माओं के संबंध में अनेक कहानियां उस सारे इलाके में प्रचलित थीं और विश्वास किया जाता था कि इन आत्माओं का एक साथ प्रकट होना किसी बड़ी घटना का सूचक है। ड्रीमलैंड के निचले इलाकों की पहाड़ियों, जंगलों और सुनसान बंजर में भी, रोशनियां दिखाई दीं, हालांकि इन

रोशनियों में ज्यादा चमक नहीं थी और टिमटिमाती हुई दीख रही थीं।

शहतूत की जाति के एक पेड़ ब्यूहल की टहनियों को पानी में कई दिन रख कर उसकी छाल को निकाला जाता है। इससे मजबूत रेशा (सेल) बनता है जिससे रस्सियां और खाट का बाण बनता है। भीतर की लकड़ी को सुखाकर घरों में जमा किया जाता है। ये लकड़ियां बड़ी आसानी से जल जाती हैं और तेज हवा में भी नहीं बुझतीं। आठ दस लकड़ियों को झाड़ू की शक्ल में बांध कर और एक सिरे में आग लगाकर दुर्गम रास्तों में भी मीलों की यात्रा की जा सकती है। धौलाधार की पहाड़ियों और जंगलों में उस रात यही चल रहा था। लोग एक मई के सत्याग्रह के लिए खैरा की तरफ चले आ रहे थे। निचले इलाकों में जहां रास्ते अपेक्षाकृत साफ थे, लोग अपने-अपने औजारों—गैतीं, फावड़ा, झब्बल और घन—को लेकर अंधेरे में ही यात्रा पर निकल पड़े थे। लेकिन दुर्गम रास्तों पर लोग टार्च या तेल में डूबी मोटी रूई की बत्तियों का रोशनी के लिए उपयोग कर रहे थे।

एक मई के सत्याग्रह के लिए सरकार ने पूरी तैयारी रखी थी। स्थानीय पुलिस की निष्ठा को संदिग्ध मानते हुए मानते हुए सरकार ने सी०आर०पी० की सशस्त्र टुकड़ियों को जिम्मेदारी सौंपी थी। उसने खैरा के प्रवेश-द्वार पर बांस की बल्लियों के बैरिकेड बना दिए थे।

ठीक पांच बजे सुबह मुख्य प्रवेश-द्वार के बाहर करीब पांच सौ लोग हाथ में फावड़े, गैंतियां, झब्बलें और घन लिये हुए जमा हो गए। पुलिस ने उन्हें आगे बढ़ने से रोका। सत्याग्रहियों के जत्थे से एक आदमी आगे बढ़ा और पुलिस अधिकारी से बोला—

"मेरा नाम मुरली है और ये सब मेरे साथी हैं। हम सब सत्याग्रही हैं।"

अफसर ने कहा, "आप सत्याग्रही नहीं, बागी हैं। आप हथियार लेकर आए हैं।"

"नहीं, हम हथियार लेकर नहीं आए हैं" मुरली बोला, "हमारे हाथ में हथियार नहीं, औजार हैं। ये आदमी पर चलाने के लिए नहीं, जमीन को खोदने और पत्थरों को तोड़ने के लिए हैं।"

"आपके खिलाफ वारंट हैं। आप अपनेको हमारे हवाले कर दीजिए।" पुलिस अफसर ने कहा।

"और मैं किसलिए आया हूं? आप हमारे आदमियों को अंदर जाने दीजिए। मैं अपनेको आपके हवाले कर देता हूं।"

"नहीं, अंदर कोई नहीं जा सकता।"

मुरली ने हाथ में लिए फावड़े को उलट कर बांस की बल्ली पर इतने जोर से मारा कि बल्लियां गिर गई और बेरिकेड टूट गया। सत्याग्रहियों का जत्था बड़े वेग के साथ आगे बढ़ा। पुलिस लाठियां बरसाने लगीं। जब भीड़ बेकाबू हो गई तो अफसर ने फायर का आदेश दिया। धांय-धांय करके एक साथ कई राईफलों से गोलियां छूटीं। मुरली की छाती पर कई गोलियां लगीं और वह वहीं गिर गया। उसके साथ तीस-चालीस और सत्याग्रही गोलियों की पहली बौछार में गिर गए। लेकिन उसके बाद पुलिस को गोली चलाने का मौका नहीं मिला। भीड़ ने

पुलिस को चारों ओर से घेर कर पकड़ लिया। गोलियों की आवाज सुनकर दाएं-बाएं आगे-पीछे सब ओर से लोग अंदर घुस आए और पुलिस वालों पर टूट पड़े। फावड़े-गैंतियां हाथ में लिये करीब पाँच हजार लोगों की भीड़ देखते ही देखते ड्रीमलैंड में घुस गई। पुलिस ने उनके आगे हथियार डाल दिए।

कहीं पास कानों के पर्दे फाड़ने वाला भयानक विस्फोट हुआ, गोया कोई बम फटा हो। फिर उसके बाद एक साथ कई विस्फोट हुए। लोगों ने देखा कि वी०आई०पी० नर्सिंग होम, वी०आई०पी० पब्लिक स्कूल, वी०आई०पी० सुपरमार्केट और पांच सितारा होटल की इमारतों का कंक्रीट पत्थर आसमान में उड़ा। धूल के बादल छा गए और इमारतें भड़भड़ाकर गिर पड़ीं। इसके साथ ही मंध और न्यूगल खड्डों के बांध भी विस्फोट के साथ टूट गए और जलाशयों में रुका पानी बड़ी तेजी के साथ इन खड्डों में बहने लगा।

सत्याग्रही पूरे ड्रीमलैंड में बिखर गए। उन्होंने दीवारें खोद डालीं और कंटीले तारों को तोड़-मरोड़ कर नष्ट कर दिया। ड्रीमलैंड की जो भी निशानी उन्हें दिखाई दी, उसे उन्होंने मिटा दिया।

इस बीच लोगों की भीड़ ने एक बस को रोक कर खाली करा लिया था और उसमें चालीस घायल लोगों को लादकर पालमपुर के अस्पताल में पहुंचा दिया था। बस के पीछे-पीछे लोगों की भीड़ भी पालमपुर के अस्पताल के पास पहुँच गई। पालमपुर शहर की दुकानें बंद हो गईं और लोग सड़कों पर निकल आए। पुलिस ने लाठियाँ घुमा कर उस पर काबू पाने की कोशिश की लेकिन पुलिस को भीड़ ने खदेड़ दिया और वह अपनी बैरकों में घुस गई। लोग 'ड्रीमलैंड मुर्दाबाद', 'मुख्यमंत्री मुर्दाबाद', 'मोर्चा सरकार मुर्दाबाद' और 'मुरली जिंदाबाद', 'रूपादेवी जिंदाबाद' के नारे लगा रहे थे। ड्रीमलैंड में गोली चली है और मुरली सहित चालीस आदमी पुलिस की गोलियों का शिकार हुए हैं, यह खबर एक घंटे के अंदर-अंदर बैजनाथ, पपरौला, नगरोटा, जोगिन्दरनगर, मंडी, बिलासपुर तक फैल गई और सब जगह भीड़ ने क्रुद्ध होकर सरकारी इमारतों, गाड़ियों, प्राईवेट कारों और ऐशोआराम की संस्कृति के अन्य प्रतीकों को तोड़ना-फोड़ना शुरू कर दिया।

पालमपुर के अस्पताल के बाहर लगभग दस हजार लोगों की भीड़ जमा हो गई थी और वह वहां से हटने का नाम नहीं ले रही थी। अंत में जिला मैजिस्ट्रेट ने लाऊड स्पीकरों से घोषणा की कि केन्द्रीय सरकार ने ड्रीमलैंड की योजना को रद्द कर दिया है। प्रदेश सरकार ने भी इस फैसले को मान लिया है। मुख्यमंत्री ने पुलिस की गोलियों से घायल सत्याग्रहियों को बीस-बीस हजार रुपये का मुआवजा देने की घोषणा की। घोषणा में यह भी कहा गया कि घायलों का इलाज चल रहा है और उनकी हर संभव देखभाल की जा रही है। घोषणा में लोगों से अपील की गई कि वे अपने-अपने घरों को जाएं और शांति बनाए रखें।

लेकिन सरकारी घोषणा के बावजूद दिन भर क्रुद्ध भीड़ द्वारा तोड़-फोड़ का सिलसिला चलता रहा। तोड़-फोड़ की चपेट में सरकारी अफसरों के आराम के लिए बने डाकबंगले,

मारुति गाड़ियां, एअरकंडीशन बसें और पुलिस थाने विशेष रूप से आए।

रात के समाचार सुनने के लिए लोग घरों, दुकानों में टेलीविजन सेटों के आस-पास जमा हो गए। समाचारों में बताया गया कि प्रधानमंत्री ने ड्रीमलैंड की योजना को रद्द करने की घोषणा की है। यह भी कहा गया कि पुलिस की गोलियों से जिन 40 लोगों का अस्पताल में उपचार हो रहा है उनमें से अधिकांश को डाक्टरों ने खतरे से बाहर घोषित कर दिया है। केवल तीन व्यक्तियों की हालत खतरे में बताई जाती है और इन्हें मुख्यमंत्री के विशेष विमान से चंडीगढ़ के अस्पताल में ले जाया गया है। इन तीन व्यक्तियों में एक भूतपूर्व मंत्री मुरली, उनका भतीजा मुकुल और दत्तल गांव का एक नौजवान वीरू शामिल हैं। खबरों में यह भी कहा गया कि इस घटना की न्यायिक जांच करने के लिए उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक सदस्यीय आयोग नियुक्त किया गया है।

दूसरे दिन लगभग सभी अखबारों ने बैनर हैड लाइन देकर मुरली, मुकुल और वीरू की मृत्यु का समाचार छापा। समाचारपत्रों ने तीनों को शहीद कह कर श्रद्धांजलि दी थी। ड्रीमलैंड को उन्होंने एक अवांछित और मूर्खतापूर्ण योजना कहा था और उसके बंद होने का स्वागत किया था। इसे बंद करने में प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री ने जो तत्परता दिखाई थी उसके लिए दोनों की सराहना की गई थी। समाचारपत्रों ने खैरा में तीन शहीदों का भव्य समारक बनाने का सुझाव भी दिया था। उसी पृष्ठ पर नीचे रूपादेवी का चित्र छपा था और नीचे खबर थी—रूपा देवी रिहा की गई।

'अमर संदेश' के दफ्तर में मामा दिवाकर की कुर्सी पर बैठी किरण कमरे की काली-झुलसी दीवारों पर नजरें गड़ाए बीती यादों में खोई थी।

ड्रीमलैंड के सत्याग्रह और उसमें मुरली, मुकुल और वीरू की शहादत से कुछ दिन ऐसा वातावरण बना कि लगता था जनता के अहिंसात्मक आंदोलन के आगे राज्य और समाज की हिंसात्मक शक्ति ने हथियार डाल दिए हों। शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिए जगह-जगह आयोजित सभाओं में केंद्रीय सरकार और राज्य सरकार के बड़े-बड़े नेताओं ने शिरकत की। इन सभाओं में जनता भारी संख्या में उपस्थित रही। शहीदों की याद बनाए रखने के लिए कई प्रस्ताव पास किए गए और कई प्रतिज्ञापत्रों पर हस्ताक्षर किए गए।

लेकिन यह स्थिति ज्यादा दिन नहीं रही। जल्दी ही देश के वातावरण में एक नया परिवर्तन आया। यह परिवर्तन इतना भयावह था कि किरण उसकी याद से अब भी सहमी हुई थी। पहले सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के फैसले को लेकर और फिर अयोध्या में राम-मंदिर बनाने के आंदोलन को लेकर तोड़-फोड़, लूट, आगजनी, हत्या और आत्मदाह का जो सिलसिला चला उसने सारे देश को मथ डाला।

जो लोग कभी सती-प्रथा के उन्मूलन और बाल-विवाह के बहिष्कार जैसे

सुधारों के विरूद्ध दंगे-फिसाद पर उतर आए थे, वही अब सदियों से उपेक्षित वर्गों को कुछ अधिकार दिए जाने के खिलाफ खड़े थे और देश को रक्त-स्नान कराने पर उतारू थे। संकल्पहीन और कमजोर सरकार का लाभ उठा कर सारा नौकरशाही तंत्र और पुलिस-तंत्र इस आंदोलन के साथ जुड़ गया था। यह स्पष्ट था कि सरकार के पूरे ढांचे पर जिन इनी-गिनी जातियों का कब्जा था वे अपनी स्थिति को बनाए रखने के लिए देश को गृह-युद्ध में झोंकने को भी तैयार थीं। संविधान के पहले ही शब्द सामाजिक न्याय के खिलाफ उठे इस विद्रोह ने ऐसा माहौल बनाया जिसमें तोड़-फोड़, आगज़नी और लूट-पाट को सन् बयालीस की क्रांति से तुलना करके महिमा-मंडित किया जाने लगा।

शिमला की एक संभ्रांत शिक्षण संस्था में प्रवेश लेने के बाद किरण का परिचय एक नई दुनिया से हुआ था। इस दुनिया के प्राणी पब्लिक स्कूलों की संस्कृति में दीक्षित छात्र-छात्राएं थीं। अंग्रेजी के लहज़े में हिंदी और हिंदी के लहज़े में अंग्रेजी बोलने वाले उसके सहपाठी, सिनेमा, टेलीविजन और वीडियो के नशाई थे और छोटे-बड़े पर्दे की मायावी दुनिया को अपने जीवन में उतारने के लिए लालायित थे। उनमें बात-चीत भी नाटक फिल्मों की नई संवाद-शैली में होती थी जिसमें वाक्य के शुरू में धीमी हकलाहट और अंत में चीखने जैसे आवाज में जरूरत से ज्यादा जोर दिया जाता था। मिलते समय "हाय" विदा लेते समय "बाय" और सहमति व्यक्त करते समय "या" कहना उनकी आदत में शुमार था। चाल-ढाल, पहनावे और दूसरे बाहरी तौर-तरीकों में वे जितने आधुनिक थे, मन से उतने ही संकीर्णता-ग्रस्त थे। इनसे बात करते हुए किरण को लगता था कि नौकरी और पैसे के अलावा उनके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है। शायद इसीलिए चंद नौकरियों के छिन जाने की आशंका ने उन्हें इतना उत्तेजित कर दिया कि वे विवेक खो बैठे। वे भूल गए कि हमारे समाज के बहुत बड़े हिस्से को समाज की भागीदारी से हजारों साल अलग रखा गया है और इन्हें समाज में उचित हिस्सा देना वक्त की मांग है। इस न्याय-संगत मांग को समझने के बजाय उन्होंने इसके प्रति छोटे-छोटे स्वार्थों से प्रेरित कुतर्क और विरोध का रास्ता अपनाया तथा तोड़-फोड़, दंगा-फिसाद में पिकनिक के-से उन्माद के साथ जुट गए।

एक दिन किरण का सहपाठी और मित्र राजू (राजेश) उसे मंडल-विरोधी धरने में ले गया। राजू का मन रखने के लिए वह वहां चली गई। वहां उसने जो दृश्य देखा उससे उसे बहुत दुख हुआ। एक चौराहे पर लगाए एक शामियाने के नीचे पचास-साठ लड़के-लड़कियों का समूह जमा था। जगह-जगह भद्दे पोस्टर और गाली-गलौज भरे नारे लटकाए गए थे। भीड़ को आकृष्ट करने के लिए वीडियो फिल्मों और विदेशी पॉप संगीत की पर्याप्त व्यवस्था की गई थी। ऊंची आवाज में विदेशी धुन बज रही थी और उसके संगीत पर नाच चल रहा था। किरण को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि यहां मौजूद लड़के-लड़कियों में से अधिकांश ने अमरीकी या जापानी डिज़ाइन के नवीनतम फैशन के कपड़े पहन रखे थे। दो लड़कियां सलवार-कमीज में भी थीं लेकिन वे एक कोने में सिमटी खड़ी थीं।

रिकार्ड बंद होने पर एक लड़का हाथ उठा कर बोला—

"लिस्सन किड्स, लिस्सन। दिस इज़ नथिंग। हमारे पास बहुत माल है। एक दम हॉट" और वह जेब से एक कागज निकाल कर पढ़ने लगा।

"स्क्रुबाल्स......"

भीड़ से आवाज आई, "हे...हे......"

लड़का आगे बोला-"लेमून पाप्सिकल, पार्कीज़ रिवेंज, प्रेटी वोमन......"

कुछ लड़कियां "शू......" कह कर चीखीं और एक-दूसरे लिपट गईं। लड़का बोलता गया-"मैड हाऊस, एयर अमेरिका, नन ऑन दि रन, ग्रॉस एनाटॉमी, बर्ड ऑन एक वायर......"

हर नाम के साथ भीड़ से "चीयर्स चीयर्स, हे हे" की गूंज सुनाई देती। लड़का अपनी सूची खत्म करने के बाद बोला—

"लाट आफ फन, लाट आफ मजा। बट माइंड यू किड्स। हमको यहां डटे रहना है। तब तक जब तक सरकार घुटने न टेक दे। वी वॉट सरेंडर। हमारे भाई पुलिस की लाठियाँ खा रहे हैं। सेल्फ इमोलेशन कर रहे हैं।"

"शेम शेम......" भीड़ से स्वर उठा।

"हमें इस सरकार को उखाड़ फेंकना है। हम भगत सिंह और चंद्रशेखर के फुटस्टेप्स पर चल कर पुलिस की गोलियों के सामने सीना तान कर खड़े होंगे। आज शाम हम नेताओं के पुतले जलाएंगे। इसके लिए हमें चंदा जमा करना होगा। सड़क पर जो कार-स्कूटर निकले उससे चंदा वसूल करो। घर-घर जाकर चंदा जमा करो......"

किरण का सिर चकराने लगा। उसकी समझ में इस भीड़ की एक भी बात नहीं आ रही थी। वह ज्यादा देर वहां नहीं ठहर सकी। जाने लगी तो राजू ने रोका।

"क्यों, क्या हुआ?" उसने पूछा।

"मुझे यह सब अच्छा नहीं लग रहा", किरण बोली।

"क्या अच्छा नहीं लग रहा?"

"यही कि तुम लोग नौकरी के छोटे से स्वार्थ के लिए लड़ रहे हो और अपनी तुलना भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद से कर रहे हो। क्या भगत सिंह और चंद्रशेखर दूसरों का हक मार कर दो कौड़ी की नौकरियों के लिए लड़ रहे थे?"

"ट्राई टु अंडरस्टैंड यार," राजू बोला, "हम किसीका हक नहीं मार रहे हैं। हम अपने हक के लिए लड़ रहे हैं।"

"कौन से हक के लिए? क्या ऊंची जात में पैदा होने से किसी को दूसरों से ज्यादा हक मिल जाते हैं?"

"ऊंची जात, नीची जात। यह क्या दकियानूसी बातें करती हो किरण? हम जात-पात को नहीं मानते। हम तो कहते हैं हर चीज मैरिट से डिसाइड हो।"

"और आप लोगों का खयाल है कि मैरिट तो सिर्फ आप लोगों के पास ही है। अंग्रेजी बोल

लेने से ही किसी में मैरिट आ जाता है। अंग्रेज भी सारे हिंदुस्तानियों के बारे में ऐसा ही सोचते थे। खैर, तुम्हारे पास मैरिट है तो और काम क्यों नहीं करते? नौकरी पर ही सारी उम्मीदें क्यों लगाए बैठते हो?"

राजू कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला—

"लेकिन यार, अगर भंगी-चमार डाक्टर, इंजीनियर, पायलट बनने लगे तो इस देश का क्या होगा?"

"आ गए न अपनी असलियत पर?" किरण व्यंग्य से बोली, "राजेश, जात-पात से ऊपर उठने का ढोंग छोड़ो। दुनिया को बेवकूफ मत समझो। इस सारे आंदोलन में जाति-दंभ के अलावा कुछ नहीं है। मैं जा रही हूँ।"

"प्लीज़ किरण। लिस्सन......"

"मुझे तुम्हारे आंदोलन से जरा भी सहानुभूति नहीं है।"

"व्हाट आर यू टाकिंग यार। इतने लड़के सेल्फ इमोलेशन कर चुके हैं। डोंट यू हैव सिम्पथी फार देम?"

"अगर सहानुभूति का मतलब इस तरह का जश्न मनाना है तो मुझे कोई सहानुभूति नहीं है।"

"सच कहता हूँ किरण, मेरे मन में तुम्हारे लिए बहुत रिगार्ड है।"

"लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता राजेश। जिनके लिए नौकरी और पैसा ही सब कुछ है, जो नौकरी के लिए अपनेको जिंदा जला सकते हैं और दूसरों के जिंदा जलने का तमाशा देख सकते हैं, उनके मन में किसीके लिए भी प्यार नहीं हो सकता। वे सिर्फ अपनेको प्यार कर सकते हैं। नौकरी की चाह में वे देश छोड़ विदेश भाग सकते हैं। जीवन-साथी ढूंढने के लिए किसी मोटी असामी को पकड़ सकते हैं और एक पत्नी को मार कर दूसरी-तीसरी पत्नी के मनसूबे बांध सकते हैं। ऐसे लोग कुछ भी कर सकते हैं, कुछ भी। वे खुद भी बिक सकते हैं और दूसरों को भी बेच सकते हैं। किसीके पैर पकड़ सकते हैं और किसीको लात मार सकते हैं। खुद भी मर सकते हैं और दूसरों की हत्या भी कर सकते हैं। मेरे दिल में ऐसे लोगों के लिए कोई रिगार्ड, कोई प्यार नहीं है।"

और किरण वहां से चल दी। राजेश हक्का-बक्का सा उसे देखता रहा। उसके दूसरे साथी और लड़कियाँ भी चकित थीं। फिर एक लड़के ने राजेश की बांह खींच कर कहा, "यह लड़की अपने को न जाने क्या समझती है? ब्लडी बिच। हेल विद इट। तुम्हारे आस-पास ऐसी सैंकड़ों लड़कियां चक्कर काटेंगी।" राजेश ने उसकी तरफ गुस्से से देखा किंतु कुछ कह नहीं पाया।

किरण को यह देख कर आश्चर्य हुआ था कि इस भीड़ के अधिकांश लड़के कुछ दिन बाद माथे पर तिलक लगाए और बाजू में भगवा पट्टी बांधे राम मंदिर के लिए चंदा मांगने बाजार में निकले थे। ये लोग नारे लगा रहे थे: बच्चा बच्चा राम का, राम मंदिर के काम का। हिंदुस्तान में रहना होगा, राम का नाम लेना होगा। तीस नहीं अब तीस हजार, नहीं बचेगा कोई मज़ार। तख्त

बदल दो ताज बदल दो, इन शहरों के नाम बदल दो। अयोध्या तो झांकी है, मथुरा, काशी बाकी है, आदि आदि।

किरण के सामने मामा-मामी का चेहरा घूम गया। आरक्षण के आंदोलन के कारण सवर्ण और असवर्ण जातियों के बीच जो कटुता का वातावरण बन गया था, उसे देखते हुए रूपादेवी को गांव-गांव जा कर लोगों को समझाने का काम करना पड़ता था। कई बार किरण भी साथ जाती थी। किरण ने देखा था कि लोग मामी की बात ध्यान से सुनते थे और मामी की बातों से उन्हें सांत्वना भी मिलती थी। लेकिन कुछ लोग रूपादेवी से चिढ़ते भी थे। अयोध्या के राम मंदिर के आंदोलन ने गांवों में दहशत पैदा कर दी। त्रिशूल-भाले हाथ में लिए, भगवा झंडा फहराते नौजवानों की टोलियां जब घर-घर चंदा उगाहने जातीं तो छोटी जातियों को लगता कि उन्होंने चंदा देने में अनाकानी की तो उनके घरों को फूंक दिया जाएगा और उन्हें कत्ल कर दिया जाएगा। मुसलमानों के घर तो वहां थे नहीं इसलिए राम-भक्तों के गुस्से का निशाना हरिजन बन रहे थे जिनके बारे में वे सोचते थे कि आरक्षणों की वजह से वे सिर उठा कर चलने लगे हैं, ईंट का जवाब पत्थर से देने लगे हैं। हरिजन बस्तियों के नौजवान रात-दिन अपने घरों का पहरा देने लगे थे, उसी तरह जैसे सन् सैंतालीस के दंगों में वे देने लगे थे

उस दिन रूपादेवी घर लौटी तो उनके चेहरे पर घनी उदासी थी। रोज की तरह किरण ने चाय बनाई और चाय का गिलास मामी के हाथ देकर पास बैठ गई।

''आज कहां-कहां मीटिंग हुई? क्या क्या हुआ?'' हमेशा की तरह किरण ने जानना चाहा, गोया वह मामी के हर कार्य-कलाप की दैनंदिन रिपोर्ट तैयार कर रही हो। रूपादेवी ने कोई जवाब नहीं दिया। हाथ में पकड़ा चाय का गिलास भी उसने नीचे रख दिया। फिर किरण के चेहरे को दोनों हथेलियों के बीच पकड़ कर उसकी आंखों में डूब कर देखने लगी। किरण ने देखा मामी की आंखें डबडबाईं और दो बड़े-बड़े आंसुओं ने पुतलियों को अपने में डुबो लिया।

''क्या बात है मामी? आप.....''

किरण अपनी बात पूरी नहीं कर सकी। रूपादेवी ने उसे गले से भींच लिया।

दिवाकर के आने तक रूपादेवी उसी तरह गुमसुम बैठी रही। दिवाकर ने कमरे में प्रवेश किया तो उसके हाथ, मुंह और कपड़ों पर कालिख के दाग देख कर किरण ने सोचा वे किसीके घर की आग बुझा कर आ रहे हैं। रूपादेवी पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। दिवाकर भी चुपचाप बैठ गए। कुछ समय घर में सन्नाटा छाया रहा। किरण कभी मामा के चेहरे को देखती कभी मामी के चेहरे को। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। फिर थके हुए स्वर में रूपादेवी ने पूछा—

''किसने लगाई थी आग?''

''कौन लगा सकता है?'' दिवाकर बोला, 'अमर संदेश' नई सरकार की आंखों का कांटा था। एक न एक दिन तो होना ही था। अच्छा हुआ राम के नाम पर हो गया।''

''मुख्यमंत्री भी यहां थे।''

''तभी तो यह काम आसानी से हो गया।''

"पालंपुर में तीस बसों के काफिले को मुख्यमंत्री ने तिलक लगा कर विदा किया।"

"वीर हिंदू केसरिया वस्त्र धारण करके रण-भूमि के लिए जो निंकले थे।"

"राम-भक्तों में एक भी औरत नहीं थी और न कोई बूढ़ा-बच्चा था। सबके हाथ में त्रिशूल थे जिसका एक सिरा पत्थर तोड़ने वाली झब्बल की तरह था।"

"औरतों और बूढ़ों की वहां क्या जरूरत थी? डिमोलीशन स्क्वैड की जरूरत थी और वही भेजा गया। जो काम राणा प्रताप और शिवाजी ने नहीं किया वह आज हो रहा है। क्या इसका यह मतलब नहीं हुआ कि राणा प्रताप और शिवाजी कायर थे और आज के हिन्दू नेता बड़े बहादुर हैं? केंद्रीय सरकार की तरफ से उन्हें पूरी छूट मिल गई है। चारों दिशाओं से धर्मांधों की सेना अयोध्या पर हमला करने जा रही है। कभी बर्बर सेनाओं द्वारा येरूशलम के लिए धर्म-युद्ध हुए थे, आज अयोध्या के लिए शुरू हुए।" दिवाकर के स्वर में गुस्सा था।

"राम-भक्त एक बड़ा कटोरा खून भर कर भी ले जा रहे थे। उन्होंने उसे अमृत-कलश की तरह सजा रखा था।"

"वे इसे अपने नेता को भेंट करने वाले हैं।"

किरण ने देखा मामी को झुरझुरी आ गई थी। थोड़ी देर के लिए रूपादेवी का सारा जिस्म कांपने लगा। उनकी आंखों की पुतलियां जैसे स्थिर हो गईं। किरण ने मामा का हाथ खींच कर कहा, "मामी को क्या हो रहा है?" दिवाकर भी इस आकस्मिक परिवर्तन से चिंतित हो उठा। उन्होंने हाथ से पकड़ कर रूपादेवी को जोर से हिलाया। रूपादेवी ने हाथ से इशारा करके चुप रहने को कहा। थोड़ी देर में उनके शरीर का कांपना बंद हो गया और वह स्वस्थ दीखने लगीं। लेकिन दिवाकर को तसल्ली नहीं हुई। प्रसंग बदल कर उन्होंने कहा, "हम कुछ दिनों के लिए बाहर जाएंगे। तुम चलोगी किरण?" दिवाकर ने यह सवाल किरण के बहाने रूपादेवी से ही पूछा था। जवाब भी किरण को ही देना पड़ा।

"हां, चलूंगी।"

"लेकिन कहां?"

रूपादेवी धीरे से बोली, "कलकत्ता।" दोनों रूपादेवी की ओर देखने लग। रूपादेवी ने कुछ देर बाद फिर कहा, "क्या सचमुच कलकत्ता की काली का खप्पर हर रोज खून से भरा जाता है? क्या उसकी खून की प्यास कभी नहीं बुझती?"

दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया क्योंकि रूपादेवी का शरीर फिर कांपने लगा था। बड़ी कठिनाई से रूपादेवी ने अपने पर काबू पाया। उठकर बाहर चलीं गईं, आंगन में घड़े से पानी लेकर हाथ-मुंह धोए, फिर वापस आ गईं।

"अब यह सब बातें मेरे सामने मत करना," उसने कहा।

उस दिन रूपादेवी ने खाना नहीं खाया। दिवाकर के पूछने पर इतना ही कहा कि मुझे भूख नहीं है। किरण ने बहुत जोर डाला तो थाली से एक टुकड़ा उठाया लेकिन मुंह तक ले जाते-जाते उनके हाथ जोर से कांपने लगे। उन्होंने रोटी के टुकड़े को दूर फेंक दिया और उबकाई ले कर

आंगन की ओर भागीं। वे जल्दी ही ठीक हो गईं। कमरे में वापस आईं तो दोनों हाथों से माथे को जोर से दबा कर बोलीं, "पता नहीं मुझे क्या हो गया है? बार-बार खून का प्याला दिखाई देता है।"

किरण सोने के लिए अपने कमरे में चली गई लेकिन उसके कान बाहर के कमरे की ओर लगे थे। बड़ी देर तक वहां सन्नाटा रहा। फिर रूपादेवी बोली—

"किरण को उस स्कूल से निकाल लो।"

"क्यों?" दिवाकर ने पूछा।

"वह भी उनकी तरह हो जाएगी।"

"किनकी तरह?"

"उनकी तरह जो वहां पढ़ते हैं। वह दूसरों से नफरत करना सीख जाएगी। अभी तो वह बहुत अच्छी है। वह मुझे बहुत प्यार करती है। वह वीरू की बहू को भी बहुत प्यार करती है। वीरू की बहू एक दिन कह रही थी किरण से मिल कर लगता है वह मेरी सगी बहन है। उस स्कूल में रहेगी तो वह भी बदल जाएगी। पता नहीं भोले-भाले बच्चे इन स्कूलों में जाकर जंगली कैसे हो जाते हैं? तुमने पढ़ा न अखबारों में एक लड़का जब जल रहा था तो दूसरे तमाशा देख रहे थे, फोटो खींच रहे थे। सुना है लड़कों के जलने की किसीने वीडियो फिल्म भी बनाई है। उस कैसेट के लिए लोग पागल हैं।"

दिवाकर को सब मालूम था। "न्यूज़ट्रैक" के अलावा किसी महिला के गाली-गलौज भरे भाषण का कैसेट भी इन दिनों खूब बिक रहा था। रूपादेवी को कुछ याद आया, बोली, "तुम गदियारी गए थे?"

"हां गया था।"

"मास्टर जी के भाई-भाभी कैसे हैं?"

"अधमरे हो गए हैं गम से।"

"मुकुल भी वैसे किसी स्कूल में पढ़ा होता तो......"

"छोड़ो भी, अब सो जाओ।"

"सांतो आएगी तो उससे भी कहूंगी कि बबलू को ऐसे किसी स्कूल में न पढ़ाए।"

"सांतो कल आ रही है। उसका फोन आया था। उठो, रात बहुत हो गई है।"

दिवाकर ने बात बंद करनी चाही लेकिन रूपादेवी बोलती गई—

"किरण भी उन्हींकी तरह बन गई तो क्या होगा?"

"किरण वैसी नहीं हो सकती। मैं किरण को अच्छी तरह जानता हूं।"

"इससे क्या होता है? मैं भी रवि को अच्छी तरह जानती थी।"

अचानक रवि का नाम आ जाने से दिवाकर को हैरानी भी हुई और परेशानी भी। दिवाकर ने उपेक्षा से मुंह फेर लिया किंतु रूपादेवी की हिचकी बंध गई। दिवाकर ने समझाया, "क्या कर रही हो? किरण ने सुन लिया तो क्या सोचेगी?"

कुछ देर तक हिचकियों की आवाज आती रही। फिर कमरे की बत्ती बुझ गई.....।

विचारों में खोई किरण अचानक दरवाजा खुलने से चौंक पड़ी। अस्त-व्यस्त लंबे बालों और लंबी दाढ़ी वाले एक अधेड़ व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश किया। पहले तो किरण उसे देख कर डर गई, फिर कुर्सी से उठ कर बोली—

"यहां कोई नहीं है। आप किससे मिलना चाहते हैं?"

धीमे स्वर में आगंतुक ने पूछा, "दिवाकर है?"

"मामा तो अस्पताल गए हैं। मामी को दिखाने।"

"कब तक आएंगे?"

"पता नहीं कब आएं? एकाध घंटा तो लगेगा।"

"अच्छा तो वे जब भी आएं उन्हें यह पत्र दे देना", कह कर उसने एक लिफाफा किरण की तरफ बढ़ा दिया।

"आप बैठिए, मैं आपके लिए चाय मंगाती हूं", कह कर किरण बाहर जाने लगी। आगंतुक ने मना किया।

"चाय की जरूरत नहीं। कुछ देर बैठ जरूर सकता हूं।" फिर कुर्सी खींचते हुए बोला, "तुम्हारा नाम किरण है न?"

"हां, मेरा नाम किरण है। लेकिन मैंने आपको नहीं पहचाना।"

"कैसे पहचानोगी? न मैंने पहले तुम्हें देखा और तुमने मुझे।"

"फिर भी आप मेरा नाम जानते हैं।"

कुछ देर चुप रहने के बाद वह बोला—

"तुम्हारे पिता मेरे मित्र थे। हम दोनों एक साथ पढ़ते थे। मैं स्कूल की पढ़ाई के बाद पुलिस में भरती हो गया और तुम्हारे पिता कॉलेज की पढ़ाई करने के बाद गांव में कुछ अच्छा काम करने लगे। एक बार मुझे उनको गिरफ्तार करने के लिए जाना पड़ा। बात ऐसी बनी कि मैं खुद उनके साथ गिरफ्तार हो गया।"

किरण को कुछ याद आया। मां से उसने यह प्रसंग सुना था। देखता रहा, फिर बोला,

"मामा जी कहते हैं अखबार दोबारा शुरू करने के लिए बहुत कर्ज़ लेना पड़ेगा और फिर उनकी हिम्मत भी टूट गई है।"

"क्या तुम यह काम नहीं कर सकती?"

किरण ने कोई उत्तर नहीं दिया तो आगंतुक बोला—

"देखो किरण बेटी, तुम्हें इस विरासत को जिंदा रखना पड़ेगा। तुम्हारे पिता की विरासत, मां की विरासत, मुरली चाचा की विरासत और मामा-मामी की विरासत भी। यह एक विचार है, एक आंदोलन है। इसे जैसे भी हो जारी रखो बेटी। हम तुम्हारा हाथ बटाएंगे। जब तक हम जिंदा हैं हम इस विचार को मरने नहीं देंगे। अच्छा मैं चलता हूं। फिर किसी दिन आऊंगा।"

हिम्मतसिंह के जाने के बाद किरण सोच में पड़ गई। हिम्मतसिंह कौन हैं, क्या करते हैं,

मुरली चाचा को कैसे जानते हैं? अब उसने हिम्मतसिंह के दिए हुए लिफाफे को खोला। पत्र दिवाकर मामा के नाम था। लिखा था:

> ड्रीमलैंड की बिल्डिंगों को ब्लास्ट करने का संबंध 'हिम्मत ब्रिगेड' को छोड़ कर किसी के साथ नहीं है। 'हिम्मत ब्रिगेड' इस काम को उचित मानता है और इसके लिए किसी प्रायश्चित का इरादा नहीं रखता। -हिम्मतसिंह

किरण ने पत्र को सम्हाल कर लिफाफे में डाला और उसे मेज़ की दराज में रखने लगी। दराज में पड़े एक और लिफाफे ने उसका ध्यान खींचा क्योंकि उस पर मुरली चाचा की लिखावट में "अंतिम लेख" लिखा था। किरण ने लिफाफा खोला और लेख पढ़ने लगी:

"ड्रीमलैंड की लड़ाई आखिरी लड़ाई नहीं, दरअस्ल पहली लड़ाई है और मात्र प्रतीकात्मक है। यह लड़ाई कुछ चुने हुए लोगों के लिए स्वर्ग या जन्नत के विचार के खिलाफ है क्योंकि ऐसा स्वर्ग विशाल मानव जाति के लिए नरक का निर्माण किए बिना संभव नहीं है। कुछ के लिए स्वर्ग और शेष के लिए नरक का निर्माण धर्म-तंत्र और परम सत्ता की इच्छा के नाम पर परलोक में किया जाए या लोकतंत्र और जन-इच्छा के नाम पर इसी लोक में किया जाए, बात एक ही है। दोनों स्थितियों में यह एक राक्षसी प्रयास है। ऐसे ऐश्वर्य की सृष्टि मनुष्य को ईश्वर भले ही बना दे, वह उसे मनुष्य के रूप में जीने नहीं दे सकती।

"यह लड़ाई उस सम्पत्ति के विचार के खिलाफ है जो मनुष्य को सुरक्षा देने के बजाय असुरक्षा दे, निर्भय करने के बजाय भयभीत करे, स्वतंत्रता का बोध कराने के बजाय परतंत्रता का बोध कराए, समानता के आधार पर भ्रातृभाव पैदा करने के बजाय विषमताजन्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर पैदा करे। ऐसी सम्पत्ति को नष्ट करने में ही मनुष्य जाति की भलाई है। यह सम्पत्ति अथाह पूंजी, प्रतिभा और श्रम से बने परमाणु अस्त्रों के भंडारों की तरह है जिन्हें नष्ट किए बिना मनुष्य जाति सुख की सांस नहीं ले सकती।

"यह हिंसा की शक्तियों के खिलाफ मन और विचार की अहिंसात्मक लड़ाई है। हिंसा शारीरिक ही नहीं, मानसिक भी। राज्य-व्यवस्थाओं द्वारा आविष्कृत पाशविक बल की ही नहीं, समाज-व्यवस्थाओं द्वारा आविष्कृत रंग-भेद, जाति-भेद, धर्म-भेद, नस्ल और लिंग-भेद की मानसिकता और आदमी के दिल-दिमाग पर कब्जा करने के सभी प्रयासों की भी।

"इस लड़ाई का अंत निकट भविष्य में होने वाला नहीं है। स्वर्ग से उतरी कोई क्रांति या अवतार इसे नहीं लड़ेगा। यह लड़ाई हमें ही लड़नी होगी। बीसवीं सदी की बांझ कोख से जन्मी घृणा, लोभ और मतांध क्रोध की आसुरी शक्तियों ने इस लड़ाई को और तीव्र कर दिया है। आने वाली पीढ़ियों को इसे जारी रखना होगा। इन पीढ़ियों को मेरी शुभकामनाएं।"

किरण एक निश्चय पर पहुंच चुकी थी। वह बड़ी उत्सुकता से मामा दिवाकर की प्रतीक्षा करने लगी। □